खेती की बुरी दशा।

खेती को जो लोग नीच पेशा समझते हैं वे मानो अपनी बुद्धि की न्यूनता का प्रमाण देते हैं। खेती का पेशा सबसे उच्च समझा जाना चाहिए। यदि खेती न की जाय तो और सारे पेशे मिट्टी में मिल जायँ। पेशों की तो बात ही नहीं, बिना खेती के मनुष्य अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठें। अधिकांश पशु भी मर जायँ। राज्य उलट-पुलट जायँ। देश में सर्वत्र हाहाकार मच जाय। यह तो खेती की उपयोगिता की बात हुई। शास्त्र-दृष्टि से भी खेती का महत्त्व बहुत अधिक है। कृषि शास्त्र बहुत व्यापक शास्त्र है। और शास्त्र अपने ही सिद्धान्तों की भित्ति पर अवलम्बन करते हैं। पर, कृषि-शास्त्र को और भी कितने ही शास्त्रों का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ता है। अनेक शास्त्रों का थोड़ा-बहुत ज्ञान-सम्पादन किये बिना कोई आदमी कृषिशास्त्रज्ञ नहीं हो सकता। ऐसे अनेक शास्त्र हैं जिनके नियमों का ज्ञान प्राप्त करना कृषि-शास्त्रज्ञों के लिए अनिवार्य्य है। शास्त्रज्ञों की बात जाने दीजिए। मामूली काश्तकारों के लिए भी कृषिसम्बन्धिनी कितनी ही बातों के जानने की ज़रूरत है। देखिए—

खेती का आधार भूमि है। अतएव काश्तकार के लिए सबसे पहले भूमि सम्बन्धिनी बातें जानना चाहिए। भूमि किन वस्तुओं से बनी है। उसकी कितनी किस्में हैं। किस तरह की भूमि में कौन फ़सल अच्छी हो सकती है। किस भूमि में किस प्रकार के पौधों की ख़ुराक अधिक रहती है। कितने दिनों बाद उस ख़ुराक में कमी आ जाती है। इस कमी को पूर्ण करने के लिए कौन कौन उपाय किये जाने चाहिए। किस [illegible] खेत जोतने से कैसी [illegible] निकलती है। [illegible] के लिए [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible], इन सब बातों [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

और बुधन चमार, रम्मू और मगोले अहीर का क्या है? अपनी वर्तमान स्थिति में ये बेचारे भला इन बातों का ज्ञान क्या प्राप्त करेंगे? हाँ, कुछ पढ़-लिख जाते तो शायद जान भी जाते। तथापि इन्हीं पासियों और मोचियों की कृपा से बड़े बड़े प्रशस्त पण्डितों, कुलीन कान्यकुब्जों और धन-कुबेर सेठों का पेट में दाना पड़ता है। जिनसे हम इतनी नफ़रत करते हैं—जिन्हें हम अस्पृश्य समझते हैं—उन्हीं की कृपा कटाक्ष से हम जीते हैं! वे खेती करना छोड़ दें तो पोथी-पत्रों और लोहे के सन्दूकों के भीतर से गेहूँ-चना और ज्वार-बाजरा थोड़े ही निकल पड़ेगा।

खेती के लिए भूगर्भ-शास्त्र के ज्ञान के रसायनशास्त्र के ज्ञान की भी आवश्यकता है। मैं, पौधों में और खाद आदि में जो रसायन [illegible] हैं उन्हें जानने और उनसे लाभ उठाने के लिए शास्त्र को जाने बिना कोई अच्छा कृषक नहीं सकता। सैकड़ों-हज़ारों कीड़े ऐसे हैं जिनके लाखों बीघे खेती बात की बात में नष्ट हो हैं। जिनकी यह इच्छा हो कि उनकी फ़सल इन के आक्रमण से बची रहे, या आक्रमण होने उससे उसकी रक्षा हो, उन्हें कीट-पतङ्ग शास्त्र भी मोटी मोटी बातें जान लेना चाहिए। की राय अब तो यहाँ तक है कि कृषक के कीटाणु शास्त्र की ज्ञान-प्राप्ति भी आवश्यक है। के आकार, खेतों की मेड़ों तथा खाइयों, नदों, बन्धों और बाँधों की रचना के लिए [illegible] के स्थूल नियम जान लेने की भी है। पशु-पालन
में परिचित हुए
नहीं सक
देखा
है। कृषि
कृषि

इसे सर्वोपयोगी शास्त्र की जितनी अवहेलना इस देश में हो रही है उतनी शायद ही और किसी सभ्य देश में हुई हो या आज कल होती हो। हमने अपने अपढ़, दरिद्रग्रस्त और दुर्बल काछियों, कोरियों और कुरमियों को इन सब शास्त्रों का ज्ञाता सा समझ रक्खा है। इसी से शायद खेती का काम हमने उन्हीं के लिए छोड़ दिया है और हम डाक्टरी, बारिस्टरी और क्लर्की में मस्त हैं।

अधिकांश देश में ज़मीन के ठेकेदार राजे, महराजे, तअल्लुक़ेदार और ज़मींदार हैं। गवर्नमेंट ने ज़मीन उन्हीं को दे रक्खी है। बदले में वह उनसे मालगुज़ारी लेती है। ये ठेकेदार मनमाने लगान पर ज़मीन दूसरों को जोतने-बोने के लिए देते हैं। चाहिए था कि भू-स्वामी होने के कारण कृषि शास्त्र के ये ज्ञाता होते। अनेक प्रकार से खेती की उन्नति करते। इस तरह ये स्वयं भी लाभ उठाते और काश्तकारों को भी लाभ उठाने का मार्ग बताते। परन्तु इनमें से अधिकांश यही नहीं जानते कि कृषि का भी कोई शास्त्र है। ये जानते हैं सिर्फ़ रुपये पीछे बारह आने तक इज़ाफ़ा करना! कितने ही तअल्लुक़ों और ज़मींदारियों में लाखों बीघे परती और बञ्जर ज़मीन पड़ी हुई है। उसे आबाद करने का ये स्वप्न में भी कोई उपाय नहीं करते। योरप और अमेरिका की बनी हुई कलें ईजाद करना तो दूर रहा, कानपुर के बने हुए हल और पम्प तक ये नहीं मँगाते। महकमे ज़िराअत से जो सूचनायें समय समय पर निकलती हैं उनकी इन्हें ख़बर ही नहीं। इस दशा में खेती बेचारी की कहिए कैसे उन्नति हो। क्यों न किसानों को एक दफ़े दिन भर में मुश्किल से दो एक रूखी रोटियाँ मिलें?

इन ज़मींदारों का ज़मीन पर क्या हक़ है, कुछ समझ में नहीं आता? बीच में इन्हें डाल कर क्यों गवर्नमेंट इनका घर भरती और काश्तकारों का मुनाफ़ा कम करती है? जो काश्तकार जेठ की प्रचण्ड धूप और सावन-भादों की निरन्तर झड़ी में खेतों में परिश्रम करते हैं वे उन खेतों से होनेवाले नफ़े के मुस्तहक़ हैं या आराम-कुरसी पर लेटने और मोटरकार पर सदर की दौड़ लगानेवाले ज़मींदार? हाँ, यदि ये लोग अपनी ज़मींदारी या तअल्लुक़े के काश्तकारों के फ़ायदे का ख़याल रक्खें—उनके लिए कुवें बनवावें, तालाब खुदावें, नहरें निकालें, बाँध बनावें, उन्हें उन्नत रीति से खेती करना सिखावें—तो अलबत्ते उनकी ठेकेदारी काश्तकारों के लिए किसी हद तक लाभदायक भी समझी जा सके। परन्तु जो स्वयं ही अपनी 'सीर' का सुप्रबन्ध नहीं कर सकते—जो स्वयं ही अपने निज के खेतों में अच्छी फ़सल नहीं पैदा कर सकते—वे दूसरों को क्या लाभ पहुँचावेंगे? इससे तो यही बेहतर होगा जो काश्तकारों को लगान सीधे गवर्नमेंट को देना पड़ता।

समय समय पर बन्दोबस्त होना और समय समय पर लगान में इज़ाफ़ा होना भी खेती की उन्नति में बहुत बाधक हो रहा है। कल्पना कीजिए कि किसी के पास दस बीघे ज़मीन है। वह पढ़ा लिखा है। ख़र्च भी कर सकता है। अगर वह वैज्ञानिक रीति से खाद तैयार करके, कल के हलों से खेत जोत कर, मिस्र की कपास का बीज उसमें बोवे और पम्प लगा कर आबपाशी करे तो उसकी आमदनी बहुत बढ़ जाय। पर वह क्यों अपना रुपया ख़तरे में डाले? दूसरे ही साल ज़मींदार साहब उसे बेदख़ल कर दें अथवा लगान में इज़ाफ़ा करने दौड़ें तो वह क्या करे? ऐसी दुरवस्था में कहीं खेती की उन्नति हो सकती है।

खेती बहुत ही पुराना पेशा है। पता नहीं कब इसका आरम्भ हुआ। लाखों वर्ष के पुराने पत्थर के हथियार ज़मीन के भीतर गड़े हुए पाये गये हैं। विद्वानों की राय है कि सभ्यता की पूर्ववर्ती दशा में मनुष्य शिकार करके ही अपना पेट पालता है। ज्ञानवृद्धि के साथ साथ सभ्यता का अङ्कुर मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है तब पहले पहल वह खेती ही करता है। अतएव खेती का पेशा हमा

खेती की बुरी दशा ।



खेती को जो लोग नीच पेशा समझते हैं वे मानो अपनी बुद्धि की न्यूनता का प्रमाण देते हैं। खेती का पेशा सबसे उच्च समझा जाना चाहिए। यदि खेती न की जाय तो और सारे पेशे मिट्टी में मिल जायँ। पेशों की तो बात ही नहीं, बिना खेती के मनुष्य अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठे। अधिकांश पशु भी मर जायँ। राज्य उलट-पुलट जायँ। देश में सर्वत्र हाहाकार मच जाय। यह तो खेती की उपयोगिता की बात हुई। शास्त्र-दृष्टि से भी खेती का महत्त्व बहुत अधिक है। कृषि-शास्त्र बहुत व्यापक शास्त्र है। और शास्त्र अपने ही सिद्धान्तों की भित्ति पर अवलम्बन करते हैं। पर, कृषि-शास्त्र को और भी कितने ही शास्त्रों का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ता है। अनेक शास्त्रों का थोड़ा-बहुत ज्ञान-सम्पादन किये बिना कोई आदमी कृषिशास्त्रज्ञ नहीं हो सकता। ऐसे अनेक शास्त्र हैं जिनके नियमों का ज्ञान प्राप्त करना कृषि-शास्त्रज्ञों के लिए अनिवार्य है ... ज्ञों की बात जाने दीजिए। मामूली ... के लिए भी कृषिसम्बन्धिनी कितनी ... नने की ज़रूरत है। देखिए:—

खेती की आधार ... काश्तकार सबसे पह ... जानना भूमि ... । उसकी ... कौन ... किस ... तने ... स ... ये

और पूरन चमार, रम्मू और अगोले अहीर का ... हैं? अपनी वर्तमान स्थिति में वे बेचारे भला ... बातों का ज्ञान क्या प्राप्त करेंगे? हाँ, कुछ पढ़े ... जाते तो शायद जान भी जाते। तथापि ... पासियों और मोचियों की कृपा से बड़े बड़े प्रा... पण्डितों, कुलीन कनवजियों और धन-कुबेर सेठों ... पेट में दाना पड़ता है। जिनसे हम इतनी नफ़... करते हैं—जिन्हें हम अस्पृश्य समझते हैं—उन्हीं ... कृपा कटाक्ष से हम जीते हैं। वे खेती करना ... दें तो पोथी-पत्रों और लोहे के सन्दूकों के भी... से गेहूँ-चना और ज्वार-बाजरा थोड़े ही नि... पड़ेगा।

खेती के लिए भूगर्भ-शास्त्र के ज्ञान के ... रसायनशास्त्र के ज्ञान की भी आवश्यकता है। ... में, पौधों में और खाद आदि में जो रसायन ... हैं उन्हें जानने और उनसे लाभ उठाने के लिए ... शास्त्र को जाने बिना कोई अच्छा कृषक नहीं ... सकता। सैकड़ों-हज़ारों कीड़े ऐसे हैं जिनके ... लाखों बीघे खेती बात की बात में नष्ट हो स... है। जिनकी यह इच्छा हो कि उनकी कृषि इन ... के आक्रमण से बची रहे, या आक्रमण होने ... उससे उसकी रक्षा हो, उन्हें कीट-पतङ्ग शास्त्र ... भी मोटी मोटी बातें जान लेना चाहिए। वि... की राय अब तो यहाँ तक है कि कृषक के ... कीटाणु-शास्त्र की ज्ञान-प्राप्ति भी आवश्यक है। ... के आकार, खेतों की मेंड़ों तथा खाइयों, पानी... नलों, बम्बों और बाँधों की रचना के लिए यं... यरी के स्थूल नियम जान लेने की भी आवश्य... है। पशु-पालन और वनस्पति-शास्त्र के सिद्धा... से परिचित हुए बिना भी अच्छे कृषक का ... नहीं चल सकता।

देखा आपने कृषि-शास्त्र कितना व्यापक है। कृषि-शास्त्र को यंजिनियरी, पशुपालन-विद्या, कीटपतङ्ग-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र ... कितने ही शास्त्रों के सिद्धान्तों के ज्ञान का स... कहना चाहिए। ऐसे व्यापक, ऐसे महत्त्वपूर्ण

खेती की बुरी दशा।

खेती को जो लोग नीच पेशा समझते हैं वे मानों अपनी बुद्धि की न्यूनता का प्रमाण देते हैं। खेती का पेशा सबसे उच्च समझा जाना चाहिए। यदि खेती न की जाय तो और सारे पेशे मिट्टी में मिल जायँ। पेशों की तो बात ही नहीं, बिना खेती के मनुष्य अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठे। अधिकांश पशु भी मर जायँ। राज्य उलट-पुलट जायँ। देश में सर्वत्र हाहाकार मच जाय। यह तो खेती की उपयोगिता की बात हुई। शास्त्र-दृष्टि से भी खेती का महत्त्व बहुत अधिक है। कृषि शास्त्र बहुत व्यापक शास्त्र है। और शास्त्र अपने ही सिद्धान्तों की भित्ति पर अवलम्बन करते हैं। पर, कृषि-शास्त्र को और भी कितने ही शास्त्रों का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ता है। अनेक शास्त्रों का थोड़ा-बहुत ज्ञान-सम्पादन किये बिना कोई आदमी कृषिशास्त्रज्ञ नहीं हो सकता। ऐसे अनेक शास्त्र हैं जिनके नियमों का ज्ञान प्राप्त करना कृषि-शास्त्रज्ञों के लिए अनिवार्य है। शास्त्रज्ञों की बात जाने दीजिए। मामूली काश्तकारों के लिए भी कृषिसम्बन्धिनी कितनी ही बातों के जानने की ज़रूरत है। देखिए:—

खेती का आधार भूमि है। अतएव काश्तकार के लिए सबसे पहले भूमि सम्बन्धी बातें जानना चाहिए। भूमि किन वस्तुओं से बनी है। उसकी कितनी किस्में हैं। किस तरह की भूमि में कौन [illegible] पैदा हो सकती है। किस भूमि में किस प्रकार के पौधों की खुराक [illegible] रहती है। किसमें [illegible] खुराक में कमी [illegible] है। इस [illegible] [illegible]

[illegible] और बूधन चमार, रम्मू और भगोले अहीर का है? अपनी वर्तमान स्थिति में वे बेचारे भला इ[illegible] बातों का ज्ञान क्या प्राप्त करेंगे? हाँ, कुछ पढ़-लि[illegible] जाते तो शायद जान भी जाते। तथापि इन्ह[ीं] पासियों और मोचियों की कृपा से बड़े बड़े प्रकाण्[ड] पण्डितों, कुलीन कनवजियों और धन-कुबेर सेठों [के] पेट में दाना पड़ता है। जिनसे हम इतनी नफ़र[त] करते हैं—जिन्हें हम अस्पृश्य समझते हैं—उन्हीं [की] कृपा कटाक्ष से हम जीते हैं। वे खेती करना छोड़[ ] दें तो पोथी-पत्रों और लोहे के सन्दूकों के भीतर से गेहूँ-चना और ज्वार-बाजरा थोड़े ही निकल पड़ेगा।

खेती के लिए भूगर्भ-शास्त्र के ज्ञान के सिवा रसायनशास्त्र के ज्ञान की भी आवश्यकता है। भूमि में, पौधों में और खाद आदि में जो रसायनें रहती हैं उन्हें जानने और उनसे लाभ उठाने के लिए इस शास्त्र को जाने बिना कोई अच्छा कृषक नहीं हो सकता। सैकड़ों-हज़ारों कीड़े ऐसे हैं जिनके कारण लाखों बीघे खेती बात की बात में नष्ट हो सकती है। जिनकी यह इच्छा हो कि उनकी कृषि इन कीड़ों के आक्रमण से बची रहे, या आक्रमण होने पर उनसे उसकी रक्षा हो, उन्हें कीट-पतङ्ग शास्त्र की भी मोटी मोटी बातें जान लेना चाहिए। विद्वानों की राय अब तो यहाँ तक है कि कृषक के लिए कीटाणु शास्त्र की ज्ञान-प्राप्ति भी आवश्यक है। खेती के औज़ार, खेतों की मेड़ों तथा क्यारियों, पानी के नहरों, कुओं और बाँधों की रचना के लिए यंजिनि[यरी] के स्थूल नियम जान लेने की भी आवश्यकता है। पशु-पालन और वनस्पति शास्त्र के सिद्धान्तों से परिचित हुए बिना भी अच्छे कृषक का काम नहीं चल सकता।

ऐसा मालूम होता है कि कृषिशास्त्र कितना व्यापक शास्त्र है। इस शास्त्र को इंजिनियरी, पशुपालन विद्या, [illegible] रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि [illegible] शास्त्रों के ज्ञान का समूह [illegible] [illegible] महत्त्वपूर्ण और [illegible]

ऐसे सर्वोपयोगी शास्त्र की जितनी अवहेलना इस देश में हो रही है उतनी शायद ही और किसी सभ्य देश में हुई हो या आज कल होती हो। हमने अपने अपढ़, दरिद्रग्रस्त और दुर्बल काछियों, कोरियों और कुरमियों को इन सब शास्त्रों का ज्ञाता सा समझ रक्खा है। इसी से शायद खेती का काम हमने उन्हीं के लिए छोड़ दिया है और हम डाक्टरी, बारिस्टरी और क्लर्की में मस्त हैं!

अधिकांश देश में ज़मीन के ठेकेदार राजे, महराजे, तअल्लुकेदार और ज़मींदार हैं। गवर्नमेंट ने ज़मीन उन्हीं को दे रक्खी है। बदले में वह उनसे मालगुज़ारी लेती है। ये ठेकेदार मनमाने लगान पर ज़मीन दूसरों को जोतने-बोने के लिए देते हैं। चाहिए था कि भू-स्वामी होने के कारण कृषि शास्त्र के ये ज्ञाता होते। अनेक प्रकार से खेती की उन्नति करते। इस तरह वे स्वयं भी लाभ उठाते और काश्तकारों को भी लाभ उठाने का मार्ग बताते। परन्तु इनमें से अधिकांश यही नहीं जानते कि कृषि का भी कोई शास्त्र है। ये जानते हैं सिर्फ़ रुपये पीछे बारह आने तक इज़ाफ़ा करना! कितने ही तअल्लुकों और ज़मींदारियों में लाखों बीघे परती और बञ्जर ज़मीन पड़ी हुई है। उसे आबाद करने का ये स्वप्न में भी कोई उपाय नहीं करते। योरप और अमेरिका की बनी हुई कलें ईजाद करना तो दूर रहा, कानपुर के बने हुए हल और पम्प तक ये नहीं मँगाते। महकमे ज़िराअत से जो सूचनायें समय समय पर निकलती हैं उनकी इन्हें ख़बर ही नहीं। इस दशा में खेती बेचारी की कहिए कैसे उन्नति हो। क्यों न किसानों को एक दफ़े दिन भर में मुश्किल से दो एक रूखी सूखी रोटियाँ मिलें?

इन ज़मींदारों का ज़मीन पर क्या हक़ है, कुछ समझ में नहीं आता? बीच में इन्हें डाल कर क्यों गवर्नमेंट इनका घर भरती और काश्तकारों का गुज़ारा कम करती है? जो काश्तकार जेठ की प्रचण्ड धूप और सावन-भादों की निरन्तर झड़ी में खेतों में परिश्रम करते हैं वे उन खेतों से होनेवाले नफ़े के मुस्तहक़ हैं या आराम-कुरसी पर लेटने और मोटरकार पर सदर की दौड़ लगानेवाले ज़मींदार? हाँ, यदि ये लोग अपनी ज़मींदारी या तअल्लुक़े के काश्तकारों के फ़ायदे का ख़याल रक्खें—उनके लिए कुएँ बनवावें, तालाब खुदावें, नहरें निकालें, बाँध बनावें, उन्हें उन्नत रीति से खेती करना सिखावें—तो अलबत्ते उनकी ठेकेदारी काश्तकारों के लिए किसी हद तक लाभदायक भी समझी जा सके। परन्तु जो स्वयं ही अपनी 'सीर' का सुप्रबन्ध नहीं कर सकते—जो स्वयं ही अपने निज के खेतों में अच्छी फ़सल नहीं पैदा कर सकते—वे दूसरों को क्या लाभ पहुँचावेंगे? इससे तो यही बेहतर होगा जो काश्तकारों को लगान सीधे गवर्नमेंट को देना पड़ता।

समय समय पर बन्दोबस्त होना और समय समय पर लगान में इज़ाफ़ा होना भी खेती की उन्नति में बहुत बाधक हो रहा है। कल्पना कीजिए कि किसी के पास दस बीघे ज़मीन है। वह पढ़ा लिखा है। ख़र्च भी कर सकता है। अगर वह वैज्ञानिक रीति से खाद तैयार करके, कल के हलों से खेत जोत कर, मिस्र की कपास का बीज उसमें बोवे और पम्प लगा कर आबपाशी करे तो उसकी आमदनी बहुत बढ़ जाय। पर वह क्यों अपना रुपया खतरे में डाले? दूसरे ही साल ज़मींदार साहब उसे बेदख़ल कर दें अथवा लगान में इज़ाफ़ा करने दौड़ें तो वह क्या करे? ऐसी दुरवस्था में कहीं खेती की उन्नति हो सकती है।

खेती बहुत ही पुराना पेशा है। पता नहीं कबसे इसका आरम्भ हुआ। लाखों वर्ष के पुराने पत्थर के हसुवे ज़मीन के भीतर गड़े हुए पाये गये हैं। विद्वानों की राय है कि सभ्यता की पूर्ववर्तिनी दशा में मनुष्य शिकार करके ही अपना पेट पालता है। जब ज्ञानवृद्धि के साथ साथ सभ्यता का अङ्कुर मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है तब पहले पहल वह खेती ही करता है। अतएव खेती का पेशा हमा

देश में प्राचीनतम है। वेदों तक में इसका उल्लेख है। वेदों में जिन ऋषियों के नाम आये हैं वे प्रायः सभी खेतिहर थे। खेती का आरम्भ होने पर ही पशु-पालन की विशेष आवश्यकता होती है। हल, फाल, हसुवे, खुरपे आदि का आविष्कार भी तभी होता है।

नहीं मालूम हमारे ऋषि-मुनियों के हल कैसे थे। पुरानी पुस्तकों में उनके यत्र तत्र जो वर्णन मिलते हैं उनसे तो यही सूचित होता है कि हमारा वर्तमान हल प्रायः वैसा ही है जैसा उनका हल था। यदि उसमें कुछ परिवर्तन हुआ है तो बहुत ही थोड़ा। इसीसे यह हल अब यथेष्ट उपयोगी नहीं। हज़ारों वर्ष पहले थोड़ा भी जोत कर ज़मीन में बीज डाल देने से अच्छी फ़सल होती थी, क्योंकि जमीन में उस समय यथेष्ट उर्वरा-शक्ति थी। उसका धीरे धीरे ह्रास होता गया है। अतएव उसकी उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने और गहरा जोतने की ज़रूरत है। पर इस ज़रूरत के समझनेवाले कहाँ ? गज्जू गड़रिया इसे नहीं समझ सकता। ज़मींदार ज़रिबन्धनसिंह को इसकी परवा नहीं। शिक्षा में गज्जू और ज़रिबन्धन दोनों ही तुल्य हैं। इसीसे दिवाली पर काश्तकारों के ज़ोर ज़ोर चिल्लाने पर भी "धरती माता" नहीं जागती। वह सदा के लिए सो सी गई है।

खेती की उन्नति में सबसे बड़ी बाधक अविद्या या निरक्षरता है। हमने एक आदमी को बुलाया। उसे मूँगफली और हल्दी बोने की तरकीब बताई, उससे होनेवाले लाभ समझाये। मूँगफली-विषयक सरकारी किताब भी पढ़ कर सुनाई। पूछा—भाई! अपने खेत में इस साल मूँगफली बोवो। जवाब मिला, नहीं बो सकते। कुछ न पैदा हो तो लगान किसके घर से देंगे? लगान माफ़ करा दो तो बोवें। अथवा यह शर्त करा दो कि यदि कुछ घाटा रहे तो कम से कम उतना लगान न लिया जाय। यह शर्त करे कौन? कोर्ट आव वार्ड्स के ज़िलेदार या तअल्लुक़ेदार साहब? शिव शिव! तअल्लुक़ेदार

और ज़मींदार यदि ऐसे होते तो फिर यह रोना क्यों रोना पड़ता। वे यदि परीक्षा के तौर पर खेती के नये नये काम करने और अपने नज़रिये से काश्तकारों को फ़ायदा उठाने का मौक़ा देते तो इन बेचारों की यह दुर्दशा न होती जो आज कल हो रही है।

ज़मीन की उर्वरा-शक्ति बनी रखने, उसे बढ़ाने और खोई हुई शक्ति की पूर्ति करने के लिए खाद ही सबसे अधिक महत्त्व की ओषधि है। पृथ्वी के रस के रूप में जो चीज़ पौधे अपनी जड़ों से खाते या पीते हैं उसमें अनेक रासायनिक पदार्थों का मिश्रण रहता है। ये सब पदार्थ पौधों का जीवन बना रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। उनकी कमी होने से पौधों की बाढ़ और उनकी उत्पादक शक्ति कम हो जाती है। एक बात और है। कुछ पौधों के लिए विशेष प्रकार की ख़ूराक, रस के रूप में, दरकार होती है। उसमें न्यूनाधिकता हो जाने से वे या तो कमज़ोर हो जाते हैं या जीते ही नहीं। इस न्यूनाधिकता का ज्ञान होना किसानों के लिए अत्यावश्यक है। पर इस ज्ञान की प्राप्ति क्या गवर्नमेंट उन्हें कराती है? नहीं। क्या ज़मींदार साहब कराते हैं? नहीं। क्या ज़िलेदार साहब कराते हैं? नहीं। क्या उनके शिक्षित देशबन्धु कराते हैं? अजी, उनसे इन बातों से क्या मतलब। ऐसे गन्दे काम का तो नाम सुनते ही शायद उन्हें नाक में रुमाल लगाना पड़े। उन्हें तो इस गन्दगी की बदौलत उत्पन्न हुए सिर्फ़ गेहूँ और बादशाह-पसन्द चावल से काम। पशुओं के गोबर और मूत्र का अधिकांश, जो पौधों के लिए सञ्जीवनी है, व्यर्थ जाता है। गोबर के कण्डे और उपले हो जाते हैं। मूत्र जगह का जगह पर ही सूख जाता है। जो गोबर और कूड़ा करकट बाहर धूप में जमा होता है वह दिन भर सूर्य की गरमी सहता है और वर्षा में जलवृष्टि की धारा का सम्पात। इस तरह उसका प्रायः सारा सार नष्ट हो जाता है। जो अल्पांश रह जाता है वह खेतों में पहुँचता है। क्या आश्चर्य

जो सोलह मन फ़ी बीघे के बदले चार ही मन अनाज पैदा हो। जो लोग मामूली गोबर की खाद नहीं बनाना जानते वे भला विशेष प्रकार की खादों का उपयोग क्या जानेंगे। किस फ़सल के लिए कौन सा खाद चाहिए, उसे किस प्रकार तैयार करना चाहिए और कितनी ज़मीन में कितना डालना चाहिए—यह जानना तो बुद्धू धानुक के लिए इस समय वैसा ही असम्भव है जैसा आसमान के तारों की ठीक संख्या का जानना। देहात में एक आदमी ने अपने बग़ीचे के कुछ क़लमी पेड़ों की जड़ के आस पास ज़मीन के भीतर हड्डियों के छोटे छोटे टुकड़े गाड़ दिये, जिसमें घुल घुल कर उन हड्डियों का सार पेड़ों की ख़ूराक में मिश्रित होता रहे। कुलीन कान्यकुब्जों ने जो यह सुना तो गाँव में तहलका सा मच गया—"सार पानी पियै का पाय नाहीं आय। चिरवन के तरे हाड गाड़ेसि है"। सो हड्डियाँ चूसना तो यहाँ जायज़ हैं। पर हड्डियों की खाद जायज़ नहीं। इसीसे करोड़ों मन हड्डियाँ मशीनों से पिस पिस कर विदेश जाती हैं। वहाँ वे चुकन्दर और गन्ना पैदा करने के काम आती हैं। इसी चुकन्दर और गन्ने की शकर जब यहाँ आती है तब हम उसे प्रसन्नतापूर्वक ठाकुरजी के भोग में रखते हैं।

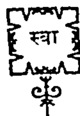
अच्छा तो यह दुर्गति और यह अकाल दूर किस तरह हो। इसको दूर करने का सबसे बड़ा साधन शिक्षा है। साधारण शिक्षा के विस्तार से यह बहुत कुछ दूर हो सकता है। पर इसका तिरोभाव कृषि-विज्ञान की शिक्षा से ही हो सकता है। बड़े दुःख की बात है, इस शिक्षा का देहात में तो क्या शहरों में भी प्रायः कुछ भी प्रबन्ध नहीं। यद्यपि कुछ समय से गवर्नमेंट का ध्यान इस तरफ़ गया है, तथापि इस शिक्षा की उपयोगिता का वर्णन विशेष करके काग़ज़ पत्रों ही में पाया जाता है। कार्य्य के रूप में इस शिक्षा के दर्शन प्राप्त नहीं। हिन्दी-उर्दू की रीडरों में लड़के पढ़ते हैं—मातादीन किसान हल जोत रहा है। इसं हल जोतने, खेत सींचने और ज्वार काटने के उल्लेख से खेती की महत्ता और तत्सम्बन्धिनी शिक्षा का ज्ञान बच्चे नहीं प्राप्त कर सकते। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के बच्चों के लिए साधारण शिक्षा के साथ ही साथ कृषि की विशेष शिक्षा दी जाने का पूरा पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। नासमझी के कारण कृषि जैसे व्यापक और सर्वोपयोगी व्यवसाय को जो लोगों ने नीच व्यवसाय समझ रक्खा है, इसकी असारता सब लोगों के हृत्पटल पर अङ्कित करना चाहिए। फिर, कृषि-विज्ञान की शिक्षा सुलभ कर देना चाहिए। प्रत्येक देहाती मदरसे में कृषि-विषयक पुस्तकें जारी होना चाहिए। *बच्चों को कृषि की स्थूल प्रक्रियायें* सिखाने के साथ ही सब बातों की प्रत्यक्ष शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें सब काम करके दिखाना चाहिए। इस देश में कृषि के जो दो चार कालेज और स्कूल हैं उनसे निकले हुए छात्रों ने अपनी कर्तव्यशीलता के प्रमाण नहीं दिये। वे 'बाबू' बन कर ही स्कूलों और कालेजों से निकले हैं, कृषक बन कर नहीं। इस बात को गवर्नमेंट जानती है। इसी से उसने कानपुर के कृषि-कालेज के नियमों में बहुत कुछ परिवर्तन किया है। अब तक तो उसे काफ़ी छात्र ही नहीं मिलते रहे। खेती के सदृश नीच पेशे के लिए छात्र मिलें भी तो कैसे।

जिन देशों में आमदनी के अनेक द्वार हैं—जिन देशों में लोग सैकड़ों प्रकार के भिन्न भिन्न व्यवसाय करते हैं—वे भी कृषि शिक्षा की ओर विशेष ध्य[ान] देते हैं। पर, जिस अभागे भारत में कृषि ही प्रध[ान] पेशा है वहाँ वह हेय दृष्टि से देखी जाती है। डे[न]मार्क बहुत ही छोटा देश है। पर कृषि ही [की] बदौलत वह मालामाल हो रहा है। एनसाइक्लो[पीडिया] साइक्लोपीडिया के अनुसार सबसे पहले, [१७७३] ईसवी में, वहाँ कृषि-कालेज खुला। इस [समय] कृषि-शिक्षा देनेवाले ४४ हाई स्कूल [और] कोई ६८ स्कूल हैं। आस्ट्रिया में [भी] सैकड़ों स्कूल और न मालूम कि[तने] [कालेज] हैं। [जर्मनी में] ... इँगलैंड, अमेरिका, जापान, फ़्रांस, इटली

भी कृषि-विज्ञान की शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध है। अगर कहीं नहीं है तो इस हिन्दुस्तान में।

जो व्यवसाय अन्य सभी व्यवसायों की जड़ है, जिस व्यवसाय की कृपा से मनुष्य की प्राण-रक्षा होती है, जिस व्यवसाय को अन्य देश वाले बड़े ही आदर की दृष्टि से देखते हैं उसे नीच काम समझने वाले भारत को भगवान् सुबुद्धि दे!

उपनिषद्-शब्द की व्याख्या।

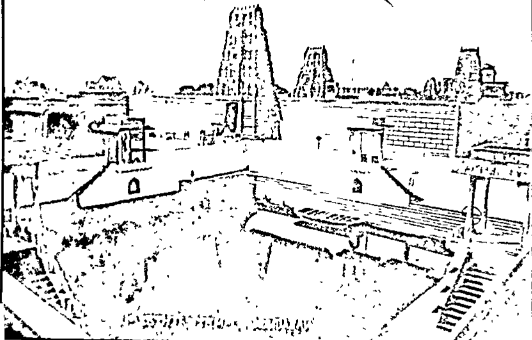


स्वामी शङ्कराचार्य्य के मत में उपनिषद्, संसार के कारण अविद्या को और जन्म-जरा-रोग आदि क्लेशों को नाश करते हैं, अथवा परब्रह्म की प्राप्ति कराते हैं। इसी लिए उनका नाम उपनिषद् है। शङ्कराचार्य्य अपने मुण्डकोपनिषद्-भाष्य की भूमिका में उपनिषद्-शब्द की व्याख्या इस तरह करते हैं—

"य इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धाभक्तिपुरःसराः सन्तस्तेषां गर्भजन्मजरारोगाद्यनर्थपूगं निशातयति परं वा ब्रह्म गमयत्यविद्यादिसंसारकारणं चात्यन्तमवसादयति विनाशयतीत्युपनिषत्। उपनिपूर्वस्य सदेरेवमर्थस्मरणात्। [illegible]"

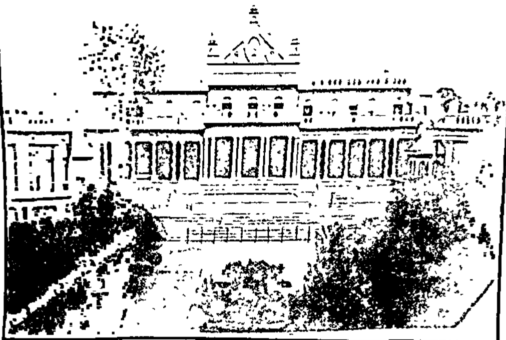
की कड़ी आज्ञा दे रक्खी थी कि वे उनके उपदे[illegible] और विचारों को गुप्त रक्खें और अयोग्य मनु[illegible] तथा सर्वसाधारण के सामने उन्हें न प्रकट करें[illegible] यूनान का प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता पाइथागोरस [illegible] शिष्यों को मौनव्रत धारण करने की शिक्षा देत[illegible] था। प्लेटो लिखने की विद्या के खिलाफ़ इस लि[illegible] था कि उससे गूढ़ और गम्भीर बातें अयोग[illegible] मनुष्यों के हाथ में पड़ कर अर्थ का अनर्थ करत[illegible] हैं। जर्मनी का दर्शन-शास्त्री शापेनहार अ[illegible] पाठकों से इस बात की आशा रखता है कि वे[illegible] कान्ट के दर्शन को पढ़ चुकने के बाद उसके दर्श[illegible] को पढ़ेंगे—अर्थात् वह यह नहीं चाहता कि[illegible] अयोग्य और कम बुद्धि वाले लोग उसके दर्श[illegible] को पढ़ कर अर्थ का अनर्थ करें। यही मतल[illegible] उपनिषदों के उन वचनों का भी है जिनमें अयोग्य[illegible] विद्यार्थियों और मनुष्यों को उपनिषद्-विद्[illegible] का उपदेश न देने की बार बार ताकीद की ग[illegible] है। उपनिषद् के इस तरह के कुछ वाक्य नीचे[illegible] दिये जाते हैं।

छान्दोग्योपनिषत् ३-११-५ में अयोग्य को[illegible] उपदेश न देने के विषय में लिखा है—"इदं वा[illegible] तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वान्तेवासिने[illegible] नान्यस्मै कस्मैचन [illegible]



सेठजी का मन्दिर, वृन्दावन ।

रण्य प्रेस, प्रयाग ।



शाहजी का मन्दिर, वृन्दावन।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हपूर्वतापनीयोपनिषत् १-३—"सावित्रीं लक्ष्मीं प्रणवं यदि जानीयात् स्त्री-शूद्रः स मृतोऽधो गच्छति, त् सर्वदा नाऽऽचष्टे, यद्याचष्टे स आचार्यस्तेनैव मृतोऽधो ति"।

उपनिषदों में हमें अनेकों कथायें ऐसी मिलती जेनमें आचार्य्य या किसी विद्या का ज्ञाता, उस द्या के सीखने के लिए नये आये हुए विद्यार्थी शिक्षा देना अस्वीकार करता है, हीले हवाले ता है, या अधूरा उपदेश देता है। आचार्य्य रके उपनिषद्-विद्या का सच्चा ज्ञान तभी कराता जब वह बहुत खुशामद, गुरुसेवा और धैर्य या सहनशीलता के बाद अपने के वह विद्या हण करने योग्य साबित कर देता है। इस तरह उदाहरण कौशीतकी-उपनिषद् में इन्द्र और तर्दन का संवाद, छान्दोग्योपनिषद् में रैक और नश्रुति का संवाद, सत्यकाम और उपकोशल का संवाद, प्रवाहण और आरुणि का संवाद, रजापति इन्द्र और वैरोचन का संवाद, और बृहदारण्यक में याज्ञवल्क्य और जनक का संवाद हैं। अयोग्य के हाथ में उपनिषद्-विद्या न पड़ जाय अथवा सर्वसाधारण में उसका प्रचार न हो जाय, इसी कारण से आचार्य्य उपदेश ग्रहण करने के लिए आये हुए नवीन शिष्य के उपदेश देने से इनकार करता था या हीला हवाला करता था। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में संसार के प्रायः सभी देशों में, और ख़ास कर भारतवर्ष के उपनिषत्काल में, लोग अपने ज्ञान और अपनी विद्या के अयोग्य मनुष्यों तथा सर्व-साधारण से बहुत ही गुप्त रखते थे और बहुत लाचारी से दूसरों के उसका उपदेश देते थे। किन्तु उपनिषद्-शब्द का अर्थ "रहस्य" कैसे हो गया, यह ज़रा विचारणीय है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है स्वामी शङ्कराचार्य्य उपनिषद्-शब्द के "षद्लृ विशरण-गत्यवसादनेषु"—इस धातु से सिद्ध करते हैं और उसका अर्थ "अज्ञान का नाश करने वाला" अथवा "परब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला" करते हैं। उप-निषद् के इस अर्थ के गत्यर्थक या अवसा-दनार्थक 'षद्' धातु से सिद्ध करने में शङ्कर-स्वामी का तात्पर्य अपना अद्वैत वेदान्त सिद्ध करना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उप-निषद् का अन्तिम लक्ष्य 'अविद्या का नाश करना' या "ब्रह्मप्राप्ति कराना" है। तथापि शङ्कर-स्वामी की इस व्याख्या से "गूढ़ उपदेश", "रहस्य", "गुह्यादेश", "परम गुह्य" इत्यादि पद जो उपनिषद् के लिए व्यवहार किये गये हैं उनका अर्थ या भाव नहीं निकलता। यदि उपनिषद्-शब्द 'उप नि' पूर्वक 'उपवेशनार्थक सद्' धातु से सिद्ध किया जाय तो रहस्य या गुह्य उपदेश का अर्थ निकल सकता है। सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने से जो संज्ञा बनती है उसके अर्थ होते हैं—बैठना या बैठक—और समीपार्थक 'उप'—उपसर्ग उसके पहले लगने से उपनिषद् का अर्थ परिषद् या संसद् (सभा या समूह अर्थात् मनुष्यों की प्राकाश्य बैठक) के बिलकुल उलटा "गुरु के समीप गुह्य उपदेश ग्रहण करने के लिए गुप्त बैठक" हो जाता है। उपनिषद्-शब्द जो पहले "गुप्त बैठक" के लिए व्यवहार किया जाता था, कुछ समय के बाद, जिस बात के लिए गुप्त बैठक होती थी उसका अर्थात् "गुह्य उपदेश" अथवा "उपनिषद्-विद्या" का अर्थ देने लगा।

उपनिषदों में ऐसे अनेक वाक्य मिलते हैं जिनमें क्षत्रिय लोग सच्चे धार्मिक ज्ञान के सिखलाने वाले लिखे गये हैं। उपनिषद् विद्या का ज्ञान, जिसे पहले किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था, इस सृष्टि में पहले पहल केवल क्षत्रियों ही के था। जब ब्राह्मण लोग क्रिया-संस्कारों और यज्ञों में फँसे हुए थे तब विचारवान् मनुष्य यह सोचने लगे कि क्या धर्म केवल इन क्रिया-संस्कारों और विधियों में ही सीमाबद्ध है। विद्वान् क्षत्रिय यद्यपि अब तक ब्राह्मणों के बनाये हुए क्रिया-संस्कारों को करते थे, तथापि उन्होंने अधिक पुष्ट विचार

प्रचलित किये और आत्मा और ईश्वर के विषय में नई नई खोज की। ये नये नये विचार ऐसे पुष्ट और दृढ़ थे कि ब्राह्मणों ने, जो अपने ही विचार से अपने को बुद्धिमान् समझते थे, अन्त को हार मानी और क्षत्रियों के पास यह नया ज्ञान सीखने के लिए गये। क्षत्रिय उपनिषद् के ज्ञान को ब्राह्मणों से छिपाते थे। वे क्षत्रियों के एक छोटे और खास समुदाय में इसका प्रचार करते थे। इस गुप्त और ख़ास समुदाय के बाहर वालों के लिए यह ज्ञान बहुत ही गुप्त रहस्य था। अतएव उपनिषद् "रहस्य" या "गुह्य उपदेश" कहलाने लगा। यहाँ पर कुछ थोड़े से उदाहरण दिये जाते हैं जिनसे पता लगेगा कि क्षत्रियों ही ने उपनिषद्-विद्या की खोज की और उन्हीं से ब्राह्मणों ने इस ज्ञान को सीखा, और यह भी मालूम हो जायगा कि किस तरह क्षत्रिय लोग अपने इस ज्ञान को ब्राह्मणों से गुप्त रखते थे, जिससे उपनिषद् 'रहस्य' या 'गुह्य उपदेश' कहे जाने लगे।

शतपथ ब्राह्मण (११-४-५) में लिखा है—

विदेह जनक की भेंट कुछ ब्राह्मणों से हुई। वे श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म, सात्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा कि 'आप अग्निहोत्र कैसे करते हैं?' [illegible] ब्राह्मणों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया, पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का [illegible] [illegible] [illegible] ठीक न था। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

छान्दोग्य-उपनिषद् (५-३-१०) में लिखा है:—

[illegible]

मुझसे पाँच प्रश्न किये, पर मैं उनमें से एक का भी [illegible] न दे सका। उसका पिता गौतम भी स्वयं इन प्रश्नों [illegible] न समझ सका और वह अपना समाधान करने के [illegible] उस क्षत्रिय के पास गया। प्रवाहण जैवलि ने उत्तर दि[illegible] हे गौतम, यह ज्ञान तुम्हारे पहले और किसी ब्राह्मण ने [illegible] प्राप्त किया। इस लिए यह शिक्षा इस सृष्टि भर में [illegible] क्षत्रिय जाति ही की है। तब उसने गौतम को यह ज्ञान दि[illegible]

छान्दोग्य-उपनिषद् (५-११-२४) में यह [illegible] लिखी है—

पाँच ब्राह्मण-गृहस्थों और वेदान्तियों को इस [illegible] की जिज्ञासा हुई कि आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या [illegible] वे लोग इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उद्दालक [illegible] के पास गये। परन्तु आरुणि को भी इसमें सन्देह [illegible] इस लिए वह उन्हें क्षत्रिय राजा अश्वपति कैकेय के [illegible] ले गया, जिसने उन्हें उस यज्ञ में विनयपूर्वक ठहरने [illegible] निमन्त्रित किया, जिसे वह किया चाहता था। उसने कहा [illegible] मेरे राज्य में कोई चोर, कदर्य, शराबी, अनाहिताग्नि, [illegible] व्यभिचारी अथवा व्यभिचारिणी नहीं हैं। भगवन् [illegible] यज्ञ करता हूँ और जितना धन मैं प्रत्येक ऋत्विक् को [illegible] उतना आप लोगों को भी दूँगा। कृपा कर आप [illegible] ठहरिए। वे लोग ठहरे और उन्होंने अपने आने का [illegible] प्रगट किया। दूसरे दिन प्रातःकाल वे लोग अपने [illegible] में समिध लिये (शिष्यों की तरह) उसके निकट गये। [illegible] उनसे बिना किसी संस्कार की विधि के उन्हें यह ज्ञा[illegible] दिया जिसके लिए वे आये थे।

कौषीतकि-उपनिषद् (४) में प्रसिद्ध वि[illegible] [illegible] [illegible] और काशी के विद्वान् राजा अज[illegible] [illegible] [illegible] लिखा है। [illegible] ब्राह्मण ने राजा को [illegible] [illegible] हार हुई और वह निरुत्तर हो गया, जिससे उस[illegible] [illegible]

उन सब वस्तुओं का, जिनका तुमने वर्णन किया है, कर्त्ता है, जिसकी यह सब माया है, केवल उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। तब बालाकि समित्पाणि होकर यह कहता हुआ आया कि क्या मैं आपके निकट शिष्य की तरह आऊँ ? अजातशत्रु ने उससे कहा—मैं इसे अनुचित समझता हूँ कि कोई क्षत्रिय किसी ब्राह्मण को शिष्य बनावे। आओ, मैं तुम्हें सब रहस्य बताये देता हूँ।

यह कथा तथा श्वेतकेतु आरुणेय और क्षत्रिय राजा प्रवाहण जैवलि की कथा बृहदारण्यक-उपनिषद् में भी दी हुई है। जितना हम ऊपर लिख आये हैं वह यह दिखाने के लिए काफ़ी है कि उपनिषद् का ज्ञान पहले किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था। यह प्रथम केवल क्षत्रियों ही का था। उसे वे बहुत ही गुप्त रखते थे, जिससे उपनिषद् विद्या "रहस्य" या "गुह्यादेश" कहलाने लगी।

ब्राह्मणों से तथा सर्वसाधारण से उपनिषद्-ज्ञान को गुप्त रखने के लिए उपनिषद्-विद्या के ज्ञाता इस नवीन ज्ञान को थोड़े से गुप्त शब्दों में प्रकट करते थे, जिसे केवल आचार्य्य और शिष्य ही समझ सकते थे। इस तरह के शब्द "तद्वनम्", "तज्जलान्", "सत्यस्य सत्यम्", "संयद्वाम", "वामनी", "भामनी" इत्यादि हैं। दूसरे लोग इन गुप्त शब्दों को नहीं समझ सकते थे। अतएव ये गुप्त शब्द भी "उपनिषद्" या "रहस्य" कहलाते थे। इन गुप्त शब्दों की व्याख्या आचार्य्य अपने शिष्यों से ज़बानी करते थे। यह व्याख्या भी गुप्त रक्खी जाती थी। इन्हीं व्याख्यानों से उन ग्रन्थों का जन्म हुआ जो उपनिषद् के नाम से पुकारे जाते हैं।

जितने प्रमाण ऊपर दिये गये हैं उनसे यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि यद्यपि उपनिषदों का अन्तिम उद्देश शङ्कराचार्य्य के अनुसार "अविद्या का नाश करना" अथवा "परब्रह्म की प्राप्ति कराना" है, तथापि उपनिषद् का शब्दार्थ या भावार्थ "रहस्य", "गुह्य उपदेश", या "गुप्तविद्या" ही है।

जनार्दन भट्ट।

कृषक-कथा।

समर्पण।

होते हैं सैकड़ों निछावर एक "वोट" पर जिसके।
फहराते विभाग केतु हैं मान-कोट पर जिस के।
राजा और प्रजा दोनों का जिसका मुख दर्पण है,
उन्हीं "आनरेबुल" पदवी को कृषक-कथा अर्पण है

उपक्रम।

१—यद्यपि हम हैं सिद्ध न सुकृती, व्रती न योगी,
पर किस अघ से हुए हाय ! ऐसे दुख-भोगी ?
क्यों हैं हम यों विवश, अकिञ्चन, दुर्बल, रोगी ?
दयाधाम हे राम ! दया क्या इधर न होगी ?

२—देव ! तुम्हारे सिवा आज हम किसे पुकारें ?
तुम्हीं बता दो हमें कि कैसे धीरज धारें।
किस प्रकार अब और मरे मन को हम मारें ?
अब तो रुकती नहीं आंसुओं की ये धारें॥

३—जो लेकर अवतार असुर तुमने हैं मारे,
निष्ठुर नर फिर छोड़ दिये क्यों बिना विचारे !
उनके हाथों आज देख लो हाल हमारे—
हम क्या कोई नहीं दयामय ! हाय ! तुम्हारे !

४—पाया हमने प्रभो ! कौन सा त्रास नहीं है ?
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है ?
मिला हमें क्या यही नरक का वास नहीं है ?
विष खाने को हाय ! टका भी पास नहीं है !

५—नहीं जानते पूर्व समय क्या पाप किया है,
जिसका फल यह आज दैव ने हमें दिया है।
अब भी फटता नहीं वज्र का बना हिया है,
इसी लिए क्या हाय ! जगत् में जन्म लिया है !

६—हम पापी ही सही किन्तु तुम हमें उबारो,
दीनबन्धु हो, दया करो अब और न मारो।
करके अपना कोप शान्त करुणा कर तारो,
अपने गुण से देव ! हमारे दोष बिसारो॥

७—हमें तुम्हीं ने कृषक-वंश में उपजाया है,
किसका वश है, यहां तुम्हारी ही माया है।
जो कुछ तुमने दिया वही हमने पाया है,
पर विभुवर ! क्यों यही दान तुमको भाया है ?

८—कृपक वंश को छोड़ न था क्या और ठिकाना ?
नरक-योग्य भी नाथ ! न तुमने हमको माना !
पाते हैं पशु-पक्षि आदि भी चारा-दाना ,
और अधिक क्या कहें, तुम्हारा है सब जाना ॥

९—कृषि ही थी तो विभो ! बैल ही हम को करते ,
करके दिन भर काम शाम को चारा चरते ।
कुत्ते भी हैं किसी भाँति दग्धोदर भरते ,
करके अन्नोत्पन्न हमीं हैं भूखों मरते !

१०—कृषि-निन्दक मर जाय अभी यदि हो वह जीता—
पर वह गौरव-समय कभी का है अब बीता ।
कृषि से ही थी हुई जगज्जननी श्रीसीता,
गाते अब भी मनुज यहाँ जिनकी गुण-गीता ॥

११—एक समय था, कृपक आर्य्य थे समझे जाते ,
भारत में थे हमीं अन्नदाता-पद पाते ।
जनक-सदृश राजर्षि यहाँ हल रहे चलाते ,
स्वयं रेवतीरमण हलायुध थे कहलाते ॥

१२—लीलामय श्रीकृष्ण यहाँ गोपाल हुए हैं ,
समय फेर से वही और ही हाल हुए हैं ।
हा ! सुकाल भी आज दुरन्त दुकाल हुए हैं,
थे जो मालामाल अधम कङ्गाल हुए हैं !

१३—जिन अन्नों से मनुज मात्र अब भी जीते हैं ,
उनके कर्त्ता हमीं यहाँ आँसू पीते हैं !
[illegible] उदर [illegible] रहते रीते हैं ,
मरते हैं निरुपाय हाय ! [illegible] दिन बीते हैं ॥

१४—हम से ही सब [illegible] धन भर रहते हैं ,
तो भी हम को निपट नीच ही वे कहते हैं !
[illegible] हम न [illegible] दुख सहते हैं ,
[illegible] [illegible] सब से बढ़ते हैं !

१५—[illegible] भी [illegible] है ,
[illegible] है ,
[illegible] है ,
[illegible] है !

१६—[illegible]
[illegible]
[illegible] !
[illegible] ॥

१७—वर्षा का सब सलिल खुले सिर पर है झड़ता ,
विकट शीत से अस्थिजाल तक आप अकड़ता !
है बैलों के साथ बैल भी बनना पड़ता ,
जलता तो भी उदर, अहो ! जीवन की जड़ता !

१८—कृपक वंश में जन्म यहाँ जो हम पाते हैं ,
तो खाने के नाम नित्य हा हा खाते हैं ।
मरने के ही लिए यहाँ क्या हम आते हैं ?
जीवन के सब दिवस दुःख में ही जाते हैं !

१९—देव ! हमारी दशा तुम्हारी है सब जानी ,
नहीं मानती किन्तु आज यह व्याकुल वाणी ।
सुन लो अपने दीन जनों की राम-कहानी ,
दया करोगे आप हुए यदि पानी पानी ॥

२०—तुम भी वाचक वृन्द ! तनिक सहृदय हो जाओ ।
अपने दुर्विध बन्धु जनों को यों न भुलाओ ।
यही समय है कि जो कर सको कर दिखलाओ ,
बन्धु नहीं तो मनुज जान कर ही अपनाओ ॥

कथारम्भ ।

१—जब कुछ होश सँभाला, मैंने अपने को वन में पा
हरी भूमि पर कहीं धूप थी और कहीं गहरी छाया ।
एक भैंस दो गायें लेकर दिन भर उन्हें चराता था ,
घर आकर, व्यालू में, माँ से एक पात्र पय पाता था ।

२—सुख भी नहीं छिपाऊँगा मैं पाया है मैंने जितना ,
कभी कभी घी भी मिलता था यद्यपि वह था ही कितना !
माता पिता लगान लेकर ही मुदित महेरी करते थे ,
भैंस और गायों का देना घी दे देकर भरते थे ॥

३—देख किसी का ठाट न हमको ईर्ष्या कभी सताती थी
और न अपनी दीन दशा पर लज्जा ही कुछ आती थी
[illegible] थोड़ा है, और कहीं है बहुत यही ,
जो कुछ जो जितना आता है पाता है वह सदा सही

४—[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ,
[illegible] ॥

५—[illegible] ,
[illegible] ।

मन निर्मल था, मन पर जो कुछ आपड़ता मेला करते ,
गुञ्जारित करते कानन को जब कि हर्ष हेला करते ॥
ऊपर नील वितान तना था, नीचे था मैदान हरा ,
शून्य-मार्ग में विमल वायु का चलना था उल्लास भरा ।
कभी दौड़ने लग जाते हम रह जाते फिर मुग्ध खड़े ,
उड़ने की इच्छा होती थी उड़ते देख विहङ्ग बड़े ॥

बन्दर-सम पेड़ों पर चढ़ते, डालें कभी हिलाते थे ,
पके पके फल तोड़ परस्पर खाते और खिलाते थे ।
शब्द-विशेषों से पशुओं को चलते समय बुलाते थे ,
कान उठा कर, पर चलने को वे भी दौड़े आते थे ॥
त्तों पर मोती से हिमकण प्रातःकाल चमकते थे ,
सन्ध्या को ऊपर बहु तारे कैसे दिव्य दमकते थे ।
आते जाते समय हमारा मानस-हंस मोद पाता ,
र भरा भाण्डार प्रकृति का ग्लानि और श्रम मिट जाता ॥

ढ़ने को हम कभी पहाड़ों पर चढ़ते ,
ड़ों से पानी में आगे बढ़ते ।
ही फिरती हमें गोद में लिये हुए ,
र मनुजता तीनों के गुण दिये हुए ॥
से, मेघ मृदङ्ग बजाते थे ,
होकर चञ्चल चातक गाते थे ।
गन भी नीचे उतरा आता था ,
दृश्य का परदा उठता जाता था ॥
भी किस आशा से बची रही ?
नक जब कि शून्य हो चुकी मही !
मेरा बीता समय वही ,
, है जीने का यत्न यही ॥
अब, चला गया सो चला गया;
एक बार ही छुआ गया ।
की इच्छा

पीतल क्यों पीतल ही रहता, सोना क्यों बनता है धन ,
अच्छा, धन ही क्या है जिससे आती है इतनी उलझन ?
१५—धन मन का माना ही धन है, पीतल भी तो पीला है ,
धन तो खाया नहीं न जाता, जग की कैसी लीला है !
धन जो हो, परन्तु क्यों उस पर मानव ऐसे मरते हैं ?
क्यों वे उसके लिए निरन्तर पाप-पुण्य सब करते हैं ?
१६—धन को धनता मिली हमीं से और हमीं उस पर फूले ,
अपने से भी बढ़ कर उसकी चिन्ता में पड़ कर भूले ।
अपने ऊपर आप चढ़ाया हमने क्या पागलपन है ,
तब तो पशु-पक्षी ही अच्छे, जिन्हें न धन का बन्धन है ॥
१७—जन से धन बढ़ गया कि जिसमें जन ही जन को मार रहा ,
महाजनों को हम लोगों का है कब कष्ट-विचार अहा !
प्रभुवर ! धन के लिए किसी का मैं न कभी अपकार करूँ ,
धन ही मिले मुझे तो उससे जनता का उपकार करूँ ॥
१८—पाठक खिन्न न हों कि दीन यह पागल सा क्या बकता है ,
नहीं गँवार किसान तत्त्व का अनुशीलन कर सकता है ।
एक अपढ़ जड़ जन के ऊपर समुचित ऐसा रोष नहीं ,
आप खिन्न हों, किन्तु दास का इसमें कुछ भी दोष नहीं ।
१९—जो हो, सोच रहा था मन में मैं यों कितनी ही बातें ,
वे कैसी ही हों, पर उनमें थीं न दूसरों की घातें ।
बड़ी देर हो गई सोचते पर न समझ में कुछ आया ,
आखिर अपनी बंशी लेकर एक गीत मैंने गाया—
२०—'अरी जसोदा, तेरे सुत ने सब को आज सनाथ किया ,
ह्रद अथाह अगम जमुना में काली को है नाथ लिया ।'
× × × ×
जब तक पूरा करूँ गीत मैं—एक विकट चीत्कार नया—
मानों मेरे कान फोड़ कर, तान तोड़ कर गूँज गया ।
२१—चौंक उठा मैं और शीघ्र ही डण्डा ले बाहर आया ,
भीत भाव से सब पशुओं को इधर उधर भगते पाया ।
सन सन पवन शून्य में चलती, धरा धूप से जलती थी ,
किन्तु प्रकृति के रोम रोम से ध्वनि बस वही निकलती थी ॥
२२—चारों ओर वहाँ पर मैंने तीक्ष्ण दृष्टि जो दौड़ाई ,
नदी किनारे एक बालिका केवल चिल्लाती पाई ।
उसके पशु भी भाग रहे थे पानी पीना छोड़ अहा !
देखा और कि एक तेंदुआ उसी ओर है झपट रहा ॥—
२३—सर्वनाश ! भय से लड़की ने आँखों को था
दौड़ा मैं, था उसी दृश्य ने मुझे आप ही

८–कृषक वंश को छोड़ न था क्या और ठिकाना ?
नरक-योग्य भी नाथ ! न तुमने हमको माना !
पाते हैं पशु-पक्षि आदि भी चारा-दाना,
और अधिक क्या कहें, तुम्हारा है सब जाना ॥

९–कृषि ही थी तो विभो ! बैल ही हम को करते,
करके दिन भर काम शाम को चारा चरते।
कुत्ते भी हैं किसी भांति दग्धोदर भरते,
करके अन्नोत्पन्न हमीं हैं भूखों मरते !

१०–कृषि-निन्दक मर जाय अभी यदि हो वह जीता—
पर वह गौरव समय कभी का है अब बीता।
कृषि से ही थी हुई जगज्जननी श्रीसीता,
गाते अब भी मनुज यहां जिनकी गुण-गीता ॥

११–एक समय था, कृषक आर्य्य थे समझे जाते,
भारत में थे हमीं अन्नदाता-पद पाते।
जनक-सदृश राजर्षि यहां हल रहे चलाते,
स्वयं रेवतीरमण हलायुध थे कहलाते ॥

१२–लीलामय श्रीकृष्ण जहां गोपाल हुए हैं,
समय फेर से वहां और ही हाल हुए हैं।
हा ! सुकाल भी आज दुरन्त दुकाल हुए हैं,
थे जो मालामाल अधम कङ्गाल हुए हैं !

१३–जिस खेती से मनुज मात्र अब भी जीते हैं,
उसके कर्त्ता हमीं यहां आंसू पीते हैं !
भर कर सब के उदर आप रहते रीते हैं,
मरते हैं निरुपाय हाय ! शुभ दिन बीते हैं ॥

१४–हम से ही सब सभ्य सभ्य बन कर रहते हैं,
तो भी हम को निपट नीच ही वे कहते हैं !
कृषिकर होकर हम न कौन सा दुख सहते हैं ?
निराधार मँझधार बीच कब से बहते हैं !

१५–जिस कृषि से सब जगत आज भी हरा भरा है,
क्यों उसमें इस भांति हमारा हृदय डरा है ?
कृषि ने होकर विवश काम कर आज धरा है,
हम कृषकों के लिए रही बस शून्य धरा है !

१६–कड़ी धूप में तीक्ष्ण ताप से तनु है जलता,
पानी बन कर नित्य हमारा रुधिर निकलता।
तदपि हमारे लिए यहां कब शुभ फल फलता !
रहता सदा अभाव, नहीं कुछ भी वश चलता ॥

१७–वर्षा का सब सलिल खुले सिर पर है झड़ता,
विकट शीत से अस्थिजाल तक आप अकड़ता।
है बैलों के साथ बैल भी बनना पड़ता,
जलता तो भी उदर, अहो ! जीवन की जड़ता !

१८–कृषक वंश में जन्म यहां जो हम पाते हैं,
तो खाने के नाम नित्य हा हा खाते हैं।
मरने के ही लिए यहां क्या हम आते हैं ?
जीवन के सब दिवस दुःख में ही जाते हैं !

१९–देव ! हमारी दशा तुम्हारी है सब जानी,
नहीं मानती किन्तु आज यह व्याकुल वाणी।
सुन लो अपने दीन जनों की राम-कहानी,
दया करोगे आप हुए यदि पानी पानी ॥

२०–तुम भी वाचक वृन्द ! तनिक सहृदय हो जाओ,
अपने दुर्विध बन्धु जनों को यों न भुलाओ।
यही समय है कि जो कर सको कर दिखलाओ,
बन्धु नहीं तो मनुज जान कर ही अपनाओ ॥

कथारम्भ।

१–जब कुछ होश सँभाला, मैंने अपने को वन में पाया,
हरी भूमि पर कहीं धूप थी और कहीं गहरी छाया।
एक भैंस दो गायें लेकर दिन भर उन्हें चराता था,
घर आकर, व्यालू में, मां से एक पात्र पय पाता था ॥

२–सुख भी नहीं छिपाऊँगा मैं पाया है मैंने जितना,
कभी कभी घी भी मिलता था यद्यपि वह था ही कितना।
माता पिता छाछ लेकर ही मुदित महेरी करते थे,
भैंस और गायों का देना घी दे देकर भरते थे ॥

३–देख किसी का ठाट न हमको ईर्ष्या कभी सताती थी,
और न अपनी दीन दशा पर लज्जा ही कुछ आती थी।
मानो उन्हें यही थोड़ा है, और हमें है बहुत यही,
जो कुछ जो लिक्खा लाता है पाता है वह सदा वही ॥

४–जो हो, मैं निश्चिन्त भाव से या मन में सुख ही पाता,
किसी तरह खेती पाती से था संसार चला जाता।
सुख पवन मेरे अङ्गों का वन में स्वेद सुखाती थी,
घनी घनी छाया पेड़ों की गोदी में बिठलाती थी ॥

५–मुझ से ही मेरे साथी थे, सब
हरियाली पर कभी लेटते, कभी

वेदान्त,सूत्रों पर शङ्कराचार्य का रचा हुआ
है। उसके चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद के
वें सूत्र और दूसरे अध्याय के चतुर्थ पाद के
सूत्र के भाष्य में बलवर्मा का उल्लेख है।
यथा—

"गच्छ त्वमितो बलवर्माणं ततो जयसिंहं ततः कृष्ण-
मिति" ४।३।२।

"सादृश्ये हि सत्युपमानं स्यात्। यथा सिंहस्त्या बल-
ते" २।४।१।

परन्तु यह निश्चय नहीं कि यह बलवर्मा कौन
सम्भव है कि कड़ब * के शक-संवत् ७३५ के
ट्रकूट राजा गोविन्दराज (तृतीय) के दानपत्र में
त बलवर्मा का कथन है वही बलवर्मा शङ्करा-
र्य का समकालीन हो। क्योंकि शङ्कराचार्य के
शिष्य सर्वज्ञात्मा ने अपने रचे हुए संक्षिप्त शारीरक
ष्य के अन्त में लिखा है—मैंने यह ग्रन्थ आदित्य
राज्य-समय में लिखा। उसका वंश क्षत्रिय है।
मनु के वंश में उत्पन्न हुआ है:—

श्रीदेवेश्वरपादपङ्कजरजःसम्पर्कपूताशयः
सर्वज्ञात्मगिराङ्कितो मुनिवरः संक्षेपशारीरकम्।
चक्रे सज्जनबुद्धिवर्धनमिदं राजन्यवंश्ये नृपे
श्रीमत्यक्षतशासने मनुकुलादित्ये भुवं शासति॥

इस पद्य में सर्वज्ञात्मा के गुरु सुरेश्वर का नाम
श्वर लिखा है। यह छन्दोनुरोध से ऐसा लिखा
है। क्योंकि देव और सुर पर्यायवाची शब्द हैं।
यह आदित्य चालुक्य विमलादित्य होना चाहिए,
कि ग्रन्थकर्ता ने उक्त आदित्य का गोत्र मनु-
सम्भूत मानव्य लिखा है, और चालुक्यों का
मानव्य है। यह बात दूसरे शिलालेखों से
है। ग्रन्थकर्ता ने तो अपने समकालीन राजा
ाम आदित्य लिखा है और शिलालेख में विम-
ित्य नाम है। परन्तु "नामैकदेशे नामग्रहणम्"
याय से आदित्य और विमलादित्य एक हो
चाहिए। आदित्य—यह पूरा नाम नहीं, किन्तु
नाम का एक अंश है। और नाम का एक देश या
एक अंश लिखने और कहने की प्रथा बहुत पुरानी
है। जैसे—भीमसेन का भीम और परशुराम का
राम। भीमसेन—नाम में पूर्व-पद 'भीम'—इस एक
देश का ग्रहण है और परशुराम—नाम में उत्तर-पद
'राम'—इस एक देश का ग्रहण है। इसी तरह
विमलादित्य नाम में उत्तर-पद 'आदित्य' भी एक
देश का ग्रहण है।

चालुक्य विमलादित्य के कड़बवाले शिलालेख
में उसके पितामह बलवर्मा का निर्देश है। शङ्करा-
चार्य ने भी अपने भाष्य में बलवर्मा का उल्लेख
किया है। वह चालुक्य ही होना चाहिए। क्योंकि
बलवर्मा और शङ्कराचार्य दोनों का देश और समय
मिलता है। देश तो दक्षिण प्रकट ही है, और समय
दोनों की वंशावली से स्पष्ट है। जैसे:—

१ शङ्कराचार्य.
२ सुरेश्वर (नं० १ का शिष्य).
३ सर्वज्ञात्मा (नं० २ का शिष्य).

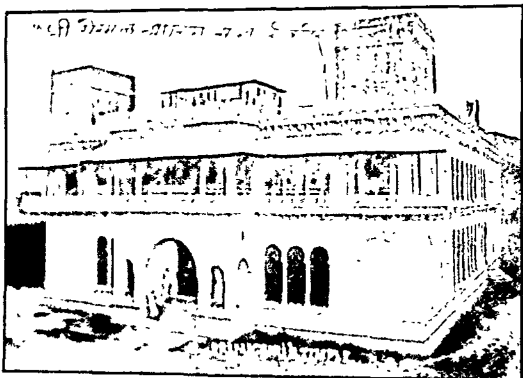
१ बलवर्मा.
२ यशोवर्मा (नं० १ का पुत्र).
३ विमलादित्य (नं० २ का पुत्र)

सर्वज्ञात्मा के गुरु सुरेश्वर ने बृहदारण्यक-उप-
निषद् का भाष्य बनाया था। उसने भाष्य की "इतिश्री"
में अपने को शङ्कराचार्य का शिष्य लिखा है:—

"इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्करभगवत्पूज्य-
पादशिष्यश्रीमत्सुरेश्वराचार्यकृतौ बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य-
वार्तिकग्रन्थाने षष्ठोऽध्यायः"॥

सर्वज्ञात्मा ने संक्षिप्त शारीरिक भाष्य बनाया।
उस समय उक्त विमलादित्य को राज्य करते १० वर्ष
व्यतीत हो चुके हों तो १० वर्ष शेष रहे। क्योंकि
इतिहासवेत्ता सौ वर्षों में तीन पुरुष होना
मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार शक-संवत्
७३५ से विमलादित्य के १० वर्ष गये तो ७२५ रहे,
इसमें यशोवर्मा के २० वर्ष गये तो ७०५ शेष रहे।
इस हिसाब से बलवर्मा का समय शक-संवत् ६-
से ७०५ (ईसवी सन् ७३३ से ७८३) के

* देखो, इंडियन् एंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ ११
† एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ४, पृष्ठ ३४०



महन्तजी का मन्दिर, वृन्दावन।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

होता है। इसी समय के आस पास शङ्कराचार्य का समय होना चाहिए। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि कुमारिल भट्ट का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध हो चुका है और शङ्कराचार्य ने उनके सिद्धान्त का खण्डन किया है। इससे शङ्कराचार्य का कुमारिल भट्ट के अनन्तर प्रकट होना सिद्ध होता है। बलवर्मा का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतएव शङ्कराचार्य का समय भी ईसा की आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शङ्कराचार्य का हुए २२०० वर्ष बताया है। उन्होंने आचार्य्य को ईसवी सन् से भी ३०० वर्ष पहले पहुँचा दिया है। यह ठीक नहीं। वह तो मौर्य्य अशोक का समय था। वह समय बौद्ध धर्म की उन्नति का था, अवनति का नहीं। उस समय शङ्कराचार्य का होना कैसे माना जा सकता है।*

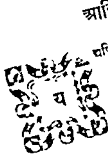
रामकर्ण
(जोधपुर)

श्रीवृन्दावन ।

वृन्दारण्ये चर चरण हक् पश्य वृन्दावनश्री,
जिह्वे वृन्दावन-गुणगणान् कीर्त्तय, श्रोत्र श्टणु ।
[वृ]न्दाटव्या भज परिमलं घ्राण, गात्र त्वमस्मिन्
वृन्दारण्ये लुठ पुलकितं कृष्णकेलि-स्थलेऽस्मिन् ॥

श्रीवृन्दावन शतकम्

आदि-काल ।



यद्यपि ब्रज-धाम की परिक्रमा चौरासी कोस की है, तथापि ब्रजभाषा की व्यापकता हज़ारों कोस में है। यहाँ तक कि शौरसेनी भाषा का प्रसार अपने समय में जितने भूभाग में फैला हुआ था, ब्रजभाषा उससे कहीं अधिक भूभाग में फैली हुई है। इसी व्रज में पुनीत श्रीवृन्दावन-धाम है। इसका ज़िला मथुरा और कमिश्नरी आगरा है।

यद्यपि यह देश माथुर और शूरसेन-जनपद के नाम से प्राचीन समय में ख्यात था, तथापि असंख्य गौओं और उनके पालकों (गोपालों) के कारण इसके कुछ भूभाग का नाम व्रज पड़ गया और इसी व्रज का मुकुटमणि, परम पावन, श्रीवृन्दावन-धाम है।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि वृन्दावन का प्रादुर्भाव श्रीकृष्ण के समय से है। किन्तु इसका नामकरण इसके पहले हुआ था। तथापि यह ठीक है कि इसकी लोकोत्तर महिमा की प्रख्याति श्रीकृष्ण के समय से ही हुई।

वृन्दावन के नामकरण के प्रसङ्ग में ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में जो कथा है उसका अति संक्षिप्त सार हम यहाँ पर लिए देते हैं जिससे लोग वृन्दावन के नाम की प्राचीनता को अच्छी तरह समझ जायँ।

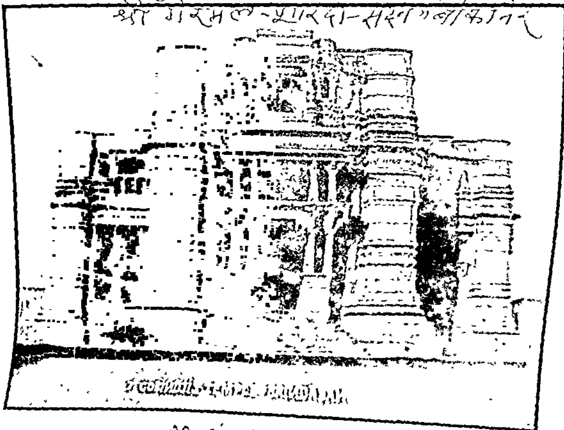
सत्ययुग में केदार नामक एक राजा था, जो जैगी[षव्य] ऋषि के उपदेश से अपने पुत्र को राज्य देकर वन [चला] गया। वहाँ तपस्या करके उसने गोलोक को प्राप्त कि[या]। उसी राजा की "वृन्दा" नाम की एक कन्या थी, जो [लक्ष्मी] के अंश से उत्पन्न हुई थी। अनेक बार पिता और माता के अनुरोध करने पर भी उस कन्या ने अपना [विवाह] न किया। उसने चिर-कौमार-व्रत अवलम्बन करके तटवर्त्ती वन में घोर तप किया। उसकी तपस्या से [प्रसन्न] होकर श्रीकृष्ण ने उससे कहा—"वरं ब्रूहि"। [यह सुन] कर वृन्दा ने पुलकित और प्रसन्न होकर कहा—"आप मेरे पति हो!" तब "तथास्तु" कह कर [श्रीकृष्ण] उसे निज धाम को ले गये और जिस वन में उस रा[जकन्या] ने तप किया था उसका नाम "वृन्दावन" पड़ा।

यही वृन्दावन का प्राचीन इतिहास है। [इससे सिद्ध] है कि अति प्राचीन काल से लोग वृन्दावन को जा[नते हैं]।

मथुरा नगरी के उस पार (यमुना-पार) गो[कुल] का एक ग्राम है। प्राचीन समय में ... आदिक गोप वहीं रहते थे। वहीं उन गोपों की गौयें भी रहती थीं और उन गौओं के ... बृहद्वन (महावन) था, जो गोकुल ही के ... श्रीकृष्ण के प्रकट होने पर वसुदेवजी ... के इस पार (यमुना-पार) गोकुल में ...

---

* शङ्कराचार्य्य दो हुए हैं—एक आदि-शङ्कराचार्य्य, [दूसरे] वे जिन्होंने शारीरिक भाष्य बनाया है। सम्पादक,



गोविन्दजी का मन्दिर, वृन्दावन।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ना दिया। किन्तु जब गोकुल में कंस के भेजे हुए दैत्यों के उत्पात दिन दिन बढ़ने लगे तब घबरा कर नन्दादिक वृद्ध गोपों ने आपस में सलाह करके गोकुल से वृन्दावन आकर अपनी बस्ती क़ायम की। यही बात श्रीमद्भागवत में लिखी है।*

जब नन्दादिक गोप गोकुल छोड़ कर वृन्दावन आये तब श्रीकृष्ण और श्रीबलराम की अवस्था पाँच वर्ष के लगभग थी। उस समय ये दोनों बालक इतने सज्ञान हो गये थे कि इन्होंने वृन्दावन, गोवर्धन और यमुना-पुलिन देख कर अत्यन्त प्रसन्नता लाभ की थी।†

ऊपर कही गई बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वृन्दावन के अति समीप गोवर्द्धन था। यह बात भागवत से सिद्ध है। लिखा है कि श्रीकृष्ण गोवर्द्धन की तलहटी में प्रायः गायें चराया करते थे और जब गोवर्द्धन के पूजन से इन्द्र ने कुपित होकर व्रज को बहा देने के लिए घोर वर्षा प्रारम्भ की तब गोपों को अत्यन्त भयभीत देख श्रीकृष्ण ने व्रज के समस्त जीवधारियों को गोवर्द्धन के समीप ले जाकर और उसे धारण कर गोकुल की रक्षा की। सो, यदि गोवर्द्धन वृन्दावन के समीप न होता तो ऐसे दुर्दिन में वृन्दावन से गोवर्द्धन तक गोप गोपी ग्वालबालों और गौवों का पहुँचना असम्भव हो जाता। इससे यह निश्चित है कि श्रीकृष्ण के समय में वृन्दावन गोवर्द्धन तक विस्तृत था और यमुना भी गोवर्द्धन के पास ही बहती थी। उस समय जहाँ पर यमुना बहती थी उसका नाम जमनो गाँव अब तक प्रसिद्ध है और बहुत बूढ़े लोग, जो अभी वर्त्तमान हैं, वहाँ पर यमुना का होना बतलाते हैं। परन्तु आज कल वृन्दावन का कलेवर बहुत ही सङ्कुचित हो गया है और यमुना की तो यह अवस्था है कि गोवर्द्धन की बात तो दूर रहे, उसने कालीदह से लेकर केशी घाट तक दो तिहाई वृन्दावन को छोड़ दिया है। इस वर्ष तो उसने केशी घाट को भी छोड़ दिया है। यदि यमुना का यही क्रम बराबर जारी रहा तो यह यदि कुछ दिनों में सारे वृन्दावन को छोड़ दे तो कोई आश्चर्य नहीं। अयोध्या के महाराज [illegible] साहब ने तीन लाख रुपये खर्च करके और कोसों बाँध बँधा कर यमुना की धारा को घुमा कर वृन्दावन से दो कोस ऊपर से प्रवाह लाने और [illegible] से सब घाटों पर प्रवाह जारी करने का बड़ा उद्योग किया था; किन्तु उनके परलोक सिधारने से अब वह काम बन्द हो गया है।

अस्तु। यह निश्चित है कि पूर्वकाल में वृन्दावन गोवर्द्धन तक फैला हुआ था, परन्तु अब तो गोवर्द्धन वृन्दावन से [illegible] दूर हो गया है।

[illegible] है कि [illegible] व्रज वृन्दावन [illegible] है। जहाँ श्रीकृष्ण की कोई विशेष लीला हुई है वहाँ उस स्थान का वही नाम पड़ गया है और उनके [illegible] के कारण का नाम वृन्दावन पड़ गया है।

[illegible] पुराण में लिखा है कि वृन्दावन वह है जहाँ गोवर्द्धन [illegible] है*। [illegible] में वृन्दावन के विस्तार का [illegible] किया गया है। वहाँ पर श्रीकृष्ण का वचन है—[illegible]

* गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन्॥
× × × ×
उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः।
आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः॥
× × × ×
वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥
तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम्॥
× × × ×
तन्निशम्यैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः॥
× × × ×
वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम्।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत्॥
(श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध)

† वृन्दावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥
(श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध)

* [illegible]
([illegible])

† [illegible] है।

विस्तृत वृन्दावन हमारा स्वरूप है, जहाँ पर सुषुम्णाख्या अमृतवाहिनी यमुना बहती है"। *

वृन्दावन की प्राचीनता और विस्तृति के विषय में एक और भी प्राचीन ऐतिहासिक कथा है। वह यह कि श्रीकृष्ण के समय में अरुण ऋषि के पुत्र एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी महर्षि आरुणि थे। जब तक नन्दादिक गोप गोकुल (बृहद्वन = महावन) में थे तब तक महर्षि आरुणि भी वहीं पर समीप ही एक निम्ब (नीम) के वन में रह कर तपस्या करते थे। वह स्थान अब भी निम्बग्राम के नाम से प्रख्यात है। जब नन्दादिक गोप गोकुल से वृन्दावन चले आये तब महर्षि आरुणि भी निम्बग्राम को छोड़ कर नन्दादि गोपों के साथ चले आये और गोवर्द्धन के समीप एक निम्ब के वन में, जो वृन्दावन में ही था और जहाँ पर उस समय यमुना प्रवाहित थी, तपस्या करने लगे। महर्षि आरुणि का यह निम्बवन भी आज कल निम्बग्राम के नाम से प्रख्यात है। इस प्रकार व्रज में दो निम्बग्राम हैं और ये दोनों ही महर्षि आरुणि की तपोभूमि होने के कारण अद्यावधि अत्यन्त पूज्य और प्रसिद्ध हैं। महर्षि आरुणि कोई सामान्य ऋषि न थे। वे साक्षात् सुदर्शनावतार थे। उनका उल्लेख देवर्षि नारदजी ने अपने रचे हुए 'भक्तिसूत्र' में किया है। इस सूत्र ग्रन्थ के भाष्यकार महर्षि श्रीदुम्बराचार्य्य ने आरुणि और पूर्वोक्त दोनों निम्बग्रामों के विषय में जो कुछ लिखा है उसी का सार हमने ऊपर लिख दिया है†।

ऊपर कहे गये प्रमाणों से सिद्ध है कि प्राचीन अर्थात् श्रीकृष्ण के समय, में वृन्दावन बहुत विस्तृत था। आज कल भी, गोवर्द्धन और निम्बग्राम के कई ... जाने पर भी, मन्दघाट और चीरघाट नाम के दो घाट ... पर वर्तमान हैं, जो वर्तमान वृन्दावन से कई कोस हैं।

यहाँ पर एक बात और भी समझ लेने की है ... यह है कि जब वृन्दावन के विस्तृत भूभाग में गोपों का गुज़ारा न हुआ तब उनमें से नन्दादिक ने नन्दगाँव ... वृषभानु आदि ने बरसाने में अपनी बस्ती कायम की। ... गौवों की चराई का स्थान वृन्दावन और गोवर्द्धन ही ...

वर्तमान वृन्दावन मथुरा से केवल ६ मील है। ... इक्का या गाड़ी पहुँचने में अधिक से अधिक एक घण्टे ... समय लगता है। परन्तु प्राचीन समय में मथुरा से वृन्दावन आने या वृन्दावन से मथुरा जाने में कितना समय ... था, यह बात भागवत से ज्ञात हो सकती है।

जब कंस के भेजे हुए दैत्यों का संहार श्रीकृष्ण ... गोकुल और वृन्दावन में कर डाला और गोपों का ... से भाग कर वृन्दावन में आकर रहना कंस से ... रहा तब उसने कूटनीति की मन्त्रणा कर अक्रूरजी को कृष्ण बलदेव को ले आने के लिए वृन्दावन भेजा। अक्रूरजी प्रातःकाल कंस के रथ पर सवार होकर वृन्दावन चले। उस समय वे भगवत्प्रेमलक्षणा भक्ति के सागर में हिलोरें ले रहे थे। इससे प्रातःकाल के चले सन्ध्या-समय नन्दजी के स्थान पर वृन्दावन में पहुँचे*। इसी प्रकार कृष्ण बलदेव को लेकर अक्रूरजी वृन्दावन से भी प्रातःकाल ही मथुरा को चले†। बीच में अक्रूरजी ने पुनः यमुना में विधिवत् स्नानादिक किया। अनन्तर वे श्रीराम-कृष्ण ...

---

* पद्मपोजनसेवाप्ति वनं मे देहरूपकम्।
कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी॥
(बृहद्गौतमी-तन्त्र)

† इत्येवं वदन्ति जन-जल्प-निर्भया एकमतः कुमार-व्यास-शुक-शाण्डिल्य-गर्ग-विष्णु-कौण्डिन्य-शेषोद्धवारुणि-बलि-हनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः (श्रीनारदसूत्रम्)।

इस नारदसूत्र के भाषाभाष्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है—"आरुणि—इन्हीं का नामान्तर निम्बार्क है। ये सनकादिकों के मत के प्रवर्तक हैं। इनके जो दश श्लोक मिलते हैं उनमें युगल-स्वरूप की भक्ति का सिद्धान्त है। ये बड़े प्राचीन हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवत की वेदस्तुति में इनका मत कहा गया है। जहाँ राजा परीक्षित से मिलने के हेतु ऋषिगण आये हैं वहाँ भी इनका नाम है। यथा—राजर्षिवर्यो अरुणादयश्च। इत्यादि।

* अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्॥
× × × ×
इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप॥
(श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध)

† श्रीदामानं रत्नकांसामुदिते भविष्यथ।
... × ×

थ सन्ध्या समय मथुरा पहुँचे* । नन्दादिक गोप, तभी रथ के न होने पर भी, सामान्य रथ के द्वारा ही क्रूरजी से पहले ही मथुरा पहुँच गये थे।

मनोनिवेश-पूर्वक श्रीमद्भागवत के अवलोकन से ठुक जनों को यह बात अच्छी तरह विदित हो जायगी : मथुरा से वृन्दावन जाने के समय अक्रूरजी इतने प्रेम-ह्वल हो रहे थे कि उनके रथ के घोड़े स्वाधीन भाव से रे धीरे स्वतः चल कर सायङ्काल वृन्दावन पहुँचे थे। सी प्रकार वृन्दावन से चलने के समय अक्रूरजी गोपियों ा विलाप देख घबरा कर संक्षेप ही में सन्ध्यावन्दन कर ष्ण-बलदेव सहित वृन्दावन से चल दिये और बस्ती से हुत दूर, अर्थात् कई कोस दूर आकर, यमुनातट पर रुके। स समय गोपियों का विलाप देख कर अक्रूरजी ने अपना थ तेज़ी से हाँका था†। वहाँ से वर्त्तमान अक्रूरघाट तक ाने में एक पहर से अधिक समय लगा था। सो कालिन्दी े तट पर वृक्षच्छाया में रथ ठहरा कर और कृष्ण बलदेव ो जलपान करा कर अक्रूरजी ने वहाँ पर पुन. विधिपूर्वक सन्ध्यावन्दन करना प्रारम्भ किया और जल के भीतर भग-वान् के विश्वरूप का दर्शन करके तथा उनकी स्तुति करके बहुत समय बिता दिया। फिर तीसरे पहर आपने कृष्ण-बलदेव के साथ मथुरापुरी में प्रवेश किया। यदि अक्रूरजी बीच में दोपहर को रुक न जाते तो उनके वायुवेगशाली रथ के पहुँचने के पहले ही नन्दादिक गोप कदापि मथुरा न पहुँच सकते। इससे निश्चित है कि श्रीकृष्ण के समय में रथादि के द्वारा मथुरा से वृन्दावन आने या वृन्दावन से मथुरा जाने में दोपहर से अधिक समय न लगता था।

मध्यकाल।

किसी देश की राजधानी के निकट के नगरों तथा ग्रामों की उन्नति या अवनति राजधानी की उन्नति या अव-नति से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। वृन्दावन, व्रज भूमि और मथुरा ज़िला सदा से भारत की राजधानी के निकट ही रहा। यहाँ तक कि नन्दग्राम और बरसाना तो मथुरा और देहली की सरहद ही के स्थान हैं। महाभारत का परिणाम सबसे अधिक व्रज-भूमि पर पड़ा और यहाँ के कितने ही उत्तमोत्तम वंश सदैव के लिए लुप्त हो गये। इसके अनन्तर भी बहुत दिनों तक व्रज-भूमि सैनिकों की क्रीड़ा का स्थान बना रहा। बौद्धों के समय में यहाँ और भी समरानल प्रज्वलित रहा। लगातार सैकड़ों वर्षों तक बौद्धों और वैदिकों के शस्त्र चलते रहे। वैष्णवों से चिढ़ कर कितनी ही बार बौद्धों ने मथुरा और वृन्दावन को उजाड़ दिया, सैकड़ों मन्दिरों को ढहा दिया, और अगणित प्राणियों को धराधाम से उठा दिया। इसी पैशाचिक काण्ड में हज़ारों ग्रन्थों से सुशोभित अनेक पुस्तक-भाण्डार भस्मी-भूत हो गये। यही कारण है कि व्रज-भूमि के एकमात्र धर्म श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के अधिकांश ग्रन्थ सदैव के लिए लुप्त हो गये। वैष्णवों को छिन्न-भिन्न करके सैकड़ों वर्षों तक व्रज-भूमि में बौद्धों का आधिपत्य रहा और बौद्ध-तीर्थों में मथुरा भी एक प्रधान तीर्थ हो उठा*।

चीन के प्रसिद्ध यात्री फाहियान और हुएनसांग भी, जो क्रमशः ४०० और ६२० ईसवी के लगभग मथुरा आये थे, मथुरा को बौद्धों का प्रधान तीर्थ स्वीकार कर गये हैं। फिर, जब उत्तरी भारत हज़ारों वर्षों तक योद्धा के वेश में रहने के कारण धार्मिक तत्वों से उदासीन हो रहा था तब दक्षिणी भारत से वेदान्त के प्रबल प्रवाह ने मथुरा के बौद्धों पर भी धावा बोल दिया। सैकड़ों वर्षों तक फिर वही वैदिकों और बौद्धों के द्वन्द चले और बौद्ध मठ धराधाम पर लुण्ठित तथा वैदिक मन्दिर उन्नत हुए।

ग्यारहवीं शताब्दी से मथुरा विदेशियों के आक्रमण का केन्द्र हो गया। १०१७ ईसवी में महमूद ग़ज़नवी ने बीस दिन तक मथुरा में रह कर आस पड़ोस तक की बस्तियों और गाँवों को ख़ूब ही जलाया और मन्दिरों को मटियामेट करके उनकी सम्पत्ति वह लूट ले गया। १५०० ईसवी में सुलतान सिकन्दर लोदी ने भी मथुरा का सर्वनाश किया। कदाचित्

---

* इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः।
मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये॥
(श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध)

† भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप।
रथेन कालिन्दीमघनाशिनीम्॥
(श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध)

* मथुरा से प्रयोजन—मथुरा, वृन्दावन, गोवर्द्धन, राधाकुण्ड, नन्दग्राम, बरसाना आदि सभी से है।

वह व्रजभूमि में एक भी प्राणी न छोड़ता, पर, श्रीनिम्बार्क
सम्प्रदाय के आचार्य जगद्विजयी केशवकाश्मीरि भट्टाचार्य ने
अपने चमत्कारों से उसे अपने वशीभूत कर लिया और उसे
व्रजभूमि से चले जाने का उपदेश दिया। सिकन्दर व्रज से
चला गया। इसी आनन्द के उपलक्ष्य में लाखों व्रजवासी
वृन्दावन में उपस्थित हुए। उन्होंने श्रीकेशवकाश्मीरिजी को
अपना गुरु और कर्णधार बनाया। यही कारण है जो आज
व्रजमण्डल में श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय का प्रभाव जमा हुआ
है। मथुरा में जिस स्थान पर श्रीकाश्मीरिजी रहते थे वह अब
तक वर्तमान है और ध्रुवटीले के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दुओं
के धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में इस गद्दी के गोस्वामियों
का सर्व-प्रथम स्वागत अब तक मथुरा में होता है। वृन्दावन
में श्रीकेशवकाश्मीरिजी जिस स्थान पर रहते थे वह केशीघाट
के नाम से प्रख्यात है। श्रीकेशवाचार्य की चौथी पीढ़ी में
यह स्थान श्रीस्वभूदेवाचार्यजी के अधीन हुआ, जो श्रीनिम्बार्क-
सम्प्रदाय के सर्व-प्रधान आचार्य थे और जिनके वंश के
गोस्वामी अद्यावधि इस मन्दिर के सर्वाधिकारी हैं। इस वंश
के गोस्वामी श्रीघमंडदासजी का प्रभाव इतना चढ़ा-बढ़ा था कि
स्वयं दिल्ली से मुग़ल सम्राट् तक मन्दिर में दर्शन करने
को आये और छः हज़ार साल की आमदनी का जैंत-ग्राम
भेंट कर दिया। पर गोस्वामीजी ने सम्राट् की भेंट स्वीकार
न की। इस मन्दिर में महाराज माधवराव नारायण पेशवा
दर्शन के निमित्त आते थे। उनका भेंट किया हुआ ग्राम
बमई ,मुर्दे अब तक मन्दिर के राग-भोग के लिए वर्त-
मान है।

व्रजमण्डल में शान्ति स्थापित होते ही चारों ओर से
महात्मा-गण आकर वृन्दावन में पदार्पण करने लगे।
महात्मा श्रीहरिदास स्वामी के मधुर स्वरों से वृन्दावन गूँज
उठा। मनुष्य क्या, पशु-पक्षी तक आनन्द-गद्गद हो उठे।
स्वामी हरिदासजी श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्यों में
से थे और अपने समय के परम श्रेष्ठ सिद्ध महात्मा थे।
उनकी गद्दी के वर्तमान महन्त श्रीभगवानदासजी एक आदर्श
महात्मा हैं। स्वामी श्रीहरिदासजी का दर्शन करने के लिए
प्रसिद्ध सम्राट् अकबर का आना सर्वविदित बात है।
गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी के सुमधुर पदों से वृन्दावन
... के लोग मन्त्रमुग्ध हो गये थे। उनका
स्थापित किया हुआ श्रीराधावल्लभजी का मन्दिर ...
विख्यात है। उनके वंश के श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी ...
जगत् में सुप्रसिद्ध हैं।

वङ्गदेश के महानुभाव श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके ...
यायियों के पदार्पण से वृन्दावन की और भी प्रसिद्धि हुई ...
अगणित भक्तगण आकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे। श्री...
गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गो...
आदि महानुभावों ने प्रेम और भक्ति का समुद्र प्रवाहित
दिया। उनके नगर-कीर्तन आदि से वृन्दावन प्रेम-पूरि...
उठा। उनके सात देवालय प्रसिद्ध हैं। उन्हीं में से श्री...
मोहन, श्रीगोविन्ददेव, श्रीगोपीनाथ आदि के मन्दिर हैं।
श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी के उपास्य श्रीराधारमणजी हैं। इन...
गद्दी के गोस्वामी लोग श्रीराधारमणीय गोस्वामी के नाम ...
विख्यात हैं।

श्रीवल्लभाचार्य्य गोस्वामी भी श्रीवृन्दावन में विराजम...
थे। उनके प्रिय शिष्य महात्मा सूरदासजी के कोकिल कू...
से दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हुआ है।

यह समय वृन्दावन के लिए अमृतमय समय था। ...
ओर महात्मा लोग वेदान्त और भगवद्भक्ति का स्रोत ...
रहे थे। दूसरी ओर भक्तगण वैष्णवधर्म का डङ्का बजा...
थे। तीसरी ओर नये नये मन्दिर और देवालय स्थापित
रहे थे। चौथी ओर दूर दूर से यात्रियों के झुण्ड के ...
आ रहे थे। इसी प्रकार दिन पर दिन वृन्दावन अपने ...
पर बदलता जा रहा था और भारतवर्ष में उसकी ख्या...
प्रकट हो रही थी।

इस समय भारत में शेरशाह का राज-चक्र चल रहा...
और एक प्रकार से प्रजा शान्ति के सुख का आनन्द ले...
थी। शेरशाह का राजदण्ड प्रजा के लिए भयावह...
इसीसे हिन्दू अपने धर्माचरणों को स्वार्थ...

सम्राट् अकबर ने जब आगरे को ...
तब मथुरा पर विपत्ति का बादल घिर...
के मध्य में होने के कारण...
किन्तु जब अकबर ने ...
वह हिन्दुओं का ...
बाँटने लगा। ...
केन्द्र है, राजा...

[...]पूताने के राजाओं पर इसका प्रभाव है; समस्त भारत में [...] समय वैष्णवधर्म का डङ्का बज रहा है; अतएव हिन्दू- [...]ति के आकर्षण का उपाय वृन्दावन में है। इन्हीं बातों [को] सोच कर विचक्षण अकबर ने वृन्दावन में पैदल प्रवेश [कि]या। तानसेन के तानपूरे को कन्धे पर रक्खा और स्वामी [ह]रिदास के सम्मुख उसने मस्तक नत कर दिया। अपनी [...] नीति से अकबर सफल मनोरथ हुआ। मन्त्र-मुग्ध की [तर]ह हिन्दू उसके वशीभूत हो गये। धर्माचार्यों ने अकबर [को] वैष्णव घोषित किया। सुन्दर तिलक और लम्बी माला के [...]न से राजपूतों ने सम्राट् को हिन्दू धर्म रक्षक स्वीकार [कि]या।

अकबर के समय से शाहजहाँ के समय तक ब्रज अपने [धर्]माचरणों में स्वतन्त्र रहा। पर सन् १६३९ ईसवी में शाह- [ज]हाँ ने देवपूजा उठा देने के लिए एक प्रतिनिधि बिठा दिया [औ]र औरङ्गज़ेब ने भारत के अन्यान्य तीर्थ-स्थानों की तरह [वृ]न्दावन का भी नाश कर डाला। गोविन्ददेव, मदनमोहन, [गो]पीनाथ, जुगलकिशोर आदि के प्रसिद्ध और दर्शनीय मन्दिर [तो]ड़ दिये गये। रक्त-धारा से पृथ्वी रञ्जित होने लगी और [वृ]न्दावन के देव-विग्रह आस पास के क्षत्रिय राज्यों में चुपचाप [प]हुँचाये गये।

औरङ्गज़ेब के समय से अँगरेज़ी अमलदारी तक मथुरा [...]ज कभी देहली और आगरे के मुग़ल-वंश की टक्करें [झे]लता, कभी मरहटे और मुग़लों के संघर्षण सहता, कभी [भ]रतपुर और देहली की चपेटों को खाता, कभी जयपुर और [भ]रतपुर के द्वन्द्व में फँसता और कभी अँगरेज़ों और उनके [वि]रोधियों का लक्ष्य बनता रहा। यहाँ तक कि चलते चलाते [स]न् १८५७ ईसवी के विद्रोही भी वृन्दावन पर दो दो हाथ [...]दिखा गये।

वर्त्तमान काल

अब इस देश में पूर्णरूप से शान्ति विराज गई, रेल के [द्]वारा एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से जुड़ने लगा, तब श्रीवृन्दावन [...]में बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, मदरास, गुजरात, राजपूताना, [प]ञ्जाब तथा अन्यान्य प्रान्तों से यात्रियों के दल के दल [आ]ने लगे और हज़ारों की संख्या में मन्दिर स्थापित हो गये। [इ]स समय यहाँ भारत के सैकड़ों स्वाधीन नरेशों के बड़े बड़े [म]न्दिर, उनकी धर्माभिरुचि के चिह्न-स्वरूप, खड़े हैं।

ऐतिहासिक स्थानों में गोविन्ददेव, मदनमोहन, गोपी-नाथ, जुगलकिशोर, राधावल्लभ आदि के पुराने भग्न मन्दिर हैं। उन्हीं के पास इन्हीं नामों से नये मन्दिर स्थापित हो गये हैं।

बड़े और प्रसिद्ध मन्दिरों में श्रीरङ्गनाथ (सेठजी) का मन्दिर, शाहजी का मन्दिर, लाला बाबू का मन्दिर, श्रीब्रह्म-चारीजी (महाराज-ग्वालियर) आदि का मन्दिर हैं। श्रीबांके-बिहारीजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर पुराने शहर में है।

घाटों में भरतपुर की लक्ष्मी रानी का घाट दर्शनीय है। पर अब इस समय किसी घाट पर यमुना नहीं है।

वंशीवट, सेवाकुञ्ज, शृङ्गारवट, केशरवट और निधुवन भी सुप्रसिद्ध और प्राचीन स्थान हैं।

पहले यहां धर्मशालाओं का अभाव था। पर अब कई धर्मशालायें बन गई हैं और बनती जा रही हैं।

जयपुर के वर्त्तमान महाराज का बनवाया हुआ एक मन्दिर वर्षों से अधूरा पड़ा हुआ महाराज के कृपाकटाक्ष का आसरा देख रहा था। बड़ी खुशी की बात है, उसमें अभी हाल ही में मूर्ति-स्थापना हुई है।

यहां एक डाक बँगला, एक सरकारी डिस्पेन्सरी, रजिस्टरी का दफ़्तर, पुलिस का थाना, वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और डाकख़ाना—ये सरकारी इमारतें हैं।

श्रीरामकृष्ण सेवा-श्रम नाम का एक दातव्य चिकित्सालय भी है। इससे सर्वसाधारण का बहुत उपकार होता है। सच तो यह है कि वृन्दावन में नाम लेने योग्य एक यही चिकित्सालय है। इसके वर्त्तमान अध्यक्ष ग़रीबों और अनाथों के मां-बाप हैं।

इधर सात आठ वर्षों से वृन्दावन में हिन्दी का विस्तार बढ़ रहा है। पांच छैः भी खुल गये हैं। कितने सात पत्र-पत्रिकायें हिन्दी में निकलने लगी हैं।

शिक्षादान के लिए यहां कितनी ही पाठशालायें हैं। पर सुप्रबन्ध के अभाव से इनसे यथार्थ लाभ कम होता है। यहां के लोगों को शिक्षा का महत्त्व भी नहीं मालूम। सबसे बढ़ कर दरिद्रता भी बड़ी बाधक है। वह बालकों को पढ़ने का अवकाश ही नहीं देती। [illegible] का जिन्हें [illegible] है वे किस [illegible] के लिए पढ़ें? पहले यहां एक अंगरेज़ी का मिडिल स्कूल भी था। पर इधर कई वर्षों से वह तोड़ दिया गया है। अब

संस्थाओं में श्रीप्रेम महाविद्यालय है, जिसका विस्तृत वर्णन सरस्वती की किसी पिछली संख्या में निकल चुका है।

वृन्दावन में श्रावण में झूलनों का उत्सव दर्शनीय होता है। उस अवसर पर वृन्दावन की शोभा बहुत बढ़ जाती है। चैत्र में रथ का बड़ा मेला होता है।

इधर संयुक्तप्रान्त के आर्य्यसमाजों ने भी वृन्दावन को अपना केन्द्र बना लेने की इच्छा प्रकट की है। इसी से उनका गुरुकुल भी यहाँ स्थापित हुआ है। इस पर वृन्दावन-वासियों ने भी व्रजमण्डल-ऋषिकुल और आचार्य्य-कुल नाम से दो संस्थायें स्थापित की हैं। देखें कब वह सुअवसर प्राप्त होगा जब इन तीनों कुलों में से निकले हुए वैदिक-सिंहों के पारस्परिक विचार से इस देश के धर्म का उत्थान होगा।

अब ज़रा यहाँ के स्वास्थ्य का भी वृत्तान्त सुन लीजिए। यह वृत्तान्त वृन्दावन के म्युनिसिपल बोर्ड की रिपोर्टों के ही सहारे लिखा जाता है।

सन् १८९१ की मनुष्य-गणना के समय वृन्दावन में ३१,६११ मनुष्य थे, पर सन् १९०१ की गणना के समय २२,७१७ ही मनुष्य गिने गये। और, सन् १९११ की मनुष्य-गणना में यहाँ केवल १८,७४३ ही मनुष्य रह गये! सन् १९११ में जो कमी दिखाई दी उस पर मुनिसिपैलिटी ने कहा है—"सन् १९०१ में मनुष्य-गणना के समय फुल-डोल एकादशी थी। इससे बहुतेरे यात्री भी यहाँ आये हुए थे।" अच्छा, मान लीजिए, म्युनिसिपैलिटी ठीक कहती है, पर ज़रा १९१२, १९१३ और १९१४ में समाप्त होने वाले वर्षों की रिपोर्टों को भी देख लीजिए। सन् १९१२ में समाप्त होने वाले वर्ष में ४७१ बच्चों ने जन्म लिया और ८२९ मनुष्य मौत के मुख में गये। इस प्रकार ३५८ मनुष्यों का घाटा रहा। सन् १९१३ में समाप्त होने वाले वर्ष में ४१२ बच्चे उत्पन्न हुए और ७७२ मनुष्य मरे। इस प्रकार ३६० मनुष्यों का घाटा रहा। और, सन् १९१४ में समाप्त होने वाले वर्ष में ५७७ बच्चे पैदा हुए और ८१९ मनुष्य मरे। इस प्रकार २४२ मनुष्यों का घाटा रहा। इस विवरण से यह प्रकट हो गया कि आगामी गणना के समय, सन् १९२१ में, वृन्दावन में कोई पन्द्रह हज़ार ही मनुष्य रह जायँगे। यदि यही अवस्था रही तो चालीस-पचास वर्षों में वृन्दावन में कुछ ही लोग रह जायँगे।

धन वालों, महाराजों और श्रीमन्तों से निवेदन है जिन्होंने वृन्दावन में देवालयों की स्थापना की है। यदि वृन्दावन को जीवित रखना है तो कुछ धन का परिचय दीजिए और बीस पाँच लाख रुपये वृन्दावन के स्वास्थ्य को सुधार के लिए आशीर्वादपूर्वक दीजिए। इतने रुपये से घाटों पर यमुना का प्रवाहित होना, जल-कल का प्रबन्ध, नालियों का प्रबन्ध और प्रकाश के कार्य आदि प्रायः सभी कुछ हो जायगा। सिर्फ़ नालियों के लिए दो लाख से ऊपर रुपया चाहिए। इसमें से पचास हज़ार रुपया गवर्नमेंट दे चुकी है। यदि उपर्युक्त कार्यों के लिए सर्वसाधारण धन संग्रह कर सकें तो गवर्नमेंट भी सहायता देने से न हटेगी। आशा है, लक्ष्मी के लाड़ले दरिद्र भाइयों के लिए मुट्ठी खोलेंगे।

यहाँ पुलिस और सर्वसाधारण का प्रायः सद्भाव रहता है। रेल, डाक, तार, चुङ्गी आदि के कर्मचारी भी सब से अच्छा ही व्यवहार करते हैं।

अब भी वृन्दावन अपने समय का अद्वितीय हिन्दू-तीर्थ है और एक बार दर्शन करने योग्य है। भारतवर्ष के अन्यान्य तीर्थ-स्थानों को देखते हुए वृन्दावन को देख कर सन्तोष होता है। एक महात्मा का कहना है—

"वृन्दावन सों बन नहीं, नन्दगाम सों गाम।
वंशीवट सों बट नहीं, कृष्णनाम सों नाम।"

और तुलसीदासजी तो यहाँ तक कहते हैं कि—

"वृन्दावन-बैकुण्ठ को तौल्यो तुलसीदास।
गरुओ रह्यो सो रहि गयो, हलको गयो अकास।"

हमारी भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना है कि एक बार पुनः श्रीवृन्दावन अपने अतीत गौरव को प्राप्त करे और अस्मदादि किङ्करों को अपने चरण का सेवक बनावे। और यदि किञ्चित् कृपाकटाक्ष हो तो दास की भी मनोकामना महानुभाव महात्मा रसखानिजी की भाँति पूर्ण हो—

जो खग हौं तो बसेरो करौं
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥"
किशोरीलाल गोस्वामी

प्रश्नोत्तरी ।

आदि सभ्य है कौन मही पर ? जिसका जोड़ा नहीं कहीं पर ।
कौन देश है सब से प्यारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥१॥
अपना अद्भुत बल दिखला कर, सब को सकल कला सिखला कर ।
कौन बना त्रिभुवन का तारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥२॥
पशुवत् जब मानव रहते थे, नाना क्लेश सदा सहते थे ।
कौन हुआ तब विश्व-सहारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥३॥
नर वर सी क्रीड़ा करने को, सज्जन की पीड़ा हरने को ।
कौन ईश का बना दुलारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥४॥
कौन सुरों का भी रक्षक था ? कौन असभ्यों का शिक्षक था ।
कौन न छूता था पर-दारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥५॥
विद्या, विनय, दया में, नय में, कृतज्ञता में, पुण्य, प्रणय में ।
कौन किसी से कभी न हारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥६॥
रोग-शोक घर के झगड़ों से, नये नये धार्मिक रगड़ों से ।
कौन न पाता है छुटकारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥७॥
तीस कोटि का नायक होकर, निज सर्वस्व आप ही खोकर ।
कौन बहाता दृग-जल-धारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥८॥
निज भाषा से कौन विमुख है ? कौन अनेकों सहता दुख है !
कौन बना है अब बेचारा ? हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥९॥
था जो सुर-पुर से भी बढ़ कर—वही विपत्ति-गर्त्त में पड़ कर—
फिरता है अब मारा मारा, हिन्द हमारा, हिन्द हमारा ॥१०॥
रामचरित उपाध्याय ।

उद्योग-धन्धे की शिक्षा ।

शिक्षा से तात्पर्य मनुष्य को सच्चा नागरिक और चरित्रवान् बनाने से है। प्रत्येक माता पिता का कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपनी सन्तान को सुशिक्षित बनावे। इस स्थान पर हमें इस बात का विचार नहीं करना है कि कौन सी शिक्षा कैसे देनी चाहिए। यहाँ पर हम केवल उद्योग-धन्धे की शिक्षा के विषय में दो चार मोटी मोटी बातें लिखना चाहते हैं।

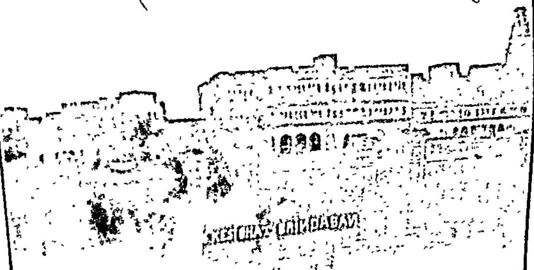
अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि शिक्षा का उद्देश केवल शिक्षा ही होना चाहिए। उनका कथन है कि शिक्षा देते समय इस बात का ध्यान कभी न करना चाहिए कि उससे अमुक फल हमको प्राप्त होगा, अथवा अमुक फल की आशा से हम शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। यह बात समृद्धिशाली देशों के लिए चाहे भले ही ठीक हो, परन्तु जो देश सम्पत्ति, विद्या या वैभव में न्यून हैं और जिन्हें अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिए उन्नत देशों का मुकाबला करना ज़रूरी है उनके लिए यह सिद्धान्त किसी तरह ठीक नहीं। ठीक ऐसी ही दशा इस समय हमारे देश की है। हमारे देश के धनी तो पढ़ना-लिखना एक प्रकार का व्यर्थ झंझट समझते हैं। दीन-दुखिया लोग अपना पेट ही नहीं पाल सकते, पढ़ें क्या ख़ाक। रह गये बेचारे मध्यम श्रेणी के लोग सो वे अ, आ, प्रारम्भ करते ही इस सोच में पड़ जाते हैं कि पढ़ कर तहसीलदार, डेपुटी कलेक्टर, वकील आदि बनेंगे। जिस देश की यह दशा है उस देश के निवासियों से यह कहना कि पढ़ो केवल पढ़ने के लिए, मानों उनको इस बात का विश्वास दिलाना है कि गधे के भी सींग होते हैं।

इन में से वे लोग जो अपने को सुशिक्षित समझते हैं नौकरी—और वह भी सरकारी नौकरी—को अपनी बपौती बना बैठे हैं। हमारे देश में अनन्त जातियाँ हैं। उनमें इस नौकर जाति को और सम्मिलित कर लेना चाहिए। प्राचीन काल में प्रतिष्ठा के साधन भले ही विद्या और राजसेवा आदि रहे हों, परन्तु इस समय तो प्रतिष्ठा का एक मात्र साधन धन है। शायद सौ में एक ही नौकरी-पेशा आदमी ऐसा मिलेगा जिसने अपने बाहुबल से धन-सञ्चय किया हो। हमारा विश्वास तो यह है कि नौकरों की दशा इतनी शोचनीय होती है कि बाहे-

पीने की चीज़ों का निर्ख़ ज़रा चढ़ते ही गवर्नमेंट तक को उन्हें साहाय्यदान (Famine Allowance) देना पड़ता है। फिर हर चीज़ की क़दर उसकी तैयारी और माँग से जानी जाती है। जिस चीज़ की माँग ज़ियादह हो, समझ लेना चाहिए कि उसकी क़दर है और जो चीज़ ज़्यादह तैयार मिलती हो, समझ लेना चाहिए कि उसकी बेकदरी है। आप किसी समाचार-पत्र में छपवा दीजिए कि हमको ३० या ४० रुपये मासिक पर एक बी॰ ए॰ अध्यापक की आवश्यकता है। बस, हज़ारों नहीं तो सैकड़ों आवेदनपत्र आपके पास आ जायँगे। जब ऐसी दशा है तब यह कहना कि विद्याध्ययन का एक मात्र उद्देश विद्याध्ययन होना चाहिए विडम्बना मात्र है।

अच्छा तो इस स्थिति का कारण क्या है? शिक्षा मूलतः दो प्रकार की होती है। एक साधारण शिक्षा—जिसमें लिखना, पढ़ना, हिसाब आदि सम्मिलित है। दूसरी व्यावहारिक या उद्योग धन्धे की शिक्षा—जिससे मनुष्य कोई काम धन्धा सीखता है और इस योग्य हो जाता है कि उसके द्वारा वह सहज में अपना पेट पाल सके—उसे अपने जीविका-निर्वाह के लिए दूसरों का मुँह न ताकना पड़े। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की शिक्षा से देश की सम्पत्ति भी बढ़ती है और यही हमारे सारे कार्यों का उद्देश भी होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा-प्राप्ति का सुभीता इस देश में नहीं, और न इसकी ओर किसी का विशेष ध्यान ही है। हाँ, गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर कुछ कुछ ज़रूर आकृष्ट हुआ है। इसी से उसने रुड़की में एक टेकनिकल (उद्योग-धन्धा विषयक) स्कूल खोला है। पर उसके इस प्रयत्न को देख कर शायद लोग उसके लिए यह दोष मढ़ने को तैयार हो जायँगे कि अब पढ़े-लिखे लोग बहुत हो गये हैं। सरकार के पास उतनी नौकरियाँ नहीं। इसलिए यह पढ़े लिखे लोगों का ध्यान दूसरी ओर खींचने के लिए यह चाल चल रही है। परन्तु यह बात सर्वथा निर्मूल है।

अब देखना यह है कि हम लोगों ने स्वयं इस विषय में कुछ किया है या नहीं। हमारे देश में बहुत से ऐसे विद्यालय हैं जो सरकार से कुछ भी स[हा]यता नहीं लेते। परन्तु शोक के साथ कहना प[ड़ता] है कि उनमें भी इस बात का कुछ भी प्रबन्ध [नहीं]। वे भी अपनी शिक्षाप्रणाली वही रक्खे हुए [हैं जो] सरकारी विद्यालयों की है। गुरुकुलों की [illegible] कुछ विद्यालय ऐसे भी खुले जिन्होंने शिक्षा-प्रणाली तो बदल दी, पर उद्योग-विषयक शिक्षा [की] ओर ध्यान न दिया। पढ़ कर जो लोग नि[कले] वे या तो लड़के पढ़ाने में लग गये, या लेक्च[र] झाड़ने में, या अख़बार-नवीसी करने में। हमारी समझ में नहीं आता कि ये सब लोग—क्योंकि हमा[रा] उद्देश सबको शिक्षित बनाने का है—व्याख्यान झाड़ करके या लड़कों को पढ़ा कर देश का कौन स[ा] बहुत बड़ा उपकार करेंगे। एक बार महात्मा सा[क्रे]टीज़ ने एक यूनानी युवक से कहा—"यदि तु[म] चाहते हो कि देश तुम्हारा आदर करे तो तुम्हें उचित है कि तुम देश का उपकार करो। देश के धनवैभव-सम्पन्न किये बिना देश का उपकार न[हीं] हो सकता"। आज हम भी अपने शिक्षित समा[ज] से निवेदन करते हैं कि तुम्हारे एम॰ ए॰, बी॰ ए॰ या एल-एल बी॰ हो जाने से देश का क्या उपका[र] होता है—देश की कितनी सम्पत्ति बढ़ती है? य[दि] सच पूछो तो तुम्हारे इन पदवियों को धारण कर[ते] ही देश एक प्रकार की आपत्ति में पड़ जाता है। यदि तुम वकील बने तो तुम्हारा भला तभी हो[गा] जब देशवासी आपस में लड़ें-झगड़ेंगे। यदि तुम[ने] नौकरी की—और नौकरी के अतिरिक्त तुम कर [ही] क्या सकते हो—तो तुम्हारे ठाटबाट का साम[ान] बेचारे दरिद्र देश को ही जुटाना पड़ेगा। तुमसे [illegible] हज़ारों दरजे अच्छा वह जुलाहा है जो सूत ले क[र] [illegible] बुनता है। उसकी कीमत से वह अप[ने] और अपने परिवार का उदर पोषण करता है और [illegible] में तुम्हारे नङ्गे बदन को ढकता भी है। हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि [illegible] [illegible], वकील, या [illegible] का परिश्रम किसी [illegible] उत्पन्न ही नहीं करता। हमारा मतलब सिर्फ़ यह [illegible]



केशीघाट—वृन्दावन ।

कि इस समय हमारे देश को ऐसे परिश्रम की आवश्यकता है जिससे प्रत्यक्ष रीति पर देश की सम्पत्ति बढ़े।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि उद्योग-धन्धे की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए बड़े ख़र्च की आवश्यकता है। हमारा देश महा दरिद्र है। यह इतना रुपया कहाँ से लावेगा। इस में सन्देह नहीं कि यदि हम लोग इंगलैंड, अमेरिका, जर्मनी या फ़्रांस आदि समृद्धिशाली देशों की नक़ल करके उनके जैसे उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी बड़े बड़े स्कूल और कालेज क़ायम करें तो बहुत ख़र्च की आवश्यकता है। परन्तु हम लोगों को ज़रा अपनी स्थिति पर विचार करके काम करना चाहिए। कहाँ उक्त देश और कहाँ हमारा दीन देश! कहाँ इन्द्र का ऐरावत और कहाँ कलुआ कुम्हार का गधा! हमको उचित है कि हम अपनी आर्थिक दशा पर विचार करके एक साधारण सा स्कूल इस विषय का खोल दें। कौन जानता है कि हमारा वही छोटा सा स्कूल एक दिन योरप के बड़े बड़े कालेजों की टक्कर का न हो जायगा। सुनते हैं, नर्मदा नदी के किनारे बरगद का एक वृक्ष है। वह इतना बड़ा है कि उसकी छाया में लगभग दस हज़ार मनुष्य सुख से बैठ सकते हैं। परन्तु सोचिए तो सही कि यह इतना बड़ा वृक्ष कितने छोटे बीज से उत्पन्न हुआ है। क्या कोई उस छोटे बीज को देख कर यह अनुमान कर सका होगा कि एक दिन यह इतना विस्तृत वृक्ष हो जायगा? क्या पूना के साधारण स्कूल को स्थापित करते समय उसके सञ्चालकों ने कभी यह अनुमान किया होगा कि हमारा स्थापित किया हुआ यह साधारण स्कूल एक दिन फर्गुसन कालेज जैसा विशालकाय और प्रसिद्ध विद्यालय हो जायगा?

बनारस का हिन्दू विश्व-विद्यालय अभी तक खुला नहीं। हमारे गण्यमान्य और सुशिक्षित भाई उसके सञ्चालक हैं। सारे देश ने उसकी संस्थापना के लिए अपना कठिनता से उपार्जित धन उनके हाथों में सौंप दिया है। वे उसकी ओर एकटक नेत्र लगाये देख रहे हैं। उनको विश्वास सा हो गया है कि यह विश्व-विद्यालय अवश्य हमारा उपकार करेगा—इसके द्वारा अवश्य हमारा कल्याण होगा। हमारी सम्मति में यह संस्था सारे देश के लिए लाभदायक और प्रिय भी तभी हो सकती है जब यह कोई कार्य ऐसा कर दिखावे जैसा अभी तक देश में नहीं हुआ। इसका यह कार्य हमारे लिए विशेष उपकारी होना चाहिए। इस संस्था के पास धन की कमी नहीं। यदि यह भी वर्तमान ही ढर्रे पर चली कि परीक्षा ली और उत्तीर्ण छात्रों को पदवियाँ वितरण कर दीं तो लक्ष्मी और सरस्वती के वैर-रूप अग्नि में घी की आहुति पड़ेगी और हमारी बड़ी बड़ी आशायें हिमालय पहाड़ से टकरा कर या तो वहीं चूर्ण सी हो जायँगी, या हमारे पास लौट आ कर हमारे ही मन में विलीन हो जायँगी।

कृष्णानन्द जोशी, बी० ए०।

जैन-शाकटायन-व्याकरण कब बना ?



पलभ्यमान शाकटायन-व्याकरण के कर्ता शाकटायन मुनि के काल और कर्तृत्व विषय में इतिहासज्ञ विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस व्याकरण के कर्ता वही शाकटसूनु शाकटायन मुनि हैं जिनका स्मरण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के—"लङः शाकटायनस्य। ३। ४। १११। व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य। ८। ३। १८। त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य। ८। ४। ५०।"—इन सूत्रों में किया है। अतः ये शाकटायन मुनि पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि ये शाकटायनाचार्य्य वे नहीं जिनका मत पाणिनि-व्याकरण में उल्लिखित हुआ है। पाणिनि के उल्लिखित शाकटायनाचार्य्य वैदिक मतावलम्बी थे और ये जैनधर्माव-

लक्ष्मी। इनकी स्थिति राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय में थी।

इस पिछले मतवाले विद्वानों के कथन की पुष्टि में हमें एक और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हुआ है जो इतिहास प्रेमी जनों के लिए यहाँ उद्धृत किया जाता है।

श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदाय में, विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के अन्त में, मलयगिरि-सूरि नाम के एक प्रखर विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने अनेक आगम और प्राकरणिक ग्रन्थों पर विस्तृत और तत्त्व-पूर्ण गहन व्याख्यायें लिखी हैं। धर्म, न्याय, व्याकरण, साहित्य और ज्योतिष आदि अनेक विषयों पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। उनके लेखों के अवलोकन से मालूम होता है कि उन्होंने व्याकरण-शास्त्र-सम्बन्धी उपलब्ध शाकटायन-व्याकरण ही पढ़ा था। क्योंकि उन्होंने अपने लेखों में अनेक जगह इस व्याकरण का उल्लेख किया है। यही नहीं, किन्तु शाकटायन की प्रणाली के अनुसार उनका बनाया हुआ "मलयगिरिशब्दानुशासन" नामक एक नया व्याकरण भी विद्यमान है। उन्होंने "नन्दीसूत्र" नामक जैनागम की टीका में एक जगह शाकटायन मुनि का स्मरण किया है और लिखा है—

"शाकटायनोऽपि यापनीययतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासनवृत्त्यावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह"। (नन्दीसूत्र, पृष्ठ २३, कलकत्ता)।

इस वाक्य में शाकटायन मुनि के लिए जो "यापनीययतिग्रामाग्रणी"—विशेषण दिया गया है वह विचारणीय है। इस विशेषण से प्रस्तुत शाकटायन के कर्ता कब हुए, इस बात का निश्चय हो सकता है। इस—यापनीययतिग्रामाग्रणी—विशेषण का अर्थ होता है—"यापनीय संघ के मुनियों के नेता—आचार्य"। अर्थात् शाकटायन मुनि यापनीय नामक संघ के अग्रसर आचार्य थे। अब यह देखना चाहिए कि यह यापनीय संघ कौन था और कब हुआ? दिगम्बर-जैन-सम्प्रदाय में, पूर्वकाल में, मूलसंघ, काष्ठासंघ, नन्दीसंघ, सेनसंघ, द्राविडगच्छ और के किपिच्छ आदि अनेक संघ-सम्प्रदाय प्रचलित थे। उन्हीं में यापनीयसंघ भी एक सम्प्रदाय था। उसकी उत्पत्ति विक्रम की छठी शताब्दी के बाद हुई थी। देवसेनाचार्य्य नामक दिगम्बर जैन विद्वान् ने, विक्रम-संवत् ९९० के लगभग, "दर्शनसार" नाम की एक पुस्तक लिखी। उसमें लिखा है कि "राजा विक्रम की मृत्यु के ५२६ वर्ष बाद मथुरा में, द्राविडसंघ की उत्पत्ति हुई"*। इन्द्रनन्दी आचार्य्य, अपने बनाये हुए 'नीतिसार' नामक ग्रन्थ में, लिखते हैं कि द्राविडसंघ के पीछे यापनीयसंघ उत्पन्न हुआ है" †। इन दोनों ग्रन्थों के उल्लेखों से निश्चित है कि विक्रम की छठी शताब्दी के बाद किसी समय यापनीयसंघ में शाकटायन नामक आचार्य्य हुए, जिन्होंने प्रस्तुत व्याकरण की रचना की। इससे जो विद्वान् शाकटायनाचार्य्य का समय प्रथम-अमोघ वर्ष के राज्यकाल में, निश्चित करते हैं वे ठीक कहते हैं। उनका मत विश्वसनीय प्रतीत होता है।

दूसरी बात यह भी है कि यदि ये शाकटायनाचार्य्य पाणिनि से भी पूर्ववर्ती होते तो इनको सभी जैन—श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायवाले—अपना पूज्य समझते। क्योंकि उस समय जैन-समाज में श्वेताम्बर दिगम्बर का मत-भेद उत्पन्न न हुआ था। यह भेद विक्रम की दूसरी शताब्दी में—श्वेताम्बरों के कथनानुसार विक्रम-संवत् १३९, और दिगम्बरों के मन्तव्यानुसार संवत् १३६ में—उत्पन्न हुआ। अतः यदि ये शाकटायनाचार्य्य इस मत-भेद-काल से पूर्व हुए होते तो, उक्त दोनों समाजों में इनका एक सा आदर होता, जैसा कि "तत्त्वार्थसूत्र" के कर्ता भगवान् उमास्वाति का है। शाकटायन-व्याकरण का प्रचार और सत्कार दिगम्बर-सम्प्रदाय में ही विशेष कर है, श्वेताम्बर में नहीं।

* पञ्चसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
दक्खिणमहुरा जादो दाविडसंघो महामोहो॥

† द्राविडसंघे कस्मिंश्चित् काले श्वेताम्बरोऽभवत् (?)
…निर्ग्रन्थो, यापनीयस्य, केकिपिच्छश्च सम्मता

के ऊपर जितने टीका टिप्पण हुए हैं वे सब म्बर-विद्वानों ही के किये हुए हैं—"तत्त्वार्थ ।" के सदृश दोनों सम्प्रदायवालों के किये हुए हैं। अतः इससे भी निश्चित है कि ये शाकटा- ाचार्य जैन-समाज में मत-भेद होने के बाद,— क्रम की दूसरी शताब्दी के अनन्तर—किसी मय दिगम्बर-सम्प्रदाय में हुए हैं। इस कथन की ष्टि में मलयगिरि सूरि का पूर्व-लिखित "यापनीय- तिग्रामाग्रणी" विशेषण विशेष-रूप से प्रमाण- त है।

मुनि जिनविजय
(बीरमगाम)

समाज-शास्त्र।



ही घर से बाहर निकलने लगे त्योंही किसी ने छींका, कुछ देर ठहर जाना पड़ा। घर से निकलते ही एक काना आदमी मिला; अशकुन की आशङ्का से हृदय काँप उठा। ज़रा ही आगे ढ़े थे कि बिल्ली रास्ता काट गई। बस, सीधा मार्ग छोड़ कर टेढ़े मार्ग से जाना पड़ा। लोगों की धारणा है कि छींक, काने आँख या बिल्ली की चाल का हमारी सफलता से कार्य-कारण-सम्बन्ध है। पर यदि कोई समझदार आदमी इस बात पर थोड़ा भी विचार करेगा तो उसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि यह सम्बन्ध कोरी कल्पना है। तथापि इस प्रकार के व्यापक और दृढ़ विश्वास से यह अच्छी तरह प्रकट होता है कि छोटी छोटी, मामूली, सीधी-सादी बातों के विषय में भी लोग कितना कम विचार करते हैं और कार्य-कारण-सम्बन्ध का कितना कम पता लगाते हैं। और उदाहरण लीजिए। यदि लड़के को [illegible] है तो किसी "जन्तर मन्तर" वाले आदमी से पूछ कर इला- । यदि किसी को तीसरा [illegible] तो देवीजी पर कुछ भेंट चढ़ा दो। दवा-पानी की ज़रूरत नहीं। इस प्रकार के मिथ्या विश्वासों से भी यही परिणाम निकलता है कि जन-साधारण का कार्य-कारण-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही सङ्कुचित और असङ्गत है। जब इन छोटी छोटी बातों के विषय में—जो ज़रा भी पेचीदा नहीं और जिनकी परीक्षा जब चाहें तब हो सकती है—यह हाल है तब पेचीदा, दुर्ज्ञेय, दुष्परीक्ष्य, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक मामलों का कहना ही क्या है? "यदि सरकार अमुक बात कर दे तो हमारे सारे कष्ट दूर हो जायँ"। "यदि वर्णाश्रम फिर पहले की तरह स्थापित हो जाय तो देश का पूर्ण रूप से उद्धार हो जाय"। "यदि ब्राह्मण अपना कर्तव्य समझने लगें तो भारत उन्नति के शिखर पर पहुँच जाय"—इस तरह की बातें अशिक्षितों और अर्ध-शिक्षितों के मुख से बहुधा सुनने में आती हैं। वे कभी पक्षपातरहित मन से विचार नहीं करते कि इन उपायों से लाभ के बदले हानि तो न होगी? क्या यह या ऐसे ही उपाय पहले कभी हमारे या दूसरे देशों में प्रयुक्त नहीं हुए? यदि नहीं तो उनके प्रयोग के बिना उन देशों का कुछ बिगड़ा या नहीं? यदि प्रयुक्त थे तो उनका क्या परिणाम हुआ? हमारी विशेष सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों में यही उपाय सम्भव हैं या इनसे भी कोई अच्छे? ऐसे सैकड़ों प्रश्न एक तो ध्यान ही में नहीं आते और यदि किसी तरह आते भी हैं तो टाल दिये जाते हैं।

बड़ा आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि शिक्षित लोग—अपने अपने विषय के प्रामाणिक आचार्य—भी उसी विचारशून्य तर्क प्रणाली का अवलम्बन करते हैं जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। क्या देश में निर्धनता हो रही है और घी दूध मँहगा हो रहा है? अच्छा, स्थान स्थान में पाठशालाएँ खोल दो। बस सब ठीक हो जायगा। यह कोई नहीं सोचता कि स्कूल कॉलेजों में कितना निरर्थक व्यय होता है। विद्यार्थियों की दुर्दशा

के कारण, अकालों के कारण, पशुरोगों के कारण गोवंश की कितनी क्षति हो रही है। इस पर कोई नहीं विचार करता कि भारत ऐसे विशाल देश में, गोशाला-प्रणाली से, गो-हत्या में भला कितनी कमी हो सकेगी? क्या मुसलमानों से दङ्गा फ़िसाद करने से गो-रक्षा के आन्दोलन को लाभ पहुँच सकता है? क्या गोशालाओं का प्रबन्ध चरित्रहीन मनुष्यों के हाथ में सौंप देने से चोरी, छल-कपट, कुप्रबन्ध और सार्वजनिक अविश्वास की आशङ्का नहीं? सारांश यह कि न तो लोग कारणों का अनुसन्धान करते हैं, न उपायों के प्रयोग में विचारशीलता से काम लेते हैं। यदि कोई साधारण आदमी किसी शास्त्र पारङ्गत डाकृर का विरोध करके बुख़ार या हैज़े की चिकित्सा पर अपना मत प्रकट करे तो डाकृर को आश्चर्य और क्रोध होगा। वह कहेगा कि जिस आदमी ने ज़रा भी चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन नहीं किया—डाकृरी बातों का ज़रा भी अनुभव नहीं प्राप्त किया—उसको इस विषय पर मत देने का क्या अधिकार? पर वही डाकृर साहब बड़े बड़े राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों पर, जिनके विषय में उन्होंने दो चार लेखों को छोड़ और कुछ नहीं पढ़ा, बेधड़क अपना मत प्रकट करते हैं। इंजीनियर, वकील, व्यापारी, कारीगर आदि का भी यही हाल है। संसार की और सब बातों में विशेष ज्ञान, विशेष विचार और विशेष अनुभव की आवश्यकता समझी जाती है। पर सबसे गूढ़ और पेचीदा विषयों के निर्णय के लिए किसी विशेष गुण की आवश्यकता नहीं समझी जाती। लोग बड़ी जल्दी हर बात का निश्चय कर लेते हैं।

संसार में बहुत से लोग निर्धन हैं, भूख प्यास से व्याकुल हैं, फटे फटे वस्त्रों और घरों के अभाव से शोचनीय दशा में पड़े हुए हैं। इस दुरवस्था का सुधार करने के लिए यह उपाय बताया जाता है कि धनी लोग भूखों को भोजन करावें, सदाव्रत स्थापित करें और ख़ूब दान दें। पर यदि हम सोचें कि जो मुफ़्त बाँट दिया जाता है वह उद्योगधन्धे में ल[illegible] जाने पर देश की समृद्धि बढ़ा कर जनसा[illegible] की सम्पत्ति की वृद्धि कर सकता है; य[illegible] सोचें कि दान देने से आलस्य और निरुद्य[illegible] अतएव, दुराचार की वृद्धि होती है और [illegible] लज्जा की मात्रा घट जाती है; यदि हम सोचें आलसियों और निरुद्यमी लोगों को धन देने[illegible] अनेक निरालसी और उद्यमी मनुष्य दुर्दशा में [illegible] जाते हैं, तो हमें इस उपाय की व्यर्थता और बु[illegible] स्पष्ट मालूम हो जायगी।

एक और उदाहरण लीजिए। हिन्दुओं में बा[illegible] विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, विवाहों[illegible] फ़िज़ूलख़र्ची, जाति-पाँति के व्यर्थ झगड़े इत्[illegible] बहुत सी सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित हैं। उ[illegible] दूर करने के लिए सैकड़ों सभायें स्थापित [illegible] हैं—ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सभायें, कान्यकुब्जों, गौड़ों, सनाढ्यों, अग्रवालों, ख[illegible] वालों, पल्लीवालों, कायस्थों और कलवारों [illegible] की भी सैकड़ों सभायें हैं। पर इन स[illegible] के कार्य्यकर्त्ताओं ने यह विचार नहीं किया हमारी सारी सामाजिक कुरीतियों की जड़ [illegible] व्यवस्था है। जातियों की ये छोटी छोटी सभाएँ, जो वर्ण-व्यवस्था के भेद को और भी पुष्ट करती हैं, लाभ के साथ साथ हानि भी पहुँचावेंगी और व्यापक सुधार के आन्दोलनों के मार्ग में विघ्न डालेंगी।

इस प्रकार के बीसों उदाहरण दिये जा सकते हैं। मनुष्य-स्वभाव का पता लगाना बड़ा कठिन है। जो उपाय एक उद्देश से किये जाते हैं उनसे कोई दूसरा ही उद्देश सिद्ध होता है। हमें आशा और विश्वास था कि इस कार्य्य का यह फल होगा। पर जब कार्य्य किया गया तब कुछ और ही परिणाम हुआ। व्यवहार-शास्त्र का कार्य्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसमें बड़े परिश्रम और बहुत समय की आवश्यकता है। यह काम [illegible] किसी [illegible] वाले आदमियों का नहीं है।

को निराश होना पड़ता है। यही काम यदि
सी ऐसे मनुष्य को सौंपा जाता जिसके पास
ना ही काम बहुत है, अतएव, जिसे कम फ़ुरसत
तो बहुत सम्भव है कि वह आपका भी काम
दो और अच्छी तरह कर देता। किसी किसी
यह धारणा है कि जो लड़के बहुत पढ़ते हैं
बहुत तेज़ होते हैं। पर अध्यापक लोग जानते
कि बहुत पढ़ने वाले लड़के बहुधा मन्दबुद्धि
ते हैं। लोग समझते हैं कि जो बहुत पढ़ता है
बहुत बुद्धिमान होता है। पर बहुधा प्रतिकूल
स्था दृष्टिगोचर होती है। लोग समझते हैं कि
तना ही कड़ा दण्ड दिया जायगा उतने ही कम
राध होंगे। पर संसार का अनुभव और इति-
स बतलाता है कि दण्ड की कड़ाई अपराधों की
ख्या बढ़ाती है, और नम्रता का प्रयोग अपराधों
संख्या घटाता है। लोग समझते हैं कि मारने
टने से लड़के ज़ियादह पढ़ते हैं तथा विनयशील
र सरलस्वभाव वाले हो जाते हैं। पर मानसशास्त्र
र अध्यापनशास्त्र के आचार्य और अध्यापक
ब स्वीकार करते हैं कि नम्रता और दया के
ताव से ही लड़के पढ़ने-लिखने और आचार-
व्यवहार में अधिक उन्नति करते हैं। ये दृष्टान्त सिद्ध
रते हैं कि मनुष्य-स्वभाव के विषय में बिना
चे समझे कोई मत स्थिर कर लेना अनुचित है।
तिहास की अनेक घटनायें और संस्थायें भी यही
द्ध करती हैं। तो भी "शिक्षित", "सम्मान्य",
सुपण्डित" महानुभाव बड़ी जल्दी कार्य-कारण
सम्बन्ध स्थिर कर बैठते हैं। ज़रा देखिए तो सही,
पके चारों ओर की मामूली बातें भी कितने
टिल कारणों से उत्पन्न हुई हैं। इतवार को
छुट्टी रहती है। इसका कारण यह है कि
लायत वालों ने, कोई १५०० वर्ष हुए, यहूदियों
देश का धर्म स्वीकार किया था। यह उसी
र्म ग्रहण का फल है। यहूदियों ने इतवार को
ाम न करने का सिद्धान्त कहाँ से और कैसे
खा—इसका पता हज़ारों वर्ष का इतिहास
देखने से लगेगा। अपने त्योहारों और रीति रिवाजों
के कारणों का पता भी हज़ारों वर्ष के इतिहास
से ही लग सकता है। अपने राजनैतिक, धार्मिक,
सामाजिक, औद्योगिक, व्यापारिक सिद्धान्तों और
अवस्थाओं के कारण ढूँढ़ने के लिए आपको अपने
ही देश के नहीं, किन्तु लगभग सारे सभ्य और
असभ्य संसार के इतिहासों, वर्तमान विचारों
और अवस्थाओं की खोज करनी पड़ेगी। भविष्यत्
के लिए मार्ग स्थिर करने को आपको अनेक बातों
की जाँच-पड़ताल करनी पड़ेगी, उनका वर्गी-करण
करना पड़ेगा, उनकी परस्पर तुलना करनी पड़ेगी।
तब कहीं आप सिद्धान्त स्थिर कर सकेंगे।

इन बातों का उत्तर यह दिया जायगा—
"अजी, हमें इतनी जाँच-पड़ताल करने के लिए
फ़ुरसत कहाँ। आख़िर संसार का काम तो रुक
नहीं सकता। हमारे पास जो कुछ ज्ञान और अनु-
भव है उसी के सहारे काम करना उचित है"।
बस यही प्रवृत्ति उन सारे भ्रान्त उपायों की जननी
है जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। पूर्वकाल में
जब वैद्यक या चिकित्सा-शास्त्र का पूर्णतः आविर्भाव
न हुआ था, लोग रोगों का निदान और यथार्थ
ज्ञान प्राप्त करने का कष्ट न उठाते थे और न इसकी
आवश्यकता ही को वे अच्छी तरह समझते थे।
अब भी उन बेचारे गँवारों और अशिक्षितों का
यही हाल है जो सभ्यता के केन्द्रों से बहुत दूर
हैं। इन लोगों को चाहे जो चाहे जैसी दवा बताये
वे उसी पर विश्वास कर लेते हैं और उसी का
प्रयोग करते हैं। जहाँ ज्ञान की कमी है वहाँ
अच्छी तरह निर्णय करने का सामान ही नहीं।
जैसे जैसे चिकित्सा शास्त्र की उत्तरोत्तर उन्नति होती
जाती है और चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान सर्वसाधारण
में फैलता जाता है वैसे ही वैसे लोग शारीरिक रोगों
और उनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में वैज्ञानिक
बुद्धि, विचार और निर्णय से काम लेते हैं।

इसी प्रकार जैसे जैसे समाजशास्त्र की उन्नति
होगी प्रकृति और सामाजिक ज्ञान बढ़ना आरम्भ

वैसे ही वैसे सामाजिक विषयों में भी खोज, तर्क और निर्णय होने लगेंगे। समाज शास्त्र का यही काम है कि समाज सम्बन्धी सत्यों को इकट्ठा करे, उनका वर्गीकरण करे, उन्हें एक दूसरे से मिलावे, सामाजिक कार्य-कारणों का सम्बन्ध स्थिर करे; उन्नति, अवनति और परिवर्तन के सिद्धान्त—व्यापक नियम—निकाले। इसी मार्ग पर चलने से भविष्यत् प्रगति को सहायता पहुँच सकेगी; और किसी तरह नहीं।

सत्यशोधक।

कुलीनता ।

(वंशस्थ)

विवेक विद्या सुविचार सभ्यता,
[illegible] सज्जनता उदारता।
[illegible] सदाचार परोपकारिता,
सदा [illegible] कुलीनता रही ॥१॥
परन्तु है आज विभिन्न ही दशा,
[illegible] है नित्य ही कुलीनता।
[illegible]
[illegible] ॥२॥
[illegible]
[illegible] है।
[illegible]
[illegible] है ॥३॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥४॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥५॥

न मूढ़ ही हैं अविवेक में फँसे,
यही दशा है मतिमान-वृन्द की।
समर्थ हैं जो तम के विनाश में
स्वयं वही हैं तम पुञ्ज में पड़े ॥६॥
पढ़ा लिखा अर्जन ज्ञान का किया,
सुधी बने जीत सभा अनेक ली।
परन्तु पाई न विवेक-बुद्धि तो,
वृथा हुई सर्व-क्रिया अतुल्यिता ॥७॥
उठा इन्हों को कह दो मनीषियो,
इन्हीं रहेगी कब लौं समाहता।
कुलीनता के नित निन्दिता प्रथा,
कुलीन के व्याज विमूढ़-मण्डली ॥८॥
न काम आई प्रतिभा गरीयसी,
न बुद्धि-विद्या-विबुधों-भरी सभा॥
निराश्रिता जो न हुई प्रबल से
प्रवर्द्धमाना कुप्रथा-विनाशिनी ॥९॥
स्व-जाति-सेवा-व्रत है विडम्बना,
[illegible] व्याख्यान प्रचार-मात्र है।
विवेकशीला वर बुद्धि आपकी
विलुप्त होवे यदि कार्य-काल में,
समाज के सम्मुख औ सभादि में
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥१०॥
[illegible]
[illegible]

[illegible]

विघातिनी है गुरुता स्वदेश की,
विलोपिनी है कुल-धन्यनीयता।
विनाशिनी है सुख शान्ति जाति की।
अपूज्यता पूज्य अपूज्य पूज्यता ॥१२॥
अयोध्यासिंह उपाध्याय।

हमारे सामाजिक ह्रास के कुछ कारणों का विचार।

(१)

मस्तिष्क का अमर्यादित व्यय।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह प्रश्न उठता है—क्या सचमुच हमारे समाज का ह्रास हो रहा है? यदि इस प्रश्न का उत्तर "नहीं" हो, तो सामाजिक ह्रास के कारणों का विचार करना ही अप्रासङ्गिक अतएव अनुचित तथा व्यर्थ है। परन्तु इस लेख में लिखी गई बातों पर ध्यान देने से मालूम हो जायगा कि यथार्थ में, इस समय, हमारे समाज के ह्रास के बहुत से चिह्न देख पड़ रहे हैं। और, यदि, समय पर कुछ उपाय न किया जायगा तो ह्रास के ये चिह्न दृढ़ हो जायँगे। अतएव इस विषय पर विचार करना, अपने समाज का हित चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

समाजशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार किसी समाज की उन्नति, उत्क्रान्ति या विकास के लिए मनुष्य को तीन बातों की आवश्यकता होती है। (१) मनुष्य को स्वयं अपनी और अपने कुटुम्ब की रक्षा करने में समर्थ होना चाहिए; भोजन, वस्त्र आदि जो पदार्थ जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं उन्हें प्राप्त करना चाहिए; रोग, व्याधि, उपद्रव आदि करने वाले प्राणियों और मानव-शत्रुओं का निवारण करना चाहिए; अपनी सुरक्षित दशा को स्थायी करने के लिए ज्ञान, अनुभव और कलाकुशलता की नित्य वृद्धि करनी चाहिए। (२) सुख की वृद्धि करने और दुःख को दूर करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है। इसलिए सुख की वृद्धि अथवा आयु की वृद्धि करना मनुष्य का दूसरा कर्तव्य है। (३) अपने कुटुम्ब और जाति की स्थिरता के लिए सन्तान-वृद्धि करना मनुष्य का तीसरा कर्तव्य है। सन्तान की संख्या अधिक हो, वह दीर्घायु हो और उसका शरीर सुदृढ़ तथा बलवान् हो। सारांश यह कि संरक्षण, सुख अथवा आयु की वृद्धि और स्थिरता यही तीन मानव-समाज के मुख्य उद्देश हैं। जो समाज इन तीनों की सफलता के लिए यत्न करता है उसी की उन्नति होती है। जो समाज अपनी चिरकालिक स्थिरता पर विशेष ध्यान देता है उसी का, प्रत्येक पीढ़ी में, विकास होता चला जाता है। यदि समाज-शास्त्र का यह सिद्धान्त सत्य और मान्य हो तो सोचना चाहिए कि हमारे समाज में जो चिह्न देख पड़ रहे हैं और जिनका वर्णन आगे चल कर किया जायगा, वे इस सिद्धान्त के अनुकूल हैं या प्रतिकूल। वर्तमान समय में हमारे समाज में कुछ ऐसी बातें देख पड़ रही हैं जिनसे हमारे समाज की चिरकालिक स्थिरता के बदले उसका ह्रास ही अधिक सूचित होता है।

कोई सौ वर्ष से अनेक नये नये विचारों और कार्यों की ओर हमारी प्रवृत्ति होने लगी है। सभ्यता की कुञ्जी हम लोगों के हाथ आ जाने से हम पश्चिमी विद्या का अभ्यास करने लगे। पहले पहल इस विद्या के तेज से हमारी आँखों में चकाचौंध सी आ गई। पश्चिमी सभ्यता की आश्चर्यजनक बातों से हमारा मन ऐसा मोहित हो गया कि हम में से अनेक लोग अपने पूर्वजों के आचार, विचार और धर्म को निरर्थक मानने लगे। अपनी प्राचीन सभ्यता हमें तुच्छ मालूम होने लगी और पश्चिमी देशों की प्रायः सभी बातें प्रशंसनीय और अनुकरणीय मालूम होने लगीं। केवल तर्क और युक्तिवाद का आश्रय करके उनके पहनाव, खान पान, रहन-सहन आदि की नकल करते करते उनका धर्म भी हम लोगों को प्रिय होने लगा। कुछ लोगों ने तो अपने धर्म का त्याग भी कर दिया। कुछ ने निराकार ईश्वर की पूजा के लिए नूतन धर्म-पन्थ स्थापित कर दिये।

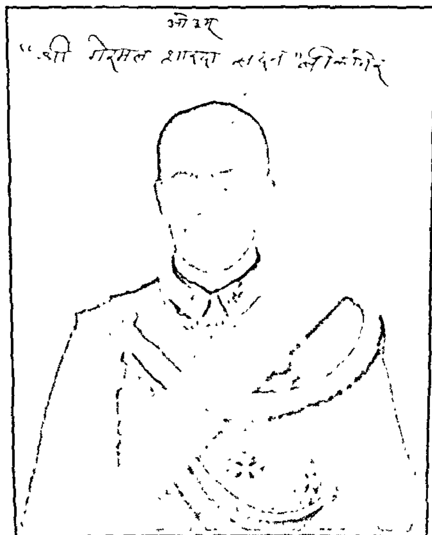
यह अन्धी नकल—यह अन्धपरम्परा—और और बातों में भी प्रकट होने लगी। शहरों में रहने वालों की विद्वत्ता, योग्यता, आदर, सुख-चैन और प्रभाव को देख कर देहातों और कसबों में रहनेवालों का जी ललचाने लगा। पश्चिमी-विद्याविभूषित शहर निवासियों के स्वतन्त्र-स्वातन्त्र्य और आधिभौतिक सुखों की ओर देख कर बेचारे देहातियों की लालसा इतनी बढ़ गई कि वे भी अपने प्राचीन उद्योग-धन्धों को छोड़ कर और शहरों में आकर पश्चिमी विद्या और

सभ्यता सीखने में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। उच्च जाति के लोग तो पहले ही से इस विद्याध्ययन का काम करने में लग गये थे, अब अन्य जातियों ने भी सोचा कि हम क्यों इस सौभाग्य से वञ्चित रहें। बस, फिर क्या था, किसानों ने अपने हल-बक्खर एक ओर रख दिये और ए०, बी०, सी पढ़ने लगे! लेमारों ने अपनी धनी छोड़ दी, बढ़इयों ने अपना बसूला छोड़ दिया, लुहारों ने घन और निहाई छोड़ दी, नाइयों ने उस्तरा छोड़ दिया, बनियों ने अपना तराजू छोड़ दिया। सब लोग पश्चिमी सभ्यता का स्वर्गीय सुख पाने के लिए लालायित हो गये। यह दशा देख कर ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ जातियों के लोग, जो पहले ही से विद्याध्ययन में लगे थे, जी में जलने लगे कि अब हमारी बपौती छिन जायगी। वे इन निकृष्ट जातियों से द्वेष करने लगे। खेद है कि हम लोग अपने उन प्राचीन व्यवसायों को छोड़ रहे हैं जिनमें शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता थी और ऐसे व्यवसाइयों में लग रहे हैं जिनमें केवल बुद्धि या मस्तिष्क का परिश्रम अधिक है। वर्तमान दशा को देख कर यदि यह कहा जाय कि पश्चिमी विद्या और सभ्यता में पारङ्गत होना ही हमारे जीवन का प्रधान उद्देश हो गया है तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। प्रायः सभी माता-पिता अपने बच्चों से कहने लगे हैं—"यदि अँगरेज़ी न सीखोगे तो क्या भीख माँगोगे"! सारांश यह कि अपने प्राचीन धर्मतत्त्वों को तुच्छ समझना, केवल व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और भौतिक सुखों की लालसा करना, शारीरिक श्रम को हीनता की दृष्टि से देखना, देहात का त्याग करके शहरों में रहना, और अपरिमित विद्या-व्यासङ्ग में समय बिताना ही, हमारी समझ में, समाज और राष्ट्र की उन्नति के लक्षण माने जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में क्या हमको इन बातों पर विचार न करना चाहिए कि विद्या-व्यासङ्ग की अधिकता और मस्तिष्क के अतिव्यय से हमारे शिक्षित समाज पर क्या परिणाम हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे? देहातों और कसबों की बस्ती छोड़ कर—शारीरिक श्रम के व्यवसायों को छोड़ कर—शहरों में निवास करने से हमारे समाज की क्या हानि हो रही है? केवल तर्क और युक्तिवाद का आश्रय करके अपनी प्राचीन सभ्यता को तुच्छ मानने से—धार्मिक श्रद्धा के अभाव से—व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और आधिभौतिक सुखोप-

भोगों की प्रवृत्ति के बढ़ जाने से—हमारे देश की [illegible] हो रही है? अब हमको अपनी अन्धपरम्परा [illegible] विवेक शक्ति से काम लेना चाहिए। विवे[illegible] देखने पर मालूम होगा कि जिन बातों को ह[illegible] अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए हितकारक [illegible] मानते चले आये हैं वही यथार्थ में हमारे [illegible] के कारण हैं। इस लेख में विचार किया [illegible] व्यासङ्ग की अधिकता—मस्तिष्क के अपरिमि[illegible] हमारे समाज का ह्रास कैसे हो रहा है।

ऊपर जिस अन्धपरम्परा का उल्लेख कि[illegible] उसकी सत्यता के विषय में हमारे शिक्षित भाई इ[illegible] करेंगे। परन्तु अन्धपरम्परा से हमारा यह मतलब नहीं [illegible] नूतन विद्या और सभ्यता निरुपयोगी है। हमारा मतल[ब] यही है कि उसका रहस्य जानने की योग्यता अब तक [illegible] ने नहीं प्राप्त की। हम लोग पश्चिमी ज्ञान की अधूरी [illegible] से दुर्विदग्ध हो गये हैं। हम सिर्फ़ यही देखते हैं कि [illegible] विद्वत्ता हमारे नौकरों से, अथवा हमारे बूढ़े दादा [illegible] से, कितनी अधिक है। बस, इसी में हम फूले नहीं [illegible] हमारा सारा ज्ञान केवल शाब्दिक है—तात्त्विक ज्ञान [illegible] पास कुछ भी नहीं। पश्चिमी विद्या और सभ्यता की [illegible] मिल जाने पर भी, सोचिए तो सही, हम लोग पश्चिमी [illegible] के तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों का आकलन करने में [illegible] सफल हुए हैं? पश्चिमी सभ्यता के रहस्यों को जान [illegible] कितने हिन्दुस्तानियों ने अपने देश, समाज, धर्म, [illegible] भाषा और व्यापार की उन्नति का प्रयत्न किया है? ए[क] विदेशी अधिकारी ने हमारे शिक्षित समुदाय को [illegible] ग्राजुएट (Superficial Graduates) कहा है! यह वचन कटु है तथापि क्या यह सत्य नहीं? सच तो [illegible] कि हमारा सभी काम अन्धपरम्परा से हो रहा है [illegible] विदेशियों की सभ्यता का बाहरी अनुकरण करने [illegible] सन्तुष्ट हैं, उनकी सभ्यता के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने [illegible] उनकी सच्ची बराबरी करने में कई सदियाँ पिछड़े हुए [illegible]

अच्छा। अब यह जानने के पहले कि विद्या[illegible] अतिरेक से—मस्तिष्क के अपरिमित व्यय से—हमारे [illegible] का ह्रास कैसे हो रहा है, यह जान लेना चाहिए कि [illegible] समय में हमारे समाज की दशा कैसी [illegible] स


ओ३म्

[illegible]

[illegible]

सभ्यता सीखने में अपना जीवन व्यतीत करने लगे। उच्च जाति के लोग तो पहले ही से इस विद्यामृत का पान करने में लग गये थे, अब अन्य जातियों ने भी सोचा कि हम क्यों इस सौभाग्य से वञ्चित रहें। बस, फिर क्या था, किसानों ने अपने हल-बख्खर एक ओर रख दिये और ए०, बी०, सी पढ़ने लगे! मेमारों ने अपनी करनी छोड़ दी, बढ़इयों ने अपना बसुला छोड़ दिया, लुहारों ने घन और निहाई छोड़ दी, नाइयों ने उस्तरा छोड़ दिया, बनियों ने अपना तराज़ू छोड़ दिया। सब लोग पश्चिमी सभ्यता का स्वर्गीय सुख पाने के लिए लालायित हो गये। यह दशा देख कर ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ जातियों के लोग, जो पहले ही से विद्याध्ययन में लगे थे, जी में जलने लगे कि अब हमारी बपौती छिन जायगी। वे इन निकृष्ट जातियों से द्वेष करने लगे। खेद है कि हम लोग अपने उन प्राचीन व्यवसायों को छोड़ रहे हैं जिनमें शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता थी और ऐसे व्यवसायों में लग रहे हैं जिनमें केवल बुद्धि या मस्तिष्क का परिश्रम अधिक है। वर्तमान दशा को देख कर यदि यह कहा जाय कि पश्चिमी विद्या और सभ्यता से पारङ्गत होना ही हमारे जीवन का प्रधान उद्देश हो गया है तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। प्रायः सभी माता-पिता अपने बच्चों से कहने लगे हैं—"यदि अँगरेज़ी न सीखोगे तो क्या भीख मांगोगे" ! सारांश यह कि अपने प्राचीन धर्मशास्त्रों को तुच्छ समझना, केवल व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और भौतिक सुखों की लालसा करना, शारीरिक श्रम को हीनता की दृष्टि से देखना, देहात का त्याग करके शहरों में रहना, और अपरिमित विद्या-व्यासङ्ग में समय बिताना ही, हमारी समझ में, समाज और राष्ट्र की उन्नति के लक्षण माने जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में क्या हमको इन बातों पर विचार न करना चाहिए कि विद्या-व्यासङ्ग की अधिकता और मस्तिष्क के अतिव्यय से हमारे शिक्षित समाज पर क्या परिणाम हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे ? देहातों और कस्बों का रहना छोड़ कर—शारीरिक श्रम के व्यवसायों को छोड़ कर—शहरों में निवास करने से हमारे समाज की क्या दुर्दशा हो रही है ? केवल सुख और सुविधा का आश्रय करके अपनी [illegible] को तुच्छ मानने से—धार्मिक श्रद्धा के अभाव से—व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और आधिभौतिक सुखोप-

भोगों की प्रवृत्ति के बढ़ जाने से ... हो रही है ? अब हमको अपनी अन्धपरम्परा ... विवेक-शक्ति से काम लेना चाहिए। विवे... देखने पर मालूम होगा कि जिन बातों को ... अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए हितदायक ... मानते चले आये हैं वही यथार्थ में हमारे ... के कारण हैं। इस लेख में विचार किया ... व्यासङ्ग की अधिकता—मस्तिष्क के ... हमारे समाज का ह्रास कैसे हो रहा है।

ऊपर जिस अन्धपरम्परा का उल्लेख कि... उसकी सभ्यता के विषय में हमारे शिक्षित ... करेंगे। परन्तु अन्धपरम्परा से हमारा यह मतलब ... नूतन विद्या और सभ्यता निरुपयोगी है। हमारा मत... यही है कि उसका रहस्य जानने की योग्यता अब तक ... ने नहीं प्राप्त की। हम लोग पश्चिमी ज्ञान की ... से दुर्विदग्ध हो गये हैं। हम सिर्फ़ यही देखते हैं ... विद्वत्ता हमारे नौकरों से, अथवा हमारे बूढ़े दादा ... से, कितनी अधिक है। बस, इसी में हम फूले नहीं ... हमारा सारा ज्ञान केवल शाब्दिक है—तात्त्विक ... पास कुछ भी नहीं। पश्चिमी विद्या और सभ्यता ... मिल जाने पर भी, सोचिए तो सही, हम लोग पश्चि... के तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्तों का आकलन करने में ... सफल हुए हैं ? पश्चिमी सभ्यता के रहस्यों को ... कितने हिन्दुस्तानियों ने अपने देश, समाज, धर्म, भाषा और व्यापार की उन्नति का प्रयत्न किया है ? ... विदेशी अधिकारी ने हमारे शिक्षित समुदाय को ... ग्राजुएट (Superficial Graduates) कहा ... यह वचन कटु है तथापि क्या यह सत्य नहीं ! सच तो ... कि हमारा सभी काम अन्धपरम्परा से हो रहा है ... विदेशियों की सभ्यता का बाहरी अनुकरण करने ... सन्तुष्ट हैं, उनकी सभ्यता के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने ... उनकी सच्ची बराबरी करने में कई सदियां बिताने ...

अच्छा। अब यह जानने के पहले कि ... अतिरेक से—मस्तिष्क के अपरिमित व्यय से—हमारे ... का ह्रास कैसे हो रहा है, यह जान लेना चाहिए कि ... समय में हमारे समाज की दशा कैसी थी। पचास, ...

हमारे पूर्वजों को, छोटी उम्र में, विद्याभ्यास और मानसिक श्रम करने में इतना खून न सुखाना पड़ता था। उस समय के लोग अपने घर में या समीप की किसी पाठशाला में लिखना, पढ़ना, हिसाब किताब आदि सीख कर जीवन-निर्वाह सुख से कर लेते थे। ब्राह्मण वर्ण के लोग संस्कृत भाषा, और शास्त्रों का अध्ययन करने में बहुत समय बिताते थे। पर उनके आचार, रहन-सहन, खान-पान आदि के कारण उनकी शारीरिक शक्ति का ह्रास न होता था। हमारे पूर्वजों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए इतना अनेक परिश्रम और मानसिक शक्ति का व्यय न करना पड़ता था जितना वर्तमान समय में सुशिक्षित तथा विद्वान् कहलाने वाले वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, इञ्जीनियर आदि लोगों को करना पड़ता है। उन लोगों का विद्याभ्यास बीस वर्ष की अवस्था तक, पितृत्व-दशा आने के पहले ही, पूरा हो जाया करता था। व्यावहारिक ज्ञान के लिए उन्हें किसी पाठशाला में न जाना पड़ता था। अपने अनुभव से वे लोग सब व्यवहारों में दक्ष हो जाया करते थे। तात्पर्य यह कि उनको अपनी आयु की प्रथम अवस्था में बहुत मानसिक परिश्रम न करना पड़ता था। इस लिए व्यावहारिक कामों में ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता जाता था त्यों त्यों उनकी बुद्धि अधिक तीव्र और परिपक्व होती जाती थी। वे लोग अपनी मध्यम अवस्था में, कठिन से कठिन काम करने में अपना तेज प्रकट कर सकते थे। वृद्धावस्था में भी वे नीरोग तथा उत्साही बने रहते थे। उनका उत्साह, आवेश, निश्चय और शारीरिक श्रम करने की शक्ति अन्त तक बनी रहती थी। ऐसे वृद्ध पुरुष अब भी कहीं कहीं देख पड़ते हैं।

यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान समय में इस देश के युवकों के सिर पर विद्याभ्यास का कितना बड़ा और कितना भारी बोझ लाद दिया गया है। सोचना चाहिए कि जिनके बाप-दादों ने पिछली कई पीढ़ियों तक विद्याभ्यास में विशेष परिश्रम नहीं किया उनके बालकों और नव-युवकों को, स्पर्धा और ईर्षा के वर्तमान काल में, पश्चिमी विद्या और सभ्यता का सामना करने में कैसी कठिन मिहनत करनी पड़ती है। पहले जितनी मिहनत की जाती थी उससे अब कई गुना अधिक करनी पड़ती है। प्राचीन समय के शिक्षित समाज में सौ में पांच से अधिक लोग विद्याव्यासङ्ग में अपना जीवन नहीं बिताते थे। परन्तु अब तो हमारे शिक्षित समाज में सौ में पंचानवे को अपनी बाल्यावस्था और युवावस्था का सारा समय केवल विद्याभ्यास ही में व्यतीत करना पड़ता है। पहले, बीस वर्ष की अवस्था के पहले ही विद्याध्ययन पूरा हो जाता था। अब बीस-बाईस वर्ष की कौन कहे, पितृत्व-दशा के प्राप्त हो जाने पर भी, हमारे नव युवकों की विद्यार्थि-दशा पूरी नहीं होती! जिस विद्या और सभ्यता के सीखने में पश्चिमी देशों के निवासियों ने सैकड़ों वर्ष लगा दिये हैं उसको एक दम प्राप्त कर लेने का भार गत दो तीन पीढ़ियों पर आ पड़ा। इस अभ्यास की अधिकता का परिणाम क्या होगा? उत्तर स्पष्ट है—मस्तिष्क का सङ्कोच, बुद्धि की क्षीणता, शारीरिक शक्ति की हानि और सन्तान की निर्बलता - अर्थात् सामाजिक ह्रास!

सामाजिक ह्रास के कुछ चिह्न सर्वत्र दिखाई दे रहे हैं। सन्देह करने की आवश्यकता नहीं कि इतने थोड़े समय में ह्रास के लक्षण कैसे प्रकट हो गये। शरीर-शास्त्र का सिद्धान्त है कि पिता के विकृत शरीर और मस्तिष्क के बुरे परिणाम एक ही पीढ़ी में सन्तान में प्रकट हो जाते हैं। यदि सन्तान भी अपने पिता ही के मार्ग का अवलम्ब करे तो वे परिणाम दूसरी पीढ़ी में अधिक स्पष्ट और दृढ़ हो जाते हैं। सामाजिक ह्रास का यह क्रम हमारे शिक्षित कुटुम्बों में बद्धमूल हो रहा है। यदि यह क्रम इसी तरह जारी रहा तो भविष्यत् में शिक्षित समाज का नाश हुए बिना न रहेगा। वर्तमान समय के विद्यार्थियों और शिक्षित विद्वानों की अकाल-मृत्यु, उनकी शारीरिक दुर्बलता, उनकी सन्तति की अशक्तता, चित्त की उदासीनता, सर्दैव किसी न किसी रोग या व्याधि से पीड़ित रहना इत्यादि, ऐसे अनेक चिह्न हैं जिनसे निस्सन्देह हो, हमारे शिक्षित समाज का ह्रास सूचित होता है। हिन्दुस्थान के शिक्षित कुटुम्बों में—विशेषतः उन कुटुम्बों में जिनमें कुछ पीढ़ियों से विद्याध्ययन और मानसिक परिश्रम के सिवा और कुछ काम नहीं किया जाता—ऐसे बहुत कम होंगे जिनको अपने तरुण पुरुषों की अकालिक आर्ज़ीणता, रुग्णावस्था या मृत्यु पर शोक न करना पड़ता हो! हमने कई युवकों को देखा है जिन्होंने पचीस-तीस वर्ष तक विद्याध्ययन किया, दस पांच वर्ष तक गृहस्थी का सुख भोगा, फिर मध्यम अवस्था ही में,

पहले हमारे पूर्वजों को, छोटी उम्र में, विद्याभ्यास और मानसिक श्रम करने में इतना खून न सुखाना पड़ता था। उस समय वे लोग अपने घर में या समीप की किसी पाठशाला में कुछ लिखना, पढ़ना, हिसाब किताब आदि सीख कर अपना जीवन-निर्वाह सुख से कर लेते थे। ब्राह्मण वर्ण के कुछ लोग संस्कृत भाषा, और शास्त्रों का अध्ययन करने में अधिक समय बिताते थे। पर उनके आचार, रहन-सहन, खान-पान आदि के कारण उनकी शारीरिक शक्ति का ह्रास न होता था। हमारे पूर्वजों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए इतना मानसिक परिश्रम और मस्तिष्क शक्ति का व्यय न करना पड़ता था जितना वर्तमान समय में सुशिक्षित तथा विद्वान् कहलाने वाले वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, इञ्जीनियर आदि लोगों को करना पड़ता है। उन लोगों का विद्याभ्यास बीस वर्ष की अवस्था तक, पितृत्व-दशा में आने के पहले ही, पूरा हो जाया करता था। व्यावहारिक ज्ञान के लिए उन्हें किसी पाठशाला में न जाना पड़ता था। प्रत्यक्ष अनुभव से वे लोग सब व्यवहारों में दक्ष हो जाया करते थे। तात्पर्य्य यह कि उनको अपनी आयु की प्रथम अवस्था में बहुत मानसिक परिश्रम न करना पड़ता था। इस लिए व्यावहारिक कामों में ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता जाता था त्यों त्यों उनकी बुद्धि अधिक तीव्र और परिपक्व होती जाती थी। वे लोग अपनी मध्यम अवस्था में, कठिन से कठिन काम करने में अपना तेज प्रकट कर सकते थे। वृद्धावस्था में भी वे नीरोग तथा उत्साही बने रहते थे। उनका उत्साह, आवेश, निश्चय और शारीरिक श्रम करने की शक्ति अन्त तक बनी रहती थी। ऐसे वृद्ध पुरुष अब भी कहीं कहीं देख पड़ते हैं।

यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान समय में इस देश के युवकों के सिर पर विद्याभ्यास का कितना बड़ा और कितना भारी बोझ लाद दिया गया है। सोचना चाहिए कि जिनके बाप दादों ने पिछली कई पीढ़ियों तक विद्याभ्यास में विशेष परिश्रम नहीं किया उनके बालकों और नव-युवकों को, स्पर्धा और ईर्षा के वर्तमान काल में, पश्चिमी विद्या और सभ्यता का सामना करने में कैसी कठिन मिहनत करनी पड़ती है। पहले जितनी मिहनत की जाती थी उससे अब कई गुना अधिक करनी पड़ती है। प्राचीन समय के शिक्षित समाज में सौ में पांच से अधिक लोग विद्याव्यासङ्ग में अपना जीवन नहीं बिताते थे। परन्तु अब तो हमारे शिक्षित समाज में सौ में पंचानवे को अपनी बाल्यावस्था और युवावस्था का सारा समय केवल विद्याभ्यास ही में व्यतीत करना पड़ता है। पहले, बीस वर्ष की अवस्था के पहले ही विद्याध्ययन पूरा हो जाता था। अब बीस-बाईस वर्ष की कौन कहे, पितृत्व-दशा के प्राप्त हो जाने पर भी, हमारे नव युवकों की विद्यार्थि दशा पूरी नहीं होती! जिस विद्या और सभ्यता के सीखने में पश्चिमी देशों के निवासियों ने सैकड़ों वर्ष लगा दिये हैं उसको एक दम प्राप्त कर लेने का भार गत दो तीन पीढ़ियों पर आ पड़ा। इस अभ्यास की अधिकता का परिणाम क्या होगा? उत्तर स्पष्ट है—मस्तिष्क का सङ्कोच, बुद्धि की क्षीणता, शारीरिक शक्ति की हानि और सन्तान की निर्बलता—अर्थात् सामाजिक ह्रास!

सामाजिक ह्रास के कुछ चिह्न सर्वत्र दिखाई दे रहे हैं। सन्देह करने की आवश्यकता नहीं कि इतने थोड़े समय में ह्रास के लक्षण कैसे प्रकट हो गये। शरीर-शास्त्र का सिद्धान्त है कि पिता के विकृत शरीर और मस्तिष्क के बुरे परिणाम एक ही पीढ़ी में सन्तान में प्रकट हो जाते हैं। यदि सन्तान भी अपने पिता ही के मार्ग का अवलम्ब करे तो ये परिणाम दूसरी पीढ़ी में अधिक स्पष्ट और दृढ़ हो जाते हैं। सामाजिक ह्रास का यह क्रम हमारे शिक्षित कुटुम्बों में बद्धमूल हो रहा है। यदि यह क्रम इसी तरह जारी रहा तो भविष्यत् में शिक्षित समाज का नाश हुए बिना न रहेगा। वर्तमान समय के विद्यार्थियों और शिक्षित विद्वानों की अकाल-मृत्यु, उनकी शारीरिक दुर्बलता, उनकी सन्तति की अशक्तता, चित्त की उदासीनता, सदैव किसी न किसी रोग या व्याधि से पीड़ित रहना इत्यादि, ऐसे अनेक चिह्न हैं जिनसे निस्सन्देह ही हमारे शिक्षित समाज का ह्रास सूचित होता है। हिन्दुस्तान के शिक्षित कुटुम्बों में—विशेषतः उन कुटुम्बों में जिनमें कुछ पीढ़ियों से विद्याध्ययन और मानसिक परिश्रम के सिवा और कुछ काम नहीं किया जाता—ऐसे बहुत कम होंगे जिनको अपने तरुण पुत्रों की आकस्मिक असाध्यता, रुग्णावस्था या मृत्यु पर शोक न करना पड़ता हो! हमने कई युवकों को देखा है जिन्होंने पच्चीस-तीस वर्ष तक विद्याध्ययन किया, दस पांच वर्ष तक गृहस्थी का सुख भोगा, फिर मध्यम अवस्था ही में,

दो चार छोटे छोटे बच्चों को छोड़ कर, परलोक का रास्ता लिया। ऐसों के वृद्ध माता-पिताओं की मनस्ताप और दुःखद स्थिति का वर्णन करना कठिन है। हमारी शारीरिक शक्ति के ह्रास के चिह्न जगह जगह देख पड़ रहे हैं। हम लोगों को अपनी यथार्थ दशा न भूलनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिमी विद्या का अभ्यास करके कुछ लोग प्रसिद्ध लेखक, ग्रन्थकार, वक्ता, अध्यापक, वकील, बारिस्टर, डाक्टर, कौंसिल के मेम्बर और सिविलियन हो गये हैं परन्तु ये लोग उन तारों के समान हैं जो आकाश में क्षण भर चमक उठते हैं और अपनी चमक दमक से सारे जगत् को प्रदीप्त करके थोड़ी ही देर में लुप्त हो जाते हैं। खोज करना चाहिए कि इन सुप्रसिद्ध अल्पायु पुरुषों के कुटुम्बों और सन्तानों की दशा कैसी है। जब तक शारीरिक शक्ति का ह्रास होता रहेगा तब तक हम किसी [illegible] महत्व के कार्य का सम्पादन करने में समर्थ न हो सकेंगे। ह्वीलर नामक इतिहासकार ने हमारे विषय में जो लिखा है उसका तात्पर्य यह है—"शिक्षा के प्रभाव से हम प्रौढ़ और गम्भीर मनुष्यों के समान बातें करना सीख लेंगे, परन्तु हमारे सब कार्य व्यवहार बच्चों ही के समान होंगे।"

शारीरिक शक्ति के ह्रास के साथ साथ बुद्धि के भी ह्रास के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। यह अनुभव से सिद्ध है कि आज कल के [illegible] विद्वानों का बुद्धि-सामर्थ्य और मानसिक उत्साह, उनकी अन्तिम परीक्षा के बाद ही, समाप्त हो जाता है। वे लोग न तो अपनी बुद्धि की कुछ विशेष उन्नति कर सकते हैं और न कोई नूतन कठिन कार्य करने में उत्साह, निष्ठा, तथा धैर्य ही दिखा सकते हैं। [illegible]

है। हमारे शिक्षित भाइयों में से प्रायः अधिकांश [illegible] हैं। कुछ ही लोग वकीली, बारिस्टरी, डाक्टरी [illegible] व्यवसाय कर रहे हैं। इन लोगों में से ऐसे कितने [illegible] जिन्होंने अपने बुद्धि-सामर्थ्य और मानसिक [illegible] कार्य का यथायोग्य सम्पादन करके, अपना नाम [illegible] किया हो? खेद है, हमारे शिक्षित [illegible] बुद्धि-सम्बन्धिनी महत्वाकाङ्क्षा अत्यन्त मर्यादित हो [illegible] है। कुछ दिनों बाद, हमारे शिक्षित समाज में [illegible] और नामी पुरुषों की उत्पत्ति ही न बन्द हो जाय!

शारीरिक शक्ति की वृद्धि के लिए शास्त्रों में मर्यादा निश्चित है। कहते हैं कि पच्चीस वर्ष की [illegible] तक (वाग्भट के मत के अनुसार तीस वर्ष तक) [illegible] की वृद्धि पूरी हो जाती है। उसके बाद शरीर की [illegible] होती। परन्तु यह नियम मन और बुद्धि की उन्नति के [illegible] में नहीं चरितार्थ हो सकता। प्राकृतिक तत्त्वों के [illegible] है कि यदि उचित परिश्रम से मानसिक [illegible] की जाय तो शरीरान्त तक बुद्धि की उन्नति और वृद्धि [illegible] रहती है। अर्थात् बुद्धि का अकालिक ह्रास स्वाभाविक कारणों से नहीं होता; बुद्धि की अकालिक [illegible] मन्दता कृत्रिम (अतएव परिहार्य) कारणों से हुआ [illegible] है। परन्तु, हम लोग, इन कृत्रिम कारणों को दूर [illegible] बदले उनका अधिकाधिक अवलम्ब करते हैं और [illegible] उन्नति मान रहे हैं! देखिए, इस समय, [illegible] साधनों की प्राप्ति के लिए, हमारे शिक्षित समाज [illegible] शक्ति को कैसा भयानक मानसिक श्रम और [illegible] व्यय करना पड़ता है। इस बात का कोई विचार [illegible] कि शरीर की पूरी वृद्धि होने के पहले, अथवा [illegible] अवस्था आने के पहले, इनसे कितना मानसिक [illegible] करना चाहिए। अब हमारे युवक, अपनी शारीरिक और मानसिक परिश्रम के उचित परिमाण [illegible] [illegible]

। अल्प समय में इतना अधिक मानसिक श्रम करें कि हम पश्चिमी सभ्यता और विद्वत्ता की चोटी पर जा ! इस प्रयत्न में हमारा शरीर निर्बल हो जाय और री बुद्धि क्षीण हो जाय तो भी कुछ परवा नहीं ! परन्तु, ण रहे, अल्प समय में अपरिमित विद्याभ्यास करने से रे शरीर और हमारी बुद्धि का ही ह्रास न होगा, किन्तु री सन्तति की कर्तृत्व शक्ति का भी नाश हो जायगा।

जिनको सुख, समाधान और जीवन-निर्वाह के साधनों अनुकूलता है; जिनको विद्याध्ययन करने में अधिक या उतावली नहीं करनी पड़ती, और जिनकी बुद्धि बहुत है—उन लोगों पर भी विशेष ज्ञान प्राप्ति तथा विचार-र्य का अनिष्ट परिणाम हुए बिना नहीं रहता। इस ा में जिन लोगों को ऐसी अनुकूलता नहीं उन पर अर्थात् हमारे वर्त्तमान शिक्षित समाज पर) कितना अधिक परिणाम होगा, इसकी कल्पना तक नहीं की जा कती। जगत् के इतिहास की ओर देखने से मालूम होता कि जो लोग किसी विशेष ज्ञान में अत्यन्त प्रवीण और सेद्ध हो गये हैं उनमें से अधिकांश सन्तान-हीन थे, कुछ विवाहित भी थे। हमारे आधुनिक शिक्षित समाज का, त पचास साठ वर्ष का, इतिहास देखा जाय तो यही ादित होगा कि बहुतेरे सुप्रसिद्ध विद्वान् सन्तान हीन हैं, ार यदि किसी के सन्तान है भी तो वह अपने कुल की ाभा बढ़ाने के बदले उसकी विडम्बना ही का कारण है। ात्पर्य यह कि बुद्धि का प्रकर्ष—मस्तिष्क का अमर्यादित यय—सन्तान के लिए हानिकारक है।

कुछ लोग यह कहा करते हैं कि पिता की विद्वत्ता जितनी अधिक होगी उतनी ही, अथवा उससे भी अधिक, विद्वत्ता उसकी सन्तान की होगी। परन्तु यह विश्वास एकान्ति तत्त्व और अनुभव के विरुद्ध है। शिक्षित पिता और उसके पुत्र की बुद्धि में सदा ही व्यस्त परिमाण ही (Inverse ratio) देख पड़ता है। आज कल के मुन्सिफ़, तहसीलदार, डिप्टी कलेक्टर, वकील, डाक्टर, शिक्षक, प्रोफ़ेसर आदि शिक्षित सज्जनों से पूछिए—"महाराज, जब आप अपने लड़के की उम्र के थे उस समय आपकी जैसी बुद्धि थी, क्या वैसी ही बुद्धि इस समय आपके लड़के की भी है ? अथवा, जिस उम्र में, जितने परिश्रम से, जितनी विद्वत्ता आपने प्राप्त कर ली थी, क्या उतनी ही उम्र में, उतने ही परिश्रम से, उतनी ही विद्वत्ता आपके लड़के ने भी प्राप्त की है या प्राप्त करने के लक्षण उसमें देख पड़ते हैं ? सब बातों का विचार करके कहिए कि आपकी सन्तान की बुद्धि आप से कम है, अथवा अधिक है, अथवा बराबर ?" हमारा विश्वास है, इन प्रश्नों का यही उत्तर मिलेगा—"आज कल के लड़कों की बुद्धि बहुत मन्द देख पड़ती है; उन्हें विद्याध्ययन में अधिक मिहनत करनी पड़ती है"। पाठशालाओं के शिक्षक और कालेजों के अध्यापक भी कहते हैं—'विद्वान् और सुशिक्षित पुरुषों के लड़के किसी काम के नहीं रहते—उनमें अपने पिता का कुछ भी तेज नहीं देख पड़ता'। जब इस शोचनीय दशा पर चर्चा होने लगती है तब कोई गृह-शिक्षा को दोष देता है, कोई माता-पिता के प्यार को दोष देता है, कोई लड़कों के खिलाड़ी और आलसीपन को दोष देता है, कोई शिक्षकों और अध्यापकों को दोष देता है और कोई शिक्षा-पद्धति ही को सब दोषों की जड़ समझता है। यदि इन बातों में कुछ न्यूनता देख पड़ती है तो चारों ओर से पुकार होने लगती है कि बस, यही हमारी अवनति का सच्चा कारण है। जब तक इसमें सुधार न होगा तब तक हमारी उन्नति नहीं हो सकती। परन्तु, स्मरण रहे कि ये बातें हमारी अवनति का—हमारे सामाजिक ह्रास का—हमारी सन्तान की बुद्धि की क्षीणता और शारीरिक दुर्बलता का—सच्चा कारण नहीं। सच्चा कारण यह है कि हम लोग अल्प समय में, विद्याभ्यास करने में, अमर्यादित मानसिक श्रम और मस्तिष्क का व्यय करके स्वयं ही अपने शरीर और अपनी बुद्धि को निर्बल कर डालते हैं। इस प्रकार हम अपनी सन्तान की भी कर्तृत्व-शक्ति का नाश कर देते हैं।

वर्त्तमान समय में जो लोग अपने को शिक्षित और विद्वान् समझते हैं उनको सोचना चाहिए कि हमारे बाप-दादे कितने लिखे पढ़े और कितने विद्वान थे। उन लोगों ने अपने जीवन में जो बड़े बड़े काम किये उनमें उन्हें मस्तिष्क-शक्ति का अधिक व्यय नहीं करना पड़ा था। इस समय पाठशालाओं और कालेजों में जो लड़के सबसे अधिक बुद्धिमान् गिने जाते हैं वे विशेष विद्वान् और शिक्षित माता-पिताओं के पुत्र नहीं। जिन लोगों ने विद्याभ्यास

में बहुत कम निदान की है। इन्हीं की ये सम्मति है। इनमें से अधिकतर शहर-निवासियों के नहीं, किन्तु देहात में रहने वालों के लड़के हैं। एमर्सन नामक ग्रन्थकार ने इन्हीं के विषय पर कुछ निबन्ध लिखे हैं। उनमें उसने इस बात की भी चर्चा की है कि विचारप्राबल्य के अतिरेक से कितनी हानि होती है। वह लिखता है—"Nations burn with internal fire of thought and affection which wastes while it works. We shall find finer combustion and finer fuel. Intellect is a fire, rash and pitiless, it melts the wonderful bone house which is called man. Genius even, as it is the greatest good, is the greatest harm." अर्थात्—विचारों और महत्त्वाकाङ्क्षाओं की आन्तरिक अग्नि से देश जलता रहता है। मालूम होता है कि यह अग्नि एक ओर बहुत अच्छा काम कर रही है, परन्तु दूसरी ओर उससे बहुत हानि भी हो जाती है। बुद्धि, अग्नि के समान है। उसमें न दया है, न दूरदृष्टि। वह हड्डियों की इस विलक्षण इमारत को, जिसे हम मनुष्य कहते हैं, भस्म कर देती है। विलक्षण बुद्धि का होना अत्यन्त हितदायक है; परन्तु उससे बहुत कुछ अनहित भी होता है।

सारांश यह कि थोड़े समय में अधिक लाभ की आशा से पश्चिमी सभ्यता पर मोहित हो जाना और अपने प्राचीन तथा स्वाभाविक स्वरूप का त्याग कर देना मानो अपने समाज को नष्ट करना है। यथार्थ में पश्चिमी सुधार और सभ्यता का स्वरूप बड़ा भयानक है। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है कि जहाँ जहाँ यूरप वालों ने बस्ती की है वहाँ वहाँ के मूल-निवासी नष्ट हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस सुधार और सभ्यता के प्रचार में उन लोगों का हेतु शुद्ध और प्रशंसनीय होता है; परन्तु परिणाम को देख कर उन लोगों को भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। देखिए, किड नामक ग्रन्थकार अपने 'सामाजिक विकास" (Social Evolution) नाम के ग्रन्थ में क्या लिखता है—"The Anglo-Saxon looks forward, not without reason, to the day when wars will cease; but without war, he is in-[illegible] the [illegible] Australian, and the Red Indian [illegible] [illegible] implements [illegible] even more effective and deadly [illegible] than the swords." इसका आशय यह है कि एंग्लो-सैक्सन जाति के लोगों की मन में यही [illegible] रहती है कि दुनिया में लड़ाइयां बन्द हो [illegible] परन्तु युद्ध किये बिना ही ये लोग माओरी, [illegible] और रेड-इंडियन जातियों को नष्ट कर रहे हैं। [illegible] लोगों ने हबशियों को स्वतन्त्र कर दिया है [illegible] जाति अब तक बहिष्कृत मानी जाती है। ये लोग [illegible] अपनी तलवारों को तोड़ कर उनके हल-फाल बना रहे हैं, उनके हाथ में कृषि और उद्योग धन्धों के निरुपद्रवी [illegible] भी विष से भरी तलवारों से अधिक भयानक हो जा[illegible]

तात्पर्य यह कि अपने को नष्ट हो जाने से ब[illegible] लिए हमें पश्चिमी सुधार और सभ्यता का अनुकरण विचारपूर्वक करना चाहिए। हम को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अपने समाज का ह्रास किये बि[ना] हम लोग पश्चिमी सभ्यता की अच्छी अच्छी बातों [को] स्वीकार किस तरह कर सकते हैं। यदि मस्तिष्क के अपरि[मित] मित व्यय से यथार्थ में हमारे समाज का ह्रास हो रहा [है] तो उसे टालने का उपाय अभी से सोचना चाहिए।

दूसरे लेख में सामाजिक ह्रास के अन्य कारणों [पर] विचार किया जायगा।

माधवराव सप्रे।

कृतघ्न सुरेश।

नरेश से सुरेश बड़े हैं। पर, उ[illegible] अधिक चिन्ता नहीं। खाने-पी[ने] के सिवा घर के किसी भी काम से उनका कोई सरोका[र] नहीं। खा-पीकर अपना सोट[ा] उठाया और गांव में इधर उधर घूमने चल दिये। नरेश, सुरेश जैसे नहीं। उन्हें पढ़ने लिखने [illegible]

या घर की भी चिन्ता है। यहाँ यह बतला देना नुचित न होगा कि इस कुटुम्ब में सुरेश और रेश के सिवा और कोई आदमी नहीं। माता-ता इनके पहले ही चल बसे हैं।

सुरेश के पास अधिक धन नहीं। जो कुछ है , वह बढ़ता नहीं; दिन दिन घटता ही जाता । बढ़े भी कैसे? रोज़ रोज़ जब उसमें से कुछ कुछ निकाला ही जाता है और उसके फिर से ाने की कोई सूरत नहीं, तब वह घटने के सिवा ढ़ कैसे सकता है? नरेश बी०ए० पास कर चुके । पर, सुरेश ने उन्हें पढ़ने के लिए अब तक एक ाड़ी भी नहीं दी। एंट्रेंस परीक्षा पास करने के ाद उनके पिता संसार से विदा हुए थे। तब से ागाकर अब तक ये इधर उधर लड़कों को पढ़ा र ही अपना खर्च चलाते रहे हैं। केवल अपना ौर अपनी पढ़ाई भर का ही नहीं, घर का भी ारा खर्च इन्हीं की कमाई से चलता था। ड़ी कठिनाइयों से नरेश बी० ए० पास हुए हैं। ये ब प्रोफ़ेसरी का पद पाने की इच्छा से एम० ए० ास करने की तैयारी में हैं।

सुरेश का सारा धन खर्च हो गया है। उनके ास कौड़ी भी बाक़ी नहीं है। सुरेश ने यह धन छ तो फ़िज़ूलखर्ची में और कुछ खाने पीने में र्च किया है। अब नरेश ही की थोड़ी बहुत कमाई का आसरा है। नरेश सुरेश से कभी कुछ न कहते थे। वे सदा पिता की तरह उनका सम्मान करते थे। नरेश ने दो एक बार बड़े भाई से किसी नौकरी-चाकरी के लिए कहा भी। पर, उनकी इच्छा न देख वे चुप हो रहे।

अनेक कष्ट झेल कर नरेश ने एम० ए० पास कर लिया। वे इस परीक्षा में अपने विश्वविद्यालय में प्रथम आये। नरेश को प्रोफ़ेसरी मिलते देर न लगी। वे जहाँ पढ़ रहे थे उसी कालेज में डेढ़ सौ मासिक पर प्रोफ़ेसर हो गये। अब नरेश और सुरेश के खाने पीने की तकलीफ़ दूर हुई। अब उनके दिन सुख से कटने लगे।

नरेश को प्रोफ़ेसरी करते कुछ समय हुआ। सुरेश को खाली बैठे देख कुछ रुपये लगा कर उन्होंने उनसे एक दूकान खुलवा दी। कुछ ही दिनों में सुरेश को दूकान से बड़ा लाभ हुआ। लाभ के रुपयों में से उन्होंने कुछ ज़मीन भी मोल ले ली। सुरेश नामी दूकानदार और धनी आदमी होगये। नरेश को अब सुरेश के विवाह की भी चिन्ता होने लगी। उन्होंने एक अच्छे घर की कन्या से उनका व्याह करा दिया। सुरेश की स्त्री का नाम है कलावती। कलावती कलह की कला में बड़ी निपुण निकली। इधर एक अच्छी लड़की देख कर नरेश ने भी अपनी शादी कर ली। नरेश की स्त्री का नाम है लक्ष्मी। लक्ष्मी सचमुच ही लक्ष्मी है।

इस प्रकार दोनों भाइयों का विवाह हो चुकने पर इस कुटुम्ब के सुख की मात्रा कुछ घट गई। पर, कलावती अपने स्वभाव के कारण हर बात में लक्ष्मी से लड़ पड़ती। लक्ष्मी बेचारी उसकी बातों को शान्तिपूर्वक सह लेती। वह नरेश से इस विषय में कुछ भी न कहती।

कुछ दिनों बाद सुरेश की पत्नी के एक लड़का हुआ और नरेश की पत्नी के एक लड़की। सुरेश के लड़के का नाम रमेश और नरेश की लड़की का नाम प्रतिभा रक्खा गया। लक्ष्मी रमेश को बहुत प्यार करती, पर, कलावती प्रतिभा को कुछ भी न समझती। तथापि लक्ष्मी इस बात से बुरा न मानती। वह बड़ी ही शान्ति-प्रिय थी।

कलावती यदि कलह-प्रिय न होती तो इस कुटुम्ब पर कभी दुःख का दौरा न होता। यह बहुत अच्छा कुटुम्ब गिना जाता। पर, ऐसा न हुआ। प्रतिभा और रमेश में परस्पर बड़ा मेल था। वे आपस में खेल-कूद के समय लड़ते-झगड़ते, पर फिर हिलमिल कर रहते। प्रतिभा रमेश से साल भर बड़ी थी। वह उससे होशियार भी अधिक थी।

सुरेश दूकान में हैं और नरेश कालेज गये हुए हैं। घर में लक्ष्मी और कलावती के सिवा और कोई

नहीं। प्रतिभा आँगन में बैठी बैठी अपनी गुड़ियों से खेल रही है। रमेश ने आकर उसकी आँखें मीच लीं। प्रतिभा हँसकर बोली—"रमेश भैय्या, मैं जान गई। आँखें खोल दो। भला यह तो बताओ, घर में इतने छोटे और सुन्दर हाथ किस के हैं"? रमेश ने हाथ हटा लिये। प्रतिभा ने प्यार से रमेश को पास बिठा लिया। रमेश ने पूछा—"जीजी, क्या करती हो?"

प्रतिभा—"रमेश, आज मेरे गुड्डे का ब्याह है। देखो, मेरे गुड्डे की बहू कैसी सुन्दर है। भैय्या, इसी तरह तुम्हारा भी ब्याह होगा। तुम्हारी भी बहू बड़ी सुन्दर होगी।"

रमेश अपनी बचपन की हँसी हँसता हुआ बोला—"प्रतिभा बहिन, मेरी बहू तुम जैसी होगी।"

अबोध रमेश का यह सरल वचन सुन कर प्रतिभा पानी पानी हो गई। मुसकराती हुई प्रतिभा ने रमेश के दोनों हाथ पकड़ लिये। हाथ पकड़ कर वह बोली—"पाजी, बदमाश, चुप।" यह कह कर उसने धीरे से उसके दो चपत जमा दिये। बालक रमेश उदास होगया। उसकी बड़ी बड़ी आँखों से आँसू निकल पड़े। कलावती को यह अच्छा मौक़ा हाथ लगा। वह फ़ौरन गरज कर बोली—"अरी प्रतिभा, तू ने रमेश को क्यों मारा"? यह कह कर उसने उसके मुँह पर दो कड़े तमाचे जमा दिये। प्रतिभा दौड़ कर लक्ष्मी के पास चली गई। उसकी गोद में वह मुँह छिपा कर रोने लगी। लक्ष्मी का स्वभाव शान्त था। वह कुछ न बोली।

सन्ध्या हुई। सुरेश और नरेश दोनों घर लौटे। लक्ष्मी ने तो दिन की घटना की कुछ भी चर्चा न की। पर, कलावती से न रहा गया। उसने सुरेश के कान भर दिये। सुरेश से वह बोली—

"आज छोकरी ने रमेश को बिना क़सूर बहुत मारा। उसके गाल सूझ गये हैं। रानी जी यह सब देखती बैठी रहीं। उठ कर छुड़ाया भी नहीं। [?] आकर छुड़ाया। तब भी ये कुछ न बोलीं। प्रतिमा रमेश को बात बात में पीटती रहती है। अब एक [?] में नहीं रह सकती। मुझसे देखा जायगा।"

सुरेश के कान में रोज़ ही कुछ न कुछ कलावती भरा करती थी। पर, आज मात्रा बहुत अधिक हो गई। कुछ सोचे बिना ही सुरेश ने आँगन में आकर नरेश को पुकारा। नरेश बाहर आये। सुरेश नरेश से लगे —"नरेश, हम देखते हैं, आज कल घर में बहुत होती है। थोड़ी थोड़ी सी बात पर भी बड़ा झगड़ा उठ खड़ा होता है। प्रतिभा बिना ही रमेश को पीटा करती है। अच्छा हो, दोनों अलग अलग खेलें, और स्त्रियाँ भी अलग रहें।"

यह सुन कर सात वर्ष की प्रतिभा ने से मुँह निकाल कर कहा—'नहीं ताऊजी, रमेश के साथ ज़रूर खेलूँगी।"

सुरेश कलावती की ओर देखने लगे। पती ने आँख के इशारे से सुरेश के रहे सहे को भी नष्ट कर दिया। नरेश सुरेश कहने लगे—

भाई साहब, ...

उनकी बात बीच में ही काट कर बोल उठे—

'मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका।"

नरेश चुप रहे, वे कुछ न बोले। थोड़ी बाद बँटवारा होगया। लक्ष्मी ने कहा—"दूका और ज़मींदारी?"

सुरेश ने नरेश से कहा—"ये दोनों मेरे नाम हैं। मेरे ही नाम रहेंगी। जो चाहे तो नालिश करके ले लेना।"

भाई की बात सुन कर नरेश बोले—

"धिक्कार है मुझे, जो मैं एक बिस्वा ज़मीन और एक छोटी सी दूकान के लिए भाई पर दावा करूँ! आप मेरे बाप जो कुछ है वह ले लें। मुझे तो इसी नौकरी की आमदनी ही काफ़ी है।"

दूसरे दिन सवेरे ही नरेश शहर में एक किराये के मकान में चले गये। अपनी चीज़ वस्तु सब वे सुरेश के पास ही छोड़ते गये।

लक्ष्मी ने नरेश से कहा—"यह क्या! ज़रा सी चीज़ पर आप सब कुछ वहीं छोड़ आये। प्रतिभा का विवाह करना है, उसके लिए ही कुछ रखते।"

नरेश ने लक्ष्मी से कहा—"आख़िर भाई को तो दिया है, दुश्मन को तो नहीं। क्यों न प्रतिभा?" यह सुन कर प्रतिभा अपने पिता के गले से चिपट कर हँसने लगी।

साल भर नरेश सुख से कमाते और खाते पीते रहे। दूसरे साल उन्हें तपेदिक की बीमारी हो गई। बहुत दिनों तक खाट में पड़े रहने के कारण उनकी नौकरी भी छूट गई। अब खाने-पीने के लिए भी तकलीफ़ होने लगी। लक्ष्मी ने अपने गहने बेच बेच कर पति की तन, मन से सेवा-शुश्रूषा की। पर, परमात्मा अधिक दिनों तक लक्ष्मी पर प्रसन्न न रहे। उन्होंने नरेश को शीघ्र ही संसार से विदा कर दिया। नरेश अपनी प्यारी पत्नी और प्राणाधार बालिका को अनाथ छोड़ कर संसार से सर्वदा के लिए कूच कर गये।

सुरेश को नरेश की मृत्यु का समाचार मिला। वे भाई के मृत शरीर को देखने के लिए उसके घर गये। दो आँसू भी वहाँ उन्होंने बहाये। पास पड़ोस के लोगों ने कहा—"भाई का क्रिया-कर्म तुम्हीं को करना चाहिए।"

सुरेश बोले—"ज़रा घर में पूछ तो लूँ।"

हद होगई। अरे कृतघ्न! तू ने यह क्या किया! जिस भाई की बदौलत तू इस दशा को पहुँचा है, जिसकी बदौलत तू सुरेशचन्द्र जेनरल मर्चेंट बना है, जिसकी बदौलत तुझे लोग ज़मींदार कहते हैं, हाय, उसी अपने सहोदर का शरीर-संस्कार तू अपनी स्त्री से पूछ कर करेगा! ऐसे समय पर लोग अपने घोर शत्रु से भी इस तरह का बर्ताव नहीं करते। तू तो अपने भाई के लिए ऐसा कर रहा है। नरेश, तेरा सहोदर तेरा उपकार करने वाला भाई था। हाय, आज तू ने उसके उपकारों की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। रे पापी, तू भी एक दिन इस संसार से इसी तरह कूच कर जायगा। तेरे पीछे लोग तेरा नाम लेना भी बुरा समझेंगे।

सुरेश अपने घर चले गये। उन्होंने कलावती से पूछा—"तुम्हारी क्या राय है। नरेश का मृतक-संस्कार मैं करूँ कि नहीं?"

कलावती बोली—"तुम वैसे ही बीमार रहते हो। इस कड़ी दोपहर में पाँच घण्टे तक आग के सामने रहोगे। कहीं अधिक बीमार न हो जाव। कहला दो, वही सब कुछ कर डाले।"

सुरेश ने एक पड़ोसी की मारफ़त लक्ष्मी को कहला भेजा—"मेरी तबीयत ख़राब है।"

हा भगवन्! भाई भतीजों के होते भी आज नरेश का मृतक-संस्कार उसकी स्त्री ही को करना पड़ा!

नरेश का मृत-शरीर भागीरथी के तट पर पहुँचा। चिता चुनी गई। उसके ऊपर नरेश का शरीर रख दिया गया। चिता में आग लगाने का समय आया। नरेश का कोमल शरीर, जो गुदगुदे बिछौने पर रहता था, आज लकड़ी जैसी कड़ी वस्तु के ऊपर रक्खा हुआ है। जो लक्ष्मी नरेश के शरीर की बड़े यत्न से सेवा-शुश्रूषा करती थी, आज वही उस पर आग लगावेगी। हाय, लक्ष्मी के लिए यह समय कैसा भयङ्कर है! उपस्थित मनुष्यों की आँखों में आँसू भर आये। वे रो रो कर उसके दुःख से सहानुभूति प्रकट करने लगे।

लक्ष्मी ने रोते रोते चिता में आग लगा दी। हवा तेज़ थी। आग भड़क उठी। थोड़ी ही देर में नरेश का शरीर जल कर राख होगया। लक्ष्मी राख को भागीरथी के प्रवाह, को सौंप कर घर लौट आई।

× × × × ×

लक्ष्मी के वे दिन अब नहीं। गहने सब बिक ही चुके थे। खाने को भी अब मुहताज होगई। सुरेश ने कुछ सहायता करनी चाही, पर कलावती

को यह अच्छा न लगा। उसने सुरेश को खूब डाँटा। सुरेश बेचारे चुप रह गये।

बड़े सुख से पली हुई प्रतिभा को अब समय पर खाना नहीं मिलता। कपड़े भी उसके बिलकुल मैले और फटे-पुराने हैं। आज रमेश का जनेऊ है। छोटे छोटे लड़के अच्छे अच्छे कपड़े पहने घूम रहे हैं। रमेश के एक बहिन भी थी। वह उमदा साड़ी पहने उमङ्ग में इधर उधर घूम रही थी। साढ़े आठ वर्ष की प्रतिभा भी अपनी फटी साड़ी पहने लड़कों में जा मिली। रमेश की बहिन ने कहा—"देखो मेरी रेशमी साड़ी।" प्रतिभा अपनी धोती का छोर दिखा कर बोली—"देखो मेरे भी है।" रमेश की बहिन बोली—"मेरी साड़ी नई और रेशमी है।" बालिका प्रतिभा उदास होकर लक्ष्मी के पास चली गई। उसी समय से उसको बड़े ज़ोर से ज्वर चढ़ आया। शाम को लक्ष्मी एक कटोरी लेकर कलावती से उसके लिए दूध माँगने गई। कलावती बोली—दूध थोड़ा ही है। वह रमेश के लिए रक्खा है। लक्ष्मी अपना सा मुँह लेकर वापस [illegible] गई।

प्रतिभा का ज्वर रात को [illegible] भी बढ़ गया। [illegible] भी [illegible] कलावती से दूध माँगने गई। कलावती ने [illegible] जवाब दिया।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वेच कर नई साड़ी पहनाऊँगी।" पर इस[illegible] के समाप्त होते ही प्रतिभा की सांसारिक [illegible] समाप्त हो गई। सुरेश अपने हृदय को [illegible] पाँवों वहाँ से लौट आये।

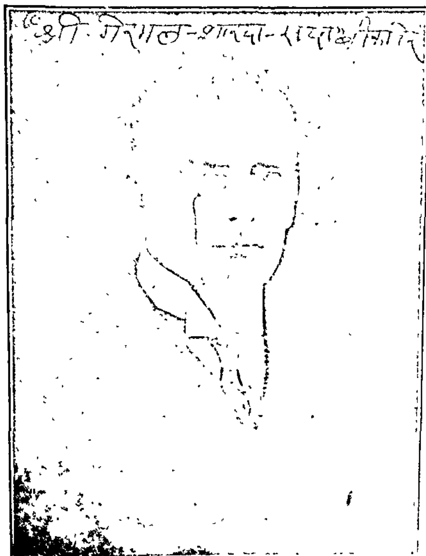
बावला

मेघदूत का रामगिरि।

कुछ दिनों से इस बात पर विचा[र हो] रहा है कि मेघदूत का राम[गिरि] कौन सा है। १९०६ से इस वि[षय] पर अब तक कई लेख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुके हैं। भिन्न भिन्न [लेख]कों के मत से रामटेक या रामटेकरी, जो नाग[पुर के] पास है, रामगढ़ या रामगिरि जो रियासत [illegible] के पास है, रामटेकरी जो रतनपुर के पास है, रामटेकरी जो सरगुजा राज्य में है, मेघदूत [का] रामगिरि है। इसके अतिरिक्त अमरकण्ट[क के] पश्चिमोत्तर कोण में एक रामगढ़ है और गो[illegible] के दक्षिण भी एक रामगिरि है। अब देखना [है] कि इनमें से कोई मेघदूत में वर्णित रामगिरि [हो] सकता है या नहीं।

मेघदूत में मेघ के जाने का पथ यों दिया है—रामगिरि से चल कर उत्तर दिशा में [illegible] वहाँ से उत्तर अथवा पश्चिमोत्तर दिशा में [illegible]

[illegible]



राइट आनरेबल [illegible] [illegible]
भारत के नये सेक्रेटरी आव् स्टेट।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

दे उलटा चलिए तो आम्रकूट विदिशा के दक्षिण होना चाहिए, मालक्षेत्र आम्रकूट के दक्षिण अथवा दक्षिण-पूर्व होना चाहिए और रामगिरि मालक्षेत्र के दक्षिण होना चाहिए। मेघदूत के अनुसार यही स्थिति होनी चाहिए। इससे सिद्ध है कि आम्रकूट और अमरकण्टक एक नहीं हैं, जैसा कि किसी महाशय ने माना है। विशेष विचार करने के पहले हम मेघदूत के सोलहवें श्लोक के उत्तरार्द्ध पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। वह इस प्रकार है—

सद्यः सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालम्।
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

इस पर मल्लिनाथ सूरि टीका में लिखते हैं—

मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम्। सद्यस्तत्कालमेव सीरैर्हलैरुत्कर्षणेन सुरभिघ्राणतर्पणं यथा तथारुह्य। तत्राभिवृष्येत्यर्थः। किञ्चित्पश्चाल्लघुगतिस्तत्र निवृष्टत्वाल्लिप्रगमनः सन् भूयः पुनरप्युत्तरेणैवोत्तरमार्गेणैव व्रज गच्छ।

अर्थात्—रामगिरि से उत्तर दिशा में चल कर मालक्षेत्र को जाना। वहाँ थोड़ी देर ठहर कर (पानी बरसा कर) फिर शीघ्र-गति से उत्तर दिशा की ओर बढ़ना।

'किञ्चित्पश्चाद् व्रज' का जो कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि थोड़ी दूर तक पश्चिम दिशा में चल कर फिर उत्तर दिशा की ओर चलना—यह मनमाना है और टीकाकार के विरुद्ध है। यदि मेरा किया हुआ अर्थ ठीक है तो रामगिरि को आम्रकूट के दक्षिण ही होना चाहिए, दक्षिण-पूर्व नहीं, जैसा कि किसी महाशय ने लिखा है।

बिना प्रमाण के कोई बात कहना व्यर्थ है। इसलिए सबसे पहले मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि क्यों आम्रकूट और अमरकण्टक एक नहीं हो सकते। भारतवर्ष के नक़शे को देखिए। विदिशा (भिलसा) ७८ अक्षांश के पश्चिम है और अमरकण्टक ८२ अक्षांश के भी पूर्व। अतएव ये दोनों स्थान ऊपर-नीचे नहीं हो सकते। अथवा यों कहिए कि अमरकण्टक से उत्तर की ओर जाने से दशार्ण देश, बेतवा नदी और विदिशापुरी मिल ही नहीं सकती। फिर अमरकण्टक कैसे आम्रकूट कहा जा सकता है? दोनों में नाम सादृश्य तो कुछ अवश्य है, परन्तु दोनों स्थान एक नहीं।

जो रामगढ़ या रामगिरि रियासत बस्तर में है वह भी रामगिरि नहीं हो सकता। क्योंकि वह भी ८२ अक्षांश के पूर्व है। विदिशा के और उसके अक्षांश में चार अंश (डिगरी) का अन्तर है। रतनपुर के पास की रामटेकरी भी, इसी कारण से, रामगिरि नहीं हो सकती। इस रामटेकरी और विदिशा तथा उज्जयिनी के देशान्तर में कुछ ही कलाओं का अन्तर है। अतएव ये तीनों स्थान एक दूसरे के पूर्व-पश्चिम हैं, उत्तर दक्षिण नहीं। इसके निकट का मालदा मालक्षेत्र नहीं हो सकता, क्योंकि वह भी रामटेकरी के उत्तर नहीं है। सरगुजा वाला रामगढ़ तो और भी पूर्व है। वह विदिशा के ठीक पूर्व है, इसलिए वह भी रामगिरि नहीं हो सकता।

अमरकण्टक के पश्चिमोत्तरवाला रामगढ़ भी रामगिरि नहीं, क्योंकि यदि अमरकण्टक को हम आम्रकूट मान भी लें तो रामगढ़ उसके दक्षिण में होना चाहिए, पश्चिमोत्तर में नहीं। गोदावरी के दक्षिणवाला रामगिरि भी मेघदूतवाला रामगिरि नहीं, क्योंकि सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्र गोदावरी के दक्षिण कभी नहीं रहे। अब रही केवल वह रामटेकरी जो नागपुर के पास है। वह टेकरी भी विदिशा के ठीक दक्षिण नहीं है, किन्तु दक्षिण पूर्व में है। परन्तु वहाँ राम, लक्ष्मण और सीता सम्बन्धी बहुत से टूटे फूटे मन्दिर हैं। यदि यह मान लें कि कवि ने उत्तर दिशा का उल्लेख सामान्य रीति से किया था तो इस रामटेकरी को रामगिरि मानने में विशेष आपत्ति नहीं। अथवा यों कहिए कि ऊपर जितने स्थान लिखे गये हैं उनमें से रामगिरि होने की सबसे अधिक सम्भावना इसी रामटेकरी की है। मेरी सम्मति तो यह है कि ठीक भिलसा के दक्षिण ताम्र-कूट के निकट में रामगिरि का पता ढूँढ़ना चाहिए।

रामटेकरी के रामगिरि होने के समर्थन [illegible] [illegible] के लिखे हुए पुस्तकों [illegible] देखना है—

"वाल्मीकि रामायण के आधार पर निश्चित, ऊपर लिखे हुए, मार्ग से यह ज्ञात होता है कि रामचन्द्र ने विन्ध्य-पर्वत तथा कोशल देश, जो उनका ननिहाल था, टालने के लिए चित्रकूट से चल कर थोड़ी ही दूर पर दण्डकारण्य में प्रवेश किया था। रामचन्द्र का प्रण था कि पिता के आज्ञानुसार— वत्स्यामि विजने वने'। फिर यह सम्भावना क्यों कर हो सकती है कि उन्होंने नागपुर में जाकर रामटेक में निवास किया? क्योंकि नागपुर दक्षिण-विन्ध्य के पश्चिम, विदर्भ देश के अन्तर्गत है। अर्थात् रामचन्द्र विन्ध्य-पर्वत को एक तरफ़ छोड़ कर दण्डकारण्य के भीतर से गये थे, इस कारण दक्षिण-विन्ध्य के दूसरी ओर जो स्थान हैं उनमें रामचन्द्र का जाना कदापि सम्भव नहीं हो सकता। रामचन्द्र को न तो नर्मदा नदी लाँघनी पड़ी और न विन्ध्य-पर्वत ही को किसी जगह उन्होंने पार किया। इससे रामटेक में रामचन्द्र का जाना सिद्ध नहीं होता"।

दुबेजी ने भारतवर्ष का एक नक़्शा भी अपने लेख के साथ दिया है (सरस्वती, जनवरी १९०६, देखिए)। प्रसिद्ध स्थान पञ्चवटी नासिक के पास है। परन्तु इस नक़्शे में यह मदरास हाते में दिखाई गई है। लोक-प्रसिद्ध पञ्चवटी को बम्बई हाते से उठा कर मदरास हाते में ले जाने के लिए प्रमाण देना आवश्यक था जो नहीं दिया गया। दुबेजी ने यह मान लिया है कि नागपुर का यह प्रान्त, जहाँ रामटेक है, रामचन्द्र के समय में जनशून्य न था। विदर्भ देश के अन्तर्गत होने ही से दुबेजी ने शायद यह समझ लिया कि रामटेक रामचन्द्रजी के समय [illegible]। क्योंकि रामायण में यह कहीं नहीं [illegible] लिखा कि रामचन्द्र ने नर्मदा को पार किया और [illegible] एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व को गये। [illegible] दुबेजी ने यह सिद्धान्त निकाला है कि राम- [illegible] नहीं हो सकता। [illegible]

दिशा में चल कर दण्डकारण्य में जाते हुए राम सोन नदी के किनारे कैसे पहुँचे थे? इसीसे हि है कि नर्मदा नदी पार करने का उल्लेख न होने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि रामचन्द्र नर्मदा को नहीं पार किया। मालूम होता है दुबेजी ने रामायण के उस अंश पर ध्यान नहीं दि जहाँ दण्डकारण्य की सीमा निर्दिष्ट है। रामा ही में लिखा है कि दण्डकारण्य की विस्तृति वि और शैवल गिरियों के मध्य में थी। अर्थात् विन् गिरि के दक्षिण पार्श्व ही से दण्डकारण्य शुरू हो था। तब कैसे कहा जा सकता है कि श्रीरामच विन्ध्य के दक्षिण पार्श्व में नहीं गये! दुबेजी कुछ भ्रम हो गया है, जिससे उनकी पञ्चव पश्चिम से पूर्व चली गई और कितने ही स्थान भी उलट पुलट गये।

हरिप्रसाद पालधि।

फिलीपाइन द्वीप में शिक्षा-प्रचार।

चीनी समुद्र के पूर्व में एक छोटा द्वीप समुदाय है। उसको लो फिलीपाइन्स कहते हैं। कु समय पहले वहाँ स्पेन देश राज्य था। परन्तु अब पन सोलह वर्ष से अमेरिका ने वहाँ अपनी स स्थापित की है। थोड़े ही समय में जो आश्चर्यज उन्नति इस द्वीप-समुदाय में दिखाई दी है भारतवर्ष में साठ सत्तर वर्ष के प्रयत्न से होने वाली उन्नति से भी कहीं बढ़ चढ़ कर इसका एक मात्र कारण यही है कि इस द्वी समुदाय के शासन कर्ताओं और वहाँ की प्र की आकांक्षाओं में मतभेद नहीं। शिक्षा ही स उन्नति का मूल आधार है। इसी से इस द्वी पुंज में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता

अमेरिका में, जब सांई तीन सौ ग्रन्थ के शा बाद में, वहाँ शिक्षा प्रचार के विषय में वि

ध्यान नहीं दिया था। सर्व-साधारण में शिक्षा का प्रचार करने के लिए सन् १८६३ में एक आज्ञापत्र प्रकाशित हुआ था, जिसके आधार पर बहुत सी प्राथमिक पाठशालायें खोली गई थीं। परन्तु दो कारणों से विशेष उन्नति न हुई—(१) वहाँ की शिक्षा-पद्धति बिलकुल पुराने ढँग की थी; (२) शिक्षा की देख-भाल का महत्त्वपूर्ण कार्य्य उन पादरियों को सौंपा गया था जो शासनकार्य्य से निष्ठ सम्बन्ध रखते थे। परिणाम यह हुआ कि इस द्वीप-समुदाय के निवासियों की शिक्षा सन्तोषदायक न हुई।

ज्योंही इस द्वीप-समुदाय में अमेरिका की सत्ता स्थापित हुई त्योंही यह निश्चय किया गया कि (१) सर्वसाधारण में बड़े विस्तार और उदारता से शिक्षा का प्रचार किया जाय; (२) इस द्वीप के निवासियों को कलाकुशलता और भिन्न भिन्न व्यवसायों की उच्च शिक्षा दी जाय; (३) इस द्वीप ही के बहुत से निवासी प्रभावोत्पादक और योग्य शिक्षक बनाये जायँ, जिससे शिक्षा का कार्य्य अत्यन्त शीघ्रता और सरलता से हो। बस, इन्हीं तीन तत्त्वों के आधार पर वहाँ शिक्षा के प्रचार के लिए पूरा पूरा यत्न किया गया। इसके अच्छे फल फिलीपाइन के निवासी अब बड़े आनन्द से चख रहे हैं। अब इन तत्त्वों के प्रयोगों का कुछ वर्णन सुनिए।

(१) सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रचार।

प्राथमिक शिक्षा ग्यारह वर्ष में पूरी होती है। इसके तीन विभाग हैं:—प्रारम्भिक में चार वर्ष, माध्यमिक में तीन वर्ष और उच्च में चार वर्ष लगते हैं। इन विभागों में पढ़ना लिखना, व्याकरण, भाषा-सम्बन्धी ज्ञान, गणित, भूगोल, आरोग्य-शिक्षा इत्यादि विषयों के साथ साथ उद्योग-धन्धों की शिक्षा भी विशेष रीति से दी जाती है। विशेषता यही है कि जिस स्थान में जिस वस्तु की उपज होती है या जिस वस्तु की थोड़े ही दाम में मिलने की सम्भावना रहती है उस स्थान में उसी वस्तु से व्यावसायिक पदार्थ आदि बनाना अधिकता से सिखाया जाता है। प्रारम्भिक विभाग के चार वर्षों की शिक्षा का क्रम संक्षेप में यह है—

पहला वर्ष—प्रत्येक विद्यार्थी को दस्तकारी (Manufacture) और उद्योग-धन्धा (Industry), इन दो में से कोई भी एक विषय अवश्य लेना पड़ता है। इस वर्ष मोटी मोटी और उपयोगी चीज़ें—जैसे चटाई, बोरी, पंखा, टोकरी, पुस्तकें रखने की थैलियाँ आदि बनाना सिखाया जाता है।

दूसरा वर्ष—हाथ से कपड़ा बुनना और बग़ीचे का काम सिखाया जाता है। इसके साथ ही इन विषयों में से कोई एक विषय और भी लेना पड़ता है—(१) लकड़ी पर काम करना; (२) चिकनी मिट्टी की चीज़ें बनाना (Clay-Modelling); (३) सादे नमूने पर गोटे-किनारी का काम करना (लड़कियों के लिए)।

तीसरा वर्ष—इन विषयों में से दो विषय अवश्य लेने पड़ते हैं—(१) हाथ से कपड़ा बुनना (२) टोकरी बनाना (३) बाग़ सम्बन्धी काम (४) लकड़ी का काम (५) बाँस का काम (६) यन्त्रों से कपड़ा बुनना (७) मिट्टी की चीज़ें बनाना (८) सिलाई का काम। इस वर्ष के विद्यार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे अपनी निपुणता से उपयोगी और शीघ्र बिक जाने वाली चीज़ें तैयार कर सकेंगे।

चौथा वर्ष—ऊपर लिखे गये विषयों में ये विषय और जोड़ दिये जाते हैं—(१) गृह-कार्य्य (२) आरोग्य-रक्षा तथा सफ़ाई (३) गोटे का काम (४) कारचोबी। इस वर्ष प्रारम्भिक विभाग की शिक्षा पूरी हो जाती है। इस वर्ष के अन्त में विद्यार्थियों में स्वतन्त्र रीति से किसी न किसी धन्धे का काम करने की शक्ति अच्छी तरह आ जाती है।

प्रारम्भिक विभाग की चार वर्ष की शिक्षा पूरी हो जाने पर छात्रों के लिए दो [illegible] हैं।

या तो वे माध्यमिक विभाग की शिक्षा पावें, या फ़िलीपाइन स्कूल आव् आर्ट्स ऐण्ड ट्रेड्स में कला-कुशलता की शिक्षा प्राप्त करें। माध्यमिक वर्षों की पढ़ाई के छः भाग हैं—(१) साधारण शिक्षा—इसमें इतिहास, भूगोल, सङ्गीत-विद्या और शरीर-शास्त्र की शिक्षा दी जाती है। (२) शिक्षक का काम (३) खेती किसानी का काम इसमें वनस्पति-शास्त्र और खेती की सब आवश्यक बातें सिखाई जाती हैं (४) व्यापार की शिक्षा (Trade):—इसमें दूकानदारी की शिक्षा दी जाती है (५) गृह-कार्य—इसमें रसोई, सीना-पिरोना, कपड़ा बुनना, सदाचार, आरोग्य-रक्षा, स्वच्छता आदि की शिक्षा दी जाती है (६) व्यवसाय (Business):—इसमें टाइप राइटिङ्ग और जमाख़र्च का हिसाब रखना आदि सिखाया जाता है। इस अभ्यासक्रम के साथ साथ राज्य-प्रबन्ध और चित्र-कला की शिक्षा का भी प्रबन्ध रहता है।

(२) कला-कुशलता की शिक्षा।

इस विषय की शिक्षा देने के लिए सन् १९०१ में फ़िलीपाइन स्कूल आव् आर्ट्स ऐण्ड ट्रेड्स [illegible]

व्यापार-धन्धे में लग कर अपनी योग्यता-सार स्वतन्त्र-रीति से जीवन व्यतीत कर सकें। पाठशाला में व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा की अधिक ध्यान दिया जाता है। सन् १९१[illegible] स्कूल की बनी हुई चीज़ों की बिक्री से [illegible] हज़ार की आमदनी हुई थी। यह धन छात्रों का उत्साह बढ़ाने में ख़र्च किया [illegible] इस स्कूल में भर्ती होने के लिए, कम प्रारम्भिक स्कूल की शिक्षा प्राप्त करनी [illegible] यहाँ छात्रों से फ़ीस कुछ भी नहीं ली [illegible] प्रत्येक विद्यार्थी को यह प्रतिज्ञा करनी [illegible] कि यहाँ की शिक्षा पाने पर मैं नौकरी न [illegible] किन्तु किसी रोज़गार धन्धे ही में लग[illegible] इस स्कूल की शिक्षा सात वर्ष में पूरी [illegible] है। इसके बाद विद्यार्थी अपनी इच्छा के [illegible] कालेज में आ सकता है।

शिक्षक।

पहले पहल यहाँ गवर्नमेंट के आज्ञानुस[illegible] पचास अमेरिकन शिक्षक अँगरेज़ी [illegible] देने के लिए भेजे गये। इस द्वीप में शिक्ष[illegible] संख्या बहुत ही कम थी। इस कारण [illegible] [illegible]

आ। अब तो इस संख्या में और भी अधिक वृद्धि हुई होगी।

सारांश यह है कि इस छोटे से द्वीप-समुदाय में जो शिक्षा दी जाती है उसका एकमात्र उद्देश यही है कि यहाँ के निवासी स्वतन्त्र रीति से अपना जीवन व्यतीत कर सकें—उन्हें अपने सुख के लिए किसी दूसरे का मुँह न ताकना पड़े। वही शिक्षा अच्छी समझी जाती है जिसकी सहायता से मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह में सफल हो सके। जिस शिक्षा से मनुष्य केवल नौकरी ही करने के योग्य हो जाता है उस शिक्षा को यथार्थ में "शिक्षा" नहीं कह सकते। फ़िलीपाइन के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात है कि यहाँ शिक्षा के यथार्थ हेतु पर उचित ध्यान दिया जाता है। यहाँ के कोई सत्तर लाख निवासियों का प्रायः छठा भाग विद्यार्थियों ही का है। सन् १९१०–११ में इस छोटे से द्वीप-समुदाय में प्रारम्भिक स्कूलों की संख्या ४१३१, माध्यमिक स्कूलों की संख्या २४५ और ऊँचे दरजे के स्कूलों की संख्या ३८ थी। इन ४४०४ स्कूलों में ६,१०,४९३ विद्यार्थी पढ़ते थे। उस साल गवर्नमेंट ने शिक्षा के प्रचार के लिए १,०३,५०,००० रुपये ख़र्च किये। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए गवर्नमेंट का कोई २३ रुपये वार्षिक ख़र्च पड़ा। गवर्नमेंट की शिक्षा-सम्बन्धिनी उदारता का अनुमान इस बात से भी किया जा सकता है कि फ़िलीपाइन में किसी को अपनी ग़रीबी या दरिद्रता के कारण शिक्षा से वञ्चित नहीं रहना पड़ता। यहाँ की गवर्नमेंट इस बात के प्रयत्न में लगी रहती है कि एक भी लड़का या लड़की अशिक्षित न रहने पावे। आरम्भ ही से यहाँ ऐसा क़ानून बना दिया गया है, जिससे सब लोगों को मुफ़्त और ज़बरदस्ती (Free and Compulsory) शिक्षा दी जाती है।

फ़िलीपाइन द्वीप में शिक्षा की सफलता का रहस्य इसी बात में है कि यहाँ दस्तकारी, व्यापार, उद्योग-धन्धा और कलाकुशलता की शिक्षा देने में बहुत उदारता प्रकट की गई है। हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों में भी ऐसी शिक्षा देने का बहुत कम प्रबन्ध है, छोटे शहरों और क़सबों की तो बात ही नहीं। हिन्दू-विश्वविद्यालय को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

श्रीत्रिविक्रम शर्म्मा

वल्लभाचार्य्यजी का जन्म-स्थान।



क्षिण में चम्पारण्य अथवा चम्पकारण्य नामक एक वन है। यह महानदी के तट से एक मील के अन्तर पर, मध्य-प्रदेश के रायपुर नगर से अनुमान ३५ मील है। रायपुर से धमतरी को जो रलवे लाइन जाती है उस पर अभनपुर नाम का जंकशन है। उसके आगे एक स्टेशन राजिम है। उसे राजीवलोचन का स्थान कहते हैं। यह रायपुर से २८ मील है। यहाँ से चम्पारण्य को जाते हैं। महानदी के इस पार नयापारा है। यहाँ यात्रियों के विश्राम के लिए एक उत्तम धर्मशाला है। उसे देवकीनन्दनाचार्य्य के नाम से रायबहादुर बंशीलाल अबीरचन्द ने बनवाया है। इस नयापारा से आधी कच्ची सड़क चम्पारण्य को गई है। यहाँ से यह ७ मील है। उसे अब लोग चाँपाझर कहते हैं।

यहाँ के कई प्राचीन पुरुष तथा विद्वानों का कथन है कि ५०० वर्ष पूर्व यह वन सघन, कटीले शमी आदि वृक्षों से पूर्ण था। तमाल, पलाश, आम्र, सागौन आदि के बीच बीच में इतने ऊँचे वृक्ष थे कि मध्याह्न में भी सूर्य्य के दर्शन न होते थे। सदा निविड़ अन्धकार से सारा वन व्याप्त रहता था। सिंह, व्याघ्रादि हिंसक जीवों का भी यह निवास-स्थान था। अतएव एकाकी मनुष्य को [illegible] र से

निकल जाने का साहस न होता था। चम्पा के वृक्षों का इसमें आधिक्य था। इसीसे इसे चम्पारण्य कहते हैं। अब इसमें चम्पा के वृक्ष नहीं हैं। अब यह एक छोटा सा वन रह गया है। उसके भीतर चम्पेश्वर महादेव का मन्दिर है। मन्दिर से थोड़ी दूर पर वल्लभाचार्य्य की बैठक है। उससे एक फरलाङ्ग पर एक नाला जल से सदा भरा रहता है। शाही समय में न सड़कें थीं, न इतनी स्वच्छता; तथापि बहुत से यात्री इन्हीं चम्पारण्य, चित्रकूटादि वनों से होकर काशी आया करते थे।

यही वन श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य्यजी का जन्म स्थान है। संवत् १५३४ में जब यवनों के उपद्रव से दक्षिण देश पीड़ित हुआ तब बहुत से लोग दक्षिण छोड़ कर देशान्तरों को भागने लगे। उसी समय लक्ष्मण भट्टजी, जो तैलङ्ग ब्राह्मण थे, अपनी पत्नी इल्लम्मागारू को साथ लेकर कई एक यात्रियों के साथ काशीयात्रार्थ निकले और इसी वन-मार्ग से काशी गये। इनकी पत्नी गर्भिणी थी। प्रसव समय भी आसन्न था। अकस्मात् उनकी पत्नी का गर्भ इसी वन में गिर पड़ा। पर वे भय से व्याकुल भागते ही चले गये। बालक की ओर उन्होंने कुछ भी लक्ष्य न दिया। काशी आकर वे रहने लगे। इधर ईश्वर ने उस बालक की रक्षा की। सत्य है -

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति" ॥

जब उन्होंने सुना कि दक्षिण में यवनों का उपद्रव शान्त हो गया है तब उन्होंने फिर काशी से दक्षिण लौट जाने का विचार किया। फिर वे इसी वन से होकर निकले। यहाँ उन्होंने एक कुण्ड में एक बालक को अग्निदेवता से रक्षित पाया। तब उन्हें स्मरण हुआ कि यह हमारा ही बालक है। उन्होंने अग्निदेवता से प्रार्थना की। इस पर बालक की माता को भीतर जाने की आज्ञा मिली। भीतर प्रविष्ट होकर स्वच्छन्द क्रीड़ा करते हुए बालक को उसने गोद में उठा लिया। आनन्द के कारण माता के स्तनों से दुग्ध स्रवित होने लगा। रात को स्वप्न हुआ कि यह तुम्हारा ही बालक है। यह प्रतापी, प्रसिद्ध उपदेशक तथा उद्धारकर्ता होगा

शास्त्र में लिखा है कि जिस कुल में सोम-यज्ञ होते हैं उसी में ईश्वरावतार किंवा पुरुष का जन्म होता है। लक्ष्मण भट्ट के वंश में १०० यज्ञ हुए थे। इसीसे श्रीवल्लभाचार्य्यजी का जन्म हुआ।

इस चम्पकारण्य में अग्निकुण्ड का यह स्थान बना हुआ है। वन से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा ग्राम भी है। इस वन में अब तक यह विशेषता है कि यदि कोई गर्भिणी स्त्री इसमें प्रविष्ट होती है तो उसका गर्भ गिर जाता है। इससे इस वन के भीतर गर्भिणी स्त्रियाँ नहीं जातीं। बहुत लोग तो इस वन की लकड़ी को भी, अग्नि लग जाने के भय से, उपयोग में नहीं लाते।

श्रीकृष्णशास्त्री तैलङ्ग
(रायपुर)

दिनों का नामकरण किसने किया



आज सरस्वती के पाठकों के सम्मुख एक और प्रश्न उपस्थित करने का साहस करता हूँ। आशा है विद्वान् लोग अपने गवेषणापूर्ण विचारों को प्रकट करके पुरातत्त्व-प्रेमियों को अनुगृहीत करेंगे। कुछ समय हुआ मैंने इसी प्रकार का एक प्रश्न ... केवल जिज्ञासु भाव से पाठकों के विचार के लिए प्रकाशित किया था। परन्तु ... तक किसी भी ... ने इस पर ध्यान न दिया। ...

कुछ लिख ते दिया और मुझे शास्त्रार्थ के लिए ललकारा भी, तथापि—"पुनस्तत्रैवावलम्बितो तालः"—सवाल जैसे का तैसाही बना हुआ है यदि सम्भव हुआ ते किसी समय उसे मैं फिर पैदा करूँगा, और जो कुछ मुझे अधिक कहना होगा कहूँगा। यहाँ केवल इतनी ही प्रार्थना है कि ये प्रश्न हठधर्मी या कट्टरपन के कारण नहीं प्रकाशित किये जाते। मेरा उद्देश केवल यही है कि पाठक महाशय विचारोन्मुख हों और तटस्थ होकर अपने निश्चय को प्रकट करें, जिससे सत्या-सत्य का निर्णय हो। अथवा निराग्रह होकर विचारशील सज्जन अन्वेषण की ओर झुकें। आज का प्रश्न बहुत साधारण है। परन्तु इसके निर्णय के लिए भी बहुत छानबीन की आवश्य-कता है—

प्रत्येक पढ़ा लिखा मनुष्य नित्य प्रति अपने कार्यों में समय से काम लेता है। उसे रात और दिन का अवश्य ध्यान रहता है। एवं साप्ताहिक दिनों (Week-Days) या वारों का ध्यान भी उसके लिए परमावश्यक है। हिन्दू-धर्मावलम्बियों का तो शायद इसके बिना निर्वाह ही नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक मुहूर्त न साधा जाय वे कुछ कार्य ही नहीं कर सकते। आज मैं इसी लिए यह जानना चाहता हूँ कि दिनों के नाम, जो नित्य हमारे काम आते हैं, कैसे रक्खे गये। क्या भारतवासियों ने ही इनका पहले पहल नामकरण किया अथवा किसी और जाति से इन्होंने दिनों के नाम सीखे ?

इस सम्बन्ध में जो कुछ मुझे मालूम है मैं यहाँ लिखता हूँ।

नामों की उपपत्ति।

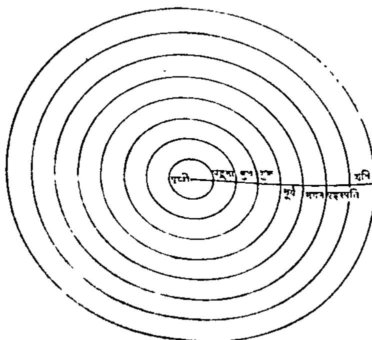
दिनों के नाम ग्रहों की संज्ञाओं के आधार पर रक्खे गये हैं। अर्थात् जो नाम ग्रहों के हैं वही नाम उनके दिनों के भी हैं। जैसे सूर्य के दिन का नाम रविवार, आदित्यवार, अर्कवार, भानुवार इत्यादि। शनैश्चर के दिन का नाम शनिवार, सौरिवार इत्यादि। चाहे आप संस्कृत में चाहे किसी अन्य भाषा में देखें साप्ताहिक दिनों के नाम सातों ग्रहों के नामों पर ही रक्खे हुए आपको मिलेंगे। संस्कृत में ग्रह के नाम के आगे दिन या वासर या कोई और पर्यायवाची शब्द रख दिया जाता है। इससे यह सूचित होता है कि अमुक ग्रह का अमुक दिन है। संक्षेप के लिए कभी कभी केवल ग्रह का नाम ही दे दिया जाता है—जैसे रवि, शुक्र इत्यादि। योरप की भाषाओं में भी, इसी प्रकार, ग्रहों के नाम के साथ दिन का वाचक शब्द लगा दिया जाता है। जैसे:—

Latin	*Saxon*	*English*
Dies Solis	Sunaday	Sunday
,, Lunae	Moonaday	Monday
,, Martis	Tiwaday	Tuesday
,, Mercurii	Wodenaday	Wednesday
,, Jovis	Thoraday	Thursday
,, Veneris	Frigaday	Friday
,, Saturni	Saterneday	Saturday

संस्कृत में नौ ग्रह हैं। अतएव नौ ही दिन चाहिए—एक एक ग्रह का एक एक दिन। फिर सात ही दिन क्यों ? इस प्रश्न पर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह ग्रह केवल

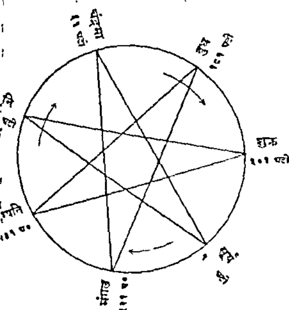
चला और अमुक दिन अमुक ग्रह का है, इसका अभिप्राय क्या है। ज्योतिष के ग्रन्थों से विदित होता है कि प्राचीन समय में ग्रहों का क्रम इस प्रकार माना जाता था—शनि, बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा। अर्थात् की अपेक्षा शनैश्चर सबसे ऊपर या दू जाता था और चन्द्रमा सबसे नीचे समीप, जैसा कि चित्र (क) से प्रग



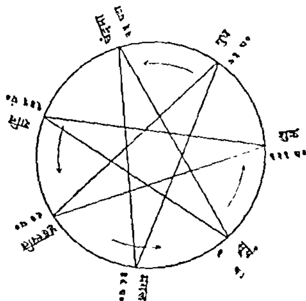
इन ग्रहों को, जैसा कि सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थों से सिद्ध है, ज्योतिषियों ने दिनों का स्वामी माना है। सूर्योदय से सूर्योदय तक के समय को दिन संज्ञा है। हमारे पूर्वजों ने इस काल को ६० [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

बाँट दिया ... एक भाग ... 'अवर' (H... घण्टा रख... उन्होंने ... घड़ी या ... एक एक ... बाँट दिया ... उन्होंने ... लिया कि ... घण्टा ... क्रमशः ... ग्रह के ... रहती ... नारायण ... के राज ... हैं। इस

दिन को ६० घड़ियों में बाँटने से ऐसी गणना होगी



दिन को २४ घण्टों में बाँटने से यह गणना होगी



इनमें तीर का मुख रोह या अवरोह के अनुसार दिखाया गया है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि दिनों का नाम कैसे बना। जो ग्रह दिन की पहली घड़ी या घण्टे का स्वामी हुआ वही उस दिन का भी स्वामी माना गया।

अब प्रश्न यह है कि पहले पहल दिनों (Week Days) के नाम कब रक्खे गये और सबसे पहले किस जाति ने उनका प्रयोग किया। मैं इन दोनों प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ। यही हेतु मेरे इस लेख के प्रकाशित करने का है।

कुछ विद्वानों की राय है कि भारतवासियों ने ही सबसे पहले इन नामों को निकाला तथा इनका प्रयोग किया। कुछ वर्ष हुए मेरा भी ऐसा ही विचार था, परन्तु अब मुझे यह सम्मति प्रमाण रहित प्रतीत [illegible] समझ में शायद हम लोगों ने दिनों [illegible] से सीखा। ये विदेशी शायद [illegible] निवासी थे। अथवा [illegible]

जिन मुख्य कारणों से मेरे विचार में यह परिवर्तन हुआ है उनका उल्लेख नीचे किया जाता है —

(१) अति प्राचीन लेखों में दिनों के नाम नहीं पाये जाते। इसके सिवा कुशानवंशी राजाओं के समय के लेखों में भी ये प्रायः नहीं मिलते। हाँ, ऋतुओं और महीनों के नाम मिलते हैं यथा—

[illegible]

[illegible]

कथा, महीनों के नाम भी नहीं मिलते, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से सिद्ध है। उस समय लोग यही लिखते थे कि वर्षा का या अन्य ऋतु का कौन सा महीना है।

(२) सूर्य-सिद्धान्त-सदृश ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थों में सप्ताह के दिनों का नाम नहीं। हाँ, दिन-पति ग्रह का नाम अवश्य है। यहाँ पर यह 'होरा' का स्वामी माना गया है और होरा की गणना उतार क्रम पूर्वक शनैश्चर से की गई है, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ। प्राचीन-काल के ज्योतिर्विद् शनैश्चर का सबसे ऊँचा पद मानते थे। इसीसे [illegible] शनैश्चर से ही आरम्भ करके 'होरा' का [illegible] और तदनुसार ही दैनिक क्रम की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

इस मत में यह शङ्का हो सकती है [illegible] वालों ने महीनों को दस दिनों में बाँटा [illegible] दिनों में नहीं। पर यह कोई भारी [illegible] क्योंकि इसमें सुगमता का होना ही कारण [illegible] महीनों को प्रायः ३० दिनों का मानने से [illegible] दिनों के ३ भाग ठीक हो जाते हैं। सप्ताह [illegible] से ठीक नहीं होते।

(३) जहाँ तक मुझे विदित है, हमारे [illegible] सप्ताहों का उल्लेख नहीं। यदि हुआ भी [illegible] नवीन ग्रन्थों में।

(४) हमारे यहाँ नवग्रह माने जाते हैं। [illegible] मन्दिरों में बहुधा ग्रहों की मूर्तियाँ पाई [illegible] वे नौ ही होती हैं। यदि हमारे यहाँ [illegible] उत्पत्ति होती तो शायद नौ दिन का 'सप्ताह' प्रचलित होता।

इसका [illegible] कहा जा सकता है कि [illegible] देश के निवासियों को ईसा [illegible] भाषाओं में सात ग्रहों का ज्ञान [illegible] इस बात का प्रमाण हमें यूनानी [illegible] मिलता है।

[illegible]

ने स्वीकार कर लिया । अपर मिडिल सेक्शन, अर्थात्
श्रेणी, तक इतिहास, भूगोल, विज्ञान और गणित
। साल में विद्यार्थियों की अपनी भाषा में सिखाये
। इन विषयों की शिक्षा अब अपनी भाषा के द्वारा
अब तक ये विषय भी अँगरेज़ी द्वारा ही पढ़ाये जाते
चारे छोटे छोटे बच्चे अँगरेज़ी में हिसाब किया करते
गोल की परिभाषायें अँगरेज़ी में बिना समझे रटा करते
गणित उनकी समझ ही में न आता था। इतिहास की
तो वे अँगरेज़ी-साहित्य की पुस्तक मान कर पढ़ा करते
न विषयों का ज्ञान अब पक्का होगा, क्योंकि विद्या-
ने अँगरेज़ी भाषा की कठिनाई दूर करने के लिए
े जानने में समय न नष्ट करना पड़ेगा। अध्यापकों को
ही बात, देशी भाषा और अँगरेज़ी में, दो दफ़े न बतानी
। जैसा कि अब तक वे करते थे।

पाठ्य प्रणाली-विषयक आज्ञा-पत्र के साथ जो भूमिका
है उसमें लिखा है कि सातवें और आठवें दरजों में
ों को उत्साहित करना चाहिए कि वे अँगरेज़ी पारि-
क शब्दों का प्रयोग करें। उसमें यह भी लिखा है कि
वें दरजे में गणित की परीक्षा अँगरेज़ी भाषा ही में
। विज्ञान की शिक्षा सातवें दर्जे से आरम्भ होगी।
आज्ञा के अनुसार लड़कों को हिन्दी और उर्दू
न नवीन वैज्ञानिक शब्दों का ज्ञान न होगा जिनके
ने के लिए वर्षों से विद्वान् उद्योग कर रहे हैं। इतिहास
जे सातवें दरजे से पढ़ाया जाता था। अब छठे से ही
या जायगा। परन्तु खेद का विषय है कि इतिहास की
य पुस्तकें अच्छी नहीं चुनी गईं। इन पुस्तकों से तो
ारप्रान्त की पुस्तकें अच्छी हैं। भूगोल की शिक्षा अँग-
ी पुस्तकों द्वारा ही दी जायगी। परन्तु पादटीका (फुट नोट)
सूचना दी गई है कि देशी भाषा में पुस्तकें तैयार हो रही
। विज्ञान भी अँगरेज़ी-पुस्तकों द्वारा ही पढ़ाया जायगा।
ठीक नहीं। ऐसा करने से अपनी भाषा के द्वारा शिक्षा
मिलेगी। विज्ञान में अब सातवें दरजे में भी प्रयोग
(Experiments) कराये जाते हैं। यदि प्रयोग हिन्दी
था उर्दू में लिखे रहेंगे तो उनको लड़के जल्दी समझ
गे। भूगोल में—विशेष करके प्राकृतिक भूगोल में—
गरेज़ी-पुस्तकों द्वारा पढ़ी हुई परिभाषायें कठिन मालूम
होंगी। आशा है कि हिन्दी और उर्दू के लेखक अब इन
विषयों पर उपयुक्त पुस्तकें लिखेंगे और सरकार उनका उचित
आदर करेगी।

"रा० ना०"

२—सम्पादकों, समालोचकों और लेखकों का कर्तव्य।

इस देश में सम्पादन-कार्य्य की शिक्षा का कुछ भी
प्रबन्ध नहीं। कुछ लोग अच्छी शिक्षा पाकर सम्पादक बनते
हैं; कुछ लोग यथेष्ट शिक्षा प्राप्त करके भी पहले किसी
सुयोग्य सम्पादक की अधीनता में काम करते हैं, तब
कोई अख़बार या सामयिक पुस्तक निकालते हैं; कुछ
लोग न अच्छी तरह शिक्षा ही प्राप्त करते हैं, न सम्पा-
दन-कार्य्य ही सीखते हैं, और सम्पादक बन बैठते हैं।
हमारे सदृश हिन्दी के अनेक सम्पादक प्रायः इसी तीसरी
कक्षा के हैं। इसी से कोई पत्र या पुस्तक निकालने
के वर्षों पहले, हिन्दी-सेवा की दुहाई देते हुए, वे अपने
अजन्मा पत्र या पुस्तक का विज्ञापन शुरू ही छपाते हैं।
उसमें वे बड़ी बड़ी बातें कहते हैं। राम राम करके जब
उनके पत्र का पहला अङ्क निकलता है तब उसके पहले ही
पृष्ठ पर किसी न किसी त्रुटि के लिए क्षमा-प्रार्थना के दर्शन
होते हैं। ऐसे पत्र शीघ्र ही बन्द हो जाते हैं। यदि कुछ
दिन चलते भी हैं तो जीते ही मुर्दे बन कर अपने दिन
काटते हैं। तथापि परिश्रमी, सचेष्ट और ज्ञान-पिपासु
सम्पादक, विशेष शिक्षित और अनुभवशील न होने पर भी,
अपनी और अपने पत्र की बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं।
सम्पादक को इन शास्त्रों और इन विषयों का ज्ञान अवश्य
होना चाहिए—इतिहास, सम्पत्तिशास्त्र, राष्ट्र-विज्ञान, समाज-
तत्त्व, व्यवस्था-विज्ञान (Jurisprudence), अपराधतत्त्व
(Criminology), अनेक लौकिक और वैषयिक व्यापारों
का संख्या सम्बन्धी शास्त्र (Statistics), और और जन-
पद वर्ग के अधिकार और कर्तव्य, अनेक देशों की शासन-
प्रणाली, शान्तिरक्षा और स्वास्थ्य रक्षा का विचार, शिक्षा-
पद्धति और कृषि-वाणिज्य आदि का वृत्तान्त। देश का
स्वास्थ्य किस तरह सुधर सकता है, कृषि, शिल्प और
वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है, शिक्षा का विस्तार
और स्वकर्म-साधन कैसे किया जा सकता है, किन व्यापारों

के अवलम्बन से हम राष्ट्र सम्बन्धी नाना प्रकार के अधिकार पा सकते हैं ; सामाजिक कुरीतियों को किस प्रकार दूर कर सकते हैं—इत्यादि अनेक उपयोगी विषयों पर सम्पादकों को लेख लिखना चाहिए। सम्पादक होने ही से कोई सर्वज्ञ—सब विषयों का ज्ञाता—नहीं हो सकता। सब विषय तो दूर रहें, दो चार विषयों का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करना दुःसाध्य बात है। अतएव यदि एक एक सम्पादक एकही एक विषय का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त करके उसी पर लेख लिखे तो बहुत लाभ हो। इस समय दशा यह है—सम्पादक रोज़ ही पाठकों से कहा करते हैं, यह न करो वह न करो, ऐसा करो वैसा करो। परन्तु यदि पाठक उनसे पूछ बैठें कि अच्छा आपही बताइए कि अमुक काम किस तरह किया जाय तो ये बेचारे विपत्ति में पड़ जायँ। अतएव सम्पादन-कार्य्य की वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है।

समालोचना का काम भी प्रायः सम्पादक ही करते हैं। समालोचना से मतलब पुस्तकों की समालोचना से है। कभी कभी और लोग भी आलोचना करते हैं। यह काम बड़ा कठिन है। परन्तु समालोचक अपने को प्रायः सर्वज्ञ समझते हैं और हर विषय की पुस्तक की समालोचना करने से ज़रा भी नहीं हिचकते। लेखक की अपेक्षा समालोचक यदि अधिक विद्वान् है तो और भी अच्छी बात है। तथापि यदि वह समालोच्य पुस्तक के विषय का यथेष्ट ज्ञान रखता है तो भी वह समालोचना का काम कर सकता है। ऐसी योग्यता न रखने वाले भी कभी कभी अच्छी समालोचना कर सकते हैं। [illegible]

विशेष कर यही दिखाता है कि लेखक ने व्याकरण की [illegible] की है, अलङ्कार-शास्त्र की भूलें की हैं, छन्दःशास्त्र की [illegible] की है, मुहावरे की भूलें की हैं। वह यह नहीं [illegible] इन बातों के सिवा और भी कोई बात है या नहीं [illegible] समालोचना होनी चाहिए। छन्द, अलङ्कार, व्याकरण तो गौण बातें हुईं। इन्हीं पर ज़ोर देना अविवेक के सिवा और कुछ नहीं। व्याकरण आदि की [illegible] किससे नहीं ? अँगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत भाषाओं के बड़े बड़े विद्वानों ने क्या इस तरह की [illegible] कीं ? पर इससे क्या उनके ग्रन्थों की प्रतिष्ठा [illegible] गई है ? किसी पुस्तक या प्रबन्ध में क्या लिखा है, किस ढंग से लिखा गया है, वह विषय उपयोगी है या नहीं, उससे किसी का मनोरञ्जन हो सकता है या नहीं, उससे किसी को लाभ पहुँच सकता है या नहीं, [illegible] कोई नई बात लिखी है या नहीं, यदि नहीं तो पुरानी बात को ही नये ढँग से लिखा है या नहीं—ये विचारणीय विषय हैं। समालोचक को प्रधानतः इन्हीं पर विचार करना चाहिए। लेखक ने अपने लेख या पुस्तक को जिस उद्देश से लिखा है वह यदि सिद्ध [illegible] तो समझना चाहिए कि उसने अपने कर्तव्य का पालन किया। इन बातों पर विचार न करके अवान्तर बातों की समालोचना करना और बाल की खाल निकालना [illegible] [illegible] नहीं कही जा सकती।

लेखकों को सरल और सुबोध भाषा में अपना [illegible] लिखना चाहिए। [illegible]

के अवलम्बन से हम राष्ट्र सम्बन्धी नाना प्रकार के अधिकार पा सकते हैं; सामाजिक कुरीतियों को किस प्रकार दूर कर सकते हैं—इत्यादि अनेक उपयोगी विषयों पर सम्पादकों को लेख लिखना चाहिए। सम्पादक होते ही से कोई सर्वज्ञ—सब विषयों का ज्ञाता—नहीं हो सकता। सब विषय तो दूर रहें, दो चार विषयों का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करना दुःसाध्य बात है। अतएव यदि एक एक सम्पादक एकही एक विषय का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त करके उसी पर लेख लिखे तो बहुत लाभ हो। इस समय दशा यह है—सम्पादक रोज़ ही पाठकों से कहा करते हैं, यह न करो वह न करो, ऐसा करो वैसा करो। परन्तु यदि पाठक उनसे पूछ बैठें कि अच्छा आपही बताइए कि अमुक काम किस तरह किया जाय तो ये बेचारे विपत्ति में पड़ जायँ। अतएव सम्पादन-कार्य्य की वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है।

समालोचना का काम भी प्रायः सम्पादक ही करते हैं। समालोचना से मतलब पुस्तकों की समालोचना से है। कभी कभी और लोग भी आलोचना करते हैं। यह काम बड़ा कठिन है। परन्तु समालोचक अपने को प्रायः सर्वज्ञ समझते हैं और हर विषय की पुस्तक की समालोचना करने से ज़रा भी नहीं हिचकते। लेखक की अपेक्षा समालोचक यदि अधिक विद्वान् है तो और भी अच्छी बात है। तथापि यदि वह समालोच्य पुस्तक के विषय का यथेष्ट ज्ञान रखता है तो भी वह समालोचना का काम कर सकता है। ऐसी [illegible] कभी कभी अच्छी समालोचना कर सकते हैं। [illegible] कि किसी ने किसी अच्छे काव्य की [illegible] लिखा है। वह स्वयं तो कवि नहीं, पर [illegible] किया है तथा श्रेष्ठ [illegible] है। इस दशा में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

विशेष कर यही दिखाता है कि लेखक ने [illegible] की हैं, अलङ्कार-शास्त्र की भूलें की हैं, [illegible] की हैं, मुहावरे की भूलें की हैं। [illegible] इन बातों के सिवा और भी कोई बात है [illegible] समालोचना होनी चाहिए। छन्द, अलङ्कार [illegible] तो गौण बातें हुईं। इन्हीं पर ज़ोर देना [illegible] के सिवा और कुछ नहीं। व्याकरण [illegible] किससे नहीं? अँगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी, [illegible] भाषाओं के बड़े बड़े विद्वानों ने क्या इस तरह [illegible] कीं? पर इससे क्या उनके ग्रन्थों की प्रतिष्ठा [illegible] गई है? किसी पुस्तक या प्रबन्ध में क्या [illegible] किस ढँग से लिखा गया है, वह विषय [illegible] नहीं, उससे किसी का मनोरञ्जन हो सकता [illegible] उससे किसी को लाभ पहुँच सकता है या नहीं, यदि [illegible] कोई नई बात लिखी है या नहीं, [illegible] पुरानी बात को ही नये ढँग से लिखा है [illegible] विचारणीय विषय हैं। समालोचक को प्रधानतः [illegible] पर विचार करना चाहिए। लेखक ने अपने [illegible] पुस्तक को जिस उद्देश से लिखा है वह यदि [illegible] तो समझना चाहिए कि उसने अपने कर्तव्य [illegible] दिया। इन बातों पर विचार न करके [illegible] समालोचना करना और बात की बात [illegible] लोचना नहीं कही जा सकती।

लेखकों को सरल और सुबोध भाषा में [illegible] लिखना चाहिए। उन्हें वागाडम्बर द्वारा पाठकों [illegible] करने की चेष्टा न करनी चाहिए कि वे कोई बड़ी [illegible] और बड़ी ही अलौकिक बात कह रहे हैं। इस [illegible] क्लिष्ट भाषा को अनेक पाठक और समालोचक [illegible] भाषा कहते हैं। जिस रचना में संस्कृत के [illegible] हों, जिसमें संस्कृत के [illegible] हों, जिसमें [illegible] [illegible] [illegible]

संस्कृत श्रौर श्रँगरेज़ी शब्दों से लदी हुई भाषा चाहे भले ही प्रकट हो, पर उससे ज्ञान श्रौर का उद्देश अधिक नहीं सिद्ध हो सकता। यदि ाण्डित्य दिखाने के उद्देश से ही किसी ग्रंथ या चना न की गई हो तो ऐसी भाषा का प्रयोग ए जिसे अधिकांश पाठक समझ सकें। तभी ा उद्योग सफल होगा—तभी उससे पढ़ने वालों ार श्रानन्द की वृद्धि होगी।

सम्बन्ध में बँगला के मासिक पत्र "प्रवासी" में ट बहुत श्रच्छे निकले हैं। उन्हीं का श्राशय लेकर ाया गया है। प्रवासी के सम्पादक के विचारों से ा लेखक सर्वांश में सहमत है।

रकारी मदरसों की नमूनेदार इमारतें।

ों श्रौर कालेजों के श्रध्यापकों की योग्यता, पाठ्य- उपयोगिता श्रौर पढ़ाई तथा फ़ीस श्रादि के सरकार जैसे बहुत छान-बीन श्रौर बहुत विचार म बनाती है उसी तरह इमारतों के सम्बन्ध में भी श्रौर कालेजों से नियमों की पाबन्दी कराती है। श्रौर हाई स्कूलों की तो बात ही नहीं, देहाती इमारतों के लिए भी उसने नियम बना दिये हैं। कमरे हों, ऐसी खिड़कियां हों, ऐसा बरामदा हो, र हो—यह सब सरकार ने नियमबद्ध कर दिया है। नमूनेदार इमारतों में रुपया ख़र्च होता है श्रौर कमी के कारण शिक्षा-विस्तार में बाधा श्राती है। ध में अपने नियम कुछ शिथिल कर देन के लिए (श्रनेक लोगों ने सरकार से प्रार्थना की, परन्तु प फल न हुश्रा। देश में निरक्षरता का साम्राज्य दूर करने—दूर न सही, कम करने—के लिए इमा- र्यो नियमों की पाबन्दी जितनी कम करनी पड़े श्रच्छा। एक तो यहां प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़् 'निवार्य भी नहीं—दूसरे इमारतों का झंझट। शिक्षा-प्रचार में बहुत नहीं तो थोड़ी बाधा ं है। बरोदा एक छोटी सी रियासत है। ः शिक्षा मुफ़् ती जाय; श्रँगरेज़ी राज्य में को सर्वं [illegible] र्न से निकालना यदि श्रौर मदों में कम ख़र्च करके शिक्षा-विभाग में अधिक ख़र्च करना चाहिए श्रौर प्रारम्भिक मदरसों में फ़ीस माफ़ कर देनी चाहिए। स्विज़र- लेंड बहुत छोटा देश है। उसकी श्राबादी सिर्फ़ ३७ ४१ ००० है। श्रर्थात् श्राबादी के लिहाज़ से संयुक्त प्रान्त उससे दस ग्यारह गुना बड़ा है। स्विज़रलेंड की श्राबादी हमारे सिन्ध- प्रान्त से कुछ ही अधिक है। इतना छोटा देश होने पर भी वहां प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़् दी जाती है। यही नहीं, वहां प्रारम्भिक मदरसों में कागज़, कलम, दावात श्रौर पुस्तकें भी विद्यार्थियों को मुफ़् ही मिलती हैं। जून १९१२ के माडर्न रिव्यू में, पृष्ठ ६६३ पर, एक महाशय ने लिखा है—

The children have to pay no fees, and all, whether from rich or poor houses, are supplied free of charge with all School books, writing materials, etc.

इन महाशय का नाम राय साहब पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी है। ये स्विज़रलेंड की सैर कर श्राये हैं श्रौर वहां का श्राखों देखा हाल उन्होंने लिखा है। ख़ैर, हिन्दुस्तान यदि अभी मुफ़् शिक्षा पाने का पात्र नहीं, अथवा यदि सरकार के ख़ज़ाने में इस काम के लिए काफ़ी रुपया नहीं, तो यह नमूने- दार इमारतों की फख तो न लगाई जाय। देहात में बीस पचीस रुपया ख़र्च कर देने से तीस चालीस लड़कों के बैठने लायक़ छायादार जगह तैयार हो सकती है। पर मंज़ूरी नहीं मिलती। उधार के मकानों श्रौर छप्परों से काम लिया जाय, हर्ज नहीं। पर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपनी तरफ़ से एक छप्पर न रखावेगी। जब बनावेगी तब नमूनेदार ही इमारत बना- वेगी, चाहे उसमें जितना ख़र्च पड़े।

डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ टाकुर ने कलकत्ते के पास बोलपुर में ब्रह्म-विद्यालय नाम का जो स्कूल प्रायः १२ वर्ष से खोल रक्खा है उसमें कोई २०० लड़के शिक्षा पाते हैं। अध्यापकों की संख्या २० के लगभग है। उनमें से कितने ही एम० ए०, बी० ए० हैं। कुछ तो विलायत में शिक्षा पाये हुए हैं। ये लड़के नमूनेदार इमारतों में शिक्षा नहीं पाते। २ जून १९१२ के "लीडर" में एक महाशय ने लिखा है कि ये पेड़ों की छाया में पढ़ते हैं। पानी बरसने पर उस मकान के बरामदे में चले जाते हैं जिसमें रात को वे सोते हैं:—



परलोकगत राय देवीप्रसाद ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



हुआ। बर्मा में प्रोफ़ेसर रामविलास पाण्डेय, एम० ए० तथा और भी कितने ही प्रतिष्ठित जनों की सलाह से पीपल कटने का निश्चय ब्राह्मणजी ने किया। हज़ारों आदमी एकत्र हुए। कितने ही वकील, मुख़्तार और मुंसिफ़ आये। महाराजा हथुवा भी पधारे। पुलिस वाले भी आये। १ मई १९१४ को पेड़ काटा गया तो मूर्त्ति के रूप में शिवजी निकल आये और महाराजा हथुवा ने उनके लिए वहाँ एक मन्दिर बनवा देने की आज्ञा दे दी। पीपल की उम्र ७० वर्ष से कम न होगी।

हमारे भी जन्म-ग्राम से तीन फरलांग के फ़ासिले पर, गङ्गाजी के किनारे, पीपल का एक पेड़ था। चार पाँच महीने हुए वह सूख गया। सूखे पेड़ का कुछ अंश अब तक खड़ा है। कोई ४० वर्ष हुए उसकी जड़ के पास एक खोखले में किसी ने कई उपलखण्ड रख दिये। उनकी पूजा होती रही। पीपल का तना ज्यों ज्यों पुष्ट होता गया वे मूर्तियाँ उसके भीतर बन्द होती गईं। धीरे धीरे वे सभी उसके गर्भ में चली गईं और अन्तर्हित हो गईं। पेड़ के सूख जाने और त्वचा तथा गूदे के सङ्कुचित होने से वे अब फिर निकल आई हैं। प्रोफ़ेसर पाण्डेयजी उनके लिए एक मन्दिर बनवा दें तो बड़ी कृपा हो।

८—इटाली की समर-शक्ति।

आस्ट्रिया के अधिकार में कुछ प्रान्त ऐसा है जहाँ के निवासी इटाली ही की भाषा बोलते हैं और इटाली ही के रीति-रवाज व्यवहार में लाते हैं। मन से वे अपने को इटाली ही की प्रजा समझते हैं। इस देशांश को मिला लेने के लिए इटाली बहुत समय से लालायित है। हृदय से वह आस्ट्रिया का चिरकालीन शत्रु रहा है। कुटिल राजनीति की प्रेरणा से ही उसे जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ मित्रता करनी पड़ी थी। जब आस्ट्रिया ने सर्विया के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया तब इटाली ने उस मैत्री-सूत्र को तोड़ दिया। वह यह चेष्टा करने लगा कि उसके अभिलषित देशांश यदि आस्ट्रिया उसे ख़ुशी से दे दे तो वह युद्ध से उदासीन रहे। आस्ट्रिया ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। कुछ प्रलोभन उसने दिया ज़रूर, पर उसे इटाली ने पर्याप्त न समझा। फल यह हुआ कि इटाली भी अब युद्ध में कूद पड़ा है। इटाली के राज्य (किङ्ग विक्टर एमेन्युअल, तीसरे) भी [illegible] सेना सञ्चालन करने गये हैं। इटाली यद्यपि जिस [illegible] देश नहीं, तथापि उसकी सेना संख्या और [illegible] ही अधिक है। शान्ति के समय इटाली में २,५१,००० [illegible] रहती है। युद्ध छिड़ने पर यह संख्या बढ़ कर १२,[illegible] तक पहुँच जाती है। क़ायदा यह है कि २० वर्ष से लेकर ३९ वर्ष की उम्र तक इटाली का प्रत्येक [illegible] फ़ौज में काम करने के लिए बाध्य है। शान्ति [illegible] आस्ट्रिया की सेना-संख्या ४,२२,००० और [illegible] लगभग १८,२०,००० है। यदि यह हिसाब ठीक [illegible] इटाली की युद्ध-कालीन सेना आस्ट्रिया की सेना से कम दुगनी है। इटाली की ३२ लाख सेना में [illegible] अशिक्षित सेना भी शामिल समझी जाय तो भी [illegible] महीने युद्ध जारी रहने पर, वह भी सिपाही आ [illegible] और कवायद, परेड इत्यादि सीख कर शिक्षित सेना के ही युद्ध क्षेत्र में काम कर सकती है।

अब इटाली और आस्ट्रिया की सामुद्रिक शक्ति का हिसाब देखिए:—

	आस्ट्रिया	इटाली
सेना	३२,०००	४०,०००
बैटिलशिप	१२	१६
आरमर्ड क्रूज़र	३	१०
हलके क्रूज़र	१०	१६
टारपीडो जहाज़	६	१
टारपीडो नाव	२२	६४
टारपीडो-नाव नाशक	१८	३३
सब मैरीन	६	२०

यदि इस हिसाब में भूल नहीं तो सामुद्रिक शक्ति में [illegible] आस्ट्रिया से इटाली बड़ा चढ़ा है। अतएव इटाली के युद्ध में शामिल हो जाने से रूस, फ्रांस और इँगलेंड का पक्ष पहले से बहुत अधिक सबल हो गया समझना चाहिए।

९—नये सेक्रेटरी आफ़ स्टेट।

भारत के राज्य-प्रबन्ध और शासन से सम्बन्ध रखने वाला जो दफ़्तर लन्दन में है उसका नाम है—इंडिया आफ़िस। उसका प्रधान अफ़सर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट कहाता है। भारत के भाग्य की डोर अधिकांश में उन्हीं के हाथ में

इती है। वह एक कौंसिल की मदद से भारत के बड़े बड़े मामलों का निपटारा करता है। अब तक इस पद र लार्ड क्रू थे। सम्राट के सिंहासनारोहण-सम्बन्धी जलसे में वे उस साल यहाँ भी आये थे। अब आपको एक और ही पद मिला है। आपकी जगह राइट आनरेबल आस्टिन चेम्बरलेन सेक्रेटरी आव् स्टेट हुए हैं। लार्ड क्रू उदार-पक्ष के हैं; आस्टिन चेम्बरलेन अनुदार-पक्ष (Conservative) के हैं। इस कारण सेक्रेटरी आव् स्टेट के पद पर आपकी योजना होने से भारत के कुछ हितैषी सन्तुष्ट नहीं। आपका एक चित्र अन्यत्र इसी संख्या में प्रकाशित है।

१०—राय देवीप्रसाद की परलोक-यात्रा।

बड़े दुःख की बात है, बड़े ही परिताप का विषय है, बड़ी ही हृदय-दाहक घटना है—राय देवीप्रसाद अब इस लोक में नहीं। गत ३० जून को सबेरे १० बजे वे उस "धाम" के पथ के पथिक हो गये जहाँ से फिर कोई लौट कर नहीं आता—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते"। ऐसे सच्चे देश-भक्त, ऐसे उत्तम वक्ता, ऐसे उत्कृष्ट कवि, ऐसे हार्दिक हिन्दी-प्रेमी, ऐसे धुरीण धर्म्मिष्ठ की निधन-वार्ता अचानक सुननी पड़ेगी, इसका स्वप्न में भी ख़याल न था। सुन कर सिर पर वज्रपात सा हुआ, कलेजा काँप उठा। दूर होने के कारण अपने इस माननीय मित्र के अन्तिम दर्शनों से भी यह जन वञ्चित रहा। शोक! जिसकी हास्यरस-पूर्ण, पर तर्क-सङ्गत और युक्ति-युक्त, वक्तृता सुन कर, कुछ समय पूर्व, श्रोता लोग लखनऊ में मुग्ध हो गये थे वह विद्वान्, वह नामी वकील, वह धर्म्म-प्राण पुरुष केवल ४५ वर्ष की उम्र में, अपने प्रेमियों को, अपने नगर के निवासियों को, अपने मित्रों और कुटुम्बियों को रुला कर चल दिया। कानपुर में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई बड़ा काम ऐसा न होता था जिसमें आप शरीक न होते हों। कोई कैसा ही क्यों न हो, यथा शक्ति आप उसकी अवश्य ही इच्छा-पूर्ति करते थे। बस, आपके यहाँ तक उसे पहुँच भर जाना चाहिए। नवयुवकों तक की सभाओं में आप प्रसन्नता पूर्वक जाते थे, व्याख्यान देते थे, और प्रार्थना करने पर सभापति का पद भी ग्रहण कर लेते थे। धर्म्म आपकी बड़ी प्यारी वस्तु थी। ब्रह्मावर्त-सनातन-धर्म्म मण्डल की स्थापना आप ही ने की थी। सङ्गीत में भी कुशल थे। कविता आपकी बहुत ही सरल और स्वाभाविक होती थी। बहुत बरसों तक आपके स्थान पर हर रविवार को एक कवि-मण्डली का अधिवेशन होता था और निश्चित समस्याओं पर सुन्दर सुन्दर पूर्तियाँ सुनाई जाती थीं। आप बहुत शीघ्र कविता करते थे। आपकी कई कवितायें सरस्वती में भी निकल चुकी हैं। "देश-हित के कुण्डल"—पाठकों को अब तक न भूले होंगे। राय साहब थे तो कायस्थ, पर आचरण और धार्म्मिकता में आप बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मणों से भी बढ़े हुए थे। वेदान्त आपका प्यारा विषय था। कुछ समय पूर्व आप पञ्चदशी का परिशीलन करते थे।

कानपुर के ज़िले में एक मौज़ा भदरस है। राय साहब वहीं के रहनेवाले थे। शिक्षा आपने जबलपुर में पाई थी। वहीं आप बी० ए० और यहीं बी० एल० हुए। हाईकोर्ट वकील की परीक्षा पास करके आपने कानपुर में वकालत शुरू की। थोड़े ही समय में आपकी गिनती कानपुर के नामी वकीलों में हो गई। आप अधिकतर दीवानी के ही बड़े बड़े मुक़द्दमे लेते थे। आपका दीवानी क़ानून-विषयक ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। बड़े बड़े पेचीदा मुक़द्दमे बहुधा आप ही के पास आते थे। आप पर नगर-निवासियों का बड़ा प्रेम था। आपकी निधन-वार्ता फैलते ही शहर के बाज़ार बन्द हो गये। कचहरी भी बन्द कर दी गई।

राय साहब ने अनेक काम अपने ऊपर ले रक्खे थे। आप म्यूनिसिपल बोर्ड के मेम्बर थे, कांग्रेस कमिटी और पीपुल्स एसोसिएशन के सभापति थे। १९१२ में कानपुर में जो प्रान्तिक कानफ़रेंस हुई थी उसकी अभ्यर्थना-समिति के आप ही सभापति थे। गत एप्रिल के आरम्भ में हिन्दी का जो प्रान्तिक सम्मेलन गोरखपुर में हुआ था उसके भी सभापति आप ही थे। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने आपको अपना मेम्बर बनाया था।

राय साहब की लिखी हुई कितनी ही पुस्तकें हैं। चन्द्रकला भानुकुमार-नाटक और पद्माकर-पञ्चामृत की समालोचनायें, बहुत पहले, सरस्वती में निकल चुकी हैं। पहले आप रसिक वाटिका नामक कविता पुस्तक हर महीने निकालते थे। पीछे से धर्म्म कुसुमाकर नामक एक मासिक पत्र आप निकालने लगे थे। कायस्थ समाज का और सर्वसाधारण-देश का और [illegible] कितने ही काम करके आप साहित्य सेवा के लिए भी समय निकाल लेते थे। विद्यार्थियों के लिए भी

ऊ, से प्राप्य। जितना आदर इस तरफ़ तुलसीकृत
ण का है उतना ही बङ्गाल में कृत्तिवासीय रामायण
। उसीका यह सुन्दर हिन्दी अनुवाद है। बाबू
प्रमथसिंह ने इस अनुवाद की रचना एक अच्छे कवि
गाई थी। इस बात को कई वर्ष हुए। प्रस्तुत पुस्तक
अनुवाद का तीसरा संस्करण है। पद्य-रचना सरस
सुन्दर है। अनेक स्थलों में यह रामचरितमानस की
री करती है। भाषा प्रयोग में भी तुलसीदास ही की
का अनुकरण किया गया है। यह है तो पुरानी, पर
है। पुस्तक संग्रहणीय है।



५—बाल-धर्म शिक्षक। आकार छोटा; पृष्ठ संख्या
मूल्य ३ आने; लेखक, श्रीयुत काशीनाथ; प्रकाशक,
न गणेशशङ्कर विद्यार्थी (प्रताप-प्रेस, कानपुर) से प्राप्य।
पुस्तक में प्रश्नोत्तर के रूप में साधारण धर्म्म के सिद्धान्त
ता-पूर्वक लिखे गये हैं—"लेखक ने यथा-शक्ति यह
श की है कि किसी सम्प्रदाय के किसी मुख्य धार्म्मिक
न्त के विरुद्ध इस पुस्तक में कोई बात न आने पावे,
तु जिन कुरीतियों, कुविचारों और कुसंस्कारों को देश
लगभग सभी विद्वान् और सुधारक देश, जाति और
र्म के लिए सर्वथा अहितकर मानते हैं, और जो उन्नति,
र्ति, सदाचार और उदार-धर्म्म के सर्वथा प्रतिकूल हैं
का दिग्दर्शन मात्र बड़े ही नम्र शब्दों में कहीं कहीं कर दिया
है।" अतएव यह बड़ी अच्छी पुस्तक है और सभी सम्प्रदाय
ों के काम की है। भाषा भी सरल और सुबोध है।



६—विषवृक्ष। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या २६६; मूल्य
आने; अनुवादक, पण्डित गुलजारीलाल चतुर्वेदी
(यमगंज), प्रकाशक, पण्डित हरिदास वैद्य, २०१ हरि-
रोड, कलकत्ता, से प्राप्य। बँगला के नामी लेखक
[बङ्किमचन्द्र चैटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास, विषवृक्ष, का
हिन्दी-अनुवाद है। अनुवाद अच्छा हुआ है। भाषा सरस
र सरल है। छपाई उत्तम और रङ्गीन टाइटिल पेज मनो-
हर है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।



७—आप्त-परीक्षा। आकार छोटा पृष्ठ-संख्या ७२;
ल्य २ आने; प्राप्ति-स्थान—सुपरिंटेंडेंट, स्याद्वादमहाविद्या-
लय, काशी। ईसवी सन् ८०० के लगभग विद्यानन्द
स्वामी नाम के एक जैन विद्वान् हो गये हैं। उन्हीं के
आप्त परीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थ का यह हिन्दी-अनुवाद है।
मूल पुस्तक में १२४ श्लोक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मूल भी
है और उसके नीचे उसका अर्थ भी हिन्दी-गद्य में है। इस
गद्य के लेखक श्रीयुत उमरावसिंह जैन हैं। आपने भूमिका
में लिखा है:—

'इस ग्रन्थ के कर्ता ने ... आप्त अर्थात् मोक्ष का सच्चा
मार्ग बतानेवाले पुरुष की इस आप्त-परीक्षा में परीक्षा की है। और वैशेषिक,
सांख्य बौद्ध व वेदान्त आदि दर्शनों के कर्ताओं में सत्यवक्ता का लक्षण
सर्वज्ञपना व वीतरागपना न पाकर अन्त में अर्हन्तदेव को उपर्युक्त लक्षण से
सत्यार्थवक्ता सिद्ध किया है'।

सो और सभी शास्त्रकार अल्पज्ञ, राग पूर्ण और झूठे;
एक मात्र अर्हन्तदेव सच्चे, सर्वज्ञ और वीतराग! लेखक के
मत में दूसरों को गाली देना और अपनों की अहन्ता का
पटह पीटना ही शायद सचाई, सर्वज्ञता और वीतरागता
का सबसे बड़ा लक्षण है।



८—सती-मण्डल, भाग १। इस नाम की एक पुस्तक
गुजराती में है। उसके कई संस्करण हो चुके हैं। पण्डित
केशवजी विश्वनाथ त्रिवेदी ने उसे लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक
उसी गुजराती-पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—
श्रीयुत माधव शर्म्मा। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या चार सौ के ऊपर
है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। छपाई और कागज़ साधारण
है। मूल्य है—ढाई रुपया। इसके पहले दर्शन में सीता,
लक्ष्मी, सरस्वती आदि दैवी सतियों—सुकन्या, दमयन्ती,
सावित्री आदि महासतियों—शकुन्तला, मदयन्ती, लीलावती
आदि सतियों—विदुषी, कर्म्मदेवी, कलावती आदि वीर-
सतियों और मेरी मार्टिन, मरियम, पोरशिया आदि विदेशी
सतियों का जीवनचरित है। इसके दूसरे दर्शन में स्त्री पुरुष
के धर्म्मान्तर्गत सदाचार आदि से सम्बन्ध रखने वाली अनेक
उत्तमोत्तम शिक्षायें हैं। अन्त में विषयानुसारिणी कुछ
कवितायें भी हैं। भाषा सरल है। अनुवादक महाशय की
मातृ-भाषा गुजराती है। अतएव भाषा-सम्बन्धिनी
त्रुटियां क्षम्य हैं। पुस्तक उत्तम है। कलिका की पोल, ...
मदाबाद के पते पर मूल लेखक के ... से मिलती है

पुस्तक-परीक्षा ।

१—श्रीमद्भागवत [illegible] । आकार बड़ा; सुन्दर सुवर्णाक्षरांकित जिल्द बँधी हुई; पृष्ठ-संख्या १११०× ८×८; कागज़ मोटा; टाइप बड़ा; अनेक चित्रों से विभूषित। इन सब विशेषताओं के होते हुए भी मूल्य केवल दो रुपये दो आने ! पुस्तक इतनी सस्ती क्यों ? इस लिए कि परम- भिक्षु अखण्डानन्दजी की चेष्टा से यह सस्तु- कार्यालय, कालबादेवी रोड, बम्बई, से [illegible] कार्यालय गुजराती भाषा के साहित्य रहा है उतनी शायद ही और किसी के उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करने पर बेचने ही से देश में साक्षरता [illegible] है । इस उद्देश की सिद्धि के । इन्हीं को लक्ष्य मान कर यह कार्य करता है । सरल [illegible] का गद्यानुवाद केवल की हद होगई । इसके साथ पर छपे हुए चित्र भी देना [illegible] में एक एक मूल श्लोक भी [illegible] उत्पन्न करता है । यह इस । पहली बार आवृत्तियां बिक गुजराती भाषा के प्रेमियों ने

[illegible] पुस्तक में चित्र [illegible] है। [illegible] नहीं है। [illegible] है। [illegible] पुस्तक [illegible] इतिहास-प्रेमी और [illegible] के पढ़ने लायक है। पुस्तक [illegible] लेखक महाशय को लिखने में [illegible] है।

*

३—सुखी सन्तान । आकार [illegible], [illegible] ११२; मूल्य आठ आने; लेखक, श्रीयुत [illegible] पुराली, एम० ए०; प्रकाशक, श्रीयुत [illegible], पञ्जाब प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर। यह बड़ी ही [illegible] पुस्तक है । प्रत्येक पढ़ी-लिखी स्त्री को इसे [illegible] अपने पास रखना चाहिए । शिशु-संरक्षण और [illegible] सम्बन्ध रखने वाली बातें इसमें हैं। लेखक के [illegible] "विश्वसनीय और प्रामाणिक लेखकों के [illegible] लिखी हुई बातों"—के आधार पर इसकी रचना [illegible] भाषा में त्रुटियां हैं, पर इस इतने दोष से पुस्तक [illegible] योगिता कम नहीं हुई ।

☼

४—कृत्तिवास-प्रणीत रामायण का [illegible] आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४७०+७४; मूल्य [illegible] प्रकाशक—पण्डित रामदत्त वाजपेई, लखनऊ स्टीम प्रिंटिं०

मानस—कोश ।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा
ादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक
ाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने
कर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को
ब बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि
क एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई
ायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया
। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य
वल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत
र उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द
ाइए।

सचित्र हिन्दी महाभारत

(मूल आख्यान)

०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १९ चित्र

ुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं॰ महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही
ार्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म
ा बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-
ाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की
ाक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष
ा ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना
ो, यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके
ातिव्रत धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि
ालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित को
ढ़कर ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि
गवान कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को
ोपित्र और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत"
ग्रन्थ को मंगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा
ड़ी सरल, बड़ी चित्ताकर्षक और बड़ी मनोहारिणी
है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या को यह
महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना और उससे
लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य्य वर्षों से
उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए
सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे,
जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए
सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही
महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्य-
समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। इसे आर्यों
का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्वामीजी कृत
ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज में जितने
छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें इसका आसन
ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य को यह
ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना
चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है।
मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँचे के ६१५ पृष्ठ
हैं। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, ग्रन्थकार
का परिचय, विषयानुक्रमणिका, आवश्यक विवरण,
शुद्धिपूर्ति, ग्रन्थालय-प्रशस्ति और सहायक-सूची
आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी
का मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के लिए केवल ४)
चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

सौभाग्यवती ।

सभी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी
चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश
ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य ≈)।

६४ [illegible] आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २४०;

८—प्राच्य दर्शन । मूल्य डेढ़ रुपया, लेखक, पण्डित राधाप्रसाद शास्त्री, रतन बाग़, लाहौर से प्राप्य । बड़ी अच्छी पुस्तक है । सर्वदर्शन-संग्रह के ढंग की है । इसमें सभी पूर्वी दर्शनों का संक्षिप्त वर्णन है । इसे पढ़ लेने से हमारे प्रसिद्ध षड् दर्शनों के सिवा बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि मतों के सिद्धान्तों का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान हो सकता है । इसमें बताया गया है कि "वेद के साथ दर्शनों का क्या सम्बन्ध है । फिर आस्तिक और नास्तिक रूप यह दो विभाग दर्शनों के करके, स्थूल-विचार चार्वाक से लेकर अति-सूक्ष्म वेदान्त तक के वर्णन और परीक्षा की गई है"। टाइप बड़ा और काग़ज़ अच्छा है, पर भाषा अच्छी नहीं ।

☼

१०—वेदान्त-सिद्धान्त । आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या [illegible]०; मूल्य आठ आने, लेखक पण्डित शिवकुमारजी शास्त्री [illegible] से प्राप्य । इस पुस्तक में सत्य ज्ञान से देशोपकार, [illegible]ियों का कार्यक्षेत्र में विजय, वेदान्तियों की कार्य-[illegible], वेदान्तियों का विचित्र कार्य, निद्रा में योगा-[illegible] और ईश्वर आदि विषयों पर निबन्ध हैं । लेखक [illegible] ने पांच प्रकार के ईश्वरों का वर्णन किया है । ईश्वर [illegible] होने के प्रमाण भी बतलाये दिये हैं । और भी कितनी नई नई बातें बतलाई गई हैं । कुतूहल-निवृत्ति आपकी [illegible] से ही हो सकेगी । पुस्तकारम्भ में एक विषय-[illegible] लगी है ।

☼

[illegible]—पदार्थों के गुण व स्वभाव । आकार छोटा, [illegible], सचित्र; मूल्य [illegible] आने; लेखक, पण्डित [illegible], बी० एस-सी०, अजमेर-कालेज, अजमेर । [illegible] की पहली पुस्तक है । [illegible] इसमें [illegible] स्वभावों का वैज्ञानिक ढंग से सरल भाषा [illegible] है । चित्र [illegible] के हैं । पुस्तक बहुत अच्छी है ।

☼

[illegible] लिखे नाम दिये जाते हैं वे पुस्तकें भी [illegible] हैं । [illegible] धन्यवाद—

(१) [illegible]—[illegible], [illegible] ।

(२) [illegible]—प्रकाशक, [illegible] [illegible], [illegible] ।

(३) [illegible], [illegible], [illegible] ।

(४) अरोड़-वंशव्यवस्था—लेखक, पं० राधाप्रसाद [illegible] लाहौर ।

(५) स्त्री जाति का महत्त्व
(६) नीतिशिक्षावलि
} प्रकाशक, हिन्दी-प्रेस, प्र[illegible]

(७) गोरक्षा-भजन संग्रह—प्रकाशक, पण्डित [illegible] चतुर्वेदी, मथुरा ।

(८) एक विलक्षण स्वप्न
(९) स्त्री सुधार का दिव्य रसायन
} प्रकाशक, [illegible] प्रेस, [illegible]

(१०) विज्ञान-शिक्षा—प्रकाशक, बाबू दामोदरदास [illegible] कलकत्ता ।

(११) श्रीब्राह्मण-सभा, रायबरेली, की नियमावली } प्रकाशक, मन्त्री, [illegible] सभा, रायबरे[illegible]

चित्र-परिचय ।

(१)
अज-विलाप ।

इन्दुमती की अचानक मृत्यु पर राजा अज ने विलाप किया था उसका बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन [illegible]दास ने रघुवंश में किया है । कई चित्रकारों ने इस [illegible] दृश्य चित्र में अङ्कित किया है । इस तरह का एक चित्र [illegible]स्वती में बहुत पहले निकल चुका है । इस संख्या में एक और चित्र प्रकाशित है । पहले की अपेक्षा इस [illegible] विशेषता है, जिसे चित्रकला-कुशल जन देखते ही [illegible] जायँगे । जिस माला के स्पर्श से इन्दुमती का प्राणान्त था उसे हाथ में लेकर और इन्दुमती के निष्प्राण [illegible] अपने अङ्क में रख कर, अपनी आन्तरिक वेदना को [illegible] किस कारुणिक भाव से प्रकट कर रहा है, यह [illegible] बड़ी ही ख़ूबी से दिखाया है ।

(२)
आषाढ़ ।

इस महीने का दूसरा रङ्गीन चित्र आषाढ़ है । [illegible] बाबू [illegible] के आषाढ़-वर्णन के आधार पर [illegible] हुआ है । [illegible] में कवि का लिखा हुआ [illegible] के नीचे देखिए ।

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※ ※

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

गारफील्ड ।

इस पुस्तक में अमेरिका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एब्राम गारफील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उद्योग, [illegible] और [illegible] के कारण, अमेरिका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। [illegible] के लिए पुस्तकों में इस पुस्तक का बहुत [illegible] है। मूल्य ।)

[illegible]

[illegible] वाले नहीं विदेशी विद्वान भी लट्टू हैं। [illegible] जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही [illegible] यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह है [illegible] हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा [illegible] अनुवादित किया है। लीजिए, देखिए तो [illegible] में कैसा अनुपम आनन्द आता है। मूल्य ।)

मुकुट ।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक [illegible] बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। [illegible] में परस्पर अनबन होने का परिणाम [illegible] इस छोटे से उपन्यास में बड़ी [illegible] साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर [illegible] मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। [illegible]

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

[illegible]

[illegible]

बालगीता ।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक और पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उपदेशों से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह जगह ऐसा अमृतमय उपदेश भराहुआ है कि जिसके पान से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है। श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीति-शतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प किस्से कहानियों के लिए दुनिया भर के [illegible] में सर्वोत्तम [illegible] का [illegible] है। [illegible]

का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी तक कहें. इसके पढ़ने से अनेक लाभ हैं। प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा के असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्र-लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के दाँव में फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपाय और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और [illegible] चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" [illegible] और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों के बालकों के पढ़ाने के लिए यह बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

नई पुस्तकें !

़द्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध

(हिन्दी-भाषानुवाद)

ती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द-मूल्य केवल २॥)

ादि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामायण
। में है। उसके हिन्दी-भाषानुवाद भी अनेक
। पर यह अनुवाद अपने ढँग का बिलकुल
। इसमें अक्षरशः अनुवाद है। भाषा सरल
रस है। हिन्दू मात्र रामायण को धर्मपुस्तक
हैं। असल में यह पुस्तक ऐसी ही है। इसके
पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता
र आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में
काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—पाँच
का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में
उत्तरार्द्ध छप रहा है; यह जल्दी छप कर
ात होगा। जल्दी मँगाइए।

सचित्र

शरीर और शरीर-रक्षा

ण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए० की लिखी
नाबें कैसी अच्छी और लाभप्रद होती हैं यह
ाने की ज़रूरत नहीं। जिन्होंने उनकी लिखी हुई
नाबें पढ़ी हैं, वे ख़ुद जानते होंगे। यह पुस्तक
उन्हीं पण्डित जी की क़लम की करामात है।
र में शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट
था उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं।
में ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया
और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर
क मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ
ठा सके। मनुष्य के अङ्गावयव-सम्बन्धी २१ चित्र
इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपा-
य है। मूल्य केवल ॥) आने है।

नई पुस्तकें !!

तरलतरंग

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से जो इतिहासमाला निकल रही है उसके सहायक सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को पाठक जानते ही होंगे। उन्हीं की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक संग्रह-रूप में है। इसमें—अपूर्व शिक्षक का अधम लक्षण—एक बढ़िया उपन्यास है। और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं। यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षा-प्रद और उपदेशप्रद भी है। मूल्य केवल ॥=) दस आने।

सदुपदेश-संग्रह

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बराड़ के शिक्षा-विभाग में बहुत हुई। यह कई बार छापा गया। उसी नसीहत-नामा का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रन्थों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हीं में से छाँट छाँट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। शेख़सादी का कथन है कि 'अगर भीत पर भी कोई उपदेशात्मक वचन लिखा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसे अपने कान में धर ले'। यह बिलकुल ठीक है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उप-देश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए है। उनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

गीताञ्जलि

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अंगरेज़ी पुस्तक का संसार में कितना आदर है; यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बँगला भाषा जानते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

मूल्य १) एक रुपया।

चित्र ! चित्र !! चित्र !!!

सरस्वती में प्रकाशित करने के लिए चित्र चाहिए।

जिन सज्जनों के पास सादी अथवा रंगीन दस्ती तसवीरें हों उन्हें सूचित किया जाता है कि वे उन तसवीरों को हमारे पास रजिस्टर्ड भेजें। भेजते समय तसवीरों का मूल्य तथा कापीराइट का विवरण भी लिखें। पसन्द आने पर उनका मूल्य भेज दिया जायगा और पसन्द न आने पर उनके चित्र तुरन्त लौटा दिये जायँगे।

बड़े आकार के (oil or water colour) ऐसे चित्र जिनमें भारतीय जीवन, ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटनायें अङ्कित होंगी, विशेष आदर से स्वीकार किये जायँगे। चित्रसम्बन्धी सब प्रकार की लिखा पढ़ी नीचे लिखे पते पर करनी चाहिए।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती में विज्ञापन

यह तो सभी को विदित ही है कि स[रस्वती] का प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों [में] होकर दिनोंदिन बढ़ता जाता है। इस[समय] ऐसा कोई शिक्षित समाज नहीं जहाँ "सर[स्वती]" [के] अनेक ग्राहक न हों। यही नहीं, किन्तु अमरीका, यूरोप, चीन, जापान आदि दूर[देशों में भी] सरस्वती के उत्साही ग्राहक बड़े ज्यों[...] हमारा अनुभव ठीक है कि एक एक प्रति से सरस्वती को लेकर पढ़ने वालों की सं[ख्या] आठ, दस-दस, तक पहुँच जाती है। इस[लिए] सरस्वती का प्रत्येक विज्ञापन प्रतिमास [...] हज़ार सभ्य मनुष्यों के दृष्टिगोचर होता [है]। इसलिए सरस्वती में विज्ञापन छपाने वालों को लाभ रहता है। सन् १९१३ ईसवी से तो [सरस्वती] का प्रचार और भी अधिक बढ़ रहा है।

आशा है कि आप भी "सरस्वती" में [विज्ञापन] छपा कर उससे लाभ उठाने का शीघ्र प्रय[त्न करेंगे] और बहुत जल्द विज्ञापन भेज कर एक बार परीक्षा करके देख लेंगे।

छपाने के नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	...	...	...	१२॥)
½ ,, या १ ,,	,,	...	...	७)
¼ ,, या ½ ,,	,,	...	...	४)
⅛ ,, या ¼ ,,	,,	...	...	२॥)

१—विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृ[ति नहीं] दी जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छप[वाने वालों को] सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक स[ाथ] देनेवालों से ≈) फ़ी रुपया कम लिया जायगा।

५—सरस्वती का वार्षिक मूल्य ...

नमूने की एक कापी का मूल्य ...

पत्र-व्यवहार इस पते से कीजिए,

मैनेजर, सरस्वती,

[इंडियन] प्रेस,

SARASVATI—Reg. No. A248.

खण्ड २] अगस्त, १९१५ [संख्या २, पूर्ण संख्या १८८



...मूल्य ४)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची ।

चित्र-सूची ।

सूचना

नीचे लिखी पुस्तकें छपकर बिक्री के लिए तैयार हो गईं।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[म]ुफ़त लुटाते हैं



मुफ़त लुटाते हैं

[ख]ुशबूदार रमेशसाबुन एक वैज्ञानिक रीति से बनाया जाता है जो सिर्फ़ ३-४ मिनट में बग़ैर तकलीफ़ के बालों को उड़ाकर जिल्द को मुलायम और ऐसा चमकदार कर देता है मानो बाल थे ही नहीं। रमेशसाबुन दाद, खाज, और ज़हरीले जानवरों के विष को भी बात की बात में खो [दे]ता है। [इ]सी सबब रमेशसाबुन के हज़ारों बक्स बिक रहे हैं। रमेश साबुन बड़े बड़े राजे महाराजे, सेठ [साहूकारों] के मकान तक आदर पा चुका है। तीन टिकिया मय .खूबसूरत बक्स ।॥) बारह आना खरचा ।–) लेकिन जो साहब चार बक्स क़ीमती ३) तीन रुपया एक साथ ख़रीदेंगे उनको एक [हमेशा च]लने की निहायत मज़बूत .खूबसूरत पायेदार फ़ैसनेबिल घड़ी मुफ़्त नज़र करेंगे। वी० पी० [खर्च] ।)

पता—एल० आर० गुप्ता
(बी ब्रांच) स्वामीघाट, मथुरा।

आधे दाम में हाथ और पैर का बाजा।



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१६, खण्ड २] अगस्त १९१५—श्रावण १९७२ [संख्या २, पूर्ण संख्या १८८

वृद्धावस्था।

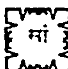
(एक वृद्ध की उक्ति समय के प्रति)

कवित्त—

...रे ! लूट ले गया माल।
...गेह-मोह में हमें भुलाया मद का जादू डाल।
...क सम्पत्ति सब स्वप्न हो गई बचे न सिर पर बाल।
...धीरे धीरा लेगया दाँतों जैसी लाल।
पड़ी झोंपड़ी खड़ी है बिगड़ा हाल हवाल।
...गा अरे! इस में भी अब विगड़'न-वादा काल।

बदरीनाथ भट्ट।

विदेशी माल सस्ता क्यों?




सारिक सुखों के साधन सांसारिक पदार्थ हैं। इन पदार्थों की प्राप्ति उद्यम के अनुसार न्यूनाधिक पैदा होती है वही सुखी है। मनुष्य क्या, सभी प्राणियों की प्राणरक्षा भी पदार्थों ही पर अवलम्बित है। यद्यपि अन्न और हवा के बिना भी जीना असम्भव है, तथापि ये दोनों पदार्थ सब को सब समय बिना परिश्रम मिलते हैं। खाद्य वस्तु ही एक ऐसी चीज़ है जिसके लिए सभी को [illegible] पड़ती है। [illegible] के साथ ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लगता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में रहते हैं

रते और उनकी चीनी ख़रीदते—चाहे सस्ती
लती चाहे महँगी—तो हम अवश्य ही धनाढ्य हो
ाते और नक़ली के बदले असली चीनी खाते। पर
मारे भाइयों को घर में फूट बोने से ही छुट्टी नहीं।
करें तो क्या करें। दूसरी जातियाँ आपस
मिल कर सहयोगिता का पाठ पढ़ रही हैं और
म फूट का बीज बोते चले जा रहे हैं। सहयोगिता
ही अनेक देशों को मालामाल कर दिया है। उसी
प्रभाव से माल सस्ता बिकता है। पर हम सह-
ोगिता का कभी स्वप्न भी नहीं देखते। यदि हम
हयोगिता की तरफ़ झुकें तो देखते देखते धन-
बेर हो जायँ। केवल एक मति की—केवल योग-
ान की—ज़रूरत है। क्या आलू और चोकर आदि
बनी हुई चीनी उस चीनी की समता कर सकती
जो स्वभाव ही से मीठी है? कदापि नहीं।
देशी माल के सस्ते होने का कारण सुन
ीजिए—

जो चीज़ अधिक मिक़दार में एकदम तैयार की
ाती है वह हमेशा सस्ती होती है। मान लीजिए
किसी को कोई पुस्तक छपवानी है। यदि वह
कदम बहुत सी पुस्तकें छपवाता है तो वे सस्ती
ड़ती हैं। पर वही पुस्तक यदि प्रति वर्ष थोड़ी थोड़ी
रके छापी जायँ तो महँगी पड़ती हैं। इसका कारण
ह है कि समय अधिक लगता है और मज़दूरी में
हुत ख़र्च पड़ता है। चीनी तथा दूसरी चीज़ों का
ी यही हाल है। एकदम बहुत सी चीनी बनाई जाती
, इस कारण सस्ती पड़ती है। कल्पना कीजिए कि
मी किसान को ईख पेर कर चीनी बनाना है।
ह थोड़ी सी ईख काट कर उसे पेरता है और उसके
स को कड़ाह में पका कर उससे गुड़ या चीनी
नाता है। यदि वह थोड़ी सी ईख न काट कर
हुत सी काटता या कई किसान मिल कर अपनी
पनी ईख काट कर सबका रस एक साथ कड़ाह
पकाते तो चीनी या गुड़ अवश्य सस्ता पड़ता।
ल्पना कीजिए कि सौ घड़े रस से चीनी बनाना
। यदि वह रस एकदम गरम किया जाय तो कम
आँच ख़र्च होगी। वही यदि दस दफ़े में गरम
किया जाय तो ईंधन भी बहुत लगेगा, समय भी,
और मज़दूरी भी। अब बताइए कौन सा तरीक़ा
सस्ता और अच्छा है।

दूसरी बात यह है कि विदेशों में प्रायः सभी
चीज़ों के कारख़ाने हैं। जो जिस विषय को जानता
है वह उसी के सम्बन्ध का काम करने के लिए
रक्खा जाता है। जैसे, जो चीनी की कल पर काम
करता है वह और काम नहीं करता। यह नहीं
कि आज तो वह चीनी की कल पर है, कल कोई
और काम करने बैठ गया। ऐसा करने से वह कार्य्य-
कुशल नहीं हो सकता। इसलिए जो जिस विषय
को जानता है उससे वही काम लिया जाता है।
ऐसा आदमी अपने काम को शीघ्र और अच्छी
तरह कर सकता है।

तीसरी बात कलों से काम लेना है। हाथ के
काम से और कलों के काम से ज़मीन आसमान का
फ़रक़ है। कलों से जल्दी काम होता है। हाथ से
उसका शतांश भी उतनी देर में नहीं हो सकता।
यही कारण है जो कल का बना माल बहुत सस्ता
पड़ता है।

पाश्चात्य देशों में मज़दूरी में अवश्य ही अधिक
ख़र्च पड़ता है। अमेरिका का मज़दूर ६) रुपये रोज़
पाता है और भारत का ।=) आना रोज़! पर ऊपर
कही हुई बातों के कारण अधिक मज़दूरी दे कर भी
माल सस्ता पड़ता है। फिर, टापुओं में अधिकतर
भारतीय मज़दूर ही काम करते हैं, जहाँ डेढ़ रुपया
रोज़ से अधिक मज़दूरी नहीं मिलती।

विदेश में मज़दूरों से काम लेने के और तरीक़े
हैं, भारत में और। अमेरिका में, और शायद इँगलैंड
में भी, यह तरीक़ा है कि काम करने का समय
नियत कर दिया जाता है। जैसे किसी पुर्ज़े को
बनाने के लिए पाँच घण्टे का समय दिया गया।
अब, यदि, काम करने वाला मज़दूर ढाई घण्टे में ही
उसे कर डालता है तो उस को दूनी मज़दूरी
मिलती है। यदि वह दो रोज़ का काम एक ही

रोज़ में कर डालना है और उसकी मज़दूरी ६) रोज़ है तो उसे एक रोज़ की मज़दूरी ड्योढ़ी अर्थात् ९) मिलेगी। यद्यपि काम उसने १२) का किया, पर ३) कारख़ाने के मालिक की पाकेट में गये। इस तरह कारख़ाने वाले ने दो आदमियों का काम डेढ़ आदमी से लिया। ड्योढ़ी मज़दूरी पाने के लिए मज़दूर बड़ी कोशिश करते हैं और काम पर ख़ूब जुटे रहते हैं।

पर भारत में मैं इस तरह काम लेने के ढँग का पक्षपाती नहीं। इस से आरोग्य में बाधा पड़ जाती है और हड़तालों का भी डर रहता है। पाश्चात्य देशों की बात और है। वहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है। इस कारण बीमारी इत्यादि कम होती है। फिर वहाँ के मज़दूर दिन में तीन वक्त, मांस-भक्षण करते हैं। शराब बिना उनका गुज़ारा ही नहीं। इस से वे हृष्ट-पुष्ट बने रहते हैं। पर, भारत में यह बात नहीं। समय को देख कर काम करना उचित है।

यदि भारत को व्यापार की घुड़दौड़ में आगे बढ़ना है तो उसे ये काम करने होंगे:—

(१) सहयोगिता का सङ्गठन (२) कलों का प्रयोग और (३) यथाशक्ति स्वदेशी वस्तु-सेवन। यदि इन साधनों से काम लिया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय व्यापार की उन्नति हो। भारत में मज़दूरी कम है। इसलिए उसे शीघ्र सजग होना चाहिए। जब यहाँ के मज़दूर भी विलासी हो जायँगे तब अवश्य ही अधिक ख़र्च होगा। पर यह जब होगा तब होगा, वर्तमान दशा को देख कर कार्य्यारम्भ कर देना चाहिए।

हम लोगों की मुख्य ख़ूराक अन्न है, जिसकी पैदावार बढ़ाना हमारा पहला कर्तव्य है। पर केवल इतने ही से विशेष उन्नति न होगी। जो देश कच्चा माल तैयार करके ही शान्त रहता है उसकी उन्नति तो दूर रही, वह दिन पर दिन गढ़े में गिरता जाता है। खान से निकले हुए लोहे की क़ीमत यदि दस रुपया है तो उसी से बनी हुई घड़ी की क़ीमत सौ है। कच्चा माल तैयार माल से कहीं सस्ते

भाव में बिकता है। इसलिए हम लोगों को खेती की उन्नति के अलावा कारख़ाने भी खोलने चाहिए। इस दशा में हमको पहले विदेशों से कलें ख़रीदनी होंगी। विदेश जाकर कारोबार सीखना होगा। कूप-मण्डूक बने रहने से तो घिरे घिरे के सिवा और क्या हो सकता है। किसी चीज़ का बिल्कुल बहिष्कार करना असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य है। अमेरिका जैसे देश भी इँगलैंड और जर्मनी की चीज़ें बर्तते हैं, और जर्मनी इत्यादि अमेरिका की। पर ये अपना हानि-लाभ समझ कर ऐसा करते हैं। क्या भारतवासी ऐसा नहीं कर सकते? अवश्य ही कर सकते हैं।

हमें यथासम्भव स्वदेशी वस्तु का सेवन करना चाहिए। पर यदि स्वदेशी वस्तु नहीं मिल सकती और उसके न मिलने से काम रुका जाता है, शिल्प व्यापार में बाधा पड़ती है तो विदेशी ज़रूर ख़रीदनी चाहिए। तथापि, यदि कोई कहे कि मुझे तो सफ़ेद ही चीनी पसन्द है तो इसका उत्तर मेरे पास इतना ही है कि उसकी प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ कीजिए; आप ख़ुद ही उसे बनाइए। समय को देख कर आचरण कीजिए। सहयोगिता की भित्ति पर खेती कीजिए और उपयोगी चीज़ों के कारख़ाने खोलिए। सचाई और सहानुभूति से काम लीजिए। ईश्वर पर भरोसा रखिए। फिर देखिए, पुरुषार्थ और धैर्य्य का फल कैसे नहीं मिलता।

धीरसेनसिंह
(अमेरिका)

भारतीय किसानों के उद्धार का उपाय



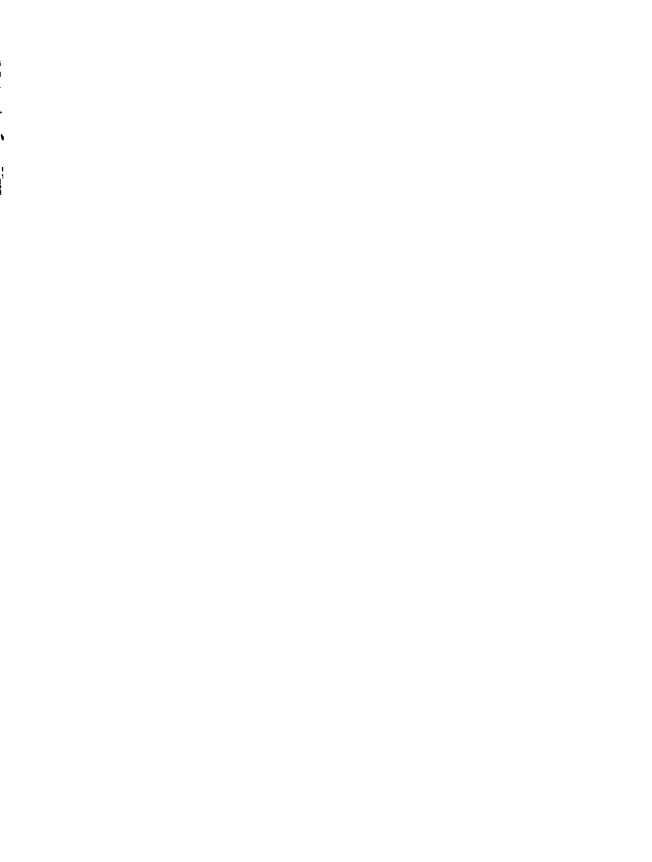
रतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। प्राचीन काल में शिल्प और वाणिज्य में भी भारत और देशों से कहीं बढ़ा चढ़ा था। किन्तु लगभग २०० वर्षों से विदेशी वाणिज्य की वृद्धि और राजनैतिक अवस्था में परिवर्तन होने के कारण यहाँ का व्यापार घोर हो गया। इस समय यह देश केवल कच्चा माल उत्पन्न करने का स्थान



श्रावण।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।



छ से तुच्छ वस्तुओं के लिए भी हम लोगों को दूसरों का ह ताकना पड़ता है। कुछ समय पहले तक भारत में जो म तैयार होता था वह विदेशों में सस्ते दामों बिक हता था और कड़ा कर लगने पर भी भारतीय शिल्पियों ख़ासा मुनाफ़ा होता था। किन्तु इस समय ये सब व्यव-य मटियामेट हो गये हैं। केवल बची है कृषि। उसी से व प्रायः सभी प्रजा को पेट पालना पड़ता है। इसी कारण हा जाता है कि—"India is a Continent villages" अर्थात् भारतवर्ष गाँवों का देश है। जो ग देहात में रहते हैं उनकी जीविका का एक मात्र उपाय पि है। एक सरकारी किताब (Imperial Gazetteer) लिखा है—

"It has been estimated that nine-tenths the rural population in India live directly indirectly by agriculture."

अर्थात् हिसाब लगाने से मालूम हुआ है कि ग्राम-वासियों में फ़ी सदी नब्बे मनुष्यों को कृषि के द्वारा जीविका-निर्वाह करना पड़ता है।

इँगलेंड में फ़ी सदी ७७ आदमी नगरों में रहते हैं, किन्तु यहाँ वाले अधिकतर नगरों में नहीं, किन्तु देहात में रहते हैं। इसलिए भारत का कृषकों के साथ बड़ा घना सम्बन्ध है। उन्हीं की दुर्दशा से भारत की दुर्दशा और उन्हीं की सुदशा से भारत की सुदशा का पता लगता है। अतएव में उचित है कि इन कृषकों की गिरी हुई दशा किस तरह अच्छी हो सकती है, इस पर विचार करें। हमारी गवर्नमेंट भी इस बात की क़ायल है और वह इनकी दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

भारत की दशा इस समय शोचनीय है। एक साल भी यदि अच्छी वर्षा नहीं होती तो सारे देश में कुहराम मच जाता है और लाखों भारतवासी भूखों के मारे छटपटा कर प्राण-त्याग करते हैं। भारतवर्ष में दुर्भिक्ष का ज़ोर किस प्रकार दिन पर दिन बढ़ता जाता है, यह बात सरकारी रिपोर्टों में प्रकाशित मृत्यु-संख्या से मालूम होती है। अठारहवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक केवल चार दफ़े दुर्भिक्ष पड़ा। किन्तु उन्नीसवीं सदी से दुर्भिक्ष का ज़ोर बढ़ने लगा। १८०० से १८२५ तक संपूर्ण ब्रिटिश भारत में १० लाख भारतवासी भूखों मरे। १८२५ से १८५० तक ५ लाख और १८५० से १८७५ तक ५० लाख मनुष्यों ने बिना अन्न अपने प्राण खोये। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम पचीस वर्षों के दुर्भिक्षों का विचार करने से तो छाती फटती है। केवल इन २५ वर्षों में दुर्भिक्ष-दैत्य ने भारत पर २८ बार अपनी कोपाग्नि प्रकट की और लगभग ४ करोड़ मनुष्यों को भस्मीभूत कर दिया। उन्नीसवीं सदी में सब मिला कर जितने मनुष्यों ने भूख से प्राण-त्याग किये उस पर विचार करके कौन ऐसा पाषाण-हृदय होगा जिसके नेत्रों में आँसू न आ जायँ? संसार में युद्ध से बहुत नर-हत्या होती है। किन्तु जितने मनुष्य अकाल के कारण अकेले भारत में, सौ वर्षों में, मरे उतने संसार के सारे युद्धों में भी उन सौ वर्षों में नहीं मरे। विलियम डिग्बी (William Digby) साहब ने लिखा है कि १७९३ से १९०० ईसवी तक, एक सौ सात वर्षों में, संसार में जितने युद्ध हुए हैं उनमें सब मिला कर ५० लाख से अधिक मनुष्य नहीं मरे। किन्तु उसी समय के बीच अकेले भारत में तीन करोड़ पचीस लाख मनुष्यों ने बिना अन्न संसार-त्याग किया। इससे बढ़ कर भारत की और क्या दुर्दशा होगी! जिस भारत में पशु-पक्षी भी अन्न न पूछते थे उसी भारत में आज लाखों मनुष्य बिना अन्न प्राण त्याग करते हैं। इसका कारण क्या? साधारणतः लोग समझते हैं कि दुर्भिक्ष अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि से होता है। वृष्टि की बात ईश्वर के हाथ में है। मनुष्य का इसमें कुछ भी ज़ोर नहीं। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि भारत में सर्वत्र कभी अकाल नहीं पड़ता। अकाल के समय में भी हमारे देश के कितने ही प्रान्तों में इतना अन्न होता है कि यदि वह बाहर न जाय तो एक मनुष्य भी भूखों न मरे। बात यह है कि अन्न का कम उत्पन्न होना भारत के दुःख-दारिद्र्य का कारण नहीं। पृथ्वी में कई देश ऐसे हैं जहाँ खेती के योग्य भूमि बहुत कम है। तथापि वहां के लोग भूखों नहीं मरते। इँगलेंड ही को लीजिए। वहां खेती के योग्य बहुत ही थोड़ी भूमि है। वहाँ जितना अन्न उत्पन्न होता है वह वहाँ वालों के लिए साल में ६० दिनों से अधिक के लिए काफ़ी नहीं। तिस पर भी वहाँ के लोग बाक़ी दिनों में भूखों नहीं मरते। जर्मनी का भी यही हाल है। वहाँ के मनुष्य भी अपने देश की उपज से केवल १०४ दिन अपने प्राणों की रक्षा कर

सकते हैं। किन्तु यहाँ भी दुर्भिक्ष से नर-नाश नहीं होता। भारतवर्ष में भी ऐसा समय आज तक कभी नहीं आया जब रुपया देने से भी अन्न न मिले। तब क्या कारण है कि लोग भूखों मर जाते हैं। विदेशी तो सात समुद्र पार बैठे हुए यहाँ से अन्न मँगा कर अपना पेट पालते हैं और भारतवासी सामने ही अन्न का ढेर देखते हुए भी उसके लिए तरस तरस कर प्राण छोड़ते हैं। इन दरिद्र भारतवासियों के इस दुःख को देख कर कितने ही सहृदय अँगरेज़ों का भी हृदय द्रवीभूत हुआ है। उन्होंने भारत की इस दरिद्रता की ओर सरकार का ध्यान भी आकर्षित किया है। भारतवासियों के कष्ट का मूल कारण दरिद्रता है। यदि भारतवासियों के पास धन हो तो वे कभी इस तरह न मरें। धन ही के अभाव से उन्हें [illegible] का सामना करना पड़ता है और [illegible] [illegible]

[illegible]

१५) ही रह जाता है! अब इस का मिलान [illegible] देशों की आमदनी से यदि आप करें तो [illegible] देखिए—

	रुपया
	६६०
इँगलैंड	३६०
जर्मनी	४००
फ्रान्स	४२५
बेलजियम	२८२
अमेरिका के संयुक्त राज्य	६३२
आस्ट्रेलिया	१५
भारतवर्ष	

इस हिसाब से साफ़ ज़ाहिर है कि भारतवर्ष [illegible] इँगलैंड ४२ गुना अधिक धनी है। अब पाठक [illegible] अनुमान कर सकते हैं कि भारतवर्ष कितना दरिद्र है। इस समय भारतवर्ष की आबादी कोई ३२ करोड़ है। [illegible] कम से कम २० करोड़ मनुष्य खेती से [illegible] करते हैं। इन २० करोड़ मनुष्यों में लगभग १० [illegible] मनुष्य ऐसे हैं जो पेट भर खाना किसे कहते हैं, यह [illegible] ही नहीं। सर इलियट (Sir Elliot) ने इस [illegible] पेश किया है कि दरिद्रता के कारण ही [illegible] है। [illegible]

[illegible]

अर्थात् जो जाति केवल कृषि पर ही भरोसा रखती है या ऐसे ही व्यवसाय करती है जिनके बिना उसका ी तरह गुज़ारा ही नहीं वह अपनी आधी उत्पादक शक्ति रक्षित रहती है।

हम लोगों को अपने देश से कच्चा माल विदेश भेजना ता है। उसी से माल तैयार होकर फिर यहाँ आता है। उदाहरण के लिए जूट लीजिए। यह बङ्गाल में बहुत पैदा ता है। भारतवर्ष में उसकी खपत बहुत कम है। वह र सारा का सारा विदेश जाता है। यही कारण है कि ज कल योरप में युद्ध छिड़ जाने से यहाँ के जूट का पार चौपट हो गया है। उसका दाम घट कर आधा ही गया है। इस कारण हमें बड़ी भारी हानि उठानी पड़ी है। दि जूट की चीज़ें भारतवर्ष ही में बनतीं तो इस दूरस्थित द के कारण इस व्यवसाय को हानि न पहुँचती। उलटा भाति होती, क्योंकि बाहर वालों की प्रतियोगिता हमें न नी पड़ती।

भारत में बहुत कम व्यापार होता है। इस कारण में अधिकांश कृषि-कार्य से ही अपना निर्वाह करना ड़ता है। फल यह होता है कि कृषि पर हद से ज़ियादह बोझ पड़ता है, जिसे सँभालने में वह समर्थ नहीं। यदि देश में अधिक व्यापार होता तो कृषि पर उतना बोझ न पड़ता। प्रजा का कुछ अंश शिल्प-वाणिज्य से अपना पेट भरता। व्यापार से एक और भी लाभ है। उससे देश के धन की वृद्धि होती है। धन की वृद्धि से दरिद्रता की भयङ्करता घटती है। कुछ लोगों का यह ख़याल है कि भारतवर्ष कृषि के ही योग्य है। ईश्वर ने भारत को अन्न उपजाने के लिए ही बनाया है। यहाँ का जलवायु शिल्प और वाणिज्य की उन्नति के योग्य नहीं। किन्तु यह उनकी भूल है। कुछ लोग अमेरिका के लिए भी यही कहते थे कि यहाँ वाणिज्य-व्यापार सफल नहीं हो सकता। किन्तु अब सभी देखते हैं कि अमेरिका कृषि तथा वाणिज्य दोनों में कितना बढ़ा चढ़ा है। इसी तरह भारत भी व्यापार-वाणिज्य में उन्नति कर सकता है। हाँ, यहाँ वालों को अपने देश के उत्थान के कार्य्य में ... कता है। जब तक भारतवर्ष कृषिप्रधान बना रहेगा तब तक कृषकों की दशा न सुधरेगी।

लगान में सुधार की आवश्यकता।

कृषकों के उद्धार का दूसरा उपाय सारे भारतवर्ष में दवामी बन्दोबस्त अर्थात् Permanent Settlement है। जिस समय अँगरेज़ों का शासन इस देश पर हुआ उस समय थोड़े ही समय के लिए ज़मीन के लगान का निर्णय निश्चित होता था। इस कारण बहुत बुराइयाँ पैदा होती थीं और दिन पर दिन खेतों की उत्पादक शक्ति कम होती जाती थी। लार्ड कार्नवालिस के गवर्नर-जनरल होकर आने के पहले यहां एक अथवा पाँच वर्ष के लिए ही ज़मीन का पट्टा लिखा जाता था। लार्ड कार्नवालिस आये तो उन्होंने देखा कि कृषक अपनी ज़मीन का ठीक तरद्दुद नहीं करते। खेत जङ्गल बन रहे हैं। ज़मीन की उर्वरा-शक्ति नष्ट हो रही है। तब उन्होंने बङ्गाल हाते का दवामी बन्दोबस्त कर दिया। तदनुसार जो मालगुज़ारी १७९३ ईसवी में निर्दिष्ट हुई थी वही आज तक देनी पड़ती है। इससे गवर्नमेंट को कुछ आर्थिक क्षति अवश्य हुई, किन्तु, राजनैतिक दृष्टि से उसे बड़ा लाभ हुआ। इस विषय में होर्नेल नाम के एक साहब ने लिखा है—

"While the natives of the soil gained by the Permanent Settlement, as it is called, the British have in the end lost much revenue * * * * * But if there has been a loss in money, there has been an incalculable gain politically The foundation of all Government is in the good will of the subjects, and the Permanent Settlement of Bengal has bound the people in loyal devotion to the British Government."

अर्थात् दवामी बन्दोबस्त से भारतवासियों को अवश्य लाभ हुआ है। किन्तु सरकार की मालगुज़ारी की आमदनी में कमी हो गई है। यह सच है कि आर्थिक दृष्टि से सरकार की हानि हुई है, पर राजनैतिक दृष्टि से उसे अवर्णनीय ... है। राज्य-शासन की नींव प्रजा की प्रसन्नता रहती है, और बङ्गाल के दवामी बन्दोबस्त

के कारण प्रजा सरकार की भक्त बन गई है। यह लाभ थोड़ा नहीं।

लार्ड कार्नवालिस के चले जाने के बाद फिर और किसी भी प्रदेश में दवामी बन्दोबस्त न किया गया। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में फिर भी कई शासनकर्त्ताओं के चित्त में सारे भारतवर्ष में दवामी बन्दोबस्त करने का विचार उठा था, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। १८०७ में सर टामस मनरो ने मदरास में जो रैयतवारी बन्दोबस्त किया था वह बङ्गाल के दवामी बन्दोबस्त के समान ही था। पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध में भी दवामी बन्दोबस्त करने का विचार उठा, पर हुआ कुछ नहीं। अतएव सिवा बङ्गाल के और सब कहीं की प्रजा को, बार बार बन्दोबस्त होने और लगान में इज़ाफ़ा किये जाने के कारण, बहुत कष्ट मिलता है। किसान अपने खेत की यथेष्ट उन्नति नहीं कर सकते। उत्तम और क़ीमती खाद से खेतों की उर्वरा-शक्ति को नहीं बढ़ा सकते। क्योंकि उन्हें सदा भय लगा रहता है कि यदि खेत की उपज बढ़ जायगी तो सरकारी मालगुज़ारी या लगान भी साथ ही बढ़ जायगा। कितने ही स्थानों में तो जब नये सिरे से बन्दोबस्त करने के दिन समीप आते हैं तब उसके कुछ समय पहले ही से किसान खेतों की ओर कम ध्यान देते हैं - यों वे जान बूझ कर नुकसान करते हैं। पर वे इसलिए करते हैं जिसमें सरकार मालगुज़ारी न बढ़ावे। सेटन कार (Seton-Kar) नाम के एक महाशय ने लिखा है—

"As the period for revision draws nigh, a certain amount of distrust and disquietude [illegible] Wealth [illegible]

वैज्ञानिक यन्त्रों का भी लोग प्रयोग नहीं कर सकते काम में उनकी दरिद्रता भी बाधक होती है। हाँ, ज़मींदार अवश्य कृषि की उन्नति करने से नहीं उन्हें लगान बढ़ जाने का डर नहीं। वैज्ञानिक भी वे काम में ला सकते हैं। मेन साहब ने "Village Communities" नामक पुस्तक में

"The proprietorship conferred o zemindars has also much to do wi introduction into Lower Bengal, nearly among Indian Provinces, of new a agricultural industries."

अर्थात् भारतीय प्रान्तों में लोअर बङ्गाल (Lower Bengal) ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ कृषि व्यवसाय नये तरीक़े से और प्रचुर परिमाण में इसका बड़ा भारी कारण ज़मींदारों को मालिका देना है।

इसी विषय पर सेटन कार ने लिखा है —

"Scarcity is met, relief works are foot and supplies are transported with facility, where there are large zemind in provinces where the settlement made with the heads of village com or with each ryot direct."

अर्थात् जहाँ बड़े बड़े ज़मींदार हैं वहाँ अकाल की रोक हो जाती है। प्रजा की सहायता के लिए दुर्भिक्ष कार्य खोले जा सकते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान में चीज़ें भेजी जा सकती हैं। पर और प्रकार का [illegible]

वसूल किया जाता है। फल यह होता है कि बेचारे मान दिन पर दिन दरिद्र होते जाते हैं। डब्लू० आर० र्डसन नाम के एक साहब ने एक दफ़े कहा था— "The condition of agricultural labourers India is a disgrace to any country alling itself civilised". अर्थात् भारतीय किसानों दशा सभ्य कहलाने वाले देश के लिए अत्यन्त ही अपमान-रक है।

जिस समय वर्तमान गवर्नमेंट का शासन प्रारम्भावस्था में उस समय अन्धाधुन्ध लगान बढ़ाया गया था। उसे वसूल रने में दया भी न दिखाई जाती थी। सन् १७७६ ईसवी बङ्गाल में घोर अकाल पड़ा। इस कारण बिना अन्न के सहस्त्र नर-नारी प्राण-त्याग करने लगे। तिस पर भी माल-ज़ारी वसूल करने में कुछ भी रियायत न की गई। उलटा रकारी कर्मचारियों ने हर्ष प्रकट किया कि ऐसे घोर दुष्काल भी मालगुज़ारी वसूल करने में उन्हें आशातीत सफलता ई। किन्तु सैाभाग्य की बात है कि दिन पर दिन सरकार का यान इस ओर आकृष्ट हो रहा है। गवर्नमेन्ट कृषकों पर ब समय समय पर दया दिखाया करती है। यदि दुष्काल ड़ता है तो सरकार प्रजारक्षक काम (रिलीफ़ वर्क्स) खोलती और तक़ावी भी बाँटती है। किन्तु अब भी किसानों की शा अच्छी नहीं।

अब, यदि, आप अन्य देशों के लगान से भारतवर्ष के गान की तुलना करें तो आपको विदित हो जायगा कि श्चिम के धनवान् देशों को भारतवर्ष के सदृश दरिद्र देश की अपेक्षा कितना कम लगान देना पड़ता है। योरप में जेस खेत से सौ रुपये की आमदनी होती है उसके लिए नीचे लिखे अनुसार लगान देना पड़ता है—

इँगलैंड	८।)
इटाली	७)
जर्मनी	३)
बेलजियम	२॥।)
हालैंड	२॥।)
भारतवर्ष	१२ से २०) तक

इस से यह स्पष्ट प्रकट है कि दरिद्री होने पर भी भारत को और और देशों की अपेक्षा कहीं अधिक लगान देना पड़ता है। यदि इस लगान में कुछ कमी हो जाय तो कृषकों का बड़ा उपकार हो। क्योंकि अच्छी फ़सल न होने पर भी सरकारी लगान अवश्य ही ठीक समय पर देना पड़ता है। नहीं तो घर-द्वार, थोरिया-बँधना बिकने की नौबत आती है। परिणाम यह होता है कि बेचारे ग़रीब किसानों को गांव के बनिये या महाजन की शरण जाकर मुँहमांगे सूद पर रुपया क़र्ज़ लेना पड़ता है। तब कहीं वह लगान अदा कर सकता है।

केवल मालगुज़ारी और लगान से सम्बन्ध रखने वाली बुराइयों के कारण ही किसानों को ऋण-पङ्क में नहीं फँसना पड़ता। इस में उनका भी कुछ दोष है। भारतीय किसान पढ़े लिखे नहीं। उनको नैतिक शिक्षा भी नहीं मिलती। इस कारण वे फ़िज़ूलखर्च हो जाते हैं। ब्याह आदि में वे अपनी स्थिति के अनुसार खर्च नहीं करते। यदि उनको क़र्ज़ मिल जाता है तो वे समझते हैं कि यह रुपया उन्हें फिर कभी देना ही न पड़ेगा। इससे वे मनमाना क़र्ज़ ले लेते हैं और फिर अपनी मूर्खता का कुफल भोगते हैं।

शिक्षा की आवश्यकता।

भारतवर्ष के किसानों की दशा उन्नत करने के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। गोखले महाशय ने इसीसे गवर्नमेन्ट से प्रार्थना की थी कि भारतवर्ष में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ़ कर दी जाय। सारे भारत ने इसका समर्थन किया। किन्तु शोक है कि यह प्रस्ताव स्वीकार न किया गया। यदि यह स्वीकृत हो जाता तो वह दिन दूर न था जब भारतवर्ष के भी कृषक पेट भर रोटी खाने लगते। क्योंकि परिश्रम करने में वे किसी से कम नहीं। इम्पीरियल गैज़ेटिर के तीसरे भाग में (Imperial Gazetteer, Part III) लिखा है कि यहां के कृषक खेती करना अच्छी तरह जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि कौन सी ज़मीन किस फ़सल के लिए उपयुक्त है, एक फ़सल बोने के बाद और कौनसी फ़सल उसी खेत में बोनी चाहिए। और देशों के किसानों के सदृश यहां के किसान शराबी भी नहीं। अतएव यदि पूर्वोक्त दोष दूर कर दिये जायँ तो इनकी दशा सुधरने में देर न लगे।

देहाती बैंक।

ख़ुशी की बात है, सरकार का ध्यान किसानों की ऋण-ग्रस्तता की ओर आकृष्ट हुआ है। उनके क़र्ज़ का बोझ हलका करने के लिए उसने देहाती बैंक (Co-operative Credit Societies) अर्थात् उधार देने वाली समितियाँ स्थापित करना आरम्भ कर दिया है।

कृषि-कार्य में पहले ख़र्च की आवश्यकता होती है। किन्तु बेचारे किसानों के पास पूंजी कहां जो वे पहले लगा सकें और फिर उसके फल की प्रतीक्षा करें। इस कारण उन्हें गांव के बनिये, महाजन या ज़मींदार से क़र्ज़ लेना पड़ता है। लेकिन ये लोग सूद इतना लेते हैं कि बेचारे किसान उजड़ जाते हैं। यदि दुर्भाग्यवश वर्षा न हुई तो उनके कष्ट की सीमा नहीं रहती। फ़सल नष्ट हो जाती है और फिर भी उन्हें महाजन की शरण जाना पड़ता है। उधर सरकारी लगान भी उनसे वसूल कर लिया जाता है। फल यह होता है कि किसान क़र्ज़ में डूबते चले जाते हैं। सरकार ने इन्हीं की रक्षा के लिए देहाती बैंक खोले हैं। इन बैंकों ने थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक उन्नति की है। इस समय भारतवर्ष में लगभग १६,००० देहाती बैंक काम कर रहे हैं। इनके मेम्बरों की संख्या ६ लाख के लगभग है। इनकी पूँजी ७ करोड़ रुपये की है।

[illegible]

...श्यकता नहीं। हिसाब लगाने से सिद्ध हुआ है कि ... से उधार लेने के कारण मेम्बरों को लगभग १० ... वार्षिक बचत होती है। कोई कारण नहीं है कि ... दिन पर दिन उन्नति न करे।

इस बचत के सिवा इन बैंकों से और लाभ भी ... हैं। बहुत मनुष्य जो रुपया गाड़ कर रखते थे ... लगाते हैं। इस कारण जो रुपया किसी के ... आता वह कृषकों के काम आने लगा है। ... कारण देहात में शिक्षा का प्रचार भी होने लगा है। ... आदतों और फ़िज़ूल-ख़र्ची को भी छोड़ने लगे ... भी जानने लगे हैं कि हिसाब-किताब किस ... जाता है और "पास-बुक" कैसे पढ़ी जाती है। ... वही मेम्बर हो सकते हैं जो सदाचारी होते हैं। ... चलन का आदमी मेम्बर नहीं हो सकता। ... मेम्बर एक दूसरे के क़र्ज़ चुकाने का ज़िम्मेदार ...

भारतवर्ष में इन बैंकों की कहां तक ... हुई है, यह नीचे लिखे हिसाब से प्रकट होता है—

	१९०६	१...
		८...
बैंकों की संख्या	८४३	४,०१...
मेम्बरों की संख्या	९०,८४४	
पूँजी	२३ लाख	

१९१२ ईसवी में ३ करोड़ ३० लाख से ... करोड़ १४ लाख पूँजी हो गई है। इससे सि... बैंकों की दिन पर दिन उन्नति हो रही है।

रकों की दशा सुधर सकती है। भारतवर्ष में नहरों की त्यन्त आवश्यकता है। यहाँ के कृषकों को वर्षा पर ही वलम्बन करना पड़ता है। यदि एक वर्ष वर्षा न हो तो ना न पैदा हो। यह आपत्ति नहरों से बहुत कुछ दूर हो कती है। पर सरकार का ध्यान रेलवे के विस्तार की ओर धिकतर है, नहरों की ओर उतना नहीं। प्राचीन काल से स देश के राजा प्रजा के लाभ के लिए नहरें, बांध और लाब बनवाते रहे हैं। यही कारण है कि मिथिला में गह जगह तालाब है। कोस कोस लम्बे तालाब भी मिथिला दृष्टिगोचर होते हैं। दक्षिणी भारत में चार कोस लम्बे, डेढ़ कोस चौड़े तालाब पाये जाते हैं। मुसलमान बादशाहों के समय में कई नहरें बनीं। ब्रिटिश सरकार ने भी १८४० ईसवी से नहर खुदवाने का कार्य इस देश में आरम्भ किया है और अब तक इस काम में दत्तचित्त है। जब जब अकाल पड़ा है तब तब सरकार ने थोड़ी बहुत वृद्धि नहरों की अवश्य की है।

गत १० वर्षों में तो नहरों के लिए उसने खर्च की मात्रा भी बहुत कुछ बढ़ा दी है। इस कारण कृषि को बड़ा लाभ हुआ है और सरकार को भी खासी आमदनी हुई है। इस आमदनी का हिसाब नीचे लिखी तालिका से विदित होगा। यह तालिका १९१० ईसवी की है—

प्रान्त	नहरों में लगी हुई पूंजी	सींचा गया रकबा	फी सदी मुनाफ़ा	कैफ़ियत
पञ्जाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	११० लाख पौण्ड	६० लाख एकड़	१ ४२	एक पौंड १५ रुपये का समझिए
युक्त-प्रान्त और अवध	७६ ,,	२२ लाख ,,	१ ८३	
मदरास	७२ ,,	३७ ,,	७ २	
बङ्गाल और बिहार	५८ ,,	४६ ,,	१ ९	
बम्बई और सिन्ध	४७ ,,	२२ ,,	१ १२	
समग्र ब्रिटिश भारत	३६४ ,,	१६० ,,	६ ३३	

इस समय रेल का विस्तार जिस गति से किया जाता है उस गति से नहरों का नहीं किया जाता। किन्तु यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि रेल का जितना विस्तार भारत के लिए होना उचित था उतना हो चुका। बुद्धिमान् मनुष्यों का कथन है कि हिन्दुस्तान जैसे निर्धन देश के लिए [illegible] हज़ार मील रेलवे लाइन काफ़ी है। एक सरकारी रिपोर्ट (Moral and Material Progress and Condition of India) में लिखा है—

"Railways are now almost completed, so that with the cessation of heavy outlay on construction, the financial position may be expected to improve."

अर्थात् भारत में अब रेल की सड़कों का काम समाप्त-प्राय है। अतएव रेलों के लिए धन स्वर्च न करने से यहाँ की आर्थिक स्थिति के अवश्य अच्छी हो जाने की आशा है।

यह तब की बात है जब इस देश में केवल २५ हज़ार मील रेल थी। इस समय लगभग ३०,००० मील रेलवे जारी हो चुकी है। तथापि रेल का काम बन्द नहीं। १९०१-२ के इर्रिगेशन कमीशन (Irrigation Commission) ने यह राय दी थी कि भारत में सिंचाई का काम बढ़ाना चाहिए। अब तक जितना

[illegible] है. [illegible] की [illegible] सुधारने से पूरी तरह समर्थ नहीं। यह सच है कि रेलवे भी अकाल के समय बहुत [illegible] देती है। जिस प्रान्त में उत्पन्न होता है उस प्रान्त से [illegible] पीड़ित प्रान्त में [illegible] पहुँचाना रेलवे का ही कार्य है। यदि रेलवे न हो तो अकाल की भयङ्करता और भी बढ़ जाय। किन्तु [illegible] में यह कहा जासकता है कि रेलवे [illegible] अकाल की भयङ्करता को घटाती है, किन्तु नहर [illegible] रोकती है। जब अकाल रुक जायगा तब भयङ्करता किस बात की होगी। दूसरा फ़ायदा नहरों से यह भी हो सकता है कि एक स्थान से दूसरे स्थान को किफ़ायत से [illegible] सकता है। क्योंकि रेलवे की अपेक्षा [illegible] कम होता है। अतएव नहरों से कृषकों का [illegible] हो सकता है।

[illegible] है। इनसे भारत के कृषकों की दशा [illegible] है। किन्तु अभी दो तीन बातें और [illegible] सुधर सकती है। यथा, [illegible] (२) खेती के [illegible] किसान [illegible] अनाज भी [illegible] में [illegible]

वग़ैरह भी ठीक उसी ढब के हैं जैसे कि [illegible] थे। उनके लिए मानो समय ने पलटा खाया ही [illegible] अमेरिका आदि देशों में खेती के नित नये [illegible] लाये जाते हैं। किन्तु यहाँ वही बाबा आदम [illegible] यही सब कारण हैं जिनसे हमारे किसानों की [illegible] रही है। ऊपर लिखे हुए उपायों के [illegible] दशा बहुत कुछ सुधर सकती है।

ईश्वरदास [illegible]

आचार्य्य दिङ्नाग।

महामहोपाध्याय शङ्कर [illegible] विद्याभूषण, एम० ए०, [illegible] पी-एच० डी० का लिखा [illegible] बौद्ध न्याय—शास्त्र [illegible] पत्रीय [illegible] प्रकाशित हुआ है। [illegible] बौद्ध विद्वानों और उनके न्याय-ग्रन्थों [illegible] है। आचार्य्य दिङ्नाग का भी [illegible] यह विशेष मनोरञ्जक है और [illegible] लिखा [illegible]



सर पण्डित शीतलप्रसाद दुबे।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कर वह स्वर्ग से मृत्यु लोक में आई और दिङ्नाग सामने उपस्थित हुई। उनकी कृपा से दिङ्नाग रे शास्त्रों के असाधारण ज्ञाता हो गये। एक बार नालन्दा के विश्वविद्यालय के अधिकारियों के रा बुलाये गये। वहाँ उन अधिकारियों की प्रेरणा उन्होंने सुदुर्जय नामक ब्राह्मण दार्शनिक को स्त करके बौद्ध-धर्म की विजय-पताका उड़ाई। होंने और भी अनेक ब्राह्मण तार्किकों को हरा कर पनी कीर्तिकौमुदी से लोक-समाज को आप्लावित या। इस उपलक्ष्य में उन्हें तर्क-पुङ्गव की पदवी ली। उड़ीसा और महाराष्ट्र-देशों में परिभ्रमण कर दिङ्नाग ने अनेक तीर्थङ्करों के मत का खण्डन या। महाराष्ट्र-देश में जिस विहार में वे रहते थे उसका नाम था—आचार्य्य-विहार। उड़ीसा प्रान्त में होंने भद्रपालित नाम के राजमन्त्री को बौद्ध-धर्म दीक्षित किया। विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता में दिङ्नाग र्व-प्रधान थे। वे शील-पारमिता, शान्ति-पारमिता, र्य-पारमिता, दान-पारमिता आदि बारह पारमि-ओं, अर्थात् बौद्ध-शास्त्रोक्त उत्कृष्ट बारह धर्मों, । अनुष्ठान करते थे। नालन्दा के विश्वविद्यालय निवास करते समय दिङ्नाग ने सारे दार्शनिक द्वानों को परास्त करके एक अपूर्व शिरोभूषण त किया। उसका नाम था पण्डितोष्णीष। आन्ध्र-श के एक निर्जन विहार में उनकी मृत्यु हुई।

भारत के कितने ही स्थानों में दिङ्नाग को मण करना पड़ा था। सभी कहीं वे तर्क-युद्ध में वृत्त हुए थे। जिस निर्दयता से वे अपने प्रतिपक्षी र आक्रमण करते थे प्रतिपक्षी भी उसी निर्दयता से न पर आक्रमण करता था। उनका सारा जीवन सी घात-प्रतिघात—इसी लड़ाई झगड़े—में बीता। स महायुद्ध में वे प्रवृत्त हुए थे उसका अवसान नके मरने पर भी न हुआ। जो ग्रन्थ वे लिख गये हैं, बाद-काल में अनेक पण्डितों को उन सभी ग्रन्थों ं मत के खण्डन के लिए कमर कसनी पड़ी। महा-वि कालिदास को मेघदूत-काव्य में दिङ्नाग का स्थूलहस्त" परिहार करने के लिए मेघ को सावधान करना पड़ा। ब्राह्मण वंशीय नैयायिक उद्योतकर ने अपने न्याय-वार्तिक ग्रन्थ के आरम्भ में दिङ्नाग को "कुतार्किक" की पदवी से विभूषित किया। सर्व्वदर्शनस्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र ने दिङ्नाग को "भ्रान्त भदन्त" कह कर उनकी भ्रान्ति के निवा-रण की चेष्टा की। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को "अद्रिकल्प" विशेषण से विभूषित किया। कुमारि-लभट्ट और पार्थसारथि मिश्र ने दिङ्नाग पर अबाध बाण-वर्षा की। सुरेश्वराचार्य्य आदि वेदान्त-वेत्ताओं और प्रभाचन्द्र विद्यानन्द आदि जैन दार्शनिकों ने दिङ्नाग का मत लुप्त करने के लिए बहुत प्रयास किया। यहाँ तक कि पीछे पीछे किसी किसी बौद्ध नैयायिक को भी दिङ्नाग के ग्रन्थ के किसी किसी मत के खण्डन का प्रयत्न करना पड़ा। दिङ्नाग सचमुच ही वीर पुरुष थे। उनमें असामान्य मनो-बल और दैहिक तेज था। यदि ऐसा न होता तो अनेक दिशाओं से किये गये इतने आघात सहन कर के वे इतने समय तक कभी जीते न रहते। दिङ्नाग के ग्रन्थ भारत से लुप्त हो चुके हैं। नेपाल में भी वे रक्षित नहीं। किन्तु पृथ्वी से एकदम ही लुप्त-प्राय नहीं हुए। तिब्बत में दिङ्नाग के ग्रन्थ यत्न पूर्वक सुरक्षित हैं। तिब्बतीय ग्रन्थों के आधार पर हम दिङ्नाग-प्रणीत न्याय शास्त्र का कुछ विवरण यहाँ देते हैं।

दिङ्नाग का आविर्भाव-काल।

अनुमान यह है कि ५०० ईसवी में दि[illegible]ाग जीवित थे। उनके गुरु आचार्य्य वसुबन्धु ४८० ईसवी में विद्यमान थे। दिङ्नाग के दो ग्रन्थों का अनुवाद ५५७—५६९ ईसवी में चीनी भाषा में हुआ। जिस समय आन्ध्र-देश में दिङ्नाग का प्रादुर्भाव हुआ, जान पड़ता है उसी समय दक्षिण में पल्लववंशीय नरेशों का आधिपत्य था। पल्लववंशीय नरेशों में से अधिकांश नरेश बौद्ध धर्म के अनुगामी थे।

दिङ्नाग का प्रमाण-समुच्चय।

दिङ्नाग का सर्व-प्रधान ग्रन्थ प्रमाण समुच्चय है। किसी समय आन्ध्र-देश की वेङ्गी नगरी के

पास एक निर्जन पर्व्वत के ऊपर वे रहते थे। उसी समय उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी। प्रमाण के सम्बन्ध में दिङ्नाग ने समय समय पर जिन श्लोकों की रचना की थी उन्हीं सब श्लोकों का संग्रह एक जगह कर के उन्होंने उसका नाम प्रमाण-समुच्चय रक्खा।

ईश्वरकृष्ण के साथ दिङ्नाग का विरोध।

सुनते हैं, जिस समय दिङ्नाग ने प्रमाणसमुच्चय का पहला श्लोक बनाया उस समय भीषण भूकम्प हुआ। आन्ध्रदेश प्रकाश-पुञ्ज से चारों तरफ़ समुज्ज्वल हो उठा और सब कहीं कोलाहल मच गया। इसके अनन्तर एक दिन ईश्वरकृष्ण नामक एक ब्राह्मण दार्शनिक दिङ्नाग के शैल-विहार में आया। उस समय दिङ्नाग विहार में न थे। दिङ्नाग-लिखित प्रमाण-समुच्चय का पहला श्लोक जो ईश्वर-कृष्ण की दृष्टि में पड़ा तो वे उसे फाड़ कर चलते बने। दिङ्नाग ने आश्रम में लौट कर देखा तो श्लोक नदारद। अतएव उन्होंने उसे फिर लिखा। ईश्वरकृष्ण ने दुबारा आकर उस श्लोक को नष्ट कर दिया। तीसरी दफ़े दिङ्नाग ने फिर भी उसे लिपिबद्ध किया। इस दफ़े उपद्रवकारी को साव-धान करने के लिए, श्लोक के नीचे, उन्होंने इस आशय का एक लेख लिख दिया—"हम नम्रता-पूर्वक निवेदन करते हैं, कोई इस श्लोक को खेल के बहाने भी नष्ट न करे। अर्थगाम्भीर्य्य में यह श्लोक अतुलनीय है। इस श्लोक के भाव-सम्बन्ध में यदि कोई हमारे साथ विवाद करना चाहे तो वह हमारे सामने उपस्थित हो। हमारी अनुपस्थिति में उसे कापुरुषता न करनी चाहिए।"

दिङ्नाग बौद्ध भिक्षु थे। नियमानुसार भिक्षा के लिए उन्हें रोज़ बाहर नगर में जाना पड़ता था। ऐसे ही समय में ईश्वरकृष्ण फिर भी उनके विहार में आये। उन्होंने उस श्लोक के नीचे दिङ्नाग की प्रार्थना पढ़ी। पढ़ने से उनके हृदय में साधु भाव का सञ्चार हो जाता। वे चुपचाप वहीं खड़े रहे।

विहार को लौटने पर दिङ्नाग उनके साथ युद्ध में प्रवृत्त हो गये। शर्त यह हुई कि जो प हो वह विजेता का धर्म ग्रहण करे। ईश्व परास्त हो गये, पर उन्होंने दिङ्नाग का धर्म स्वीकार किया। दिङ्नाग ने जब उन्हें याद दिलाई तब मन्त्रोचारणपूर्वक ई दिङ्नाग के विहार में आग लगा दी। वह भस्म हो गया। दिङ्नाग के पास पोथी प था सब जल गया। दिङ्नाग बहुत खि उन्होंने सोचा—"हम एक मनुष्य को स ला सके। फिर भला और लोगों के लिए मु का उपाय हम क्या बता सकेंगे?" उन्होंने बहुत धिक्कारा और प्रमाण-समुच्चय ग्रन्थ लि विचार छोड़ दिया। इसी समय बोधिसत्व उनके सामने आकर उपस्थित हुए और बोले

"वत्स, शान्त हो। जिस शास्त्र का तुमने आरम्भ किया है उसे कोई नष्ट न कर स हम तुम्हारे शिक्षागुरु हैं। संसार के सारे ती भी तुम्हारे मन का निराकरण न कर सकेंगे। जिस शास्त्र की रचना कर रहे हो वह सकल का नेत्र है। वह अनेक मनुष्यों को मुक्ति का दिखावेगा।"

यह कह कर मञ्जुश्री अन्तर्धान हो गं उस अवसर पर दिङ्मण्डल बड़े ही समु प्रभापुञ्ज से प्रकाशित हो गया। आन्ध्र-देश राजा दिङ्नाग के पास आया और उनसे अनु किया कि आप हेतु-विद्या-शास्त्र की अवश्य र करके उसे समाप्त कीजिए। तब दिङ्नाग ने प्रमा समुच्चय नामक ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया।

प्रमाण-समुच्चय का प्रतिपाद्य विषय।

प्रमाण-समुच्चय का छन्द अनुष्टुप् है। ईसवी सन् का एक भारतीय बौद्ध पण्डित था। उसे हेमवर्म्म नामक तिब्बतीय राज-भाषा के प्रमाण समुच्चय का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया। तिब्बत के राजा ने भी नामक [illegible]

याद-कार्य समाप्त हुआ। इस ग्रन्थ का तिब्बतीय ा में नाम है—"छै-म-कुन्त ह" । ग्रन्थ के आरम्भ देङ्नाग ने लिखा है—

" जो जगत् का हितसाधक और प्रमाण का तारूप है उसी सर्वशरण्य महागुरु सुगत के णों में सिर रख कर, इधर उधर बिखरे हुए, ाण-विषयक वचन-समूहों का एकत्र सङ्ग्रह करके स ग्रन्थ की रचना करता हूँ।"

ग्रन्थान्त में दिङ्नाग ने लिखा है :—

"सर्वदेशीय तार्किकों का पराभव करनेवाला र हाथी के सदृश बलसम्पन्न दिङ्नाग ने, अपने रचे हुए श्लोकों का सङ्ग्रह करके इस ग्रन्थ प्रकाशन किया"।

प्रमाण-समुच्चय ६ परिच्छेदों में विभक्त है—
) प्रत्यक्ष (२) स्वार्थानुमान (३) परार्थानुमान
) त्रिरूपहेतु (५) प्रत्यक्ष उपमान और शब्द-
ण्डन (६) जात्युत्तर-विचार।

इसके आगे विद्याभूषण महाशय ने प्रमाण-मुच्चय में लिखी गई बातों का विस्तार के साथ वेचन किया है। उस विवेचन को हम छोड़े देते , क्योंकि सरस्वती के पाठकों में से बहुत कम ो यह रुचिकर होगा।

लेखारम्भ में डाक्टर विद्याभूषण ने कालिदास ी उस उक्ति का उल्लेख किया है जिसमें दिङ्नाग : "स्थूल-हस्त" की बात है। यह उक्ति मेघदूत : चौदहवें श्लोक के चौथे चरण में है। यथा—

" दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् "

जिस पर्वत पर यक्ष था उससे रवाना होते े प्रार्थना मेघ से करके यह कहता है कि जब तू स पर्वत के ऊपर से उड़ता हुआ आगे बढ़ेगा ब सिद्धों की स्त्रियों के मन में यह भ्रम उत्पन्न ोगा कि कहीं पर्वत के किसी टुकड़े को हवा तो हीं उड़ाये लिये जा रही है। इसी के आगे यक्ष ने हा है कि जब तू पहाड़ सा काला काला आकाश बढ़ता दिखाई देगा तब तुझे देख कर दिग्गजों ा गर्व चूर हो जायगा। वे अपने को बहुत विशाल-काय समझते हैं। परन्तु जब वे तुझे अपने से भी बड़ा देखेंगे तब उनको अपने भ्रम का ज्ञान हो जायगा। इससे सिद्ध है कि कालिदास की उक्ति का प्रकृत सम्बन्ध दिग्गजों से ही है। दिङ्नाग—नाम आ जाने से श्लेष-शक्ति से यदि उन्होंने आचार्य दिङ्नाग पर कटाक्ष किया हो तो यह भी असम्भव नहीं। दिङ्नाग अवश्य ही बड़े उद्धत और अतुल-अवलेपपूर्ण थे। यदि किसी प्रकार यह बात सप्रमाण सिद्ध हो जाय कि मेघदूत का पूर्वोक्त पद अवश्य ही श्लिष्ट पद है तो कालिदास के समय-सम्बन्ध में भी यह निश्चय हो जाय कि वे ५०० ईसवी के ही आस पास विद्यमान थे; ईसा के ५६ वर्ष पहले विक्रमादित्य की सभा में न थे।

रूपक-कथा।

(२)

१—जगा ब्याह के पीछे जब मैं पाकर नया प्रभात,
सुनी रात में दो पथिकों के लुट जाने की बात।
कहां ? नदी पर, जहां लेंडुआ मारा था उस रोज़,
चलो, पुलिस की चिन्ता छूटी, करनी पड़ी न खोज !

२—" नई वधू के लिए दीन जब पा न सका ज़रदार—
तब क्या करता, लूट-मार का करना पड़ा विचार।
पर कुछ बिगड़ा नहीं अभी तक कर ले यदि स्वीकार",
प्रायः पुलिस का यही तर्क था, कौन करे प्रतिकार !

३—रहा पिता ने —"वह लड़का है, यह कैसा अन्धेर" ?
किन्तु वहां इस के उत्तर में लगती थी क्या देर—
"ऐसा लड़का है कि अकेले की दो दो पर घात,
तड़े लेंडुओं से जो उबरा है यह कितनी बात ?"

४—"अच्छा, यही सही, तो उसका करदो तुम चालान,
हम क्या हैं सच और झूठ का साक्षी है भगवान।"
यह सुन कर भी जमादार ने किया न कुछ भी रोष,
बोला, वह कि ' मान लो, कल्लू छूट गया निर्दोष—॥

५—पर कितनी बदनामी होगी जब होगा चालान,
जान बूझ कर भी क्यों ऐसे बनते हो अनजान ?
सोचो, कौन दरोगा जी का पकड़ सकेगा हाथ,
मूंदे आगे में भी उनका कौन न देगा साथ ?

६—आते हैं मौक़े पर अब वे करने तहक़ीक़ात,
वहाँ बुलाते ही कलुआ को, खुल जावेगी बात।
अब तक कोई नहीं जानता, आया हूँ मैं आप,
मान रहे तो जान—सोच लो, तुम हो उसके बाप"।

७—"तो क्या करूँ?" पिता ने पूछा उग्र भाव को त्याग,
तब शुभ-चिन्तक जमादार ने दिखलाया अनुराग।
सार यही था—एक गिनी से चल सकता है काम,
किन्तु गिनी कैसी होती है, सुना आज ही नाम!

८—बहुत नहीं, बस पन्द्रह रुपया रख सकते हैं लाज,
पर क्या पन्द्रह पैसे भी हैं मेरे घर पर आज।
हे कमलेश बचा लो मेरी लज्जा अब की बार,
दिलवा दो उधार ही मुझको तुम पन्द्रह कलदार!

९—चाचा रुपया व्याज लिखा कर कर के अति उपकार,
सदय साह ने इस विपत्ति से हम को लिया उबार!
मुझे पूँछ देता लड़का, पर देख पिता का रोष—
कह न सका कुछ, सहम गया मैं, था मेरा ही दोष!

१०—आई ज़मींदार की बारी जमादार के बाद,
हुक्म हुआ—"इस का [illegible] में [illegible] न [illegible] याद।
[illegible] के लिखते हैं अब पन्द्रह के पचीस,
[illegible] फिर [illegible] होंगे [illegible]"!

११—[illegible]

१२—[illegible]

१३—[illegible]

१४—[illegible]

१५—कहा पिता ने—"क्यों कहते हैं ऐसी बात हुज़ूर,
प्रभु क्या अब भी सदय न होंगे, है मुझ को मंज़ूर,
मैं भी था, मन ही मन मैंने लिया राम का नाम,
और कहा—मंज़ूर न हो तो देखो अपना काम!

१६—हुक्म हुआ फिर—"मगर क़बूलत होगी [illegible]
इन्दुलतलब नाम का रुक्क़ा लिखा गया [illegible]
फिर भी वह "बेकार क़बूलत" रही उन्हीं के [illegible]
उतने में उतने ही मिल कर पूरे हुए पचास!

१७—"अविश्वास क्यों, बड़े लोग क्या होंगे बेईमान"
मैंने कहा कि—"वे क्यों, हम हैं, साक्षी है भगवान"
पर यह मेरी 'गुस्ताख़ी' थी, मिली डाँट भरपूर,
कुशल यही थी कि मैं पिता से बैठा था कुछ दूर।

१८—और सुनाऊँ? अभी बहुत कुछ कहना है [illegible]
एक ओर से कभी किसी का होता नहीं [illegible]!
क्या बोलें, क्या खा कर जीवें, पाकर यहाँ [illegible]
घर में [illegible] के घर हैं मिट्टी के पात्र!

१९—चलो महाजन के सम्मुख अब आ कर जोड़ें हाथ,
[illegible] वहीं मिलेगी, होंगे वहीं सनाथ।
"पहले पहला खाता देखो, दिये गये थे [illegible]
[illegible]!"

२०—[illegible]

२१—[illegible]

२२—[illegible]

२३—[illegible]

ार बिक चुके थे पहले ही थाड़ी थे दो बैल,
ं था, वे थे और नित्य थी हार-गेन की गैल ।
ावन कोंदी के मण्डप का वहीं रहा विश्राम,
नेल-ढूंढ के साथी छूटे, पड़ा राम से काम !
ूर्य्य निरन्तर बरसाता था सिर पर तीखे तीर,
ायल-सा हो लगा बाहने मैं पल पल में नीर ।
ूरत बदल गई दो दिन में जर्जर हुआ शरीर,
पर उस जीवन-समर-भूमि में बना रहा मैं धीर !
हुए प्रसन्न पिता भी मुझ पर रोप-भाव को छोड़,
करने लगे परिश्रम मिल कर हम दोनों जी तोड़ ।
जोत जात कर बीज-योग्य जब खेत किये तैयार,
तब वर्षा के लिए इन्द्र की होने लगी पुकार ॥
पानी के बदले ऊपर से बरस रही थी आग,
आंधी बन कर खेल रही थी हवा धूल की फाग ।
शान्त रही न महामारी भी पाकर योग, उमङ्ग,
लगी धधकने मृतक-होलियाँ, हुआ रङ्ग में भङ्ग ।
—भाग बचे थे प्लेग-वेग से अब है कौन उपाय ?
चारों ओर आग की ज्वाला फैल रही है हाय ।
अर्द्ध रात्रि थी, सोता था मैं, खुली अचानक आंख,
अन्धेरे में सुना कि जननी रही कष्ट से कांख ॥
—माँ कह कर मैं उठा और झट पहुँचा उस के पास,
मुझे देख कर उस ने केवल लिया एक निःश्वास ।
काली छाया डाल चुका था मुहँ के ऊपर काल,
पुत्र देख सकता है कैसे जननी का यह हाल ?
—पर वश क्या था, रोने का भी समय न था इस बार,
करने लगे शीघ्र ही हम सब किसी भांति उपचार ।
कुछ न हुआ, आते ही आते उषा का आलोक —
अन्धकार छा गया गेह में, दीख पड़ा बस शोक !
—मैं अचेत- सा था, लोगों ने करवाया संस्कार ,
आते ही आते श्मशान से पिता हुए बीमार ।
निर्दय दैव ! सँभल जाने दे; न कर घात पर घात,
एक साथ कह भी न सकूँगा मैं तेरी यह बात ॥

(असमाप्त)

मैथिलीशरण गुप्त ।

सुयोग्य पिता-पुत्र ।



रस्वती के पाठकों को इस संख्या में जो सचित्र लेख भेट किया जाता है वह केवल रोचक ही नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और अनुकरणीय भी है । इसके दोनों नायक पिता-पुत्र हैं और दोनों ही विद्यमान हैं ।

पिता का नाम माननीय सर शीतलप्रसाद दुबे है। आप का जन्म सन् १८६७ ईसवी के आश्विन मास की तृतीया के दिन, ज़िला फ़ैज़ाबाद के बँती नामक ग्राम में, हुआ । आप चौदह ही वर्ष की अल्पावस्था में अपनी माता के साथ डच गायना की राजधानी सुरीनाम में पहुँचे । माता-पुत्र दोनों जगन्नाथजी की यात्रा को जारहे थे। किन्तु मार्ग ही से ये माता के साथ ही इस उपनिवेश को भेज दिये गये । यहाँ बालक शीतलप्रसाद विद्याभ्यास कर के डच बोली के ख़ासे पण्डित होगये । सन् १८८८ ईसवी में इन को इमीग्रेसन-दफ़्तर में दुभाषिये की नौकरी मिली । इस कार्य्य में इन्होंने अपनी कार्य्य-तत्परता तथा कर्त्तव्य-परायणता से अपने अफ़सरों को इतना प्रसन्न किया कि ये कुछ ही काल में उच्च पद पर पहुँच गये । आपने अपने अफ़सरों को ही प्रसन्न नहीं किया, किन्तु उन समग्र हिन्दुस्तानियों को भी कि जिन से आपका रोज़ काम पड़ता था और अब भी पड़ता है ।

आज कल पण्डित शीतलप्रसाद को हिन्दुस्तानी लोग, जिनकी संख्या डच-गायना में ४१ हज़ार से भी अधिक है, अपना पिता समझते हैं ।

योरप के निवासी इन्हें महाराजा कहते हैं । यदि किसी और हिन्दुस्तानी को यह पद और यह सम्मान प्राप्त होता तो कभी शायद ही वह मामूली आदमी से बात-चीत करता ।

दुवेजी को हालैंड की महारानी विलहैल्मीना से "आर्डर आफ़ दी आरेंयां नासाउ" "Order Van Orange-Nassau" की पदवी मिली है। इस पदवी को डच लोग (हालैंड के निवासी) "Knighthood" से भी अधिक मानते हैं—और इसे पाने के लिए सदा तरसते रहते हैं। किन्तु एक आध को ही यह सम्मान प्राप्त है।

दुवेजी का रहन-सहन बहुत ही प्रशंसनीय है। यद्यपि अफ़सरी काम करने के कारण आप को आधुनिक अँगरेज़ी पोशाक़ पहननी पड़ती है, किन्तु आप का रहन-सहन देख कर सब को दङ्ग होना पड़ता है। चाहे कैसे ही काम में आप क्यों न लगे हों, चाहे कैसी ही पोशाक में हों, अदना से अदना आदमी भी आपको अपनी कहानी सुना सकता है और अपने दुःख निवारण के लिए प्रार्थना कर सकता है। इस विषय में हम अपनी आँखोंदेखी एक घटना सुनाते हैं। एक बार हम दुवेजी के विशाल सुसज्जित बँगले पर ठहरे। वहाँ हमने सभी के लिए दिन-रात द्वार खुला पाया। हमारे बहुत आग्रह करने पर दुवेजी हमें प्रसन्न करने के लिए एक दफ़े [illegible]

उपनिवेश में न होते तो इन तीनों को [illegible] भारी हानि पहुँचती। आप "अयं निज [illegible] गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु [illegible] कुटुम्बकम्"—इस संस्कृत-श्लोक के [illegible] हरण हैं।

आपको वेद पढ़ने का बड़ा शौक़ है। [illegible] के कार्य्य से थके रहने पर भी आप जब [illegible] बारह एक बजे तक उसे पढ़ा करते हैं।

आप कोई सात दफ़े हिन्दुस्तान जा चुके [illegible] जब हिन्दुस्तान जाते हैं तभी आप उत्तम पु[illegible] एक गट्ठा बाँध लाते हैं। १९१३ ईसवी में [illegible] स्वर्गीय मिस्टर गोखले से डच-गायना [illegible] उपनिवेशों के विषय में आपसे ख़ूब बातें [illegible] अन्य भी कई नेता आपका बड़ा सम्मान [illegible] लाला चिम्मनलाल, जो यहाँ मिस्टर [illegible] साथ प्रतिनिधि बन कर आये थे, इनके गुण [illegible] गाते रहे। ऐसे सज्जन का जीवन धन्य है। [illegible] कहना तो भूल ही गये कि दुवेजी और [illegible] C. Van Drimmelen, जो आज कल [illegible] हैं, ये दोनों पुरुष यहाँ के हिन्दुस्तानियों [illegible] [illegible]

[illegible]

तानियों को ख़लासी और आग झोंकने वालों के कोई और पद शायद ही कभी मिलता हो। किन्तु हां पर अपनी ब्रिटिश सरकार के कामों की चना नहीं करना। हमें सिर्फ़ यह बताना है स डच-सरकार ने दुबेजी के सम्बन्ध में अपनी ग्राहकता का परिचय दिया है उसी ने उनके पुत्र त लक्ष्मीप्रसाद जी को नाविक-विद्या सिखा एक बड़े स्टीमर की कप्तानी भी दी है। ा हेड क्वार्टर आज कल सिंहापुर (Singapore) । उनका चित्र भी इसी संख्या में पाठक ।

कप्तान लक्ष्मीप्रसाद दुबे का जन्म सुरीनाम च गायना) में २० अप्रेल को, सन् १८८९ ईसवी हुआ। इनके पिता ने इन्हें पहले हिन्दी, उर्दू तथा न अपने घर ही पर पढ़ाई। जब भावी कप्तान ीप्रसाद कुछ बड़े हुए तब इनको सुरीनाम के मिन्ट स्कूल तथा कालेज में डच, फ्रेंच, जर्मन अँगरेज़ी में शिक्षा मिली। जब वहां की शिक्षा म हो चुकी तब इनके पिता ने, १९०२ ईसवी में, इञ्जिनीयरी या कलविद्या का काम सीखने ड भेज दिया। वहां जाकर इन्होंने प्रथम ही क्षा पास की थी कि इनके पिता के परम मित्र । इनके संरक्षक (Guardian) एक डच महाशय नको जहाज़ी विद्या सीखने का परामर्श दिया तथा नी सिफ़ारिश से वहां के सब से बड़े नाविक-या-सम्बन्धी कालेज (Royal Navy College) भरती भी करा दिया। इस कालेज में इन्होंने बड़ी ग्यता दिखाई और इक्कीस ही साल की अवस्था आप एक जहाज़ पर तीसरे अफ़सर के पद पर युक्त किये गये। इस पद पर आप केवल दस महीने । इतने ही में इनकी योग्यता देख कर डच-सरकार ने इनको उसी जहाज़ का द्वितीय अफ़सर cond Officer) या लेफ़्टिनेन्ट बना दिया। इसके द आप अक्तूबर १९१३ की १० तारीख़ कप्तान के पद पर नियुक्त हुए और अब तक उसी द पर हैं। आज कल आप कप्तान लक्ष्मीप्रसाद दुबे (आर० एन०) कहाते हैं। इन दिनों आप प्रशान्त-महासागर में सिंहापुर से लेकर जावा, श्याम, बैंकाक, चीन, जापान होकर अमेरिका तक की यात्रा करते हैं। घर आपने सिंहापुर ही में बना रक्खा है।

कप्तान लक्ष्मीप्रसाद अविवाहित हैं। गर्व आप में नाम मात्र को भी नहीं। एक गुण इनमें यह विशेष है कि बचपन से लेकर आज तक किसी ने आपको क्रोध करते नहीं देखा। आप हमेशा हँसमुख और शान्त रहते हैं। जहाज़ी कप्तान में ये गुण बड़े ही दुर्लभ हैं।

पाठक! आप लोगों ने सुना कि लक्ष्मीप्रसादजी के पिता किस प्रकार अत्यन्त अकिञ्चन दशा से अपने ही बाहुबल से न केवल धनी ही हुए, किन्तु सज्जन और प्रसिद्ध भी हुए। डच-गायना में ऐसा कौन मनुष्य होगा जो शीतलप्रसाद के नाम तथा काम से अनभिज्ञ हो। ऐसे ही पिता के सदुद्योग से उनके पुत्र को आज डच सरकार ने इस योग्य समझ रक्खा है कि समुद्र में सैकड़ों मनुष्यों की जानें इनके हाथ में छोड़ दी हैं। हमको इन दोनों पिता-पुत्रों की संक्षिप्त-जीवनी से लाभ उठाना चाहिए और जानना चाहिए कि ग़रीब से ग़रीब मनुष्य विदेश में भी, जहां की भाषा तक वह नहीं जानता, अपने परिश्रम तथा आचरण से सर्वोच्च पद प्राप्त कर सकता है।

रामनारायण शर्मा,

डच-गायना, दक्षिणी अमेरिका   एल० एम० एस०

ता० १८ अप्रेल १९१५

शिक्षा-विभाग के नवीन नियमों पर विचार।

शिक्षा सम्बन्धी जो नवीन नियम १० अप्रेल १९१५ के गवर्नमेंट गज़ट में प्रकाशित हुए हैं और जिनका उल्लेख इस मास की सरस्वती में "डिरेक्टर बोर्ड और शिक्षा" शीर्षक लेख में किया गया है वे बड़े महत्त्व के हैं।

इनमें से कई तो पाठशालाओं की वर्तमान दशा को बिलकुल ही बदल देंगे।

२—नवीन नियमों के अनुसार डिवीज़न के इन्स्पेक्टरों और कमिश्नरों के अधिकार बहुत बढ़ जावेंगे। यदि डेप्युटी इन्स्पेक्टरों को मुदर्रिस रखने होंगे तो वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन साहब को लिखेंगे, चेयरमैन साहब बिना कमिश्नर साहब की आज्ञा और बिना इन्स्पेक्टर साहब की सलाह के इस विषय में कुछ न कर सकेंगे। इसी प्रकार यदि कोई विदुषी स्त्री बिना वेतन के कन्या-पाठशालाओं के निरीक्षण का भार कृपापूर्वक लेना चाहे तो कमिश्नर साहब और इन्स्पेक्टर साहब की आज्ञा के बिना डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐसी स्त्री के अनुभव और विद्वत्ता से लाभ न उठा सकेगा। एक तो ऐसी स्त्रियों का मिलना ही कठिन है। और यदि कहीं मिलीं भी तो उनको यह कब पसन्द होगा कि अवैतनिक सेवा करने के लिए भी उनका नाम बड़े बड़े अधिकारियों के दफ़्तर में मारा मारा फिरे। इसके अतिरिक्त अब समय आ गया है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को कुछ स्वाधीनता दी जाय। क्या यह काफ़ी नहीं कि इन बोर्डों के सभापति स्वयं कलेक्टर हैं? एक ओर तो देश में आन्दोलन मच रहा है कि बोर्डों के सभापतित्व का काम भी भारतवासियों को ही दिया जाय, दूसरी ओर उनके कार्य पर इतना अविश्वास कि अब कमिश्नर साहब की जाँच-पड़ताल भी शुरू होगी। चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, भी तो बहुधा "सिविल सर्विस" का सभासद है। फिर यह सिविलियन अफ़सर और क्यों!

३—इन्स्पेक्टरों की संख्या, अभी थोड़े ही वर्ष हुए, बढ़ाई गई थी। कहा गया था कि उनका काम कम करना चाहिए। इस लिए प्रायः प्रति डिवीज़न में एक इन्स्पेक्टर दिया गया था। तिस पर भी उनका काम हलका करने के लिए नार्मल स्कूलों का एक इन्स्पेक्टर हुआ। संस्कृत, अरबी, हिसाब और ड्राइंग की जाँच के लिए भी अलग अलग इन्स्पेक्टर नियत किये गये। मालूम होता है कि उनके काम की न्यूनता अब इस प्रकार पू
जायगी। आशा थी कि डेप्युटी इन्स्पे
अधिक अधिकार दिये जावेंगे, परन्तु इसके वि
उनका काम बढ़ता जाता है और अ
उनकी पराधीनता भी बढ़ती जाती है।
किसकी किसकी सेवा करें। सेक्रेटरी डिस्ट्रि
जो बहुधा डेप्युटी कलेक्टर हैं, चेयरमैन डिस्ट्रि
कमिश्नर, इन्स्पेक्टर, नार्मल स्कूलों के इन्स्पे
इन्स्पेक्टेस, इन्स्पेक्टेस, डाइरेक्टर इत्या
किस की वे सुनें। इन सब अफ़सरों के हे
को भी कम न समझिए; ये महाशय भी
रोब जमाने में कसर नहीं करते। Dece
ation अर्थात् पृथक् पृथक् अफ़सरों को अ
देना Centralization अर्थात् सब अधिकार
अफ़सर को देने से अच्छा है। सब डेप्युटी इ
से अधिकार-सम्बन्धी कार्य लेना चाहिए।
तहसीलों अथवा सब-डिवीज़नों के
भार देना चाहिए। डेप्युटी इन्स्पेक्टरों
स्वतन्त्रता देनी चाहिए, जिसमें वे शिक्षा-
नीति (Policy) पर विचार कर सकें, न
मुदर्रिसों के तबादिले के काग़ज़ात लिये
कलेक्टर साहब या कलेक्टर साहब के यहाँ,
शिक्षा से ज़रा भी अनुराग नहीं, हाकि
फिरें।

४—पिगट-कमिटी और सर जेम्स मे
सब से बुद्धिमत्ता की बात यह की है कि
प्राइमरी और माइमरी विभाग, स्कूलों
दिये। इसके लिए उनको अनेक धन्यवा
प्रबन्ध से निम्न लिखित लाभ होंगे—

(क) प्रत्येक ज़िला, स्कूलों की संख्या के
सार, विभक्त हो जायगा। ज़िले के प्रत्ये
में एक स्कूल अवश्य ऐसा होगा जो दर्जे
की शिक्षा देगा।

(ख) यदि कोई स्कूल दर्जा ३ तक की
उसको शीघ्र ही दर्जा ४ खोलना होगा।
जो स्कूल फ़ीरोज़ ए, बी, अथवा दर्जे
रखते हैं उन सब का आदर्श दर्जा ४ तक



कप्तान आर्म्सट्रांग, आर० एन०।
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

होगा, नहीं तो वे प्राइमरी स्कूल न कहलावेंगे। इनमें पढ़नेवाले की कोई क़दर न होगी।

(ग) जब कोई स्कूल खोला जायगा तब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बाध्य होगा कि पहले से उसको प्राइमरी स्कूल तक पहुँचाने के ख़र्च का बजट बनाले। अब तक तो कोई इस बात को पूछता भी न था। बरसों से कई स्कूल लोअर प्राइमरी ही पड़े थे। सच तो यह है कि बोर्ड लोअर प्राइमरी स्कूलों की संख्या अधिक रखता था और अपर प्राइमरी स्कूलों की कम।

(घ) ८० या ९० फ़ी सदी पढ़ने वालों में से अनेक लड़के, जो अपर प्राइमरी स्कूलों की संख्या में न्यूनता के कारण अधूरी शिक्षा पा कर घर बैठते थे, अब दर्जा ४ तक स्कूल में रहेंगे।

(च) मिडिल स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ेगी। मिडिल स्कूल अधिक खोलने पड़ेंगे।

५—१९१६ के अनन्तर मिडिल परीक्षा वही विद्यार्थी दे सकेगा जो २२ वर्ष तक मिडिल सेकशन में पढ़ लेगा। नवीन नियमानुसार पहली वेर्नेक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा १९१८ में होगी। अब तक मिडिल का कोर्स २ वर्ष का था। अब २३ का किया गया है। यह कहते खेद होता है कि इससे कोई लाभ न होगा। सच्चा उपकार तब होता जब स्वर्गवासी मुन्शी गंगाप्रसाद की सम्मति के अनुसार हिन्दी और उर्दू में प्रोफ़िशेन्सी परीक्षा नियत की जाती और उसका कोर्स एक या दो वर्ष का रक्खा जाता। स्कूल के मिडिल पास विद्यार्थी गणित में चाहे कैसे ही अच्छे हों, हिन्दी और उर्दू तो उन्हें आती ही नहीं। बड़े बड़े नार्मली एक पृष्ठ लिखने में व्याकरण के साधारण नियमों का भी उल्लंघन करते हैं। इसमें उनका कुछ दोष नहीं। साहित्य के ग्रन्थ तो उन्हें पढ़ाये ही नहीं जाते। काम को फ़ाइनल (अन्तिम) परीक्षा पास कर लेते हैं। पढ़ाई के वर्ष बढ़ाने से काम न चलेगा। पुस्तकें उपयोगी पढ़ाइए। दर्जा ३ से अन्य पुस्तकों के साथ साथ हिन्दी अथवा उर्दू के किसी (Standard) प्रसिद्ध ग्रन्थकार का सम्पूर्ण ग्रन्थ रखिए। तब मिडिल तक पहुँचने पर भाषा का कुछ ज्ञान हो जायगा।

६—प्रसन्नता की बात है कि मुसल्मानों में शिक्षा-प्रचार की ओर सरकार ने विशेष ध्यान देने की इच्छा की है। जिस स्थान में २० मुसल्मान बालक मिलेंगे और उनके माता-पिता उनको पढ़ाना स्वीकार करेंगे, वहाँ एक इसलामिया स्कूल खोल दिया जायगा। ऐसे स्कूलों में अध्यापक भी मुसल्मान ही होंगे। यदि किसी मकतब में धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त गणित, भूगोल इत्यादि विषय भी पढ़ाये जायँगे तो बोर्ड उनकी सहायता रुपये से करेगा। संयुक्त प्रान्त भर के लिए एक सुशिक्षित मुसल्मान इन्स्पेक्टर रक्खा जायगा। प्रत्येक कमिश्नरी में एक मुसल्मान डेप्यूटी इन्स्पेक्टर इस निमित्त रक्खा जायगा कि वह कमिश्नरी भर के इसलामिया स्कूलों की देख भाल करे और उनकी संख्या बढ़ावे। प्रान्त भर के लिए ११ मुसल्मान सज्जनों की एक मकतब-कमिटी डाईरेक्टर साहब बनावेंगे। प्रत्येक ज़िले में भी ऐसी ही एक कमिटी होगी। नौ आदमियों की एक मकतब-सम्बन्धी टेक्स्ट बुक-कमिटी भी होगी। आशा है, इन उपायों से मुसल्मानों में शिक्षा-प्रचार बढ़ जायगा। इस सम्बन्ध में एक बात सोचने की है। गोरखपुर, बनारस, आगरा इत्यादि कमिश्नरियों में, सैकड़ों स्कूलों में, हज़ारों मुसल्मान बालक अपने माता पिता की इच्छानुसार उसी प्रकार हिन्दी पढ़ते हैं जिस प्रकार कि रुहेलखण्ड इत्यादि कमिश्नरियों में हिन्दू बालक उर्दू पढ़ते हैं। क्या सरकार विशेष प्रकार से मुसल्मान इन्स्पेक्टरों और मकतब-कमिटियों को आज्ञा दे देगी कि वे वर्तमान व्यवस्था को, लोगों की रुचि के विपरीत, न बदलें?

७—जिस प्रकार २० मुसल्मान बालकों के मिलने पर इसलामिया स्कूल खुल सकते हैं उसी प्रकार अछूत जातियों के बालकों के लिए भी स्कूल खोले जा सकते हैं। क्या ही अच्छा होगा

यदि ऐसे ही स्कूलों का निरीक्षण करने और इन जातियों को उत्साहित करने के लिए इन्हीं जातियों के डेप्यूटी और सब डेप्यूटी इन्स्पेक्टर भी नियत किये जाते। हाँ, राजनैतिक दृष्टि से इन लोगों को शिक्षा देना उतना उपकारी नहीं समझा जायगा जितना कि मुसल्मानों को शिक्षा देना, परन्तु स्मरण रखने की बात है कि बहुत सी अछूत जातियाँ जरायम-पेशा हैं, अर्थात् उनमें से कितने ही चोरी, डकैती इत्यादि करते हैं। जहाँ चोरी की तहक़ीक़ात होती है, पहले यही पकड़े जाते हैं। एक तो देश के जन समूह इनको अछूत समझ कर इन से दूर रहते हैं, दूसरे पुलिस हमेशा इनके सिर पर सवार रहती है। ऐसे लोगों में सद्विचार और आत्मोन्नति के भाव कम आ सकते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा देना, मनुष्य-जाति में दूषित विचार वालों की संख्या घटाने का पुण्य-लाभ करना है। अभी इस ओर अधिक ध्यान दिये बिना ही इन लोगों में कुछ जागृति के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। इन में कुछ व्यक्ति अब भी सब डेप्यूटी इन्स्पेक्टर इत्यादि पदों का कार्य करने की योग्यता रखते हैं।

८—एक बात सरकार ने बहुत अच्छी की है। २९ अगस्त १९१४ के गज़ेट में उसने स्पष्ट लिख दिया है कि सर्व-साधारण के धन से बोर्ड के जो स्कूल स्थापित हुए हैं उनमें सर्व-साधारण के बालक पढ़ सकते हैं, चाहे वे किसी जाति के हों और चाहे किसी धर्म को मानते हों। गवर्नमेंट ने लिखा है—"डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और मुआयना करने वाले अफ़सरों का फ़र्ज़ है कि मुदर्रिस किसी लड़के को, जो पढ़ना चाहता है और जिसके लिए स्कूल में जगह है, पढ़ाने से इनकार न करे और उसको भरती करने के बाद उसके साथ मुनासिब बरताव करे।"

९—जो लोग दिन भर मिहनत-मज़दूरी करते हैं उनको पढ़ाने के लिए यदि किसी स्थान के निवासी २० विद्यार्थी एकत्र करलें तो बोर्ड वहाँ एक स्कूल खोल देगा, जिसमें रात को पढ़ाई होगी। ऐसे स्कूलों में फ़ीस न ली जायगी। विद्या-प्रचारकों के लिए यह बहुत ही अच्छा अवसर है। इन स्कूलों में पढ़ने वाले चाहे जवान हों चाहे बुड्ढे, सादा लिखना पढ़ना और हिसाब-किताब सिखाया जायगा।

१०—जितनी दूर के लड़के किसी प्राइमरी स्कूल में आवेंगे वह प्राइमरी सर्किल कहलावेंगे। प्रत्येक सर्किल में एक लोकल-कमिटी होगी। उसके मेम्बर मास्टरों और लड़कों की जाँच-पड़ताल करेंगे कि वे समय पर आते हैं या नहीं, इत्यादि। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का एक मेम्बर इस कमिटी में भी रहेगा। ऐसी कमिटियों से कोई लाभ न होगा क्योंकि (१) अभी देहातों में शिक्षित लोगों का अभाव है (२) इन कमेटियों को कोई अधिकार नहीं दिया गया। जो थोड़े बहुत कर्तव्य इनके लिए बताये भी गये हैं वे बहुत ही अनिश्चित हैं। मकान की मरम्मत, कुयें की जगह बताने की सलाह देना, असबाब और पढ़ाई के सामान की रिपोर्ट करना इत्यादि ऐसे काम हैं जिन पर बहुधा बोर्ड ध्यान ही नहीं देता। सब-डेप्यूटी, डेप्यूटी यहाँ तक कि इन्स्पेक्टर और असिस्टेंट इन्स्पेक्टर तक मुआयनों में लिखते रहते हैं कि अमुक असबाब की आवश्यकता है। परन्तु उन पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। इसका कारण विशेष कर धनाभाव होता है। कमिटी के मेम्बर दो तीन दफे लिख कर घर बैठ रहेंगे, क्योंकि वे समझेंगे कि उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। (४) गाँवों में बहुधा लड़ाई-झगड़े लगे रहते हैं। हर दल के लोग मुदर्रिसों को अपनी अपनी तरफ़ खींचने का प्रयत्न करते हैं। यदि मुदर्रिस ना-तजरिबेकार हुआ तो वह किसी न किसी फ़रीक़ का तरफ़दार हो जाता है और दूसरे फ़रीक़ के लोग उसको दुश्मन समझने लगते हैं। (५) जिस प्रकार की कमिटियाँ सरकार बनाती आई है, सब व्यर्थ प्रमाणित हुई हैं। सन् १९०८ में स्त्री शिक्षा-प्रचार के लिए प्रत्येक ज़िले में कमिटी बनाई गई थी। उन से क्या लाभ हुआ? वे कमिटियाँ भी निकम्मी निकलीं, क्योंकि उनको कोई काम ही न था।

११—अब सोचना चाहिए कि इन लोकल-कमिटियों से क्या काम लिया जा सकता है? यदि शिक्षा-विभाग और बोर्ड के अफ़सर इन के मेम्बरों से मिलते रहें तो स्कूल के मकान बनवाने और उन की मरम्मत में बड़ी मदद मिल सकती है। शायद ज़मीन के लिए तो बोर्ड को एक पैसा भी न ख़र्च करना पड़े। मकानों की मरम्मत भी इन के द्वारा सस्ते में हो सकती है। यदि इन मेम्बरों को उत्साह दिया जाय तो सब आपस में मिल कर थोड़ा धन बोर्ड से लेकर नये मकान भी ओवरसीयर से सस्ता बनवा सकते हैं। आज कल सरकार का जो यह ख़याल हो रहा है कि देहाती स्कूलों के मकान पक्के और शानदार बनवाये जायँ, सो ठीक नहीं। मकान गाँव के बाहर हो, चारों तरफ़ उसके मैदान हो, उसमें दरवाज़े हर तरफ़ हों, उसके क़रीब पेड़ हों—बस, कच्चा मकान भी बरसों काम दे सकता है। झोपड़ियों में रहने वाले बालकों को दिन भर महलों में बिठा कर पढ़ाने से लाभ के बदले हानि ही है। यही धन नये स्कूलों और नायब मुदर्रिसों की संख्या बढ़ाने में लगाना चाहिए। कच्चे मकानों के बनवाने में ग़रीब देहाती भी बाँस, बल्ले, छप्पर इत्यादि से सहायता दे सकते हैं।

१२—धार्मिक शिक्षा देने के जो नियम बनाये गये हैं उनकी आवश्यकता न थी। अँगरेज़ी स्कूलों में इसी प्रकार के नियम बरसों से चले आते हैं। पर कहीं भी इन पर अमल नहीं होता। लोगों ने इसके लिए कभी इच्छा भी प्रकट नहीं की थी। भला देहाती लोग पण्डित रख कर स्कूलों में धर्म-शिक्षा दिलवायँगे? और यदि कभी दिलवायँगे भी तो मत-मतान्तरों के झगड़े उठ खड़े होंगे। ऐसी शिक्षा से मुदर्रिसों का कोई सम्बन्ध न रखने का नियम बड़ी बुद्धिमत्ता का है। सच्ची धार्मिक शिक्षा अच्छे अध्यापकों और सुन्दर ग्रन्थों के पढ़ने से मिल सकती है न कि शैव और शाक्त, सनातनी और आर्यों के झगड़ों से।

१३—ट्रेनिङ्ग क्लासों से बड़ा लाभ हुआ है। परन्तु उनमें जो छः रुपया वज़ीफ़ा दिया जाता है वह कम है। मुदर्रिस ८) की नौकरी छोड़ कर इन क्लासों में भरती होते हैं। यदि नियम यह होता कि जो उम्मेदवार दाख़िल होंगे वे ६) पावेंगे और जो मुदर्रिस पढ़ने आवेंगे उन्हें ८) मिलेंगे तो अच्छा होता।

ट्रेनिङ्ग क्लास का कोर्स प्राइमरी स्कूलों के नये करीक्युलम से नहीं मिलता। Observation Lessons (वस्तु-ज्ञान-विषयक पाठ) और Nature Study (प्राकृतिक पदार्थों की शिक्षा) जो इस वर्ष से पाठ-विधि में जोड़े गये हैं उनकी भी तो शिक्षा मुदर्रिसों को ट्रेनिङ्ग क्लास में मिलनी चाहिए।

१४—मुदर्रिसों की वेतन-वृद्धि के नवीन नियम बड़े उत्साह वर्धक हैं। परन्तु इस समय जो ८) मासिक आरम्भ में उनको दिया जाता है, बहुत कम है। एक समय था जब ये लोग ४) पाते थे। फिर ६) पाने लगे। ६) से ८) हुए भी दस वर्ष से अधिक हो गया। अब समय आगया है कि किसी मुदर्रिस को १०) से कम न मिले। सब को प्रोविडेन्ट फंड से फ़ायदा होना चाहिए।

१५—प्राइमरी स्कूलों में पुस्तकालय रखने का नियम अत्यन्त लाभदायक है। सरकार को चाहिए कि हिन्दी और उर्दू के विद्वानों की सहायता से उपयोगी पुस्तकों की एक सूची बनवाकर प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के पास भेज दे, जिसमें शीघ्र ही पुस्तकालय खुल जायँ। जो पुस्तकें चुनी जायँ वे बालकों और शिक्षकों के लिए उपकारी हों, जिनके पढ़ने से ज्ञान की सीमा बढ़े, सदाचार की वृद्धि और साहित्य में रुचि हो।

१६—फ़ीस की शरह बहुत ज़ियादह रक्खी गई है। फरीक़ अ और ब में फ़ीस न लगनी चाहिए। दर्जा १ और २ में ।) पैसा बहुत है। दर्जा ३ और ४ में ।।), तथा मिडिल स्कूलों के दर्जा ५ और ६ में ~) से अधिक फ़ीस न होनी चाहिए। फ़ीस का सिद्धान्त तो यह होना चाहिए कि प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने वालों से कुछ भी फ़ीस न ली

जाय । प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़ होनी चाहिए । मिडिल का इम्तिहान बहुधा लोग रोज़गार की नीयत से देते हैं । इस लिए मिडिल स्कूलों में एक आने तक फ़ीस लगा दी जाय । देहातों में फ़ीस बड़ी मुश्किल से वसूल होती है। बहुत से मुदर्रिस अपने पास से ग़रीब अथवा नादिहन्द लड़कों की फ़ीस देते हैं । देश में इसके लिए आन्दोलन होना चाहिए । योरप के अनेक सभ्य देशों में फ़ीस तो माफ़ है ही, लड़कों को खाना और कपड़ा भी मुफ़ मिलता है । हमारे धनाढ्य देशवासियों को चाहिए कि जिस प्रकार वे अँगरेज़ी स्कूलों में छात्र-वृत्तियाँ देते हैं, प्राइमरी और मिडिल स्कूलों में भी दें । यह बात ज़मींदारों को अपनी ज़मींदारी के स्कूलों में करनी चाहिए ।

१७—इमदादी स्कूलों के नवीन नियम अत्यन्त हानिकारक हैं । उनका परिणाम यह होगा कि प्रायः सभी स्कूल बोर्ड के हो जायँगे और इस समय जितना शिक्षा-प्रचार इमदादी स्कूलों द्वारा हो रहा है बन्द हो जायगा । ऐसे स्कूलों की वर्तमान अवस्था इस प्रकार है कि गाँव का कोई भी प्रतिष्ठित पुरुष एक घर दे देता है, जिसमें स्कूल जारी हो जाता है । मास्टर भी वही रखलेता है । बोर्ड से ४) या ५) रुपया जो इमदाद मिलती है वह मुदर्रिस को दे दी जाती है । इसके अतिरिक्त गाँव के लोग स्वयं अथवा लड़कों द्वारा उसको भोजन के लिए सीधा इत्यादि दे देते हैं। ऐसे स्कूलों में मुदर्रिस प्रायः मिडिल पास रक्खे जाने लगे हैं। नवीन नियमानुसार जो मैनेजर होगा उसको बोर्ड मंज़ूर करेगा । क्यों ? यह गुप्त रहस्य नहीं बताया गया । नामंज़ूर किन हालतों में करेगा, यह भी नहीं मालूम । एक कमिटी भी मैनेजर का काम कर सकती है । यह नियम बुरा नहीं है । पर अभी दिहाती लोगों में इतनी शिक्षा नहीं है कि कमिटियाँ बना कर वे काम करें । बोर्ड अब इमदाद उस धन का आधा रुपया देकर करेगा जितना मुदर्रिसों की तनख़्वाह पर ख़र्च होगा । यदि मकतब, पाठशाला अथवा स्कूल अति-

यों के लिए इमदादी स्कूल खुलेंगे तो उनके
थोड़ी तनख़्वाहों पर कुल ख़र्च का ½ देंगे।
कोई इमदादी स्कूल ऐसे मुदर्रिस न रख सकें
जिन में उतनी योग्यता न होगी कि जितनी
के स्कूलों के अध्यापकों में होनी चाहिए । फ़ीस
लगाना ज़रूरी होगा । अब तक इमदादी स्कूलों
प्रायः फ़ीस न थी । अब, फ़ीस भी इतनी ल
जिस से बोर्ड के स्कूलों को हानि न पहुँचे।
नियमों से तो अच्छा होता कि स्पष्ट कह दिया जा
कि इमदादी स्कूलों को बन्द करो; बिना फ़ीस
शिक्षा अब न दी जायगी । अस्तु । हमारे धना
भाइयों का अब धर्म्म है कि नवीन नियमानुसार
इमदादी स्कूलों को क़ायम रक्खें । कौन जानता
इन कठोर नियमों से लोगों की आँखें खुलें
वे अपने कर्तव्यों को समझने लगें ।

अध्यापक

सामाजिक ह्रास के कुछ कारणों का विचार ।

(२)

शहरों में रहना ।



मारे सामाजिक ह्रास का पहला का
मस्तिष्क का अमर्यादित व्यय
इसका विवेचन पिछले लेख में कि
जा चुका है । अब, इस लेख में,
विचार किया जायगा कि हमारे
निवासी हो जाने से समाज
स्थिरता और एकता पर कैसा हानिकारक परिणाम हो र
है । इसके लिए पहले यह जानना चाहिए कि यूरोप
समाजों की स्थिरता और उन्नति किन नियमों के अनुसार
रही है । इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग विलक्षण रि
व्यापार में लगे हुए हैं । तो भी उनके समाज में कि
हानिकारक परिणाम नहीं देख पड़ते ! इसका कार
क्या है ?

यह नहीं माना जा सकता कि यूरोप में शिक्षित और विद्वान् लोगों पर मस्तिष्क के अमर्यादित व्यय से तात्कालिक बुरा परिणाम नहीं होता। उन लोगों में भी जो, किसी विशेष ज्ञान और शक्ति से अत्यन्त उन्नत दशा के पहुँच कर अपने राष्ट्र के लिए भूषण हो जाते हैं, अनेक लोग प्रायः सन्तान हीन हुआ करते हैं। यदि उनके कोई सन्तान हो भी तो उसकी योग्यता कम दर्जे की हुआ करती है और उसका नाश भी कुछ ही पीढ़ियों के बाद हो जाता है। जिन लोगों का दर्जा समाज में सब से अधिक ऊँचा समझा जाता है उनका झुकाव निःसन्तान होने ही की ओर हुआ करता है। लग भग छः पीढ़ियों के भीतर ही बड़े बड़े सुप्रसिद्ध पुरुषों के वंश नष्ट हो जाते हैं। तब उन वंशों का अस्तित्व, दत्तक-विधि या किसी अन्य उपाय से, दृढ़ करने का यत्न किया जाता है। जब किसी वर्ग के कुछ लोग बहुत ऊँचे पद पर आरूढ़ होने के लिए बुद्धि-विषयक अधिकाधिक परिश्रम करने लगते हैं तब उनका भाग्योदय तो होता है सही; परन्तु सन्तानोत्पत्ति के काम में—अपने वंश की स्थिरता के काम में—वे निरुपयोगी हो जाते हैं। श्रेष्ठ वर्गों में विवाह न करने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या अधिक होती है, और जो लोग विवाह करते भी हैं वे बड़ी उम्र में करते हैं। ज्ञान मार्ग का अवलम्ब करने वालों में विवाह की इच्छा सहज ही कम हो जाती है। इसलिए वे लोग सन्तानोत्पत्ति को कम मान देते हैं। परन्तु जिन लोगों को बुद्धि-सम्बन्धी परिश्रम बहुत ही थोड़ा करना पड़ता है—जिन लोगों को अपने मस्तिष्क का बहुत व्यय नहीं करना पड़ता—उनमें बुद्धि की शक्ति का सञ्चय हुआ करता है और उन्हीं में सन्तान की विपुलता भी देख पड़ती है। शारीरिक श्रम करनेवाले मजदूरों और किसानों में विवाह की इच्छा बहुत प्रबल हुआ करती है, उन लोगों में विवाह भी जल्द हुआ करते हैं और सन्तान की अधिकता भी देख पड़ती है। ज्योंही अनाज सस्ता होने लगता है त्योंही उन लोगों में विवाहों की संख्या बढ़ जाती है। यह देख कर बकल कहा करता था कि मनुष्यों की उत्पत्ति मुख से होती है।—Man breeds at the mouth.

इस प्रकार हम देखते हैं कि यूरोप के समाजों में एक ओर से ऊँचे दर्जे तक पहुँचे हुए कुछ वंशों का नाश होता चला जाता है, और दूसरी ओर से नीचे के दर्जों में से कुछ लोग अपनी बुद्धि की सञ्चित शक्ति को साथ ले कर उन्नति-पथ का आक्रमण करते करते नूतन उच्च-वंश स्थापित किया करते हैं। तात्पर्य यह कि जो लोग बुद्धि-परिश्रम अधिक नहीं करते—जो लोग शहरों में रह कर अपने मस्तिष्क का अधिक व्यय नहीं करते—जो लोग देहातों और कसबों में रह कर खेती, मज़दूरी और उद्योग-धन्धों में शारीरिक श्रम अधिक किया करते हैं, वही समाज की जड़ या नीव हैं। इसी नींव पर समाज के भिन्न भिन्न दर्जों की इमारतें बना करती हैं। समाज-रूपी इमारत की चोटी (अर्थात् श्रेष्ठ वर्ग) का हमेशा नाश हुआ करता है। यह शिखर—यह श्रेष्ठ वर्ग—नीचे के दर्जों में रहने वाले लोगों के द्वारा ही पुनरुज्जीवित हुआ करता है। ऊँचे दर्जे के लोगों में, सारे जगत् को चकित कर देने वाला जो अद्भुत सामर्थ्य देख पड़ता है वह, उन्हें समाज की नीव से (अर्थात् नीचे दर्जों में रहने वालों में से) प्राप्त हुआ करता है। इसी सामर्थ्य के प्रभाव से वे लोग सारी दुनिया में अतुल प्रतापी हो रहे हैं।

यूरोप के समाज में श्रेष्ठ वर्गों और कनिष्ठ वर्गों का जो परस्पर सम्बन्ध ऊपर दिखाया गया है वह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट ध्यान में आ जायगा। यूरोप के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की दशा बिजली के दीपकों के समान है। इन दीपकों को प्रकाशित होने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता होती है वह किसी अप्रसिद्ध स्थान के एक कोने में यन्त्र-द्वारा उत्पन्न हुआ करती है। जिन तारों में से इस शक्ति की धारा सदा प्रवाहित होती रहती है उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता, सिर्फ़ दीपकों के प्रकाश ही की ओर सब लोग टक-टकी बाँध कर आश्चर्य से देखा करते हैं। अथवा, यह कहिए कि यूरोप के समाज की वृद्धि केले के पेड़ के समान है। उसकी जड़ से नये नये कल्ले फूटते रहते हैं और पेड़ तैयार होकर फल देते हैं। पेड़ में फलों के जो गुच्छे या गहरें लगती हैं वे केवल परोपकार के काम आती हैं—वे बीज के काम की नहीं होतीं। सामाजिक विकास का यही वर्णन किड के ग्रन्थ में इस प्रकार किया गया है:—"While we have, on the one hand, the constant tendency of aspiring ability to rise into the highest class, we have, on the other hand,

within the class itself, the equally constant tendency towards restriction of numbers, towards celibacy and towards *reversion to the classes below*. This is the largest operating cause constantly tending to the decay and extinction of aristocratic families. Not only do the aristocratic families die out, but it would appear that the number of the classes into which it is always the tendency of a very prevalent type of intellectual ability to rise, are being continually weeded out by a process of natural selection, which it appears *to have been the effect of our own civilization* to foster to a peculiar degree. It is evident that our society must be considered as an organism which is continually renewing itself from the base and dying away in those upper strata into which it is the tendency of a large class of intellectual ability to rise."—Kidd: *Social Evolution*, p. 260

सदा प्रकृति के सहवास में रहने के कारण इन्हीं
दुःख, दरिद्रता और अज्ञान से घिरे देख पड़ते हैं;
मस्तिष्कों और शरीरों में प्रकृतिदेवी समग्र
सङ्ग्रह किया करती है। यही सञ्चित शक्तियाँ उनकी
में सङ्क्रमित या विकसित हुआ करती हैं। ऐसी
जो अधिक सामर्थ्यवान् होते हैं वे देहात से शहरों
जाते हैं। पहले पहल वे लोग शारीरिक श्रम ही
किया करते हैं, परन्तु उनके वंशज, एक या दो
बाद, मानसिक परिश्रम करने लग जाते हैं। थोड़े ही
में उनका भाग्योदय होने लगता है और उनके वंश
लोग अत्यन्त प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इस
के साथ ही साथ उनकी पूर्वार्जित पूंजी—मस्तिष्क
शरीर की शक्ति—भी ख़र्च हो जाती है। अतएव उनका
होने लगता है। यदि उनमें से कुछ लोग देहात को
कर अपने पूर्वजों की तरह शारीरिक श्रम वाला कोई
करने लगें तो खोई हुई शक्ति फिर प्राप्त हो
लोग देहात में रहना नहीं चाहते उनके वंश शहरों
हो जाते हैं। इस विषय पर एमर्सन के निम्न-लिखित
[illegible]

recruited and cured by that which should (have) been my *nursery*, and now shall be (our) *hospital*."- *Ibid.*

संक्षेप में, यूरोप के समाजों की स्थिरता, दृढ़ता और (उन्न)ति के विषय में जिन तत्त्वों का अवलम्ब किया जाता है (उन)का स्वरूप यह है:—देहात में बुद्धि परती ज़मीन के (समा)न होती है। प्रकृति के सहवास से आरोग्यता प्राप्त होती (है।) देहात में जिस बुद्धि और आरोग्य का सञ्चय हुआ (कर)ता है वह, शहरों में चले जाने पर, भिन्न भिन्न मानसिक (व्यव)स्थाओं में खर्च हो कर कुछ समय के बाद नष्ट हो जाता (है)। जब तक इस उपयोगी सामर्थ्य का प्रवाह देहात से (शह)रों की ओर बहता रहता है तब तक समाज की कोई (हा)नि नहीं हो सकती। यदि हम लोगों को अपने शिक्षित (सम)ाज की स्थिरता और उन्नति के विषय में कुछ विचार करना (हो) तो उक्त सिद्धान्त को सदा ध्यान में रखना चाहिए। (यद्य)पि यह सिद्धान्त हमारे समाज के विषय में भी लगाया (जा) सकता है, तथापि हमारे समाज में और यूरोप के समाजों (में) एक बहुत बड़ा भेद है—अर्थात् वे सब लोग एक ही (जा)ति के हैं; उनमें भिन्न भिन्न जातियों का झगड़ा नहीं है। (उ)न लोगों में जिस किसी का भाग्योदय होता है वही श्रेष्ठ वर्ग (क)ा कहा जाता है। इसका फल यह होता है कि उनके समाज (मे)ं बड़े बड़े प्रसिद्ध पुरुषों के पैदा होने में किसी एक ही (जा)ति को अपनी समस्त शक्ति का व्यय नहीं करना पड़ता। (इ)स लिए वहाँ किसी एक ही जाति अथवा वर्ग के लोगों की (वि)शेष हानि नहीं होती। परन्तु हमारे समाज में ऐसा नहीं (हो)ता—यहाँ विशिष्ट जातियों ही की बहुत हानि हो (रह)ी है।

यदि हमारे समाज में बुद्धि के विकास का कार्य उक्त सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता तो देश की बहुत हानि न होती। जिस समय इस देश के निवासियों को बुद्धि के परिश्रम की—मस्तिष्क के व्यय की—आवश्यकता मालूम हुई उस समय मानसिक श्रम करने का सारा बोझ उन्हीं जातियों पर आ पड़ा जिनमें बुद्धि की सहायता से अपना जीवन निर्वाह करने की प्रथा प्रचलित थी। इन्हीं जातियों को, अर्थात् ब्राह्मण-कायस्थ आदि को, श्रेष्ठ वर्ग कहते हैं। पहले पहल इन जातियों के पूर्वज देहात ही में अधिकता से रहा करते थे; परन्तु पश्चिमी देशों के साथ सम्बन्ध होते ही देहात की स्थिति बदल गई और उन लोगों को उपजीविका के लिए शहरों में रहना पड़ा। जो लोग अब तक देहात में रहते हैं वे अपने लड़कों को विद्याभ्यास के लिए शहरों में भेज दिया करते हैं। सम्भव नहीं कि ये लड़के या इन के वंशज फिर लौट कर देहाती जीवन को स्वीकार करें। सारांश यह कि हमारे देश में श्रेष्ठ जाति के—बुद्धि सम्बन्धी परिश्रम करने वाले ऊँचे दर्जे के—उन लोगों की संख्या दिन पर दिन घट रही है जो पहले प्रकृति के नियमानुसार शारीरिक श्रम किया करते थे और बुद्धि तथा आरोग्य का सञ्चय करते रहते थे। इस समय के शिक्षित समाज में पूर्वार्जित शक्तियों की पूँजी का व्यय करने वाले ही अधिक देख पड़ते हैं। जिन लोगों को सरकारी नौकरी के कारण देहात में रहना पड़ता है वे अपना दुर्भाग्य समझते हैं। हमारे श्रेष्ठ वर्गों के शिक्षित भाई देहात मे रहना नापसन्द करने लग गये हैं। इस से जो बुरे परिणाम हमारे समाज पर हो रहे हैं, अर्थात् हमारे समाज का जो ह्रास हो रहा है, उसका विचार करने से मन में भय उत्पन्न होता है।

जब हम अपने देश और समाज की वर्तमान दशा पर विचार करते हैं और यह देखते हैं कि हमारे समाज में श्रेष्ठ वर्ग के प्रायः सभी लोग देहात का त्याग करके शहरों में रहने लग गये हैं और जब हम यह सोचते हैं कि यह परिवर्तन कई पीढ़ियों तक जारी रहेगा तब हमारे शिक्षित समाज की भावी उन्नति और स्थिरता के विषय में सन्देह उत्पन्न होने लगता है। किसी ने सच कहा है "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" जो लोग देहात से बुद्धि और आरोग्य का सङ्ग्रह अपने साथ ले कर शहरों में आये उन लोगों ने अपनी पूर्वार्जित शक्ति की सहायता से शहरों में रह कर विद्या प्राप्त की और बड़े बड़े अधिकारों के पद पर आरूढ़ हो कर बहुत सा द्रव्य भी उपार्जित किया। परन्तु ज्यों ज्यों उनकी बुद्धि का विस्तार होता गया त्यों त्यों उसका उथलापन भी बढ़ता गया। जो बुद्धिवाद या तर्कवाद (Rationalism) कुछ दिन पहले यूरोप में वृद्धावस्था को पहुँच गया था वही यहाँ पर नया रूप धारण करके हमारे विद्वानों को मोहित करने लगा। हमारे शिक्षित भाइयों ने अपने पूर्वजों की सीधी सादी वृत्ति का त्याग कर दिया, देहात की

पूँजी नष्ट कर डाली और शहरों के स्थायी निवासी बन गये। इस प्रकार देहाती जीवन में परिवर्तन हो जाने के कारण वहाँ की सम्पत्ति नष्ट हो गई और ऊँचे दर्जे के—मस्तिष्क का उपयोग करने वालों के—कुटुम्बों का भी नाश हो गया। तात्पर्य यह कि हमारे शिक्षित समाज में जड़ ही को उखाड़ डालने का प्रयत्न किया जा रहा है—'मूले कुठारः' की नीति का अवलम्बन किया जा रहा है। यदि यही क्रम भविष्य में भी जारी रहा तो, सम्भव है, जिस जाति के लोगों को वर्तमान समय में बुद्धि-विषयक परिश्रम करना पड़ता है और जो ऊँचे दर्जे के हैं वे नष्ट हो जायँगे।

हम लोग जिस सुधार और सभ्यता के अनुयायी हो रहे हैं उसका यथार्थ स्वरूप बहुत भयानक है। केवल बुद्धिवाद, तर्क और युक्ति का आश्रय करके हम लोग अन्धों के समान अनुकरण कर रहे हैं। जिस प्रथम सुधार—देहात छोड़ने और शहरों में रहने—का हम लोगों ने स्वीकार किया है वही हमारे समाज के लिए घातक हो गया है। दूसरा अनिष्ट सुधार हम ने यह किया है कि एक ही जाति या वर्ग के लोगों को मस्तिष्क का अमर्यादित व्यय करने में लगा दिया है। तीसरा अनिष्ट सुधार यह हुआ है कि शहरों में रहने के कारण हमारा प्राचीन सादापन चला गया है और हम लोग सिर्फ़ जड़ सम्पत्ति एकत्र करने लगे हैं। इन्हीं सब सुधारों को अब तक हम अपने समाज की उन्नति के लिए आवश्यक मानते चले आये हैं; परन्तु पश्चिमी सभ्यता के सिद्धान्तों की ओर ध्यान देने से मालूम हो जायगा कि इन्हीं बातों से यथार्थ में हमारे समाज का ह्रास और नाश हो रहा है।

शहरों के स्थायी निवास से मनुष्यों के मस्तिष्क और शरीर पर जो परिणाम होते हैं वे प्रायः सदा ही अनिष्टकारक हुआ करते हैं। शहरों में तङ्ग जगहों में रहना पड़ता है। वहाँ खुले मैदानों की आरोग्य-कारक हवा नहीं मिलती। वहाँ सभ्यता के नियम कृत्रिम और कठिन होते हैं। भोजन, वस्त्र आदि के सम्बन्ध में बहुत सावधानी रखनी होती है। शरीर दुबला, कमज़ोर और भावुक हो जाता है। खाने पीने में अपरिमित व्यवहार के कारण बार बार बीमार होते हैं। अप... और अस्वास्थ्य ... का सेवन करने से [illegible] हो जाती है। [illegible] है और अनेक व्याधियों की जड़ें जम जाती हैं।

करने वालों को शारीरिक श्रम का बहुत ही कम मौक़ा मिलता है। इसलिए वे निर्बल और निस्तेज हो जाते हैं। शहरों की बस्ती बहुत घनी होती है वहाँ रोगों की भी अधिक होती है। शहरों में सुख-चैन और ... साधनों की कमी नहीं होती; इसीलिए वहाँ दुर्व्य... अधिकता देख पड़ती है। बहुत लोग स्वयं अपने सु... आराम के लिए अपने कुटुम्बों की अवहेलना किया कर... कुटुम्ब के मुखिया मनुष्य पर ही सब लोगों के पालन का भार आ पड़ता है। उसे अपने व्यवसाय में घर के लोगों की सहायता बहुत कम मिलती है। इन्हीं कार... नगर-वासियों की तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है। उन लो... आरोग्य का बीज ही नष्ट हो जाता है। ऐसी अव... उनकी सन्तान की बुद्धि और नीरोगता भी विकृत हो... है। इस विकृत अवस्था की वृद्धि होते होते अन्त में कुटुम्ब ही निर्वंश हो जाते हैं। शहरों में रहने से सम... जो अनिष्ट परिणाम हुआ करते हैं उनके सम्बन्ध में एक... (Olive Schreiner) ने लिखा है—"*It is a ...* common-place that, were the city not re... ed from the more primitive country, it ... be depopulated in six generations. Vast gorgeous cities have always heralded accompanied the falls of great peoples the ruins of Nineveh, Babylon, Rome and vast fallen cities of India and Greece, ar... graves under which a brave, simple mighty people were buried while the ... yet stood!"

अन्त में पाठकों से यही निवेदन है कि इस वि... उचित ध्यान दीजिए। इस बात को सोचिए कि जब म... के अमर्यादित व्यय और नगरों के निवास—इन दो ... में से एक ही हमारे कुटुम्बों को निःसन्तान कर ... लिए समर्थ है; तब जिस समाज में और जिस ... या वर्ग में ये दोनों ही कारण एक ही साथ ह... हों उसका ह्रास हो जाने में क्या विलम्ब है। ... देश में सुशिक्षित और सभ्य कहलाने वाले ... आदि श्रेष्ठ जाति के लोग इसी विनाश-पथ के पथि... हो रहे हैं। विदेशियों की दृष्टि में हम लोग मरे हो ... और सब ... परन्तु ध्यान में [illegible]

का शिवालय।

मदुरा का प्रसिद्ध मन्दिर—हज़ार खम्भे का।





तिरुचिरापल्ली का पहाड़ी किला।

तंजोर का राज-महल।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

त्रा और यही विद्वत्ता श्रेष्ठ जातियों के लिए कालकूट यगी ! हमको अपनी वर्तमान शारीरिक दुर्बलता पर अपनी सन्तान की दुर्दशा पर ध्यान देना चाहिए। निक सुधार और सभ्यता का जो निश्चित परिणाम— त् समाज का ह्रास—हुआ करता है उसको कभी न भूलना चाहिए और, समय रहते ही, इन बुरे परिणामों को टालने का उपाय करना चाहिए। अन्यथा परिणाम बड़ा ही भयानक होगा।

माधवराव सप्रे।

पतन और उत्थान।

जो दिनेश कल नभो-देश में अस्त हुआ था, सन्ध्या ही के समय ग्रहण से ग्रस्त हुआ था।
तम का था अधिकार तमिस्रा की शाही थी, चोरों को था चैन मौज में बदराही थी।
आज वही फिर पूर्व में है मुसकाता आ रहा;
देता दीप्ति दिगन्त तक कमल खिलाता आ रहा ॥ १ ॥

जो भू कभी प्रचण्ड ताप से तपी हुई थी, तृण था नष्ट समूल धूल से झँपी हुई थी।
दावा ने थे दहक दहक वन सघन उजाड़े, आँधी ने थे रहे सहे तरु पुञ्ज उखाड़े।
हरियाली में फिर वही नन्दन-मद हरने लगी,
... कुञ्ज में है विहार करने लगी ॥ २ ॥

... साथ, यम थी नाचारी।

हम में रहा न सत्त्व सत्य से हीन हुए हैं, गिरे यहाँ तक मनुष्यत्व से हीन हुए हैं।
जो सद्गुण थे बने कभी सर्वस्व हमारा, सब के सब हो गये आज वे भी हैं न्यारा।
महा मूर्ख बन कर पड़े जड़ता के जंजाल में,
निरुद्योग-आलस्य-रत हुए हाय इस काल में ॥८॥

बन्धु बन्धु पर वैर-भाव से टूट रहे हैं, दीनों को अपवित्रात्म ही लूट रहे हैं।
कोटि कोटि नर एक ओर हैं भूखों मरते, उनके टुकड़े छीन मौज लाखों हैं करते।
पुण्य-भूमि में देखिए कैसा पापाचार है,
धन्य धरा जो सह रही अब तक ऐसा भार है ॥९॥

दुर्जनता ही रही सुजनता बिलकुल भूली, अपना टेटर छोड़ और की लखते फूली।
ईर्ष्या से हैं हृदय हमारे निशदिन जलते, जाते हैं हम सूख देख औरों को फलते।
इससे अपना भी अहित होता है कुछ कम नहीं।
हो औरों का अपशकुन नाक कटे तो गम नहीं ॥१०॥

ले अभिमान-निशान दम्भ-दुन्दुभी बजादी, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि की सेन सजादी।
कड़खेतों की जगह स्वयं अपने गुण गाये, लोहू हुआ सफ़ेद जोश में ऐसे आये।
मार मार का शोर कर सदाचार से लड़ गये।
सोटा ले कर अक़्ल के पीछे ही हम पड़ गये ॥११॥

इस का ही परिणाम हुआ हम हुए अधम हैं, नीच निकम्मे नाम जहाँ तक रखिए कम हैं।
अन्धकार, अविवेक, मूर्खता के अनुचर हैं, दम्भ, द्वेष, दुर्भाव आदि दोषों के घर हैं।
हैं दरिद्रता के धनी मूढ़ों के अधिराज हैं।
आज जगत में हीनता की रक्खे हम लाज हैं ॥१२॥

पतन पूर्ण हो चुका सँभलने के दिन आये, आशा ऊपर उठा रही है गोद उठाये।
फिर सपूत उत्पन्न किये भारत-माता ने, फिर देना आरम्भ किया हम को दाता ने।
फिर वंशी गोपाल की बजी जगाने के लिए।
फिर आये मनु-कुल-तिलक हमें उठाने के लिए ॥१३॥

शिक्षा की रोशनी लगी मन का तम हरने, सदसद् का शुचि ज्ञान लगा हृदयों में भरने।
बढ़ चलने के वचन हमारे मुख पर आये, स्वावलम्ब के पाठ हमें जा रहे पढ़ाये।
जन्म-भूमि की प्रीति फिर है दुचन्द होने लगी।
बन्दे बन्दे की सदा फिर बलन्द होने लगी ॥१४॥

बहुत गिर चुके अब उन्नति गिरि-शृङ्ग चढ़ेंगे, फिर आगे की तरफ़ हमारे क़दम बढ़ेंगे।
प्रेम-मात्र ही और भाव तज हृदय मढ़ेंगे। अब तो आठों याम कर्म के पाठ पढ़ेंगे।
ज्ञानार्जन में भूरि श्रम सदा करेंगे साथ ही।
रक्खे बैठे रहेंगे न यों हाथ पर हाथ ही ॥१५॥

सन्तत चढ़ता रहे प्रभो! उन्नति का पारा, चमके फिर इस दुखी देश का नाथ! सितारा।
अब की हो यों उदित प्रतापादित्य हमारा, जिससे लहे प्रकाश प्रकाशित हो जग सारा।
हे हरि! पतितोद्धार का तुम को है अभिमान भी,
पतन तुम्हारे हाथ है वैसे ही उत्थान भी ॥१६॥

समाजशास्त्र का अस्तित्व ।

गत लेख में समाजशास्त्र की आवश्यकता बताने की चेष्टा की गई है। पर संसार में बहुत से लोग या तो समाजशास्त्र का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते या ऐसे सिद्धान्तों पर विश्वास करते हैं जो समाजशास्त्र के मूलाधार के ही विरोधी हैं। समाजशास्त्री समाज-सम्बन्धिनी बातों के एकत्रीकरण, वर्गीकरण और तद्विषयक तुलनात्मक विचार करने के पश्चात् सामाजिक कार्य्य कारण-सम्बन्ध स्थिर करता है और ऐसे व्यापक नियमों का पता लगाता है जिनके अनुसार समाजों की उन्नति-अवनति होती है। यदि कोई कहे कि सामाजिक मामलों में कार्य-कारण सम्बन्ध के लिए जगह ही नहीं या समाजों की गति कितने ही व्यापक नियमों का अनुसरण ही नहीं करती तो मानों उसने समाजशास्त्र के अस्तित्व ही से मुँह मोड़ लिया।

बहुधा सुना जाता है कि संसार में जो कुछ होता है सब ईश्वर अपनी इच्छा से करता है या हमारे भाग्य से होता है। यदि एक दूकानदार को लाभ हुआ, तो, कुछ लोगों के कथनानुसार, इसका कारण दूकानदार का परिश्रम, बुद्धिमानी, सद्व्यवहार, पूंजी या मित्रों की सहायता नहीं, किन्तु ईश्वर की इच्छा या दूकानदार के भाग्य का उदय है। अर्थात् सफलता और व्यावहारिक गुणों में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं; किन्तु सफलता और ईश्वरेच्छा में तथा सफलता और भाग्योदय में कार्य-कारण-सम्बन्ध है। यदि भारत पर मुसलमानों की जीत हुई, यदि फ़्रान्स में राज्यक्रान्ति हुई, तो लोग ऐतिहासिक कारणों की खोज किये बिना ही यह कह कर चुप हो जाते हैं कि "ईश्वरेच्छा बलीयसी"। वे हर काम में ईश्वर का कर्तृत्व देखते हैं, वे ईश्वर की सारी इच्छाओं, अनिच्छाओं और प्रेरणाओं को जानने का दम भरते हैं। इस दशा में उनका झटपट यह कह देना कि ईश्वर अमुक काम इस प्रयोजन से और अमुक इस प्रयोजन से करता है, सर्वथा स्वाभाविक है। बड़े मज़े की बात तो यह है कि जो लोग एक क्षण ईश्वर को अतर्क्य, अज्ञेय, अचिन्त्य बतलाते हैं वही दूसरे क्षण ऐसे ढँग से बात-चीत करते हैं मानों वे ईश्वर के साक्षात् प्राइवेट-सेक्रेटरी ही तो हैं। ख़ैर, इस प्रकार के ईश्वर-वादियों के लिए समाजशास्त्र की रचना नहीं हुई। अच्छा तो क्या समाजशास्त्री होने के लिए नास्तिक होना आवश्यक है? नहीं। यदि आप हृदय से विश्वास करते हैं कि परमात्मा अज्ञेय नहीं तो दुर्ज्ञेय अवश्य है। वह इच्छा या सनक से नहीं, किन्तु, निश्चित सिद्धान्तों और नियमों के द्वारा कार्य करता है। उन नियमों का पता लगाना हमारा कर्तव्य है। उनका पता सत्य बातों के एकत्रीकरण, वर्गीकरण और तत्सम्बन्धी तुलनात्मक विचारों से ही लग सकता है। यदि आप पूर्वोक्त विश्वास पर दृढ़ रहें तो आप सच्चे ईश्वरवादी और सच्चे समाजशास्त्री भी हो सकते हैं।

एक और भी सिद्धान्त समाजशास्त्र के मूलाधार का ही विरोधी है। वह महान् पुरुषों की उपासना का सिद्धान्त है। कार्लायल नामक विद्वान् कहता है—"मेरी समझ में मनुष्य-जाति का सारा इतिहास अन्ततः महान् पुरुषों का ही इतिहास है।" हिन्दू कहते हैं कि एक शङ्कराचार्य ने बौद्धधर्म को सदा के लिए भारत से निकाल दिया। ईसाई कहते हैं कि एक ईसामसीह ने सारे संसार की काया-पलट दी। आर्यसमाजी कहते हैं—"एक स्वामी दयानन्द ने सारे भारत को जगा दिया। जो कुछ उन्नति आप देखते हैं उन्हीं की दया का फल है। यदि वे न उत्पन्न होते तो देश अन्धकार में पड़ा रहता।" कुछ लोगों की धारणा है कि अकेला एक मनुष्य करोड़ों मनुष्यों के जीवनक्रम में सदा के लिए या बहुत दिनों के लिए व्यापक परिवर्तन कर सकता है। अतएव सामाजिक परिवर्तनों के कारण जानने के लिए आप को सामाजिक शक्तियों और प्रभावों की ओर जाने की—सामाजिक सत्यों की छानबीन करने

षी—आवश्यकता ही नहीं। केवल महान् पुरुषों के जीवन की ओर दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

यह धारणा इतनी व्यापक क्यों है? एक तो असभ्य जातियों के इतिहास में नेताओं के लड़ाई-झगड़े छोड़ कर और कुछ है ही नहीं। हम समझ लेते हैं कि असभ्यों के इतिहास में जो बात दृष्टिगोचर होती है वही सभ्यों के इतिहास में भी *विद्यमान* होगी। दूसरे, सब लोग क़िस्से-कहानियाँ बहुत पसन्द करते हैं; व्यक्तिगत कार्यों की ओर बहुत आकृष्ट होते हैं और यह विश्वास रखते हैं कि मनुष्य-समाज में जो कुछ हुआ है और हो रहा है वह या तो ईश्वर की या कुछ इने गिने महात्माओं ही की माया है। तीसरे, हमारी वर्तमान शिक्षा के क्रम में—साहित्य और इतिहास में—बड़े बड़े लोगों के नाम, धाम, युद्ध आदि पर ही विशेष ज़ोर दिया जाता है। इतिहास और सभ्यता-सम्बन्धी प्रश्नों का बहुत ही सीधा सादा उत्तर आप को इस सिद्धान्त से मिल जाता है। अमुक बात क्यों हुई? अमुक महा-पुरुष के कारण, इत्यादि इत्यादि। अधिकांश लोगों को सामाजिक बातों का इतना कम पता है और पता लगाने की वे इतनी कम इच्छा रखते हैं कि वे ऐसे उत्तरों से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

पर यदि थोड़ा सा भी विचार किया जाय तो इन की असत्यता और अपूर्णता प्रकट हो जाय। सामाजिक अवस्था ही महान् पुरुषों की महिमा का कारण होती है। अफ़रीक़ा के जङ्गली लोगों के बीच कालि-[illegible] प्रतिभाशाली कवि का उत्पन्न होना अस-[illegible] [illegible] टापू के निवासी अभी इतने असभ्य [illegible] यह कहिए कि सभ्यता की इतनी नीची [illegible] कि उनके बीच ग्लैडस्टन या गोखले नहीं [illegible]। यदि मान भी लें कि बर्बरों के बीच के सदृश महाकवि पैदा हो सकता है तो सदृश विकसित और शब्दभाण्डार-[illegible] बिना वह करही क्या सकेगा? सैकड़ों [illegible] विचार, सिद्धान्त, साहित्य और सभ्यता के बिना, जिनकी यथेष्ट सहायता ही कविता सम्भव है, वह कुछ भी न कर सके[illegible] यदि भाव-पूर्ण कविता समझने और पढ़ने वाले ही होंगे तो वैसी कविता का निर्माण ही न होगा। [illegible] से वीर और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् सेनापति भी [illegible] और समाज की परिस्थिति के प्रभाव से ही उ[illegible] होता है। वह भी वीर, साहसी और आज्ञाका[illegible] सेनाध्यक्षों के बिना, विविध प्रकार के शस्त्र[illegible] और गोला-बारूद के बिना, फ़ौजी सामग्री के बि[illegible] और उस राष्ट्र के बिना जिससे ये सब चीज़ें [illegible] मिलती हैं कुछ नहीं कर सकता। सारांश [illegible] महान् पुरुषों के कार्य भी समाज के अङ्ग-प्रत्यङ्[illegible] तियों, विचारों और भावों पर अवलम्बित रह[illegible] इन बातों की उत्पत्ति, विकास या इतिहास [illegible] महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़ने से आप कभी [illegible] समझ सकते। इसके लिए तो आपको स[illegible] शास्त्र की उसी प्रणाली से काम लेना होगा जि[illegible] ज़िक ऊपर किया जा चुका है।

समाज-शास्त्र के विरोधियों का एक दल [illegible] भी है। यह कहता है कि समाज के मनुष्य [illegible] करने के लिए स्वतन्त्र हैं, वे चाहे जैसी संस[illegible] बनावें और चाहे जिस रास्ते चलें। उन्हें [illegible] करने का अधिकार है। अतएव आप यह [illegible] कह सकते हैं कि सामाजिक मामलों में [illegible] नियमों के अनुसार ही हेर फेर होते हैं। यह [illegible] बड़ा जटिल है कि मनुष्य कार्य करने में [illegible] पूर्ण स्वतन्त्र है या नहीं। न तो यहाँ इसके [illegible] स्थान ही है और न इस अवसर पर इस प्रश्न [illegible] विचार ही किया जा सकता है। तथापि [illegible] से इस प्रकार निवेदन किया जा सकता है—[illegible] अपने चारों ओर आँख उठा कर देखिए। यदि [illegible] मनुष्य मार्ग में अपनी ओर घुड़सवार या मोटर [illegible] आते देखेगा तो वह ज़रूर हट जायगा। यदि [illegible] कोई चीज़ पड़ोस की दूकान में २४) में मिल[illegible] और वही किसी दूर की दूकान में ३५) में, तो [illegible] पहली ही दूकान से उसे ख़रीदेगा। यदि

ोई मकान बेच रहा है और एक मनुष्य उसे १०००) । और दूसरा २०००) में लेने को तैयार है तो वह सरे ही के हाथ उसे बेचेगा। अर्थात् यह प्रायः निश्चित और व्यापक नियम है कि मनुष्य अपनी रक्षा का उपाय करता है और हानि के बदले लाभ उठाने का प्रयत्न करता है। यदि व्यक्तियों के व्यवहार में निश्चित और व्यापक नियम प्रचलित हैं, तो मनुष्य-समूह में भी वे अवश्य ही प्रचलित होंगे और अधिक निश्चय और दृढ़ता से प्रचलित होंगे। कारण यह है कि नियमों की विरोधिनी विशेषतायें, जो व्यक्तिगत होती हैं, जन-समूह की विशेषताओं में दब जाती हैं। क़ानून है कि जो कोई चोरी करेगा जुर्माना देना होगा या जेलख़ाने की हवा खानी होगी, और जो हत्या करेगा उसे फाँसी मिलेगी। आप को विश्वास है कि दण्ड के भय से यदि सब नहीं तो अधिकांश मनुष्य चोरी और हत्या से दूर रहेंगे। अर्थात् यद्यपि किसी एक व्यक्ति के विषय में पूर्ण निश्चय से यह नहीं कहा जा सकता कि वह दण्ड के भय से अपराध न करेगा, पर समूह के विषय में—अधिकांश मनुष्यों के विषय में—अवश्य ही कहा जा सकता है। जब दण्ड के भय का इतना प्रभाव है तब व्यापक सामाजिक शक्तियों का प्रभाव और भी अधिक होगा। यह अनुमान सर्वथा उचित है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि समाज-शास्त्र बहुत सी बातों का निश्चय पूर्णरूप से नहीं कर सकता। इस लिए यह शास्त्र की पदवी का अधिकारी नहीं। हम पूछते हैं कि क्या मानस शास्त्र अपने विषय की सभी बातों का पूर्ण निश्चय कर सकता है? क्या भूगर्भ शास्त्र की बहुत सी बातें अब तक थोड़ी बहुत अनिश्चित नहीं? तो फिर समाजशास्त्र के साथ इतनी सख़्ती क्यों? यह तो और शास्त्रों से भी कहीं अधिक पेचीदा है। ख़ैर, विरोधियों को कम से कम इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जिस क्षेत्र में यह सामान्यतः निश्चित है उस क्षेत्र में यह शास्त्र अवश्य है। जैसे जैसे समय बीतता जायगा वैसे ही वैसे यह भी और शास्त्रों के सदृश उन्नत और परिपक्व होता जायगा।

बस इतने ही विचार से पता लग गया कि समाजशास्त्र के अस्तित्व में शङ्का नहीं। यह अवश्य है। तो फिर शिक्षित और समझदार आदमी भी क्यों कह बैठते हैं कि समाजशास्त्र कोई चीज़ नहीं? बात यह है कि वे भूल जाते हैं कि सामाजिक बातें और आज कल "ऐतिहासिक" कही जानेवाली बातें बिलकुल ही पृथक् पृथक् श्रेणी की बातें हैं। अमुक राजा कब पैदा हुआ, कहाँ पैदा हुआ, कब मरा, क्यों मरा, कैसे मरा, कहाँ मरा, कहाँ दफ़न किया गया, उसकी सेना में कितने पैदल और कितने सवार थे। इस प्रकार की लचर "ऐतिहासिक" बातों के सम्बन्ध में व्यापक और निश्चित नियम किये ही नहीं जा सकते। पर धर्म, समाज-सङ्गठन, समाज के अङ्गों के कार्य, वृद्धि, ह्रास, राजनैतिक प्रगति, व्यापार तथा उद्योग धन्धे की उन्नति और अवनति इत्यादि के विषय में नियम या सिद्धान्त अवश्य ही स्थिर किये जा सकते हैं।*

"सत्यशोधक"

विमाता।

(१)



विश्वभूषण सत्रह वर्ष का है। काशी के हिन्दू-कालेज में, फ़र्स्ट इयर क्लास एफ़० ए० में, पढ़ता है। उसके पिता राममोहन लगभग पचास वर्ष के हैं। पर अपनी अवस्था तथा युवक पुत्र का लिहाज़ न करके उन्होंने परसाल आठ सौ रुपये देकर चमेली नाम की एक सुन्दरी से विवाह कर लिया है। चमेली की विश्वभूषण से अनबन रहती है।

* स्पेन्सर के "समाजशास्त्राध्ययन" के आधार पर।
लेखक

(२)

इधर विश्वभूषण के विवाह के पैग़ाम आने लगे। यद्यपि विश्वभूषण की इच्छा न थी कि उसका विवाह अभी हो, पर पिता का आग्रह देख कर वह चुप रहा। चमेली इस विवाह की बड़ी विरोधिनी थी। उसे कोई उपाय न सूझता था जिससे वह इस आपत्ति को टालती। कई बार उसने लड़के के पढ़ने में विघ्न पड़ने का भय दिखा कर राममोहन को रोका, किन्तु उसे सफलता न प्राप्त हुई। पुत्र-पुत्री के विवाह को ही अपने कर्तव्य की चरम सीमा मानने वाले माता-पिता के सदृश राममोहन भी अपने विचार पर दृढ़ रहे।

चमेली का हाल इस समय ठीक वैसा ही था जैसा कि वृद्ध की युवती भार्या का होना चाहिए। राममोहन उसे आत्म-समर्पण कर चुके थे। चमेली के गुण-अवगुण देखने की शक्ति का उनके हृदय से लोप हो चुका था। इस दशा में चमेली की पूर्ण स्वाधीनता में केवल विश्वभूषण ही कण्टक हो रहा था। जब से विश्वभूषण के विवाह का प्रस्ताव उठा तब से चमेली की चिन्ता का स्रोत और भी वेग से प्रवाहित होने लगा। अब तक केवल एक विश्वभूषण ही का खटका था, अब एक और भी खटके का उत्थान होने वाला है। इस दूसरे खटके से चमेली की स्वाधीनता के एक-. ही लोप हो जाने का डर है। इसी से बचने . लिए चमेली ने विश्वभूषण पर एक भयानक . लगा दिया। विश्वभूषण ने अपने पक्ष में . कुछ कहा। पर राममोहन ने चमेली के पक्ष ही अपना मन्तव्य सुनाया। लाचार होकर . ने संसार-सागर में आत्म-निःक्षेप करना उचित समझा। स्वावलम्बन के भरोसे वह .-समुद्र की उत्तुङ्ग तरङ्गों में बहने लगा। इस उसने कई सहारे पकड़े, पर विपत्ति में कौन .. देता है? हम भी एक विपत्तिग्रस्त सुना कर पाठकों का दिल नहीं दुखाना

(३)

ऊपर की घटना को हुए दस वर्ष बीत [illegible] प्रयाग के नये वकीलों में प्रसिद्ध वकील पी० बी० त्रिवेदी, एम० ए०, एल-एल० बी० कमरे में बैठे हुए एक मुक़द्दमे के काग़[illegible] देख रहे थे। इसी समय प्रयाग के नामी बै[illegible] श्रीयुत आर० एन० द्विवेदी की गाड़ी आक[illegible] सामने में ठहर गई। उस से उतर कर बैरिस्टर [illegible] एक भले आदमी को साथ लिये हुए, त्रिवेदी [illegible] कमरे में दाख़िल हुए। आगत-स्वागत के [illegible] बैरिस्टर ने कहा—

"काशी में एक भले घर की स्त्री का वि[illegible] से शरीरान्त हो गया है और विष देने के अपर[illegible] उसका पति गिरफ़्तार हुआ है। परसों ही मु[illegible] की पेशी है। परसों सवेरे मैं काशी पहुँच जाऊँ[illegible] कल आगरे वाले के मुक़द्दमे की बहस है। [illegible] मुझे हाज़िर रहना पड़ेगा। इसलिए तुम [illegible] बनारस जाव और ज़मानत का प्रबन्ध करो। [illegible] द्दमे का हाल भी अच्छी तरह समझो। [illegible] फ़िक्र न करो। मैं अभी अपने साथ सब [illegible] जाता हूँ।"

बैरिस्टर साहब की बात पर "जो आज्ञा" [illegible] कर त्रिवेदी जी आध घण्टे में ही जाने के लिए तै[illegible] हो गये और मुवक्किल के साथ बैरिस्टर साहब[illegible] गाड़ी में जा बैठे। गाड़ी स्टेशन की ओर तेज़ी [illegible] दौड़ने लगी; क्योंकि काशी जाने वाली गाड़ी [illegible] में कुछ ही मिनट बाक़ी थे। गाड़ी मिल गई [illegible] वकील साहब काशी पहुँच गये।

(४)

काशी की फ़ौजदारी अदालत में आज [illegible] भीड़-भाड़ है। किसी भले आदमी के फँसने [illegible] कचहरियों में जैसी भीड़ होती है आज भी [illegible] वैसी ही है। पुलिस ने बड़ी ही मुस्तैदी से [illegible] की पैरवी की है। लोग समझते हैं कि मुलज़ि[illegible] आज ही दौरा सिपुर्द होगा। हाकिम के आ[illegible] पर बैरिस्टर द्विवेदी अदालत में पहुँचे। लोगों [illegible]

ाएँ चारों ओर से उन पर जा पड़ी। ठीक इसी ामय उन्हें एकान्त में ले जाकर वकील बी० बी० त्रवेदी ने उनसे कुछ कहा, जिसे सुन कर उनके ाहरे पर आश्चर्य और चिन्ता के चिह्न झलकने ागे।

यथासमय मुक़द्दमा पेश हुआ। पुलिस की ओर । ज़ोर दिया जाने लगा। कोई तीन घण्टे तक ामला ज़ोरों पर रहा। बाद को बैरिस्टर ने पुलिस ी डायरी पेश की। उसमें लिखा था "वारदात के न मुलज़िम काशी में न था।" बस, फिर क्या ा। यहाँ से मुक़द्दमा गिरने लगा और बैरिस्टर के ोरदार जिरह के आगे पुलिस को चुप होना ड़ा। मैजिस्ट्रेट ने मुक़द्दमा ख़ारिज कर दिया। ुलज़िम छोड़ दिया गया।

(५)

अदालत से बाहर आकर मुलज़िम अपने बैरि-टर तथा वकील के पैरों पर गिरने लगा। पर उसे ीच ही में रोक कर बी० बी० त्रिवेदी उसके पैरों र गिर पड़े। वे बोले—"पिता जी! मैं आप का योग्य पुत्र विश्वभूषण हूँ।" पिता जी ने पुत्र को ले लगाया। जब वे राममोहन बैरिस्टर की ओर ुड़े तब उन्हें गले लगा कर बैरिस्टर ने कहा— भाई साहब! आप मेरे समधी हैं, क्योंकि विश्व-ूषण मेरा दामाद है।"

अब राममोहन प्रयाग में त्रिवेणी नहाया और ्विश्वभूषण के बच्चे को खिलाया करते हैं।

छबीलेलाल गोस्वामी।

ाठकों के प्रति पुस्तक की प्रार्थना।

छप्पय

ो भारती-भक्त! धातृ-वर! भारत-भूषण!

[illegible]

हैं हम सब की विनय यह सुनो मलिन कर से न तुम।
आती है लज्जा हमें होजाती हैं मलिन हम ॥१॥
हैं हम अबला-जाति अङ्ग सब अबल हमारे।
यह इसिए बस याद मोड़िये हमें न प्यारे!
कीजे नष्ट न आप हमें बहु चिह्न लगा कर।
है यह भारी दोष देखिए ग्रन्थ उठा कर॥
पठित पृष्ठ की याद को मृदुल पत्र रख दीजिए।
कलम कटारी हूल कर प्यारे प्राण न लीजिए! ॥२॥
करो स्नेह जब आप स्नेह तब साथ न लेवो।
हैं हम सब बेदाग न तुम दागी कर देवो॥
सौत आग को दिया कभी मत हमें जलावो।
वैरी जल से मिला न हम को कभी सतावो॥
कभी मूर्ख के हाथ में देवो हमें न भूलकर।
प्राण हमारे व्यर्थ ही लेलेगा वह बे खबर! ॥३॥
जब तुम को कुछ कभी किसी पर रिस है आती।
करता है वह चैन, व्यर्थ हम हैं पिट जातीं।
कभी लगा कर तान मारते हो जो ताज़ी।
गिरती है हा! वज्र सरीखी वह विकराली!
मान हमें ढकन कभी रख देते हो पात्र पर।
होता है तन नष्ट यों करो दया हे बन्धु-वर! ॥४॥
बाहर ही जब कभी छोड़ जाते हो प्यारे।
होजाते हैं अङ्ग हमारे न्यारे न्यारे!
रहती हैं हम पड़ी पड़ी तब फड़ फड़ करतीं।
होती हैं अति विकल नहीं कल बिलकुल पड़ती।
एवं आँधी डाल कर चल देते हो बन्धु तुम।
दम घुटती है यों अहो पाती हैं अति दुःख हम! ॥५॥
बतलाती हैं गूढ़ ज्ञान की बातें हमहीं।
दिखलाती हैं दुःख दलन की बातें हमहीं॥
देती हैं आदर्श जनों के जीवन हम ही।
लेती हैं पर-अर्थ मात्र को जीवन हम ही॥
सिरहाना तिन को बना करते हो तुम नष्ट क्यों?
दीमक-चूहों से कटा देते हो हा! कष्ट क्यों? ॥६॥
अपने तन को आप स्वच्छ रखते हैं जैसे।
हम भी रक्खी जायँ यही है विनती वैसे॥
या धन की ज्यों आप किया करते हैं रक्षा।
त्योंही हम पर करें यही दीजे वर भिक्षा॥

[illegible] हमें [illegible] पावें तो सुख अमित।
सच है—"जो हित करेगा होगा उसका भी सुहित" ॥७॥
एक हमारी विनय [illegible] यह भी सुन लीजे—
लेकर हम से ज्ञान हमें औरों को दीजे।
[illegible]-मत्सरता-शुष्क न रहिए कभी छिपा कर।
आप हमारे ही अम्ब नहीं तो जग में आ कर।
फिर भी है हम सबों की विनती यह कर जोड़ कर।
कीजे करुणा सर्वदा हे करुणाकर बन्धुवर! ॥८॥

सुखराम चौबे

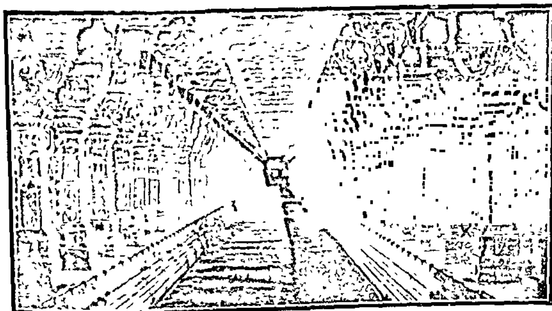
जापान की राजकीय उन्नति का मूल कारण।

इतिहास में राजकीय हलचलों का विषय सबसे अधिक शिक्षादायक होता है। लार्ड मार्ले अपने एक निबन्ध में लिखते हैं—"The very highest form of all practical energy is the governing of the country." यह सच है। राज्य का प्रबन्ध करने ही में सबसे अधिक व्यावहारिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। किसी देश अथवा समाज की उन्नति के कारणों का पता लगाना हो तो उसके धर्म और राज्य-सम्बन्धी हलचलों का इतिहास अवश्य देखना चाहिए। योरोप के इतिहास में इन विषयों की अनेक मनोरञ्जक और शिक्षा-दायक बातें पाई जाती हैं। आज इस नोट में यह दिखलाने का यत्न किया जायगा कि एशिया-खण्ड के जापान देश ने, अपनी राजनैतिक हलचल के द्वारा समाज की उन्नति के विषय में, सारे संसार को किस बात की शिक्षा दी है।

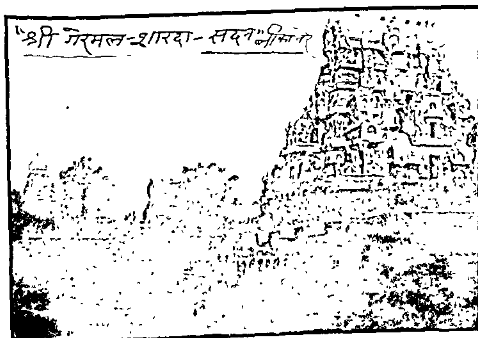
जापान में जो राजकीय हलचल हुई है उसकी तुलना संसार के इतिहास में और किसी हलचल से नहीं की जा सकती। यथार्थ में यह सराहनीय है। योरोप में जो राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं उन[...] कारण लोगों को बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी प[...] हैं, परन्तु जापान में यह बात नहीं हुई। वहाँ रा[...] और प्रजा दोनों ने मिल कर एक साथ परिवर्तन [...] लिए प्रयत्न किया है। और, थोड़े ही समय में बि[...] किसी झञ्झट के उस देश ने अपनी आश्चर्य-जन[...] उन्नति कर ली है।

इस आश्चर्य-जनक उन्नति का मूल कारण क्या है? इस विषय की चर्चा के लिए अनेक विद्वानों ने ब[...] बड़े ग्रन्थ लिख डाले हैं। संक्षेप में भी उन बातो[...] का उल्लेख करना यहाँ असम्भव सा जान पड़ता है। एक जापानी लेखक ने भी इस विषय पर अपनी सम्मति प्रकट की है। हमारी राय में यह सम्मति सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है। अत[...] एव इसी के आधार पर जापान की उन्नति के तत्त्व का पता लगाने का यत्न करना चाहिए।

भारत-वासियों के समान जापानी भी [...] राजा को साक्षात् परमेश्वर का अवतार मानते [...] वे लोग भक्ति-पूर्वक अपने राजा की सेवा क[...] ही परम धर्म समझते थे। राजा की आज्ञा [...] उल्लङ्घन करना बड़ा भारी पाप समझा जाता [...] वे लोग राजनैतिक विषयों से अथवा राज्य के प्र[...] से बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। यदि यह [...] जाय कि उन लोगों की उन्नति और अवनति [...] सारी ज़िम्मेदारी राजा ने अपने ऊपर ले ली थी [...] अतिशयोक्ति न होगी। ऐसी अवस्था में भी जा[...] गाँवों में, भारतीय ग्राम-पञ्चायत के समान, [...] संस्था थी, जिसके द्वारा उन लोगों को सहका[...] (Co-operation) सदृश अत्यन्त महत्त्व की [...] की शिक्षा मिला करती थी। यही ग्राम-सं[...] जापान की राजकीय उन्नति का मूल कारण [...] खेद की बात है कि हमारे देश में इस संस्था [...] सर्वथा नाश हो गया है। यदि यह संस्था [...] जीवित होती तो इसके आधार पर उन्नति [...] सहज काम था। अँगरेज़ ग्रन्थकारों ने सिफ़ा[...] की है कि भारत की ग्राम-संस्था को फिर [...]

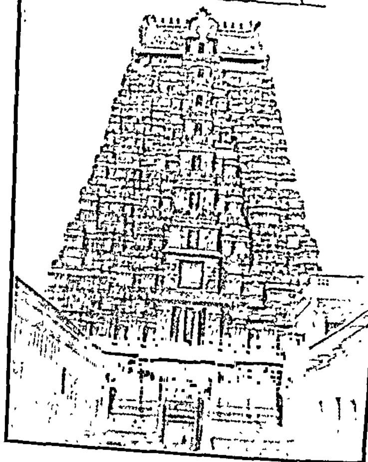


रामेश्वर के मन्दिर के स्तम्भ-समूहों का दृश्य।



तञ्जौर के प्रसिद्ध मन्दिर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।



श्रीरङ्गम का गोपुरम ।



करने का यत्न होना चाहिए। इस विषय पर अधिक लिखने के लिए अवकाश नहीं है। गत अप्रेल की सरस्वती में "देवास-राज्य में पञ्चायत की प्रथा" स्थापित की जाने का हाल लिखा गया है। यदि ऐसी संस्थायें सारे हिन्दुस्तान में स्थापित हो जायँ तो देश की यथार्थ उन्नति होने में विलम्ब न हो। अब जापान की ग्राम-संस्था का कुछ हाल सुनिए।

प्रत्येक गाँव (मूरा) पाँच पाँच आदमियों के हिस्सों में विभक्त था। प्रत्येक हिस्से को जापानी "कूमी" कहते थे। "कूमी" के सदस्यों का मुखिया "कूमी" के सदस्यों में से चुना जाता था। "कूमी" के कार्यों पर इस मुखिया का पूरा दबाव और अधिकार रहता था। नीचे लिखे गये नियमों को सब लोगों को मानना पड़ता था :—

(१) हम में से कोई यदि पितृद्वेषी होगा तो उसे हम नहीं छिपावेंगे; इस बात की हम सूचना देंगे।

(२) हम बच्चों को पितृ-मातृ-पूजन, नौकरों को स्वामि-सेवा और एक घर में रहने वालों को शान्ति से रहने की शिक्षा देंगे। प्रत्येक "कूमी" के सदस्य का यह कर्तव्य होगा कि वह एक दूसरे के आचरण और व्यवहार को सुधारे।

(३) "कंगाशिर" (कूमी का मुखिया) अपने सदस्यों को आलसी होने से बचावेगा और उसे [हर] तरह से सुधारने की कोशिश करेगा। यदि [उ]सकी आज्ञा न मानी जाय तो वह "नोशियोरी" [(]गाँव के मुखिया) के पास रिपोर्ट करेगा।

(४) किसी भी "कूमी" के मेम्बर को यह खबरदार होना कि वह दूसरे के लड़ाई-झगड़ों को रोके। न रोक सकने पर वह रिपोर्ट करे।

(५) अपने कुटुम्बी जनों के बीच किसी प्रकार का झगड़ा करने वाले की रिपोर्ट की जायगी।

(६) कहीं लड़ाई झगड़ा न करना चाहिए। यदि झगड़े के लिए यथेष्ट कारण भी हो तो भी रिपोर्ट ही करनी चाहिए। ऐसा न करने पर सख्त सज़ा दी जायगी।

(७) किसी की निन्दा करने की सख्त मुमानियत है।

(८) ईमानदारी से नौकरी करने वाले की और पितृभक्त की सरकार के पास सिफ़ारिश की जायगी।

(९) हमें सबके सुख-दुःख में शामिल होना चाहिए। किसी पशुवृत्ति वाले जंगली आदमी की ज़िम्मेदारी हमीं लोगों पर होगी।

(१०) यदि कहीं आग लगे तो सब को अपने घर से पानी लेकर आना चाहिए। आग बुझाने के समय ग़ैर हाज़िर रहनेवाला दण्ड पाने योग्य समझा जायगा।

(११) रात को कहीं चोरी या आक्रमण होने पर उसकी सूचना घण्टा बजा कर दी जायगी। अपराधी को पकड़ने के लिए सुनने वालों को दौड़ना चाहिए। ऐसा न करने वाला, बाद तहक़ीक़ात के, दण्ड का पात्र होगा।

इन नियमों से यह अच्छी तरह मालूम हो सकता है कि जापान के ग्राम-निवासियों को सामाजिक और नैतिक शिक्षा अवश्य मिलती थी। इस शिक्षा का मूलमन्त्र परस्पर सहायता, सहकारिता और सहयोगिता है। और, यही शिक्षा उस देश में राजकीय उन्नति की जड़ कही जा सकती है। जब उन्नीसवीं सदी में वहाँ इस बात की हलचल हुई कि राज्य का प्रबन्ध सिर्फ़ राजा या उसके मन्त्री और बड़े बड़े ज़मींदारों ही के हाथ में न रहना चाहिए, किन्तु अपने देश के शासन में प्रजा के प्रतिनिधियों की सम्मति भी ली जानी चाहिए, तब इस परिवर्तन के लिए उन लोगों को अपने देश-भाइयों के साथ ज़रा भी झगड़ा फ़िसाद नहीं करना पड़ा। तुरन्त ही वहाँ प्रतिनिधित्व के तत्त्व पर कौंसिल की रचना की गई। प्रजा के प्रतिनिधियों के द्वारा से जापान ने थोड़े ही समय में जो

किले के भीतर राजा का महल देखने योग्य है। यहां चार बड़े बड़े प्रसिद्ध मन्दिर हैं। शिवालय के सामने १६ फ़ीट का एक विशालकाय नन्दी है। मन्दिर की बनावट पुराने ज़माने की कारीगरी का नमूना है। यहां रेशम और क़ालीन का काम अच्छा होता है।

श्रीरङ्गम्।

इस नाम का एक स्टेशन भी अब खुल गया है। यात्री प्रायः ट्रिचिनापली क़िला (Trichinopoly Fort) स्टेशन पर उतरते हैं और वहां से पैदल या सवारी गाड़ी से श्रीरङ्गम् जाते हैं। यहां के क़िले की दीवार तोड़ दी गई है। उत्तर की ओर पहाड़ का एक टुकड़ा है, जिसकी ऊँचाई २६० फ़ीट है। यह बड़ा रमणीक स्थान है। चोटी पर गणपति का एक छोटा सा मन्दिर है। बीच में शिवजी का एक मन्दिर है। चोटी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। लोग आसानी से ऊपर चले जाते हैं। ऊपर पहुँचने पर नीचे बहती हुई कावेरी नदी और श्रीरङ्गजी के विशाल मन्दिर की अद्भुत छटा देख पड़ती है। यहां से दो मील पर श्रीरङ्गम् है। यहां श्रीरङ्गजी का मन्दिर है। यह स्थान एक छोटा सा टापू है। उसी पर श्रीरङ्गम् नाम का क़सबा आबाद है। श्रीरङ्गजी का मन्दिर वैष्णवों का सबसे बड़ा मन्दिर कहा जाता है। इसकी ऊँचाई ?०० फ़ीट है। यह मन्दिर बहुत विस्तृत है। इस में ५०० फ़ीट का एक बड़ा मण्डप है। इस मण्डप में एक एक शिला के ऊँचे ऊँचे खम्भे कारीगरी की अद्भुत बानगी दिखा रहे हैं। मन्दिर के चारों ओर विशाल फाटक क़िले के समान खड़े हैं। मन्दिर एक मील के घेरे में है। इसको वैकुण्ठ-द्वार कहते हैं। यह मन्दिर सत्रहवीं शताब्दी का बना हुआ कहा जाता है। यह बड़ा ही रमणीक स्थान है। चारों तरफ़ कावेरी नदी बहती है। महात्मा रामानुजाचार्य यहीं हुए हैं। उन्होंने १२० वर्ष की अवस्था में यहीं समाधि लगाई थी। वैकुण्ठ-एकादशी को यहां बड़ा पर्व होता है और दूर दूर से यात्री उत्सव में आते हैं।

मदुरा (Madura)

यह भी बहुत प्राचीन स्थान है। इसको दक्षिणी भारत का एथन्स (Athens of South India) कहते हैं। रामेश्वर के यात्री यहीं से हो कर आते जाते हैं। यहां सुन्दरेश्वर और मीनाक्षी का एक बड़ा विशाल मन्दिर है। दक्षिण के मन्दिरों में यह बहुत अच्छा मन्दिर समझा जाता है। यह मन्दिर लम्बान में ३०० गज है। बीच में १००० खम्भे का एक बड़ा मण्डप है, जिसको आर्यनायक ने १५५० ईसवी में बनवाया था। मन्दिर की बनावट और कारीगरी हिन्दुस्तान की शिल्प-कला के महत्त्व की गवाही दे रही है। इसी मण्डप में बाज़ार लगता है, जिसमें सब तरह की चीज़ें बिकती हैं। बाज़ार का दृश्य बड़ा रमणीक मालूम होता है। विशाल फाटक के शिखर पर तरह तरह की चित्र-विचित्र रँगीली मूर्तियां हैं। यहां से एक मील पर एक तालाब है, जिसके मध्य में एक मन्दिर बना है और दोनों ओर कुछ इमारतें हैं। यह स्थान देखने योग्य है। राजा तिरुमल नायक का महल मन्दिर से कुछ दूरी पर है। इस महल की कारीगरी अद्वितीय है। इसके विशाल हाथी के सदृश मोटे मोटे खम्भे अपनी बनावट और मज़बूती के स्वयं ही नमूने हैं। काम ऐसा पुष्ट है कि कभी मरम्मत की आवश्यकता नहीं हुई। इस महल में अब सरकारी दफ़्तर और कचहरी है।

रामेश्वर।

मदुरा होकर यात्री रामेश्वर पहुँचते हैं। मण्डपम् बीच (Mandapam Beach) नामक जगह तक रेल जाती है। वहां से नहर पार करके जहाज़ पर पम्बम् बीच (Pambam Beach) तक जाना होता है। अब कुछ दिन से इस नहर के ऊपर पुल बन गया है और रेल से यात्री सीधे रामेश्वर तक चले जाते हैं। रामेश्वरक्षेत्र ११ मील का एक टापू है। यहां १००० फ़ीट में एक बहुत बड़ा विस्तृत

सुशील ने कहा—"ख़बर क्यों न लगेगी। पर, यह न समझिए कि आपके घर के किसी आदमी ने ख़बर दी है"।

योगेन्द्र बाबू फिर हँस कर बोले—"अच्छा भाई, अब मैं तुम से कहता हूँ कि जब तुम्हें अवकाश मिले तब एक बार जाकर उसे देख आना।"

सुशील ने कुछ जवाब न दे कर सामने मेज़ पर पड़े हुए समाचार-पत्र पर दृष्टि डाली।

योगेन्द्र बाबू ने कहा—"अब मेरे कचहरी जाने का समय हो गया। मैं जाता हूँ। तुम तीसरे पहर आओगे न?"

सुशील ने उत्तर दिया—"सुनिए। जब तक मैं यह न जानलूँ कि आप मुझे किस भाव से जाने के लिए कह रहे हैं तब तक मैं इस बात का कुछ भी जवाब न दूँगा। यदि आप मुझे रिश्तेदारी के नाते जाने के लिए कहते हैं तो मैं कदापि न जाऊँगा। पर, यदि एक साधारण डाक्टर जान कर आप मुझे जाने के लिए कहें तो मैं अपने व्यवसाय के अनुरोध से अवश्य ही जाऊँगा।"

इसके बाद प्रायः आध घण्टे तक दोनों साले बहनोई परस्पर वाद-विवाद करते रहे। अन्त में—'रिश्तेदारी के लिहाज़ से नहीं, किन्तु डाक्टरी के लिहाज़ से ही जाऊँगा'—अपनी इसी ज़िद पर सुशील डटे रहे। इस पर योगेन्द्र बाबू झिझला कर बोले—"अच्छी बात है, मैं तुम्हें एक साधारण डाक्टर के तौर पर ही कहता हूँ कि तुम मेरे घर पर रोगी को देखने के लिए आना।" इतने पर भी सुशीलकुमार को सन्तोष न हुआ। उन्होंने फिर कहा— "किस समय आऊँ?" योगेन्द्र बाबू बोले—"तीसरे पहर पाँच बजे।" यह कह कर वे चले गये।

योगेन्द्र बाबू के चले जाने पर सुशील अपने रूखे व्यवहार पर कुछ पछताने लगे। साले का रिश्ता होने से क्या, उम्र में योगेन्द्र बाबू सुशील के बड़े थे। उनके साथ इतनी ढिठाई ठीक नहीं। इसके पहले जो घटना हो चुकी थी उसे यहाँ पर लिख देने से सुशील के इस रूखे व्यवहार का कुछ समर्थन हो जायगा। थोड़े दिनों पहले एक तुच्छ सी बात पर सुशील अपनी स्त्री सरला पर नाराज़ हो गये थे। इसी दशा में एक रोज़ उन्हें उनके सहपाठी मित्र डाक्टर हरेन्द्रनाथ से ख़बर मिली कि सरला का स्वास्थ्य ख़राब है और हरेन्द्र बाबू उसका इलाज कर रहे हैं। पर, इस विषय में न तो सरला ने ही उन्हें कुछ लिखा और न ससुराल वालों ने ही कोई ख़बर भेजी। सुशील ने सोचा, यह सारी करतूत सरला की है। सात आठ रोज़ से सुशील मारे अभिमान के मन ही मन कुढ़ रहे थे कि इतने ही में योगेन्द्र बाबू उनसे मिलने आये। बस, सारा बदला उन्होंने बहन के बदले भाई से ही चुका लिया। क्रोधाग्नि बुझने पर सुशील का हृदय जब कुछ शान्त हुआ तब वे अपने किये पर बड़े लज्जित हुए। वे सोचने लगे कि ख़ैर, हुआ सो हुआ, तीसरे पहर जाकर क्षमा माँग लेने से मामला तय हो जायगा।

(२)

कचहरी से लौट कर योगेन्द्र बाबू ने अपने घर पर सुशील का सारा हाल कह सुनाया। घरवालों ने मिल कर सङ्कल्प किया कि इस धृष्टता के लिए सुशील को कुछ शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। सरला की बड़ी बहन तरला बोली—"बड़े भैया, यह काम तुम हम लोगों पर छोड़ दो। हम डाक्टर साहब को ख़ूब छकायेंगी।"

छोटी बहन अमला बोली—"मैं टीन का कनस्टर काट कर चार रुपये बनाऊँगी। यही डाक्टर बाबू को फ़ीस में दूँगी।"

योगेन्द्र बाबू सुन कर बोले—"टीन के नहीं। इससे उसे उचित शिक्षा न मिलेगी। उसे सचमुच ही चार रुपये फ़ीस के दिये जावेंगे। जब वह डाक्टर बन कर आ रहा है तब उसके साथ पूरा डाक्टर जैसा बर्ताव होना चाहिए। वह सरला को अपनी पत्नी की तरह नहीं देखना चाहता, तो मैं भी अपनी बहन को उसके सामने न होने दूँगा। सरला पर्दे की ओट में रहेगी"। इस बात पर सब कोई राज़ी

यह मुझे पहले न मालूम था। आज अपने विद्यालय वालों से मिल कर तुमने मुझे अत्यन्त अपमानित किया है। जो हो, तुम अब मुझे मुँह दिखलाना नहीं चाहती तो मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन तुम्हारा मुँह न देखूँगा। मेरे और तुम्हारे बीच पति-पत्नी का जो सम्बन्ध था वह अब टूट गया। अब तुम सब तरह से स्वाधीन हो। जो तुम्हारे मन में आवे, करो। तुम यह तो अच्छी तरह से जानती हो कि मेरे कहने और करने में कुछ भी अन्तर नहीं होता। इस समय तुम से नाता तोड़ कर मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यवान् समझता हूँ। इति"।

पत्र पढ़ कर तरला कुछ चिन्तामग्न हो गई। उसे ख़बर ही न थी कि इस तुच्छ बात पर सुशील इतने क्रुद्ध हो जाँयगे। इस घटना के कारण यदि सुशील और सरला में सब दिन के लिए वैमनस्य हो जाय तो इसके लिए तरला ही पूर्णरूप से अपराधिनी है। सरला तो पहले ही इस भावी विपद् की आशङ्का कर रही थी। वह तरला को इस बात की चेतावनी भी दे चुकी थी।

इतने ही में सरला के आजाने पर तरला बोली—"डाकर साहब तो बड़े बिगड़े हैं। वे इस तरह ख़फ़ा हो जाँयगे, यह जानती तो ऐसा खेल न खेलती"।

सरला की आँखें भर आईं। बड़े ही करुण-स्वर में वह कहने लगी—"दीदी, अब क्या किया जाय"?

तरला उसे ढाढ़स दे कर बोली—"तू इतना घबराती क्यों है? जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि पत्र की आड़ में मैं थी, तब तुझ पर उनका कोप न रहेगा। इसके लिए तो मुझे ही डाकर साहब को मनाना पड़ेगा। किसी तरह वे एक बार फिर यहाँ आजायँ तो मैं सब बात बतलादूँ।"

"तुम भले भैया से कहो, मुझे अभी घर भिजवा दें।"

"पागली कहीं की। घर से तो वे और भी बिगड़ेंगे।"

दोनों बहनों में ये बातें हो ही रही थीं कि योगेन्द्र बाबू वहाँ आ गये। वे कहने लगे—"तुम... ने मिल कर बेचारे सुशील को आज पागल [बना] दिया। वह जो व्यवस्था-पत्र लिख गया है, बाहर की मेज़ पर पड़ा था। सन्ध्या को सरला का [हाल] जानने के लिए हरेन्द्र बाबू आये तो उन्होंने वह पत्र पढ़ कर कहा—"सरला की इस तुच्छ बीमारी पर सुशील बहुत घबरा गये हैं। घबराहट में वे ऐसा व्यवस्था-पत्र लिख गये। उसमें लिखी हुई दो दवायें ऐसी हैं कि आपस में मिलने पर ज़हर बन जाता है। हरे[न्द्र] को भीतर का हाल तो कुछ मालूम ही न था... कह रहे थे कि इसी लिए डाकर लोग अपने घर में डाकरी नहीं करते"।

तरला बोली—"व्यवस्था पत्र हम सब का एक खिलवाड़ था। नहीं तो आज बड़ी भारी [दुर्घ]टना हो गई होती।"

"हरेन्द्र बाबू कहते थे कि यह व्यवस्था-पत्र [उनके] पास भेज दो। वे पढ़ कर इसे सुधार देंगे।" कह कर जोगेन्द्र बाबू ज़ोर से हँसने लगे।

"वह व्यवस्था-पत्र है कहाँ?"

"मेरे पास है"।

"उसे मुझे दे दीजिए"।

"क्यों, उस पर फिर नमक-मिर्च लगाओगी?"

"नहीं, नमक-मिर्च न लगाऊँगी। अब तक वे जाल में फँसे ही भर हैं। अब उन्हें यहाँ बाँध लाऊँगी।"

योगेन्द्र बाबू के चले जाने पर सरला से [तरला] बोली—"सरला, डाकर साहब की ... का सब सामान ठीक कर रक्खो। वे आने वाले हैं।"

"न जाने, फिर तुम कौन सा जाल रचोगी।" स्नेहभरी चितवन से छोटी बहन की [ओर देख] कर तरला बोली—"नहीं, नया जाल न रचूँगी। जो जाल रच चुकी हूँ उसी का फ़ैसला करूँगी।"

हो गये। क्योंकि इस से डाक्टर बाबू को शिक्षा के साथ कुछ सज़ा भी मिल जायगी।

घर भर अब यह निश्चय कर के .खुश हो रहे थे पर बेचारी सरला बड़ी ही घबराहट में थी। वह मन ही मन सोचती थी—"बड़े भैया के अपमान का बदला तो लिया जायगा, किन्तु मेरे लिए इस का परिणाम अच्छा न होगा। दोनों बहिनों को हँसी करने का तो अच्छा मौक़ा मिला, पर इसके लिए वे मुझे ही अपराधिनी ठहरायँगे।" यह सोच कर सरला बहुत डरी। तरला से वह गिड़गिड़ा कर कहने लगी—"दीदी, तुम यह क्या कर रही हो? मैं परदे की ओट से नाड़ी न दिखाऊँगी।"

तरला हँस कर बोली—"क्यों, परदे की ओट से क्या शर्म मालूम होगी? अच्छा तो सामने खड़ी हो जाना।"

"यह बात अच्छी न होगी"।

तरला भौंह सिकोड़ कर बोली—"वे तो बड़े भैया की बात का कुछ ख़याल न कर के सब तरह अपनी ही ज़िद पर डटे रहे, यह तो शायद तेरी समझ में अच्छी बात है, पर, हम सब यदि उनसे थोड़ी सी कुछ हँसी करें तो तुझे अच्छी न लगेगी"।

"तुम सब जो चाहो करो किन्तु मुझे इस बखेड़े में मत डालो। वे तो पहले ही से मुझ पर रुष्ट हैं, इस बार से और भी नाराज़ हो जावेंगे [illegible] व्यवहार से उनको कष्ट पहुँचाना मेरे लिए उचित नहीं।"

तरला कुछ सोच कर बोली— [illegible] [illegible]

[illegible]

(३)

तीसरे पहर पाँच बजे सुशीलकुमार की [illegible] उनकी ससुराल के दरवाज़े पर आ लगी। सुशील के बैठक में पहुँचते ही योगेन्द्र बाबू के छोटे [illegible] नरेन्द्र बाबू ने .ज़ोर से कहा—"अरे बुद्धू, [illegible] आकर कहदे कि डाक्टर साहब आ गये"।

सुशील समझ गये कि सवेरे वाली घ[illegible] बदला शुरू हो गया। थोड़ा बहुत हँसी[illegible] उन्हें अवश्य ही करना होगा, क्योंकि रि[illegible] ऐसा है। इतने ही में भीतर से अमला [illegible] बोली—"डाक्टर साहब भीतर चलिए"। सु[illegible] हँस कर बोले—"चलो"। पर, भीतर जा[illegible] सुशील को मालूम हो गया कि मामला टेढ़ा [illegible] सदा की भाँति उनकी सलहजों में से [illegible] उनका स्वागत करने के लिए नहीं आई। [illegible] और नौकरानी भी उन्हें देखते ही वे जान[illegible] की सी हो कर एक ओर खड़ी हो गईं।

एक कमरे के बीचों-बीच हरे रङ्ग का एक [illegible] पड़ा हुआ था। परदे के पास एक कुर्सी रक्खी [illegible] अमला के कहने पर सुशील उसी पर बैठ [illegible] अमला बोली—"दीदी, डाक्टर साहब आये हैं। [illegible] अपना हाथ निकाल दो।"

तुरन्त ही चूड़ी कङ्कन और छल्ले पहने हुए [illegible] [illegible] कलाई परदे के भीतर से बाहर [illegible] पड़ी। सुशील तो पहले ही से [illegible] रहे थे। [illegible] को देख कर वे मारे क्रोध और [illegible] [illegible] से पन गये। कमरे के चारों [illegible] धीमी हँसी की आवाज़ आने लगी। [illegible] [illegible] [illegible] हाथ में लिये हुए [illegible] [illegible]

सुशील का चेहरा [illegible] [illegible]

के लिए जो नाटक रचा गया था सरला ही उसकी प्रधान अभिनेत्री थी।

फिर रुपयों को बजाती हुई अमला बोली—"डाकृर साहब, क्या सोच रहे हैं? नब्ज़ देखिए।"

सुशील ने अपनी सामयिक उत्तेजना को रोक कर मन ही मन निश्चय कर लिया कि दूसरे समय इस अपमान का बदला अच्छी तरह लिया जायगा। पर इस समय तो वे डाकृर बन कर आये हैं। डाकृर ही की तरह उन्हें आचरण करना उचित है। वे तो आप ही कह चुके हैं कि मैं एक डाकृर की हैसियत से आऊँगा, न कि रिश्तेदार की तरह। अब यदि उनके साथ कोई वैसा ही व्यवहार करे तो वे कैसे उसका प्रतिवाद कर सकते हैं? अन्त में वे मन नाड़ी देख कर सुशील चलने के लिए उठ खड़े हुए। इस पर अमला कहने लगी—"अभी जाइए मत, एक बार दीदी के हृदय की भी परीक्षा करनी होगी।"

इस दशा में, अर्थात् बिना रोगी के बाहर निकले, कैसे उसकी हृदय-परीक्षा हो सकती है? यह बात सुशील की समझ में अब तक न आई। वे विरक्त हो कर अमला की ओर देखने लगे।

अमला बोली—"दीदी, तुम खड़ी हो जाओ। डाकृर साहब तुम्हारी हृदय परीक्षा करेंगे।" फिर बड़ी फुर्ती से सुशील की तरफ़ देख कर—"आप इस सूराख़ से अपने 'स्टेथस्कोप' को भीतर कर दें"—यह कह कर उसने परदे का छेद सुशील के सामने कर दिया।

बाहर फिर भी धीमी हँसी की आवाज़ चारों तरफ़ गूँज गई। सुशील का चेहरा जलते हुए अङ्गार की भाँति लाल हो गया। पर वे बेचारे सब तरह से लाचार थे। हृदय-परीक्षा का खेल ख़तम होने पर—"यह लीजिए डाकृर साहब अपनी फ़ीस"—कह कर अमला ने चार रुपये सुशील के हाथ पर रख दिये।

सुशील रुपयों को जेब में रख कर धड़ाम बाहर चले गये। बदला लेने के लिए उनका चित्त व्याकुल हो उठा। मन में उन्होंने निश्चय कर लिया कि ऐसा बदला लूँ कि सरला को जीवन-पर्यन्त अनुताप करना पड़े। इतना दम्भ, इतना अहङ्कार!

सुशील गाड़ी पर चढ़ने को थे ही कि अमला ने आ कर उन्हें रोक लिया। इतने पर भी अमला के हाथ से उन्हें छुट्टी न मिली। फिर उसने एक ज़हरीला तीर छोड़ा—"वाह डाकृर साहब, आप तो फ़ीस लेकर चलते बने। पर, व्यवस्था-पत्र लिखा ही नहीं।"

सुशील ने लौट कर एक व्यवस्था-पत्र लिख दिया। इस तरह डाकृर के सब कर्त्तव्यों का पालन उन्होंने अच्छी तरह कर दिया।

सुशील फिर से जाने ही को थे कि अमला बोली—"रोगी को आप ने कैसा पाया?"

"आश्चर्यमय"

"यह कौन सा रोग है?"

"अस्वाभाविक"

सुशील के चले जाने पर तरला बोली—"उस समय तो मेरी हँसी रोके न रुकती थी।"

सरला कहने लगी—"पर, मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा था।"

(४)

सन्ध्या-समय खिली हुई चाँदनी में छत पर बैठी हुई तरला वायु सेवन कर रही थी। इतने ही में सरला आ कर रोनी आवाज़ से उससे कहने लगी—"देखो दीदी, कैसा अनर्थ हो गया। तुम ने तो हँसी समझी थी"।

"क्यों, कहती क्यों नहीं, क्या बात है?"

"यह लो, यह पत्र आया है। पढ़ देखो।"

यह कह कर सरला एक पत्र तरला के सामने फेंक कर चली गई। तरला ने कमरे में आकर दीपक के उजियाले में उसे पढ़ा। सुशील ने निम्न लिखित पत्र सरला को लिखा था—

"सरला,

कुछ दिनों से तुम्हारे कठिन हृदय का परिचय मुझे मिल रहा है। किन्तु उसने इतना दिख गया है,

यह मुझे पहले न मालूम था। आज अपने पित्रालय वालों से मिल कर तुमने मुझे अत्यन्त अपमानित किया है। जो हो, तुम अब मुझे मुँह दिखलाना नहीं चाहती तो मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन तुम्हारा मुँह न देखूँगा। मेरे और तुम्हारे बीच पति-पत्नी का जो सम्बन्ध था वह अब टूट गया। अब तुम सब तरह से स्वाधीन हो। जो तुम्हारे मन में आवे, करो। तुम यह तो अच्छी तरह से जानती हो कि मेरे कहने और करने में कुछ भी अन्तर नहीं होता। इस समय तुम से नाता तोड़ कर मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यवान् समझता हूँ। इति"।

पत्र पढ़ कर तरला कुछ चिन्तामग्न हो गई। उसे ख़बर ही न थी कि इस तुच्छ बात पर सुशील इतने क्रुद्ध हो जाँयगे। इस घटना के कारण यदि सुशील और सरला में सब दिन के लिए वैमनस्य हो जाय तो इसके लिए तरला ही पूर्णरूप से अपराधिनी है। सरला तो पहले ही इस भावी विपद की आशङ्का कर रही थी। वह तरला को इस बात की चेतावनी भी दे चुकी थी।

इतने ही में सरला के आजाने पर तरला बोली—"डाकृर साहब तो बड़े बिगड़े हैं। वे इस तरह ख़फ़ा हो जायँगे, यह जानती तो ऐसा खेल न खेलती"।

सरला की आँखें भर आईं। बड़े ही करुण-स्वर में वह कहने लगी—"दीदी, अब क्या किया जाय"?

तरला उसे ढाढ़स दे कर बोली—"तू इतना घबराती क्यों है? जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि परदे की आड़ में मैं थी, तब तुझ पर उनका कोप न रहेगा। इसके लिए तो मुझे ही डाकृर साहब को मनाना पड़ेगा। किसी तरह वे एक बार फिर यहाँ आजायँ तो मैं सब बात बनादूँ।"

"तुम बड़े भैया से कहो, मुझे अभी वहाँ भिजवा दें।"

"पगली कहीं की। इस से तो वे और भी बिगड़ेंगे।"

दोनों बहनों में ये बातें हो ही ... योगेन्द्र बाबू वहाँ आ गये। वे कहने लगे—"तुम ... ने मिल कर बेचारे सुशील को आज पागल ... दिया। वह जो व्यवस्था-पत्र लिख गया है, बाहर बैठ... की मेज़ पर पड़ा था। सन्ध्या को सरला का हा... जानने के लिए हरेन्द्र बाबू आये तो उन्होंने व्यवस्था-... पत्र पढ़ कर कहा—"सरला की इस तुच्छ ... बीमारी पर सुशील बहुत घबरा गये हैं। इ... घबराहट में वे ऐसा व्यवस्था-पत्र लिख गये हैं ... उसमें लिखी हुई दो दवायें ऐसी हैं कि जिन... आपस में मिलने पर ज़हर बन जाता है। हरेन्द्र बा... को भीतर का हाल तो कुछ मालूम ही न था। ... कह रहे थे कि इसी लिए डाकृर लोग अपने ... में डाकृरी नहीं करते"।

तरला बोली—"व्यवस्था पत्र हम सब के ... एक खिलवाड़ था। नहीं तो आज बड़ी भारी ...टना हो गई होती।"

"हरेन्द्र बाबू कहते थे कि यह व्यवस्था-पत्र ... पास भेज दो। वे पढ़ कर इसे सुधार देंगे।" ... कह कर जोगेन्द्र बाबू ज़ोर से हँसने लगे।

"वह व्यवस्था-पत्र है कहाँ?"

"मेरे पास है"।

"उसे मुझे दे दीजिए"।

"क्यों, उस पर फिर नमक-मिर्च लगाओगी..."

"नहीं, नमक-मिर्च न लगाऊँगी। अब तक ... जाल में फँसे ही भर हैं। अब उन्हें यहाँ बाँध लाऊँगी।"

योगेन्द्र बाबू के चले जाने पर सरला से त... बोली—"सरला, डाकृर साहब की ख़ातिर ... का सब सामान ठीक कर रक्खो। वे अभी ... वाले हैं।"

"न जाने, फिर तुम कौन सा जाल रचोगी..."

स्नेहमयी चितवन से छोटी बहन की ओर ... कर तरला बोली—"नहीं, नया जाल न रचूँ... जो जाल रच चुकी हूँ उसी का फ़ैसला करूँगी..."

महात्मा गोखले की हस्त-लिपि ।

"श्री मेरमल-शारदा-सदन" बीकानेर

[illegible]

गोपाल कृष्ण गोखले.

[illegible] आक्टोबर १९०८

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

आग्रह-पूर्वक सरला पूछने लगी—"क्या करेगी, रा सुनूँ तो सही।"

"जा यहाँ से, अभी न बताऊँगी।"

रात के दस बज चुके हैं। डाक्टर सुशीलकुमार पने कमरे में आराम-कुरसी पर लेटे हैं। उनका मन न्ता-मग्न है। सरला के दुर्व्यवहार पर क्रोध साथ उन्हें विस्मय भी उत्पन्न हो रहा है। वह नेहमयी लज्जाशीला सरला आज कैसे उनको इस ांति अपमानित कर सकी? काय, वचन, मन से ति-अनुरागिणी सरला दस पन्द्रह दिन के भीतर ी ऐसी पिशाचिनी बन गई! यह सोच कर सुशील ा हृदय व्यथित हो उठा। क्या अभिमान के वशी त होकर सरला ने ऐसा आचरण किया? स्त्री ा ऐसा दुरभिमान कदापि क्षमा के योग्य नहीं। म्भव है, सरला अपनी इच्छा के विरुद्ध वैसा ाचरण करने के लिए विवश की गई हो? सरला सी सङ्कोचशीला नम्र-हृदया के लिए जैसे यह ाचरण असम्भव है वैसे ही बड़े भाई और बहनों ी बात टालना भी बड़ा कठिन है।

खुली हुई खिड़की की राह से जो तीन चीज़ें—र्थात् ठण्डी हवा, चन्द्रमा की उजियाली, खिले हुए फूलों की मधुर महक आ रही है वे सब मस्तिष्क ो शीतल करने में समर्थ हैं। इन तीनों की ंयुक्त क्रिया से सुशील का उष्ण मस्तिष्क कुछ ठण्डा ा रहा है। अब उनके मन में कुछ कुछ अनुताप भी ाने लगा है। इतने ही में कमरे का दरवाज़ा खोल र एक सचेतन पदार्थ उसके भीतर घुस आया। से देख कर सुशील चौंक पड़े। यह सचेतन दार्थ उनके ससुराल का नौकर माधो है। उसके ाथ सुशील के नाम लिखी हुई तरला की एक खुली चिट्ठी है—

"सुशील बाबू,—

तुम सरला के लिए जो दवा लिख गये हो उसकी एक खूराक पिलाते ही सरला की तबीयत बहुत ख़राब हो गई है। उसकी यह हालत देख कर हम सब बहुत ही घबरा रही हैं। तुम जो व्यवस्था-पत्र लिख गये हो उसे माधो के हाथ भेजती हूँ। पढ़ कर देखना कोई तेज़ दवा के कारण तो ऐसा नहीं हुआ। चिट्ठी पढ़ते ही तुम चले आओ और जो तुमसे करते बने करो। देर होने से बड़ी विपद् की सम्भावना है"।

व्यवस्था-पत्र पढ़ते ही सुशील कुरसी से कूद पड़े। अरे, सत्यानाश हो गया। हाय प्यारी सरला! अब कैसे तुझे बचाऊँ? अरे, कौन है दरवाज़े पर? जल्दी गाड़ी लाओ"।

माधो ने कहा—"बाबूजी, हम तो गाड़ी लेई के आया है। आप हाली चल"।

सुशील बड़ी व्यग्रता से आलमारी खोल कर पम्प और कई तरह की दवाओं की शीशियाँ लेकर दौड़ते हुए गाड़ी पर जा बैठे और कोचमैन से कहने लगे—"जल्दी चलो, तुम्हें इनाम मिलेगा"।

बड़े ज़ोर से आवाज़ करती हुई गाड़ी योगेन्द्र बाबू के दरवाज़े पर आ लगी। तरला सरला से बोली—"चुप चाप लेटी रह, ख़बरदार जो हँसी"।

"दीदी"—

"चुप। अरे, जान जायँगे तो भण्डा फूट जायगा।"

"देख फिर कहीं वैसा न"—

"पागल। कहती तो हूँ कि तू बेफ़िक्र लेटी रह।"

तरला सरला के कमरे के दरवाज़े पर खड़ी हो गई। सुशील को लेकर माधो वहाँ हाज़िर हो गया। साँस रोक कर सुशील पूछने लगे—"क्या हाल है?"

तरला अत्यन्त दुःखित भाव से बोली—"हाल तो ख़राब है। चलो, भीतर चल कर देखो।"

लड़खड़ाते हुए पैर से सुशील ने कमरे के अन्दर आकर देखा, सरला लेटी है। धीरे से बिछौने पर बैठ कर वे नाड़ी देखने लगे।

"नाड़ी की चाल तो ठीक है"।

तरला भौंह सिकोड़ कर बोली—"नाड़ी देखने से तुम्हें कुछ न मालूम होगा। तुम्हें तो नाड़ी पकड़ना आता ही नहीं"।

विस्मय के साथ सुशील बोले "यह आपने कैसे जाना"।

"यह बात तुम रोगी से पूछ देखो। मैं जाती हूँ"। यह कह कर तरला चली गई। बाहर से उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

सुशील सोचने लगे—ठीक है, नाड़ी से तो कुछ पता नहीं चलता। एक बार हार्ट (हृदयन्त्र) की परीक्षा करूँ। सुशील ज्यों ही स्वर की नली कान में लगा कर हृदयन्त्र की परीक्षा करने चले त्यों ही सरला ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिये। वह कहने लगी—"मुझे क्षमा करो, तुम्हारी दवा नहीं पिलाई गई"। उस समय सरला के नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी।

चकित-चित्त सुशील विह्वल हो गये। वे अधीरता से पूछने लगे—"सच कहती हो"?

सरला ने संक्षेप में सारी राम-कहानी कह सुनाई। वह अभिमान-पूर्ण स्वर से बोली—"यदि मुझ पर तुम्हारी सच्ची प्रीति होती तो तुम तुरन्त लख जाते कि यह कलाई मेरी न थी। मैं तो तुम्हारे नखों तक को पहचानती हूँ।"

इस समय भी बाहर चारों ओर से खिलखिलाने की आवाज़ आ रही थी। प्रगल्भा अमला बाहर से पुकारती थी—"डाक्टर साहब, बाहर निकलिए। क्या रात भर हृदय की परीक्षा होगी"* ?

बङ्गमहिला।

भारतवर्ष की सङ्गीत-विद्या।



रत ने सङ्गीत-विद्या में बड़ी उन्नति की है। नाद और ब्रह्म का ज्ञान जितना भारत ने प्राप्त किया है उतना और किसी देश ने नहीं। सङ्गीत है भी ऐसा ही। वह ... का भाण्डार खोलने की कुञ्जी है।

सङ्गीत की उत्पत्ति सात स्वरों से हुई है। स्वर अपने आद्यक्षर के अनुसार स० रि० ग० म० प० ध० नि० कहाते हैं।

सङ्गीत-रूपी सुन्दर पट्ट-वस्त्र में ये सातों ... ताने-बाने के सदृश हैं। ये स्वर आपस में अ... प्रकार से मिलते हैं। इस मेल से अनेक प्रकार मनोरञ्जक रागिनियाँ, जो अपने अपने रूप में पृ... पृथक् हैं, उत्पन्न होती हैं। सातों स्वरों के वि... रीति से मिलने पर छः राग उत्पन्न होते हैं। प्र... राग की पाँच पाँच रागिनियाँ हैं। उनमें अपने अ... राग के स्वर प्रधान हैं। इस प्रकार रागों ... रागिनियों की संख्या ३६ है। यही मुख्य राग ... रागिनियाँ समझी जाती हैं। इनके स्वर आपस ... मिलने से अनेक छोटी छोटी रागिनियाँ बनती हैं। इस अभिप्राय से कि प्रत्येक राग-रागिनी का ... तरह ज्ञान हो सके, उनके अलग अलग नाम ... गये हैं।

राग-रागिनियों में यह विलक्षणता है ... अपनी अपनी ऋतु और अपने अपने काल में ... जाती हैं। प्रत्येक राग-रागिनी गाने का समय ... ऋतु अलग अलग हैं। यह नियम मनःकल्पित ... किन्तु शब्द-शास्त्र के गूढ़ आशयों के आधार ... इसका निश्चय हुआ है। शब्द-शास्त्र के वेत्ता ... सकते हैं कि शब्द-मण्डल में जो अनेक लहरें ... होती हैं उनके प्रवाह का रूप पृथक् पृथक् ऋ... और समयों में कैसा होता है। पदार्थ-वि... बताती है कि प्रकाश और अन्धकार का प्र... शब्दों की लहरों पर पृथक् पृथक प्रकार का ... है। कुछ शब्द-तरङ्गें ऐसी होती हैं जिनकी सह... भूति प्राकृतिक पदार्थों के साथ होती है। ... कारण वे सुगमता से सुनाई देती हैं। कुछ ... होती हैं जो सहानुभूति के अभाव से कठिन... सुनाई देती हैं। गाने में ऋतु और समय का वि... इन्हीं सूक्ष्म कारणों के लिहाज़ से रक्खा गया है। ... विषय पदार्थ-विद्या द्वारा निरूपण करने ...

न सम्बन्ध में यह भी स्मरण रहे कि एक एक ऋतु दो महीने की होती है—

र्थात्	वसन्त	चैत—वैशाख
	ग्रीष्म	जेठ—असाढ़
	वर्षा	सावन—भादों
	शरद	क्वार—कातिक
	हेमन्त	अगहन—पौष
	शिशिर	माह—फागुन

मुख्य मुख्य रागों और रागिनियों के नाम और के गाये जाने की ऋतु तथा समय इस कार हैं—

राग	रागिनी	ऋतु	समय
—भैरव		शरद	प्रातः काल
	१—भैरवी	,,	,,
	२—बैराड़ी	,,	दिन का अन्तिम भाग
	३—मधुमाधवी	,,	दिन का चौथा भाग
	४—सैन्धवी	,,	,,
	५—बङ्गाली	,,	,,
—मालकोश		शिशिर	रात का चौथा भाग
	१—टोड़ी	,,	मध्याह्न-काल
	२—गौरी	,,	दिन का चौथा भाग
	३—गुणकली	,,	दिन का प्रथम भाग
	४—खम्भाती	,,	रात का तीसरा भाग
	५—कुकुभा	,,	रात का चौथा भाग
—हिण्डोल		वसन्त	दिन का पहला भाग
	१—रामकली	,,	रात का चौथा भाग
	२—देसाखी	,,	दिन का पहला भाग
	३—ललिता	,,	,,
	४—बिलावल	,,	,,
	५—पटमञ्जरी	,,	दिन का दूसरा भाग
—दीपक		ग्रीष्म	मध्याह्न-काल
	१—देशी	,,	,,
	२—कामोदिनी	,,	,,
	३—नट	,,	दिन का चौथा भाग
	४—केदारा	,,	मध्याह्न-काल
	५—कान्हरा	,,	रात का पहला भाग
५—श्रीराग		हेमन्त	दिन का चौथा भाग
	१—मालश्री	शरद	मध्याह्न-काल
	२—मारू	हेमन्त	दिन का चौथा भाग
	३—धनाश्री	,,	मध्याह्न-काल
	४—वसन्त	वसन्त	दिन का दूसरा भाग
	५—आसावरी	हेमन्त	मध्याह्न काल
६—मेघमल्लार		वर्षा	रात का चौथा भाग
	१—टंक	,,	रात ,,
	२—मल्लार	,,	रात का पहला-तीसरा भाग
	३—गुर्जरी	,,	प्रातःकाल
	४—भूपाली	,,	रात
	५—विभास	,,	रात का चौथा भाग

इनमें से प्रत्येक राग-रागिनी अपने अपने रूप में अति सुन्दर, मनोहर और मधुर है। सुनने वाले के चित्त को यह बड़ी विलक्षणता से आकर्षित करती है। यह आत्मा के गुप्त और सुप्त भावों को जागृत कर देती है, परमानन्द के समुद्र की लहरों से चित्त को आप्लावित कर देती है और इन्द्रियों के सुख से परे आत्मानन्द का भी चमत्कार दिखाती है। उस समय ऐसा ज्ञान होने लगता है मानो स्थूल शरीर के बन्धन, जो आत्मा को जकड़े हुए हैं, धीरे धीरे विलय को प्राप्त होते जाते हैं। यहाँ तक कि सच्चिदानन्द का अनुभव होने लगता है।

इन रागों और रागिनियों में एक और भी विलक्षणता है। वह यह कि प्रत्येक का मानुषी स्वरूप वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए भैरव राग की भैरवी रागिनी का रूप सुनिए—

भैरवी गिरि-वासिनी, विशाल नेत्र वाली, एक तरुण स्त्री है। यह सफ़ेद साड़ी और प्रातः ऋतु की वस्तुएँ पहने हुए है। कमल के फूलों की माला इसके गले में है। स्फटिक शिला के आसन पर बैठी हुई यह महादेवजी के मन्दिर की पूजा कर रही है और ताल दे देकर गाने में लगी है।

है। इस कारण सङ्गीत की मनोहरता और
में बड़ी न्यूनता आ गई है। देश-हितैषियों को
है कि इस विषय में वे विशेष विचार करें।
क कि रस और भाव आदि की अनुकूलता का
न होगा तब तक सङ्गीत-विद्या का सुधार नहीं
कता। किसको ज्ञात नहीं कि भैरवी रागिनी में
कल प्रायः शृङ्गार रस की चीज़ें गाई जाती हैं।
दशा दूसरी रागरागिनियों की है।
यह भी स्मरण रहे कि जो चीज़ें आज कल गाई
हैं वे प्रायः भाषा और व्याकरण के विचार से
तिरस्कार करने योग्य होती हैं। कारण यह
थे गवैयों ने मनमानी चीज़ें गढ़ कर गाना
भ कर दिया है। इससे प्राचीन पवित्र हिन्दू-
त को बड़ा धक्का पहुँचा है। यह दुःख की बात
सका उपाय होना चाहिए।
आरांश यह कि पहले रागों और रागिनियों के
रस के अनुकूल गाने की चीज़ें होनी
ए। दूसरे यह कि वे चीज़ें शुद्ध और साल-
हिन्दी में हों, जिसमें केवल कानों ही को
द न हो, किन्तु अर्थ-विचार से मन और
को भी सुख की प्राप्ति हो। सूरदासजी के
ऐसी भाषा के आदर्श हैं। इसी प्रकार
पत्रिका में तुलसीदासजी के पद हैं।
के उत्साही जनों को उचित है कि इन दो
में से राग-रागिनियों के रसानुकूल भजनों
दों को प्रचार में लावें। सङ्गीत के सुधार
ह बहुत सुगम उपाय है।

कन्नोमल, एम० ए०।

विविध विषय।

—हिन्दी-भाषा और मराठी "मनोरञ्जन"।

बम्बई से मनोरञ्जन नाम का एक मासिक पत्र मराठी में निकलता है। उसके रूप, रङ्ग और लेख आदि पर हिन्दी के कुछ हितैषी जी-जान से फ़िदा हैं। दो एक सामयिक पत्र चित्रों की बदौलत कभी कभी अपनी सचित्रता स्थिर रखते हैं। हिन्दी के हित-चिन्तकों की इस उदारता से लाभ उठाने वाले मनोरञ्जन ने अपनी जून १९१५ की संख्या में हिन्दी पर कुछ कृपा की है। पाठकों को विदित ही है कि गत महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन में, बहुत विफलता होने पर भी, हिन्दी प्रचार के अनुकूल प्रस्ताव "पास" हो गया। सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि हिन्दी ही राष्ट्र भाषा होने योग्य है। अतएव इसे भी पढ़ाने का प्रबन्ध स्कूलों में होना चाहिए। यह बात मनोरञ्जन को पसन्द नहीं। वह कहता है कि सम्मेलन महाराष्ट्र-भाषा-विषयक था, हिन्दी की चर्चा उस में हुई ही क्यों? इस पर प्रार्थना है कि महाराष्ट्र-साहित्य की उन्नति से वह महाराष्ट्र-देश का भी कुछ सम्बन्ध समझता है या नहीं? साहित्य की उन्नति से भी देश की उन्नति हो सकती है या नहीं? यदि नहीं, तो यह सम्मेलन है किस मर्ज़ की दवा? शिक्षा-प्रचार, ज्ञान-वृद्धि और साहित्योन्नति से यदि देश की उन्नति हो सकती है और यदि परोक्ष रीति से इसी उन्नति के लिए यह सम्मेलन होता है तो हिन्दी की चर्चा करना उसकी सीमा के बाहर की बात नहीं। इस तरह की बातों पर यदि सम्मेलन में विचार न होता तो होता कहाँ? मनोरञ्जन ने इस काम के लिए कोई और सभा, संस्था या सोसायटी बना रक्खी है? बना रक्खी हो तो उसी में वह हिन्दी-प्रचार अथवा बहिष्कार की चर्चा करावे। राष्ट्रीय भाव की उत्पत्ति, रक्षा और वृद्धि के लिए यदि किसी एक भाषा के प्रचार की आवश्यकता समझी जाय तो भाषा और साहित्य-सम्बन्धी सम्मेलन को छोड़ कर उसका विचार और होगा कहाँ? राष्ट्र-भाषा के सङ्गठन और उत्कर्ष-साधन से देश को लाभ पहुँच सकता है या नहीं?

हिन्दी के सम्बन्ध में मनोरञ्जन के विचार सुनने लायक़ हैं:—

(१) तामील, तेलगु, मलयाली और कानड़ी भाषा जहाँ बोली जाती है वहाँ "सुलभरीत्या" हिन्दी न समझी जायगी।

(२) सिन्ध और पञ्जाब के मुसल्मानों के लिए हिन्दी "दुर्बोध" है।

(३) साधारणतः मुसल्मान और पारसी आदि के लिए हिन्दी "चांगल्या रीति ने" समझी जाने योग्य नहीं।

(४) हिन्दी में "उच्च भावुकता" नहीं।

मनोरञ्जन के दिये हुए मिसालों पर तो ध्यान दीजिए। "कहाँ बड़ा बड़न के ही काहें"। भारतीय आर्य भाषायें जहाँ बोली जाती हैं वहाँ क्या हिन्दी सुबोध कैसे हो सकती है? क्या वहां हिन्दी समझ जाती है? सुगमता-पूर्वक न सही, दुर्बोधता-पूर्वक तो समझी जाती है या नहीं? मद्रासी यात्री जब काशी, प्रयाग, हरद्वार और बदरीनाथ की यात्रा करने आते हैं तब किस भाषा की कृपा से उनका काम चलता है? और, उत्तरी भारत के निवासी जब कांची, मदुरा और रामेश्वर जाते हैं तब भी उन से बात चीत करने में मद्रासियों को किस भाषा की शरण लेनी पड़ती है? सुगमता का तो यहां सवाल ही नहीं। हिन्दी की कृपा से यदि भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग अपने विचार किसी तरह एक दूसरे पर प्रकट कर सकें तो इतना ही बहुत है। हिन्दी की उपयोगिता के लिहाज़ से यदि उसकी शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान जायगा तो कुछ समय बाद उसमें परस्पर पत्र-व्यवहार भी होने लगेगा। और, पत्र-व्यवहार तो अब भी होता है। कितने ही गुजराती, महाराष्ट्र और मद्रासी सरस्वती के सम्बन्ध में अब भी हिन्दी ही में हम से पत्र-व्यवहार करते हैं। जो लोग इस देश से फ्रांस, जर्मनी और जापान जाते हैं वे क्या वहां की भाषा सुगमता-पूर्वक बोल और समझ सकते हैं? वहां की भाषाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान सम्पादन करके वे अपना काम किसी तरह चला लेते हैं। यही हिन्दी के लिए भी होना चाहिए।

सिन्ध और पञ्जाब के मुसल्मानों के लिए हिन्दी को "दुर्बोध" बताना अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। मनोरञ्जन यदि कभी सिन्ध और पञ्जाब की यात्रा करेगा तो उसे मालूम हो जायगा कि वहां के मुसल्मानों के लिए हिन्दी दुर्बोध है या सुबोध।

साधारणतः पारसी और अन्य प्रान्तों के मुसल्मान यदि हिन्दी "अच्छी तरह" नहीं समझ सकते तो न सही, समझ तो सकते हैं। मनोरञ्जन के सञ्चालक स्वयं ही क्या हिन्दी—"बांगल्या रीती ने समझतात"? फिर और लोग अच्छी तरह न समझें तो क्या आश्चर्य? थोड़ी बहुत हिन्दी समझ लेना ही इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता रखती है।

"उच्च भावुकता" न होने से उसका [illegible] नहीं सूचित होता। साहित्य उन्नत न होने से हिन्दी [illegible] राष्ट्रभाषा के पद को क्या कुछ कम योग्य नहीं? [illegible] और "अच्छूत" कहाने वाला साहित्य का [illegible] अपने देश की किस भाषा में? [illegible] अनुकूलता के ख़याल से लिए [illegible] ही कहाँ? [illegible] उत्तम को हिन्दी का दुलारा [illegible] तक उसमें उच्चता का भाव कहाँ होगा।

सच है किसी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनने [illegible] ऐसी भाषा एक मात्र हिन्दी है। राष्ट्रीय भाव [illegible] की सर्वोपरि योग्यता राष्ट्रीय भाषा ही है। उसकी चर्चा [illegible] भिन्न प्रान्तों के साहित्य-सम्मेलनों ही में नहीं, किन्तु रेलों, हाट-बाज़ार और घर घर में होनी चाहिए।

२—महात्मा गोखले की हस्त-लिपि।

बम्बई से शालापत्रक नाम का एक मासिक पत्र [illegible] मराठी भाषा में निकलता है। उसके एप्रिल १९१९ के [illegible] में महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले, सी० आई० ई० की [illegible] लिपि का नमूना प्रकाशित हुआ है। पाठक इस नमूने का फ़ोटो सरस्वती में अन्यत्र देखेंगे। इससे उन्हें गोखले की देवनागरी लिपि के भी दर्शन हो जायँगे और यह भी मालूम हो जायगा कि गोखले अपनी मातृ-भाषा, मराठी, में अपने विचार व्यक्त करते थे। उनकी लिपि के नमूने की मराठी बहुत ही सीधी सादी, पर देश-भक्ति के गाढ़े रंग में सनी हुई, है। उसका भावार्थ नीचे दिया जाता है:—

> इस समय हम लोगों को अपने देश के लिए अनेक प्रकार के [illegible] करना चाहिए। उज्ज्वल देश-भक्ति से प्रेरित होकर यदि हम [illegible] को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने के लिए यत्न करें तो वर्तमान [illegible] की जनक स्थिति बहुत दिन तक न ठहर सकेगी। इसमें सन्देह [illegible] इस समय जिधर दृष्टि डालिए उधर ही काम का पर्वतमाला [illegible] हुआ दिखाई देता है। उसका भार उठाने के लिए हमारे [illegible] को अपना शरीर अर्पण कर देना चाहिए। यह समय हम [illegible] लोगों पर बहुत बड़ा उत्तर-दायित्व है। हमारे हृदयों में स्फूर्ति होनी चाहिए। हमारे मन में यह भाव जागृत होना चाहिए [illegible] सेवा के सिवा और किसी उद्योग में हमारा जी लग गया यह [illegible] जिसका चित्त देशमय हो जाता है उसे ईश्वर मातृ-भूमि का [illegible] बनाये बिना नहीं रहता।

कहिए, हमारा निवेदन सच है न? कैसे हृदय-उद्गार हैं। देश-भक्ति का कैसा अच्छा निदर्शन है।

३—देहली के क़िले की इमारतों का ख़र्च।

भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी सर जान ल हैं। आप डाइरेक्टर जनरल आफ़ आरकियोलाजी पदवी से अलङ्कृत हैं। आपकी कृपा से आपकी बहु-मूल्य क रिपोर्टें पढ़ने का सौभाग्य सरस्वती को भी प्राप्त होता आपकी १९११–१२ की वार्षिक रिपोर्ट में गार्डन सैन्डर-साहब का लिखा हुआ एक लेख छपा है। वह फ़ारसी प्राचीन इतिहासों के आधार पर लिखा गया है। उसमें जहाँ के देहली वाले क़िले से सम्बन्ध रखने वाली अनेक व-पूर्ण बातें हैं। कितने ही चित्र भी उसमें हैं। १८८३ १९११ तक इस क़िले की इमारतों की मरम्मत आदि में मेंट ने कोई तीन लाख रुपया ख़र्च किया है। अभी भी बहुत रुपया वह ख़र्च करने वाली है। कुछ समय से इमारतों की विशेष रक्षा होती है। एक लेख में इस विषय उल्लेख सरस्वती में हो भी चुका है। आज, इस नोट में यह बताना है कि इस क़िले की इमारतें तैयार कराने शाहेजहाँ ने कितना रुपया ख़र्च किया था।

१०४९ हिजरी (१६३९ ईसवी) में देहली के क़िले शाही महलों की नींव डाली गई। उस समय ग़ैरतख़ाँ ली का गवर्नर था। दूर दूर से कारीगर बुलाये गये। १८ हिजरी, अर्थात् ९ वर्ष, में इमारतें बन कर तैयार हुईं। साल, २४ रबी-उल-अव्वल को, शाहेजहाँ ने अपनी इस राजधानी में प्रवेश किया। शाहज़ादा दाराशिकोह, सोना चाँदी लुटाता हुआ, पिता को क़िले के फाटक तक ले गया। बड़ा भारी दरबार हुआ। बहुत कुछ दान-पुण्य किया। बादशाह ने अपने बेटों, पोतों और बड़े बड़े कर्म्मचारियों को ख़िलतें दीं। उनकी तनख़्वाहें बढ़ाईं और वृद्धि भी करदी।

औरङ्गज़ेब के शासन-समय में बख़्तावर ख़ाँ नाम के एक क ने इस नये क़िले की इमारतों के ख़र्च का हिसाब खा था। वह हिसाब इस प्रकार है—

	लाख रुपया
(१) शाही महल	२८
(२) दीवाने ख़ास	१४
(३) इम्तियाज़ महल (रङ्ग-महल)	५ ½
(४) दीवाने आम	२
(५) हयातबख़्श बाग़	६
(६) बेगमों के महल	७
(७) बाज़ार इत्यादि	४
(८) क़िले के भीतर की अन्य इमारतें	६०
(९) क़िला और ख़न्दक़	२१

कारीगरों और मज़दूरों की मज़दूरी में एक करोड़ रुपया ख़र्च हुआ था।

इस क़िले की अपार सम्पत्ति और बहुमूल्य वस्तुयें कई दफ़े लूटी गईं। नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली और मरहटों ही ने नहीं, १८५७ के विद्रोह के समय विद्रोहियों ने भी उन पर हाथ मारा। स्वयं इमारतों पर भी अब तक अनेक अत्याचार हुए हैं। अब जो बच रही हैं उनको बनी रखने का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर गवर्नमेंट ने बड़ा अच्छा काम किया है।

४—दिल्ली का तख़्ते-ताऊस।

इसके पहले नोट में उल्लिखित १९११-१२ की आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में देहली के तख़्ते-ताऊस का भी अच्छा वर्णन है। यह वर्णन बादशाह-नामे के आधार पर लिखा गया है। उसका मतलब नीचे दिया जाता है—

बादशाह शाहेजहाँ ने कहा, मेरे ख़ज़ाने में अनन्त रत्न हैं। हर साल जो नये नये रत्न आते हैं वे भी वहीं रख दिये जाते हैं। वहां वे बेकार पड़े रहते हैं; किसी को देखने को भी नहीं मिलते। यह सारी रत्न-राशि राज्य की शोभा-वृद्धि के लिए है। अतएव उसे इस तरह और ऐसी जगह रखना चाहिए जहां सब लोग उसे देख सकें। यह सोच कर उसने सब रत्न ख़ज़ाने से निकलवा लिये। दो करोड़ रुपये की मालियत के रत्नों में से ८६ लाख रुपये की मालियत के उत्तमोत्तम रत्न छांटे गये। ये बेबदलख़ाँ नाम के एक सुनार के सिपुर्द किये गये। यह सुनार शाही सुनार-ख़ाने के दफ़्तर का सुपरिन्टेन्डेन्ट था। शाहेजहां ने उसे हुक्म दिया कि एक लाख तोले वज़न की, सोने की एक पटिया पर वे जड़े जायँ। कोई १४ लाख रुपये के ख़र्च से ३ ¼ गज़ लम्बी, २ ½ गज़ चौड़ी और ५ गज़ ऊँची पटिया तैयार की गई। इसी पटिया या चौतरे ने तख़्ते-ताऊस के ढांचे का काम दिया। रत्न जड़े हुए १२ खम्भों पर मख़मल की छत मढ़ी की गई। उसके भीतरी भाग पर मीनाकारी का काम हुआ। बाहर सब तरफ़ रत्न जड़े गये। इन के ऊपर, बाहरी ओर, दोनों तरफ़, कुछ कुछ

मोर बनाया गया। मोरों के चञ्च-प्रलम्बों में बड़े ही बहुत रत्न जड़े गये। उन दोनों मोरों के बीच में एक पेड़ बनाया गया। उसमें हीरे, पन्ने, लाल और मोती जड़े गये। तख़्त पर चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियां बनाई गईं। उन पर भी दिव्य रत्न लगाये गये। सात वर्ष में यह तख़्त बन कर तैयार हुआ। इसकी तैयारी में एक करोड़ रुपया ख़र्च पड़ा। तख़्त के चारों तरफ़ सोने की ११ पटियां जोड़ कर दीवार बनाई गई। उन पर भी जवाहिरात जड़े गये। बीच की जिस पटिया के सहारे बादशाह को बैठना था अकेले उसकी लागत कोई दस लाख रुपये तक पहुँच गई। तख़्त के बीच में एक बहुत बड़ा लाल लगाया गया। फ़ारिस के शासक शाह अब्बास ने इस लाल को, ज़नबीलुबेग़ नाम के एक अफ़सर के हाथ, शाहजहाँ के पिता जहांगीर को भेंट में भेजा था। दक्षिण जीतने की ख़ुशी में जहांगीर ने यह लाल शाह[...] पुरस्कार के तौर पर दिया था। यह लाल किसी सम[...] तैमूर के पास था। उसने उस पर अपना नाम खु[...] था। इसके बाद यह शाह-रुख़ और उलुग़बेग के हाथ [...] उन्होंने भी अपना अपना नाम उस पर खुदाया। शा[...] के पास आने पर उसने भी अपना नाम उस पर खुदवा[...] जब यह जहांगीर को मिला तब जहांगीर ने भी [...] किया। इन नामों के बाद शाहजहां ने भी उस पर [...] नाम खुदवा कर उसकी शोभा बढ़ाई।

तख़्त तैयार हो जाने पर शाहजहां के मलिकु[...] (कवि-चक्रवर्ती) हाजी मुहम्मदख़ां "कुदसी" ने [...] तारीफ़ में यह कविता, फ़ारसी में, लिखी—

۱ – زهی فرخنده تخت پادشاهی * که شد سامان بتائید الهی
۲ – فلک روزے که میکردش مکمل * زر خورشید را بگداخت اول
۳ – بحکم کار فرما صرف شد پاک * مینا کاریش مینائے افلاک
۴ – جز این تخت از زر و گوهر چه مقصود * وجود بحر و کان را حکمت این بود
۵ – ز یاقوتش که در قید بها نیست * لب لعل بتان را دل بجا نیست
۶ – برائے پایه اش عمرے کشیده * گهر افسر بسر حاتم ندیده
۷ – بصرفش عالم از زر شد چنان پاک * که شد از گنج خالی کیسهٔ خاک
۸ – رساند گر فلک خود را بپایش * دهد خورشید و مه را رو نمایش
۹ – سر افرازے که سر بر پایه اش سود * ز گردون پایهٔ در تخت افزود
۱۰ – خراج بحر و کان پیرایهٔ او * پناه عرش و کرسی سایهٔ او
۱۱ – ز انواع جواهر گشته الوان * چراغے عالمے هر دانهٔ آن
۱۲ – در اطرافش بود گلهاے مینا * فروزان چون چراغ از طور سینا
۱۳ – چو میکرد از فرازش کوتهی دست * نگین خویش جم بر پایه اش بست
۱۴ – شب تار از فروز لعل و گوهر * تواند صد فلک را داد اختر
۱۵ – دهد شاه جهان را بوسه بر پاے * ازاں شد پایهٔ قدرش فلک ساے
۱۶ – کند شاه جهان بخش جوان بخت * خراج عالمے را خرج یک تخت
۱۷ – خداوندے که عرش و کرسی افراخت * تواند قدرش تختے چنین ساخت
۱۸ – اثر پیداست تا کون و مکان را * بود بر تخت جا شاه جهان را
۱۹ – بود تختے چنین هر روز جایش * خراج هفت کشور زیر پایش
۲۰ – چو تاریخش زبان پرسید از دل * بگفت اورنگ شاهنشاه عادل

[...]की अन्तिम पंक्ति के—"औरङ्गे-शाहन्शाहे-आदिल"—[...] के तैयार होने की तारीख़ निकलती है। यह [...]४ ईसवी) है। इस कविता को शाह[...]जहां ने तख़्त के भीतरी भाग में एक पटिया पर खुदवा[...] इस कविता के कुछ अंशों का भावार्थ इस प्रकार है—

× × × × ×

कहते हैं कि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने वेद द्वारा
करके संसार को बनाया। इस युक्ति
है। तथापि सर्व-साधारण
में आश्रय लेना
आदि के

सरस्वती



राजकुमार सिद्धार्थ की दानशीलता ।

इंडियन प्रेस प्रयाग ।

दि खान से निकला हुआ सोना और समुद्र से प्राप्त हुआ रत्न-समूह इस
१ को अलङ्कृत न करता तो खान और समुद्र का होना ही व्यर्थ हो
और, फिर वे आते किस काम ? इसके अनमोल रत्नों को देख कर विश्व-
देशी विश्वकर्माओं का हृदय धड़कने लगता है।

× × × × ×

स सिंहासन के बनने में खर्च हो जाने के कारण संसार में बहुत ही कम
ह गया है—यह कहना चाहिए कि पृथ्वी का गर्भ—उसका कोश—माय
हो गया है। आकाश यदि इस सिंहासन के पाये तक पहुँचता तो वह
ईंट देखकर, सूर्य और चन्द्रमा दोनों इसे नज़र कर देता।

× × × × ×

जब तक आकाश और जगत् का अस्तित्व कुछ भी शेष है तब तक ईश्वर
हिज़्हाई बादशाह इस सिंहासन पर विराजमान रहे। परमेश्वर करे यह
१ इस सिंहासन की शोभा बढ़ावे और शाह सल्तनतों की प्रजा के सिरों
पर वह पैर रक्खे—यह उसे प्राप्त हो।

× × × × ×

जिस सिंहासन की प्रशंसा में यह सब कहा गया है उसे,
६ ईसवी में, नादिरशाह फ़ारिस उठा ले गया। उसका
। या उसका चित्र तक इस देश में न रह गया। लोगों
ख्याल था कि यह तख्त फ़ारिस की राजधानी तेहरान में
क विद्यमान है। इस नाम का जो तख्त वहाँ है, वह
है। पर लार्ड कर्ज़न की खोज ने इस बात को असत्य
कर दिया है। उन्होंने अपनी "पर्शिया" नामक पुस्तक
खा है कि फ़ारिस का तख्ते-ताऊस एक और ही तख्त
से फ़तेहअली शाह ने अपनी नई बेगम ताऊसख़ानम के
नुसार बनवाया था। यह बात फ़ारिस के वज़ीरेआज़म ने
कही। वज़ीर ने यह भी कहा कि देहली का तख्ते-ताऊस
ट फूट गया और उसके जवाहरात लुट गये। वह टूटा
तख्त नादिरशाह के पोते के पास था। उसे आग़ा
मुहम्मद ने उससे ज़बरदस्ती छीन लिया। उस समय
टुकड़े टुकड़े हो गये थे। उसने उन सब टुकड़ों को जोड़
ये तर्ज़ का एक तख्त बनवाया। यह तख्त तेहरान के
महलों के नये अजायबघर में रक्खा है। सो, अब तक
स के फ़तेहअली शाह वाले तख्त को तख्ते-ताऊस समझ
व्यर्थ ही लोग उसकी प्रशंसा के पुल बांधते रहे हैं।

५—वैदिक काल।

मीमांसकों के मत में वेद की उत्पत्ति नहीं। किन्तु
त के भाष्यकर्ता जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य तथा नैयायिकों
त में वेद की उत्पत्ति है, पर कब ? संसार की सृष्टि
के पूर्व। वे कहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने वेद द्वारा
कार्याकार्य का उपदेश करके संसार को बनाया। इस युक्ति
को हमें अवश्यही मानना पड़ता है। तथापि सर्व-साधारण
को विशेष ग्राह्य लौकिक युक्ति का भी हमें आश्रय लेना
चाहिए। सुनते हैं बारंबार वेद के पठन-पाठन आदि के
लुप्त होने पर पुनः पुनः वैदिक सम्प्रदाय का उदय होता है।
एक समय जब वेद-सम्प्रदाय लुप्त हो गया तब अत्रि मुनि से
उत्पन्न दत्त नाम के ऋषि ने फिर उस सम्प्रदाय को चलाया।
इस बात का प्रमाण हमें शिशुपालवध महा-काव्य के चतुर्दश
सर्ग के इकहत्तरवें श्लोक में मिलता है। लिखा है—

सम्प्रदायविगमादुपेयुषीरेष नाशमविनाशिविक्रमः।
स्मर्तुमप्रतिहतस्मृति श्रुतीर्दत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः॥

इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि दत्तात्रेय के समय में वेद के
लिखित ग्रन्थ न थे। यदि होते तो कवि का "श्रुतीः स्मर्तुम-
भवत्" यह कहना सर्वथा असङ्गत होता। और, "श्रूयते
आचार्यात् इति श्रुतिः" इस व्युत्पत्ति से भी श्रुति का अर्थ सुना
जाना ही होता है। श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी,
जहां दत्तात्रेय का इतिहास है, लिखा है कि वैदिक सम्प्रदाय
चलाने ही से दत्तात्रेय साक्षात् विष्णु का अवतार माने गये थे।
इससे मालूम होता है कि दत्तात्रेय का समय वेद के पुनरुदय
होने का समय है। दत्तात्रेय मुनि कब हुए और उन्होंने कब
वेद को स्मरण किया, इसका निर्णय करना कठिन है, क्योंकि
वे पुराणमत से कृतयुग में स्वायम्भू मनु के पश्चात् हुए थे।

इसके बाद जब फिर वैदिक सम्प्रदाय नष्ट हुआ तब
भगवान् कृष्णद्वैपायन ने अनेक स्थानों से श्रुतियों का सङ्ग्रह
करके हज़ारों शाखाओं में उनका विभाग किया। इसीसे उनका
नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ। तभी से वेद लिपियों में लिखे
गये। वेदव्यास के वेद-विभाग का समय निर्णय करना भी
कठिन है। किन्तु वह अन्दाज़न चार हज़ार वर्ष के पहले
की बात है। क्योंकि कलियुग के पहले ही व्यास हुए थे, ऐसा
पुराणों से ज्ञात होता है। इसके बाद फिर भी एक बार वैदिक
सम्प्रदाय उच्छिन्न हुआ। तब, अनुमान कोई बारह सौ वर्ष पूर्व,
शङ्कराचार्य ने उसे पुनरुज्जीवित किया। इस प्रकार स्वायम्भू
मनु से ले कर आज तक वैदिक सम्प्रदाय का तीन दफ़े, ह्रास
और उदय हुआ। इस पर लोग कह सकते हैं कि यह तो वैदिक
सम्प्रदाय लुप्त होने पर फिर उसके प्रचलन का वर्णन

हुआ। वेद की उत्पत्ति का समय तो बताया। इस पर मेरी प्रार्थना है कि यद्यपि ब्रह्माजी ने ही वेदों को बनाया या उनका उपदेश किया, तथापि वेदद्रष्टा मुनियों को भी हम वेद के रचयिता मान सकते हैं। क्योंकि विश्वामित्र आदि महर्षियों ने अपनी दिव्य ज्ञानदृष्टि से श्रुतियों का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें मनुष्यों में प्रचलित किया। अतएव यदि हम उन्हीं मुनियों को वेद के कर्ता कहें तो कुछ भी हानि नहीं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि वेद के कर्ता एक नहीं, किन्तु अनेक मुनि थे। जिस मन्त्र का जो ऋषि है, हमें उसी को उसका कर्ता समझना चाहिए। जैसे, गायत्री-मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र हैं। तो उस मन्त्र के प्रणेता वही हुए।

दुण्डिराज शास्त्री
(अगस्तकुण्डा, बनारस)

६—सोमनाथ के मन्दिर की प्राचीनता।

सोमनाथ पर एक सचित्र लेख बहुत समय पहले सरस्वती में निकल चुका है। इस नोट में गुजरात के गैज़ेटियर के आधार पर कुछ ऐतिहासिक बातें और भी दी जाती हैं। गैज़ेटियर में इस मन्दिर का पुराना इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है।

यह मन्दिर पट्टन या पाटन नामक स्थान में है। महाभारत में यही पट्टन प्रभासतीर्थ के नाम से उल्लिखित हुआ है। उसमें प्रभास-पाटन का तो नाम है, पर सोमनाथ का नाम नहीं। हाँ, पुराणों में सोमनाथ का नाम पाया जाता है। वहाँ यह पाँच रत्नों में से एक रत्न माना गया है। जिस समय गुजरात में वलभीपुर के राजाओं की सत्ता थी उसी समय—४८० से ७६७ ईसवी के बीच—इस का निर्माण हुआ था। आदि-मन्दिर लकड़ी का था। इसी लकड़ी के मन्दिर को महमूद ग़ज़नवी ने तोड़ा था। इसके बाद अन्हिलवाड़े के किसी राजा ने पहले मन्दिर की जगह पत्थर का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर को भी, ईसा की सोलहवीं शताब्दी में, गुजरात के शासक महमूद बेगरा ने तोड़ कर नष्ट कर दिया। बेगरा ने मूर्ति तोड़कर और मन्दिर का अधिकांश नष्ट करके उसे मसजिद में परिवर्तित कर दिया। इस मन्दिर-मसजिद के टूटे फूटे कुछ अंश अब तक विद्यमान हैं। सोमनाथ का जो मन्दिर इस समय पाटन में है वह अहल्याबाई का बनवाया हुआ है। अतएव वह कोई ढाई सौ वर्ष का पुराना है।

पुरातत्त्वज्ञ विद्वानों की राय में तो सोमनाथ के मन्दिर को बने पन्द्रह सौ वर्ष से अधिक नहीं हुए। ... के पास ही एक शिलालेख मिला है। ... ११६६ खुदा हुआ है। उसमें लिखा है कि सोमनाथ ... लकड़ी वाला मन्दिर श्रीकृष्ण ने बनवाया था। ... भी लिखा है कि लकड़ी के मन्दिर के पहले जो मन्दिर ... वह चाँदी का था और रावण का बनवाया हुआ था। ... भी पहले पाटन में सोमनाथ का मन्दिर था। वह सोने ... था और सोम का बनवाया हुआ था। इस पर, सम्भव ... लोग यह कहें कि शिलालेख की बातें विश्वसनीय ... उस समय प्रचलित जनश्रुति के आधार पर लिखी गई ...

इब्न असीर नाम का एक इतिहासकार ११६०—१२... ईसवी में हो गया है। उसका लिखा हुआ तारीख़ ... नामक इतिहास बहुत विश्वसनीय समझा जाता है। ... महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई और सोमनाथ के मन्दिर ... विस्तृत वृत्तान्त लिखा है। उसका कथन है कि यह ... सोम अर्थात् चन्द्रमा का था। उसके ख़र्च के लिए दस ... गाँव लगे हुए थे। अनन्त रत्नों की राशियाँ मन्दिर में ... थीं। बारह सौ मील दूर गङ्गा से रोज़ गङ्गाजल आता ... इसी से मूर्ति-स्नान होता था। एक हज़ार ब्राह्मण पूजा ... और साढ़े तीन सौ नाचने गाने वाले देवमूर्ति की सेवा के ... लिए नियत थे। यात्रियों की हजामत बनाने के लिए ... सौ नाई थे। इन सब लोगों की तनख़्वाह मुक़र्रर ... मन्दिर में लकड़ी के ५० खम्भे थे। उनके ऊपर सीसा ... हुआ था। मूर्ति ५ हाथ ऊँची थी। वह एक अँधेरे कमरे ... थी। कमरे में रत्न-खचित दीपक जलते थे। मूर्ति के ... छत से सोने की एक ज़ंजीर लटकती थी। उसमें १०० ... वज़नी एक घण्टा टँगा था। इस मन्दिर की लूट से महमूद ग़ज़नवी को एक करोड़ रुपये का माल मिला था।

७—हस्त्यायुर्वेद अथवा पालकाप्य।

बँगला के आठवें साहित्य-सम्मेलन के सभापति ... महोपाध्याय श्रीयुक्त हरप्रसाद शास्त्री, एम० ए०, सी० आई० ई०। सम्मेलन के इस अधिवेशन में पढ़े गये ... अभिभाषण, तथा एक अन्य लेख—ये सब साहित्य-परिषत्-पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। इन में अनेक ज्ञातव्य बातें ... एक में शास्त्री जी ने उन लोगों की ख़बर ली है जो ...

[...] भाषा बोलते और उसी में अपने विचार व्यक्त करते हैं। [...]ने लोग जब अपनी भाषा लिखते हैं तब वे उसे इतना [बि]गाड़ देते हैं कि वह आधा तीतर आधी बटेर की उक्ति की [अन]ुगामिनी हो जाती है। उसकी एक अजीब खिचड़ी बन [जा]ती है। ऐसे लोगों को शास्त्री जी ने सलाह दी है कि वे [अप]नी भाषा कुछ दिन सीखें तब क़लम पकड़ें। जो लोग [व्य]र्थ ही संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते और [अक]ारण ही उर्दू-फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग से बचते हैं [उन्]हें भी शास्त्रीजी ने दो चार खरी बातें सुनाई हैं। चाहे [जि]स भाषा के शब्द हों यदि वे अपनी भाषा में प्रचलित हो [गये] हैं तो उनका बहिष्कार सम्भव नहीं। भाषा वही अच्छी [कह]ी जा सकती है जो सरल हो और जिसे अधिक लोग [आस]ानी से समझ सकते हों; चाहे उसमें जिस भाषा के प्रच[लि]त शब्द विद्यमान हों।

हम लोग बहुधा इस बात की शिकायत किया करते हैं [कि] हमारे यहाँ इतिहास नहीं। इसके उत्तर में शास्त्रीजी ने [कित]ने ही प्राचीन और नवीन इतिहास ग्रन्थों के नाम बताये [हैं]। इन्हों ने कई ऐसी पुस्तकों का हवाला भी दिया है [जि]नमें औरङ्गज़ेब के समय का विस्तृत वृत्तान्त है। [यदि] इन सब पुस्तकों के आधार पर कोई योग्य विद्वान् उस [सम]य का इतिहास लिखे तो ऐसा इतिहास बड़े ही महत्त्व का [हो]। अब तक हम लोगों ने मुसलमानों और विदेशियों ही [के] मुख से औरङ्गज़ेब की शासन-नीति आदि का वृत्तान्त [सुना] है। वह यदि किसी हिन्दू के मुख से भी सुनने को [मिले] तो मालूम हो जाय कि किसमें कितनी सत्यता है और [किन] दुओं की राय किससे कहाँ तक मिलती है।

शास्त्री महाशय ने अपने प्रधान लेख में बङ्गाल-[स]म्बन्धी कुछ बातें बड़े ही मार्के की कही हैं। उनके [ब]ङ्गाल बङ्गाल के गौरव का कारण माना है। रेशम, ढाका [की मल]मल, चित्र, मीना और जहाज़, ईख, गोल-मिर्च और [...] देव आदि से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी बातों का उल्लेख [करके उ]न्हों ने बताया है कि इनका उत्पत्ति-स्थान बङ्गाल ही है। [...]ष के दाँतों ही इसके गौरव का कारण है। सबसे पहले [...] हस्त्यायुर्वेद का उल्लेख किया है। आपने लिखा है कि [...] के चिकित्सा शास्त्र के प्रणयनकर्ता अन्य मुनि [...] [...] थे। इन्हों ने इस शास्त्र का आविष्कार [किया] [...] आप के कथन का आशय यह है :—

अङ्ग-देश के राजा लोमपाद की इच्छा हाथी पर सवार होने की हुई। पर हाथी कहाँ मिलते हैं और किस प्रकार वशीभूत किये जाते हैं, यह वह न जानता था। उसने बहुत से ऋषियों को एकत्र किया। उनकी सलाह से उसने हाथियों का पता लगाने के लिए कुछ लोग भेजे। उन्हें एक पहाड़ी आश्रम में हाथियों का एक दल मिला। उसके रक्षक एक मुनि भी वहीं मिले। यह ख़बर उन लोगों ने राजा को दी। राजा अपनी सेना ले कर उस आश्रम को गया। रक्षक मुनि उस समय वहाँ न थे। वे बाहर गये थे। जितने हाथी राजा को वहाँ मिले उन्हें वह अपनी राजधानी चम्पानगर को ले आया और वहीं रख दिया। मुनि ने लौट कर देखा, हाथी नहीं। वे व्याकुल हो उठे और हाथियों को ढूँढने निकले। चम्पानगर में उन्हें वे मिल गये। वे दुबले और रोगी हो रहे थे। मुनि ने उनकी चिकित्सा आरम्भ कर दी। और लोगों के पूछने पर मुनि ने अपना नाम धाम तक न बताया। जब राजा ने पूछा और बहुत हठ की तब इन्होंने अपना नाम पालकाप्य बताया और राजा की प्रार्थना पर गजतन्त्र हस्त्यायुर्वेद शास्त्र की रचना की। इस शास्त्र को शास्त्रीजी कोई ढाई हज़ार वर्ष का पुराना समझते हैं। आप कहते हैं :—

> "पालकाप्य [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible], समुद्र [illegible] [illegible] [illegible] जन्मभूमि [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हस्त्यायुर्वेद [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। × × × × [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]"।

ढाई हज़ार वर्ष पहले [illegible] की जो [illegible] थी, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

८—ज्योतिष-सम्बन्धी मानयन्त्र।

अच्छे ज्योतिषियों को परिमाण-ज्ञान की बड़ी आवश्यकता होती है। दूसरों के बनाये हुए परिमाणों के ऊपर विश्वास करने से भूलें होना बहुत सम्भव है। और, बिना यन्त्रों के ठीक ठीक परिमाण-ज्ञान हो नहीं सकता। दूसरे देशों के वेधालयों में अनेक प्रकार के यन्त्र रहते हैं। उन्हीं के सहारे ज्योतिषी अनेक वैज्ञानिक बातों का ज्ञान प्राप्त करते है। इस देश में एक भी अच्छा वेधालय नहीं। दो एक मान-मन्दिर अवश्य हैं। पर उनसे कुछ ही इने गिने लोगों को लाभ पहुँच सकता है। इस अभाव—इस त्रुटि—को दूर करने के लिए गौहाटी के श्रीतारकेश्वर भट्टाचार्य्य, एम० ए०, ने एक ऐसा यन्त्र बनाया है जिससे ज्योतिष-विषयक कितने ही परिमाण जाने जा सकते हैं। यह एक ही यन्त्र अनेक यन्त्रों का काम दे सकता है। दिगन्त (Altazimuth,) नाड़ीवलय (Equatorial), याम्योत्तर-भित्ति (Transit Circle), थियोडोलाइट (Theodolite) आदि कितने ही यन्त्रों का काम इस से निकल सकता है। विषुवांश, क्रान्त्यंश, अक्षांश, देशान्तर, दिगंश, उन्नतांश, शरांश, रारयंश आदि के परिमाण अकेले इसी यन्त्र से शुद्धता-पूर्वक जाने जा सकते हैं। यह यन्त्र छोटा सा है। ज्योतिषी इसे आराम से अपने साथ रख सकता है और एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकता है। गौहाटी में यह अच्छा नहीं बन सका। इस कारण, कुछ परिवर्तन के साथ, इसके बनाने का प्रबन्ध अब कलकत्ते में किया गया है। यदि वहां आशानुरूप बन गया तो इस यन्त्र से नीचे लिखे परिमाण जाने जा सकेंगे—

(१) भौगोलिक मध्यरेखा (Geographical Meridian)
(२) अक्षांश (Terrestrial Latitude)
(३) देशान्तर (Terrestrial Longitude)
(४) दिगंश (Azimuth)
(५) उन्नतांश (Altitude)
(६) विषुवांश (Right Ascension)
(७) क्रान्ति (Declination)
(८) [illegible] Latitude)
(९) [illegible] Longitude)
(१०) चौम्बक क्षेप (Magnetic Declination)
(११) चौम्बक नति (Magnetic Inclination)

ये इतने मान यदि इस एक ही यन्त्र से मालूम हो तो क्या कहना है। ऐसा यन्त्र तो प्रत्येक ज्योतिषी को पास रखना चाहिए।

९—प्राचीन भारत में रसायन-विद्या।

कलकत्ते के डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय बड़े नामी रसायनशास्त्री हैं। आपने हिन्दुओं की रसायन-विद्या का इतिहास अँगरेज़ी में लिखा है। इस सम्बन्ध में जितनी खोज आपने की है, और किसी ने नहीं की। यह बात आपके लिखे इतिहास से सिद्ध है। उसमे रसायन-विद्या के क्रम का आपने प्रामाणिक वर्णन किया है। कुछ दिन हुए इसी सम्बन्ध में एक व्याख्यान लाहौर में दिया था। सारांश नीचे दिया जाता है।

आयुर्वेद के उपलब्ध ग्रन्थों में चरक और सुश्रुत पुराने हैं। उनमें रस शब्द किसी वस्तु के अर्क, या अंश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इससे सूचित है कि पुराने समय में रस का वह अर्थ न होता था जो आज होता है। चरक और सुश्रुत के समय के अनन्तर पारे के लिए आने लगा और अब तक आता है। साथ ही यह शब्द धीरे धीरे सभी धातुओं और पदार्थों की भस्म आदि के अर्थ में भी आने लगा। रसायन-ग्रन्थों में रस का अर्थ यद्यपि पारा भी है तथापि अधिकतर वह पूर्वोक्त वस्तुओं ही का द्योतक है।

रसायन-विद्या की उत्पत्ति भारत में हुए [illegible] गये। वात्स्यायन और पतञ्जलि तक ने इसका [illegible] ग्रन्थों में किया है। सुवर्ण-रत्न-परीक्षा, धातुवाद [illegible] रागाकरज्ञान को वात्स्यायन ने ६४ कलाओं में [illegible] सुनते हैं, पतञ्जलि ने सार (लोहे) के भिन्न भिन्न [illegible] और प्रक्रियाओं पर एक ग्रन्थ ही अलग लिखा [illegible] नहीं मिलता। रसायन जरा मृत्यु को जीतने वाली [illegible] है। इससे इसकी बड़ी महिमा है। यह वैदिक [illegible] भी समझी जाती है। जब से तान्त्रिक मत का प्रचार [illegible] में हुआ तब से इसकी महिमा और भी बढ़ि [illegible] रुद्रयामल आदि तन्त्र-ग्रन्थों में इस विषय का [illegible] वर्णन है। तान्त्रिक काल में इस विद्या की इतनी [illegible]

के सैकड़ों ग्रन्थ इस विषय के बन गये। उनमें से रसार्णव, सहृदय, रससार और नागार्जुन-कृत रसरत्नाकर अब भी लब्ध हैं। उस काल में तो इस विद्या के प्रेमियों और अभ्यासियों का एक पन्थ ही अलग हो गया था। इस कारण माधवाचार्य्य को अपने सर्वदर्शनसंग्रह में उनके सिद्धान्तों का भी उल्लेख करना पड़ा।

वृन्द नामक एक विद्वान् के बनाये हुए सिद्धयोग नामक ग्रन्थ में, वर्तमान रसायन-विद्या की प्रणाली के अनुसार, धातुओं की रसायन का वर्णन है। यह ग्रन्थ कोई ९०० ईसवी का है। इसके अनन्तर चक्रपाणिदत्त आदि ने और भी इसी विषय के कितने ही ग्रन्थ बनाये, जो अब तक पाये जाते हैं। धीरे धीरे अभ्रक, तांबे, लोहे, रांगे, हरताल, सीसे आदि को शुद्ध करने, शुद्ध करने और उनकी रसायनें बनाने की प्रक्रिया प्रचलित हुई। भिन्न भिन्न पदार्थों के रूप, रङ्ग, अवयव और गुणों आदि की जांच करके तत्सम्बन्धी सिद्धान्त भी धीरे धीरे निश्चित किये गये। इसके साक्षी इस विषय के अनेक ग्रन्थ हैं।

जो प्रमाण आज तक इस विषय के मिले हैं उनसे यही सूचित होता है कि रसायन-विद्या स्वयं भारतवासियों ही की उद्भावना और खोज का फल है।

१०—हज़ार वर्ष के पुराने खँडहर।

पुरातत्त्व के प्रेमी स्टीन साहब के नाम से अवश्य परिचित होंगे। हज़ारों वर्ष पहले तुर्किस्तान में बौद्धों की बस्तियां और मठ आदि थे। जो जगहें इस समय उजाड़ हैं—जहां सैकड़ों कोस तक एक बूँद भी पानी नहीं—वहां पूर्वकाल में बड़े बड़े शहर थे। स्टीन साहब ने इन उजड़े हुए नगरों और स्थानों की बहुत कुछ खोज की है। इस विषय पर उन्होंने एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। उससे मालूम बहुत लाभ हुआ। चीनी तुर्किस्तान के उजाड़-खण्डों की खोज के लिए अब आप दुबारा दौरे पर हैं। इस काम में आपको अब भी बहुत कुछ सफलता हुई है। आपके साथ लालसिंह नामक एक हिंदुस्तानी महाशय भी हैं। एप्रिल से नवंबर १९१४ के दौरे का संक्षिप्त वर्णन स्टीन साहब ने लन्दन की भौगोलिक सभा को भेजा है।

कोई ढाई हज़ार वर्ष पहले चीन की सीमा पर, तुर्किस्तान में सैकड़ों मील लम्बी एक पक्की दीवार थी। उसमें जगह जगह बुर्जें और क़िले थे। वे सब भग्नावस्था में हैं। उनकी खोज पहले भी स्टीन साहब ने की थी और अनेक प्राचीन चिह्न और पदार्थ खोज निकाले थे। इस दफ़े भी उन्होंने अनेक क़िलों, खँडहरों और दीवार के भग्नांशों की खोज की। तिब्बत के उत्तर से उन्होंने प्रस्थान किया। पहले दौरे में उन्होंने एक गुफ़ा के भीतर सहस्र-बुद्ध के एक मन्दिर को ढूँढ़ निकाला था। इस दफ़े भी वे इस मन्दिर को देखने गये। वहां से पूर्वोक्त दीवार के रास्ते कोई २५० मील तक वे जङ्गल ही जङ्गल चले गये। मार्ग में उन्हें मिट्टी और धातु के पात्र तथा कितने ही प्राचीन सिक्के मिले। इससे सूचित हुआ कि यह प्रान्त किसी समय आबाद था। जगह जगह पर सीमा की रक्षा के लिए चीन की फ़ौज रहती थी। पानी न मिलने के कारण स्टीन साहब और उनके साथियों को इस रास्ते से जाने और खोज करने में बहुत कष्ट हुआ। परन्तु उन्होंने धैर्य न छोड़ा। फल यह हुआ कि लकड़ी पर खुदे हुए कितने ही प्राचीन लेख, लकड़ी की कितनी ही चीज़ें और अनेक प्रकार के औज़ार उन्हें मिले। ये चीज़ें उन जगहों में मिलीं जहां दो हज़ार वर्ष पहले चीन की सेना के अड्डे थे।

इसके बाद स्टीन साहब आगे बढ़े और उस उजड़े हुए प्रदेश की जांच की जहां किसी समय प्राचीन यूची जाति और हूणों का आधिपत्य था। ये वही हूण थे जिन्होंने मध्य एशिया से पश्चिमी देशों तथा भारत पर आक्रमण किया था। इस प्रान्त के ख़ाराख़ोटो नामक उजड़े हुए नगर में स्टीन साहब को बौद्धों के लिखे हुए अनेक लेख, सिक्के, पात्र, धातु और पत्थर के औज़ार तथा गहने आदि मिले। इससे सिद्ध हुआ कि इस प्रान्त में किसी समय बहुत लोग रहते थे, बड़े बड़े शहर और गांव थे, और उनके निवासियों का भारत से विशेष सम्पर्क था। जान पड़ता है, पानी की कमी के कारण ही ये बस्तियां धीरे धीरे उजड़ गईं और कालान्तर में वह प्रान्त का प्रान्त अनाबाद जङ्गल और रेतीले मैदानों में परिवर्तित हो गया।

११—जीवदया-ज्ञान प्रसारक मण्डली।

बम्बई में जीव-दया-ज्ञान प्रसारक मण्डली नाम की एक संस्था है। उसकी १९१४ ईसवी की रिपोर्ट से विदित होता है कि वह संस्था अच्छा काम कर रही है। इसके [illegible] है

(१) पशुओं के हत्या-निवारण की चेष्टा (२) मांस-भक्षण से होने वाली हानियों का प्रकटीकरण (३) विलायत से मँगा कर और बम्बई में छपा कर जीवदया-दर्शक साहित्य का प्रचार (४) निरामिष-भोजन के गुण बता कर पशु-रक्षा का प्रयत्न। यह सभा चन्दे और दान से चलती है। १९१४ में इसे कोई बारह हज़ार रुपये की आमदनी हुई। उसमें से उस साल इसे कुछ बच रहा; बाक़ी सब ख़र्च हो गया। अपने उद्देशों के साधन के लिए यह सभा हज़ारों पुस्तकें हर साल अँगरेज़ी, हिन्दी, गुजराती और मराठी में मुफ़् बांटती है। इसकी भेजी हुई बीस पचीस पुस्तकें हमारे पास भी आ चुकी हैं। पूर्वोक्त रिपोर्ट के साथ भी आठ पुस्तकें आई हैं। वे निःसन्देह सब के पढ़ने योग्य हैं। अमानुषीय आमिष-भोजन के दोष और निरामिष-भोजन के गुण उनमें योग्यतापूर्वक दिखाये गये हैं।

१२—लड़ाई का ख़र्च।

जो युद्ध इस समय हो रहा है उसमें ३१ मार्च १९१५ तक इँगलेंड का पांच अरब चालीस करोड़ (५, ४०,००, ००,०००) रुपया ख़र्च हो चुका है। यदि यह युद्ध एक साल और जारी रहा अर्थात् फ़रवरी १९१६ तक होता रहा—तो अकेले इँगलेंड को कम से कम पन्द्रह अरब (१५, ००, ००, ००, ०००) रुपया ख़र्च करना पड़ेगा। युद्ध में फँसे हुए यदि सभी देशों के ख़र्च का तख़मीना लगाया जाय तो टोटल शायद कई सौ अरब रुपये तक पहुँच जाय! पृथ्वी पर आज तक अनेक बड़े बड़े युद्ध हुए और अब भी जारी रहे हैं। पर इतना ख़र्च किसी में भी नहीं पड़ा। सभ्यता की वृद्धि और विज्ञान में विशेष उन्नति होने के कारण युद्ध के साधन हथियारों आदि के मद्दमद में अब बहुत अधिक ख़र्च पड़ता है। इसी से ख़र्च अधिक होता है। नेपोलियन के साथ २२ वर्षों तक इँगलेंड को युद्ध करना पड़ा था। उन युद्धों में इसका कोई [illegible] अरब रुपया ख़र्च हुआ था। जो ख़र्च इसे २२ वर्षों में करना पड़ा था उससे भी अधिक ख़र्च इसे १० महीने में, इस समय, करना पड़ेगा। इस ख़र्च का कुछ ठिकाना है! [illegible], धन-जन की [illegible]! कुछ और बड़े युद्धों के ख़र्च का हिसाब नीचे दिया जाता है—

युद्ध का नाम	अवधि	[illegible]
(१) राज्य-प्राप्ति सम्बन्धी स्पेन का युद्ध	७ वर्ष	७५,००,००
(२) स्वतन्त्रता-प्राप्ति-सम्बन्धी अमेरिका का युद्ध	७ वर्ष	१,४५,२०,००
(३) क्राइमिया का युद्ध	२ वर्ष	१०,१२,२०,००
(४) दक्षिणी अफ़रीक़ा का युद्ध	२½ वर्ष	३,१६,२०,००

इससे सिद्ध है कि वर्तमान युद्ध में जितना ख़र्च हुआ है और आगे जितना ख़र्च होगा उतना और किसी में आज तक नहीं हुआ। शस्त्रास्त्रों की भयङ्करता में सेनाओं की असंख्यता में भी यह युद्ध भूत-पूर्व युद्धों से आगे बढ़ गया है। भगवान् शीघ्र ही इसकी इति करे!

१३—क़ैसर का ख़ज़ाना।

कोई पैंतालीस वर्ष पहले फ़्रांस और जर्मनी में जो युद्ध हुआ था उसमें फ़्रांस बेतरह परास्त हुआ था। उसे जर्मनी को अपना कुछ देश भी देना पड़ा था और के ख़र्च की मद में बहुत सा रुपया हर्जाने के तौर पर देना पड़ा था। जर्मनी को रुपया बहुत मिला था। उसमें से नौ करोड़ रुपये की गिन्नियां क़ैसर ने एक जगह रख दी थीं। जर्मनी की प्रभुता बढ़ाने के इरादे से और उनके मन्त्रिमण्डल ने किसी दिन घोर युद्ध का निश्चय उसी समय कर लिया था। बात यह कि यह रुपया युद्ध ही में ख़र्च होना चाहिए। इस भाव का उपक्रम तभी से हुआ था। अब कहीं वह [illegible] पहुँचा है। जिस दिन के लिए वह रुपया रक्खा था वह दिन अब वर्तमान है। बीच में कई [illegible] को रुपये की ज़रूरत पड़ी। उसने उधार लिया, सूद दिया, पर इस रक़म से एक पाई भी ख़र्च करना तो दूर रहा, उसकी बराबर [illegible] जाती रही। हर साल उसमें कुछ न कुछ और [illegible] धीरे धीरे वह रक़म नौ करोड़ से [illegible] करोड़ [illegible] यह सारी रक़म तहख़ानों में बन्द रही। [illegible] क़ैसर ख़ुद इसे अपनी आंखों से देखने और [illegible] देखते रहे। इस ख़ज़ाने की निगरानी के लिए [illegible]

ता है। ज़मीन के भीतर लोहे के जिन तहख़ानों में रुपया रखे गये हैं वे ऐसे बने हैं कि इच्छा करते ही पास की नदी का पानी इनमें भर जा सकता है और वे १५ फ़ुट गहरे पानी में डूब जा सकते हैं। स्पाँडो नामक नगर में एक मीनार है। इसी के भीतर यह ख़ज़ाना है। तौल कर इसकी जाँच करने के लिए ऐसे तराज़ू बनाये गये हैं जो कुछ ही देर में ठीक ठीक बता देते हैं कि कितना रुपया है। एक गिन्नी या एक रुपया भी यदि कम हो जाय तो तत्काल मालूम हो जाता है।

पैंतालीस वर्ष बाद जर्मनी को रुपये की ज़रूरत हुई। अतएव इस साल के शुरू में ये तहख़ाने खोले गये। जिस युद्ध में जर्मनी फँसा है उसमें उसका इतना ख़र्च हो रहा है कि बिना इस ख़ज़ाने से रुपया निकाले उसका काम ही नहीं चल सका। इस ख़ज़ाने से निकाली गई गिन्नियाँ स्वीडन, स्वीडन और डेनमार्क पहुँचीं। वहाँ से वे लन्दन पहुँचीं। लन्दन के बैंक आव् इँगलैंड के अधिकारियों ने उन्हें पहचान लिया। वे इँगलैंड ही की गिन्नियाँ हैं। उन पर महारानी विक्टोरिया की तसवीर है। वे सब की सब १८७२ की ढली हुई हैं। जिन थैलियों में भरी हुई वे लन्दन पहुँचीं उनमें से कितनी ही थैलियों पर बैंक आव् इँगलैंड के टिकट की पुरानी चिटें ज्यों की त्यों चिपकी हुई हैं। जर्मनी को देने के लिए ये गिन्नियाँ फ्रांस ने इँगलैंड ही से ली थीं। इसी से इन पर बैंक आव् इँगलैंड की मुहर है। अतएव इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि ये वही गिन्नियाँ हैं और रुपये की कमी के कारण क़ैसर को अपना ख़ज़ाना खोलना पड़ा है।

१४—चन्दन की पट्टी।

मथुरा की मोहन एंड कम्पनी ने चन्दन की एक पट्टी [illegible] भेजने की कृपा की है। [illegible] की है। [illegible] पट्टी सर्वांश में चन्दन की है। [illegible] चन्दन के बने हुए ताश के पत्तों की होती है [illegible] है। चन्दन के पतले पतले रेशों का तारों से [illegible] है। इसकी भी सुन्दर बीना हुआई और सुन्दर है। [illegible] सुगन्धित है। भारतीय शिल्प कला का [illegible] इस कम्पनी के मैनेजर लिखते हैं कि इनके यहाँ चन्दन की [illegible] रुपये से लेकर २० रुपये तक की बनती हैं।

१५—पनामा की प्रदर्शिनी में भारतीय विद्वानों और विद्या रसिकों का सम्मेलन।

पनामा की नहर खुलने के उपलक्ष्य में संयुक्त-राज्य अमेरिका के सान फ्रांसिस्को नगर में जो विराट् प्रदर्शिनी हो रही है उसका वर्णन सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। इस प्रदर्शिनी में देश-देशान्तरों के विद्वानों और विद्या प्रेमियों आदि के कोई आठ सौ सम्मेलन भी होंगे। बहुत से हो भी चुके हैं। हर विषय के विद्वान् एकत्र होंगे; व्याख्यान होंगे, लेख पढ़े जायँगे। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशों के लोगों के बीच सुहृद्भाव उत्पन्न करने और बढ़ाने की चेष्टा की जायगी। डाक्टर केशवदेव शास्त्री के प्रयत्न और प्रेरणा से वहाँ भारतीय विद्यारसिकों की भी एक सभा होने वाली है। उसका नाम है—The Hindustan Students Convention इस सभा के अधिवेशन १४, १५, १६ अगस्त १९१५ को होंगे। सर्व-सम्मेलनों के अधिपति (Director of Congresses) ने पूर्वोक्त सभा में शामिल होने के लिए सरस्वती-सम्पादक को भी आमन्त्रित किया है। पर पत्र ४ जून १९१५ का लिखा हुआ है, पर [illegible] (Censor) महाराज की कृपा से बम्बई में रोक लिया गया था। इस कारण वह कोई १० दिन देर से पहुँचा। [illegible] [illegible] [illegible] लिखे गये हैं। [illegible] [illegible] [illegible] वह समय पर नहीं पहुँच सकता।

पुस्तक-परीक्षा।

१—[illegible]

[illegible]

कर्तृत्व के सम्बन्ध में शङ्का हो सकती है। क्योंकि इसमें बौद्ध मत के सिद्धान्तों का भी उल्लेख है और बौद्धमत का उदय वाल्मीकि के बाद हुआ है। तथापि, कुछ भी हो, यह ग्रन्थ है बड़ा उत्तम। इसे वेदान्त-विषयक ग्रन्थों का शिरोभूषण कहना चाहिए। जिस तरह पूर्व-रामायण में ६ काण्ड हैं—बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर और लङ्का—उसी तरह इस उत्तर-रामायण में भी ६ प्रकरण हैं—वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण। इनमें से भी पहले दो प्रकरण अधिक महत्त्व के हैं। उनका कई बार अनुशीलन करके हमने अनन्त लाभ उठाया है। मूल पुस्तक संस्कृत में है। उसे बम्बई के गणपति कृष्णा जी के छापेख़ाने में छपे बहुत समय हुआ। इसका सबसे पहला अनुवाद गुरुमुखी भाषा में हुआ। उसके आधार पर लखनऊ में इसका हिन्दी-अनुवाद निकला। बम्बई का छपा हुआ, इसके कई प्रकरणों का, हिन्दी-अनुवाद इस नोट के लेखक के पिता के पास था। यह कोई ३० वर्ष की बात है। याद नहीं, वह किसका प्रकाशित किया हुआ था। वह पुस्तक इस समय हमारे संग्रह में नहीं। यहां, इस प्रान्त में, जबसे लाला बैजनाथ जी ने इस परमोपयोगी ग्रन्थ का एक सुन्दर अनुवाद प्रकाशित कराया तबसे इसका परिचय बहुत लोगों को होगया। पर मूल्य अधिक होने से इसका यथेष्ट प्रचार न हो सका।

जिस पुस्तक का परिचय हमें इस नोट में देना है वह इस ग्रन्थ के पहले पांच प्रकरणों का गुजराती अनुवाद है। इसके पहले भी इसके दो एक अनुवाद गुजराती में निकल चुके हैं। उनका मूल्य अठारह अठारह रुपये तक होने के कारण गुजराती जाननेवालों में भी इनका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ। पर, अब, आशा है, इस अनुवाद से हज़ारों लोग लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसका मूल्य बहुत ही कम, अर्थात् केवल तीन रुपया, है। इसे अहमदाबाद और बम्बई के सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय ने छपा कर प्रकाशित किया है। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ८४०, काग़ज़ मोटा और छपाई सुन्दर है। टाइप बहुत बड़ा लगाया गया है। ऊपर जिल्द बँधी हुई है। यह अनुवाद बम्बई की वेदधर्म-सभा के प्रबन्ध से किया गया है। अनेक सर्गों के आदि-अन्त में ... श्लोक भी दे दिये गये हैं। भाषा सरल है। ... जो गुजराती भाषा नहीं समझते, पर तीन रुपये ... सकते हैं, उन्हें भी इस ग्रन्थ की एक कापी लेकर पुस्तक संग्रहालय की शोभा बढ़ानी चाहिए। पूर्वोक्त का... इस अनमोल ग्रन्थ को कौड़ियों के मोल बेच रहा है।

※

२—परीक्षा-मुख। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या ... मूल्य ६ आने; मिलने का पता—श्रीयुत घनश्यामदास ... स्याद्वाद-महाविद्यालय, काशी। कोई ११०० वर्ष ... माणिक्यनन्दि-स्वामी नाम के एक जैन विद्वान् हो गये ... यह पुस्तक उन्हीं की रचना है। संस्कृत में है। ... न्यायशास्त्र की है और सूत्रमय है। पूर्वोक्त घनश्यामदास ... ही इसे "भाषार्थ" और भावार्थ-सहित प्रकाशित किया ... मूल पुस्तक अच्छी है। थोड़े में "प्रमाण" का अच्छा ... किया गया है। उसके स्वरूप, संख्या, विषय और फल ... का निरूपण इसमें है। खेद है, इसके "भाषार्थ ... भावार्थ में कहीं कहीं त्रुटियां रह गई हैं। उदाहरण ... इसके पृष्ठ ७४ में—

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात्।

इस सूत्र का भाषार्थ लिखा गया है:—

शब्द परिणामी होता है, क्योंकि वह चक्षु से जाना जाता है—

इसमें "अविद्यमानसत्ताकः" पद का अर्थ ही ... किया गया। इसी तरह की और भी त्रुटियां इस... भाषा भी यत्र तत्र सदोष है। तथापि पुस्तक उपादेय है...

※

३—"विवेचक" की पुस्तकें। गुजराती भा... मासिक पत्र "विवेचक" के सम्पादक ने दो पुस्तकें भेजी... (१) पहली का नाम है—पाप-पुञ्ज। इसकी भाषा गु... आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२४ और मूल्य ४ आने... इसमें एक जासूसी कहानी है—"पैसा ने माटे दुनिया ... केवा केवा भयङ्कर कामो थाय छे, तेनो चितार आ... कल्पित नवल कथा मां यथामति आपवा मां आव्यो ... (२) दूसरी पुस्तक का नाम है—हिन्द ना महान पुरु... षों नां जीवन-चरित्र, भाग १ लो। इसकी भी भाषा गुज... राती और आकार मँझोला है। इसकी पृष्ठ-संख्या ११... मूल्य लिखा नहीं। इसमें बाबू कृष्णकुमार मित्र, श्रीयुत ... चन्द्र (?) दत्त, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती (?) ...



श्याम गरुड़।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

माय स्वयंक तेलङ्ग, लाला लजपतराय (?), श्रीन (?) (?)जी० के० गोखले, सी० आई० ई० के संक्षिप्त जीव-रेत हैं। मिलने का पता—विवेचक मासिक पत्र का लाश्रम, नांदोद। ये दोनों पुस्तकें विवेचक के ग्राहकों हार में दी गई हैं। सो, गुजराती भाषा के पत्रों के तें को भी उपहार के रूप में "लांच" देनी पड़ती है।



४—स्त्रीदर्पण। इस मासिक पुस्तक की सम्पादिका, ी रामेश्वरी नेहरू, ने इसकी जूलाई १९१२ की संख्या ोचना के लिए भेजी है। समालोचना इस प्रकार है—

यह मासिक पुस्तक ६ वर्षों से इलाहाबाद से निकलती सका वार्षिक मूल्य २) है। नाम से सूचित होता है सकी सम्पादिका काश्मीरी महिला हैं। यह हिन्दी के लिए य की बात है। जिन काश्मीरियों पर उर्दू-फ़ारसी ही धिक आधिपत्य था उनकी गृह-देवियों ने हिन्दी को देना तो आरम्भ कर दिया। इस पुस्तक के प्रस्तुत में सँझोले आकार के १२० पृष्ठ और २२ गद्यपद्यात्मक हैं। तीन सादे चित्र हैं और एक रङ्गीन। कागज़ पतला, ा और छपाई साफ़ है। पद्य-लेखों की अपेक्षा गद्य लेख अच्छे हैं। इन पिछले लेखों में कई एक बड़े महत्त्व — विशेष कर वे जो अन्य भाषाओं से अनुवाद किये । इसके यदि सभी अङ्क ऐसे ही न निकलते हों तो पुस्तक आश्रय देने और अवलोकन करने योग्य है।

इस, नेहरू महाशया की आज्ञा के परिपालन में हमें ही निवेदन करना है।



५—निबन्ध-माला। इस नाम की एक नई मासिक भरतपुर से निकली है। इसके दो अङ्क हमें एक ही प्राप्त हुए हैं। पहले अङ्क में २८ और दूसरे में ४२ । प्रत्येक अङ्क में एक एक हाफ़टोन चित्र भी है। इन अङ्कों में प्रकाशित कविताओं में से कई कविताएँ बहुत और भावमयी हैं। दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति और प्रसार, तथा संस्कृत-भाषा और भाषा-साहित्य, ये दो भी इन अङ्कों में विशेष उल्लेख-योग्य हैं। इसके क और प्रकाशक ने जिन विघ्न बाधाओं का उल्लेख है उनको झेल कर भी आपने इस माला को निकाल ही दिया, यह आपकी उद्योगशीलता और दृढ़ निश्चय का प्रमाण है। आशा है, आप इसे बराबर निकालते जायँगे और दिन दिन इसकी उन्नति भी करते जायँगे। इसका मूल्य दो रुपया वार्षिक है। मिलने का पता—प्रबन्धकर्त्ता, निबन्ध-माला, विरक्त-मन्दिर, भरतपुर।



६—प्रणवीर प्रताप। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या १३; छपाई और कागज़ उत्तम; मूल्य १ आने; लेखक, पण्डित गोकुलचन्द्र शर्म्मा, धर्म्मसमाज-पाठशाला, अलीगढ़, से प्राप्य। इस २०२ पद्यों की पुस्तक में मेवाड़ के वीर शिरोमणि महाराना प्रताप का कीर्तिगान है। रचना ओजस्विनी है। नमूना—

> वह व्यर्थ ही जन्मा जगाया देश को जिसने नहीं।
> जातीय जीवन की झलक आई कभी जिसमें नहीं।



७—रङ्गमहलरहस्य। आकार सँझोला, पृष्ठ-संख्या ६२; मूल्य ६ आने, प्रकाशक, एम० पी० सेठ, गऊघाट, मिर्ज़ापुर, छपाई और कागज़ अच्छा। श्रीयुक्त हरिसाधन मुखोपाध्याय की बँगला पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादकजी ने अपना नाम नहीं दिया और प्रकाशकजी ने भी नाम लिखने में अँगरेज़ी ढंग की नक़ल करके अपना असली नाम नहीं प्रकट होने दिया। यह शायद इसलिए कि इस पुस्तक में—"मुगल बादशाहों के अन्तःपुर की गोप नीय बातें"—है। मिलने का पता—मैनेजर, सुलभ ग्रन्थ-प्रचारक मण्डल, गऊघाट, मिर्ज़ापुर।



८—हरिदास कम्पनी की पुस्तकें। (१) हिन्दी-बँगला-कोष। पृष्ठ-संख्या ४८२, मूल्य डेढ़ रुपया। नाम होना चाहिए था—बँगला हिन्दी कोष, क्योंकि इसमें बँगला-लिपि में बँगला शब्दों के अर्थ हिन्दी में दिये गये हैं। हिन्दी-शब्दों की लिपि देवनागरी है। कोष छोटा, पर उपकारी है। बँगला सीखनेवालों और बँगला-पुस्तकों का अनुवाद करनेवालों के बड़े काम का है। अर्थ लिखने में कहीं कहीं भूलें हो गई हैं। "भारजोचन" का अर्थ—"जिन की सी आँखें हों जिसकी"—ठीक नहीं। चाहिए था—सुन्दर हों आँखें जिसकी। पर ऐसी भूलें बहुत नहीं।

(२) **संयोगिता** । पृष्ठ-संख्या ६६; मूल्य ३ आने । बाबू सतीशचन्द्र की बँगला-पुस्तक का अनुवाद है । इसमें राजा जयचन्द की कन्या और पृथ्वीराज की रानी संयोगिता की कहानी है । अच्छी है । (३) **वीर चूडामणि** । पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ६ आने । ऐतिहासिक उपन्यास है । मेवाड़ के राजकुमार चूड़ाजी की वीरता और एक राजकुमारी से उनके विवाह आदि का वर्णन है । लिखने की शैली मनोहारिणी है । भाव मनोवेधक हैं । (४) **उपदेश-कुसुमाञ्जलि** । पृष्ठ-संख्या ४४; मूल्य २ आने । छोटे छोटे तीन सौ उपदेशों का सङ्ग्रह है । रचना गद्य में है । उपदेश उपादेय हैं । (५) **पाप-परिणाम** । पृष्ठ-संख्या १३७; मूल्य ६ आने । बाबू मणीन्द्रमोहन वसु की बँगला-पुस्तक "पापेर परिणाम" का यह हिन्दी-अनुवाद है । यह दो खण्डों में है । पहले में कीचक-वध है, दूसरे में जयद्रथ-वध । इसकी पौराणिक कथा बालक-बालिकाओं के पढ़ने लायक़ है । भाषा कहीं कहीं कुछ शिथिल है । (६) **महाराणा प्रताप** । पृष्ठ-संख्या १०८; मूल्य ६ आने । यह नाटक है । कथानक इसका सर्वश्रुत है । इसके पद्य-भाग का अधिकांश बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू राधाकृष्णदास आदि की पुस्तकों से लिया गया है । वही इसके प्राण हैं । नाटक का विस्तार अधिक नहीं; अतएव इसके अभिनय में सुभीता है । प्रूफ़-संशोधन में यत्र तत्र असावधानता हो गई है । "उर्दू होवें पामालो मग़लूब शह के"—इसके पहले तीन शब्द एक ही में मिले हुए छप गये हैं । (७) **मँझली बहू** । पृष्ठ-संख्या ११६, मूल्य २ आने । यह अनुवाद है । पर लेखक ने यह बताने की कृपा नहीं की कि किस भाषा की किस पुस्तक का । कथा इसकी औपन्यासिक है । इसके सामाजिक दृश्यों में स्वाभाविकता है । इसमें एक सेवक की स्वामि-भक्ति का चित्र बड़ा ही सुन्दर है । भाषा में कहीं कहीं दोष रह गये हैं ।

इन सभी पुस्तकों की छपाई और काग़ज़ मनोहर हैं । छपाई सफ़ाई संतोषजनक हैं । मिलने का पता—हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता ।



९—**सिन्धु-भास्कर प्रेस की पुस्तकें** । (१) **भारत-पुष्पाञ्जलि** । आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य २ आने । इस छोटी सी पुस्तक में देश-भक्ति-पूर्ण भ... संग्रह है । नमूना—

> दयानिधि वेगि धरो अवतार—
> भारत-दशा नाथ द्वापर से महामन्द है आज ।
> पल पल में मिटता जाता है परवश आर्य-समाज ॥
> देवतुल्य थे भारतवासी हुए आज कुछ और ।
> भूताल था जिनका अब उनको नहीं कहीं भी ठौर ॥

इत्यादि । (२) **संसारोपयोगी वेदान्त** । आकार ... पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ४ आने । स्वामी रामतीर्थ ... कुछ वक्तृताओं का नाम है—ग़ैर मुल्कों के तजरबे । अब इस नये नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित की गई ... इनमें प्रकट किये गये विचार अनमोल हैं ।

दोनों पुस्तकें मिलने का पता—*सिन्धु-भास्कर* ... हैदराबाद, सिन्ध ।



१०—**आत्मतत्त्व-प्रकाश** । आकार छोटा, पृष्ठ-सं... ११२, मूल्य ज्ञात नहीं । प्राप्ति-स्थान—लक्ष्मीनारायण ... मुरादाबाद । यह महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र वि... भूषण, एम० ए०, पी—एच० डी० की बँगला पुस्तक ... अनुवाद है । मुरादाबादनिवासी पण्डित ज्वालादत्त ... इसे लिखा है । पुस्तक दो भागों में विभक्त है । ... भारतीय दर्शनों का संक्षिप्त इतिहास और दूसरे में ... तत्त्व का निरूपण है । भारत के गहन दार्शनिक ... परिशीलन करने वालों में भी बिरले ही संस्कृतज्ञ ... ठीक आन्तरिक आशय समझ सकते हैं; केवल हिन्दी ... वालों के लिए तो यह बात प्रायः असम्भव ही थी । ... यह सम्भव हो गई । इसमें भारत के प्राचीन दर्शन ... का इतिहास लिख कर डाक्टर सतीशचन्द्र ने आत्मा, ... कर्मबन्धन, जगत्, जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, मुक्ति ... का वर्णन थोड़े में, पर बड़ी योग्यता से, किया है । ... की भाषा सरल—सब की समझ में आने योग्य—है । ... पढ़ लिया मानों थोड़े ही में भारतीय आध्यात्मिक ... का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।



११—**औदुम्बर** । यह मासिक पत्र दो वर्ष से ... बनारस से निकलता है । आकार में यह सरस्वती ...

चित्र भी इसमें रहते हैं। तिस पर भी वार्षिक मूल्य का केवल दो रुपये है। इसमें कभी कभी बड़े अच्छे लेख निकल जाते हैं। इसके तीसरे वर्ष के चौथे अङ्क में—प्राचीन राज्य-प्रबन्ध—नाम का एक छोटा सा लेख बहुत अच्छा है। पत्र लेने और पढ़ने लायक़ है।

☼

१२—गोपकाव्यो। भाषा गुजराती; आकार मँझोला; पृष्ठसंख्या २४ × १५२; जिल्द बँधी हुई; मूल्य आठ आने; संग्रहकर्त्ता कल्याणजी विट्ठलभाई मेहता और चुनीलाल [illegible]चन्द शेलत; प्रकाशक कुंवरजी विट्ठलभाई मेहता, [illegible]ल-बन्धु-आफ़िस, सूरत। इस पुस्तक में अनेक प्राचीन और नवीन गुजराती कवियों की कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं में ग्राम्य-जीवन-सम्बन्धी दृश्यों के मनोहारी [illegible]द-चित्र हैं। देहातियों के सरल स्वभाव, स्वाभाविक [illegible]न-सहन और भोले भाले भावों के वर्णन के सिवा प्राकृतिक [illegible]यों का भी अच्छा वर्णन है। नरसिंह मेहता, नानालाल [illegible]पतराम, दौलतराम कृपाराम, डाह्या भाई, लक्ष्मण भाई, [illegible]मैदाशङ्कर बालाशङ्कर आदि नामी नामी कवियों की [illegible]विताये इस में संग्रहीत हैं। संग्रह अच्छा है।

☼

१३—सौ अजान और एक सुजान। आकार [illegible]झोला, पृष्ठसंख्या १०३, मूल्य ६ आने। यह एक छोटा [illegible] उपदेश-पूर्ण उपन्यास है। हिन्दी के परम प्रेमी श्री-[illegible]पण्डित बालकृष्ण भट्ट की रचना है। पहले पहल हिन्दी [illegible]दीप में क्रम क्रम से छपा था। फिर भट्ट जी ने इसे अलग पुस्तकाकार छपाया था। अब इसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) ने प्रकाशित किया है। इसे पढ़ने से शिक्षा भी [illegible]मिल सकती है और भट्ट जी की अनोखी रचना शैली का आस्वादन भी प्राप्त हो सकता है।

☼

१४—धर्म्मप्रकाश : द्वितीयसमुल्लासः। अप्रेल १९१२ की सरस्वती के पृष्ठ २२७ पर ६ नंबर की पुस्तक की [illegible]आलोचना पढ़िए। उसी का यह दूसरा भाग है। इसकी पृष्ठ-[illegible]संख्या ११ और मूल्य ७ आने है। लेखक ही से मिलती है।

☼

१५—औपसर्गिक सन्निपात (प्लेग) आकार [illegible]मध्यम, पृष्ठसंख्या ४०, मूल्य चार आने। इस छोटी सी पुस्तक में पण्डित राधावल्लभ वैद्यराज ने—"प्लेग का इतिहास, प्लेग का आयुर्वेदीय और डाक्टरी मतानुसार विवेचन, प्लेग का तात्त्विक सम्बन्ध, प्लेग और धर्म्म, संक्रामक रोगों के कारण, प्लेग-चिकित्सा आदि"—का वर्णन किया है। निबन्ध उपयोगी है। मिलने का पता—आरोग्य-सिन्धु-कार्य्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़।

☼

१६—भ्रातृ-भाव। आकार छोटा, पृष्ठसंख्या २३, मूल्य ३ आने, लेखक और प्रकाशक—श्रीयुत दामोदरसहाय-सिंह, स्कूल सब-इन्स्पेक्टर, आरा। इस छोटी सी पुस्तक में भ्रातृ-भाव का अच्छा विवेचन है। उससे होने वाले लाभ भी ख़ूब दिखाये गये हैं। लेखक महाशय ने अन्त में लिखा है कि भ्रातृ-भाव के प्रचार के लिए मातृ-भाषा की उन्नति की बड़ी आवश्यकता है।

☼

नीचे जिनके नाम दिये गये हैं वे पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) आर्य्याचारादर्शः		प्रेषक, पण्डित देवनरायण मिश्र, आरा, डाकख़ाना कुरथा, गया।
(२) महामारीकल्पः		
(३) दिव्यानन्दचन्द्रोदयः	प्रथमो भागः	
(४) ,,	द्वितीयो भागः	
(५) रसमञ्जूषा,	प्रथम भाग	

(६) स्वर्गीय जीवन—प्रकाशक, श्रीयुत हरिदास वैद्य, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(७) शिव-पार्वती का विवाह—लेखक, मुं० रामगुलाम-लाल, ज़िला छपरा।

(८) श्रीरामानुज-गुरु-परम्परा—लेखक, स्वामी ब्लाकटा-नन्द, बेलनगञ्ज, आगरा।

(९) दुर्वासा-तृप्ति-स्वीकार नाटक—लेखक, पण्डित शिवदत्त काव्यतीर्थ, अजमेर।

(१०) पाठशाला के विद्यार्थी और उनका स्वास्थ्य—लेखक, श्रीयुत सिद्धनाथ माधव आगरकर, आगरा।

(११) दान-धर्म-प्रचारिणी सभा का वार्षिक वृत्तान्त—प्रकाशक, माननीय ला० सुखबीरसिंह, मुज़फ़्फ़रनगर।

(१२) दमयन्ती-चरित्र
(१३) बालिका-विनोद—प्रेषक, अध्यक्ष सावित्री-कन्या-पाठशाला, फ़तेहपुर।

(१४) भारत-सुधार-भजनमाला—लेखक, विद्यार्थी "संतक," इलाहाबाद।

(१५) भक्ति—अनुवादक, बाबू दामोदरसहायसिंह, आरा।

(१६) रङ्गमहल-रहस्य, संख्या २—प्रकाशक, एम० पी० सेठ, मिर्ज़ापुर।

(१७) पिङ्गल—प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय, प्रयाग।

(१८) मिस्ट्रीज़ आफ़ अलीगढ़—लेखक, मास्टर मुरारीलाल गुप्त।

(१९) सुरत में जयन्ती-महोत्सव—प्रकाशक, शेट नगीनचन्द कपूरचन्द झवेरी।

चित्र-परिचय।

(१)

वर्षा-विहार

इस महीने का पहला रङ्गीन चित्र वर्षा-विहार है। वर्षा ऋतु है। व्रज की कुञ्जों में चित्र-विचित्र कुसुम-कदम्ब खिल रहे हैं। मेघों से नभो-मण्डल आच्छादित है। धीरे धीरे मेह बरस रहा है। रह रह कर बिजली चमक उठती है। पास ही यमुना बहती हुई चली जा रही है। ऐसे ही सुखमय समय में राधिका और कृष्ण गलबाँही दिये हुए वर्षा-विहार कर रहे हैं। इसी दृश्य को एक चतुर चित्रकार ने इस चित्र में अङ्कित किया है। यह चित्र हमें टेहरी-गढ़-वाल के श्रीयुत कुँवर विचित्रशाह की कृपा से प्राप्त हुआ है।

---

(२)

दूसरा रङ्गीन चित्र श्रावण नाम का है। इस में हिंडोले का दृश्य है। चित्र के नीचे के छुप्पय का भाव प्रकट करने के लिए ही चित्रकार ने इस चित्र का अङ्कन किया है। छुप्पय कविवर केशवदास कृत है और पूर्ववत् उन्हीं के ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है।

(३)

राजकुमार सिद्धार्थ की दानशीलता।

सर एडविन आर्नल्ड ने लाइट आव् एशिया (Light of Asia) नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित है। उसमें एक घटना का वर्णन है। लिखा है कि राजकुमार सिद्धार्थ कुमारियों को अशोक-भाण्ड वितरण कर[illegible] सिद्धार्थ का दिया हुआ उपहार ले लेक[illegible] भाण्ड रिक्त हो गया। ऐसे समय में [illegible] राजकुमारी आई। अब उसे क्या दिया [illegible] और कुछ पास न देख, अपने गले से [illegible] कर उसे दे दिया। वह उसे पाकर कृतार्थ [illegible] ने उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया [illegible] दान के दृश्य का चित्र, चित्रकार श्रीयुत [illegible] वर्म्मा ने कलकत्ते से भेजने की कृपा की है। [illegible] अन्यत्र, इसी संख्या में, प्रकाशित पावेंगे।

---

(४)

श्यामगरुड़।

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग ने लड़ाई के पश्चिमी [illegible] से "श्यामगरुड़" नाम का एक चित्र भेजने की कृपा [illegible] है। यह चित्र इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है। चित्र [illegible] विषय में उन्होंने लिखा है:—

"चित्र पर फ़रासीसी भाषा में "ल-ईगल नोइर" [illegible] है। इसका अर्थ होता है—"श्यामगरुड़"। ईगिल [illegible] जर्मन लोगों का जातीय चिह्न है। जैसे वह आकाश में [illegible] ऊँचे चढ़ कर नीचे छोटे छोटे जन्तुओं पर भी नज़र र[illegible] है वैसेही जर्मन लोग भी अपने को सर्वोच्च समझ रहे [illegible] इस बार गरुड़ ने फ़्रान्स पर झपटा मारा है। इस चित्र में [illegible] स्त्री मीयान से तलवार निकाल रही है और गरुड़ की [illegible] देख रही है वह फ़्रान्स है। उसके पटके में तीन रङ्ग हैं—[illegible] पीला और गुलाबी। यही फ़्रान्स के जातीय झण्डे के र[illegible] उसके दाहने पैर के नीचे जर्मन का ताज और झण्डा प[illegible] है। पीछे की ओर जर्मन-मुकुट आग से जलाया जा रहा [illegible] मेरे जो मित्र चित्र विद्या को अच्छी तरह समझते हैं, [illegible] अपेक्षा इस चित्र के भाव को विशेष-रूप से समझ स[illegible] गरुड़ का झपटा मारना भी, इस चित्र में अच्छा दि[illegible] गया है।"

आशा है सरस्वती के पाठक इस भाव भरे चित्र [illegible] पसन्द करेंगे।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at [illegible]

✻ ✻ ✻ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ✻ ✻

मानस—कोश ।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को बड़ी सुगमता होगी । इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं । मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए ।

•सचित्र हिन्दी महाभारत•

(मूल आख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ   बड़ी साँची   १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-भाव, पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष का ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना हो, यदि भारतवर्ष में हिन्दुओं को सुशिक्षित करके प्राचीन धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित्र को पढ़कर ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को दृढ़ और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत" ग्रन्थ को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी रोचक और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना और लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये

(कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत)

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। इसे का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्वामी ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज में छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें इसका ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँची के है। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, का परिचय, विषयानुक्रमणिका, ... शुद्धिपूर्त्ति, यन्त्रालय-प्रशस्ति और ... आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इसकी का मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के लिए चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

सौभाग्यवती ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य ... चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ ... प्राप्त कर सकती हैं। मूल्य ॥)

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※

मानस—कोश।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को अब बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए।

•सचित्र हिन्दी महाभारत•

(मूल आख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का [illegible] है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-भाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति उत्पन्न हो सकती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष का ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना हो, यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके [illegible] धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि [illegible] भीष्मपितामह के पावन चरित को [illegible] का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को [illegible] बनाना हो, तो इस "महाभारत" [illegible] अवश्य [illegible]। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी [illegible] और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या [illegible] महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना और लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य [illegible] उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन [illegible] सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो [illegible] जिसकी सरल, मधुर और रसीली [illegible] सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही [illegible] महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह [illegible] समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। [illegible] का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। [illegible] ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज [illegible] छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें [illegible] ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुयायी [illegible] ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य [illegible] चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण [illegible] मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँचे [illegible] हैं। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, [illegible] का परिचय, विषयानुक्रमणिका, [illegible] शुद्धिपूर्ति, ग्रन्थालय-प्रशस्ति और [illegible] आदि अनेक विषयों का समावेश किया [illegible]

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई [illegible] का मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के [illegible] चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

सौभाग्यवती।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक [illegible] चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत [illegible] प्राप्त कर सकती हैं। मूल्य ।)

चरित्रगठन ।

जो नवयुवक विद्यार्थी चरित्रगठन के अभिलाषी वे तो इसे अवश्य ही पढ़ें, और विशेष कर उन्हीं लिए यह पुस्तक बनाई गई है। वे इस पुस्तक को कर आप तो लाभ उठायेंगे ही, किन्तु अपने भावी तानों को भी विशेष लाभ पहुँचा सकेंगे। इस तक के सभी विषय सुपाठ्य हैं। जिस कर्तव्य से ष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। प्रति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रति-गिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के थ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार वश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ ठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य समात्र के लिए केवल ।॥) बारह आना है।

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कवि-कुलगुरु कालिदास के "कुमार-सम्भव" व्य का यह मनोहर सार छप कर तैयार हो गया। येक हिन्दी कविता-प्रेमी को द्विवेदी जी की यह नोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना हिए। कविता बड़ी रसवती और प्रभावशालिनी। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा ।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल जुत्शी, एम० ए० नाम को कौन नहीं जानता। आप उर्दू और गरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन न ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में खी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर काशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ खी गई है। इस पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगाकर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है:—

- एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में) २॥)
- भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में) ।=)
- हिन्द में मगरबी तालीम (उर्दू में) ।=)

कर्मयोग ।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद करा कर यह "कर्म-योग" नामक पुस्तक छापी गई है। इसमें सात अध्याय हैं। उनमें क्रमशः—१—कर्म का मनुष्य चरित्र पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—धर्म क्या है?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—बेलाग रहना ही सच्चा त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का आदर्श—इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।=)

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

लीजिए, हिन्दी में जिस चीज़ की कमी थी उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध हो गया। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई २०, २२ संख्याओं में पूर्ण होगी। इसकी क्रमशः एक एक पुस्तक इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित होती रहेगी। अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	..	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	.	।=)
३—रूस का इतिहास	...	।=)
४—इँगलैंड का इतिहास	...	।=)
५—जापान का इतिहास	.	।)
६—स्पेन का इतिहास		।=)

बालगीता ।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात
ष्यों को मुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक
र पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उप-
से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह
ह ऐसा अमृतमय उपदेश भराहुआ है कि जिसके
से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है।
कृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए
उपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने
मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह
बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता
सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है।
य ॥)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध,
ता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और
लसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल
न्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था
उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर
वास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था
न्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये
। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीति-
क का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी
नुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों
पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

अलिफ़लैला (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के लिए
निया भर के उपन्यासों में अरबियन नाइट्स का
बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों
निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया
इसलिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष
ों के पढ़ने लायक़ है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा
का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की
सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई
सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। कहाँ
तक कहें, इसके पढ़ने से अनेक लाभ होंगे। मूल्य
प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहा-
नियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी
गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों
को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर
सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा कृत
असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। यह
पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों
के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि
बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के
लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न
फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों
और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक,
पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम
की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—*यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों*
को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि
आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना
जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक
मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए।
स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक
बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' की सब किताबों की भाषा ऐसी सरल—सबके समझने योग्य—रक्खी है कि जिसे थोड़े पढ़े लिखे बालक भी बड़ी आसानी से पढ़ कर समझ लेते हैं। इस 'माला' में अब तक जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है:—

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) मूल्य आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य वही ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। भारतवासियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—आज कल आर्य-सन्तान अपनी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रीति-रस्मों को न जान कर कैसे घोर अन्धकार में धँसती च[ली जा] रही है सो किसी भी विचारशील से छिपा न[हीं।] इसी दोष के दूर करने के लिए 'मनुस्मृति' [के] उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—नीतिविद्या बड़े काम की विद्या है। इसमें [...]वर नीतिज्ञ बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। शुक्र, [विदुर,] चाणक्य और कणिक। इन्हीं के नाम से चार [नीतियाँ] विख्यात हैं। शुक्रनीति, विदुरनीति, चाण[क्यनीति] और कणिकनीति। ये सब पुस्तक संस्कृ[त में हैं।] हिन्दी जाननेवालों के उपकार के लिए इन चारों पुस्तकों का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद छ[पा है।] इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के स[मझने] लायक़ है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—लीजिए, 'श्रीमद्भागवत' की कथा भी सरल हिन्दी-भाषा में बन गई। जो लोग [संस्कृत] नहीं जानते, केवल हिन्दी-भाषा ही जानते हैं, [वे] अब श्रीमद्भागवत की भक्ति-रस-भरी कथाओं [का] स्वाद चख सकते हैं। इस 'बालभागवत' में श्रीम[द्भा]गवत' की कथाओं का सार लिखा गया [है।] इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षादायक [और] भक्ति रस से भरी हुई हैं। हर एक हिन्दी-प्रेमी को इस पुस्तक की एक एक कापी ज़रूर [रखनी] चाहिए। मूल्य ॥) आने

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला।

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभा[गवत] का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। [इसमें] श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान की [सब] लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य [...]

पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

❋ ❋ ❋ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❋ ❋ ❋

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

का

हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया। इसमें महाराष्ट्रवीर शिवाजी की वीरता-पूर्ण ऐतिहासिक कथायें लिखी गई हैं। वीररसपूर्ण उपन्यास है। हिन्दी पढ़ने वालों को एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥।=)

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

राजपूत-जीवन-सन्ध्या।

का भी अनुवाद तैयार हो गया। इसमें राजपूतों की वीरता कूट कूट कर भरी है। पर, साथ ही राजपूतों के वीरता-पूर्ण जीवन की सन्ध्या के वर्णन को पढ़ कर आपको दो आँसू ज़रूर बहाने पड़ेंगे। उपन्यास पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

डोगाचिकी की कहानियाँ।

इस पुस्तक की [illegible] में हजारों कापियाँ बिक गईं, [illegible] में भी खूब बिक रही हैं। लेकिन, अब हिन्दी में भी यह किताब छप कर तैयार हो गई। बड़े मज़े की किताब है। इन कहानियों की प्रशंसा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मूल्य [illegible]

[illegible] विदुषी।

[illegible]

... से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का [illegible] हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस [illegible] कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।/)

रॉबिन्सन क्रूसो।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी [illegible] कर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों [illegible] तो यह पुस्तक इतनी उपयोगी है कि [illegible] वर्णन नहीं हो सकता। प्रत्येक हिन्दी पढ़े [illegible] यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। क्रूसो के [illegible] उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, [illegible] परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन का [illegible] पाठक के हृदय पर ऐसा विचित्र प्रभाव [illegible] कि जिसका नाम नहीं। कूपमण्डूक की [illegible] पर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को [illegible] पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। [illegible] बड़े काम की है। मूल्य १)

क्षय-रोग।

(जनसाधारण की बीमारी तथा उसका [illegible])

(अनुवादक, पण्डित [illegible] शर्म्मा)

क्षयरोग की भयङ्करता जगत्प्रसिद्ध [illegible] बड़ा बुरा संक्रामक रोग है। [illegible] प्राणी प्रतिवर्ष इस रोग-राक्षस के पेट में [illegible] इस लोक से चल बसते हैं। [illegible] डाक्टरों और विद्वानों ने एक सभा की [illegible] इस रोग से बचने के उपायों पर [illegible] गये थे। एक निबन्ध सर्वोत्तम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १६, खण्ड २] सितम्बर, १९१५ [संख्या ३, पूर्ण संख्या १८९



[वार्षिक मूल्य ४)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [[illegible] ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, में छप कर प्रकाशित।

SARASVATI—Reg. No. A248

ग १६, खण्ड २] सितम्बर, १९१५ [संख्या ३, पूर्ण संख्या १८९

सरस्वती



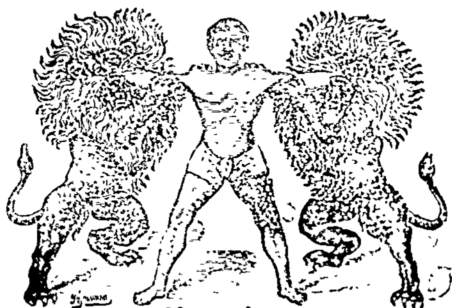
र्षिक मूल्य ४)] सम्पादक—म

इंडियन प्रेस,

लेख-सूची।

चित्र-सूची।





॥ श्रीः ॥

नई पुस्तक !

वन-कुसुम

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई कहानी तो ऐसी है कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती। मूल्य केवल चार आने है।

सदुपदेश-संग्रह

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बराड़ के विद्या-विभाग में बहुत हुई। वह कई बार छापा गया। उसी नसीहतनामा का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रन्थों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हीं में से छाँट छाँट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। शेख़सादी का कथन है कि 'अगर भीत पर भी कोई उपदेशात्मक वचन लिखा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसे अपने कान में धर ले'। यह बिल्कुल ठीक है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उपदेश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। इनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, सदाचारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

राम बाबा की कुटिया

हमारे यहाँ से हिन्दी भाषा में बहुत [illegible] प्रकाशित हुई हैं। पर बहुत [illegible] है। [illegible] है पर पुस्तक बहुत ही [illegible] है। [illegible] [illegible]

नई पुस्तक !!

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द-मूल्य केवल [illegible]

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत [illegible] संस्कृत में है। उसके हिन्दी-भाषानुवाद भी [illegible] छुप हैं। पर यह अनुवाद अपने ढँग का [illegible] नया है। इसमें अक्षरशः अनुवाद है। भाषा [illegible] और सरल है। हिन्दू मात्र रामायण को धर्म[illegible] मानते हैं। असल में यह पुस्तक ऐसी ही है। [illegible] पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्रा[illegible] है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पु[illegible] आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड त[illegible] काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्त[illegible] रहेंगे। उत्तरार्द्ध छप रहा है, यह जल्दी [illegible] प्रकाशित होगा। जल्दी मँगाइए।

गीताञ्जलि

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर [illegible] बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक [illegible] पुस्तक का संसार में कितना [illegible] है; यह बतलाने की ज़रूरत न[illegible] उस पुस्तक की अनेक कवितायें [illegible] गीताञ्जलि में तथा और भी कई [illegible] की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं [illegible] ताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी [illegible] में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो [illegible] हिन्दी जानते हुए बँगला भाषा [illegible] उनके लिए यह बड़े काम की पुस्त[illegible] मूल्य १) एक रुपया।

[illegible] प्रयाग।

पूतना-वध।

[illegible]

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग १६, खण्ड २]   सितम्बर १९१५—भाद्रपद १९७२   [संख्या ३, पूर्ण संख्या १८९

काँटा और फूल।

हमें तुम क्यों हँसते हो फूल !
तुम हमको वैरी समझे हो, करते हो यह भूल।
हम सा यदि न सहायक पाते तो उड़ जाते धूल॥ हमें तुम०
गाय, भैंस, बकरी चर लेतीं होते तुम निर्मूल।
[illegible] से बन कर होते हैं [illegible]॥ हमें तुम०
तुम पर वार रहे हैं सब सब फिर भी हो प्रतिकूल।
गई तुम्हारी मति मारी है फूल* हुए हो फूल॥ हमें तुम०
रङ्ग-रूप अपना जैसा है हो तुम हमको सूल।
कहे हुए तुम्हारे पीछे समझे गये त्रिशूल॥ हमें तुम०

सनेही।

* फूल (Fool) – मूर्ख।

अनन्त महाप्रभु।



ऊपर जिन महात्मा का नाम दिया गया है उनका जन्म मध्य प्रदेश के [illegible] नगर के [illegible] दलगञ्ज में विक्रम संवत् १८३५ के भाद्रपद की अनन्त चतुर्दशी को हुआ था। उनके पिता का नाम शिवचन्द था। शिवचन्दजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण, वाजपेयी थे। उनके पिता, [illegible] के रिसालदार, [illegible] और [illegible] थे। कानपुर में आई, [illegible] का [illegible] करते थे [illegible] थे। कानपुर में [illegible] था। [illegible]

ली थी। अनन्त की माता का नाम बलिराजकुँवरि था। वे लखनऊ के ही पास की थीं।

कहते हैं, बचपन से ही अनन्त का मन संसार से विरक्त था। वे खेल-कूद में अधिक ध्यान न देते थे। अपने माता-पिता के वे बहुत लाड़ले थे। तो भी उनका मन उस लाड़ प्यार से अधिक विचलित न हुआ था।

अनन्त के पितामह दो भाई थे। जेष्ठ होने के कारण चूड़ामणि ही घर के मालिक थे। कुछ दिनों तक आपका कारोबार अच्छी तरह चलता रहा। पर अन्त में चूड़ामणि और उनके भाई में अनबन हो गई। यह अनबन यहाँ तक बढ़ी कि चूड़ामणिजी को लखनऊ छोड़ना पड़ा। लखनऊ से चल कर वे सपरिवार कानपुर में रहने लगे। कानपुर में थोड़े दिनों तक गृहस्थी का सुख भोग कर चूड़ामणिजी सुरलोक सिधार गये।

चूड़ामणि की मृत्यु के बाद उनके व्यापार और गृहस्थी के कारोबार का सारा भार उनके पुत्र शिवनन्दन पर पड़ा। शिवनन्दन सच्चे ब्राह्मण थे। वे कारोबार का झंझट अच्छी तरह न उठा सकते थे। इस कारण अपने पितृव्य के कहने पर वे अपनी स्त्री और अपने पुत्र अनन्त को लेकर फिर लखनऊ चले गये। शिवनन्दन के पितृव्य का स्वभाव अच्छा न था। चूड़ामणि के रहते तो वे उनका कुछ न कर सके। पर अब मौका पाकर उनकी बन आई। एक रोज़ शिवनन्दन को किसी ने मार डाला। फिर हत्यारे ने चाहा कि अनन्त को भी शिवनन्दन के पास भेज दूँ। वह शीघ्र ही अनन्त के घर गया। अनन्त घर पर सो रहे थे। उनकी माता कुछ काम काज कर रही थी। अनन्त जिस घर में सो रहे थे उसमें अँधेरा था। अँधेरे के कारण वह हत्यारा अनन्त को ठीक ठीक न देख सका। "ईश्वरेच्छा बलीयसी"। तलवार जो उसने अनन्त पर चलाई सो वह उनके कन्धे पर लगी। उसकी चोट मात्र अनन्त के देह में [illegible] हो गई। उसकी चोट का निशान अब तक उनकी देह में मौजूद है। शीघ्र ही इस हत्याकाण्ड का समाचार शहर में [illegible] गया। इधर अनन्त के मामा ने उस हत्याकांड [illegible] यथेष्ट ख़बर ली। सब लोग यह समाचार [illegible] कुछ शान्त हुए और अनन्त की माता को सान्[illegible] देने लगे।

अनन्त की माता चतुर थी। अपने [illegible] अनुमति से उसने एक वृद्ध क्षत्रिय को नौ[illegible] अपने यहाँ नौकर रक्खा और अनन्त को [illegible] लेकर कानपुर चली आई। कानपुर में वह [illegible] को शिक्षा दिलाने लगी। पर, उस बेचारी का [illegible] अच्छा न था। थोड़े ही दिनों बाद एक ऐसी [illegible] हुई जिसके कारण वह आजन्म दुःख के सा[illegible] गोते लगाती रही।

कानपुर आने के बाद थोड़े ही दिनों में [illegible] का विवाह एक अच्छे कुल की कन्या के [illegible] गया। विवाह हो चुकने पर अनन्त की [illegible] कि अपने पारिवारिक शत्रुओं से बदला लें। [illegible] लिए उन्होंने घर से कहीं बाहर जाकर [illegible] सीखनी चाही। पर उसका कुछ फल [illegible] अनन्त का वृद्ध नौकर इसी समय किसी [illegible] के कारण दो वर्ष के लिए जेल भेज दिया [illegible] था। अवधि बीत जाने पर जब यह वृद्ध [illegible] जेल से लौटा तब अनन्त ने चाहा कि उसे [illegible] लेकर कलकत्ता देखने के बहाने घर से [illegible] निकल जायँ। इसी समय अनन्त का [illegible] मन होने वाला था। पर, अनन्त ने इसकी [illegible] परवा न की। वे अपनी माता से हठ-पूर्व[illegible] होकर अपने बूढ़े नौकर के साथ कलकत्ते को [illegible] हो गये। कलकत्ते जाकर उन्होंने बूढ़े नौकर[illegible] को मोना छोड़ कामाख्या की ओर प्रस्थान [illegible] यह घटना संवत् १८५१ की है।

मार्ग में अनेक कष्ट उठाते हुए अनन्त [illegible] साधुओं के साथ बालागञ्ज नामक स्थान में [illegible] वहाँ एक प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा रहते थे। [illegible] उन्हीं के शिष्य हो गये। उनके उपदेश से [illegible] के पुराने विचार बदल गये। उन्होंने सब [illegible] विद्याध्ययन करके उपदेशक बने और [illegible]

उपकार करें। यह विचार उत्पन्न होते ही ये
की आज्ञा से पास ही के एक नवलग्या नामक
। पर चले गये और वहाँ तीन वर्ष तक योग-
ा का अभ्यास करते रहे। इसके बाद अपने
ाचार्य से आज्ञा लेकर ये चन्द्रनगर में एक
ष तक व्याकरण का अध्ययन करते रहे। तदनन्तर
न्त काशी आये. काशी में ९ वर्ष तक रह कर छहों
स्त्रों में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। अब अनन्त
अनन्त नहीं रहे। अब ये एक बड़े पण्डित और
ात्मा गिने जाने लगे। काशी से ये टिकारी गये।
ारी के महाराज ने उनका बड़ा आदर-सम्मान
ा। विदा होते समय उन्होंने महात्मा अनन्त
बहुत सा द्रव्य दिया। अनन्त पूर्ण पण्डित
र यहाँ से अपने गुरु के दर्शनों के लिए रवाना
। गुरु का दर्शन करके ये जगन्नाथजी को गये।
ाँ जो कुछ उनके पास था, सब दान कर दिया।
ते हैं, उस समय कोई २५ हज़ार का धन आपके
स था। जगन्नाथपुरी से छत्तीसगढ़ होते हुए
प भारत के अनेक बड़े बड़े नगरों में भ्रमण करते
। अन्त में, संवत् १८७८ में, आप काश्मीर
चे। यहाँ कुछ दिनों रह कर आप लौट पड़े।
ाँ में एक स्थान पर आपने अपने शरीर पर
ग रख कर वहाँ पर उपस्थित बड़े बड़े लोगों को
दिखला दिया कि शरीर कुछ वस्तु नहीं है।

काश्मीर से आकर आप १० वर्ष तक पञ्जाब
पटियाला राज्य के किसी पर्वत पर और १० वर्ष
लुधियाना नगर के पास के किसी पर्वत की
ा में योगमग्न रहे। वहाँ आपकी बड़ी प्रसिद्धि
। यहाँ से चल कर आप कानपुर, बहरायच
र बहरामघाट आदि होते हुए अयोध्या पहुँचे।
। भ्रमण में कपूरथला के महाराज कुछ दिनों तक
पके साथ थे।

अयोध्या में आप ५ वर्ष तक रहे। आपको
ाधीनरेश श्रीईश्वरीप्रसादसिंहजी की ओर से
छ वृत्ति भी मिलती रही। अयोध्या से आप
ाल गये। फिर गोरखपुर ज़िले के बरहज नामक
स्थान में पहुँचे। इस समय आप यहीं हैं। यहाँ आये
आपको ३७ वर्ष हो गये। आप श्रीविहारीजी की
गद्दी वाले महन्त से पहले पहल अयोध्या में मिले
थे। तब से अब तक उस गद्दी के चार महन्त हो
गये हैं। शाहजहाँपुर में आपसे स्वामी दयानन्द सर-
स्वती की भी भेंट हुई थी।

आपकी अवस्था लोग १५२ वर्ष की बतलाते
हैं। पर, हमारी खोज से १३६ वर्ष मालूम होती
है। आपकी जन्मतिथि का ज्ञान हमने अनुमान से
प्राप्त किया है। आपका साक्षात्कार जिन आद-
मियों से हुआ है उनकी अवस्था के लिहाज़ से
आपकी उम्र १३६ वर्ष से कम नहीं।

इतने दिन आपको बरहज आये हुए, आप सदा
एक ही रस रहते हैं। आज तक आपको केवल
एक बार थोड़े दिनों के लिए कुछ शरीर-पीड़ा
हुई थी। आप न तो किसी से कुछ माँगते जाँचते
हैं और न किसी को कोई सिद्धि-साधना ही
बताते हैं। किसी के अनुचित प्रश्न का उत्तर भी
आप नहीं देते।

आपका आहार एक समय केवल पाव भर
दूध है। आज कल यह भी कम हो चला है। आप
देख, सुन और कुछ चल फिर भी सकते हैं।
आपकी आवाज़ बड़ी ऊँची है। आप सदा 'ओम्
ओम्' कहा करते हैं। आप कहा करते हैं कि ओम्
चराचर में व्याप्त है। कभी आप गाते, कभी हँसते
और कभी रोते हैं। सोते आप बहुत कम हैं। वेद-
शास्त्र आदि को आप कल्पित और नश्वर मानते
हैं। आप मोक्ष को कुछ नहीं समझते। आपका
प्रथम धर्म वैष्णव था, पर आपने धीरे धीरे उसे
छोड़ दिया। अब आप विधि-निषेध-रहित स्थिति को
पहुँच गये हैं।

लक्ष्मीनारायणसिंह
(जैनगर गौरा, ज़िला गोरखपुर)

कृषक-कथा ।

(३)

कुलवन्ती ! क्या करूँ ! पिता भी चल दिये,
हम दोनों हा ! गये दासता के लिए !
छोड़ गये प्रतिबिम्ब-सदृश सन्तान नहीं,
वे दोनों किस लिए न जिये हैं कहीं ? ॥१॥
सहृदय पाठक ! सुना सुना कर निज कथा
तुम को देना नहीं चाहता मैं व्यथा।
पर तुम रोओ मुझे न रोने दो चाहे !
करके इतनी कृपा सदा सुख से रहो ॥२॥
हा ! मैं रोऊँ जो न आज तो क्या करूँ ?
इस ज्वाला में पड़े और कैसे जरूँ ?
दो बूँदें भी द्रव्य हृदय की दूँ न मैं ?
मानव ही हूँ, शिला खण्ड तो हूँ न मैं ! ॥३॥
रोऊँ किस के निकट ? उन्हीं भगवान के,
दाता जो सुख और दुःख के दान के।
क्या इससे भी हानि किसी की है कहीं ?
यदि है तो वह मनुज नहीं, पशु भी नहीं ॥४॥
प्रकृत कथा, पर कहाँ ? प्रकृतपन खो गया !
अनहोनी का यहाँ आक्रमण हो गया।
दुख में सुख का योग सर्वदा को गया,
गया न परिकर सहित हाय ! क्यों जो गया ? ॥५॥
कुलवन्ती ने कहा—"भाग्य में था यही,
अनहोनी भी इसी लिए हो कर रही।
जाते हम भी वहीं गये हैं वे जहाँ,
कौन हमारे कर्म्म भोगता फिर यहाँ ? ॥६॥
हमको उनके बिना भले ही गति न हो,
पर जीने में उन्हें कौन सुख था अहो !
सौख्य न भी हो मिटे मरण से कष्ट ही,
तो यों उनका कष्ट हुआ है नष्ट ही ॥७॥
'कुछ दिन से क्यों भूख हमारी मर रही ?'
खाते थे अधपेट सदा कह कर यही।
यह मिस था इस लिए कि हम अफरे रहें,
ईश्वर ! ऐसे कष्ट न वैरी भी सहें" ॥८॥
हाय हमारे लिए पिता भूखों मरे,
इसी लिए उत्पन्न हुआ था मैं हरे !
जननी ! जननी ! ओ दुखिनी जननी ! हा !
इसी लिए था हाय कष्ट तू ने सहा ! ॥९॥
तब होगी अपने सुत से तू सुखी,
पर सुत रहते हुए हाय ! दुखी दुखी !
और दुखी ऐसी कि विकल मरना पड़ा,
यह सहना था कष्ट बैठ देना पड़ा ! ॥१०॥
आओ, सब है अवधि ! अहह ! अब तो यहाँ,
शान्त हो गये और ज्ञानात्मा जहाँ।
सब की सब के साथ जहाँ समता रहे,
कभी विषमता न हो, सदा समता रहे ॥११॥
कुलवन्ती ने कहा कि—"अब धीरज धरो,
जिसमें यह संसार चले ऐसा करो।
और जिसे सब यहाँ हमारा ध्यान है,
सब सौंपे वहीं एक भगवान है ॥१२॥
हुआ मामला आज यहीं, मँझधार का,
पता नहीं है किसी ओर भी पार का।
फिर भी, आओ, बने जहाँ तक हम तरें,
प्रभु चाहें तो पार हमें अब भी करें ॥१३॥
मन को रोको, शोक सहन होगा तभी,
उद्यत हो, यह भार वहन होगा तभी।
अपनी चिन्ता नहीं, मिला जो था दिया,
पर क्या देंगे उन्हें कि जिनसे है लिया ?" ॥१४॥
हैं बस मेरे प्राण, जिसे अब चाह हो,
ज़मींदार ही हो कि महाजन साह हो।
यों कह कर मैं मौन हो गया आपही,
वह भी बोली नहीं, रही चुपचापही ॥१५॥
किन्तु उसी का कथन सर्वथा ठीक था,
मेरा यह आक्षेप नितान्त अलीक था।
कुछ भी हो, संसार आप चलता नहीं,
मर जाओ, पर प्रकृति-नियम टलता नहीं ॥१६॥
जलता है यदि हृदय तुम्हारा तो जले,
खलता है यदि खान-पान भी तो खले।
करना होगा काम छटपटाते हुए,
डूबो भी तो हाय फटफटाते हुए ! ॥१७॥
ले कर गाड़ी-बैल खेत पर मैं गया,
हुआ हृदय का शोक वहाँ फिर से नया।

ण क्षण में था पिता-स्मरण ही जग रहा,
मे सींचता हुआ नेत्र-जल फिर बहा ! ॥१८॥
लगा लोटने शून्य देख सब ओर मैं,
सह कर भी यों शोक मरा न कठोर मैं ।
मरता कैसे, अभी और भी भोग था,
मृत्यु दूर थी और मानसिक रोग था ! ॥१९॥
पानी था कुछ बरस गया इस बीच में,
पर वह हमको और फँसाने कीच में ।
घर में था जो अन्न उसे भी खो दिया,
गया बीज वह व्यर्थ कि जो था बो दिया ! ॥२०॥

एक बार ही बरस पयोद चले गये,
विधि से भी हम दीन किसान छले गये !
वर्षा में ही हुआ शरद का घाम था,
करता मानों धवल चन्द्र उपहास था ! ॥२१॥
आशाङ्कुर भी गये काल-पशु से चरे,
पीले पड़ने लगे खेत जो थे हरे ।
दृग न सूखना देख सके, बरसे सही,
किन्तु धरा की गोद रिक्त हो कर रही ! ॥२२॥
जहाँ कुएँ थे वहाँ परोहे भी चले,
पर सौ में दो चार खेत फूले-फले ।
मैं क्या करता ? प्राण छटपटाने लगे,
नहरों वाले गांव याद आने लगे ! ॥२३॥
यह दुकाल था, देश हुआ उत्सन्न सा,
भुस चारा भी चढ़ा तुला पर अन्न-सा !
ऋण-दाता भी और न धीरज धर सके,
बहुत दया की थी, न और फिर कर सके ! ॥२४॥
साह, महाजन, ज़मींदार तीनों ठने,
वात, पित्त, कफ सन्निपात जैसे बने !
पन्द्रह दूनी तीस साह ने भी किये,
मौके पर थे दिये पुलिस-प्रभु के लिए ! ॥२५॥
सन्ध्या थी इस समय तामसिक याम था,
क्या कहूँ अमीन, मुझी से काम था !
मेरापन आत्म-भाव खोने लगा,
था वह सभी कुर्क होने लगा ! ॥२६॥
रा मैं बना घोर गम्भीर था,
हो गया अकम्प शरीर था !

सभी ओर से बद्ध हुआ-सा मैं रहा,
मानों शोणित भी न नाड़ियों में बहा ! ॥२७॥
कुलवन्ती से कहा गया—"गहने कहां ?"
थी चांदी की एक मात्र हँसली वहां ।
जब तक उन्हें अमीन छीनने को कहे—
उसने आप उतार दिया, ऋण क्यों रहे ! ॥२८॥
हुआ काम भी और रहा क़ानून भी,
नज़राने में क्या न जमेगी दून भी !
दल-बल-सहित अमीन गया सानन्द ही,
मैं कुलवन्ती-सहित रहा निस्पन्द ही ॥२९॥

आगन में यममूर्ति यामिनी आगई,
घर के भीतर अटल अँधेरी छा गई ।
लाख लाख नक्षत्र-नयन नभ खोल कर—
हमें देखने लगा न कुछ भी बोल कर ! ॥३०॥
देख, दैव ! तू देख, हमारे नाश को,
देखा मैंने एक बार आकाश को ।
तत्क्षण मुहँ पर दिया थपेड़ा वायु ने,
साथ न छोड़ा किन्तु अभागी आयु ने ! ॥३१॥
कुलवन्ती भी उठी, निकट आई तथा,
बोली—"अब-"बस, कह न सकी फिर कुछ कथा !

लिपट गई वह फूट फूट कर रो उठी,
मैं भी रोया, विषम वेदना हो उठी ! ॥३२॥
ऐसे निर्दय भाव भरे हैं वित्त में,
एक बार ही लगी आग सी चित्त में ।
बोला मैं—अब हैं स्वतन्त्र दोनों जने—
मैं शिव हूँ, तू शक्ति, देश मरघट बने ! ॥३३॥
नहीं, नहीं, शिव नहीं, बनूँगा रुद्र मैं,
जानेंगे सब लोग—नहीं हूँ क्षुद्र मैं ।
पुलिस मुझे थी व्यर्थ लुटेरा कह रही,
देखे अब वह शीघ्र कि हाँ, मैं हूँ वही ! ॥३४॥
आप लुटेरे, और बनाते हैं हमें,
लुटवाते हैं आप, सताते हैं हमें ।
करते हैं बदनाम सभ्य सरकार को,
करते हैं जो दूर सदा अधिकार को ॥३५॥
ज़मादार वह कहाँ ? आज पकड़ें मुझे,
आवें, आकर यहाँ आज जकड़ें मुझे !

पञ्चक जिनके सीत मुझे देने पड़े—
खटकेंगे आ-मरण कलेजे में गड़े ! ॥३६॥
यदि मैं डाकू बनूँ न मेरा दोष है ?
दोषी है तो पुलिस, उसी पर रोष है।
ज़मींदार भी कु-फल किये का पायगा,
रूठे रुपये फिर न कभी लिखवायगा ! ॥३७॥
और महाजन ! क़र्ज़ लिया उससे सही,
किन्तु ब्याज की लूट नहीं जाती सही !
मुझ से मेरे बन्धु न लुटने पायँगे,
वही लुटेंगे जो कि लूटने जायँगे ॥३८॥
मैं क्या क्या कह गया न जाने, रोष से,
गूँज उठा घर घोर घटा-से घोष से।
मन में आया, आग लगा दूँ मैं अभी,
इसी गेह से भभक उठे भारत सभी ॥३९॥
कुलपत्नी डर गई, कष्ट पाती हुई—
बोली कातर गिरा गिड़गिड़ाती हुई—
"हा हा खाती हूँ, न हाय ! तुम यों कहो,
शान्त रहो, दुर्भाग्य जान कर सब सहो ॥४०॥
न लो लूट का नाम, पाप है पाप ही,
फल पावेंगे सभी किये का आप ही।
छोड़ो बुरे विचार पाप-प्रतिकार के,
न्यायालय हैं खुले हुए सरकार के ॥४१॥
कोई हो, जब दोष सिद्ध हो जायगा—
दण्ड पायगा, कभी न बचने पायगा।
प्रभु के घर भी न्याय और सु-विचार है,
भला, दण्ड का हमें कौन अधिकार है ? ॥४२॥
पर न रहो अब यहाँ, और भी हैं कहाँ,
चलो, चलें, हो जाय आश्रय अपना जहाँ।
सास-ससुर के पूज्य तीर्थ में छोड़ कर—
आँसू ही मैं चला यहाँ कर जोड़ कर ॥४३॥
यहाँ ऐसा दुःख करेगी अन्त में,
सारे दुःख-सन्ताप हरेगी अन्त में।
भाग्य हमारे बुरे, किसी ने क्या किया ?
हरि ने भी वनवास एक दिन था लिया ! ॥४४॥
आग लगे क्यों, और देश भी क्यों जले,
फूली रहे बन और सदा फूले फले।
भूमि बहुत है, कहीं और बस जायँगे,
प्रभु देंगे तो कभी सु-दिन भी पायँगे ॥४५॥
तुम मेरे सर्वस्व, मुझे मत छोड़िये,
विचलित हो कर नियम न कोई तोड़िये"।
यों कह कर वह मुझे पकड़ कर रह गई,
गद्गद होती हुई अकड़ कर रह गई ! ॥४६॥
कुलपत्नी, हे प्रिये, शान्त हो, शान्त हो,
चलो जहाँ पर मनुज न हो, एकान्त हो।
तू ही मेरी एक मात्र है सम्पदा,
दीप-शिखा-सी मार्ग दिखाती रह सदा ॥४७॥
था मैं भी आवेग उसे पकड़े खड़ा,
इसी समय कुछ शब्द द्वार पर सुन पड़ा,
सांकल खटकी और सिपाही ने कहा—
बेगारी चाहिए, निकल, क्या कर रहा ! ॥४८॥
बेगारी ? क्या नहीं आज भी मुक्ति है !
बचने की अब यहाँ कौन सी युक्ति है !
छूटे अब तो पिण्ड, देश हम छोड़ते,
सब से निज सम्बन्ध सदा को तोड़ते ! ॥४९॥
यम के रहते हुए हाय ! ऐसी कथा,
पूरी हो बस यहीं अधूरी यह कथा
दयानिधे ! क्या दया तुम्हारी चुक गई !
और अधिक क्या कहूँ ? गिरा भी रुक गई ! ॥५०॥

मैथिलीशरण गुप्त

सोना निकालने वाली चींटियाँ।

लोगों का विश्वास है कि भारत में ... समय ज़मीन से सोना निकालने ... चींटियाँ थीं। सब से पहले ... हेरोडोटस नामक इतिहास-लेखक ने सोना नि... वाली इन चींटियों का हाल लिखा। वह ... है—"भारत के उत्तर में काशपेटायरस (K... ...) और पेक्टायिका (Paktayika) के पास ... जाति रहती है। इस जाति के लोग और ... अधिक साहसी होते हैं। इस लिए ये लोग ... लाने के लिए भेजे जाते हैं। भारत के इस ...

.भूमि है, जिसमें एक तरह की चींटियाँ रहती वे ऊँचाई में कुत्तों से कुछ कम और लोमड़ियों कुछ अधिक होती हैं। फ़ारिस के बादशाह के कुछ ऐसी चींटियाँ हैं। ये चींटियाँ ज़मीन के र रहती हैं। यूनान की चींटियों से इनकी आकृति ती जुलती है। ज़मीन के भीतर जाकर ये अपने रेत डाल लेती हैं। जो रेत ये ऊपर फेंकती हैं में सोना रहता है। जो लोग वहाँ जाते हैं वे ने साथ तीन ऊँट भी ले जाते हैं। वहाँ पहुँच वे जल्दी जल्दी अपनी थैलियों में वह रेत भर हैं। फिर शीघ्रता से वे भाग निकलते हैं। क्यों तुरन्त ही चींटियाँ उनकी महक पाकर उनका ा करती है। यदि वे लोग तेज़ी से न भाग सकें चींटियों के हाथ पड़ कर उनमें से एक भी जीता लौटता। भारत के लोग अधिकांश सोना इसी ह पाते हैं"।

यूरोप के मध्य-कालीन ग्रन्थकारों ने भी इन टियों का उल्लेख किया है। अरब और तुर्क लोगों भी इनका हाल लिखा है। अठारहवीं सदी के अन्त लार्चर नामक एक फ्रेंच विद्वान् ने हेरोडोटस के प का अनुवाद करते समय लोगों का ध्यान इस र खींचा था। सन् १७८८ में मेजर रेनल ने यह ट किया कि इन चींटियों का रङ्ग सफ़ेद था। ीसवीं सदी के आरम्भ में पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने यह ख्यय किया कि ये चींटियाँ चींटियाँ नहीं, गीदड़ था लोमड़ी के सदृश कोई जानवर होंगे। विलसन साहब ने उन लोगों के इस सिद्धान्त को उन सिद्ध कर दिया। उन्होंने प्राचीन संस्कृत-ाहित्य से प्रमाण भी उद्धृत किये। महाभारत में हाँ पर युधिष्ठिर को भेंट में दिये गये रत्नों का र्णन है वहाँ पर 'पेपीलिका' नाम के एक रत्न का उल्लेख है। उसका 'पेपीलिका' नाम इस लिए ा था कि वह पिपीलिकाओं द्वारा सञ्चित किया या था।

मास्टबुन नामक एक साहब ने ही पहले पहल ह अनुमान किया कि ये चींटियाँ मनुष्यों ही की कोई जाति थी। हेरोडोटस के अनुसार इन चींटियों का स्थान कासपेटायरस और पेक्टायिका के समीप होना चाहिए। कासपेटायरस से अभिप्राय कश्यप-पुर (काश्मीर) से है और पेक्टायिका से पख्तुम है, जो अफ़ग़ानिस्तान के पूर्व में है। अस्तु।

प्राचीन काल से ही काश्मीर के राजाओं ने तिब्बत को अपने अधिकार में लाने के लिए कई बार प्रयत्न किया था। इन चींटियों का स्थान भी हेरोडोटस ने भारत के उत्तर में बतलाया है। यह जगह तिब्बत ही हो सकती है। इस अनुमान की पुष्टि में और भी कई बातें कही जा सकती हैं। यथा—

महाभारत में जो लोग पेपीलिका लाये थे उनका नाम 'खस' दिया गया है। राजतरङ्गिणी के अनुसार खस जाति काश्मीर के पास ही रहा करती थी। युधिष्ठिर को भेंट दी गई वस्तुओं में पेपीलिका के साथ हिमालय के मधु और चमरों का भी उल्लेख है। चमर 'यक' नाम के तिब्बतीय पशुओं की पूँछ से बनाये जाते हैं। सन् १८६५ में ब्रिटिश गवर्नमेंट ने कुछ लोगों को तिब्बत में अनुसन्धान करने के लिए भेजा था। उन में से कुछ लोग नारी-खोरसम नामक जगह में जाकर बीमार पड़ गये। उन्हें वहीं ठहरना पड़ा। नारी-खोरसम में सोने की कई खानें हैं। वहाँ रह कर उन्होंने खान का काम देखा। १८६८ में एक और सज्जन वहाँ गये। उन्होंने भी वहाँ का काम देखा। हेरोडोटस ने सोना निकालने वाली चींटियों की जगह को मरुभूमि कहा है। इन लोगों का भी कहना है कि तिब्बत की यह जगह बहुत उजाड़ और धातुकामय है। यह जगह सोने के लिए प्रसिद्ध भी है। इस कारण, जान पड़ता है, यही उन चींटियों का स्थान होगा। तब चींटियाँ कौन हैं? तिब्बती लोग! मालूम तो ऐसा ही होता है। जाड़े के दिनों में सोने की खान में काम करने वाले तिब्बती लोग रुयेंदार चमड़े के वस्त्र पहनते हैं। कोई आश्चर्य नहीं जो इसी कारण ये लोग जानवर समझ लिये गये हों।

[illegible] तिब्बत में जाड़ा ख़ूब पड़ता है। इस कारण
[illegible] के लोग ज़मीन के अन्दर ५, ७ फ़ुट नीचे
[illegible] खोद कर रहते हैं। हेरोडोटस की चींटियाँ भी
[illegible] ज़मीन के भीतर रहती हैं। अब इनका कारण
[illegible] समझ में आ सकता है। मेगास्थनीज़ ने लिखा है
[illegible] ये चींटियाँ जाड़े के दिनों में ही ज़मीन खोदती
[illegible]। और दिनों में उतना नहीं। किसी [illegible] इति-
हासकार ने भी कहा है—"ये जाड़े में ही सोना
[illegible] निकालती हैं। भारत के लोग गरमी के दिनों में उसे
[illegible] जाते हैं।" तिब्बत के यात्रियों में से एक ने लिखा
है—"जाड़ा ख़ूब पड़ने पर भी तिब्बती शीत ऋतु में
[illegible] ही काम करते हैं। गरमी के दिनों में उनके डेरों की
[illegible] सङ्ख्या जितनी रहती है उससे दूनी शीत-ऋतु में
हो जाती है।" मेगास्थनीज़ ने यह भी लिखा है कि ये
चींटियाँ शिकार कर के रहती हैं। तिब्बती भी 'यक'
और दूसरे जंगली जानवरों को मार कर अपना
जीवन-निर्वाह करते हैं। ये लोग शिकार खेलने के
लिए कुत्ते भी रखते हैं। तेरहवीं सदी के ग्रन्थकार
मारको पोलो ने इन कुत्तों के विषय में लिखा है
कि ये गधे के बराबर ऊँचे होते हैं। दौड़ने और
शिकार पकड़ने में ये बड़े ही तेज़ होते हैं। हेरोडोटस
ने जिन चींटियों के विषय में लिखा है वे बहुत तेज़
और भयङ्कर होती हैं। वे शायद यही हों। सम्भव
है, यही कुत्ते फ़ारिस भेज दिये गये हों, जिन्हें उन
लोगों ने चींटियाँ समझा हो। हेरोडोटस को इनका
हाल फ़ारिस से ही मालूम हुआ था।

नीअरकस नामक एक मनुष्य सिकन्दर के
साथ भारत आया था। उसने लिखा है कि "यद्यपि
मैंने चींटियाँ नहीं देखीं, पर उनकी खालें देखी हैं।
वे चीते की खाल के सदृश होती हैं"। अच्छा इन
खालों से क्या मतलब? कुछ तिब्बती 'यक' के चमड़े
और सींग पहनते हैं। 'यक' का चमड़ा ही वह खाल
हो सकती है। महाभारत में भी लिखा है कि जो
लोग युधिष्ठिर के पास भेंट की चीज़ें लेकर आये
थे उनमें से कुछ लोग चमड़े और सींग पहने हुए
थे। उनका नाम कङ्क लिखा है। हो सकता है, वे
लोग यही तिब्बती हों।

इन सब बातों से ज्ञात पड़ता है कि सोना
खोदने वाली चींटियाँ ये तिब्बती ही हैं।*

[illegible]

सवितृ-मण्डल।

(Solar System)

प्रकाश का महत्त्व किस मनुष्य को ज्ञात न(हीं)
जानता? प्रभात-समय की मंगलमयी
दर्शनीय सी होती है। [illegible]
मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षी, लता [illegible] [illegible]
गाती [illegible] अपने इस प्रकार भाव को [illegible]
अपने परम प्राणदाता के आने की आशा में उमङ्ग [illegible]
से भरे हुए देख पड़ते हैं। रात्रि का सारा [illegible]
क्षण भर में इस परम देव की कृपा-दृष्टि से नष्ट हो जाता है।
संसार में भय और कायरता का नाम नहीं रह जाता। [illegible]
वान् भास्कर प्राणिमात्र को सदा अभय-दान देते हैं।
सृष्टि के सारे प्राण-धारियों को इतने प्यारे हैं कि इनका
तीन दिन का वियोग—केवल मेघों द्वारा आच्छादन—
असह्य हो जाता है।

तेज और प्रकाश ही जीवन को जीने योग्य बनाता है।
अन्धकार जीवन को भारभूत कर देता है। अतएव तेज है
प्रकाश ही प्राणधारियों के प्राण हैं। इन दोनों के देनेवाले
हैं भगवान् भास्कर। भगवान् भास्कर ही सांसारिक प्राणियों
के प्राण हैं—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

संसार में जितने परिवर्तन दृष्टि आते हैं सब का मुख्य
कारण ताप अर्थात् गरमी है। इसी से शरीरधारियों का शरीर
बढ़ता है, पृथ्वी पर वायु-प्रवाह चलता है और सागरों
में तरङ्गें उठती हैं। इसी से जल का परिवर्तन भाफ़ में होता
है और भाफ़ से वृष्टि होती है। इसी के घटने बढ़ने से
ऋतुओं में परिवर्तन होता है और इसी कारण बर्फ़ से नदियाँ,
नदियों से सागर, सागर से भाफ़ और भाफ़ से फिर भी [illegible]

---

* हिन्दू पेट्रियट के एक लेख का सारांश।
लेखक

वक सर्वदा परिचालित होता रहता है। प्रकाश केवल र की वस्तुओं को दृष्टि-पथ मे ही नहीं लाता, वह प्राणि-यों के सौन्दर्य्य, मनोहरता और विविध प्रकार की शोभाओं भी बढ़ाता है। प्राकृतिक दृश्यों द्वारा मनुष्यों को प्रेम, न, आशा और उदारता की उच्च शिक्षा मिलती है। श का अभाव होते ही संसार के सारे प्राकृतिक दृश्य म नष्ट हो सकते हैं। यह नीला आकाश, ये लाल, , सफ़ेद फूल, यह हरी हरी घास, ये प्यारे प्यारे वनस्पति द सभी प्रकाश के ऋणी हैं। आश्चर्य-जनक इन्द्र धनुष, ा की पुत्तलिका, मृगतृष्णा और अस्थिर गान्धर्व नगर है, जो कवियों की अद्भुत कल्पना को विचित्र रचना का नर देते हैं, प्रकाश-विषयक साधारण नियमों से उत्पन्न । है। इस महोपयोगी प्रकाश के आदि-कारण सूर्यदेव हैं। ब उनका कुछ हाल सुनिए। साथ ही यह भी जान मेए कि भगवान् सूर्य का पृथ्वी आदि अन्य ग्रहों से क्या न्ध है।

साधारण दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि पृथ्वी और शीतल वस्तु है। उसमे उष्णता का जो अंश है वह की बदौलत है। व्यावहारिक दृष्टि से यह बात सच भी पर, परिक्रमण-काल में कुछ सीमा तक पृथ्वी और अन्य का सम्बन्ध एक और प्रकार की उष्णता से भी रहता पृथ्वी की इस प्रकार की उष्णता को हम उसकी आन्त-उष्णता कह सकते हैं। यही उष्णता भिन्न भिन्न साधनों कारणों से मिल कर सूर्य को २६ दिन में अपनी धुरी चारों तरफ़ भ्रमण कराती है। सूर्य का आकार अन्य ग्रहों सम्मिलित आकार से भी बड़ा है। पृथ्वी की यही तरिक उष्णता चन्द्रमा को २७ से भी अधिक दिनों में ने धव के चारों ओर का भ्रमण पूर्ण कराती है। चन्द्रमा आकार पृथ्वी से छोटा है।

सूर्य का ताप ही पृथ्वी की उष्णता का कारण है, यह बात ी के ऊपरी भाग के विषय में ही सच है। भीतरी के लिए यह सच नहीं। पृथ्वी के ऊपरी भाग में अधिक होने पर हम कुवें या किसी गड्ढे में हाथ डाल कर देख ते हैं कि वहाँ अधिक गरमी है। इसी प्रकार पृथ्वी के ी भाग में अधिक गरमी होने पर उसका भीतरी भाग म गरम नहीं रहता। ऊपर की गरमी और सरदी का भीतरी गरमी और सरदी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। पृथ्वी के भीतर ज्यों ज्यों नीचे उतरते जायँगे हमें अधि धिक गरमी मालूम होती जायगी। नीचे के प्रत्येक ६० पर गरमी नापने के यन्त्र (फ़ाहरनहाइट थरमामेट का पारा एक एक दरजा बढ़ता जायगा। यहाँ तक कि ख़ास हद तक पहुँचने पर किसी भी पदार्थ का ठोस अवस मे रहना असम्भव हो जायगा। हां, दबाव की अत्य अधिकता के कारण फिर भी कुछ पदार्थ थोड़ा बहुत ठे अवस्था में रह सकेंगे।

उष्णता की यही गुप्त शक्ति ज्वालामुखी पर्वत उष्ण सरोवरों और उष्ण झरनों द्वारा अपने रुके हु वेग को कभी कभी प्रकट करती रहती है। जब प्रज्वलित वड़वानल मे पानी पहुँच जाता है तब इस भाफ़ की भीषण सृष्टि होती है। इस प्रकार बनी हु भाफ़ दबी हुई उष्णता के वेग को नहीं सह सकत वह एकदम पृथ्वी के भीतरी भाग से बड़े ज़ोर का श करती हुई बाहर निकल आती है। उसके निकलते ही पृ कम्पायमान हो उठती है और एक क्षण में उस पर र वाले हज़ारों, लाखों जीवजन्तु और उनकी निवास शाला नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। जब इस प्रकार घोर गर्जना करती हु काले धुएँ से आकाश को आच्छादित करती हुई और पत्थ की बौछाड़ करती हुई पृथ्वी के भीतरी भाग की भाफ़ बा निकलती है, तब हमें पृथ्वी की भीतरी उष्णता का काफ़ी प्रमा मिलता है। पृथ्वी की भीतरी गरमी इसी प्रकार धीरे ध बाहर निकल रही है। यह इसी तरह धीरे धीरे ठण्डी हो जाती है। सम्भवतः एक दिन पृथ्वी इतनी ठण्डी हो जाय कि उस पर देहधारी न रह सकेंगे। पहली अवस्था में प बहुत उष्ण और पिघली हुई थी। एक समय उस के "गैस" की अवस्था में भी थे।

अधिक उष्णता पहुँचाने से कोई भी वस्तु गैस अवस्था मे परिणत हो सकती है। उस अवस्था में प्रकाश औ उष्णता, ये दोनों गुण उस में वर्तमान रहेंगे। सूर्य में दोनों ही वर्तमान है। इसी से सूर्य को गैस की अवस्था हे सत्यतापूर्ण युक्ति तथा प्रमाण दोनों से सिद्ध है। पाश्चात्य दे के ज्योतिषियों ने दूरबीन के द्वारा सूर्य को देख कर इ सिद्धान्त को और भी पुष्ट कर दिया है। इसी सिद्धान्त

कारण चन्द्रमा की चमक बड़े ग्रहों से नहीं। कोई भी चन्द्रमा अपनी ज्योति से प्रकाशमान नहीं। सबको सूर्य ही से प्रकाश मिलता है। शनैश्चर के एक चन्द्रमा को छोड़ कर और कोई चन्द्रमा हमारे चन्द्रमा से बड़ा नहीं। कोई इसके बराबर है और कोई छोटे। और ग्रह हमारी पृथ्वी की तरह एक ही एक चन्द्रमा नहीं रखते। किसी किसी के तो सात सात, आठ आठ चन्द्रमा हैं। जो ग्रह पृथ्वी की कक्षा के अन्तर्गत हैं उनका एक भी चन्द्रमा नहीं है। पृथ्वी की कक्षा के बाहर वाले ग्रहों के ही चन्द्रमा हैं।

बृहस्पति के चार चन्द्रमा हैं और शनैश्चर की भूमि को आठ चन्द्र प्रकाशित करते हैं। नेपच्यून और पृथ्वी के अधिकार में एक एक चन्द्रमा है। यूरेनस और मङ्गल दो दो चन्द्रों से सेव्यमान हैं। मङ्गल के चन्द्र अत्यन्त छोटे हैं।

छोटे छोटे ग्रह सूर्य के समीप और बड़े बड़े उससे दूर हैं। पृथ्वी की कक्षा के अन्तर्गत दो ग्रह—बुध और शुक्र—हैं। मङ्गल से ले कर नैपच्यून तक पाँच ग्रह पृथ्वी की कक्षा के बाहर भ्रमण करते हैं। छोटे छोटे ग्रहों की गति मन्द और बड़े बड़े ग्रहों की वेग-पूर्ण है। छोटे ग्रह—बुध, शुक्र, पृथ्वी और मङ्गल—अपनी धुरी के चारों तरफ़ घूमने में कोई २४ घण्टे लेते हैं, पर सब से बड़ा बृहस्पति केवल १० घण्टे में अपनी धुरी पर एक बार घूम जाता है।

सूर्य के अनन्तर चित्त को आश्चर्य में डुबोने वाला दृश्य अँधेरी रात में तारागणों से जड़ा हुआ निर्मल आकाश है। वहाँ सौर जगत् का बड़े से बड़ा ग्रह जगमगाता हुआ तारा-रूप में दिखाई देता है। कई अन्य सौर जगतों के सूर्य भी बड़ी दूर होने के कारण ताराओं जैसे दीखते हुए आकाश की शोभा को और भी अधिक बढ़ाते हैं। हमारी पृथ्वी भी यदि चन्द्र अथवा मङ्गल-ग्रहों पर से देखी जाय तो एक छोटी तारका सी मालूम हो।

जयवन्तराम, बी० ए०, बी० टी०

पौराणिक राज-वंशों का समय-निरू

लेखक, पं० हीरानन्द शास्त्री, एम० ए०

(३)

यादव-वंश।



जिस राज-वंश के राजाओं के नाम सूर्य वंश से कुछ कम पाये हैं वह यादव-वंश है। सूर्य में ९६ राजाओं के नाम मि हैं, इस वंश में ७७ राजाओं के नाम। अयोध्या के पश्चिम राज्य, निकट होने के कारण, विदेशियों के अधिक आक्रमण किये गये। यादव लोगों का था सुदूर दक्षिण की ओर। इस कारण वह आक्रमण से बच गया। इससे यह वंश अविच्छिन्न ही रहा। दूर होने के कारण जिस में इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उत्तरी हिन्दुस्तान से रहा उस काल का इसका इतिहास उत्तरी के इतिहास-लेखकों को अज्ञात ही रहा। के कारण है कि इस वंश में नाम अधिक मिलने भी इसके राजाओं के कृत्यों का बहुत कम पाया जाता है।

वैवस्वत मनु के इला नाम की एक कन्या चन्द्र के पुत्र बुध से इसने पुरूरवा नाम का एक प्रसव किया। मनु का राज्य जब उसके इक्ष्वाकु पुत्रों ने बाँट लिया तब इला को विशेष कुछ भी मिला। वसिष्ठ ऋषि की सिफ़ारिश से केवल प्रति नामक एक स्थान इसके हिस्से में पड़ा। इसी प्रति का राज्य पुरूरवा को प्राप्त हुआ। प्रतिष्ठान विषय में विद्वान् लोगों का बहुत मतभेद है। तो इसका सम्बन्ध दक्षिण के पैठण नामक गाँ बताते हैं; कोई, कालिदास के वर्णनानुसार, यमुना-सङ्गम के पूर्व तीर पर इसका होना मान करते हैं—जहाँ आज कल झूँसी नाम गाँव है—और कोई, उर्वशी तथा गन्धर्व लोगों



अनन्त महाप्रभु ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

घ गान्धार देश से समझ कर, प्रतिष्ठान को
। का देश बताते हैं। प्रतिष्ठान के स्थान-निर्णय
प पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते। कुछ भी हो,
प-ब्राह्मण में जो उर्वशी-पुरूरवा की कथा है
लिखा है कि उर्वशी भेड़ों का पालन करती
गान्धार देश की स्त्रियाँ आज कल भी सेप
ो हैं। इसके सिवा यह बात भी प्रसिद्ध है कि
था गन्धर्व-लोगों ही में से था। इन दोनों कारणों
न्धार और काबुल से पुरूरवा का सम्बन्ध जो
ान किया जाता है वह ठीक जान पड़ता है।

पुरूरवा के आयुस् तथा अमावसु नामक दो पुत्र
उनमें से अमावसु कान्यकुब्ज-देश का राजा
। उसके वंश का वर्णन कान्यकुब्ज के राजाओं
रूपण में किया जायगा। आयुस् को प्रतिष्ठान
ाज्य मिला। उसका पुत्र नहुष और नहुष का
ययाति हुआ। नहुष का दूसरा पुत्र क्षत्रवृध
ी का राजा हुआ। उसके वंश का वर्णन काशी
ाजाओं के निरूपण में किया जायगा। ज्ञात होता
ऽ ययाति के समय तक काबुल के आस पास,
ट में ही, इन राजाओं का राज्य रहा। क्योंकि
ति ने असुरराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा
असुर-गुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से
ह किया था। यदि सी० वी० वैद्य महाशय का
कथन कि असुर लोग पर्शिया के निवासी थे
हो तो ययाति के राज्य का गान्धार देश के
ऽ पास ही होना अधिक सम्भव है। क्योंकि
भारत के अनुसार राजा ययाति आखेट खेलते
ते असुर राज्य में जा पहुँचा था। ययाति का
ऽ कहीं भी रहा हो, उसने अपने पराक्रम से
मी राज्यवृद्धि खूब की और चक्रवर्तित्व का पद
। किया। उसे देवयानी से यदु और नाम
ा पुत्र हुए और
नाम के ही
ों में

ही दिया। उसका वंश पौरव वंश के नाम
से ख्यात है -

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः॥

इस न्याय से पुरु को राज्य मिलने पर उसके
बाक़ी चारों भाइयों ने चारों तरफ़ बढ़ कर अपना
राज्य जमाना चाहा। पर पूर्व की ओर बढ़ना अस-
म्भव ही सा था, क्योंकि काशी, कान्यकुब्ज, अयोध्या
आदि में पहले से ही राज्य-स्थापना हो चुकी थी।
इस कारण अनु उत्तर की ओर गया और वहाँ
उसने अपना राज्य स्थापित किया। "दिशि दक्षिण-
पूर्वस्याम्"—अर्थात् आग्नेय दिशा में तुर्वसु ने अपना
राज्य जमाया। उसीके वंशज आगे बढ़ते बढ़ते
केरल, पाण्ड्य और चोल देश तक राज्य करने लगे।
पर अनुमान किया जाता है कि दक्षिण के राक्षसों
के मुक़ाबले में ये बहुत दिन तक न ठहर सके।
अन्त में ये सब नष्ट होगये। इसीसे इनका वंश-
वर्णन कहीं नहीं पाया जाता। द्रुह्यु ने पश्चिम
दिशा की ओर प्रस्थान किया, पर असुरों के कारण
उसका भी वही हाल हुआ जो तुर्वसु और उसके
वंशजों का हुआ था। बाक़ी रहा यदु। वह नैर्ऋत्य
की ओर बढ़ा और वहाँ उसने अपना राज्य
स्थापित किया।

यदु का राज्य नर्मदा नदी के उत्तर में, अर्थात्
वर्तमान मालवा और गुजरात में, था। यदु के दो
पुत्र थे—क्रोष्टु और सहस्रजित्। यदु के पश्चात्
उसका राज्य इन दोनों भाइयों में बँट गया। सहस्र-
जित् को मालवा मिला। उसके वंशज महिष्मान् ने
नर्मदा-तट पर माहिष्मती नगरी को अपनी राज-
धानी बनाया। माहिष्मती के वर्णन के आधार पर
विद्वानों का अनुमान है कि आज कल जहाँ ओंका-
रेश्वर महादेव का स्थान है वहीं यह नगरी थी।
का मन्दिर इन्दौर-खँडवा लाइन के
ेशन से सात मील पर है। यह
ने घिरा हुआ है और एक चट्टान
। सहस्रजित् के वंशज आगे चल कर
नाम से प्रसिद्ध हुए।

क्रोष्टु का राज्य गुजरात में स्थापित हुआ। उसी के वंशज यादव नाम से विख्यात हुए। क्रोष्टु से लेकर मान्धाता नामक सूर्य्यवंशी राजा के श्वशुर शशविन्दु तक, बीच में, चारही राजाओं के नाम पुराणों में पाये जाते हैं। पुराणोक्त क्रम यह है—क्रोष्टु से वृजनीवान्, उससे स्वाही, उसके पश्चात् रुषद्गु, उसके अनन्तर चित्ररथ और चित्ररथ से शशविन्दु। कालदृष्टि से देखा जाय तो यदु सूर्य्य-वंशी राजा पृथु का समकालीन था और शशविन्दु मान्धाता के बाप द्वितीय युवनाश्व का। पृथु और युवनाश्व द्वितीय के बीच सूर्य्यवंश में तेरह नरेश हुए। पुरु यदु का भाई था और मतिनार युवनाश्व द्वितीय का श्वशुर था। उसी समय इन दोनों के बीच, पौरव वंश में, बारह नरेश हुए। इससे अनुमान किया जाता है कि क्रोष्टु से शशविन्दु तक जो नाम पुराणों में हैं वे क्रम-प्राप्त नहीं हैं। वे उस काल के केवल चार प्रसिद्ध राजाओं के नाम हैं।

शशविन्दु बड़ा पराक्रमी राजा था। उसने आस पास के कुछ देश जीत कर चक्रवर्तित्व का पद प्राप्त किया। पौरव राजाओं की वंशावली से अनुमान किया जाता है कि शशविन्दु ने पौरव राज्य को जीत कर यादव राज्य में मिला लिया था। क्योंकि मतिनार का पुत्र तंसु मतिनार के दामाद युवनाश्व द्वितीय का, तथा युवनाश्व द्वितीय के समधी शशविन्दु का समकालीन होना चाहिए। यहाँ पर इसी तरह का एक अनुमान और भी किया जा सकता है। वह यह कि विदर्भराज की कन्या राजा सगर को ब्याही थी और उसकी पोती भरत को। अतएव विदर्भ-राज, सगर का बाप राजा बाहु और भरत का दादा ऐलिन् समकालीन होने चाहिए। परन्तु शशविन्दु और विदर्भ के, तथा युवनाश्व और बाहु के, बीच तो बीस राजे हो गये, पर पौरव कुल में तंसु तथा ऐलिन् के बीच एक भी न हुआ। इस कारण यही अनुमान होता है कि तंसु और ऐलिन् के बीच पौरव वंश का विच्छेद हो गया [illegible] गे चल कर, दुष्यन्त के समय में फिर से उस वंश की स्थापना हुई। उत्तरवर्ती [illegible] लेखकों ने तंसु और ऐलिन् का पिता पुत्र सम[illegible] भूल से लिख दिया जान पड़ता है। चक्रवर्ती [illegible] होने के लिए देश-विजय आवश्यक होता है। [illegible] भी यही अनुमान दृढ़ होता है कि शशविन्दु ने पौ[रव] राज्य को जीत कर यादव राज्य में मिला लि[या] होगा।

चक्रवर्ती शशविन्दु के बाद यादव कुल में [illegible] आदि सात राजे हुए। उनके नाम पृथुयशा, पृथुक[र्मा], पृथुजय, पृथुकीर्ति, पृथुदान, पृथुश्रवा और पृथुसत्[तम] थे। ये सातों शशविन्दव नाम से भी विख्यात हु[ए]। वायु-पुराण के अनुसार ये सातों भाई थे और [illegible] के बाद दूसरे ने राज्य किया। पर यह कल्पना [illegible] सी जान पड़ती है। सातों भाई का, एक के बा[द] एक, राज्य करना अशक्य नहीं तो असम्भा[व्य] अवश्य है। इसलिए यहाँ पर वायुपुराण [की] अपेक्षा कूर्म-पुराण का लेख अधिक सङ्गत [जान] पड़ता है। उसमें लिखा है कि ये सातों भाई [illegible] न थे। इनमें एक दूसरे से पिता-पुत्र का सम्बन्ध था।

पृथुसत्तम के बाद यादवराज्य अन्तर [illegible] सुयज्ञ के हाथ से उशना नामक राजा के हा[थ] आया। अपने मित्र कार्तवीर्य्यार्जुन की सहायता से इस राजा ने कई अश्वमेध यज्ञ किये। इसका पु[त्र] शिनेयु, शिनेयु का पुत्र मरुत्त, मरुत्त का [illegible] बर्हि, उसका रुक्म-कवच और रुक्म-कवच का पु[त्र] परावृत्त हुआ। रुक्म-कवच ने विन्ध्य पर्वत [illegible] कवची नामक लोगों को जीत कर बहुत सा [धन] प्राप्त किया और उसे ब्राह्मणों को बाँट दिया।

परावृत्त के पाँच पुत्र हुए—रुक्मेषु, पृथुरु[क्म], ज्यामघ, परिघ और हरि। जान पड़ता है, परा[वृत्त] के समय में यादव-राजाओं का थोड़ा बहुत [illegible] विदेह देश पर भी हो गया था। क्योंकि वायुपुरा[ण] में लिखा है—"परिघञ्च हरिञ्चैव विदेहेऽस्थाप[य]त्पिता"। पर विदेह देश के हर्यश्व और मह [illegible] ने उन्हें शीघ्र ही निकाल दिया होगा। दो कनिष्ठ पु[त्रों] को विदेह देश में राज्य देकर परावृत्त ग[ए]।

मेघु को अपना प्रधान राज्य दिया। पृथुरुक्म ने भाई रुक्मेषु ही के आश्रय में रहा। पर इन्होंने मघ को राज्य से निकाल दिया। वह बेचारा ती जङ्गली स्थान में किसी के आश्रय में रहने ा। वहाँ एक ब्राह्मण ने उसे क्षात्र-धर्मोपदेश या। उसकी प्रेरणा से ज्यामघ नर्मदा के दक्षिण ऋक्षवान् (सतपुड़ा) पर्वतस्थ शुक्तिमती मक नगरी में जा बसा। ज्यामघ के पश्चात् देश उसके पुत्र के नामानुसार विदर्भ नाम प्रसिद्ध हुआ। यहीं से उसने दिग्विजय का रम्भ करके यादव-राज्य को फिर से प्राप्त किया। की स्त्री का नाम शैव्या था। अपनी रानी पर राजा की अपार प्रीति थी। दूसरी स्त्री करने अपेक्षा अपुत्र रहना ही इसने अच्छा समझा। त में इसे शैव्या से ही एक पुत्र की प्राप्ति हुई। का नाम विदर्भ हुआ।

विदर्भ के दो पुत्र क्रथ और कैशिक नाम के । उनके नाम के भी देश विदर्भ-राज्य में सम्मि- त थे। क्रथ के पुत्र कुन्ति ने महाराष्ट्र का भी कुछ ा जीत लिया। इस कारण महाराष्ट्र का नाम न्तिराष्ट्र भी प्रसिद्ध हुआ। महाभारत के समय यह देश इसी नाम से प्रसिद्ध था। कुन्ति के यादव-वंश में धृष्टि, निर्वृति, विदूरथ, दाशार्ह, मा, जीमूत, विकृति और भीमरथ नाम के राजे ा क्रम हुए। यही पिछला भीमरथ राजा नल और तुपर्ण का समकालीन था।

भीमरथ के दम नाम का पुत्र हुआ। दम का नवरथ दक्षिण की ओर चढ़ गया, पर क्षसों" से पराजित होकर उसे लौटना पड़ा। से यादव लोग दक्षिण की ओर बढ़ने की अपेक्षा र ही की ओर बढ़ते चले। यहाँ तक कि उन्होंने थ राज्य छीन कर पौरव राज-वंश का उच्छेद ही डाला। नवरथ के बाद दशरथ, शकुनि, करम्भ, रात और देवक्षत्र के समय में "राक्षसों" ने दों को दक्षिण से बिलकुल ही निकाल बाहर किया—यहाँ तक कि देवक्षत्र के पुत्र मधु के समय में यादव लोग मथुरा के आसपास हट आये। मधु का पुत्र कुरुवश, कुरुवश का अनु और अनु का पुरु- हूत् हुआ। पुरुहूत् की स्त्री भद्रवती से उसे पुरुहोत्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ। पुरुहोत्र का पुत्र अंशु और अंशु का सत्वत् हुआ। सत्वत् के पुत्र सात्वत की स्त्री इक्ष्वाकु कुलोत्पन्ना कौशल्या नाम की थी। पर उस राजा का नाम न मिलने से यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह किस राजा की कन्या थी। बहुत सम्भव है, वह प्रथम विश्वसह की कन्या हो। उसने कुण्ड और गोल लोगों के हितसाधनार्थ एक शास्त्र बनाया। पर उस शास्त्र का पता नहीं कि उसमें क्या था।

सात्वत के समय से यादव वंश की कई शाखायें हो गईं। उनमें से चार शाखायें बहुत प्रसिद्ध हुईं। पहली शाखा का आरम्भ ज्येष्ठ पुत्र भजमान से हुआ। इसी शाखा में सत्यभामा का पिता सत्राजित् हुआ। दूसरी वृष्णि से निकली। कृष्ण के समकालीन अक्रूर उसी शाखा के थे। तीसरी शाखा में वसुदेव हुए। चौथी शाखा यादव- राज्य का सञ्चालन करती रही। उसमें सात्वत से अन्धक, अन्धक से कुकुर, फिर वृष्णि, फिर धृति, फिर कपोतरोमा, और अन्त में विलोमा नाम के राजे हुए। इसके अनन्तर तित्तिर, तैत्तिरी, नल, अभिजित्, पुनर्वसु, आहुक, उग्रसेन और कंस नामक राजे हुए। इस समय यादवों में एकता न थी। कंस को मार कर वसुदेव-पुत्र कृष्ण मथुरा के राजा हुए। चेदि-राज जरासन्ध के भय से उन्होंने अपनी राजधानी मथुरा से हटा कर द्वारका में नियत की। भारतीय युद्ध के पश्चात् कृष्ण पुत्र साम्ब को ऋषि-शाप हुआ। उसके कारण सारे यादव आपस में ही लड़ कर कट मरे। इस तरह यादव-वंश की समाप्ति हो गई।

सुधा ।

(१)



रव निशा में निशाकर के रजत-किरण धारण कर लेने से निर्मल नीलाकाश की अपूर्व शोभा होगई है । आज पूर्णिमा है । ऋतुराज के राज में दिगन्त को कम्पित करते हुए पपीहा मधुर-स्वर से गान कर रहा है । चतुर्दिक् कुसुम-सुगन्ध से परिपूर्ण हो रही है । निर्जन गृहकोण में बैठे हुए शशिशेखर सोच रहे हैं—"मैं किस अन्याय-कार्य्य में प्रवृत्त हो रहा हूँ" ।

मस्तक के ऊपर शैलबाला का तैल-चित्र सुशोभित है । ऊपर की ओर देख कर शशिशेखर कहने लगे—"शैल ! अब भी मैं तुम्हें भूल नहीं सकता । इस जीवन में तुम्हें कभी न भूल सकूँगा । भूलने का भाव भी हृदय में उपस्थित नहीं होता । जिस प्रकार चिरकाल-पर्य्यन्त मैंने तुम्हारी आराधना की थी उसी प्रकार शेष जीवन भी तुम्हारी ही आराधना में व्यतीत करूँगा । क्या इतने पर भी तुम मुझे अपने पास न बुलालेगी" ?

तैल-चित्र उसी प्रकार नीरव रहा । उसकी दृष्टि में तिरस्कार की कठोरता न थी; न अनादर का मृदु हास्य ही विद्यमान था । उसकी दृष्टि स्थिर तथा अचञ्चल थी, परन्तु कोई अलौकिक भाव उसमें अज्ञात-स्वरूप से अवश्य विद्यमान था । शशिशेखर उस दृष्टि का भाव जान लेने में समर्थ हुए । वे उच्चस्वर से बोल उठे—"शैल ! तुम मुझे वृथा दोषी बनाती हो । मैंने अपनी इच्छा से विवाह नहीं किया । यद्यपि माता ने अपना हठ पूर्ण किया, तथापि क्या मैं तुम्हारी आनन्ददायिनी मूर्ति हृदय-मन्दिर से बाहर करने में समर्थ हो सकता हूँ ? कदापि नहीं ! तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री देवी हो । मेरे हृदय में 'सुधा' के लिए तिलमात्र भी स्थान नहीं" ।

इतने में पीछे से कोई कोमल मधुर-स्वर में बोला—"[illegible] ! मैं दासी हूँ" ।

छत से चन्द्र की चन्द्रिका छिटक रही थी । पूर्वोक्त शब्द कहने वाली के रूप तथा सुन्दरता को मधुर ज्योत्स्ना देदीप्यमान कर रही थी । शेखर के विचार भङ्ग हुए । फिर कर देखा तो अनिन्द्यसुषमामयी रमणी की मूर्ति । कम्पित-कण्ठ से शेखर बोले—"सुधा ! यहां क्यों आई जाओ माता के पास जाओ" ।

नेत्रों को नीचे किये हुए सुधा बोली—"प्रभु ! के लिए तो अपराधिनी को क्षमा करो । चरण-कमल की आज्ञा देकर आज इस दासी को कृतार्थ होने दो" ।

शेखर चुप रहे । तब सुधा ने हाथ में लिये हुए से शेखर के दोनों पैर रँगे । अनेक दिन बाद स्वामी के चरण पर गिर पड़ी । फिर उठ कर "हृदयेश ! मेरी पूजा समाप्त होगई । मैं जाती हूँ" ।

सुधा चली गई । ऊर्ध्व-आबद्ध दृष्टि से देखते शेखर अचल अटल भाव से बैठे रहे ।

(२)

इस घटना को हुए कितने ही दिन व्यतीत हो परन्तु शशिशेखर के हृदय का दुर्दमनीय वेग शान्त न हो सका । कितनी ही नीरव निशाओं ने, कितने ही बार कातर नयनों की दृष्टि ने, उनके पर कुछ भी प्रभाव न जमा पाया । एक ही चिन्ता—ही भावना—के कारण शेखर की देह जीर्ण होने लगी । तक वे इस यातना को सह सके, उन्होंने सुरक्षण किया । परन्तु जब यह यातना असाध्य होगई तब को उन्होंने तीर्थराज प्रयाग की ओर प्रस्थान किया ।

उस समय कुम्भ का मेला था । हज़ारों यात्री, प्रभृति वहाँ एकत्र हुए थे । अनन्त जनराशि से तीर्थ का कलेवर आच्छादित था । पुण्यसलिला वती जाह्नवी और यमुना का सङ्गम ! यमुना के का जाह्नवी के शुभ्र जल से मिलन ! वे सुन्दर तथा मनोरम थे ।

कुछ दिन तो शशिशेखर ने किसी न किसी तरह दिये । नवीन स्थल पर नवीन दृश्य देख कर हृदय पुलकित नहीं होता ? शेखर ने के साथ इतस्ततः परिभ्रमण करके मन को बहुत कुछ किया । परन्तु यह स्थिरता कितने दिन के लिए थी ! का चित्त भग्न होगया । शशिशेखर अस्थिर चित्त से में परिभ्रमण करने लगे ।

(३)

सुधा के हृदय में भाव उठाः—"उन्हें एक बार और ...पाती तो अच्छा होता। उनसे वियोग हुए बहुत दिन ...गये"। उस तैल-चित्र के समक्ष बैठकर सुधा कहने ...—"भगिनि! तुम जैसी भाग्यशीला संसार में धन्य है! ...पति के हृदय-मन्दिर में स्थान-लाभ किया। मैं हत-भा-...हूँ जो तुम्हारा द्रव्य छीनने का प्रयत्न करती हूँ"।

सुधा और न बोल सकी। नयन-मोचित अश्रुधारा से ...का वक्षःस्थल भीग गया। सुधा फिर कम्पित-कण्ठ से ...ी—"बहिन! मैं तुम्हारी वस्तु पाने की इच्छा नहीं ...ती हूँ। परन्तु उस अमूल्य रत्न की आराधना करने की ...दा अवश्य है। क्या यह इच्छा पूर्ण करोगी?" इतने में ...से ननद ने कहा—"बहू! क्यों रोती हो"। आंसू ...कर सुधा ने उत्तर दिया—"हृदय जिस व्यथा से व्यथित ...रहा है उसे क्या कह कर समझाऊँ। स्त्री होकर भी मेरा ...स विदीर्ण नहीं होता। इस कष्ट से पत्थर, वृक्ष प्रभृति ...फट जाते। क्या उनके खबर पाने का कुछ उपाय नहीं?" ...लिनी ने धीरे से कहाः—"बहू, क्या तू पागल हो ...गी? चल। सारा दिन बीत गया। कुछ खायगी भी। ...। माले। दादा की खबर आई है। वे आज कल वृन्दा-...में हैं"। उत्तेजित स्वर से सुधा ने सुधा-वर्षण किया—...म माताजी से कहो, मैं उन्हें देखने जाऊँगी'। शैवलिनी ...कहा—"बहू! तू निश्चय पागल होगई है। दो दिन के ... दादा स्वयं घर आ जायँगे"।

सुधा बोली—"न दीदी! वे कभी न आयेंगे। चलो, ... लौटा लावें"।

"अच्छा, यही सही। मैं जाकर रविशेखर से कहती ...। तू तब तक चल। खाना खा"।

रवि शशिशेखर के कनिष्ट भ्राता हैं। सुधा ने नाम मात्र ...न किया। सती का वियोग स्वामी से होने के कारण ...रवाया से भी वियोग होगया। इस वियोग के कारण ...ा के सुन्दर, लावण्यमय देह की अम्बुज-वत् कान्ति क्रमशः ...ण होने लगी। देहलता निर्जीव सी होगई। तब पुत्र ...कातुरा सास ने कहा—"चल मैं तुझे वृन्दावन ले ...ूँगी। मैं भी अपनी शेष अवस्था श्रीगोविन्द के पाद-... में अर्पण करूँगी"।

शैवलिनी बोली—"माता! अच्छी बात है। चलो हम सब रवि को सङ्ग लेकर दादा को खोजें। वे फिर न कहीं चले जायँ। बहू भी पागल सी होती जाती है"।

वृन्दावन के लिए यात्रा स्थिर हुई। उसी दिन सन्ध्या को रविशेखर के साथ सबने पुण्य तीर्थ वृन्दावन को गमन किया। जो घर सदा ही आनन्द-लहरी से मुखरित होता था वही आज निविड़ निस्तब्धता में परिणत होगया।

(४)

नील-सलिला स्वच्छ यमुना आज नीरव स्वर से बह रही है। पर, हाय! उस बांसुरी का स्वर नहीं। इसीसे आज यमुना उदास होकर बह रही है। जिस बांसुरी के शब्द को सुन कर गृहवासिनी गोपिकायें उदास हो जाती थीं, हाय यमुने! तुम्हारे तट पर से वह बांसुरी का स्वर कहां गया? और, आज महामाया राधा रानी कहां? वृन्दावन में यद्यपि तुम्हारा सब कुछ है, परन्तु वह मोहन-मुरली नहीं है। यमुने! क्या उसी के विरह में तुम शून्य गई हो? कितनी गोपिकाओं की तप्त अश्रुधारायें तुम्हारे जल में मिल गई हैं, सो कौन कह सकता है?

वृन्दावन के निकट तमाल-वन है। इस वन का दृश्य अति मनोरम है। सुन्दर नृत्य से मयूरों ने इस वन की शोभा को बहुत बढ़ा दिया है। इसी वन के मध्य एक पर्ण-कुटी में बैठे हुए दो संन्यासी कथोपकथन कर रहे हैं।

अच्युतानन्द ने कहा—"वत्स! तुम घर लौट जाव। कठोर कर्तव्य करना अभी तुम्हारे लिए शेष है। अभी कर्म-योग पालना ही तुम्हारा कर्तव्य है। ज्ञानयोग में तुम्हारा अधिकार नहीं"।

दूसरे संन्यासी ने कहा—"प्रभो! घर में मुझे शान्ति नहीं। मैं ज्ञान के द्वारा शान्ति-लाभ करना चाहता हूँ"।

अच्युतानन्द गोस्वामी ने हँसते हुए कहा—"वत्स! नयन खोल कर देखो। तुम्हारे सम्मुख कितना महत् कर्तव्य करने को पड़ा है। पुत्रशोकातुरा माता सन्तान के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई पथ की ओर एकटक निहार रही होगी। दीर्घ वियोग से व्याकुला पतिव्रता सती स्वामी के दर्शन की लालसा से प्राण धारण कर रही होगी। बस! अन्ध मत बनो। तुम्हारी वासना अभी बलवती बनी

मूर्छा भङ्ग हुई । परन्तु समय समय पर मूर्छा आती रही । एक दिन शशिशेखर की व्याधि ने प्रबल मूर्ति धारण की । अच्युतानन्द ने कहा—"माता ! चित्त स्थिर कर । आज तेरी कठोर परीक्षा का दिन है । भगवान् गोविन्द के पाद-पद्म में आत्मसमर्पण कर ।" शोकातुरा माता भूमि में लोटती हुई उच्चस्वर से रोदन करने लगी । रोने से शेखर की रोगनिद्रा भङ्ग हुई । उसके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गये । उन्होंने कहा—"माता ! रो मत । अभागी पुत्र को क्षमा कर । पदधूलि दे । आशीर्वाद दे । मेरा समय पूर्ण होगया । मैं चलता हूँ" । घोर विकार के प्रकोप से शेखर ने देखा कि शील अच्युतानन्द के सङ्केत से उन्हें बुला रही है । उच्चस्वर से वे बोल उठे—"शील ! मैं आता हूँ"—उसी दिन रात्रि के शेष होने पर शेखर का प्राणपक्षी पिञ्जर-मुक्त होकर उड़ गया । बालिका सुधा मृतक स्वामी के पैरों के निकट मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई ।

× × × × ×

इसके उपरान्त वृन्दावन में बहुत दिन व्यतीत हो गये । माता और सुधा ने वृन्दावन में अच्युतानन्द स्वामी का आश्रम परित्याग न किया । शेखर की माता ने यथार्थ ही माधव के पादपद्म में आत्मसमर्पण कर दिया । इसी आत्म-समर्पण के कारण उसने निदारुण पुत्र शोक पर जय-प्राप्ति की । जब मनुष्य का चित्त भगवान् के पाद-पद्म में आकृष्ट हो जाता है तब उसे पार्थिव शोक व्याकुल नहीं कर सकते । और बालिका सुधा ! हाय ! उस देहमात्र से आज शुभ्र वस्त्र शोभा पा रहे हैं । यह हृदयविदारक दृश्य है । दृश्य संसार के प्रति वैराग्योत्पादकारी है ।

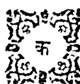
सुधा प्रति मुहूर्त निज जीवन के शेष दिनों की प्रतीक्षा करती रही ।

सुधा जान गई थी कि प्रेम अविनश्वर है । मृत्यु के उपरान्त भी प्रेम का नाश नहीं होता । प्रेम स्वर्ग में भी मिलता है । ऊपर की तरफ़ हाथ उठा कर वह बोल उठी—"हृदयेश ! प्राणवल्लभ ! प्राणजीवन ! तुम बहुत दूर होते हुए भी मेरे हृदय से दूर नहीं । मैं इस हृदय-मन्दिर में चिर दिन तुम्हारी पूजा करूँगी । मेरा देवता दूसरा नहीं । मेरे देवता तुम्हीं हो । यदि साधना की जीत हुई तो मेरा जीवन शेष होने पर तुमसे अवश्य मिलन होगा । हे प्रियतम ! तब तुम मुझे फिर भी चरण से मत ठेलना"* ।

चण्डीप्रसाद ।

* बङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत यतीन्द्रनाथ सोम, एम॰ए॰, बी॰एल॰, की "सुधा" नामक कहानी का भावानुवाद ।

कवि की निरङ्कुशता ।



कवि जब अपना प्रतिभा-पाटव दिखाने लगते हैं तब उन्हें इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं रहता कि हम किस देवता पर कैसा प्रहार कर रहे हैं । उनकी दृष्टि में उस समय पूज्य, अपूज्य दोनों बराबर नज़र आने लग जाते हैं । देवताओं पर प्रहार करते समय उन्हें तरस नहीं आता । आज चार श्लोक मैं आपकी सेवा में ऐसे उपस्थित करता हूँ जिनमें वायु तथा जल-देवता की ख़ूब ख़बर ली गई है । देवताओं पर आक्षेप तो किये गये हैं, किन्तु आक्षेपों में रोचकता और सूक्ष्मदर्शिता कूट कूट भरी हुई है । सुनिए । वायु को लक्ष्य में रख कर कवि कहता है :—

> अनिल ! निखिलविश्वं प्राणिति त्वत्प्रयुक्तं
> सपदि च विनिमीलत्याकुलं त्वद्वियोगात् ।
> वपुरसि परमेशस्योचितं नोचितं ते
> सुरभिमसुरभिं वा यत् समं स्वीकरोषि ॥

भावार्थ—हे वायु ! तेरे ही संसर्ग से सारा संसार जी रहा है—तू ही सम्पूर्ण विश्व के जीवन का आधार है । तेरा वियोग होने से प्राणिमात्र एक क्षण भी नहीं जी सकता—वह फ़ौरन मर जाता है । अधिक क्या कहूँ, तू तो परमात्मा का शरीर ही है । तथापि तू इतना अज्ञानी और विवेक-शून्य है कि तुझे योग्य-अयोग्य का ज़रा भी ख़याल नहीं । क्योंकि इधर तो तू उत्तम उत्तम पुष्पों की सुगन्धि साथ लिये हुए घूमता है और उधर कहीं बदबू मिल जाती है तो उसे भी साथ लेकर चल पड़ता है । तेरी इस नादानी की बलिहारी !

दूसरा कवि कहता है:—

> कोऽयं भ्रान्तिप्रकारस्तव पवन ! घनावस्करस्थानजातं
> तेजस्विव्रातसेव्ये नभसि नयसि यत् पांसुपूरं प्रतिष्ठाम् ।
> अस्मिन्नुत्थाप्यमाने जननयनपथोपद्रवस्तावदास्तां
> केनोपायेन सह्यो वपुषि कलुषता दोष एषस्त्वयैव ॥

न्न हुई। परन्तु समय समय पर मूर्च्छा आती रही।
शशिशेखर की व्याधि ने प्रबल मूर्ति धारण की।
नन्द ने कहा—"माता! चित्त स्थिर कर। आज तेरी
रीक्षा का दिन है। भगवान् गोविन्द के पाद पद्म में
र्पण कर।" शोकातुरा माता धूल में लोटती हुई
से रोदन करने लगी। रोने से शेखर की रोगनिद्रा
। उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गये। उन्होंने कहा—
! रो मत। अपराधी पुत्र को क्षमा कर। पदधूलि दे।
द दे। मेरा समय पूर्ण होगया। मैं चलता हूँ"। घोर
के प्रकोप में शेखर ने देखा कि शैल अङ्गुली के सङ्केत
बुला रही है। उच्चस्वर से वे बोल उठे—"शैल!
हूँ"—उसी दिन रात्रि के शेष होने पर शेखर का
पिञ्जर-मुक्त होकर उड़गया। बालिका सुधा मृतक
के पैरों के निकट मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई।

× × × × ×

के उपरान्त वृन्दावन में बहुत दिन व्यतीत हो गये।
और सुधा ने वृन्दावन में अच्युतानन्द स्वामी का
परित्याग न किया। शेखर की माता ने यथार्थ ही
के पादपद्म में आत्मसमर्पण कर दिया। इसी आत्म-
के कारण उसने निदारुण पुत्र-शोक पर जय-प्राप्ति
व मनुष्य का चित्त भगवान् के पाद-पद्म में आकृष्ट हो
तब उसे पार्थिव शोक व्याकुल नहीं कर सकते। और
सुधा! हाय! उस हेमाङ्ग में आज शुभ्र वस्त्र शोभा
है। यह हृदयविदारक दृश्य है। दृश्य संसार के प्रति
पद्मकारी है।

धा प्रति मुहूर्त निज जीवन के शेष दिनों की प्रतीक्षा
ही।

धा जान गई थी कि प्रेम अविनश्वर है। मृत्यु के
भी प्रेम का नाश नहीं होता। प्रेम स्वर्ग में भी मिलता
र की तरफ़ हाथ उठा कर वह बोल उठी—"हृदयेश!
भ! प्राणजीवन! तुम बहुत दूर होते हुए भी मेरे
से दूर नहीं। मैं इस हृदय-मन्दिर में चिर दिन तुम्हारी
ऊँगी। मेरा देवता दूसरा नहीं। मेरे देवता तुम्हीं
दि साधना की जीत हुई तो मेरा जीवन शेष होने पर
वश्य मिलन होगा। हे प्रियतम! तब तुम मुझे फिर
ग से मत ठेलना"*।

चण्डीप्रसाद।

* बङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत यती-न्द्रनाथ सोम, एम०ए०, के "सुधा" नामक कहानी का भावानुवाद।

कवि की निरङ्कुशता।



वि जब अपना प्रतिभा-पाटव दिखाने लगते हैं तब उन्हें इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं रहता कि हम किस देवता पर कैसा प्रहार कर रहे हैं। उनकी दृष्टि में उस समय पूज्य, अपूज्य दोनों बराबर नज़र आने लग जाते हैं। देवताओं पर प्रहार करते समय उन्हें तरस नहीं आता। आज चार श्लोक मैं आपकी सेवा में ऐसे उपस्थित करता हूँ जिनमें वायु तथा जल-देवता की ख़ूब ख़बर ली गई है। देवताओं पर आक्षेप तो किये गये हैं, किन्तु आक्षेपों में रोचकता और सूक्ष्मदर्शिता कूट कूट भरी हुई है। सुनिए। वायु को लक्ष्य में रख कर कवि कहता है:—

अनिल! निखिलविश्वं प्राणिति त्वत्प्रयुक्तं
सपदि च विनिमीलत्याकुलं त्वद्वियोगात्।
वपुरसि परमेशस्योचितं नोचितं ते
सुरभिमसुरभिं वा यत् समं स्वीकरोषि॥

भावार्थ—हे वायु! तेरे ही संसर्ग से सारा संसार जी रहा है—तू ही सम्पूर्ण विश्व के जीवन का आधार है। तेरा वियोग होने से प्राणिमात्र एक क्षण भी नहीं जी सकता—वह फ़ौरन मर जाता है। अधिक क्या कहूँ, तू तो परमात्मा का शरीर ही है। तथापि तू इतना अज्ञानी और विवेक शून्य है कि तुझे योग्य-अयोग्य का ज़रा भी ख़याल नहीं। क्योंकि इधर तो तू उत्तम उत्तम पुष्पों की सुगन्धि साथ लिये हुए घूमता है और उधर कहीं बदबू मिल जाती है तो उसे भी साथ लेकर चल पड़ता है। तेरी इस नादानी की बलिहारी!

दूसरा कवि कहता है:—

कोऽयं भ्रान्तिप्रकारस्तव पवन! [illegible]
तेजस्विव्रातसेव्ये नभसि नयसि यत् पांसुपूरं प्रतिष्ठाम्।
यस्मिन्नुत्थाप्यमाने जननयनपथोपद्रवस्तावदास्तां
केनोपायेन सह्यो वपुषि कलुषतादोष एष त्वयैव॥

२१०

[illegible] ! क्या तू [illegible] ही [illegible]
[illegible] हैं, जो मुझे [illegible] पड़ी हुई धूल [illegible]
[illegible] करता है—
[illegible] चन्द्रमा जैसे
[illegible] पूर्ण [illegible] यह दोष।
[illegible] पाते हैं। [illegible] मानसों के
[illegible] उनकी आँखों
[illegible] होती है, वही धूल [illegible] धूल के आगे
[illegible] उस धूल के आगे
[illegible] [illegible] जाती रहती हैं, फिर
[illegible] लोगों के सुन्दर
[illegible]। तीसरे, यह धूल [illegible]
[illegible] उसे मलिन भी कर देती है। यह
[illegible] ही है। इसका क्या इलाज किया
[illegible]! तेरी यह दोष-परम्परा सर्वथा असह्य है।

[illegible] कवि जलदेवता से कहता है—

[illegible] ब्रह्माण्डमण्डात्पुनर्—
[illegible] [illegible]मूलमित्थं पयः।
[illegible] निर्गत्य जालान्तरे—
[illegible] [illegible]माश्रिता जन्तवः ॥

भावार्थ—हे जलदेव! अब्ज (अप् = ज, कमल) [illegible] पहले तुझ जल से ही पैदा हुआ। फिर उस [illegible] से प्रजापति आविर्भूत हुए। ब्रह्मा की शक्ति से [illegible]-अण्ड प्रादुर्भूत हुआ। फिर उस अण्डे से स्था-[illegible]-जङ्गम आदि सब पदार्थों की उत्पत्ति हुई। मैं [illegible] तक कहूँ जो कुछ संसार में है सब तेरी ही [illegible] है—तू ही सब का मूल-कारण है। पर [illegible] धिक्कार! तेरा व्यवहार चोरों का सा है। क्योंकि [illegible] मछुवों से डरे हुए मच्छ, कच्छ, आदि जीव [illegible] तेरी शरण आते हैं तब तू पहले तो उन्हें छिपा [illegible] है। जब मछुवे तेरे भीतर जाल डालते हैं तब [illegible] उन जीवों को भी साथ लेकर जाल में घुस जाता [illegible]। जीव भी तेरा विश्वास करके तेरे साथ चले जाते [illegible]। पर जब मछुवे जाल उठाते हैं तब तू तो जाल के [illegible] से निकल जाता है, पर उन बेचारे जीवों को [illegible] देता है! वे जीव तेरा मुँह देखते ही [illegible] हैं। हा! कैसी विश्वासघातकता! तूने तो [illegible] की हद कर दी!

दूसरा कवि कहता है—

[illegible] गुण[illegible] [illegible]: स्वाभाविकी स्वच्छता
[illegible] शुचिता [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] देहिनां
[illegible] [illegible] पयः कर्तुं [illegible]

भावार्थ—हे जल! सदा शीतल रहना तो तेरा स्वभाव ही है, पवित्रता तो मानो तेरे जन्म के साथ ही उत्पन्न हुई है, तेरी पवित्रता के विषय में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि अपवित्र—अशुद्ध—आदमी भी तेरे स्पर्शमात्र से पवित्र हो जाते हैं। भला इससे अधिक तेरी महिमा और क्या हो सकती है कि तू ही प्राणिमात्र का जीवन है। अतएव क्या तू ही नीच मार्ग से चल पड़ेगा—यह निकलेगा—तू ही [illegible] चोरों की तो बात ही क्या है! तू देवता है, समर्थ है, तुझे रोकने की शक्ति भी किसी में नहीं, अतएव तुझे ऐसा जघन्य कार्य न करना चाहिए क्योंकि तेरी देखादेखी संसार में इस तरह अनाचार फैल सकता है।

चूड़ामणि शाह

आरम्भ-शूरता।

अरिल

देश जाति के अधःपतन का मूल है।
उन्नति का बाधक अपयश का कोप है।
कार्य-सिद्धि के लिए कृतान्त-स्वरूप है।
अति निन्दित आरम्भ-शूरता दोष है॥१॥
वह साहस है जल बुद्बुद सा विनसता।
वह उत्साह प्रभात-ओस से है बड़ा।
वह उमङ्ग है सिकताविरचित भीत सी।
जिस पर है आरम्भ-शूरता रँग चढ़ा।
उसने देखा कभी सफलता-मुख नहीं।
कभी कामना बेलि नहीं उसकी खिली।
कभी न उसका भाग्य गगन उज्ज्वल हुआ।
जिसकी कृति आरम्भ-शूरता से हिली॥
वह उद्योग-समूह मिलेगा धूल में।
यह मयता होगी असफलता-मयी।









पहला स्तम्भ

ईसापुर के यूप-स्तम्भ।

दूसरा स्तम्भ

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

इस विश्वविद्यालय में सब प्रकार की शिक्षायें दी जाती हैं—एंजिनियरिङ्ग, डाकृरी, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, क़ानून इत्यादि सभी के विभाग भिन्न भिन्न हैं।

पुस्तकालय।

विश्वविद्यालय का एक वृहत् पुस्तकालय भी है। उसमें पाँच लाख से अधिक पुस्तकें हैं। वहाँ कोई भी विद्यार्थी किसी भी विषय की पुस्तक साढ़े आठ बजे सवेरे से ग्यारह बजे रात तक देख सकता है और इच्छा होने पर घर भी ले जा सकता है। इसके अतिरिक्त एंजिनियरिंग, खनिज, डाकृरी इत्यादि विभागों के साथ पृथक् पृथक् भी पुस्तकालय हैं, जहाँ इन विषयों पर चुनी हुई पुस्तकें रहती हैं।

शारीरिक व्यायाम।

विश्वविद्यालय की एक वृहत् व्यायामशाला भी है, जो प्रति दिन नौ बजे सवेरे से दस बजे रात तक खुली रहती है। उसमें विद्यार्थी तरह तरह के व्यायाम करते हैं। विद्यार्थियों के शरीर की परीक्षा करने के लिए एक चतुर डाकृर, इस व्यायामशाला में, नियुक्त है जो प्रत्येक विद्यार्थी की भलीभाँति जाँच करके यह निश्चय करता है कि उसे कितना और किस प्रकार का व्यायाम करना चाहिए।

यह व्यायामशाला की इमारत दुमञ्ज़िला है। ऊपर भिन्न भिन्न प्रकार के व्यायाम करने का सामान रहता है और नीचे एक सुन्दर तालाब, फ़ौवारे, हौज़ इत्यादि स्नान करने की सामग्री है।

विद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह सप्ताह में कम से कम दो घण्टे अवश्य कसरत करे, जिससे उसमें स्वास्थ्य, शक्ति, साहस, सुन्दरता तथा सहनशीलता उत्पन्न हो और वह संसार के सभी कार्य्य करने योग्य हो जाय।

इसके सिवा विश्वविद्यालय के अधीन निकट ही एक बड़ा मैदान है। उसमें बेसबाल, फ़ुटबाल, दौड़, टेनिस इत्यादि खेलने का प्रबन्ध है। विद्यालय की ओर से नदी के निकट एक नौ[illegible] भी है। उसमें अनेक नावें रहती हैं। उन[illegible] कर विद्यार्थी नदी की सैर करते हैं।

विद्यार्थियों को काम दिलाने वाली स[illegible]
(EMPLOYMENT COMMITTE

अमेरिका के अधिकतर विद्यार्थी अपने वि[illegible] जीवन में अपनी ही मिहनत से धन कमा कर[illegible] ध्ययन करते हैं। इस कार्य्य में विद्यार्थियों को [illegible] हित करने और उन्हें सहायता पहुँचाने के [illegible] विद्यालय में शिक्षकों की भी सभा हुआ करती [illegible] वह प्रयत्न करके विद्यार्थियों के लिए भिन्न [illegible] प्रकार के काम ढूँढ़ देती है। इसी प्रकार की सभा कोलम्बिया के विश्वविद्यालय में भी है। इस विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए काम ढूँ[illegible] तथा उन्हें अन्य प्रकार से भी सहायता दिया [illegible] है। विद्यार्थियों के करने योग्य निम्न प्रकार [illegible] काम अधिकतर मिलते हैं:—

पढ़ाना, अनुवाद करना, पत्रों पर पता लिख[illegible] भिन्न भिन्न प्रकार की नक़लें करना, रात के [illegible] में पढ़ाना तथा टाइप में लेख और चिट्ठियाँ लिखना। हिसाब लगाया गया है कि इस प्र[illegible] काम करके इस विद्यालय के निवासी प्रति व[illegible] लाख रुपये से अधिक पैदा कर लेते हैं। यह [illegible] अधिकतर उन विद्यार्थियों को सहायता देती [illegible] दूर देशों से वहाँ विद्याध्ययन के लिए [illegible] और जिन्हें जीविका-निर्वाह का कोई और [illegible] नहीं होता।

इसके सिवा इस विद्यालय में एक और विभाग है जो विद्यार्थी के उत्तीर्ण हो जाने पर [illegible] लिए स्थायी रूप से काम दिलाने का प्रबन्ध करता [illegible]

विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-रक्षा।

विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की रक्षा और देख[illegible] के लिए भी कालेज की ओर से एक डाकृर [illegible] है। यह विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की परीक्षा [illegible]

। है। उसका औषधालय प्रति दिन खुला । है। वहाँ जाकर कोई भी विद्यार्थी अपने थ्य की परीक्षा करा सकता है।

विद्यार्थियों का निवास-स्थान ।

विश्वविद्यालय की ओर से विद्यार्थियों के लिए बोर्डिङ्ग हाउस, अर्थात् निवास गृह, हैं जिनमें मिला कर ८०० सौ विद्यार्थी रह सकते हैं। प्रत्येक स-गृह १२७ फ़ीट लम्बा और ६० फ़ीट चौड़ा दस मञ्ज़िल ऊँचा है। इनमें बिजली की नी, भाफ़ की गरमी, टेलीफ़ोन, बिजली के स्क्लेटर तथा स्नान करने के लिए सुन्दर र फ़ौवारे हैं।

प्रत्येक विद्यार्थी को दो कमरे दिये जाते हैं, सोने का कमरा और दूसरा अध्ययन करने । दोनों कमरों की छतें और दीवारें चित्रकारी । हुए काग़ज़ से मढ़ी होती हैं। फ़र्श पर र क़ालीन बिछा रहता है। पलँग लोहे की दार कमानी का होता है। वह मोटे तथा गुद- गद्दे और साफ़ चादर इत्यादि आवश्यकीय मान से सुसज्जित रहता है। पढ़ने के कमरे में हे रखने के लिए आलमारी और पढ़ने के लिए , कुरसी इत्यादि सामान रहता है।

प्रत्येक निवास गृह के बीच में, नीचे की मञ्ज़िल पक वृहत् सभा भवन होता है, जहाँ भिन्न भिन्न यों पर विद्यार्थी विचार करते हैं और जहाँ सन्ध्या- य आकर समाचारपत्र पढ़ते तथा गप्पें मारते हैं।

इन निवास गृहों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के रहरी ऐसे अनेक घर हैं जिनमें कोई पचीस रुपये । मासिक देने से अच्छा भोजन और रहने का न मिल सकता है।

व्याख्यान ।

विद्यालय में शिक्षा देने के सिवा विश्वविद्यालय । बर्ड और शिक्षा देने का भी प्रबन्ध करता है। ो के बड़े बड़े विद्वानों को समय समय पर बुला । भिन्न भिन्न विषयों पर वह व्याख्यान दिलाता है। इससे विद्यार्थियों के ज्ञान की वृद्धि होती है। विद्यार्थियों के मनोरञ्जनार्थ अच्छे अच्छे शिक्षाप्रद नाटक भी विश्वविद्यालय कराता है। सङ्गीत का स्वाद भी उन्हें चखाया जाता है।

गिरजाघर ।

विश्वविद्यालय के बीच में एक अर्द्ध-गोलाकार वृहत् गिरजाघर है। उसमें १,०५० कुरसियाँ रहती हैं। इस गिरजाघर में विश्वविद्यालय की ओर से एक विद्वान् तथा उदार-हृदय पादरी नियुक्त है, जो प्रति दिन विद्यार्थियों को धार्मिक तथा सामाजिक विषयों पर उपदेश दिया करता है। इस निमित्त विश्वविद्यालय में प्रति दिन बारह बजे से साढ़े बारह बजे तक विद्यार्थियों को छुट्टी दी जाती है कि जिसकी इच्छा हो वह गिरजाघर में जाकर धर्मोपदेश सुने। इस गिरजाघर में एक बहुमूल्य "आर्गन" बाजा भी है, जो समय समय पर विद्यार्थियों के लिए बजाया जाता है।

व्याख्यान-भवन ।

यह भवन बहुत विशाल है। इसमें विद्यार्थियों की भिन्न भिन्न सभायें हुआ करती हैं। इन सभाओं से सम्बन्ध रखने वाला एक सार्वजनिक क्लब ([illegible]) है। इसमें संसार के प्रायः सभी देशों के विद्यार्थी सम्मिलित हैं। उसका वार्षिकोत्सव हुआ करता है। इसमें प्रत्येक देश के प्रतिनिधि विद्यार्थी अपने देश की पोशाक पहन कर आते हैं और अपनी भाषा में गाने तथा व्याख्यान करते हैं।

वृत्तियाँ ।

विश्वविद्यालय की ओर से [illegible] वृत्तियाँ हैं जो योग्य विद्यार्थियों को दिए जाते हैं। पारितोषिक भी बहुत से दिये जाते हैं।

इस विवरण [illegible] पता लगता है कि [illegible] उद्देश्य क्या है [illegible]।

[illegible]

ति की रक्षा करना सरकार का कर्तव्य है। देखा जाता है कि जब रियासत ऋण से ऐसी जाती है कि यह बिक गई के बराबर हो जाती कोर्ट होने की दरख़ास्त दी जाती है। ऐसे में इलाक़ा कोर्ट कराने से कुछ भी लाभ। प्रायः ऐसी ऋणी रियासत को कोर्ट आव् स अपने प्रबन्ध में लेने से इनकार कर देती ऋण के होते ही जो लोग अपनी रियासत कोर्ट पुर्द कर देते हैं उनको लाभ होता है। कोर्ट न्ध से रुपया बचा कर ऋण दे डालती है रियासत मालिक को लौटा देती है। यह भी जाता है कि जो रियासत एक बार कोर्ट ने रहित करके मालिक को लौटा दी है वह ऋणी र फिर कोर्ट के प्रबन्ध में आई है।

अधिकांश ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार ऋणी चले जाते हैं और प्रबन्ध न कर सकने के उनकी रियासत बार बार कोर्ट के प्रबन्ध में है। अच्छा, तो इसका कारण क्या है और ऐसी में सुधार की सूरत क्या हो सकती है? तक विचार करने से समझ में आता नके तीन बड़े कारण ऐसे हैं जो रियासतों को ही दिनों में ऋणी बना देते हैं:—

१) मुक़द्दमेबाज़ी
२) ऐयाशी
३) विवाहादि की कुरीतियाँ

न प्रान्तों की रियासतें प्रायः इन्हीं तीनों में क या एक से अधिक कारणों से ऋणी हो रही सका ख़ुलासा सुनिए—

क़द्दमेबाज़ी—ताल्लुक़ेदारी क़ानून विवाद रोकने र बना था। परन्तु यही विवाद का कारण हा है। बड़े बड़े मुक़द्दमे प्रिवी कौंसिल तक बात के निर्णय के लिए लड़े जाते हैं कि अमुक सत ताल्लुक़ा है या नहीं, और उसमें राज्यों सी चाल, जिससे बड़ा लड़का ही गद्दी पा ता है, प्रचलित है या नहीं। यह सच है कि कुछ सनों में ऐसी सनदें हैं जिनसे ताल्लुक़ों का होना और न होना दोनों बातें साबित हो सकती हैं, परन्तु बहुधा सनदें मिलने का सबूत पहुँचाना ही मुश्किल हो जाता है और राज्यों के सदृश रीतियों के साबित करने में बहुत ख़र्च करना पड़ता है। क्या ही अच्छा हो यदि ऐसे झगड़े अवध में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन और आगरे में ज़मींदारी एसोसियेशन की पञ्चायत से तै करा लिये जाया करें। ऐसे मुक़द्दमे बड़े ही पेचीदा होते हैं। यह बात इतने ही से साबित है कि ऐसे मुक़द्दमों के निर्णय के लिए सरकार ने पण्डित शीतलाप्रसाद वाजपेयी की लियाक़त का एक ख़ास जज अलग ही नियत कर दिया है। यह अवध की बात हुई। आगरा प्रान्त में भी ऐसे मुक़द्दमात की संख्या कम न होगी। बहुत से ज़मींदारी घराने यह साबित करते हैं कि उनके यहाँ लड़कियों का कुछ भी हक़ नहीं। बड़ी बड़ी रियासतों का बिक जाना, इस बात का पक्का सबूत है।

ऐयाशी। इस विषय में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। उसका कारण पति-पत्नी की उम्र में असमानता, विद्याहीनता, बुरे चालचलन वाले कर्मचारियों और नौकरों की सङ्गति इत्यादि है। यदि ये कारण दूर हो जायँ तो यह दोष भी दूर हो जाय।

विवाहादि की कुरीतियाँ। बहुत अधिक दहेज़ देने के कारण भी कितनी ही रियासतें ऋणी हो जाती हैं। एक लाख रुपये तक दहेज़ ठहराते देखा गया है। क्षत्रिय लोग प्रायः अपने से बड़े घराने ढूँढते हैं। अतएव उन्हें वर के मनमाने दाम देने पड़ते हैं। क्षत्रिय-सभा ने इस प्रथा को बन्द करने का उद्योग तो बहुत किया, परन्तु उससे कोई विशेष फल न हुआ। अनेक रियासतें एक ही दो विवाह की हो जाती हैं और लड़कियाँ बड़ी उम्र तक अविवाहिता ही रह जाती हैं। और भी कितनी ही बुरी चालें फैली हुई हैं। परन्तु वे हमारे लेख के विषय के बाहर हैं। अतएव हमको उन पर कुछ कहने का अधिकार नहीं।

गुलाब की पाँखुरी ।

मैं प्रात घूमता हुआ टहलने लगा वाटिका में अपने ;
थे खिले गुलाब विविध रंगी फैली सुगंध फैलाते थे ।
एक साधारण सा फूल रहा वह मेरे मन को भाया है;
उससे बढ़ बढ़ कर थे कितने पर लगे नहीं अच्छे उतने ॥१॥
अपनी अपनी रुचिही तो है, है रीत निराली दुनिया की;
अलि को चम्पा की चाह नहीं औरों पर मन बन भटक रहा ।
जब हाथ बढ़ाया लेने को हा! हृदय उसे दे देने को;
सब टूट गई पांखुरी वहीं मोती सी फैलीं बिखर बिखर ॥२॥
आनन्द मृत्यु का भी कारन कहते हैं होता कभी कभी;
क्या छू जाने ही से मुझसे वह मोदमत्त निर्जीव हुआ?
या जड़ शरीर को छोड़ प्रेममय हो कर अन्तर्धान हुआ?
मिल गया स्नेह के सागर में उसके जल का कण हो करके ॥३॥
या खण्डित कर शरीर अपना करने में मेरा शुभ स्वागत
वह हाथ बढ़ा प्यारा प्यारा दे कर सुगन्ध-उपहार मुझे?
प्राणेश कहाँ वह लोप हुआ किसका कैसा यह कोप हुआ!
मैं व्याकुल बैठा सोच रहा, हैं पड़ी पांखुरी उसकी कुछ ॥४॥

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

कोर्ट आव् वार्ड्स ।



कोर्ट आव् वार्ड्स वार्डों का कोर्ट है—अर्थात् यह वह अदालत है जो अपने वार्डों के शरीर और सम्पत्ति की रक्षा करती है। वार्ड, अर्थात् संरक्षित लोग, कई प्रकार के होते हैं—

(१) शिशु (नाबालिग़) अर्थात् जिनकी अवस्था १८ वर्ष से कम है।

(२) स्त्रियाँ, जो सरकार की राय में अपनी या अपनी सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकतीं।

(३) विक्षिप्त, जिनको दीवानी अदालत अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर सकने योग्य नहीं समझती।

(४) वे लोग, जो किसी मानसिक या शारीरिक व्यङ्ग के कारण, सरकार की राय में अपनी सम्पत्ति की रक्षा की शक्ति नहीं रखते।

(५) अन्य मनुष्य जो, सरकार [illegible] सम्पत्ति की रक्षा इस कारण से नहीं क[illegible] कि उनका चाल चलन अच्छा नहीं है और किसी ऐसे जुर्म में दण्ड मिल चुका है [illegible] नन न हो सकी हो।

(६) वे मनुष्य जो सरकार की राय में ख़र्चों के कारण अपनी सम्पत्ति नहीं सकते।

(७) जो सरकार की राय में विना [illegible] के ही अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हैं।

(८) नये क़ानून के अनुसार सर[illegible] मनुष्यों की सम्पत्ति को विना उनकी इच[illegible] अपने प्रबन्ध में ले सकती है जिन पर कि[illegible] के कारण इतना ऋण हो गया हो कि उसका व्याज आमदनी के ½ से अधिक हो। कल्पन[illegible] कि किसी मनुष्य की आमदनी १,६०,०००) है और उसे सरकारी मालगुज़ारी ७०,०[illegible] पड़ती है। अतएव उसे ९०,०००) की वार्षि[illegible] है। यदि ऐसे मनुष्य पर इतना ऋण हो उसका वार्षिक व्याज ३०,०००) से अधि[illegible] सरकार उसे, विना उसकी इच्छा के भी, व[illegible] बना सकती है। व्याज का निर्ख़ प्रायः ६) वार्षिक जोड़ा जाता है। अतएव जब इस[illegible] की रियासत पर ५,००,००० का ऋण हो जा[illegible] सरकार उसे वार्ड बनाने का हुक्म दे स[illegible] परन्तु ऐसा करने के पहले सरकार उस म[illegible] ऋण करने और उसे न चुका सकने के कारण का पूरा पूरा अवसर देती है। यदि सरका[illegible] कथन में कुछ भी तत्त्व समझती है तो उस को स्वयं प्रबन्ध करके ऋण चुका लेने का [illegible] अवसर देती है।

(९) इनके अतिरिक्त भी सरकार दो[illegible] की दरख़्वास्त पर उन्हें वार्ड बना लेती [illegible] सरकार को यह विश्वास हो जाय कि

त्ति की रक्षा करना सरकार का कर्तव्य है। ः देखा जाता है कि जब रियासत ऋण से ऐसी जाती है कि यह बिक गई के बराबर हो जाती ब कोर्ट होने की दरख़ास्त दी जाती है। ऐसे य में इलाक़ा कोर्ट कराने से कुछ भी लाभ । प्रायः ऐसी ऋणी रियासत को कोर्ट आव् र्ड्स अपने प्रबन्ध में लेने से इनकार कर देती ऋण के होते ही जो लोग अपनी रियासत कोर्ट सिपुर्द कर देते हैं उनको लाभ होता है। कोर्ट बन्ध से रुपया बचा कर ऋण दे डालती है रियासत मालिक को लौटा देती है। यह भी ा जाता है कि जो रियासत एक बार कोर्ट ने रहित करके मालिक को लौटा दी है वह ऋणी कर फिर कोर्ट के प्रबन्ध में आई है।

अधिकांश ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार ऋणी ते चले जाते हैं और प्रबन्ध न कर सकने के रण उनकी रियासत बार बार कोर्ट के प्रबन्ध में ती है। अच्छा, तो इसका कारण क्या है और ऐसी ा में सुधार की सूरत क्या हो सकती है? ी तक विचार करने से समझ में आता इसके तीन बड़े कारण ऐसे हैं जो रियासतों को े ही दिनों में ऋणी बना देते हैं.—

(१) मुक़द्दमेबाज़ी

(२) ऐयाशी

(३) विवाहादि की कुरीतियाँ

इस प्रान्तों की रियासतें प्रायः इन्हीं तीनों में एक या एक से अधिक कारणों से ऋणी हो रही इसका ख़ुलासा सुनिए—

मुक़द्दमेबाज़ी—ताल्लुक़ेदारी क़ानून विवाद रोकने लिए बना था। परन्तु यही विवाद का कारण रहा है। बड़े बड़े मुक़द्दमे प्रिवी कौंसिल तक बात के निर्णय के लिए लड़े जाते हैं कि अमुक सत ताल्लुक़ा है या नहीं, और उसमें राज्यों ऐसी चाल, जिससे बड़ा लड़का ही गद्दी पा ा है, प्रचलित है या नहीं। यह सच है कि कुछ ासतों में ऐसी सनदें हैं जिनसे ताल्लुक़ों का होना और न होना दोनों बातें साबित हो सकती हैं, परन्तु बहुधा सनदें मिलने का सबूत पहुँचाना ही मुश्किल हो जाता है और राज्यों के सदृश रीतियों के साबित करने में बहुत ख़र्च करना पड़ता है। क्या ही अच्छा हो यदि ऐसे झगड़े अवध में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन और आगरे में ज़मींदार्स एसोसियेशन की पञ्चायत से तै करा लिये जाया करें। ऐसे मुक़द्दमे बड़े ही पेचीदा होते हैं। यह बात इतने ही से साबित है कि ऐसे मुक़द्दमों के निर्णय के लिए सरकार ने पण्डित दीनदयालप्रसाद वाजपेयी की लियाक़त का एक ख़ास जज अलग ही नियत कर दिया है। यह अवध की बात हुई। आगरा प्रान्त में भी ऐसे मुक़द्दमात की संख्या कम न होगी। बहुत से ज़मींदारी घराने यह साबित करते हैं कि उनके यहाँ लड़कियों का कुछ भी हक़ नहीं। बड़ी बड़ी रियासतों का बिक जाना, इस बात का पक्का सबूत है।

ऐयाशी। इस विषय में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। उसका कारण पति-पत्नी की उम्र में असमानता, विद्याहीनता, बुरे चालचलन वाले कर्मचारियों और नौकरों की संगति इत्यादि है। यदि ये कारण दूर हो जायँ तो यह दोष भी दूर हो जाय।

विवाहादि की कुरीतियाँ। बहुत अधिक दहेज़ देने के कारण भी कितनी ही रियासतें ऋणी हो जाती हैं। एक लाख रुपये तक दहेज़ ठहराते देखा गया है। क्षत्रिय लोग प्रायः अपने से बड़े घराने ढूँढ़ते हैं। अतएव उन्हें वर के मनमाने दाम देने पड़ते हैं। क्षत्रिय सभा ने इस प्रथा को बन्द करने का उद्योग तो बहुत किया परन्तु इसमें कोई विशेष फल न हुआ। अनेक रियासतें एक ही दो विवाह में हो जाती हैं और लड़कियाँ बड़ी उम्र तक कुँवारिका हो रह जाती हैं। और भी कितनी ही बुरी बातें फैली हुई हैं। परन्तु वे हमारे लेख के विषय के बाहर हैं। अतएव हमको उन पर कुछ कहने का कोई काम नहीं।

गुलाब की पाँखुरी।

मैं प्रात घूमता हुआ टहलने लगा वाटिका में अपने ;
थे खिले गुलाब विविध रंगी कैसी सुगंध फैलाते थे।
एक साधारण सा फूल रहा वह मेरे मन को भाया है;
उसमें बढ़ बढ़ कर थे कितने पर लगे नहीं अच्छे उतने ॥१॥
अपनी अपनी रुचिही तो है, है रीत निराली दुनिया की;
अलि को चम्पा की चाह नहीं औरों पर बन बन भटक रहा।
जब हाथ बढ़ाया लेने को हा! हृदय उसे दे देने को;
सब टूट गईं पांखुरी वहीं मोती सी फैलीं बिखर बिखर ॥२॥
आनन्द मृत्यु का भी कारन कहते हैं होता कभी कभी;
क्या छू जाने ही से मुझसे वह मोदमत्त निर्जीव हुआ?
या जड़ शरीर को छोड़ प्रेममय हो कर अन्तर्धान हुआ?
मिल गया स्नेह के सागर में उसके जल का कण हो करके ॥३॥
या खण्डित कर शरीर अपना करने में मेरा शुभ स्वागत
वह हाथ बढ़ा प्यारा प्यारा दे कर सुगन्ध-उपहार मुझे?
प्राणेश कहां वह लोप हुआ किसका कैसा यह कोप हुआ!
मैं व्याकुल बैठा सोच रहा, हैं पड़ी पांखुरी उसकी कुछ ॥४॥

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

कोर्ट आव् वार्ड्स।



कोर्ट आव् वार्ड्स वार्डों का कोर्ट है—अर्थात् वह वह अदालत है जो अपने वार्डों के शरीर और सम्पत्ति की रक्षा करती है। वार्ड, अर्थात् संरक्षित लोग, कई प्रकार के होते हैं—

(१) शिशु (नाबालिग़) अर्थात् जिनकी अवस्था १८ वर्ष से कम है।

(२) स्त्रियां, जो सरकार की राय में अपनी या अपनी सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकतीं।

(३) विक्षिप्त, जिनको दीवानी अदालत अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर सकने योग्य नहीं समझती।

(४) वे लोग, जो किसी मानसिक या शारीरिक त्रुटि के कारण, सरकार की राय में अपनी

(५) अन्य मनुष्य जो, सरकार की राय में, सम्पत्ति की रक्षा इस कारण से नहीं कर कि उनका चाल चलन अच्छा नहीं है और किसी ऐसे जुर्म में दण्ड मिल चुका है नत न हो सकी हो।

(६) वे मनुष्य जो सरकार की राय में खर्चों के कारण अपनी सम्पत्ति नहीं सकते।

(७) जो सरकार की राय में बिना ... के ही अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हैं।

(८) नये क़ानून के अनुसार सरकार मनुष्यों की सम्पत्ति को बिना उनकी ... अपने प्रबन्ध में ले सकती है जिन पर ... के कारण इतना ऋण हो गया हो ... ब्याज आमदनी के ¼ से अधिक हो। कल्पना कि किसी मनुष्य की आमदनी १,६०,०००) है और उसे सरकारी मालगुज़ारी ७०,०००) पड़ती है। अतएव उसे ९०,०००) की ... है। यदि ऐसे मनुष्य पर इतना ऋण हो ... उसका वार्षिक ब्याज ३०,०००) से ... सरकार उसे, बिना उसकी इच्छा के भी, ... बना सकती है। ब्याज का निर्ख प्रायः ६) ... वार्षिक जोड़ा जाता है। अतएव अब ... की रियासत पर ५,००,००० का ऋण हो ... सरकार उसे वार्ड बनाने का हुक्म दे ... परन्तु ऐसा करने के पहले सरकार उस ... ऋण करने और उसे न चुका सकने के कारण ... का पूरा पूरा अवसर देती है। यदि ... कथन में कुछ भी तत्त्व समझती है ... को स्वयं प्रबन्ध करके ऋण चुका लेने अवसर देती है।

(९) ...
की ...

पहले स्तम्भ का लेख स्तम्भ की १२½ इंच ड़ी जगह में खुदा हुआ है। उसमें ७ पंक्तियाँ। अक्षरों की ऊँचाई ½ से १½ इंच तक है। लेख नक़ल नीचे दी जाती है—

(१) सिद्धम् ॥ महाराजस्य राजातिराजस्य देवपु-
(२) त्रस्य षाहेर्वासिष्कस्य राज्यसंवत्सरे च-
(३) तुर्विंशे २४ ग्रीष्म-मासे चतुर्थे दिवसे
(४) त्रिंशे ३० अस्यां पूर्व्वायां रुद्रिलपुत्रेण द्रोण-
(५) लेन ब्राह्मणेन भारद्वाज-सगोत्रेण मा-
(६) ण-च्छन्दोगेन इष्ट्वा सत्रेण द्वादशरात्रेण
(७) यूपः प्रतिष्ठापितः प्रियन्तां = अग्नयः ॥

अर्थात्—महाराजाधिराज देवपुत्र शाह वासिष्क चौबीसवें राज्य-वर्ष में, ग्रीष्म-ऋतु के चौथे हीने के तीसवें दिन, भारद्वाजगोत्रीय, माण (?) देपाठी ब्राह्मण रुद्रिल के पुत्र द्रोणल ने द्वादश त्रि पर्यन्त यज्ञ करके इस यूप की स्थापना की। ग्निदेव (गार्हपत्य, दाक्षिणाग्नि और आहवनीय) सन्न हों।

इस लेख का 'माण" शब्द ठीक ठीक नहीं ढ़ा गया। इस लेख को पुरातत्त्ववेत्ता बड़े महत्त्व ा समझते हैं। कुशानवंशीय राजा कनिष्क और विष्क के बीच में एक और भी राजा हो गया है। सका ऐतिहासिक प्रमाण अब तक ठीक ठीक नहीं न मिला था। इस लेख से वह मिल गया और ष्ट हो गया कि उस राजा का नाम वासिष्क ा। इसी राजा के राज्यकाल में द्रोणल ने मथुरा १२ रात्रि पर्यन्त यज्ञ करके पूर्वोक्त यूप की तिष्ठा की थी। उस ज़माने में ऐसी यूप-स्थापना ी चाल थी। ये यूप एक प्रकार की यादगार मझे जाते थे। जो यज्ञ करता था वह उसकी याद नी रखने के लिए यूप अवश्य गाड़ देता था। सी से कालिदास ने रघुवंश में लिखा है—

(१) अमेनामविरतेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्—सर्ग १
(२) यथादर्शितनिर्वाणयूपः—सर्ग ६
(३) वेदिप्रतिष्ठान्वितताध्वराख्यान् यूपानपश्यच्छतशो रघूणाम्—सर्ग १६

इसी वासिष्क राजा के राज्यकाल का एक खण्डित शिलालेख साँची में भी मिला है। वह अब तक ठीक ठीक न पढ़ा जाता था। पर ईसापुर के इस यूप लेख की सहायता से उसका भी उद्धार हो गया और यह स्पष्ट विदित हो गया कि कनिष्क के सदृश वासिष्क भी प्रतापी राजा था और उसका राज्य साँची तक फैला हुआ था।

भाषा की दृष्टि से भी ईसापुर का यूप-लेख बड़े महत्त्व का है। वह कोई अठारह उन्नीस सौ वर्ष का पुराना है। उसकी भाषा विशुद्ध संस्कृत है। उसमें जो दो एक छोटी छोटी अशुद्धियाँ हैं वे, सम्भव है, खोदने वाले की असावधानता से हो गई हों। कुशानवंशीय राजाओं के शासन-समय के अन्तर्गत पूर्व-कालीन शिलालेख प्राकृत मिली हुई संस्कृत-भाषा में और उत्तर-कालीन शिलालेख संस्कृत मिली हुई प्राकृत-भाषा में ही अब तक मिले हैं। अर्थात् पहले प्रकार के लेखों में संस्कृत अधिक है, प्राकृत कम, और दूसरे प्रकार के लेखों में प्राकृत अधिक है, संस्कृत कम। मतलब यह कि उस ज़माने में प्राकृत का प्राबल्य हो रहा था और संस्कृत का नैर्बल्य। मौर्य्य और शुङ्ग-वंशीय राजाओं के राजत्वकाल में तो प्राकृत ही का सार्वदेशिक प्रचार हो गया था। इस कारण उस समय के प्रायः सभी शिलालेख प्राकृत में ही मिले हैं। संस्कृत का प्रचाराधिक्य तो गुप्त-वंश के राजाओं के समय में हुआ। इसी से उत्तरी भारत में उस समय के जितने लेख मिले हैं सब संस्कृत में हैं। इस दशा में ईसापुर के यूप स्तम्भ का भी लेख प्राकृत मिली संस्कृत में होना चाहिए था। पर है यह प्रायः विशुद्ध संस्कृत में। इस तरह की संस्कृत में खुदा हुआ जो सब से पुराना शिलालेख अब तक मिला है वह १५० ईसवी के आस पास का है। वह क्षत्रप रुद्रदामा के समय का है और गिरनार की एक पर्वत-शिला पर खुदा हुआ है। ईसापुर का प्रस्तुत लेख उससे भी सौ पचास वर्ष पुराना है। अतएव सिद्ध है कि उस समय,

अर्थात् सन् ईसवी के कुछ समय आगे पीछे, भी संस्कृत का यहाँ अच्छा प्रचार था। उस समय के जो शिलालेख प्राकृत या प्राकृत-मिश्रित संस्कृत में ही मिले हैं इसका कारण यह मालूम होता है कि वे प्रायः सब के सब बौद्धों और जैनों के हैं। ये लोग उस ज़माने में प्राकृत के पक्षपाती और संस्कृत के प्रचार के विपक्षी थे। इसी से इनके शिलालेखों में संस्कृत की अवहेलना हुई है। ब्राह्मण लोग आज से दो हज़ार वर्ष पहले भी संस्कृत ही का विशेष आदर करते थे और उसी में शिलालेख खुदवाते और ग्रन्थ-रचना करते थे। ईसापुर में यज्ञ करने वाला द्रोणल ब्राह्मण ही था। इसी से उसके खुदवाये हुए लेख में संस्कृत ही का प्रयोग हुआ है। विशुद्ध संस्कृत में प्राप्त हुआ यही अब तक सब से पुराना शिलालेख है। सम्भव है, और भी ऐसे ही शिलालेख पृथ्वी के पेट में दबे पड़े हों और कालान्तर में पाये जायँ।

यूपों का वर्णन शतपथ-ब्राह्मण में विस्तारपूर्वक है। यूप बहुत करके खदिर (कत्थे) के वृक्ष का होता था। "था"—इसलिए कि इस समय एक आध भूले भटके याज्ञिक को छोड़ कर शायद ही और कोई इस क्रिया-काण्ड के द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा रखता हुआ यज्ञीय पशु बाँधने के लिए यूप गाड़ता हो। जिस काम के लिए यूप गाड़े जाते थे वह लकड़ी के यूप से ही अच्छी तरह हो जाता था। पशु बाँधने के लिए पत्थर तराशने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ईसापुर के यूप उस यज्ञीय स्तूप की केवल यादगार हैं। वे पत्थर के इसलिए बनाये गये हैं कि बहुत समय तक बने रहें और यज्ञकर्ता के यज्ञ की याद दिलाते रहें। लकड़ी के स्तूप गाड़ने से वर्ष ही दो वर्ष में सड़ कर वे नष्ट हो सकते हैं।

अच्छा ये यूप हैं क्या चीज़? शतपथ-ब्राह्मण से तो यही मालूम होता है कि वे पशु बाँधने के लिए यज्ञशाला में गाड़े जाते थे। इनको अपनी वर्तमान भ[illegible] में क्या कहना चाहिए। खूँटा तो कही नहीं सकते, क्योंकि वेदवेत्ता [illegible] विद्वानों की राय है कि खूँटा कहने से यूपों [illegible] अप्रतिष्ठा होती है। इसी डर से हमने इस [illegible] वैसा नहीं किया। अब वही कृपा करके बतावें [illegible] ये "यूप" हिन्दी में भी यूप ही रहें या इनके [illegible] वे और कोई प्रतिष्ठासूचक नाम चुन दें। [illegible] यूपों से जो पशु बाँधे जाते थे उनके लिए "प[illegible] शब्द का प्रयोग भी वेदज्ञ विद्वान् अनादरसू[illegible] समझते हैं। "गवालम्भ"—वाला आलम्भ—[illegible] शायद उन्हें ऐसे पशु के लिए विशेष प्रतिष्ठाज[illegible] ज्ञात हो। इस प्रतिष्ठाजनक शब्द-प्रयोग से शा[illegible] उस पशु का कुछ हित हो सकता हो। लोग [illegible] जेल को ससुराल कहने से भी कैदियों का कुछ [illegible] उपकार नहीं होता।

ये यूप किस तरह जङ्गल में काटे जाते [illegible] किस तरह गढ़े जाते थे? कब, किस जगह [illegible] किस तरह गाड़े जाते थे? उनकी संख्या कि[illegible] होती थी? उन्हें काटने, गढ़ने, गाड़ने और [illegible] पूजा करने में कौन कौन किन किन मन्त्रों का [illegible] रण करता था? पशु को कौन और किस [illegible] बाँधता तथा पूजता था? यूप से बँधे हुए पशु [illegible] वहीं आलम्भ होता था या खोल कर [illegible] जगह? किसी शस्त्र से काम लिया जाता [illegible] पाश से? ये सब बातें तैलियों, कायस्थों, [illegible] शास्त्रज्ञ पण्डितों के "म्लेच्छों," ने अन्य भाषा[illegible] लिख डाली हैं। पर उनके कथन का अनुवाद [illegible] का साहस नहीं होता। डर लगता है कि [illegible] "सोम-याग" नामक लेख की तरह हमसे [illegible] भूलें न हो जायँ। शतपथ-ब्राह्मण में ये सब [illegible] विधिपूर्वक लिखी हुई हैं। सायण, हरिस्वामी [illegible] द्विवेद-गङ्ग ने अपनी टीकाओं में इन [illegible] और भी विशद रीति से समझा दिया। पर हम वेदज्ञ और ब्राह्मणज्ञ होने का दावा नहीं [illegible] सकते। इस कारण हम उनके आधार [illegible] किसी तरह कुछ लिख कर वेदवेत्ताओं का [illegible] दिखाना चाहते। भूलें हो जाने का डर है।



ईसापुर के यूप-स्तम्भ पर खुदा हुआ लेख।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

जाता है, वेदवेत्ता विद्वान् अपनी क्रिया-शीलता कुछ अंश का प्रयोग इधर भी करके केवल ...जानने वालों की अवगति के लिए इन बातों सविस्तर प्रकाशित करने की कृपा करेंगे। न ...से वेद-ब्राह्मणों की अप्रतिष्ठा और अनादर की सम्भावना है। कारण यह कि इस विषय मर्मज्ञ महाशय यदि कुछ न लिखेंगे तो अन्य ...नों के सहारे लोग अपनी जिज्ञासा-तृप्ति करने ...गे। इस दशा में यदि वे यूप को खूँटा और ...पशु को वध कहने लगें तो कोई आश्चर्य नहीं। ऐसा ही होने लगे तो इस भ्रमोत्पादन के दोष दोषी हमारे वेदव्रत विद्वान् भी अवश्य ही हो जायँगे।

कामी और सती का संवाद ।

(रामचरितचिन्तामणि से उद्धृत)

कामातुर दशशीश जानकी-निकट खड़ा हो,
हरना बोला, किन्तु प्रकट में बड़ा कड़ा हो।
सीते! मुझको देख तुझे डरना न चाहिए;
वनवासी के लिए व्यर्थ मरना न चाहिए।
यद्यपि राक्षसों के लिए कुछ भी नहीं अधर्म है;
तो भी तुझे प्रसन्न ही रखना मेरा कर्म है ॥१॥

सीते! मुझको मान, तुझे भी मान मिलेगा;
अपमानित कर मुझे न तेरा काम चलेगा।
भोग-योग्य नृपसुते! वृथा हठ-योग न कर तू;
मुझे समझ निज दास, समझ लङ्का को घर तू।
कौन वस्तु है विश्व में जिसे न ला दूँगा तुझे,
यदि निज सस्मित वदन को क्षण भर दिखला दे मुझे ॥२॥

जिसी चन्द्र पर दृष्टि भीरु! मम झुक जाती है,
हो करके लाचार वहीं वह रुक जाती है।
तुझे बना कर स्वयं स्वयम्भू धन्य हुआ है,
तेरे सम सौन्दर्य-सिन्धु क्या अन्य हुआ है!
रावण मानद विश्व का मुझको ही तू जान जा;
राम न पा सकता तुझे मेरी बातें मान जा ॥३॥

मैं तेरा हो चुका और तू मेरी होगी,
किसी भाँति हे भीरु! न इसमें देरी होगी।
हो सकता है राम न मेरे दास-बराबर;
कर आहार-विहार राम से चित्त हटा कर।
भारतेश मैं जनक को तुरत बना दूँगा प्रिये!
और तुझे क्या चाहिए, आज्ञा दे उसके लिए ॥४॥

अल्प काल में नष्ट नव वयस हो जाती है;
बीत गई जो घड़ी नहीं फिर वह आती है।
अपनी अनुपम देह व्यर्थ मत मिट्टी कर तू;
छोड़ राम का ध्यान, प्रेम से मुझको वर तू।
तेरी चेरी मयसुता होगी सीते आज से—
क्यों उत्तर देती नहीं? नाहक चुप है लाज से ॥५॥

दशकन्धर के वचन श्रवण कर सीता बोली,
किन्तु राम-पद से न तनिक मति उसकी डोली—
मुझसे मन को हटा लगा उसको निज-जन में;
राजनीति को समझ दशानन! अपने मन में।
कभी भूल कर भूप को अनय न करना चाहिए;
ध्यान-सहित निज धर्म को मन में धरना चाहिए ॥६॥

क्यों गिरता है मूढ़! अन्ध हो काम-कूप में?
व्यर्थ न कालिख लगा स्वयं हो भूप रूप में।
छल करके पर-वस्तु तुझे हरना न चाहिए;
निर्बल को बल-विवश कभी करना न चाहिए।
पाप-वृत्ति जिस भूप की हुई अन्य के साथ में,
राज-दण्ड रहता नहीं रावण! उसके हाथ में ॥७॥

जिसकी है जो चीज़ उसे वह फिर मिलती है;
सदा किसी की नहीं चालबाज़ी चलती है।
शठ! हठ मत कर कभी बड़ा धोखा खायेगा;
केवल तेरा अयश जगत में रह जायेगा।
कुल-विहीन के साथ द्वन्द्व करना अति अन्याय है,
राक्षसेश! तू समझ जा, सविनय मेरी राय है ॥८॥

पल में सब सम्पत्ति नष्ट होती है जग की,
निर्बल दल की आह नहीं होती है हलकी।
विषम चाल को छोड़ चाल तू मत चल छल की;
मुख्यत्व तज मत पैठ कोठरी में काजल की।
भूतल पर अन्याय का फल मिलता है शीघ्र ही,
कुशल नहीं है दीखता तेरा, तू हट जा कहीं ॥९॥

कभी राहु से नहीं रोहिणी मिल सकती है,
दिवा कुमुद के नहीं कुमुदिनी मिल सकती है

सदा भ्रमर के साथ पद्मा शोभा पाती है,
पङ्कजा पङ्क से हीन नहीं देखी जाती है।
भूप नहीं भूपेन्द्र तू, तो भी राक्षसराज है;
क्रूर! दूर हो, कुछ नहीं तुझसे मेरा काज है ॥१०॥

सत्यवान के साथ रही जैसे सावित्री,
द्विज-मुख से ज्यों वेद बनाती है गायत्री।
सदा प्रभाकर साथ प्रभा जैसे रहती है,
यथा शम्भु के सङ्ग प्रेम में मग्न सती है।
वैसे ही सम्बन्ध है मेरा भी रघुराज से,
मुझे नहीं कुछ काम है नीच निशाचर-राज से ॥११॥

निर्गन्धा हो भूमि, धूम से हीन अनल हो,
स्पर्श-रहित हो वही रूप के सहित अनिल हो।
रावण! ये हो जायँ सभी अघटित घटनायें;
पर मन डिगता नहीं सती का लोभ दिखाये।
राज्य, रत्न, धन साथ में आते जाते हैं नहीं;
धर्म हीन त्रैलोक्य में जन सुख पाते हैं नहीं ॥१२॥

चल यौवन ही नहीं, किन्तु जीवन भी चल है—
जिसको है यह ज्ञान उसी का जन्म सफल है।
इसी लिए लङ्केश! पतिव्रत मैं पालूँगी;
तेरे मुख पर राख अयश की मैं डालूँगी।
टालूँगी जीती नहीं निगमागम-आदेश को,
देश-वेश-प्रतिकूल जो धिक्कृति उस सुख-लेश को ॥१३॥

सुन कर तेरे कटुक वचन मैं सुख पाता हूँ,
सीते! तनिक न क्रोध-हाथ में मैं आता हूँ।
स्मर-पीड़ित को मुझे अधिक मत पीड़ित कर तू;
कर जोड़े हूँ खड़ा दुःख सब मेरे हर तू।
पर सीधेपन से नहीं काम निकलता है कभी,
इसी लिए निज हाथ से दण्ड तुझे दूँगा अभी ॥१४॥

रूप-जाल में फँसा हुआ हूँ सीते! तेरे,
जो चाहे सो कहे, मुझे हैं सम्मत मेरे।
और नहीं तो भला आज तू बचती कैसे—
वश करलेता तुझे शीघ्र ही होता जैसे।
इन्द्राणी को भी अभी चाहूँ तो वश में करूँ,
अपने मन में सोच तू, फिर मैं क्यों तुझसे डरूँ? ॥१५॥

जिसको चाहे चित्त मनोहर वस्तु वही है,
मैं जो तेरा दास हुआ बस हेतु यही है।
मेरे हाथों अन्त करायेगी यदि अपना—
तो फिर मेरे लिए सुमुखि! होगा सुख सपना
लोभी मेरी बात को जो तू मानेगी नहीं,
कुछही दिनों के बाद मैं तुझको मारूँगा वहीं

पहले कामासक्त क्रोध के वश होता है,
फिर वह गिर कर मोह-गर्त में स्मृति खोता है।
होता है हतबुद्धि वही फिर स्मृति को खो कर,
हो जाता है नष्ट स्वयं फिर वह रो रो कर।
रावण! कामासक्त क्यों होता है मेरे लिए
मेरा कहना मान जा कहती हूँ तेरे लिए ॥

राक्षसेश! क्या तुझे काल ने घेरा है?
इसी लिए हित-वाक्य नहीं सुनता मेरा है।
क्यों करके अन्याय कलङ्कित तू होता है?
शीघ्र चेत जा, मोह-दिवस में क्यों सोता है!
पुरजन परिजन भी तुझे क्यों समझाते है नहीं
क्या वे तेरे साथ में दुख सुख पाते हैं नहीं
अन्यायी के निकट नहीं कोई जाता है,
दुखी देख कर उसे जगत अति सुख पाता है।
पामर हो कर उच्च-वंश क्यों तू बनता है?
हो कर के बक हंस-चाल तू क्यों चलता है?
साधु जनों की दृष्टि से राक्षसेश तू गिर गया,
मानो इस संसार में जीताही तू मर गया ॥१[illegible]॥

साधु-वेश धर प्रथम मुझे तूने फुसलाया;
वश में करके अहो भयङ्कर वपु दिखलाया;
चत्रियकर से छीन मुझे क्यों दुख देता है!
निज प्रज्ञा से काम नहीं क्यों तू लेता है!
मूढ़! किसी की एक सी राजश्री रहती नहीं;
[illegible] के भार को मही सदा सहती नहीं।
नभ में निज-गति देख तनिक भी गर्व न कर तू,
राक्षसेश! मत शलभ तुल्य उड़ करके मर तू।
शस्त्र-सुसज्जित सभी सुभट हैं तेरे तो क्या?
राज्य, सैन्य से रहित राम मेरे हैं तो क्या?
न्यायपरायण ईश वह न्यायी जन के हाथ में—
विजय-जयन्ती को कभी देगा ही रह साथ में ॥१[illegible]॥

भारत की मैं पतिव्रता हूँ सुन दशकन्धर!
नश्वर है जब देह मृत्यु का फिर क्या है डर!

[अ]न्य धर्म के लिए निछावर जो होती हैं;
कीर्ति-बीज को विपुल विश्व में वे बोती हैं।
क्षणिक काम सुख के लिए धर्म न छोड़ूँगी कभी;
कुल मर्य्यादा से नहीं मैं मुख मोड़ूँगी कभी ॥२२॥
मानस ही में हंस-किशोरी सुख पाती है;
नहीं चन्द्र के बिना चकोरी सुख पाती है।
सिंहसुता क्या कभी स्यार से प्रेम करेगी?
क्या पामर का हाथ कुलश्री कभी धरेगी?
धर्म-पिता मैं आज से रावण मानूँगी तुझे;
रघुनायक के पास यदि तू पहुँचा देवे मुझे ॥२३॥
पर तू अच्छी बात कभी क्या सुन सकता है?
मुक्ता को क्या कभी चकोरक चुन सकता है?
पूर्व पुण्य सब क्षीण हुए मानों अब तेरे।
सभी काम विपरीत लगे होने सब तेरे।
रोवेगा तू नरक में; खोवेगा निज राज को,
ईश्वर रक्खेगा सदा राघव मेरी लाज को ॥२४॥

मिलन ।

(१)

राधिकाकान्त मुकुर्जी के उद्योग से माध्य-महाविद्यालय जबसे खुला है तब से कानपुर के बालक और बालिकायें इसमें एक ही साथ पढ़ने का स्वर्गीय आनन्द पाने लगी [हैं]। बालिकाओं और बालकों का प्रेम भी वैसा निर्मल [है]। इसमें स्वार्थ की गन्ध भी नहीं; इन्द्रिय सम्भोगजन्य सुख [का] लेश भी नहीं। वह निर्मल प्रेम है, वह शुद्ध प्रेम है। [इस]में प्रेम के सिवा और कुछ नहीं। पर, अभागे भारत के [अ]धिवासियों के जीवन में तो यह प्रेम बदा ही नहीं। इसी [लि]ए वे बड़े होने पर शुद्ध प्रेम से वञ्चित रह जाते हैं। वे [इ]स प्रेम का अनुमान ही नहीं कर सकते। यह बड़े ही [सन्ता]प की बात है।

पूर्वोक्त महाविद्यालय में कोई नौ सौ लड़के और इतनी [ही ल]ड़कियाँ हैं। सबकी उम्र दस साल के अन्दर है। [इन्ह]ीं में एक लड़का रामानन्द भी है। वह स्कूल का सेहरा है। [illegible] रहते कभी किसी ने इसे नहीं देखा। पर परीक्षा-फल सुनाने के दिन सबसे पहले उसी का नाम सब सुना करते हैं। रामानन्द और मोहिनी, जो पण्डित देवधर इञ्जीनियर की एकमात्र लड़की है, साथ साथ पढ़ने आया करते और साथ ही साथ जाया करते हैं। दोनों एक ही क्लास में हैं। अपने क्लास में रामानन्द प्रथम और मोहिनी सदा द्वितीय रहा करती है। इस समय इनकी अवस्था कोई दस वर्ष की है। रामानन्द ग़रीब बाप का लड़का है। यद्यपि उसके शरीर पर रेशम के कपड़े और पांव में डासन के जूते किसी ने नहीं देखे, पर उसका गबरून का कोट और हिन्दुस्तानी जूता कभी मैला और टूटा हुआ भी नहीं देखा गया। रामानन्द के पिता बहुत ईमानदार हैं। कमसरियट में नौकर हैं। अपने एकमात्र पुत्र रामानन्द की बुद्धि प्रखरता और संयमता देख कर वे मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया करते हैं और अपने भविष्य का चमकीला भाग्य ध्यान में ला ला कर बहुत सुखी हुआ करते हैं।

तीन वर्ष गुज़र गये। जून का महीना है। इलाहाबाद-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा के फल का इन्तज़ार हो रहा है। विद्यालय बन्द है। छात्रालय में रहने वाले विद्यार्थी अपने अपने घर चले गये हैं। पर जो यहीं हैं नतीजे की प्रतीक्षा में हैं। रामानन्द और मोहिनी ने भी प्रवेशिका परीक्षा दी है। पर इन दोनों को परीक्षा फल जानने के लिए कभी किसी न विशेष श्रम नहीं देना। रामानन्द रोज़ शाम को मोहिनी के बँगले पर आया करता है और उसके साथ मिल कर काव्य-आलोचना और साहित्य-चर्चा किया करता है। रामानन्द शहर में रहता है। मोहिनी के पिता १२००) मासिक तनख़्वाह पाते हैं। इस लिए वे बड़े ही ठाट से शहर के बाहर एक बहुत ही बढ़िया बँगले में रहते हैं। मोहिनी कभी कभी अपनी [illegible] पर रामानन्द के घर जाया करती है। पर इसका जाना नैमित्तिक है और रामानन्द का आना दैनिक।

११ जून को संध्या समय रामानन्द अपने कमरे में बैठा हुआ [illegible] की एक [illegible] पढ़ रहा था कि इतने में [illegible] की [illegible] उसके कान में पड़ी। रामानन्द का [illegible] [illegible]

आवाज़ के साथ कुछ ऐसी मिली हुई मालूम हुई कि उसका चित्त एकदम उस मृदु-मधुर टनटनाहट की ओर खिँच गया। इस बात के लिखने में और पाठकों के पढ़ने में ज़रूर दो चार सेकन्ड लगेंगे, पर, मानसिक जगत् में यह व्यापार सेकन्ड के कितने हज़ारवें हिस्से में घटित हो गया, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। जब रामानन्द ने देखा कि वह पैरगाड़ी उसी के द्वार पर रुक गई तब उसकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। आवाज़ से उसने पहचान लिया कि यह सिवा मोहिनी के और कोई नहीं। इतने मे मोहिनी उसके कमरे में आ गई—

"मोहिनी, कुशल तो है ? इस समय क्यों कष्ट किया ?"

"रामी, बड़ा ही शुभ समाचार सुनाने आई हूँ। पर इसका मिहनताना क्या दोगे। पहले यह बताओ तो सुनाऊँ"।

"मोहिनी, मिहनताने में मुझ ग़रीब के पास है ही क्या, जो तुम लक्ष्मी-स्वरूपिणी की भेंट करूँ ? यह शरीर और यह मन भी मेरा—"

बात समाप्त न हुई थी कि मोहिनी ने तार का एक लिफ़ाफ़ा रामानन्द के हाथ में दे दिया और स्त्री-जन-सुलभ मुसकराहट के साथ कहा—"अच्छा न सही, लो इसे पढ़ो।"

रामानन्द ने तार को लिफ़ाफ़े से निकाल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—

Allahabad.

Ramanand and Mohini stood first and second in Matriculation. My best congratulations.

Radha Krishna.

तार पढ़ कर रामानन्द ने कहा—

"आपको बधाई है"।

मोहिनी ने हँसते हुए जवाब दिया—

"और आपको भी"।

इसके बाद बहुत देर तक वे दोनों अपने कालेज-शिक्षा के विषय में बातचीत करते रहे।

(२)

"मेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और"

रामानन्द और मोहिनी कालेज में एक साथ पढ़ने के स्वप्न देख रहे थे कि इतने ही में रामानन्द के पिता को बदली होने के लिए ज़रूरी हुक्म मिला। रामानन्द को छोड़ कर शिवानन्द जाना पसन्द न करते थे। वे पढ़ने के लिए सन्तान को आँख से ओझल न करने के हिन्दुस्तानी के पेतरह जकड़े हुए थे। रामानन्द ने यह समाचार बालपन की सहपाठिनी मोहिनी को सुनाया तो वह [illegible] हो गई। अन्त में वे दोनों, जो आज तक मिले हुए थे, जुदा हुए और उनके बीच में सैकड़ों कोस का [illegible] हो गया। शिवानन्दजी कलकत्ते में एक ख़ास काम पर [illegible] हुए। वहाँ जाकर उनका भाग्य चमका। [illegible] रुपये की तनख़्वाह से एकदम उनकी तनख़्वाह [illegible] मासिक हो गई। राय साहिब का ख़िताब भी उन्हें मिला। कलकत्ते के एक कालेज में दाख़िल होकर रामानन्द ने अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय होनहार [illegible] युवकों के साथ बैठ कर देना शुरू किया। मोहिनी [illegible] बराबर रामानन्द और रामानन्द के पत्र बराबर मोहिनी के पास जाया करते थे। पर, न मालूम क्या घटना [illegible] एक दिन शिवानन्द अपने प्रिय पुत्र रामानन्द को [illegible] मोहिनी के पिता पण्डित देवधर का एक पत्र देकर [illegible] हुए चले गये—"बेटा, इसमें जो आज्ञा दी गई है [illegible] पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है"।

रामानन्द ने पत्र खोला। उसमें लिखा था—

"कुछ विशेष कारणों से मैं मोहिनी और रामानन्द का पत्र-व्यवहार जारी रखना उचित नहीं समझता। [illegible] मैंने मना कर दिया है कि वह कोई पत्र भैय्या रामानन्द को लिखे। आप भी कृपा करके रामानन्द को आज्ञा दें [illegible] वह कोई पत्र भविष्य में मोहिनी को न लिखे। मुझे पूर्ण [illegible] है कि आपकी आज्ञा को वेदवाक्य समझने वाला [illegible] आयन्दा कोई पत्र उसको न लिखेगा"।

रामानन्द इन पङ्क्तियों को पढ़कर सन्नाटे में [illegible] उसका शरीर चक्कर खाने लगा। वह आराम कुर्सी पर [illegible] पर लेट गया।

(३)

इस घटना को हुए चार वर्ष गुज़र गये। [illegible] विश्वविद्यालय का परीक्षाफल अभी अभी प्रकाशित हुआ है। बी० ए० में सबसे पहला नाम रामानन्द का [illegible] है। कारण शंकर ने अपनी [illegible] में [illegible]

युवक की बड़ी प्रशंसा की है। यह पहला अवसर है कि ई प्रान्त का नवयुवक कलकत्ते के विश्वविद्यालय की बी० परीक्षा में पहले नम्बर पर पास हुआ है।

रामानन्द के बी० ए० होते ही भारत-सरकार ने सिविल स की तैयारी के लिए उसे यथानियम छात्र-वृत्ति दी। शिवानन्द नहीं चाहते कि रामानन्द जहाज़ पर पांव कर सामाजिक बन्धन छिन्न करे। इस बात का पता जब नरियट के बड़े अफ़सर को लगा तब उसने शिवानन्द को या और उन्हें बहुत समझाया। उसने कहा, इसमें अकारण हठ न करना चाहिए। पुत्र की उन्नति, अफ़-का कहना, योरप से लौट कर भारत में कलक्टरी मिलने लोभ—इन सब बातों ने मिल कर शिवानन्द के भोले धर्म्म-भाव-पूर्ण मन पर विजय प्राप्त की।

रामानन्द को हिन्दी से बड़ा प्रेम था। समय मिलने वह हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़ता और समाचारपत्रों नर में पहले हिन्दी के अख़बार देखा करता था। हिन्दी ग़रीबी पर वह दुखी था। ज्यों ज्यों वह अन्य भाषाओं ग्रन्थ पढ़ता त्यों त्यों उसके मन में हिन्दी की हीनता सन्ताप अधिक होता जाता। जिस अच्छे ग्रन्थ को वह ता उसका आशय थोड़े में हिन्दी में लिखने की उसकी आदत गई थी। इस तरह लिखते लिखते उसके पास कॉपियों पियां भर गई थीं। विलायत जाते समय ज़रूरी असबाब साथ हिन्दी की कापियों का एक पुलिन्दा भी उसने रख दा। रामानन्द को खड़ी बोली की कविता से विशेष प्रेम। वह स्वयं भी कविता लिखता था। पर, किसी पत्र में ी तक उसकी एक पंक्ति भी न छपी थी। हां—ब्रजभाषा स खड़ी बोली—का व्यर्थ झगड़ा जब उठा था तब उसने ल्पित नाम देकर अनेक युक्ति-पूर्ण लेख खड़ी बोली के में लिखे थे। उस समय हिन्दी साहित्य-सेवियों के मन में ''बाईसपत्य' का परिचय पाने की बड़ी लालसा उत्पन्न ई थी। पर रामानन्द ने पहले ही सम्पादक से इक़रार करा या था कि किसी तरह भी मैं तुम्हारा नाम न ट करूँगा।

इँगलैंड की स्वतन्त्रतासूचक वायु के पहले ही झोंके रामानन्द के मस्तिष्क को देश-हित के विचारों से भर या। उसने यह बात ख़ूब अच्छी तरह जानली कि बिना मातृ-भाषा की उन्नति के देश की यथार्थ उन्नति होना सम्भव नहीं। अतएव उसने अपने हिन्दी बस्ते को निकाला। फिर उसने विविध विषयों पर पढ़ी हुई अनेक पुस्तकों का सारांश भिन्न भिन्न लेखों की शक्ल में लिखना शुरू किया। रामानन्द को दो ही काम थे। आई० सी० एस० (I C S.) की पाठ्य पुस्तकें पढ़ना और हिन्दी-लेख लिखना। सिर्फ़ इन दो कामों में लीन रामानन्द लन्दन में इस तरह रहने लगा जैसे कोई जङ्गल में रहता हो। थोड़े ही दिनों के परिश्रम से उसने कोई २१ लेख लिख कर तैयार कर लिये। एक दिन उसने उन सब का एक पुलिन्दा बना कर हिन्दी की सर्वोत्तम मासिक पत्रिका ''वैजयन्ती'' के सम्पादक के नाम भेज दिया। ये लेख जो क्रमपूर्वक ''भ्रमर'' के नाम से वैजयन्ती में छपे तो उसके हजारों नये ग्राहक हो गये। घर घर चाव से ये लेख पढ़े जाने लगे। जिन विषयों का गुमान भी हिन्दी पाठकों को न था उन शास्त्रीय विषयों पर सुविस्तृत लेख पढ़ कर हिन्दी-हितैषी ''भ्रमर'' की विद्वत्ता, योग्यता, सारग्राहिता और लेखन चातुर्य्य पर मुग्ध हो गये।

कुछ समय बाद रामानन्द ने एक छोटा सा खण्ड-काव्य लिखा। उसमें उसने एक बड़ी मनोमोहक कहानी, खड़ी बोली में, पद्य-बद्ध की। जिस समय यह काव्य वैजयन्ती में निकला उस समय हिन्दी जगत् में खलबली मच गई। यह काव्य उन दोषों से बिलकुल ही शून्य था जिनको खड़ी बोली के विरोधी खड़ी बोली के काव्य के लाज़िमी दोष कहा करते थे। इस काव्य के प्रत्येक पद्य—प्रत्येक पङ्क्ति में प्रेम रस भरा हुआ था। ऐसा अच्छा काव्य आज तक खड़ी बोली में न निकला था। संस्कृत में कालिदास और जयदेव तथा हिन्दी में सूर और तुलसी के काव्यों की तरह लोग इसके पारायण करने लगे। मई की वैजयन्ती में यह काव्य निकला और जून की वैजयन्ती में इसकी समालोचना का निकलना शुरू हो गया। समालोचना के लेखक ने भी अपना नाम न दिया था। लेख के अन्त में ''कमल'' लिखा हुआ था। जब जून की वैजयन्ती कहीं जुलाई में लन्दन पहुँची और रामानन्द ने अपने काव्य पर सुविस्तृत और सारपूर्ण समालोचना पढ़ी तब वह दङ्ग रह गया। उसने देखा कि इसके काव्य के

आवाज़ के साथ कुछ ऐसी मिली हुई मालूम हुई कि उसका चित्त एकदम उस मृदु-मधुर टनटनाहट की ओर खिंच गया। इस बात के लिखने में और पाठकों के पढ़ने में ज़रूर दो चार सेकन्ड लगेंगे, पर, मानसिक जगत् में यह व्यापार सेकन्ड के कितने हज़ारवें हिस्से में घटित हो गया, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। जब रामानन्द ने देखा कि वह पैरगाड़ी उसी के द्वार पर रुक गई तब उसकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। आवाज़ से उसने पहचान लिया कि यह सिवा मोहिनी के और कोई नहीं। इतने में मोहिनी उसके कमरे में आ गई—

"मोहिनी, कुशल तो है? इस समय क्यों कष्ट किया?"

"रामी, बड़ा ही शुभ समाचार सुनाने आई हूँ। पर इसका मिहनताना क्या दोगे। पहले यह बताओ तो सुनाऊँ"।

"मोहिनी, मिहनताने में मुझ ग़रीब के पास है ही क्या, जो तुम लक्ष्मी-स्वरूपिणी की भेट करूँ? यह शरीर और यह मन भी मेरा—"

बात समाप्त न हुई थी कि मोहिनी ने तार का एक लिफ़ाफ़ा रामानन्द के हाथ में दे दिया और स्त्री-जन-सुलभ मुसकराहट के साथ कहा—"अच्छा न सही, लो इसे पढ़ो।"

रामानन्द ने तार को लिफ़ाफ़े से निकाल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—

Allahabad.

Ramanand and Mohini stood first and second in Matriculation. My best congratulations.

Radha Krishna.

तार पढ़ कर रामानन्द ने कहा—

"आपको बधाई है"।

मोहिनी ने हँसते हुए जवाब दिया—

"और आपको भी"।

इसके बाद बहुत देर तक वे दोनों अपने कालेज-शिक्षा के विषय में बातचीत करते रहे।

(२)

"मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और"

रामानन्द और मोहिनी कालेज में एक साथ पढ़ने के स्वप्न देख रहे थे कि इतने ही में रामानन्द के पिता को बङ्गाल जाने के लिए ज़रूरी हुक्म मिला। रामानन्द को छोड़ कर
शिवानन्द जाना पसन्द न करते थे। वे पढ़ने के लि
सन्तान को आँख से ओझल न करने के हिन्दुस्तानी
बेतरह जकड़े हुए थे। रामानन्द ने यह समाचार
बालपन की सहपाठिनी मोहिनी को सुनाया तो वह
हो गई। अन्त में ये दोनों, जो आज तक
जुदा हुए और उनके बीच में सैकड़ों कोस का
होगया। शिवानन्दजी कलकत्ते में एक ख़ास काम पर
हुए। वहां जाकर उनका भाग्य चमका। छोटी
रुपये की तनख़्वाह से एकदम उनकी तनख़्वाह
मासिक हो गई। राय साहिब का ख़िताब भी उन्हें मिला।
कलकत्ते के एक कालेज में दाख़िल होकर रामानन्द
अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय होनहार बङ्गाली
युवकों के साथ बैठ कर देना शुरू किया। मोहिनी
बराबर रामानन्द और रामानन्द के पत्र बराबर
पास जाया करते थे। पर, न मालूम क्या घटना
एक दिन शिवानन्द अपने प्रिय पुत्र रामानन्द को
मोहिनी के पिता पण्डित देवधर का एक पत्र देकर
हुए चले गये—"बेटा, इसमें जो आज्ञा दी गई है
पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है"।

रामानन्द ने पत्र खोला। उसमें लिखा था—

"कुछ विशेष कारणों से मैं मोहिनी और रामानन्द
पत्र-व्यवहार जारी रखना उचित नहीं समझता। मैंने
मैंने मना कर दिया है कि वह कोई पत्र भैय्या रामानन्द
लिखे। आप भी कृपा करके रामानन्द को
वह कोई पत्र भविष्य में मोहिनी
है कि आपकी आज्ञा
आयन्दा कोई पत्र

रामानन्द इन
उसका शरीर चक्कर
चाप लेट गया।

इस घटना
विश्वविद्यालय
है। बी० ए०
है। बादस

रामानन्द ने लेख को पढ़ना शुरू किया। भट्टाचार्य [illegible]हर जाकर अपने बग़ीचे से कुछ फल लाने के लिए [illegible] मे अपने माली तेजराम को आज्ञा दी। लेख के [illegible] दो पृष्ठ भी समाप्त न हुए होंगे कि रामानन्द सहसा [illegible] पड़े—"क्या यह सच है? अद्भुत व्यापार! विलक्षण [illegible]!" आदि वाक्य उनके मुँह से निकलने लगे।

[illegible]इसी समय भट्टाचार्य महाशय कमरे में लौट आये। [illegible] देख कर रामानन्द ने कहा—

"महाराज, जो रहस्य आप आज तक छिपाये हुए थे, [illegible]र बार पूछने पर भी जिसे आपने नहीं बताया, उसे [illegible] आपने स्वयं ही खोल दिया! आश्चर्य तो देखिए"।

भट्टाचार्य ने जल्दी में पूछा—"क्या, लेखक का असली [illegible] आपको मालूम हो गया"?

रामानन्द ने—"हाँ, देखिए न" कह कर लेख का [illegible]ला पृष्ठ भट्टाचार्यजी के सामने रख दिया। उसमें एक [illegible] सटा हुआ था और उसके नीचे लिखा था—

[illegible] हिन्दू भट्टाचार्यजी की सेवा में सादर समर्पित

मोहिनीबाला, एम० एस-सी०,

प्रिंसिपल, हिन्दू-गर्ल्स कालेज बनारस।

[illegible] इसी फ़ोटो पर भट्टाचार्यजी ही के हाथ का लिखा [illegible] था—

सुप्रसिद्ध 'मिलन' कलाकोविदा

[illegible] ([illegible])

रामानन्द के आनन्द का आज पार नहीं। मोहिनी के [illegible] असह्य दुःख के कारण ही उन्होंने "मिलन" काव्य [illegible]ा था। भट्टाचार्यजी ने जलद-गम्भीर घोष में बहुत देर [illegible] निस्तब्धता तोड़ी। वे बोले—"तो क्या आप श्रीमती [illegible] मोहिनीबाला से परिचित हैं?"

रामानन्द इसका उत्तर देने ही को थे कि फिर दरवाज़ा [illegible] और चपरासी एक और कार्ड लेकर कमरे में आया। [illegible] देखते ही भट्टाचार्यजी का चेहरा शुद्ध स्वर्ण-सदृश-सम [illegible] [illegible] और "दो मिनिट के लिए क्षमा कीजिए"— [illegible] हुए वे बाहर गये। कुछ क्षण बाद ही रामानन्द ने [illegible] मोहिनी और भट्टाचार्य को कमरे में प्रवेश करते देखा। [illegible] एम० एस-सी० का चोगा पहने थीं। देखते ही [illegible] रामानन्द मोहिनी को पहचान गये। पर मोहिनी की [illegible] [illegible] की परीक्षा लेने के लिए वे चलकर हाथ में लिये [illegible] चुपचाप बैठे रहे। मोहिनी ने रामानन्द को गबरून का कोट और हिन्दुस्तानी जूता पहने देखा था। उस समय वे एक साधारण विद्यार्थी थे। पर आज वे सोलह आना साहब बने कोट-पैन्ट डाटे थे। इँगलैंड में रहने के कारण उनका शरीर-संगठन और चेहरे का वर्ण भी पहले से बहुत कुछ बदल गया था। आख़िर, मोहिनी ने धोखा खाया और वह दूसरी ओर भट्टाचार्यजी के सामने कुरसी पर बैठ कर उनसे बातचीत करने लगी। मानों उसने इन साहब बहादुर को देखा ही नहीं। भट्टाचार्यजी से बड़े ही कोमल स्वर में मोहिनी ने कहा—

"मुझे क्षमा कीजिए। मैं परसों शाम को यहाँ आ गई थी। पर आपके दर्शन इससे पहले न कर सकी"।

भट्टाचार्य—"शुभे, आपने अपने आने की मुझे ख़बर तक न की"।

मोहिनी—"मुझे स्वयं ही न मालूम था कि इसी सप्ताह मुझे यहाँ आना होगा"।

बड़े स्नेह से भट्टाचार्य ने पूछा—"कुशल तो है न"?

मोहिनी बोली "आपका अनुग्रह है। पिताजी की सम्पत्ति के विषय में यहाँ के प्रसिद्ध वकीलों से एक बहुत ही ज़रूरी मशविरा करने के लिए मुझे यहाँ सहसा आना पड़ा"।

भट्टाचार्य—"समझा"।

मोहिनी ने बड़े प्यार से पूछा —'कहिए, कई महीनों से 'भ्रमर' महाशय का कोई लेख [illegible] में नहीं छपा। क्या कारण है? ऐसा लेखक हिन्दीजगत में दूसरा नहीं। दुःख है, आपको उन्होंने अपना नाम न बताने की इतनी सख्त ताकीद कर दी है। अन्यथा मैं तो उनके दर्शन करके अपने को धन्य समझती'।

इन शब्दों ने रामानन्द के शरीर में बिजली की धारा सी बहा दी।

भट्टाचार्य ने मुस्कराते हुए कहा—"ठीक, आप सदृश कलाकोविद भी हिन्दी-संसार में दूसरा नहीं, पर [illegible] करने की मुझे [illegible] दीजिए'।

[illegible] —"[illegible] भट्टाचार्यजी। [illegible]"।

भट्टाचार्य ने [illegible] [illegible] —

भीतरी से भीतरी और बारीक से बारीक गुण-दोषों का बहुत ही अच्छा विवेचन समालोचना में किया गया है। उसने देखा कि समालोचना की भाषा बड़ी प्रौढ़, उसका शब्द-विन्यास बड़ा सुन्दर और उसकी आक्षेपोक्तियाँ बड़ी रसीली हैं। इन बातों ने रामानन्द के मन में समालोचक के विषय में बड़ी श्रद्धा पैदा कर दी। उसने बड़ी कृतज्ञता से सिर झुका कर ईश्वर का धन्यवाद किया। उसने कहा, ईश्वर ही की कृपा से हिन्दीजगत् में भी ऐसे अच्छे समालोचक पैदा होने लगे। आज से रामानन्द बड़ी व्यग्रता से वैजयन्ती की प्रतीक्षा करने लगा। क्योंकि उसके उक्त अङ्क में समालोचना का सिर्फ़ प्रारम्भिक अंश ही छपा था।

(४)

पण्डित शिवानन्द के आनन्द की सीमा नहीं। आज उनके पास सेक्रेटरी आव् स्टेट का तार लन्दन से आया है। उसमें उन्होंने रामानन्द के सिविल सर्विस परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाने की बधाई दी है। इसके दूसरे ही दिन भारतवर्ष के कुल दैनिक पत्रों में रामानन्द की प्रशंसा में टिप्पणियाँ निकल गईं। इसके बाद शीघ्र ही दैनिक पत्रों में रूटर का तार छपा कि इस वर्ष सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण पहले चार छात्र कहाँ कहाँ नियुक्त होंगे। रामानन्द इलाहाबाद में नियुक्त हुए।

(५)

वैजयन्ती-सम्पादक पण्डित भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य्य बड़े योग्य पुरुष हैं। साहित्य, इतिहास और दर्शन की तो आप मानो मूर्त्ति हैं। वे बड़े सरल भी हैं। देश भर में आपकी बड़ी ख्याति है। वैजयन्ती प्रयाग से प्रकाशित होती है। भट्टाचार्य्य महाशय का बँगला शहर के बाहर एक बाग़ में है। वह एकान्त स्थान है। वहीं बैठ कर भट्टाचार्य्य महाशय साहित्य-सेवा किया करते हैं। बाग़ में एक छोटी सी कोठी है। इसी कोठी के सामने भाग में भट्टाचार्य्य महाशय का कमरा है। वे सम्पादक कुर्सी पर बैठे हुए काम कर रहे हैं। कमरे में एक मेज़ [illegible] है। [illegible]

ब्लाटिङ्ग पेपर (सोख़्ता काग़ज़) पास ही रक्खे हुए [illegible] इन चीज़ों को देख कर मालूम होता है कि [illegible] रोज़ बदला और साफ़ किया जाता है। दूसरी [illegible] और चाकू आदि हैं। कई तरह की पेंसिलें [illegible] रक्खे हुए हैं। बीच में विज़िटिङ्ग कार्ड्स रक्खने [illegible] एक निहायत ख़ूबसूरत रकाबी है। बिजली की [illegible] डोरा मेज़ के एक कोने में बँधा हुआ है। तारी[illegible] कैलेन्डर घड़ी के नीचे लटक रहा है। उसी के पास [illegible] सरस्वती का एक तैल चित्र टँगा है। भट्टाचार्य्य [illegible] से अख़बार पढ़ रहे हैं। इतने में कमरे का द्वार [illegible] चपरासी एक कार्ड लाया। कार्ड देखते ही भट्टा[illegible] झटपट बाहर गये और कुछ क्षण के बाद ही [illegible] का हाथ पकड़े हुए कमरे में वापिस आये।

हँसते हुए भट्टाचार्य्यजी ने कहा—"आज [illegible] ऊपर बड़ा अनुग्रह किया"।

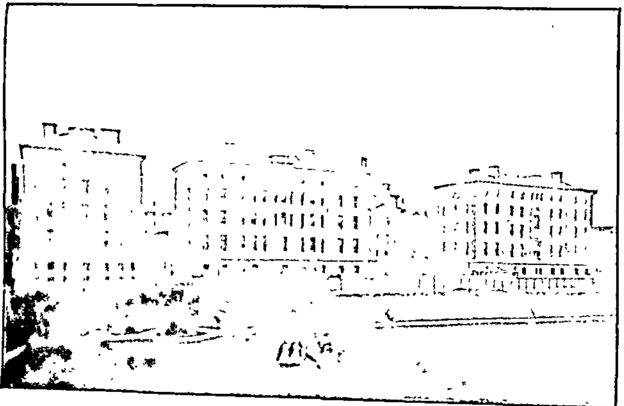
रामानन्द ने बड़ी शिष्टता से उत्तर दिया—"[illegible] कई दिनों से इधर आने को सोच रहा था। मगर [illegible] काम की वजह से अवकाश ही नहीं मिलता। [illegible] से आज आ पाया हूँ"।

भट्टाचार्य्य—"आपके लेखों और [illegible] सुमधुर काव्य—'मिलन' ने हमारी पत्रिका की [illegible] हुई है। मेरे पास यथेष्ट शब्द नहीं जो उनमें [illegible] धन्यवाद करूँ"।

रामानन्द—"हिन्दी के [illegible] में मैं [illegible] दोनों ही [illegible] हैं। फिर कौन किसका धन्य[illegible] कहिए, मेरे काव्य के समालोचक महोदय का [illegible] लेख तो वैजयन्ती में छपने के लिए नहीं आया'"।

भट्टाचार्य्य—"हाँ आया है"। यह [illegible] भट्टाचार्य्यजी उठे और मेज़ की दराज़ को [illegible] गज़ का एक [illegible] निकाल लाये। [illegible] को दूर से ही देख कर रामानन्द का हृदय [illegible]

[illegible] को रामानन्द के हाथ में देते हुए भट्टा[illegible] कहा—"यह देखिए, उन्हीं का लिखा हुआ [illegible] [illegible] है। वैजयन्ती की [illegible] [illegible]। इसमें समालोचना के [illegible] [illegible] है। [illegible] देखिए [illegible]



कोलम्बिया-विश्वविद्यालय की तीन इमारतें।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

"हाँ, आप 'भ्रमर' से मिलना चाहती हैं! वे भी आजकल प्रयाग आये हुए हैं। आप मिल लीजिए। पर आपको भी अपनी ज़िद छोड़ कर उनको पहले पत्र द्वारा यह सूचना देनी होगी कि आप ही उनके काव्य की समालोचिका, अपने शब्दों में 'कमल' और मेरे शब्दों में 'कमलिनी' हैं। कहिए मंज़ूर है?"

मोहिनी—"प्रयाग में वे कहां ठहरे हैं, यह तो बता दीजिए"।

भट्टाचार्य्य ने हँसते हुए कहा—"मुझ बूढ़े को ठगने की चेष्टा न करो। जब तक उक्त मज़मून का पत्र लिख कर न दोगी, भ्रमर से नहीं मिल सकोगी"।

"क्षमा कीजिए। पत्र लिखती हूँ"—यह कह कर मोहिनी ने मेज़ के ऊपर से काग़ज़ कलम उठा कर पत्र लिखना आरम्भ किया। इधर भट्टाचार्य्य ने मुँह फेर कर रामानन्द की ओर भावपूर्ण दृष्टि से देखा तो सिविल सर्विस की परीक्षा पास, न्यायमूर्त्ति, रामानन्द उसी निस्तब्धता से अख़बार के ऊपर रक्खे हुए, 'समालोचना तत्त्व' पढ़ने का ढोंग कर रहे थे।

बड़े मीठे स्वर में मोहिनी ने कहा—"पत्र लीजिए"।

पत्र को हाथ में लिये भट्टाचार्य्य ने, दोनों के बीच में खड़े होकर, मोहिनी से कहा—

"मोहिनी, मैं तुम्हारा परिचय इलाहाबाद के जाइंट मैजिस्ट्रेट पण्डित रामानन्द चतुर्वेदी, आई० सी० एस०, उपनाम 'भ्रमर' से कराता हूँ"।

फिर रामानन्द की ओर मुड़ कर—

"माननीय महाशय, मैं आपका परिचय आपकी समालोचिका विदुषी मोहिनीबाला से कराता हूँ"।

इन शब्दों के समाप्त होने न होने मोहिनी रामानन्द के चरणों पर गिर पड़ी। रामानन्द ने उसको तत्काल ही बड़े प्रेम से उठा लिया।

वृद्ध भट्टाचार्य्य इनके निमित्त जलपान लाने के लिए बाहर निकल गये।

इसके एक सप्ताह बाद इलाहाबाद के दैनिक पत्र में ये पंक्तियाँ छपीं—

निम्नलिखित [illegible]

[illegible]

धूमधाम से हो गया। हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति तथा [illegible] गण्यमान्य विवाह-मण्डप में उपस्थित थे। ईश्वर करे नवदम्पती चिरं[illegible] देश का मङ्गल-साधन करें।

मोहिनी के पिता ने कई लाख की सम्पत्ति छो[ड़ी] जिसकी एकमात्र अधिकारिणी मोहिनी थी। पर, [illegible] को उस सम्पत्ति में सबसे अधिक मूल्यवान् वह पत्र [प्राप्त] हुआ जो मोहिनी के पिता की मृत्यु के बाद उनके [illegible] में मिला था। उसमें लिखा था—

"मोहिनी,

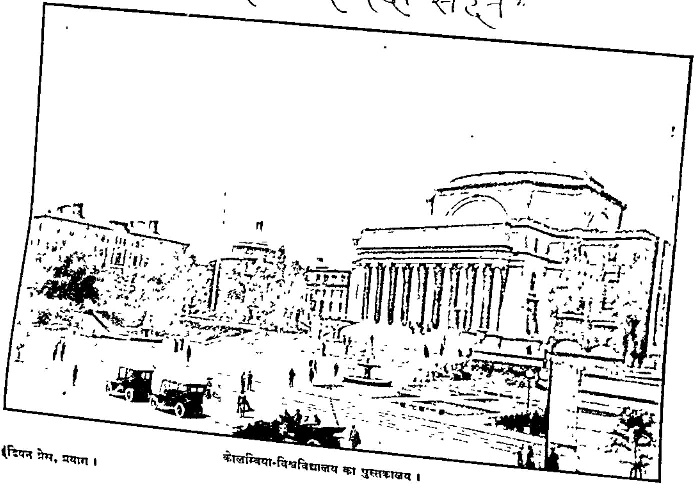
जिस दिन मैं इस नश्वर जगत् से बिदा हो चुकूँगा उसी दिन [illegible] यह पत्र पढ़ोगी। मुझे विश्वास है कि तुमने मेरी उस आज्ञा [illegible] तुमको रामानन्द के साथ पत्रव्यवहार बन्द करने के लिए [illegible] कर ज़रूर दुःख पाया होगा। पर आज मैं तुमसे कहता हूँ कि [illegible] दिये तुम्हारी और रामानन्द की विद्याविषयक उन्नति [illegible] तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम रामानन्द के साथ विवाह [illegible] गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो। ईश्वर तुम्हारी सारी शुभ कामनायें [illegible]

तुम्हारा स्नेहभाजन पिता, [illegible]

ज्वाला[illegible]

चीन में सामाजिक परिव[र्तन]

गत पचास साठ वर्षों का [illegible] के इतिहास में बड़े [illegible] माना जायगा। इ[illegible] यूरप से चीन का [illegible] हुआ और व्यापार आ[illegible] यूरोपीय जातियों ने ज़बरदस्ती घुस क[र] [illegible] छीन ली और कुछ विशेष स्वत्व भी [illegible] ईसाई पादरियों ने अपने धर्म और [illegible] का प्रचार शुरू किया। चीन में [illegible] हलचल मच गई। १८९५ में जापा[न] [illegible] हारने पर यह हलचल और भी ब[ढ़ी] [illegible] की निर्बलता अपने आप पर और स[illegible] प्रकट हो गई। अच्छा अवसर पा[कर] [illegible] राष्ट्र मिल कर चीन पर चढ़ आये [illegible] मानमर्दन करके वापस गये। [illegible] कुछ दिन बाद ही, १९०४-५ में, [illegible] ने विशाल रूस को नीचा दिखा[या] [illegible]



इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कोलम्बिया-विश्वविद्यालय का पुस्तकालय।

एशियाई जातियों के हृदय में नई आशायें और आकाङ्क्षायें उत्पन्न कर दीं। जापान की उन्नति का कारण पाश्चात्य साहित्य, कला और विज्ञान का ज्ञान-सम्पादन था। अतएव चीन का ध्यान भी इस ओर गया। हज़ारों चीनी विद्यार्थी जापान, सैकड़ों अमेरिका को, और कितने ही इँगलैंड, फ्रांस और जर्मनी को विविध शास्त्र और कलायें सीखने गये। नई नई बातें देख कर, नये नये विचार और सिद्धान्त मन में धारण करके, ये लोग लौटे। इनके लौटने से नई परिवर्तनकारिणी शक्तियाँ उत्पन्न हो गई और जो शक्तियाँ पहले से प्रबल थीं वे और भी प्रचण्ड हो उठीं। व्यापार, उद्योग, राजनीति, धर्म, सामाजिक आचार-विचार—सभी में जल्दी जल्दी परिवर्तन होने लगे। अन्त में १९११-१२ की राज्यक्रान्ति ने राजसत्ता के स्थान पर प्रजासत्ता स्थापित करके संसार के सामने नये चीन के विकास की घोषणा कर दी। चीन के इस सामाजिक परिवर्तन पर एक दृष्टि डालने से अनेक नई नई बातें दिखाई देती हैं:—

स्त्रियों की दशा।

पहले ही पहल समाज-सुधारकों का ध्यान स्त्रियों की दुर्दशा की ओर गया। चीन में भी यह सिद्धान्त प्रचलित था कि स्त्रियों को बचपन में पिता के, यौवन में पति के, और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहना चाहिए। उनका जीवन केवल सन्तान पैदा करने और पति तथा सास-ससुर आदि की सेवा करने के लिए है। व्यापक सामाजिक और सार्वजनिक बातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। जिसके साथ पिता चाहे उसी के साथ कन्या का विवाह कर दे। बहुविवाह की राक्षसी प्रथा भी वहाँ विद्यमान थी। पति के मरने पर कभी कभी स्त्रियाँ सती भी हो जाती थीं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि सुन्दरता बढ़ाने के लिए लड़कियों के पैर बहुत छोटे किये जाते थे और फलतः उन्हें नाना यन्त्रणायें उठानी पड़ती थीं। नये विचारों ने इस स्थिति को ज़ोर से धक्का दिया। समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव का सिद्धान्त, राजनैतिक विषयों की तरह, सामाजिक विषयों में भी चरितार्थ हो सकता है। स्त्रियों के स्वत्व भी पुरुषों के समान हैं; स्त्रियों को भी पुरुषों के समान उचित स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्त्री पुरुषों को भ्रातृभाव से रहना चाहिए। इन विचारों के उत्पन्न होते ही सती, बहुविवाह और पैर बाँधने की प्रथायें त्याज्य होने लगीं। सामाजिक जीवन से स्त्रियों का पार्थक्य अन्याय पूर्ण ज्ञात होने लगा; वैवाहिक स्वतन्त्रता और उच्च स्त्री-शिक्षा आवश्यक ज्ञात पड़ने लगी। अतएव कोई आश्चर्य नहीं जो चीन में नये स्त्रीत्व का आविर्भाव हो गया। हाल की राज्यक्रान्ति में बहुतेरी स्त्रियों ने स्वयं युद्ध किया, घायलों की सेवा-शुश्रूषा की और अन्यान्य उपयोगी काम भी किये। स्त्रियाँ 'वोट' के लिए भी आन्दोलन करने लगी हैं। दो वर्ष हुए स्त्रियों के वोट के लिए आन्दोलन करने वाली अन्तर्जातीय महा सभा के बुडापेस्ट में होने वाले अधिवेशन में कई चीनी स्त्रियाँ भी प्रतिनिधि होकर गई थीं। अनेक शिक्षित महिलायें चीन की स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए उद्योग कर रही हैं। पैर बाँधने की प्रथा को समूल तोड़ने के लिए, बहुओं के प्रति सासुओं का प्रभुत्व और अधिकार कम करने के लिए, शिक्षा प्रचार के लिए एवं दूसरे सुधारों के लिए बहुत सी सभायें स्थापित हो चुकी हैं। शहरों में और ऊँचे दरजे के लोगों में सुधार भपाटे से होने लगे हैं। आशा की जाती है कि गाँवों में और नीचे दरजे के लोगों में भी होने लगेंगे।

गुलामी।

जैसे जैसे कोई जन-समुदाय स्वयं स्वतन्त्रताप्रिय होता जाता है वैसे ही वैसे वह, यदि अपनी कोई भारी हानि न होती हो तो, अपने चारों ओर रहने वालों को भी स्वतन्त्र देखना चाहता है। अब समझदार चीनी लोग गुलामी की प्रथा को बुरा समझने लगे हैं। छोटे छोटे लड़के और स्यान कर

छोटी छोटी सम्पत्तियाँ [illegible] बना ली जाती थीं। उनके साथ [illegible] होना था [illegible] नहीं हो सकता। ईसाई पादरियों और उदारचित्त चीनी स्त्री-पुरुषों के उद्योग से यह स्थिति बदल रही है। एक अन्य महत्त्व की बात यह है कि बहुत से काम, जो पहले [illegible] के बिना न हो सकते थे, अब कलों के द्वारा बहुत आसानी से हो सकते हैं। शहर और कारखानों में भी दासत्व की प्रथा के उठ जाने का बहुत बड़ा कारण कलों का निर्माण और प्रयोग ही था।

कुटुम्ब और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य।

नई रोशनी और स्वातन्त्र्य-प्रेम का सबसे भारी परिणाम एक यह भी होता है कि कौटुम्बिक व्यवस्था में खलबली मच जाती है। पहले चीन में कुटुम्ब ही समाज का केन्द्र था, कुटुम्ब का स्वार्थ-साधन कर्तव्य था, कुटुम्ब के आचार-विचार के अनुसार चलना सदाचार था, कुटुम्ब की भलाई करना परमोपकार था, कुटुम्ब के स्वामी की आज्ञा पालन करना धर्म था, और कुटुम्ब के पूर्वजों की पूजा करना परलोक में अच्छी गति प्राप्त करने का मुख्य साधन था।

उन्हीं शक्तियों ने, जिनका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है, इस कौटुम्बिक भाव को भी जर्जर करना प्रारम्भ कर दिया। इस भाव का स्थान व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और राष्ट्रीयता ने लेना प्रारम्भ कर दिया है। सदा अपने ही कुटुम्ब का ध्यान रखना अनुदारता का सूचक है। विद्या, धन, यश और सुख उपार्जन करना चाहिए। और, उनसे दूसरों को भी लाभ पहुँचाना चाहिए। कौटुम्बिक स्वार्थ और सुख का अत्यधिक विचार न करके राष्ट्रीय स्वार्थ और सुख को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। कुटुम्ब-स्वामी की आज्ञा के पालन और पूर्वजों की पूजा की अपेक्षा राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करना और जननी जन्मभूमि की पूजा करना

[illegible] महत्त्व का काम है। चीन में देहात [illegible] के हृदयों में [illegible] हो गई है और [illegible] रहा है। चीनी [illegible] इस [illegible] है कि [illegible], कुटुम्ब [illegible] [illegible] किस प्रकार एक किये जा सकते हैं।

नये ढँग के विवाह।

भिन्न भिन्न बातों में कुटुम्ब की नई [illegible] अपनी ही इच्छाएँ और आकाङ्क्षाएँ [illegible] हैं। इस भाव के कारण ब्याह के ढँग में भी परिवर्तन हो गया है। इसी से युवक और युवतियाँ अब अपनी पसन्द के ब्याह करने लगे हैं।

भारत से समानता।

भारत और चीन के सामाजिक आन्दोलनों [illegible] समता दीख पड़ती है। पर कुछ भेद भी है। [illegible] तो चीन की सामाजिक दशा वैसी बुरी नहीं है कि भारत की है और सामाजिक प्रश्न भी [illegible] पेचीदा नहीं हैं जैसे यहाँ के। दूसरे, जो सुधार सम्बन्धिनी प्रवृत्तियाँ भारत में काम कर रही हैं वे चीन में अधिक प्रबल हैं। हमारा सम्बन्ध विशेषतः इँगलेंड, अँगरेज़-जाति, अँगरेज़ी सभ्यता और अँगरेज़ी साहित्य से है। चीन का सम्बन्ध जापान, अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी और इँगलेंड इन पाँचों देशों की जातियों, सभ्यताओं और साहित्यों से है। तीसरे, राज्यक्रान्ति के बाद से प्रजासत्ताक सरकार में चीनी सुधारकों का [illegible] प्रभाव है। इस लिए सुधार-विषयक आन्दोलनों को बड़ी सहायता मिलती है। चीन में सब तरह की शिक्षा का प्रचार भी बड़े ज़ोरशोर से हो रहा है। अतएव सामाजिक विषयों में चीन का भविष्य भारत से अधिक उज्ज्वल और आशापूर्ण है।

सत्यशोधक।

पूर्ण-वियोग ।

[रसिक-समाज, कानपुर, के कवियों का शोक-प्रकाशन]

काहे दिवि-द्वार दिव्य कनक कलश साजे काहे धूप-धूम की सुगन्ध महा छाई है ।
कल्पतरु-पल्लव के तोरन बँधे हैं काहे काहे कदलीन की अनूपम निकाई है ।
काहे सुरनारी लीन्हे आरती अनूप ठाढ़ी सुरतरु-फूलन की माल क्यों बँधाई है ।
धरम सनातन के सभापति पूरन की अमरपुरी में सुनी आजुही अवाई है ॥१॥
प्रफुलित भई दुति हीनत्व कुमोदनी की शोक-तम छाय गुणचंद्र के छिनै गयो ।
मन्द भयो सरस प्रकाश नवरसवारो बुद्धि रजनी को सबै आनँद रितै गयो ।
व्यङ्ग धुनि लक्षणा की किरनैं न दीसैं परैं तारागण भूषण प्रकाश त्यों बितै गयो ।
रसिक-समाजी ह्वै चकोर चहुँ ओर हेरैं कविता को पूरन कलानिधि कितै गयो ॥२॥
धरा मे मिली है धरा जल जल माहि मिलो तेजवारो अंश जाय तेज में दिखानो है ।
पवन पवन माहिँ नभ नभ माहिँ मिलो घट-मठ भङ्ग भयो जैसो दरसानो है ।
निज निज देवता मे इन्द्री दशौं जाय मिलीं मरनो कहा है कैसो कौन ने बखानो है ।
छीर माहिँ छीर नीर माहिँ जैसे नीर मिलै पूरन में पूरन को तत्त्व त्यों समानो है ॥३॥
अंशुमान उत्तर अयन में विराजमान चन्द्रकला पूरी शुक्ल पक्ष समताई है ।
दिन को द्वितीय जाम रवि नभ मध्य भासो दुन्दुभी सुरन नाही सभा में बजाई है ।
शुक्र होत अवशि तजे ते तन ऐसे समै काल की प्रशंसा यों मुनीशन ने गाई है ।
तजि दुचिताई प्रभुताई औ बड़ाई सबै पूरन जू मुक्तिदाई ऐसी मृत्यु पाई है ॥४॥
सब गुन भरी आपु करैं कविताई तौहू औरन की बड़ाई करैं ऐसो को दिखात है ।
धन बुधि विद्या को सकल अभिमान छोड़ि औरन को मान करैं ऐसो कौन गात है ।
सुनुकमिजाजी कवि लोगन को राजी करैं पूरन के बिना दूजो कौन दरसात है ।
धरम सनातन को चाहै पति दूजो मिलै रसिक-समाज तो अनाथ ह्वै अनात है ॥५॥

रामरत्न सनाढ्य ।

पूरन प्रतापी जेहि औसर तजे हैं प्रान शोकमई भई सारी कानपुर की मसान ।
कीन्हों हाकिमन छुट्टी सकल अदालत की बन्द की मरहट्टन बजाजन सबै दूकान ।
रथी साथ चले बन्धुवर्ग बिलखान सबै मित्रगन हिन्दू अंगरेज औ मुसलमान ।
दाह समै माहीं धन गाजि बुहार डारी [illegible] आसमान ॥१॥
[illegible] सुन्दर बगीचा कुसुमाकर को [illegible] ।
आगम निगम औ पुरानन को [illegible] ।
मारग पुराने भये ज्ञान दूने [illegible] ।
चण्डा-अवतार हाय धरम सनातन को पूरन [illegible] ॥२॥
दुर्दिन रसिक-समाज को सबैन कीन्हों [illegible] है ।
वाटिका रसिक-पत्र [illegible] है ।

धरम सनातन के राखन माहिं दीन्हों रहु सुजन बनाई प्यारो घौर पदारो है।
पूरन प्रतापी राव देवीप्रसाद पूर्ण अकाल हुई सुरलोक को सिधारे हैं॥४॥

गदाधरप्रसाद मलन्द।

भारत जननि के सपूतन पर पूत और हिन्द के हितैषी हिन्दुवासिन के प्यारे हैं।
प्रेमी नागरी के धेनु-रक्षक मुमुक्षु निज रसिक समाजिन के नैनन के तारे हैं॥
धरम सनातन के प्रबल प्रचारक सुजन सभ्य कविताई के न दूसरो निहारो है।
कौन कौन गुण मैं बखानौं तासु सोई पूर्ण तजि भूमि ओक सुरलोक को सिधारे हैं॥१॥
साहस को साहस न आनिबे पधारो फिर मोद हू को मोद सबै दौर ही हिरानो है।
भूलि गई चातुरी सकल चतुराई हू की धीर हू के धीर को न लगत ठिकानो है॥
ब्रजचन्द देश की यहै का दशा शोकमई शोक हू के हिये शोक-सिन्धु प्रगटानो है।
नेता कानपूर के गुणज्ञ धरमज्ञ पूर्ण ज्योंही सुन्यो कीन्हों हाय स्वर्ग को पयानो है॥२॥
रचि रचि काव्य बहु भांतिन अनूठी कौन व्यङ्ग ध्वनि भूषण की चरचा चलाइ है।
लिखि लिखि लेख शुद्ध सरस गंभीरता सों कौन देश-पत्रन में भेजि प्रगटाइ है॥
दै दै वक्तृता को मन्जु मन की हरनहारी सकल सभा में कौन मोद बरसाइ है।
बिना रावरे के आशु पूर्ण कानपूर मांहि हाय नागरी को अब कौन अपनाइ है॥३॥

मन्नीलाल।

सामाजिक ह्रास के कुछ कारणों का विचार।

(३) आधुनिक शिक्षा और बुद्धि-स्वातन्त्र्य।

पिछले दो लेखों में दो कारणों का—मस्तिष्क के अमर्यादित व्यय और नगर-निवासी होने का—विचार करके यह दिखाया गया है कि इन कारणों से हमारे समाज का ह्रास कैसे हो रहा है। अब इस लेख में अन्य कारणों का विचार किया जायगा।

यह बात सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में जिस स्थिति को हम लोग सामाजिक सुधार, उन्नति और सभ्यता कहते हैं उसका आरम्भ तभी से हुआ है जबसे इस देश में नवीन शिक्षा का प्रचार हुआ और जबसे पश्चिम-देश-निवासियों के साथ हमारा सम्बन्ध बढ़ने लगा। तभी से हमारे समाज में बुद्धि-स्वातन्त्र्य और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का ज़ोर बढ़ता हुआ देख पड़ता है। नवीन शिक्षा का प्रचार और प्रसार होते ही शिक्षित समाज में यह पुकार होने लगी लोगों को अपने धर्म, आचार, विचार, रहन-सहन आदि प्रायः सभी बातों में सुधार करना चाहिए। यह इतना न होना चाहिए कि जो केवल हमारे ही देश अगुओं को पसन्द हो। उसकी व्यापकता इतनी होनी चाहिए कि यदि दुनिया के किसी सभ्य देश के हमारे आचारों और विचारों को देखें तो उनसे भी न्यूनता न देख पड़े। सत्यता, सुख और सुन्द अथवा विचार, स्वहित और रुचि—अथवा बुद्धि आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति का स्वाधीनता होनी चाहिए। इस उन्नति के मार्ग में, समाज की वर्तमान दशा का सुधार करते समय, लज्जा, सङ्कोच या भय न मालूम होना चाहिए। काम में कुछ रुकावट होगी तो हम लोग उन्नति और के सब सुखों से वञ्चित हो जायँगे।

हमारे सुधारक भाइयों को पश्चिमी शिक्षा के यह तत्त्व बहुत पसन्द आया कि सब मनुष्यों की और स्वाधीनता समान होनी चाहिए तथा उनके

[...] होने चाहिए। यदि हम लोग अपने विचार, बुद्धि या [...]ही शक्ति में कुछ विश्वास रखते हों तो हमारा यही कर्तव्य [...] चाहिए कि इस देश के धर्म-भेद, जाति-भेद, उच्चता-[...]ा आदि कृत्रिम भेदों को शीघ्र ही नष्ट कर डालें। [...] सुधारों का हेतु यही है कि मनुष्य स्वयं अपनी [...]विक योग्यता, अपने महत्त्व और अपने अधिकारों को [...]ले और तदनुसार बर्ताव करने लगे। इस हेतु की [...]ता तभी हो सकेगी जब हमारे समाज में प्राचीन तथा [...]ित भेद भावों, दुराग्रहों और भोलेपन का लोप [...]यगा।

[...]सुधार के इन कामों में हमारे देश-वासियों की आस्तिक [...] और धार्मिक श्रद्धा बहुत बाधा डालती है। सच तो [...] कि जो वस्तु मनुष्य की बुद्धि के लिए अज्ञेय है [...] अस्तित्व के विषय में श्रद्धा या विश्वास रखना मानो [...]ह और दम्भ करना है। जिस अज्ञेय वस्तु पर हमारे [...]वासियों की श्रद्धा है उसकी खोज में आज तक दुनिया [...]किसी भाग में मानव-बुद्धि सफल नहीं हो सकी। जब [...]स अज्ञेय को ज्ञेय का निश्चित स्वरूप प्राप्त न होजाय [...]ब हमारे सामाजिक तथा राष्ट्रीय आचारों और व्यव-[...] में उसको महत्त्व का स्थान न देना चाहिए। सन्देहात्मक [...] को सत्य के समान कभी न मानना चाहिए। जो वस्तु [...] अज्ञेय है वह सदा अज्ञेय ही बनी रहेगी। यदि [...] ज्ञेय सिद्ध करना हो तो केवल विचार, बुद्धि या [...] से काम लेना चाहिए; श्रद्धा या अन्य मनोवृत्तियों का [...]य लेना भीरुता का लक्षण है। अतएव इस श्रद्धा को [...]से ही उखाड़ डालना चाहिए। तात्पर्य यह कि ईश्वर का [...]त्व केवल बुद्धिवाद या तर्कवाद से सिद्ध नहीं किया [...]सकता—इसके लिए श्रद्धा की आवश्यकता होती है—[...]ए ईश्वर सम्बन्धी निराधार कल्पनाओं का प्रभाव अपने [...]मों में न होने देना चाहिए। केवल बुद्धि निश्चित सत्य ही [...]मानना चाहिए। ऐसे ही सत्य की सदा जीत होती है। [...]नाओं का लोप होते ही स्पर्शास्पर्श, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय [...] सी कृत्रिम बातें दूर हो जायँगी। ईश्वर-सम्बन्धी [...]त्त्व ज्ञान और धार्मिक श्रद्धा का त्याग कर देने से [...] [illegible] आत्मा, शक्ति, [illegible] [...] [illegible] हो जायगा, मन्त्र-

तन्त्र, सन्ध्या-तर्पण, पूजा पाठ आदि निरुपयोगी कामों में समय व्यतीत न होगा, भूत-पिशाचों का भय भाग जायगा, और अनुचित आशा तथा अनुचित भय उत्पन्न करने वाले स्वर्ग तथा नरक भी लुप्त हो जायँगे।

यूरोप के सुधार का वर्णन पढ़ने से हमारे शिक्षित भाइयों को यह मालूम हुआ कि ईसाइयों के धर्म में कुछ विशेषता है जो उनके सुधार और उन्नति के लिए बहुत अनुकूल है। उनका धर्म, उनकी उन्नति में, कुछ बाधा नहीं डालता—उनके धार्मिक नियमों से उनके सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवहार को कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। वे लोग जो चाहे खा सकते हैं, जहाँ चाहे जा सकते हैं; जो धन्धा चाहे कर सकते हैं; जिसको चाहे उसी के साथ विवाह कर सकते हैं और मनमानी रीति से अपनी आयु व्यतीत कर सकते हैं। इन कामों में धर्म की कुछ भी रुकावट नहीं है। यही कारण है कि वे लोग इस जगत् में स्वाधीनता को सब से अधिक चाहते हैं। धर्म की बाधा न होने के कारण ही वे लोग सभ्यता के शिखर पर पहुँच कर सुख और वैभव का उपभोग कर रहे हैं। यदि हम लोग इस आधि-भौतिक सुख का उपभोग करना चाहें तो हम लोगों को भी अपने धर्म में कुछ सुधार करना चाहिए। जब तक हमारा धर्म और हमारी स्वाधीनता हमारी उन्नति के लिए अनुकूल न हो जावें तब तक शिक्षा और सुधार के प्रयत्न में हमें सफलता न होगी। यदि यह अनुकूलता प्राप्त नहीं की जा सकती तो हम लोगों को अपने इस निकम्मे धर्म का त्याग और उपयोगी ईसाई धर्म का स्वीकार करके अपने समाज तथा देश की उन्नति करनी चाहिए। ईसाई धर्म का स्वीकार कर लेने से हमारे सब सामाजिक विघ्न दूर हो जावेंगे। खाने, पीने, ओढ़ने, पहनने या कहीं आने जाने में—अर्थात् किसी भी प्रकार के व्यवहार में—कुछ भी रुकावट न होगी। इसके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि हमारे राज्यकर्ता का विश्वास हम पर सहज ही अधिक हो जायगा। हम लोगों को [illegible] हक शीघ्र ही मिल जावेंगे, बड़े बड़े अधिकार के [illegible] पर हम [illegible] हो सकेंगे, [illegible] के लिए हम [illegible] [illegible] हो सकेगा। तात्पर्य यह कि यदि

पर समाज के सुधार का काम करना चाहते हैं, वे
ज का हित करने के बदले उसकी हानि ही किया
है।

अब प्रश्न यह है कि हमारे शिक्षित भाइयों की दृष्टि
क्यों गई—उनके स्वभाव में यह हानि-कारक परिवर्तन
हो गया—उनकी श्रेष्ठ मनोवृत्तियों की सत्ता जाती सी क्यों
? खेद से कहना पड़ता है कि यह परिणाम आधुनिक
ा का है। विदेशियों को अपने देश और समाज की
का, तथा हमारे देश और समाज की दुर्दशा का,
न करने की आदत सी पड़ गई है। वे लोग बहुधा
, लेख और व्याख्यान द्वारा, हमारे सामाजिक दुर्गुणों
का गीत गाया करते हैं। उसको पढ़ या सुन कर हमारे
ध शिक्षित भाई तुरन्त ही उनके चेले बन जाते हैं—ये
की सभी बातों को वेद-वाक्य मानने लग जाते हैं। कुछ
ों के अभ्यास से यह मानसिक संस्कार इतना दृढ़ हो
ता है कि वह स्वयं अपनी ही बुद्धि की प्रेरणा से उत्पन्न
ा मालूम होने लगता है। यदि ऐसा न होता तो हमारे
क्षित भाइयों को अपने समाज का कुछ प्रशंसनीय अंश
अवश्य ही देख पड़ता—वे स्वयं अपने समाज के सम्बन्ध
विदेशियों ही के समान, अज्ञानी न रहते—वे यह
श्य कदापि न करते कि हमारे समाज में आदर करने
य कुछ है ही नहीं। सच तो यह है कि बुद्धि-स्वातन्त्र्य का
ा बजाने वाले हमारे आधुनिक विद्वान् पराई बुद्धि के
पर चलने वाले हैं। वे भले ही कहें कि हमारी बुद्धि का
काम होगया है; परन्तु यथार्थ में इनकी बुद्धि उथली और
कुचित ही है। इनकी दृष्टि में वही अच्छा देख पड़ता है
सकी प्रशंसा विदेशियों के द्वारा की जाय; और वही बुरा
ख पड़ता है जिसकी विदेशियों के द्वारा निन्दा की जाय।

यह सुन कर बहुतेरे विद्वान् अप्रसन्न होंगे कि वर्तमान
क्षा का हमारे समाज पर कुछ बुरा असर पड़ा है। परन्तु
ह बात सच है। इसके प्रबल प्रमाण दिये जा सकते हैं।
दि लेख बढ़ जाने का भय न होता मैं अधिक नहीं तो दो
ार प्रमाण, नामी नामी पाश्चात्य लेखकों के ग्रन्थों से,
श्य देता।

पाठकों के मन में यह व्यर्थ भ्रम न होना चाहिए कि
स लेख का लिखने वाला पश्चिमी शिक्षा के लाभों को
स्वीकार नहीं करता। नहीं साहब, इस शिक्षा से जो अनन्त
लाभ हम लोगों को हुए हैं—जैसे दुनिया भर की बहुत
सी बातों का ज्ञान हो जाना; सारे संसार का इतिहास
मालूम कर लेना; अनेक शास्त्रों और विद्याओं में पारङ्गत
होने के साधनों को प्राप्त कर लेना; सभी देशों के धर्म,
नीति, उद्योग, आचार आदि का पता लगा लेना; पश्चिमी
कवियों और ग्रन्थकारों की कृतियों के अनुपम रस का
आस्वादन करना; यूरोप के साहित्य और विज्ञान का रहस्य
जान कर उससे निःसीम लाभ उठाना—यह सब इस लेखक
को मान्य है। जब सभाओं में वक्तृताओं द्वारा या लेखों
तथा ग्रन्थों द्वारा, अंगरेज़ी राज्य से होने वाले लाभों की
गिनती की जाती है तब इस नवीन शिक्षारूपी लाभ को
अग्र स्थान दिया जाता है। इस शिक्षा का कुछ प्रसाद इस
लेखक को भी मिला है। ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं
है कि वह इस शिक्षा के लाभों को स्वीकार न करे। इन
सब लाभों के लिए पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करना बहुत
आवश्यक है। परन्तु, भाग्यवश, इस लेखक को यह भी
मालूम है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में विदेशी भाषा का
आधिपत्य हो जाने से, हमारे समाज को, धीरे धीरे, हानि
भी बहुत पहुँच रही है।

विदेशी भाषा और विदेशी शिक्षा के आधिपत्य का
परिणाम यह हुआ है कि हम लोग विदेशी ही भाषा में
लिखते, पढ़ते, बोलते और विचार करते हैं। अंगरेज़ी
भाषा का सार्वत्रिक प्रचार ही हमारी भावी उन्नति के लिए
आवश्यक समझा जाता है। देशी शिक्षा और देशी भाषा
को उत्तेजन देना सङ्कुचित दृष्टि का लक्षण माना जाता है।
हम अपने देश और समाज की दशा का विचार औरों की
दृष्टि से किया करते हैं। फल यह हुआ है कि पश्चिमी
शिक्षा दीक्षा के रूप में हम लोग अपने आत्मभाव को कम
कर डालने वाला और अपने समाज का ह्रास करने
वाला काम करते चले जाते हैं। और, विशेषता यह है
कि हम इसी को बुद्धि-स्वातन्त्र्य, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, सुधार,
सभ्यता और उन्नति मान रहे हैं। इस शिक्षा के प्रभाव
से हम को अपना हिन्दुस्थानीपन निन्द्य, तिरस्करणीय
और त्याज्य मालूम होने लगता है; विदेशियों के बनाये
हुए दोष ही दोष सदा हमारी दृष्टि के सामने रहने से

हम ईसाई धर्म का स्वीकार करलें तो हम सब प्रकार के गुण, सुधार, स्वाधीनता, सभ्यता आदि के अधिकारी, थोड़े ही समय में, हो जायँगे।

सारांश यह कि पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारे शिक्षित भाई सोचने लगे कि हम लोगों को चारों तरफ़ से अपने समाज के सुधार के यत्न करना चाहिए। जब तक हम ऐसा न करेंगे तब तक हम अपने देश के सच्चे हितैषी और उद्धार करने वाले न कहावेंगे। हम को सिर्फ़ अपने विचार, बुद्धि और तर्क के बल पर काम करना चाहिए। जो कर्तव्य बुद्धि की कसौटी पर कसा न जा सके—जो काम, बुद्धि के तराज़ू में तौलने पर रत्ती भर भी कम हो—उसका त्याग तुरन्त ही कर देना चाहिए। जो लोग अपनी बुद्धि के तेज को दया, श्रद्धा या अन्य मनो-वृत्तियों से मन्द कर देते हैं वे अपने समाज का हित कभी न कर सकेंगे। मनो-वृत्तियों के अधीन हो कर बुद्धि के स्वतन्त्र साम्राज्य को मर्यादित करने वाले लिखे पढ़े लोगों को समाज का वैरी समझना चाहिए। शिक्षा का प्रधान हेतु यही है कि बुद्धि का विकास हो, तथा उसकी स्वतन्त्रता की वृद्धि भी हो। इसी बुद्धि के द्वारा सत्य का निर्णय किया जा सकता है। यदि हमारे सामाजिक व्यवहारों में बुद्धि-स्वातन्त्र्य की महत्ता घटा दी जायगी तो समाज का सुधार और हित करने के लिए कोई उपाय ही न रह जायगा। ऐसी अवस्था में हमारी केवल सामाजिक और औद्योगिक हानि ही न होगी; किन्तु राष्ट्रीय हानि भी होने लगेगी। यह हानि हमीं लोगों को नहीं, किन्तु हमारे वंशजों को भी सहनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त यूरोप-निवासी हम लोगों को मूर्ख, अज्ञानी, असभ्य, क्रूर, भीरु, हठी, दुराग्रही आदि अप-शब्दों से सदा सम्बोधन करते रहेंगे—हमारा शिक्षित समाज निन्दनीय, उपहासास्पद और केवल अनुकम्पा के योग्य समझा जायगा!

परन्तु खेद और आश्चर्य की बात है कि जब हमारे शिक्षित भाई वर्तमान काल की नूतन शिक्षा पाकर अपने समाज के सुधार की इच्छा और यत्न करने लगते हैं तब वे अपने समाज की ओर स्वयं अपनी दृष्टि से नहीं देखते; किन्तु वे विदेशियों और अन्य-धर्मावलम्बियों के समान केवल दोषों ही को ढूँढ़ निकालने में लग जाते हैं। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जो सर्वथा निर्दोष या सर्वथा सदोष हो। हमारे समाज में कुरीतियां हो सकती हैं, हो अच्छी बातें भी अवश्य पाई जा सकती हैं। युवक शिक्षित सुधारक अपने समाज के गुणों को कुछ नहीं बताते। वे तो पहले ही से निश्चय कर हमारे समाज में एक भी गुण नहीं—एक भी नहीं! हमारे पूर्वजों की सभी बातों में—अर्थात् धर्म, आचार, रूढ़ि, व्यवहार, खानपान, पहनाव मूर्खता और अज्ञान के सिवा कुछ भी नहीं! के हृदय में अपने पूर्वजों का अभिमान या गौरव भी नहीं। यथार्थ में हम उनके वंशज कहलाने में को लज्जित और कलङ्कित समझते हैं। ऐसे लि तो आत्मभाव देख पड़ता है, न दूरदृष्टि। वे शिक्षा की प्रेरणा से अपनी बुद्धि की अपूर्व इतने निमग्न हो जाते हैं कि सुधार और सभ्यता अपने समाज और कुटुम्ब को दुःख पहुँचाते रहते। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि वे समाज के शत्रु के समान प्रतीत होते हैं। वर्तमान समय में समाज कण्टकों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है सुधार-सम्बन्धी यत्नों से समाज का कुछ कल्याण हो किन्तु आत्मभाव और अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृ नाश निस्सन्देह होता है। यही हमारे सामाजिक तीसरा कारण है।

आज तक जिन महात्माओं ने सभ्यता और सु प्रचार का यत्न किया है उन्होंने अपने समाज में स्व की पूरी पूरी रक्षा की है। उनके प्रयत्न से समाज मनोवृत्तियों का—प्रेम, आदर, श्रद्धा, उदारता, उपकार, कृतज्ञता आदि (Higher Sentiments) नाश नहीं होने पाया। लूथर, काल्विन, बुद्ध, शङ्कर रामदास, कबीर, नानक, चैतन्य आदि महात्माओं की आलोचना करने से यही पाया जाता है कि इन की स्वतन्त्रता के साथ साथ अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृ पूरी तरह जागृत थीं। उनका जीवन और आचरण इत और पवित्र था कि उनके विषय में उनके अनुयायि प्रतिपक्षियों के मन में ज़रा भी सन्देह न उत्पन्न हो जो लोग अपनी श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को ऐसी जागृत नहीं रख सकते, जो सिर्फ़ अपनी बुद्धि की स्वतन्त्र

समाज के सुधार का काम करना चाहते हैं, वे का हित करने के बदले उनकी हानि ही किया ।

ब प्रश्न यह है कि हमारे शिक्षित भाइयों की दृष्टि यों गई—उनके स्वभाव में यह हानि-कारक परिवर्तन गया—उनकी श्रेष्ठ मनोवृत्तियों की सत्ता जाती सी क्यों भेद से कहना पड़ता है कि यह परिणाम आधुनिक का है। विदेशियों को अपने देश और समाज की ा, तथा हमारे देश और समाज की दुर्दशा का, करने की आदत सी पड़ गई है। वे लोग बहुधा लेख और व्याख्यान द्वारा, हमारे सामाजिक दुर्गुणों गीत गाया करते हैं। उसको पढ़ या सुन कर हमारे शिक्षित भाई तुरन्त ही उनके चेले बन जाते हैं—वे सभी बातों को वेद-वाक्य मानने लग जाते हैं। कुछ : अभ्यास से यह मानसिक संस्कार इतना दृढ़ हो कि वह स्वयं अपनी ही बुद्धि की प्रेरणा से उत्पन्न ालूम होने लगता है। यदि ऐसा न होता तो हमारे भाइयों को अपने समाज का कुछ प्रशसनीय अंश य ही देख पड़ता—वे स्वयं अपने समाज के सम्बन्ध देशियों ही के समान, अज्ञानी न रहते—वे यह कदापि न कहते कि हमारे समाज में आदर करने द है ही नहीं। सच तो यह है कि बुद्धि-स्वातन्त्र्य का बजाने वाले हमारे आधुनिक विद्वान् पराई बुद्धि के चलने वाले हैं। वे भले ही कहें कि हमारी बुद्धि का होगया है; परन्तु यथार्थ में उनकी बुद्धि उपजी और न ही है। उनकी दृष्टि में वही अच्छा देख पड़ता है प्रशंसा विदेशियों के द्वारा की जाय, और वही बुरा ता है जिसकी विदेशियों के द्वारा निन्दा की जाय। ह सुन कर बहुतेरे विद्वान् अप्रसन्न होंगे कि वर्तमान का हमारे समाज पर कुछ बुरा असर पड़ा है। परन्तु न सच है। इसके प्रबल प्रमाण दिये जा सकते हैं। न यह जान का भय न होता मैं अधिक नहीं तो दो माण, नामी नामी पाश्चात्य लेखकों के ग्रन्थों से, देता।

ाठकों के मन में यह व्यर्थ भ्रम न होना चाहिए कि ख का लिखने वाला पश्चिमी शिक्षा के लाभों को स्वीकार नहीं करता। नहीं साहब, इस शिक्षा से जो अनन्त लाभ हम लोगों को हुए हैं—जैसे दुनिया भर की बहुत सी बातों का ज्ञान हो जाना; सारे संसार का इतिहास मालूम कर लेना; अनेक शास्त्रों और विद्याओं में पारङ्गत होने के साधनों को प्राप्त कर लेना; सभी देशों के धर्म्म, नीति, उद्योग, आचार आदि का पता लगा लेना; पश्चिमी कवियों और ग्रन्थकारों की कृतियों के अनुपम रस का आस्वादन करना; यूरोप के साहित्य और विज्ञान का रहस्य जान कर उससे निःसीम लाभ उठाना—यह सब इस लेखक को मान्य है। जब सभाओं में वक्तृताओं द्वारा या लेखों तथा ग्रन्थों द्वारा, अंगरेजी राज्य से होने वाले लाभों की गिनती की जाती है तब इस नवीन शिक्षारूपी लाभ को अग्र स्थान दिया जाता है। इस शिक्षा का कुछ प्रसाद इस लेखक को भी मिला है। ऐसी अवस्था में यह सम्भव नहीं है कि वह इस शिक्षा के लाभों को स्वीकार न करे। इन सब लाभों के लिए पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। परन्तु, भाग्यवश, इस लेखक को यह भी मालूम है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में विदेशी भाषा का आधिपत्य हो जाने से, हमारे समाज को, धीरे धीरे, हानि भी बहुत पहुँच रही है।

विदेशी भाषा और विदेशी शिक्षा के आधिपत्य का परिणाम यह हुआ है कि हम लोग विदेशी ही भाषा में लिखते, पढ़ते, बोलते और विचार करते हैं। अंगरेजी भाषा का सार्वत्रिक प्रचार ही हमारी भावी उन्नति के लिए आवश्यक समझा जाता है। देशी शिक्षा और देशी भाषा को उत्तेजन देना सङ्कुचित दृष्टि का लक्षण माना जाता है। हम अपने देश और समाज की दशा का विचार औरों की दृष्टि से किया करते हैं। फल यह हुआ है कि पश्चिमी शिक्षा दीक्षा के रूप में हम लोग अपने आत्मभाव को कम कर डालने वाला और अपने समाज का ह्रास करने वाला काम करते चले जाते हैं। और, विशेषता यह है कि हम इसी को बुद्धि स्वातन्त्र्य, धर्म्म-स्वातन्त्र्य, सुधार, सभ्यता और उन्नति मान रहे हैं। इस शिक्षा के प्रभाव से हम को अपना हिन्दुस्तानीपन निन्द्य, निम्नश्रेणी का और त्याज्य मालूम होने लगता है, विदेशियों के बताये हुए ऐब ही ऐब सदा हमारी दृष्टि के सामने रहने से

हमारी दोष-दृष्टि बलवान् और दृढ़ होने लग जाती है, और हमारे गुणों पर काला परदा पड़ जाने से—हमारी श्रेष्ठ वासनायें और ऊँची महत्त्वाकांक्षायें सदा निद्रितावस्था में पड़ी रहने से—शिक्षित जनों में गुणग्राहकता का अभाव ही बढ़ता चला जाता है। हम लोग हिन्दुस्तान में रहते हुए भी अपने देश, समाज, धर्म्म, नीति, रहन-सहन, भाषा, कुटुम्ब-वात्सल्य, पूर्वज-पूजा आदि के विषय में विदेशियों के समान विचार करने लग गये हैं। धर्मान्तर न करने पर भी अपने धर्म पर हमारी श्रद्धा नहीं; जाति में रह कर भी हम लोग विजातीय से हो गये हैं। क्या यह हमारे समाज का भयङ्कर ह्रास नहीं है ?

उक्त परिणामों की ओर ध्यान देने से यही प्रतीत होता है कि जिसको हम लोग बुद्धि-स्वातन्त्र्य और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य कहते हैं वह यथार्थ में हमारी बुद्धि की पराधीनता है—वह हमारी मानसिक निर्बलता है। यह परिणाम श्रेष्ठ वर्गों में—ऊँचे दर्जे के लोगों में—और शिक्षित जनों में बहुत देख पड़ता है। यदि हमारे आधुनिक विद्वान् और शिक्षित भाई पश्चिमी विद्या के उक्त बुरे संस्कारों को भूल जायँ और यदि वे अपनी ही स्वतन्त्र बुद्धि से (विदेशियों की प्रेरित बुद्धि से नहीं) अपने देश और समाज की दशा पर विचार करें तो निःसन्देह उन्हें एक नई दुनिया देख पड़े। इस देश में अब भी ऐसे लोग हैं जिन पर पश्चिमी शिक्षा का बुरा असर नहीं पड़ा है—वे लोग अपने देश, समाज, धर्म्म और पूर्वजों के यथेष्ट अभिमानी बने हैं—उनका आत्मभाव जागृत है। उनके विषय में कभी कभी आश्चर्य से यह कहा जाता है कि—"हम लोगों ने हिन्दुओं को इतनी विद्या पढ़ाई, इतनी शिक्षा दी, इतने अच्छे अच्छे विचार दिये, इतने व्यावहारिक लाभों से मोहित किया, हिन्दुस्तानी समाज की हीनता अनेक प्रमाणों और अनुभवों से सिद्ध करके सुधार और सभ्यता की इतनी स्फूर्ति दी, तो भी ये लोग स्वाभिमान का त्याग नहीं करते" ! सोचना चाहिए कि इन लोगों में अब तक स्वाभिमान क्यों बना है ? कारण यही है कि इन लोगों ने केवल बुद्धि या तर्क की उन्नति को शिक्षा का सार नहीं माना—इन लोगों ने अपने अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों की उन्नति पर भी उचित ध्यान दिया है।

सच है, ईश्वर ने मनुष्य को जैसे बुद्धि (Reason) वैसे ही अनेक मनोवृत्तियाँ (Sentiments भी दी हैं। मनोवृत्तियों में कुछ ऊँचे दर्जे की और बहुत श्रे... प्रेम, श्रद्धा, सम्मान, उदारता, नम्रता, कृतज्ञता, आदि। सभी देशों के धर्मोपदेशकों और सदाचार... ने इन श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को उत्तेजित करने का ... है। प्राचीन समय में जो राष्ट्र उन्नत हो गये ... मनोवृत्तियों की शक्ति बहुत प्रबल थी। व्यक्ति... कुटुम्बों के बर्ताव पर, बुद्धि की अपेक्षा इन मनो... ही का आधिपत्य अधिक देख पड़ता है। यही ... कि दूरदर्शी महात्माओं ने धर्म, रूढ़ि और उपदेश ... इनकी महत्ता चिरकाल के लिए स्थापित कर दी है ... भी धर्म का उदाहरण लीजिए, वही देख पड़ेगा ... बुद्धि की नींव पर नहीं, किन्तु श्रेष्ठ मनोवृत्तियों ... सनाओं की नींव पर स्थापित किया गया है। मनु... की उन्नति इन मनोवृत्तियों को अपने आच... प्रकट करने से होती है, केवल बुद्धि की स्वतन्त्रता ... होती। बुद्धि का कर्तव्य यही है कि वह इन ... को अच्छी तरह काम में लावे, उनकी शक्ति को ... उनके लिए सन्तोष तथा विजय के अवसर वार ... यदि बुद्धि इन मनोवृत्तियों को पदच्युत करके उन... छीन लेगी तो मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो ... वह एक यन्त्र के समान शुष्क, निर्जीव और ... जायगा। इन मनोवृत्तियों का उदय पहले पहल ... में हुआ करता है। फिर ज्यों ज्यों उनकी शक्ति ... है त्यों त्यों उनका विकास सारे समाज और देश ... चला जाता है। जो समाज इनकी उन्नति की ... नहीं देता उसका ह्रास होने लग जाता है। ... उदाहरण ग्रीक और रोमन लोगों में पाया जाता ... से वे केवल व्यक्तियों के गुण और स्वातन्त्र्य को ... देने लगे—केवल विचार और बुद्धि की स्वातन्त्र्य ... लगे—तभी से उनकी नैतिक और धार्मिक मनो... ह्रास होने लगा। देखिए, किड के "सामाजिक ... नामक ग्रन्थ में क्या लिखा है:—

"No observant person, who has ... the signs of ... , can have ...



डा० सरयूप्रसादजी रेसिडेंसी हास्पिटल इंदौर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ıbt that in a state of unrestricted ionalism, the institution of marriage l the family would undergo modifica- ıs, incompatible with the continuance that process of evolution with which interests of the race are bound up have unmistakable evidence of the version of the parental feelings among Greeks and Romans and other peoples der rationalistic influences."

बुद्धि-स्वातन्त्र्य (Rationalism) से होने वाले रिणामों को सिद्ध करने के लिए यह अवतरण काफ़ी है। ार करने से मालूम हो जायगा कि ये दुष्परिणाम हमारे के शिक्षित समाज में भी देख पड़ रहे हैं। अर्थात् रे सामाजिक ह्रास के लक्षण स्पष्ट दृग्गोचर हो रहे हैं। : इन बुरे परिणामों से हम अपने समाज की रक्षा करना ते हों तो हम को अपनी बुद्धि की स्वतन्त्रता को दित करके अपनी शिक्षा-पद्धति में नैतिक और धार्मिक वृत्तियों के विकास को उचित स्थान देना चाहिए। इस ाय में पूर्वोक्त ग्रन्थकार लिखता है:—

"It would appear that the teaching of olutionary science as applied to society that there is only one way in which the ionalistic factor in human evolution be controlled; namely, through the strumentality of religious systems. It under the influence of these systems at the evolution of the race is proceed- g; it is in connection with these systems at we must study the laws which gulate the character, growth and decay societies and civilizations."

अब हम को अपने सामाजिक ह्रास के कारणों की सीमा को अधिक बढ़ाने के बदले कुछ उपायों का चिन्तन ना चाहिए। पाठकों को स्मरण रहे कि हमारे समाज [illegible] हो रहा है:—(१) मस्तिष्क का अमर्यादित व्यय, (२) शहरों में रहने की प्रवृत्ति और (३) विदेशी शिक्षा तथा बुद्धि-स्वातन्त्र्य। इन कारणों से हमारे समाज पर जो बुरे परिणाम हुए और हो रहे हैं उनको टालने के लिए क्या करना चाहिए? इसका विचार फिर किया जायगा।

माधवराव सप्रे।

मानसिक चमत्कार।

मन की शक्ति बड़ी तीव्र है। हज़ारों घोड़ों की शक्ति रखनेवाला रेल का एञ्जिन भी इतनी तेज़ी से नहीं दौड़ सकता जितनी तेज़ी से मन दौड़ता है। किसी समय भी वह चुपचाप नहीं बैठता। मन की चञ्चलता शास्त्रों में प्रसिद्ध है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने मन की शक्ति का अच्छी तरह अनुभव किया था। उन्होंने उससे काम लेने का तरीक़ा भी निकाल लिया था। योगाभ्यास क्या है? मन को अपने वश में लाना और उससे अपनी इच्छा के अनुसार काम लेना ही योगाभ्यास कहाता है। महामुनि पतञ्जलि योग का लक्षण इस प्रकार बताते हैं—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक रखना योग है। योग की सिद्धियों की प्राप्ति से मनुष्य क्या नहीं कर सकता? एक ओर योगी ब्रह्म में लीन हो कर अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है—दूसरी ओर यदि वह चाहे तो थोड़ा ही सा चमत्कार दिखला कर संसार को चकित कर सकता है। पर, योगी ऐसा चमत्कार बहुत कम दिखाते हैं। योग-बल के द्वारा योगी दूसरे मनुष्यों पर अपना प्रभाव डाल सकता है। साथ ही उनकी [illegible] आत्मसिद्ध शक्तियों को वह अपने अधीन भी कर सकता है। मेस्मेरिज़्म हिप्नॉटिज़्म आदि योग ही के कुछ भेद हैं। योग के [illegible] अभ्यास से जब कुछ शक्ति प्राप्त हो जाती है तब लोग मदारी बन कर उसके चमत्कार दिखाते फिरते हैं। इससे उनकी वह शक्ति नष्ट हो जाती है। [illegible] वे आध्यात्मिक उन्नति में नहीं लगाते। यही कारण है कि उनकी शक्ति और आगे नहीं बढ़ने पाती। योग-विद्या का [illegible] इसी भारत से प्रकट हुआ था। आज भी जिस भारत के [illegible] कहीं

महन्त योगी का मिलना असम्भव है। मिस्र के प्राचीन निवा-सियों और ईरानियों ने योग-विद्या यहीं से सीखी थी। योग-विद्या से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ चमत्कारों का वर्णन हम यहाँ पर करते हैं। इन चमत्कारों की सत्यता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। योरप के एक सज्जन ने भारत में आकर इस प्रकार का एक चमत्कार अपनी आंखों देखा था। ये चमत्कारों की सत्यता पर विश्वास न करते थे। इन्हें ये केवल हाथ की सफ़ाई समझते थे। एक रोज़ इन्होंने जो कुछ देखा उसका वर्णन ये इस प्रकार करते हैं—

मदारी (ऐन्द्रजालिक) एक हिन्दू था। उसकी आकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी। उसके चारों ओर उसके साथी बैठे थे। मदारी अपने सामने ज़मीन पर बहुत से प्याले, डिब्बे और इसी प्रकार की कितनी ही और और चीज़ें रक्खे था। पहले उसने एक डिब्बे से कितने ही सांप निकाले। सांपों को सबके सामने रख कर वह अपने दर्शकों से कहने लगा—सब लोग इन्हें अच्छी तरह देख कर अपनी तसल्ली कर लो। ये सचमुच ही सांप हैं, और कोई चीज़ नहीं। दर्शकों में प्राणिशास्त्र जाननेवाला एक अँगरेज़ भी मौजूद था। उसने सांपों की अच्छी तरह से जांच करके कहा कि ये सचमुच ही देशी जाति के सांप हैं। इसके बाद मदारी कुछ देर तक धीमे स्वर से "उम, म, म, म, म, म, म, म" की आवाज़ करता रहा। उसकी यह आवाज़ ठीक वैसी ही थी जैसे मक्खी भिनभिनाती है।

मदारी के ऐसा करते ही सब के सब सांप अपनी अपनी पूछों के सहारे खड़े हो गये और अपने अपने सिरों को हिलाने लगे। मदारी कभी कभी अपने डण्डे से उनके सिरों को धीरे धीरे छू देता था। कुछ मिनट बाद दर्शकों को मालूम होने लगा कि ये छोटे छोटे सांप धीरे धीरे बढ़ने लगे। यहाँ तक कि बढ़ते बढ़ते वे बड़े भयानक अजगर से हो गये। यह दृश्य देख कर सारे के सारे दर्शक—क्या अँगरेज़ क्या हिन्दुस्तानी—बड़े भयभीत हुए। इस पर मदारी ने चिल्ला कर सबसे कहा—चुपचाप बैठे रहिए। डरने की बात नहीं। इसके बाद उसने उलटी क्रिया प्रारम्भ की। सांप सब धीरे धीरे छोटे होने लगे। अन्त में वे इतने छोटे हो गये कि वे एकदम अदृश्य ही हो गये।

इसने एक और भी खेल किया। यह भी [illegible] आश्चर्य-जनक था। मदारी ने अपने साथियों में से एक [illegible] को अपने सामने बिठा लिया। उसके बैठ जाने पर मदारी ने उसके चारों तरफ़ ज़मीन पर एक लकीर खींच दी। [illegible] बाद मदारी जादू के कुछ मन्त्र पढ़ने लगा। कुछ [illegible] लकीर के भीतर का वह लड़का लट्टू की तरह [illegible] जल्दी घूमता हुआ दिखाई दिया। धीरे धीरे वह ऊपर [illegible] और उड़ा। अन्त में घूमते ही घूमते वह ओझल हो गया। [illegible] मदारी ने फिर उलटी क्रिया प्रारम्भ की। लड़का ऊपर [illegible] नीचे उतरने लगा। पहले वह एक छोटे से गोले [illegible] दिखाई दिया। अन्त में ज्यों ज्यों वह नीचे आता [illegible] त्यों बड़ा होता गया। पृथ्वी पर आकर खड़े होते ही [illegible] मुसकुरा कर दर्शकों को प्रणाम किया।

इसके बाद एक और खेल हुआ। मदारी ने [illegible] कुछ गुठलियां लेकर एक छोटे से रेत के ढेर में [illegible] दिया। गुठलियों को गाड़ने के बाद वह मन्त्र पढ़ पढ़ [illegible] के उस ढेर पर हाथ फेरने लगा। थोड़ी ही देर में [illegible] अङ्कुर निकल आये। देखते देखते बढ़ कर वह वृक्ष [illegible] वृक्ष पर डालियां और पत्ते भी निकल आये। अन्त [illegible] पर मौर भी दिखाई दिया और पल भर में पके हुए [illegible] फल तैयार हो गये। ये पके हुए आम तोड़ कर [illegible] बांटे गये। अब मदारी ने फिर उलटी क्रिया आरम्भ की [illegible] वृक्ष धीरे धीरे लोप हो चला। अन्त में मदारी ने [illegible] अपनी गुठलियां निकाल लीं और वृक्ष भी अन्तर्हित हो [illegible] गुठलियां निकाल कर उसने सब लोगों को दिखा दिया।

एक और भी आश्चर्य-जनक खेल मदारी ने [illegible] उसने रस्से का एक लपेटा हुआ गोला बाहर [illegible] दर्शकों के हाथ पर रख कर उसे भली-भांति देख [illegible] उसने कहा। इसके बाद उसने रस्से के सिरे पर एक [illegible] दी और उस गांठवाले सिरे को आकाश में उछाल [illegible] रस्से की लपेट खुल गई और वह ऊपर आकाश [illegible] जाने लगा। धीरे धीरे सारा का सारा रस्सा खुल गया [illegible] उसका सिरा वायु में इस तरह लटकता हुआ दिखाई [illegible] लगा मानों गांठ को किसी ने कई सौ फुट ऊँचे [illegible] में बांध दिया हो। इतने में मदारी का एक साथी रस्से [illegible] गया और नीचे लटकते हुए उसके छोर को पकड़ [illegible]

[मदार]ी के हुक्म से वह आदमी रस्से के सहारे ऊपर आकाश [में चढ़]ने लगा। बहुत ऊपर जाने पर वह एक चिह्न सा दिखाई [देने] लगा। अन्त में वह वहीं अन्तर्द्धान हो गया। इस पर [मदार]ी ने अपने मुँह से कुछ और शब्द निकाले और रस्सा [ऊपर उठ]कर आकाश में इतना ऊपर जा पहुँचा कि उसका नज़र [आन]ा कठिन हो गया।

इस खेल के साथ तमाशा समाप्त हुआ। उस समय एक [अंग]रेज़ कैमरा हाथ में लिये वहां खड़ा था। जब आदमी [रस्से] पर चढ़ने लगा तब उसने उसका फोटो ले लिया। पर, [जब] निगेटिव-प्लेट को उसने धोया तब न उस आदमी की, न [उस] दृश्य की, न उस रस्से की, किसी की भी तसवीर उस [में] नज़र न आई। केवल मदारी की तसवीर शीशे पर उतरी [दिख]ाई दी। पर वह बड़ी विचित्र थी। मदारी अजीब तरह [से] मुसकराता हुआ बैठा दिखाई दिया। बात यह थी कि [अस]ल में यह खेल किया ही न गया था। वे सारे खेल केवल [दृष्]टि-भ्रम के कारण दर्शकों को दिखाई दिये थे। चिरकाल [के अ]भ्यास से मदारी को दूसरे का मन अपने वश में करने [की] शक्ति प्राप्त थी। इसी शक्ति के द्वारा उसने दर्शकों पर [अप]ना प्रभाव डाल दिया था।

एक और लेखक का बयान सुनिए। वह अमरीका के [एक] समाचार पत्र का संवाद-दाता था। उसके कथन का [सा]रांश, उसी के शब्दों में, हम नीचे देते हैं—

भारतवर्ष की एक बड़ी नदी में मैं जहाज द्वारा यात्रा [क]र रहा था। जहाज़ जब बन्दर पर पहुँचा तब एक हिन्दु-[स्त]ानी केवल एक लँगोटी लगाये हुए फुर्ती से जहाज़ पर [चढ़] आया। तैरते समय डूबने से बचने के लिए उसने एक [छो]टा रस्सों की गठड़ी गले से बाँध ली थी। वह एक मामूली [सा]धु सा मालूम होता था। पर, शीघ्र ही उसने अपने गुणों [क]ा परिचय देना प्रारम्भ कर दिया।

जहाज़ के तख़्ते पर पैर रखते ही उसने वहां पर पड़ा [हु]आ रस्से का एक गोल गेंद उठा लिया। उसका एक सिरा [खो]ल कर उसमें उसने गांठ लगा दी। गांठ को उसी दम उसने [ब]ड़े ज़ोर से आकाश की ओर उछाल दिया। गांठ ऊपर को [च]ढ़ती जाती थी और रस्सी का गोला खुलता जाता था। [खु]लते खुलते सारी रस्सी खुल कर आकाश में चढ़ गई और [अन्त]र्धान हो गई। उस समय जहाज पर एक मल्लाह एक टूटा हुआ नारियल लिये खड़ा था। साधु ने उससे नारियल ले लिया और खड़े होकर उसका पानी एक डोल में गिराने लगा। एक डोल भर गया। तब नारियल के नीचे दूसरा डोल रक्खा गया। वह भी शीघ्र ही भर गया। इसी प्रकार उस नारियल के पानी से कोई बारह डोल भर गये। डोलों को भर चुकने बाद उसने उनमें से एक को हाथ में उठा लिया और मन्त्र पढ़ कर शीघ्र ही उसने उसे वहां से लोप कर दिया। थोड़ी देर बाद उसके हाथ में एक चिह्न सा देख पड़ा। यह चिह्न क्रमशः बढ़ते बढ़ते पानी का लबालब भरा हुआ डोल बन गया। मदारी ने उसे जहाज़ के तख़्ते पर उलट दिया।

इस खेल को एक युवती भी देख रही थी। कुछ दूर उसका बच्चा उसकी "आया" के पास खड़ा था। एकाएक माता क्या देखती है कि आया ने दोनों हाथों पर बच्चे को उठा लिया और शीघ्र ही ऊपर आकाश में उड़ कर वहीं अन्तर्द्धान हो गई। माता बेसुध हो कर पागल की तरह चिल्लाने और आकाश की ओर टकटकी लगा कर देखने लगी। आकाश की ओर मुँह उठाये वह थोड़ी ही देर में क्या देखती है कि एक बादल का टुकड़ा नीचे आ रहा है। वह बादल धीरे धीरे आया के रूप में बदल गया। जैसे जैसे आया नीचे आती गई वैसे वैसेही उसका आकार बड़ा होता गया। अन्त में वह जहाज़ के तख़्ते पर खड़ी हो गई। जहाज पर खड़ी होते ही आया ने बच्चे को उसकी माता के हाथों में दे दिया। माता ने बच्चे को छाती से लगाकर आया से कहा—तुम मेरे बच्चे को कहाँ ले गई थी? आया ने उत्तर दिया—मेम साहब, बच्चा तो सोया हुआ था, मैं इसे कहीं नहीं लेगई। यह सुन कर माता बड़ी चकित हुई। इस पर साधु बोला, मेम-साहबा विचित्र वस्तुओं का केवल स्वप्न देख रही थीं। यह खेल साधु की मानसिक कल्पना का फल था। उसने उसका चित्र मेम के मन पर अङ्कित कर दिया था।

इस खेल के बाद साधु ने आम [illegible] की गठड़ी खोली। उसमें से एक [illegible] निकाल कर उसने उसे सब दर्शकों को दिखाया। जब सब लोग देख चुके तब उसने उसे [illegible] की एक [illegible] के लिये [illegible] कि [illegible] की तरह [illegible] । [illegible] का [illegible] ही [illegible] के [illegible]

गिरने लगी। कुछ देर बाद उसने आज्ञा दी—बन्द करो। जल-धारा का गिरना फ़ौरन ही बन्द हो गया। फिर उसने आज्ञा दी—चलो। बस वह चलने लगी। इसी तरह उसने कई बार किया। इसके अनन्तर उसने एकाएक एक अजगर पैदा कर दिया। इस अजगर को देखते ही लोग बहुत डरे। तब साधु की आज्ञा पाते ही वह एकदम लोप हो गया। अजगर के बाद उसने सूर्य के प्रकाश में सब के सामने कितनी ही मनुष्य मूर्तियाँ पैदा करदीं। ये मूर्तियाँ धीरे धीरे भाफ़ के बादलों की तरह वहीं अन्तर्द्धान हो गईं। इन अद्भुत तमाशों के बाद उसे काफ़ी दान मिला। उसे लेकर वह वहाँ से चलता बना।

ऊपर के सब खेल मानसिक प्रभाव के ही फल हैं। जो लोग मानसिक प्रभाव का विरोध करते हैं और उसे अपने ऊपर नहीं पड़ने देते, उन्हें इस प्रकार के दृश्य बहुधा नहीं देख पड़ते। अन्य दर्शक जब मानसिक भ्रम में पड़े हुए इस प्रकार के स्वप्न देखते रहते हैं तब प्रभाव न पड़े हुए लोगों को सिर्फ़ मदारी एकाग्र-चित्त होकर अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग करता हुआ देख पड़ता है। इस तरह के और भी अनेकानेक खेल किये जा सकते हैं। अभी कुछ दिनों पहले सुना था कि मदरास में एक साधु आया है। वह रुपयों की वर्षा करता है। यह भी मानसिक भ्रम का ही फल है। कैमरे से लिया हुआ इस तरह का कोई भी चित्र फ़ोटोग्राफ़ी के प्लेट पर नहीं उतरता। प्लेट पर मानसिक एकाग्रता से बैठे हुए केवल मदारी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। मदारी अपने भीतर एक ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेता है जिसके द्वारा वह एक ही समय में बहुत से लोगों को कई तरह की वस्तुएँ दिखा सकता है, सुना सकता है और चखा भी सकता है। वास्तव में ये वस्तुएँ विद्यमान नहीं होतीं।

एक भारतीय सज्जन लिखते हैं कि जब मैंने पहले पहल ऐसे खेल देखे तब मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। अन्त में मैंने इनके सम्बन्ध में परीक्षा करने का निश्चय किया। मदारी के चारों ओर दर्शकों की बड़ी भीड़ थी। जब मैं दर्शकों के साथ खड़ा हुआ तब मुझे वे सब अद्भुत दृश्य एक एक कर के दिखाई पड़े। पर जब मैं दर्शकों से अलग होकर एक दूसरे मकान से देखने लगा तब मुझे मदारी के सिवा और कुछ भी दिखाई न पड़ा। इसके बाद मैं

मदारी के पास गया। अब भी मुझे कोई
पड़ा। इससे सिद्ध हुआ कि मदारी का प्रभा
सीमा तक ही था। इस सज्जन ने ग्राम के
रस्से वाले (जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है
की ख़ूब परीक्षा की। अन्त में उसे निश्चय
प्राकृतिक नियमों के नहीं, किन्तु मानसिक
दिखाई देती हैं। मदारी इन्द्रजाल रचने के स
कर बैठता है। वह मुँह से उम, म, म,
धीमी आवाज़ करता हुआ अपने धड़ को इध
रहता है। इसी लिए कितनेही मनुष्य समझ
इस क्रिया का सम्बन्ध जादू से है। पर, उन
शारीरिक चेष्टा का उसके कार्यों से कोई सम्ब
अच्छा अभ्यास किये हुए लोग कभी अपने
हिलाते डुलाते। वे पद्मासन मार कर समाधि
खेल के समय शरीर का हिलाना-डुलाना द
बढ़ाने के लिए है।

तमाशा देखने वालों के मन पर प्रबल
का चित्र अङ्कित करने के लिए प्रायः
विधि का अवलम्बन किया जाता है—

मदारी युवा अवस्था से अपने मन में
बनाने का अभ्यास करता है। कल्पना की
पहल उसने किसी सुपरिचित वस्तु, जैसे
का स्पष्ट चित्र अपने मन पर खींचना
खींचने के लिए उसने अपनी इच्छा शक्ति
मदारी इतना अभ्यास कर लेता है कि
नेत्रों के सामने कल्पित वस्तु ठीक वैसी ही
जैसे किसी व्यक्ति का मुख मण्डल देखने
कार के मन में उसका चित्र ज्यों का त्यों
और फिर बिना देखे ही वह उसे अङ्कित कर
अनन्तर मदारी बड़ी बड़ी वस्तुओं का, वस्तुओं
बढ़ते बढ़ते अधिकाधिक अद्भुत दृश्यों का
पर अङ्कित करता है। कितने ही दिनों के
में से दो ही एक ऐसे निकलते हैं जो अपने
का स्पष्ट चित्र खींच कर उसके भेज दिए
शक्ति प्राप्त हो जाती है तब मदारी अपनी
इच्छा शक्ति के द्वारा अपने आसपास के

प्रकार के मानसिक भ्रम पैदा कर देता है। इस शक्ति में बहुत समय लगता है। दो चार वर्षों में यह प्राप्त हो सकती।

मन्तराम गोहल, बी०ए०

भारतीय किसान।



रतवर्ष आज ही से नहीं, सदा से, कृषि प्रधान चला आया है। आज, इस सभ्यता के ज़माने में भी, यहाँ की तीन चौथाई जन संख्या प्रत्यक्ष रीति पर खेती करती है, बाक़ी एक चौथाई में एक बटा आठ का सम्बन्ध भी खेती से ही है। रे शब्दों में यह समझिए कि यहाँ की लगभग री जन संख्या किसान है। जिस किसान की मी महिमा है, जिस किसान की मिहनत पर ारा जीवन-मरण अवलम्बित है, और जो किसान ारा ही नहीं, किन्तु दूर दूर देशस्थ लोगों का भी र-पोषण करता है उसी भारतीय किसान की दशा र सभ्यता के ज़माने में बहुत ही शोचनीय है।

शीत ऋतु में जब हम लोग बनियान, कमीज़, टर, वासकट और कोट डाट कर भी डरते रहते कि कहीं कफ-ज्वर न हो जाय, दरिद्र किसान नङ्गे दन हवा में खड़ा रहता है और हमारे लिए कठिन रिश्रम करता है। सनसनाती हुई लू भी उसके रीर को छेदती हुई निकल जाती है और बरसान ा सारा पानी भी उसके शरीर पर ही पड़ता है। या आराम से घर पर शय्या पर लेटे हुए हम ोगों को कभी इस बात का ध्यान आता है? क्या भी हम लोग यह सोचते हैं कि इन दरिद्रियों के ति भी हमारा कुछ कर्तव्य है? कर्तव्य को जाने दीजिए। इस संसाररूपी बाज़ार में हमको प्रत्येक वस्तु का मूल्य चुकाना पड़ता है। क्या हम लोग इन किसानों की वस्तु (परिश्रम) का ठीक ठीक मूल्य चुकाते हैं?

हम देखते हैं कि यहाँ के किसानों के मुक़ाबले में योरप और अमेरिका के किसान ज़ियादह ख़ुश और मालदार हैं। इसका कारण यह है कि उनकी स्थिति और हमारे किसानों की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर है। वहाँ के किसान समाज में अच्छा दर्जा रखनेवाले, सुशिक्षित, बहुश्रुत और अनुभवी होते हैं। और, यहाँ के किसान ठीक इसके विपरीत। वहाँ खेती करनेवाला समाज में अच्छा दर्जा रखता है और बड़े से बड़े ओहदे पा सकता है। पर यहाँ तो हल छूते ही, जाति छून हो जाती है। किसान का नाम सुनते ही हम, बड़े लोग, नाक भौंह सिकोड़ने लगते हैं। शिक्षा और अनुभव प्राप्त करने का मौक़ा तो इन बेचारों को कभी मिलना ही नहीं। यह बात थोड़े में इस तरह कही जा सकती है कि वहाँ के किसान हमारे यहाँ के ज़मींदारों की हैसियत के होते हैं और यहाँ के किसान वहाँ के मज़दूरों से भी गई गुज़री दशा में रह कर कालयापन करते हैं। बहुतों का अनुमान है कि इस स्थिति के कारण भारतीय किसान लाभ उठाता है और पश्चिमी किसान हानि। पर यह सच नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय किसान अपने खेत का स्वामी होता है। उसके खेत में जो कुछ पैदा होता है वह सब उसी का होता है। उसका चाहे वह दबेन करे चाहे कृष्ण। सुनिए। किसान के खेत में जो कुछ पैदा होता है उसका वह मालिक अवश्य है। परन्तु उसके कितने ही हिस्सेदार भी होते हैं—ज़मींदार, साहूकार, आबपाशी का महकमा और मज़दूर। इन हिस्सेदारों में से पहले तीन इतने ज़बरदस्त हैं कि इनका हिस्सा बिना चुकाये किसान का निस्तार ही नहीं। इनका हिस्सा चुका कर उस बेचारे के पास जो कुछ बच रहता है वह प्रायः नहीं के बराबर है। उससे दरिद्र भारतीय किसान येन केन प्रकारेण साल के दो तीन महीने मात्र काट सकता है। फिर उसे अपना उदर पालन करने के लिए या तो ज़मींदार के दरवाज़े पर धन्ना देना पड़ता है या अपने आपको साहूकार के पञ्जे में फँसाना पड़ता है।

जाता है और टेलीफ़ोन के द्वारा दूरस्थ लोगों में परस्पर बातचीत करा सकता है।

गुणी से गुण कभी पृथक् नहीं रहता। निराकार का गुण साकार नहीं हो सकता, यह अटल सिद्धान्त है। तब साकार शब्दों को निराकार आकाश का गुण कैसे मान लें। ज्वालामुखी पर्वत बिना अन्य किसी प्रेरक कारण के फटने का शब्द करता है, दियासलाई का बक्स तेज़ धूप में अपने आप जल उठता है। इसी प्रकार आकाश द्रव्य के बिना भी, यदि किसी अन्य प्रेरक कारण से स्वतन्त्र शब्द हों, तो शब्द आकाश का गुण माना जाय। ओखली की तरह घण्टा पोला होता है। इसी से वह बजता है। पर, रेल की पटरी का टुकड़ा सर्वथा ठोस है। उसमें पोलापन नहीं। किन्तु लटका कर पीटने पर वह भी घण्टे की तरह बजता है। घण्टे की पोली जगह यदि भर दी जाय तो भी वह आवाज़ कर सकता है। इससे साबित हुआ कि किसी चीज़ से शब्द पैदा होना उसके पोलेपन पर अवलम्बित नहीं। कूटस्थ धरती और उस पर पड़ी हुई ठोस शिला भी ठोंकने से बजती है। माना कि बजती ठोस है, पर बजती है अवश्य। जिस वस्तु को किसी अन्य वस्तु का आवरण होता है वह ठोस ही आवाज़ करती है। आवरण होने से एक पदार्थ की विद्युत् का संक्रमण अन्य संसर्गस्थ पदार्थ में होता रहता है। इससे शब्द-तत्त्व की शक्ति क्षीण हो जाती है और वह ठोस आवाज़ देने वाली हो जाती है। जो पदार्थ किसी सूक्ष्म पदार्थ के आश्रय से अधर में स्थिर किया जाता है वह बड़ा शब्द करता है। उसका शब्द ठहरना भी दीर्घ समय तक है। यथा गुम्बज़ में की हुई आवाज बहुत देर तक ठहर कर प्रतिध्वनि देती है और ग्रामोफ़ोन के रिकार्डों में भरा हुआ शब्द जब चाहें तभी निकाल सकते हैं। इससे सिद्ध है कि शब्द-किरणें साकार और मूर्तिमान् हैं। तभी तो वे छिद्र-रहित बन्द घर से बाहर नहीं जा सकतीं। वे ग्रामोफ़ोन के सादे रिकार्डों के भीतर सङ्ग्रहीत भी—कर ली जाती हैं। यदि वे मूर्तिमान् न होतीं तो पकड़ी न जा सकतीं। [निरा]कार होतीं तो उनकी छाया सादे रिकार्डों [पर न] पड़ सकती। अतएव शाब्दिक किरणें जड़ [पदार्थों] के सूक्ष्म परमाणुओं के समूह हैं।

[जिस प्रकार] अंडा, अंडी में विद्यमान रहता है। [उसी प्रकार] शाब्दिक अंश जड़ पदार्थों में विद्यमान है। [इसका] प्रत्यक्षावलोकन इस तरह हो सकता [है।] बोतल के मुँह पर मुँह लगा कर शब्द [कीजिए।] आपको शब्द की क्रिया स्पष्ट मालूम [होगी।] शब्द का यथार्थ रूप कर्णगोचर न होगा। [इससे] सिद्ध है कि जड़ पदार्थों ही से शब्द की उ[त्पत्ति] है। वायु उसके सञ्चार का निमित्त होने से [एक पुरुष] के वचन दूसरे पुरुष के कानों तक पहुँच[ते हैं।]

"साक्षरोऽनक्षरश्चैव शब्दो भाषात्मको द्वि[धा।]
प्रायोगिको वैस्रसिको द्विधा भाषात्मकोऽपि [च॥]"
(तत्त्वार्थ...)

शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक [भाषात्मक,] दूसरे अभाषात्मक। साक्षर और अनक्षर [शब्दों को] भाषात्मक कहते हैं। मनुष्यों का उच्चा[रण साक्षर] है। दो इन्द्रियों वाले जीवों से लगा कर पशुओं तक का उच्चारण अनक्षरात्मक [है। पशुओं] का उच्चारण साक्षर न होने पर भी भा[षात्मक है,] क्योंकि, पशु उसे समझते हैं। वह परि[...]

अभाषात्मक शब्द भी दो प्रकार [के हैं।] एक प्रायोगिक, दूसरे वैस्रसिक। [...] आवाज़, घण्टे का बजना, इञ्जिन का [...] इत्यादि शब्द किसी दूसरे सजीव पदार्थ [के प्रयोग] से पैदा होते हैं। इसलिए ये प्रायोगिक [हैं। वैस्र]सिक शब्द अनेक पदार्थों के अनायास [ही] पैदा होते हैं। जैसे, सोडे की बोतल का [...] से फट कर शब्द करना, शीत और उष्ण[ता] के संसर्ग से खानों का भड़क उठना इ[त्यादि।]

इनको अभाषात्मक शब्द इसलिए [कहते हैं कि] इनके श्रवण से निश्चयपूर्वक बोध नहीं हो[ता कि] किसका शब्द है।

विश्वम्भरदास ग[...]

"श्री नेमसा-शारदा-सदन"



[illegible]

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

विविध विषय।

१—बङ्गाल में हिन्दी-शिक्षा की आवश्यकता।


रतवर्ष के एक प्रदेश के शिक्षित लोगों को यदि दूसरे प्रदेश के शिक्षित लोगों से बात-चीत या पत्र-व्यवहार करना होता है तो अँगरेजी में करना पड़ता है। अनेक स्थलों में ऐसा करना अनिवार्य्य है—अँगरेजी का सहारा लिये बिना कार्य्य-सिद्धि का और कोई साधन ही नहीं। हम इसकी निन्दा नहीं करते। किन्तु यदि हम किसी देशी भाषा के द्वारा यह काम करते तो देश के लिए और भी अच्छा होता, आनन्द की प्राप्ति भी अधिक होती। कल्पना कीजिए कि आप किसी अन्य प्रान्त में किसी गृहस्थ के अतिथि हुए। उस दशा में यदि हम उसी की मातृ-भाषा में बात-चीत कर सकें तो उसके साथ जितनी घनिष्टता और हृद्यता का होना सम्भव है उतना अँगरेज़ी में बात-चीत करने से सम्भव नहीं। केवल हिन्दी सीख लेने से हम उत्तरी भारत में सभी कहीं अपना काम बहुत कुछ चला सकते हैं। राजपूताना, मध्य-प्रान्त, यहाँ तक कि अधिकांश महाराष्ट्र प्रान्त में भी हिन्दी द्वारा काम चल जाता है। शिक्षित बङ्गालियों के लिए हिन्दी सीख लेना बहुत ही सहज है। दो ही तीन महीने पढ़ने से काम चलाने लायक़ हिन्दी सीखी जा सकती है। हम केवल उन्हीं को शिक्षित नहीं समझते जिन्होंने अँगरेजी शिक्षा पाई है। जो लोग केवल बँगला जानते हैं और बँगला की ही उत्तमोत्तम पुस्तकें और सामयिक पत्र पढ़ते हैं उन्हें कुछ कम शिक्षा-प्राप्ति नहीं होती। इसके सिवा संस्कृत-पाठशालाओं के अध्यापकों और ऊँचे दरजे के विद्यार्थियों को भी हम शिक्षित ही समझते हैं। इस प्रकार के सभी तरह के शिक्षित लोग दो तीन महीने में बहुत कुछ हिन्दी सीख सकते हैं। हाँ, हिन्दी में विशेष विज्ञ होने के लिए अवश्य ही बहुत दिनों तक लगातार इसे सीखना चाहिए।

यह बात नहीं कि केवल बात-चीत करने और चिट्ठी-पत्री लिखने के लिए ही हिन्दी सीखना चाहिए। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में विशेष उत्कृष्ट ग्रन्थ न होने पर भी पढ़ने लायक़ कितने ही ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और लिखे जा रहे हैं। किन्तु प्राचीन हिन्दी-साहित्य में अनेक अमूल्य रत्न विद्यमान हैं। धार्म्मिक साहित्य के लिए भारतवर्ष बहुत विख्यात है। यह सारा का सारा धर्म्म-साहित्य एक-मात्र संस्कृत और पाली भाषा ही में नहीं है। तामील, तिलेगू, मराठी, गुजराती, हिन्दी, गुरमुखी, बँगला आदि भाषाओं के धर्म्म-साहित्य में भी भारत के आध्यात्मिक ऐश्वर्य का अवस्थान है। मीराबाई, कबीर, दादू, तुलसीदास, हरिदास, ग़रीबदास, सूरदास आदि के द्वारा रचित गीत, पद और उपदेश माला धर्मपिपासु जनों के आदर की चीज़ें हैं। केवल यही चीज़ें पढ़ लेने से हिन्दी सीखने का श्रम सफल हो सकता है। किन्तु इन महात्माओं की रचना प्रचलित हिन्दी में नहीं। तथापि, हिन्दी में कुछ दूर तक प्रवेश हो जाने पर इनके ग्रन्थ भी समझ में आ सकते हैं।

दो परिवारों के स्त्री-पुरुषों में यदि आलाप, परिचय और बन्धुत्व स्थापित हो जाय तभी यह कहा जा सकेगा कि उनमें परस्पर घनिष्टता है। भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों और प्रान्तों के विषय में भी यही बात है। भिन्न भिन्न प्रदेशों के अँगरेज़ी शिक्षित पुरुष यदि अँगरेज़ी ही में परस्पर गिट-पिट करें तो उतने ही से वे एक-जातीयता के सूत्र से बद्ध नहीं हो सकते। अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी दो-चार स्त्रियाँ यदि परस्पर अँगरेज़ी में बात-चीत करें तो उससे भी विशेष आशा की सम्भावना नहीं। देश-भाषा के सहारे यदि इनमें सखी-भाव की स्थापना हो तभी राष्ट्रीय परिवार-भाव का उदय हो सकेगा और तभी भिन्न प्रान्तवासियों में घनिष्टता की उत्पत्ति भी हो सकेगी। स्त्रियों में अँगरेज़ी शिक्षा का विस्तार बहुत ही कम है। अतएव, यह सम्भव नहीं कि अँगरेज़ी में बात-चीत और भाव विनिमय द्वारा वे एक जातीयता की सृष्टि कर सकें। बङ्गालियों की स्त्रियों के लिए हिन्दी सीखना और हिन्दी बोलने वाली स्त्रियों के लिए बँगला सीखना अपेक्षा कृत सहज है। हमारी स्त्रियों के लिए हिन्दी जानना बहुत आवश्यक है। हिन्दी जानने से [illegible] की [illegible] भी बहुत बढ़ सकती है। बङ्गाल में अनेक [illegible] की [illegible] है। हिन्दुस्तान ([illegible] में तो [illegible] है। [illegible] के [illegible] के लिए बहुत [illegible] है। [illegible]

अध्यापन कार्य्य करने जायँगी उनके लिए हिन्दी जानना बहुत ही आवश्यक है ०

बँगला के मासिक-पत्र—"प्रवासी"—से अनुवादित

२- राय साहब डाक्टर सरयूप्रसाद का हिन्दी-प्रेम।

इन्दौर में—मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति—नाम की एक सभा है। इन्दौर के राय बहादुर सेठ हुकुमचन्द उसके सभापति हैं। सेठ साहब बड़े दानी और विद्योन्नति के बड़े पक्षपाती हैं। सुनते हैं, उन्होंने धार्म्मिक और विद्योन्नति-विषयक कार्यों में कोई १० लाख रुपया ख़र्च किया है। इस सभा के मन्त्री भी बड़े योग्य और हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। आपका नाम है—डाक्टर सरयूप्रसाद। आप इन्दौर के रेज़िडेंसी हास्पिटल में काम करते हैं। चिकित्सा में आपकी बड़ी ख्याति है। हिन्दी के नामी लेखक और सत्कवि पण्डित गिरिधर शर्म्मा ने आपकी चिकित्सा से बहुत लाभ उठाया है।

इस सभा का एक अधिवेशन, इन्दौर में, ६ जूलाई को हुआ। उसकी रिपोर्ट की एक कापी हमारे पास किसी ने भेजने की कृपा की है। उससे हमें यह पता चला कि महाराष्ट्र-सम्मेलन में हिन्दी-प्रचार के सम्बन्ध में—उसे राष्ट्र-भाषा मानने के सम्बन्ध में—जो प्रस्ताव पास हुआ था उसका अधिकांश श्रेय डाक्टर सरयूप्रसाद ही को है। उस प्रस्ताव के कर्त्ता श्रीयुत किबे महाशय शायद डाक्टर साहब के मित्र हैं। अतएव, सम्भव है, उन्होंने डाक्टर साहब ही की प्रेरणा से वह प्रस्ताव उपस्थित किया हो। यदि ऐसा न हो, तो भी डाक्टर साहब का उतनी दूर बम्बई जाना, उस प्रस्ताव का युक्तिसङ्गत और प्रमाण-दृढ़ अनुमोदन करना और जोड़ तोड़ लगा कर उसे "पास" कराना भी कम प्रशंसा की बात नहीं। पूर्वोक्त रिपोर्ट से यह भी ज्ञात हुआ कि गुजराती के साहित्य-सम्मेलन का भी हिन्दी-प्रचार-विषयक जो प्रस्ताव, अभी हाल में, "पास" हुआ है वह भी आप ही के उद्योग, मन और श्रम का फल है। लि[illegible] लिखा है कि आप ही ने अपने मित्र प्रोफ़ेसर [illegible] अहमदाबाद से सूरत भेजा था। आप ही की प्रेरणा से [illegible] महाशय ने गुजराती के सम्मेलन में हिन्दी को रा[illegible] स्वीकार करने का प्रस्ताव किया और उसे "पास" [illegible] था। इस सभा की स्थापना हुए अभी शायद ही ए[illegible] हुआ हो। पर, इतने ही थोड़े समय में डाक्टर साहब के [illegible] से उसने ये दो काम बड़े ही अच्छे कर दिखाये।

सभा के जिस अधिवेशन की यह रिपोर्ट है उ[illegible] एक काम बहुत ही उपयोगी हुआ। सभापति श्रीयुत [illegible] बापना, बी॰ ए॰, बी॰ एस-सी॰, एल-एल॰ [illegible] सभा-भवन के चन्दे के लिए एक अपील की। इ[illegible] पर कोई चार हज़ार रुपया चन्दा हुआ। इससे [illegible] के लिए एक इमारत बनेगी। यह भी डाक्ट[illegible] ही की इच्छा की पूर्ति जान पड़ती है, क्योंकि [illegible] आपकी वक्तृता का जो सारांश दिया गया है उसमें [illegible] इस कामना का भी उल्लेख है। डाक्टर साहब [illegible] के पुस्तकालय में अच्छी अच्छी पुस्तकें ही नहीं एक[illegible] चाहते। वे सभा के प्रबन्ध से हिन्दी में अनेक [illegible] पुस्तकें लिखाना और अन्य भाषाओं से अनुवाद भी [illegible] चाहते हैं। ईश्वर करे आपकी ये सदिच्छायें सफल हों।

३—ज़ेन्द-अवस्ता।

अँगरेज़ी की एक सामयिक पुस्तक में पार[illegible] पवित्र पुस्तक ज़ेन्द-अवस्ता पर एक अच्छा लेख [illegible] है। उसमें अध्यापक रेट के एक लेख के आधार प[illegible] गया है कि—

"ज़ेंद-अवस्ता और वेद, इन दोनों पुस्तकों क[illegible] स्थान एक ही है। वेदों की ज्ञानधारा विशेष वि[illegible] निर्मल है। वह आरम्भ में जैसी थी वैसी ही [illegible] भी है। पर ज़ेंद-अवस्ता की धारा की निर्मलता [illegible] कम हो गई है। उसके प्रवाह की दिशा भी बदल [illegible] इस समय तो इस बात का पता लगाना भी कठिन [illegible] है कि आरम्भ में उसका रूप और उसका आकार [illegible] कैसा था।"

कुछ विद्वानों की राय है कि अवस्ता की [illegible] रचना ईसा के १००० वर्ष पहले हुई थी। कुछ [illegible]

---

० प्रवासी सम्पादक के कथन से हम सम्पूर्ण सहमत हैं। आपकी न्यायशीलता सर्वथा प्रशंसनीय है। आशा है, बङ्गाली महाशय हिन्दी सीख कर राष्ट्रीय भाव के उदय और विस्तार की चेष्टा करेंगे और हिन्दी से विरुद्धाचरण करना छोड़ देंगे।

सरस्वती-सम्पादक।

०० वर्ष और कुछ ६००० वर्ष पहले की बताते हैं। लोगों का अनुमान है कि अवस्ता में वर्णन किये गये रद या ज़रथुस्त ईसा के ७०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। अवस्ता की भाषा और उसमें उल्लिखित धर्म्म पर विचार से यही कहना पड़ता है कि उसकी रचना ईसा के वर्ष पूर्व से भी बहुत पहले की है। अवस्ता अपनी इस अवस्था में उस रूप में न थी जिस रूप में उसे इस समय देखते हैं। उसके भिन्न भिन्न अंश या मन्त्र अलग थे। वे बिखरी हुई दशा में विद्यमान थे। की तरह उनका भी संग्रह पीछे से हुआ है। सिकन्दर समय में उनका यह संग्रह-रूप प्रचलित था। इससे भी है कि इसकी रचना उस समय के बहुत पहले हो थी। फ़ारिस में गुश्तास्प नाम का एक बादशाह हो है। वह कमानियन-वंश का था। उसका समय सन् में १३०० वर्ष पूर्व माना जाता है। लोगों का न है कि ज़रथुस्त इसी बादशाह के समय में विद्यमान यदि यह अनुमान सच है तो अवस्ता तीन हज़ार से भी अधिक पुरानी हुई। ईसा के जन्म के १००० पहले से लेकर सिकन्दर की चढ़ाई तक ज़रथुस्त का हुआ धर्म यही उन्नति पर था। तदनन्तर उसकी नति होने लगी। ईसा के कोई ३०० वर्ष पहले आरदेशर बादशाह ने फिर इस धर्म्म का पुनरुज्जीवन या पुन- की। उसी ने इस धर्म्मग्रन्थ को लिपिबद्ध भी । उसके पहले वेदों की तरह अवस्ता भी इस धर्म्म के यायियों के कण्ठ ही में वास करती थी। ६५१ ईसवी धर्म्म का—इस अग्निपूजक सम्प्रदाय का—फ़ारिस लोप हो गया। अरब के मुसलमानों ने फ़ारिस जीत वहाँ अपना धर्म्म चलाया। इस धर्म्म के कुछ अनुयायी भारत को भाग आये इन्हीं ने इसे इस देश में जीवित । यहाँ अब पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

अवस्ता पाँच भागों में विभक्त है। किसी भाग में -प्रकार का वर्णन है, किसी में स्तुति और प्रार्थना के है, किसी में मनुस्मृति के सदृश धर्म्माचरण के नियम कहीं कहीं दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, वनस्पतिविद्या से सम्बन्ध रखने वाली बातें भी हैं। इस ग्रन्थ की जेन्द है। इसी से इसके नाम में अवस्ता के पहले "जेन्द" शब्द रक्खा गया है। यह भाषा संस्कृत से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसी से विद्वानों का अनुमान है कि पारसियों और आर्य्यों के पूर्वज किसी समय एक ही देश में रहते और एक ही भाषा बोलते थे। अनेक वैदिक देवताओं के नाम भी अवस्ता में पाये जाते हैं। पर, वहाँ "देव" शब्द का अर्थ उलटा किया गया है। वह आर्य्यों के "दैत्य" शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुछ वैदिक देवताओं के गुण और स्वभाव तो अच्छे बताये गये हैं और कुछ के बुरे। अवस्ता में सोम और सोमयाग की बड़ी निन्दा है। जान पड़ता है, आर्य्यों और पारसियों के पूर्वजों के आचार-विचार में भिन्नता उत्पन्न हो जाने के कारण ही उनकी दो शाखायें हो गईं। एक शाखा सिन्धु पार करके इस देश में चली आई, दूसरी फ़ारिस की तरफ़ गई।

अवस्ता के अनुवाद जर्मन, फ़्रेंच और अँगरेज़ी भाषाओं में हो गये हैं। शायद गुजराती में भी उसका अनुवाद हो चुका है।

४—सोने के रूप में सरकार का सुरक्षित कोश।

(Gold Standard Reserve)

लेन देन के सुभीते के लिए सरकार सिक्का चलाती है। भारत का मुख्य सिक्का चाँदी का है। भारत के लिए ताँबे और निकल नामक धातु के भी सिक्के चलते हैं। साथ ही नोट भी जारी है। और नोटों को जाने दीजिए। उनकी मज़बूती के लिए सरकार उतना रुपया या उतने का सोना अलग ही रख देती है। भारतीय सिक्कों का चलन अन्य देशों में नहीं। उनकी क़ीमत भी घटा बढ़ा करती है। सोना ही एक ऐसी चीज़ है जिसकी क़दर सब देशों में है। उसकी क़ीमत में भी विशेष परिवर्तन नहीं होता। इसी से जितने के सिक्के इस देश में जारी रहते हैं उतने एक निश्चित अंश के मूल्य का सोना सरकार सदा अपने पास रखती है। चलन-बाज़ार सिक्के की मज़बूती के लिए ऐसा किया जाता है। सोने का सिक्का भी भारत से भिन्न देशों में बहुधा बहुत पर बिकता है। इससे वे देश भी बहुत सा सोना सैकड़ा रखते हैं जहाँ का सिक्का सोने का है। इस मद में भारत की सरकार कोई ४० करोड़ रुपये का सोना जमा रखती है। पर इसका [illegible] का अंश में नहीं [illegible] में रखती है। [illegible]

घोषणा निकली है। उससे मालूम हुआ कि—३० जून १९१४ को, इस देश में, २,४२,९१२ वर्गमील में जङ्गल था। जङ्गल का रक़बा धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है। १८९१ ईसवी में जङ्गलों से सिर्फ़ ३७ लाख की आमदनी थी। पर १९१४ में बढ़ कर वह तीन करोड़ के लगभग पहुँच गई। हिसाब नीचे दिया जाता है—

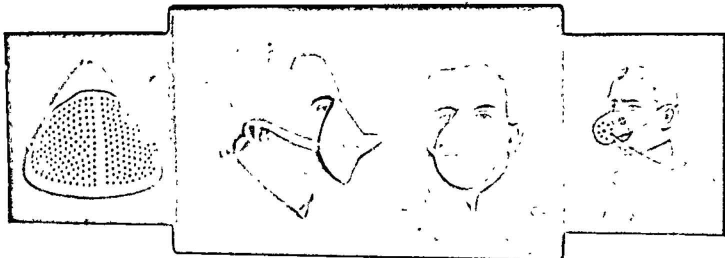
साल	कुल आमदनी	ख़र्च	बचत
१८९१	३७ लाख	२४ लाख	१३ लाख
१८८४	८८ ,,	५६ ,,	३२ ,,
१८९९	१७७ ,,	९८ ,,	७९ ,,
१९१४	२९६ ,,	१६४ ,,	१३२ ,,

देखिए, जङ्गलों की बदौलत गवर्नमेंट को कितनी आमदनी होती है। अब उसने आमदनी के और भी द्वार खोलने का प्रबन्ध किया है। ब्रह्मा और बङ्गाल में बाँस बहुत होता है। उसे कटा कर और कुचल कर, उसकी पीठी बना कर, उससे काग़ज़ तैयार करने का ठेका उसने दे दिया है। यह काग़ज़ शायद टीटागढ़ में बनेगा। आसाम और संयुक्त-प्रान्त के जङ्गलों में बैब नाम की जङ्गली घास बहुत होती है। उससे भी काग़ज़ बन सकता है। गवर्नमेंट इस घास से भी काग़ज़ बनवाने के विचार में है। देवदार के पेड़ों से धूप और तारपीन का तेल तैयार करने के लिए उसने कई कारख़ाने पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में खोल रक्खे हैं। उनसे भी उसे ख़ासी आमदनी होती है।

७—विषाक्त गैस।

गैस एक प्रकार की भाफ़ या धुवाँ है। जर्मनी के विद्वानों और रसायन-शास्त्रियों ने एक विषाक्त गैस बनाई है। यह गैस क्लोरायन या ब्रोमाइन नाम की रसायनों से तैयार की गई है। अन्य देशों के डाक्टरों और रसायन-विद्या के ज्ञाताओं का यही अनुमान है। पर, यथार्थ में बात क्या है, यह तो जर्मनी वाले ही जानें। लड़ाई के मैदान में जर्मनी की सेना अपनी खाइयों से यह गैस बड़े बड़े पम्पों और पिचकारियों आदि के द्वारा अपने विपक्षियों की खाइयों की तरफ़ छोड़ती है। जिस समय हवा अनुकूल होती है उसी समय इस गैस के बादल उड़ाये जाते हैं। हवा उन्हें उड़ा कर विपक्षियों की तरफ़ ले जाती है। यह गैस हवा से भारी होती है। इस कारण ज़मीन से सात ही आठ फ़ुट ऊपर उड़ सकती है, अधिक नहीं। इसमें जो विष रहता है वह ही भयङ्कर है। यदि इसकी गैस मनुष्य के मुँह और नाक द्वारा पेट में पहुँच जाय तो तत्काल मृत्यु हो जाती है। अगर थोड़ी और विशेष हलकी होने पर पेट में पहुँचे तो कोई कम प्राण-रक्षा होने की सम्भावना रहती है। मनुष्य का शरीर काला पड़ जाता है और श्वास लेने की नलियों में बहुत अधिक ख़ारिश पैदा हो जाती है। नतीजा यह होता है कि मनुष्य को प्राणान्तक वेदनायें होती हैं और वह खाँस कर दो तीन दिन में मर जाता है। इस गैस के कारण साँस लेने में बड़ी तकलीफ़ होती है। घनी गैस पेट में जाते ही श्वासावरोध होकर मनुष्य के प्राण निकल जाते हैं। इस तरह का पाशविक प्रयोग युद्ध में मना है। युद्ध-सम्बन्धी नियमों के यह सर्वथा प्रतिकूल है। पर जर्मनी ने जहाँ और अनेक नियम तोड़ दिये हैं वहाँ सभ्यता-सूचक और न्याय-सङ्गत युद्ध के नियम भी तोड़ दिये हैं। उसने तो कुछ समय से एक विशेष प्रकार के गोले भी चलाना शुरू किया है। इन गोलों के भीतर भी इसी तरह की गैस और और भी कुछ प्राणान्तक रसायनें भरी रहती हैं। गोलों के फटने पर उनसे निकली हुई विषाक्त गैस आस पास दूर दूर तक फैल जाती है। जिनके पेट में यह गैस पहुँचती है उन्हें असह्य यन्त्रणायें भोगनी पड़ती हैं। इसके प्रभाव से अनेक सैनिक मर जाते हैं।

इस विषपूर्ण गैस से अपना बचाव करने के लिए ब्रिटिश ने एक प्रकार का तोबड़ा सा बनाया है। लाखों की संख्या में ये तोबड़े सेनाओं को बाँट दिये गये हैं। ये तोबड़े एलीम्यूनियम के हैं और कुछ फलालैन के। इनके भीतर रुई की तह रहती है। वह नौसादर तथा और द्रव्यों के पानी से भिगो दी जाती है। उसे बाँध लेने से नाक और मुँह की राह से गैस पेट में नहीं जाती। यदि कुछ जाती भी है तो उसकी विषाक्तता बहुत घट जाती है और मनुष्य कम मरते हैं। इस तरह की एक टोपी, थैली या तोबड़े का चित्र यहाँ पर दिया जाता है। इसी ढंग की एक और चीज़ बाँधे हुए एक सैनिक का भी चित्र दिया जाता है। अब विचार यह हो रहा है कि एक टोपी ऐसी बनाई जाय जो सिर ढकने के भी काम आवे और नाक तथा मुँह की राह गैस को भी पेट में न जाने दे।



गैस रोकनेवाला तोबड़ा।
[illegible]

तोबड़ा चढ़ाये हुए सैनिक।

अमेरिका के एक विज्ञान-वेत्ता ने इन गैसों से बचने का और उपाय बताया है। वह कहता है कि मोरचों में [illegible] के सहारे एक ऐसा पंखा चलाया जाय जो इन गैसों [illegible] दलों को पीछे ही को लौटा दे अथवा कोई १० फुट आकाश में फेंक दे। पीछे फेंक देने से इन गैसों का [illegible] प्रभाव जर्मनी ही की सेना पर पड़ेगा। इस दशा [illegible] लाचार होकर इनका प्रयोग बन्द कर देंगे।

इस तरह की गैसों का प्रयोग नया नहीं। बहुत पुराने [illegible] में भी इनसे कई दफ़े काम लिया गया है। सन् [illegible] के कोई चार सौ वर्ष पहले एथन्स और स्पार्टा वालों [illegible] समय तक युद्ध हुआ था। उस समय ये लोग लक- [illegible] के बड़े बड़े टालों में मनों गन्धक रख देते थे। वायु [illegible] होने पर वे इन टालों में आग लगा देते थे। जब [illegible] जलती थी तब गन्धक का धुआं शत्रु की तरफ़ जाता [illegible] इसके प्रभाव से शत्रुओं का दम घुटने लगता था। उनके पैर बेकार हो जाते थे; उनका चलना फिरना बन्द हो [illegible] था। इस दशा को प्राप्त हो जाने पर उन पर धावा किया जाता था। इसे पढ़ कर पुराणज्ञ पाठकों को [illegible] भारत के सम्मोहन किंवा प्रस्वापन अस्त्र का स्मरण किया न रहेगा। इस अस्त्र के प्रभाव से शत्रुओं की सेना [illegible] हो जाती थी। सैनिक काठ के से पुतले बन जाते [illegible] नींद भी आ जाती थी। रघु कुमार अज ने इसी के प्रयोग से अपने बहु-संख्यक विपक्षी महीपों की सेना जीता था। लिखा है—

> [illegible]
> [illegible]

८—जुड़ी हुई दो लड़कियां।

जयपुर (राजपूताना) से पण्डित रामगोपाल पुरोहित [illegible] हुई दो लड़कियों का एक चित्र भेजा है। चित्र में [illegible] अपने पिता की गोद में बैठी हुई हैं। लड़कियों का [illegible] है—अथवा यह कहना चाहिए था कि—[illegible]। [illegible] के विषय में पुरोहितजी लिखते हैं।

[illegible]

[illegible]पुर के प्रसिद्ध मेयो हास्पिटल में इलाज के लिए, २८ दिसम्बर १९१० को, [illegible] गया। वहां दाखिल होने के समय लड़कियों का यह हाल था कि एक तो [illegible] नहीं थी, दूसरी खांसी से पीड़ित थी। रोगी लड़की सात दिन बाद, अर्थात् [illegible] जनवरी १९११ को, मर गई। दूसरी भी उसके तीन दिन बाद, ७ जनवरी को, चल बसी। इनकी उम्र चार महीने की थी। लड़कियां बड़ी सुन्दर थीं। हास्पिटल में "पोस्ट मार्टम" परीक्षा से यह मालूम हुआ कि इनका 'लीवर' अर्थात् यकृत एक ही था। चित्र में दाहनी तरफ़ की कन्या मृत और बाईं तरफ़ की जीवित है। फ़ोटो लेने के दो दिन बाद दूसरी का भी [illegible] हो गया था। परमेश्वर की शक्ति का यह एक अद्भुत नमूना है।

यह चित्र जयपुर के—"राजपूताना फ़ोटो आर्ट स्टूडीओ"—का लिया हुआ है।

९—राजा टोडरमल की जन्मभूमि।

लहरपुर, ज़िला सीतापुर, से बाबू सोहनलाल वर्मा लिखते हैं:—

"१९१० की सरस्वती, संख्या ९, पृष्ठ ४०१ में, श्रीयुत पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी का लिखा हुआ राजा टोडरमल पर एक लेख है। उसमें उनका जन्मस्थान तारापुर बताया गया है। यह ठीक नहीं। ज़िले का नाम अवश्य ठीक है। तारापुर के स्थान में लहरपुर या लाहरपुर होना चाहिए। लहरपुर में एक महल्ला चौधरी टोला है। उसमें चौधरी लोग अधिक रहते थे। इसी महल्ले में स्वर्गवासी राजा टोडरमल का घर था। अब वह घर प्रायः भग्न हो गया है। केवल एक दीवार का कुछ भाग शेष रह गया है। वही राजा टोडर- मल का स्मरण कराता है। इसके अतिरिक्त राजा टोडरमल के नाम से यहां पर एक तालाब और एक गांव (राजा का [illegible] या राजापुर) है, जो इस लोगों के अधिकार में है। परन्तु यहां पर अभी तक किसी ने भी राजा टोडरमल के नाम को चिरस्थायी करने के निमित्त उद्योग नहीं किया। एक बार एक डिप्टी [illegible] महाशय ने कुछ उद्योग किया था। परन्तु वह कार्य रूप में परिणत न हो सका।"

इस सत्कार्य के लिए वर्मा महाशय को अनेक धन्यवाद।

पुस्तक-परीक्षा।

१—[illegible]। यह पुस्तक [illegible] है। नाम है—[illegible]। [illegible]

डेढ़ सौ के ऊपर है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। इसके लेखक कोई के० पी० चैटर्जी (K. P. Chatterjee) साहब हैं। आपने पुस्तक रचना भी अँगरेज़ी ही में की है और नाम भी अपना अँगरेज़ी ही ढँग से लिखा है। आप कौन हैं, यह मालूम नहीं। हाँ, पुस्तक से इतना पता अवश्य चलता है कि आपको स्वामी ज्ञानानन्द जी की चरण-सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है—"I have been privileged to find a place at Sri Swamiji's feet"।

भारत-धर्म्म-महा-मण्डल धार्म्मिक परिषद् है। सनातन-धर्म्म की रक्षा और विस्तार ही के लिए उसका जन्म हुआ है। ऐसी संस्था से प्रकाशित पुस्तकें अँगरेज़ी में क्यों निकलें? हिन्दी या और किसी देश-भाषा में क्यों नहीं? सनातन-धर्म्म का अँगरेज़ी भाषा से कुछ अविच्छिन्न सम्बन्ध तो है नहीं। फिर इस विदेशी भाषा का उपयोग क्यों? इसके प्रयोग का कारण शायद यह हो कि देशी भाषायें प्रान्तिक हैं। भारत के सभी प्रान्तों के लोग किसी एकदेशी भाषा को अच्छी तरह नहीं समझ सकते। पर, अँगरेज़ी भाषा भारत में विशेष व्यापक है। सभी प्रान्तों के शिक्षित मनुष्य प्रायः उसे पढ़, लिख और समझ सकते हैं। अतएव पुस्तक में जिन बातों का वर्णन है उन्हें सभी प्रान्तों के शिक्षित जनों के कान तक पहुँचा देने के इरादे से ही शायद उसमें अँगरेज़ी भाषा का प्रयोग हुआ है। अच्छा, पुस्तक में वर्णना किन बातों की है। वर्णना है विशेष करके स्वामीजी की महिमा, प्रभुता, साधुता, विद्वत्ता, धर्म्म-निष्ठा, परोपकृति आदि की। इसके सिवा स्वामीजी पर समय समय पर जो दोषारोपण हुए हैं, उनके कार्य्य-कलापों की जो कटाक्ष-पूर्ण समालोचनायें हुई हैं, और उन पर, अथवा यह कहना चाहिए कि मण्डल पर, जो मुक़द्दमे चलाये गये हैं, उनकी भी यत्र-तत्र वर्णना है। साथ ही इन आक्षेपादिकों की असारता और स्वामीजी की निर्दोषता का उद्घोष भी है। इन बातों की घोषणा की ध्वनि दूर तक पहुँचाने में राज-भाषा अवश्य ही अधिक कारगर होगी। पुस्तक में जो बातें हैं वे चैटर्जी महाशय की निज की सम्पत्ति नहीं। स्वामीजी ने ही ये सब बातें उनसे कही हैं। "I have preferred to piece together the notes of what fell from his (Swamiji's) own lips, in regard to his ide[illegible] doings." और, शायद स्वामीजी ने ही चैटर्जी [illegible] को मण्डल-सम्बन्धी काग़ज़-पत्र, "सरकुलर," [illegible] और प्रदत्त पदवियों की तालिकायें आदि [illegible] कृपा की है।

चैटर्जी महाशय ने स्वामीजी के कथन को [illegible] मात्र कर दिया है और प्राप्त काग़ज़-पत्रों को यथास्थान [illegible] दिया है। अतएव इस पुस्तक में लिखी गई बातें [illegible] की ही "अपनी बीती" कहानी है। इस कहानी को [illegible] के संरक्षकों और प्रतिनिधियों को स्वामीजी ने अपने [illegible] आशीर्वाद के साथ ("With blessings from [illegible] heart") स्वयं ही समर्पण भी किया है। इस [illegible] एक समर्पण-पत्र पुस्तकारम्भ में लगा दिया गया है। [illegible] सब पर्य्याप्त नहीं था, इसीसे पुस्तक-लेखक ने [illegible] पृष्ठ-व्यापिनी भूमिका में भी स्वामीजी का गुणानुवाद [illegible] है और उनकी प्रतिकूलता करनेवालों को सदुपदेश [illegible] कष्ट उठाया है। अतएव यह मण्डल का इतिहास ([illegible] नहीं। यह मण्डल का माहात्म्य मात्र है। और, [illegible] माहात्म्य-वर्णन, स्वामीजी का ही माहात्म्य वर्णन है। [illegible] पुस्तक-प्रणेता के भी कथनानुसार स्वामीजी ही [illegible] ब्रह्मा और विष्णु हैं।

भक्त को अपने भक्तिभाजन की स्तुति प्रार्थना [illegible] सर्वथा स्वाभाविक है। यह उसका धर्म्म ही है। [illegible] सम्बन्ध में पुस्तक-लेखक उपालम्भ के पात्र नहीं। [illegible] के पात्र हैं स्वयं स्वामी ज्ञानानन्दजी। यदि वे चैटर्जी [illegible] शय के कथनानुसार सच्चे साधु और सच्चे महात्मा [illegible] उन्हें निन्दा और स्तुति को तुल्य समझना चाहिए। [illegible] क्या कहते हैं, इसकी कुछ भी परवा न करके [illegible] कर्तव्य और अपने धर्म्म का पालन करना चाहिए। [illegible] प्रबन्ध-कुशलता, साधुता, महत्ता, धर्म्मनिष्ठा [illegible] मालिका के वर्णनों से पूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कराके [illegible] रुपया न बरबाद करना चाहिए। महान साधु तो [illegible] अपना उपकार और प्रशंसा से अपकार समझते हैं। [illegible] को तो वे उद्वेग-जनक समझते हैं। इस दशा में [illegible] को ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से दूर रहना [illegible] प्रकाशित करा कर उन्हें अपनी ओर से मण्डल के [illegible]

तिथियों को अर्पण करने का तो विचार भी न करना हिए था। पर उन्होंने यह सब कर दिखाया।

इस पुस्तक के अन्त में आमदनी और ख़र्च के जो चिट्ठे हैं उनसे सूचित है कि काशी के इस धर्म्म-महा-मण्डल हर साल बहुत सा रुपया मिलता है। इसकी सालाना दनी कोई २० हज़ार है। इस इतने रुपये से धर्म्म-सम्बन्धी त कुछ काम हो सकता है। पर, जहां तक हम जानते हैं, मण्डल ने आमदनी के अनुरूप काम नहीं कर दिखाया। ीमठ का जीर्णोद्धार करना, छापख़ाना ले ा, मण्डल के लिए आलीशान इमारत बना देना, पदवियों घास-फूस की तरह बांटना, दस-पांच ग्रन्थ छपा देना और चार उपदेशक पैदा कर देना ही यथेष्ट धर्म्म प्रचार नहीं। बातों को जाने दीजिए, इस मण्डल की मासिक पत्रिका तो समय पर नहीं निकलती। सम्भव है, मण्डल ने कोई बड़े बड़े काम किये हों पर हमें उनका ज्ञान नहीं। ल की आशाओं की गणना कार्य्य में नहीं की जा ती। स्वामीजी को चाहिए कि मण्डल की आमदनी को कामों में लगावें जिनसे मण्डल के उद्देशों की विशेष द्धि हो। काम ऐसे हों जिनसे लोगों का प्रकृत उपकार हो र जो सबकी नज़र में आवें। जिन बातों को लोग अनु- त समझते हैं उनसे बचें। त्यागी साधु न चेले रक्खें, न लों में रहें और न ठाट-बाट पसन्द करें। विरक्त साधुओं चेलों और चेलियों से क्या काम? साधु-जन तो स्त्री- कर्षं का सदा ही त्याग करते हैं। इस त्याग का स्वीकार के भी वे समदर्शी हो सकते हैं।

समाचार-पत्रों में महा-मण्डल के प्रतिकूल आज तक अनेक लेख देख चुके हैं। पर हमने इस सम्बन्ध में कभी नहीं लिखा। यह सरस्वती का काम भी नहीं। यदि ुत पुस्तक समालोचना के लिए ("For favor of view") हमारे पास न आती तो हम आज भी कुछ लिखते। अतएव, यह नोट लिखने में हमने पुस्तक नेवाले महाशय की आज्ञा का पालन मात्र किया है। एतदर्थ तक प्रणेता, पुस्तक-प्रेषक और स्वामीजी महाराज हमें मा करें—

ये प्रसादा च मनागपि दुर्भगत्वं
ये दोषमात्रपरिदर्शनमेव पुष्टा।
स्वप्रार्थनाप्रणयभङ्गभियैव किन्तु
श्रीमन् मया स्वमतितः किल किंचिदुक्तम् ॥

२—आचार्य्य-कोश। आकार बड़ा; पृष्ठ संख्या ४०० के लगभग; मूल्य २ रुपया, मिलने का पता—मैनेजर, ए० पी०, बहावलपुर। इसकी रचना पण्डित रामचरणाचार्य्य शास्त्री ने की है। इसका नाम आचार्य्य कोश शायद इस लिए रक्खा गया है कि इसके बनाने वाले "आचार्य्य" हैं। पर यह केवल कोश ही नहीं। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में कोई १२० पृष्ठ हैं। उसमें व्याकरण-शिक्षा है। दूसरे भाग में कोश अलबत्ते है। संस्कृत पढ़ने वालों के लाभ के लिए इसकी सृष्टि हुई है। इसका प्रथम भाग डाक्टर भाण्डारकर की संस्कृत मार्गोपदेशिका के ढंग का है। संस्कृत व्याकरण का कार्योपयोगी नियम और शब्द-साधन इत्यादि लिख कर संस्कृत में अनुवाद करने के लिए हिन्दी-पाठ भी दिये गये हैं। अनुवाद के लिए कितनी ही कहानियां भी हैं। सरल और प्रारम्भिक बातों से आरम्भ करके धीरे धीरे संस्कृत व्याकरण का अधिकाधिक ज्ञान करा देने की चेष्टा की गई है। इससे अनुवाद करना सीखने और थोड़ी ही मिहनत से संस्कृत का साधारण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों का बहुत काम निकल सकता है। इसकी हिन्दी वैसी ही है जैसी संस्कृतज्ञ पण्डितों और पञ्जाबियों की होना चाहिए। इसके कोश-भाग में एक विशेषता है। उसमें कोश [illegible] के उर्दू, फ़ारसी और अंगरेज़ी के शब्द भी हैं। यह हिन्दी-संस्कृत कोश है। अर्थात् हिन्दी शब्दों का अर्थ संस्कृत में दिया गया है। हमें खेद है, हम इसके [illegible] से सहमत नहीं। कोश का अन्तिम शब्द है—[illegible]। उसका अर्थ लिखा गया है—[illegible]। पर यह हमारी राय में ठीक नहीं। [illegible] संस्कृत शब्द [illegible] है, [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] पुस्तक संस्कृत सीखने का [illegible] साधन है। [illegible] [illegible] बहुत [illegible] है।

३—[illegible]। आकार [illegible], पृष्ठ संख्या [illegible], मूल्य [illegible] [illegible]—[illegible], [illegible]—[illegible]

ओरियंटल प्रेस, लखनऊ । इस पुस्तक की भूमिका में इन चुटकुलों के विषय में लिखा है—"इनमें विनोद है और उपदेश भी है । समाज-सुधार के उद्देश से कहीं कहीं पर कटाक्ष भी है, पर व्यक्ति-गत या जाति-गत कोई आक्षेप नहीं है" । हमने इस पुस्तक के कितने ही चुटकुले पढ़े और भूमिका-लेखक के इस कथन को सच पाया । कितने ही चुटकुलों से बड़ी ही प्रखर प्रतिभा की ज्योति निकल रही है । जहाँ कटाक्ष है वहाँ ऐसी बात पर है जो यथार्थ में कटाक्ष-योग्य है । ऐसे चुटीले चुटकुले लिखना सब का काम नहीं । तीव्र बुद्धि और बहुदर्शी विद्वान् ही उन्हें लिख सकते हैं । हम इस पुस्तक की सैर करके बहुत प्रसन्न हुए । इसके कितने ही चुटकुले लखनऊ के नागरी-प्रचारक में निकल चुके हैं ।



४—लक्ष्मण द्विवेदी । पण्डित केदारनाथ पाठक 'पाठक' तो बने बनाये ही हैं; अब कुछ समय से आप लेखक भी हो गये हैं । इस ४४ पृष्ठों की, अच्छी छपी हुई,-पुस्तक की रचना आप ही ने की है । यह चरितात्मक है । पर, इसमें न किसी राजा का चरितांश, न सेठ-साहूकार का, न और ही किसी बड़े भारी मालदार का । इसमें काशीनिवासी सांवलजी नागर के पिता परलोकवासी पण्डित लक्ष्मणजी नागर (द्विवेदी) का जीवन-चरित है । इनको परलोकवास हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ । सच्चरित्रता, सज्जनता और श्रमशीलता आदि गुणों के कारण इनका चरित मध्यवित्त गृहस्थों के लिए सचमुच ही आदर्श-तुल्य है । रमेशचन्द्रदत्त के किये हुए बँगला अनुवाद के आधार पर नागरजी ने ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद किया था । वह शायद अब तक अप्रकाशित है । नागरजी में अनेक अनुकरणीय गुण थे, जिनका हाल पुस्तक पढ़ने से मालूम हो सकता है । मिलने का पता—पाठक एंड सन्स, राजा दरवाज़ा, बनारस ।



५—आर्य्य सनातनी-संवाद । आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ११४; मूल्य ४ आने, लेखक पण्डित [illegible], [illegible]; मिलने का पता—पण्डित [illegible], [illegible], [illegible] । इसमें नामानुसार इस पुस्तक में आर्य्य-समाजी और सनातन-धर्म्मावलम्बी की परस्पर [illegible] है । इसका सम्बन्ध मूर्त्तिपूजा, तीर्थ-यात्रा, नामस्मरण, ईश्वरावतार, श्राद्ध, विधवा [illegible] ईश्वर के आकार से है । किसी शास्त्र, वेद [illegible] वचनों के प्रमाण नहीं दिये गये । दोनों पक्षों के [illegible] निरूपण में केवल युक्ति और तर्क से काम लिया गया [illegible] सभी नियमों में सनातन-धर्म्मावलम्बी पक्ष की [illegible] दिखाई गई है । परुष वाक्यों और कुत्सा का [illegible] लिया गया । युक्तियाँ सुसङ्गत हैं । अतएव पुस्तक दोनों [illegible] अनुयायियों के पढ़ने लायक़ है ।



६—जमालमाला । इस २२ पृष्ठों की छोटी पुस्तक का मूल्य ।) है । श्रीयुत पन्नालाल भैया [illegible] मुहल्ला उपरडीह, गया—को लिखने से मिलती है । [illegible] नामक कवि ने बहुत से "कूट" दोहे कहे हैं । [illegible] दोहों का संग्रह इस पुस्तक में है । प्रत्येक दोहे के [illegible] एक रोला की रचना करके पूर्वोक्त भैया महाशय [illegible] दोहों को कुण्डलिया का रूप दे दिया है । परन्तु [illegible] से जमाल कवि का असली भाव नहीं प्रकट होता । [illegible] कार को उचित था कि दोहों का अर्थ भी लिख देते [illegible] करने की आप इच्छा रखते भी हैं । आगे फिर कभी आप अपनी इस इच्छा की पूर्ति करें । दोहों का नमूना देखिए:—

> बन बन उठत दवागि घन छन छन दहरि [illegible]
> हरखि हरखि तिय तहँ हँसी कारण कौन [illegible]



७—जैनसिद्धान्त । आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या [illegible] मूल्य ६ आने, लेखक—जैन मुनि उपाध्याय [illegible] प्रकाशक बाबू परमानन्द, बी० ए०, प्लीडर, कसूर [illegible] इस पुस्तक में इसके नामानुसार जैन सिद्धान्तों का [illegible] है । चार सर्ग इसमें हैं । पहले में आत्मा का [illegible] में प्रमाण और नय का विवरण, तीसरे में [illegible] और चौथे में गृहस्थ-धर्म्म का विवेचन है । [illegible] के प्राकृत ग्रन्थों से प्रमाण उद्धृत हैं । [illegible] दोनों चीज़ें अच्छी हैं । भाषा क्लिष्ट है । इस तरह की पुस्तकें बोलचाल की भाषा में लिखी जानी चाहिए, [illegible] रचना से अधिक लोग लाभ उठा सकते हैं । [illegible] बहुत कम ।

८—आदर्शचरितावली। आकार मँझोला, पृष्ठ-७७; मूल्य २ आने; लेखक—पण्डित शिवसहाय चतु-... मिलने का पता—हिन्दी-हितैषी कार्यालय, देवरी, ...। इस छोटी सी पुस्तक में १० अपने देश के और २ ... के सत्पुरुषों के संक्षिप्त चरित हैं। भरत, दधीचि, ... ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महाराना प्रतापसिंह, गोखले, ... गांधी, जनरल थ्रूथ और बुकर टी० वाशिंगटन आदि के ... पढ़ने की इच्छा रखने वालों की मनस्तृप्ति इसके अव-... से हो सकती है।



९—श्रीसत्यबोधभास्कर। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ...; मूल्य २ आने; लेखक, मुनि श्रीयतीन्द्रविजय, मिलने ... पता—मन्नालाल चोपड़ा, राजेन्द्राभ्युदय-पुस्तकालय, ...म। इस पुस्तक का दूसरा नाम प्रतिमासंसिद्धि है। ...क-वासी सम्प्रदाय के लोग मूर्तिपूजा और मूर्ति-प्रतिष्ठा ...रह नाना प्रकार के टेढ़े मेढ़े प्रश्न करते हैं। उन्हीं प्रश्नों ...क्ति-सङ्गत उत्तर इस पुस्तक में हैं। उत्तरों में जिनेन्द्र की ...प्रतिष्ठा की आवश्यकता और उपयोगिता बताई गई ... इस विषय के सिवा शास्त्राभ्यास, व्याकरण पढ़ने की ...श्यकता, युक्ति-युक्त प्रश्नोत्तर आदि का भी विवेचन है। ... बड़ा और छपाई साफ़ है।



१०—स्वामी रामतीर्थ, भाग आठवां। भाषा ...; आकार मँझोला; छपाई और कागज़ उत्तम, पृष्ठ-संख्या ...; मूल्य १२ आने, सम्पादक—भास्कर विष्णु फड़के—...ण्य वासुदेव बर्वे, माटुंगा, बम्बई। सम्पादक-द्वय स्वामी ...र्थ के व्याख्यानों का अनुवाद मराठी में निकाल रहे ...सात भाग निकल चुके हैं। यह आठवां है। इसमें ... प्रवेश के सिवा धर्म्म का ध्येय, साक्षात्कार का राजमार्ग ... उपासना आदि सात व्याख्यानों का अनुवाद है। बड़ी ... पुस्तक है। मराठी जानने वाले अध्यात्म विषय के ...यों के पढ़ने और विचार करने लायक़ है। पुस्तक में ... जहां हिन्दी-भाषा के पद और पद्य आ गये हैं ... वहां बहुधा भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियां हो गई हैं, जो ... हैं। इतने सम्पादकों ही को लिखने से पुस्तक निर्म...ती है।

११—चेतन-कर्म्म-चरित्र। भाषा गुजराती; आकार छोटा; पृष्ठ संख्या २१०; मूल्य ४ आने; लेखक—जीवणलाल कसनदास कापडिया, प्राप्तिस्थान—सस्ती जैन-ग्रन्थमाला, चांदवाडी, सूरत। भगवतीदास कवि का लिखा हुआ एक ग्रन्थ ब्रह्मविलास नामक है। उसमें चेतन कर्मचरित्र नाम की एक कविता हिन्दी में है। उसी के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। यह उपन्यास के रूप में है। इसमें प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की शैली का अनुकरण है। चेतन-शक्ति को चैतन्यसिंह राजा का रूप दिया गया है। उसके चरित्रवर्णन के बहाने अनेक भले-बुरे मानसिक भावों को मानव-मानवी का रूप देकर उनके स्वभावादि का वर्णन और क्रिया-कलाप का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार जैनधर्म्म के अनुसार आध्यात्मिक बातें बड़ी अच्छी तरह समझाई गई हैं।



१२—देशभक्ति। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या २६; मूल्य दो आने; अनुवादक, पण्डित देवीप्रसाद द्विवेदी; मिलने का पता—प्रताप प्रेस, कानपुर। श्रीयुत जे० एन० मजूमदार, एम० ए० की लिखी हुई एक छोटी सी पुस्तक अँगरेज़ी में है। देशभक्ति-सम्बन्धी सुन्दर विचारों से पूर्ण उसी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है।

नीचे जिनके नाम दिये गये हैं वे पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) दुःखी, (२) समानता —अनुवादक श्रीमोहनदास दामोदरदास, राजकोट।

(३) भारतमाता—प्रकाशक—पण्डित हरस्वरूप पाठक, देहरादून।

(४) भरतचरितामृत—प्रकाशक—श्रीनुवर्णी-ग्रन्थमाला, कनखल।

(५) मनोहर सङ्गीत—लेखक—पण्डित बृन्दावन, आगरा।

(६) सेठ माणिकचन्द्र पानाचन्द्र दिगम्बर जैन बोर्डिंग स्कूल, रतलाम, की रिपोर्ट— १९१३—१४ — प्रकाशक, ला० बापूभाई प्रेमचन्द्र ... बम्बई।

(७) भारत के वीर पुत्र—लेखक, पं० रामेश्वरदत्त शर्मा, मुरादाबाद।

(८) सहारनपुर हिन्दू अनाथालय की वार्षिक रिपोर्ट—१९१३–१४—प्रकाशक—मंत्री, अनाथालय, सहारनपुर।

(९) कलाली विद्ध—लेखक—लाला मोतीलाल, सुपरवाइज़र, नीमच।

(१०) महादेव और मैना
(११) बारामासी
—प्रेषक—पण्डित नन्दकिशोर शुक्ल, टेढ़ा, उन्नाव।

(१२) सुकवि-समिति—प्रकाशक—छोटुभाई दाजीभाई देसाई, सूरत।

(१३) जैन श्वेतांबरी तेरापन्थी सभा की द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट—प्रकाशक—केशरीचन्द कोठारी, कलकत्ता।

(१४) जैन मत नास्तिक मत नहीं—प्रकाशक—जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला।

(१५) गोरक्षा भजन-चन्द्रिका
(१६) गोरक्षा की प्रार्थना
—प्रकाशक—नटवरलाल चतुर्वेदी, मथुरा।

चित्र-परिचय

(१)

पूतना-वध।

इस संख्या का पहला रङ्गीन चित्र टेहरी-गढ़वाल के श्रीयुत कुँवर विचित्र... भेजने की कृपा की है उनमें से एक ... निकल चुका है। यह दूसरा है। ... टेहरी नरेश श्रीमान् महाराजा प्रतापशाह ... दरबार के एक नामी चित्रकार ने इन ... किया था। पूतना-वध की कथा सर्व-श्रुत है ... कराने की ज़रूरत नहीं। पाठकों को चित्र दे... जायगा कि चित्रकार ने इस पौराणिक दृश्य ... से दिखाया है। चित्र के नीचे श्रीमद्भागव... उद्धृत है उसी के आधार पर इस चित्र क...

(२)

भाद्रपद।

इस दूसरे रङ्गीन चित्र का विषय उसके ... केशवदासजी के छप्पय छन्द से ही स्पष्ट हो ज...

Printed and published by Apurva Krishna Basu, at the Indian Press, Allahabad.

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※

मानस—कोश ।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को अब बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए।

सचित्र हिन्दी महाभारत

(मूल आख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ — बड़ी साँची — १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म- ...ाय, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की ...ाक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष ...र ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना ..., यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके ...तिमन धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि ...ब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित को ...र ... का महत्त्व देखना हो, यदि ...वान कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को ...व और ... बनाना हो, तो इस "महाभारत" ... को ... कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा ... सरल, बड़ी ... और बड़ी ...

[illegible]

... है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा ... महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना ... लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) ...

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन ... सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो ... जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता ... सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही ... महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ ... समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। इसे ... का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्वामी... ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज में ... छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें इसका ... ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य ... ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवि... चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण ... मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँची के ... हैं। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, ... का परिचय, विषयानुक्रमणिका, आवश्यक ... त्रुटिपूर्ति, यन्त्रालय-प्रशस्ति और सहायक ... आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया। उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी ... का मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के लिए केवल ... चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

सौभाग्यवती ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य ... चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ ... प्राप्त कर सकती हैं। मूल्य ...

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

गारफ़ील्ड ।

इस पुस्तक में अमरीका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एबरम गारफ़ील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफ़ील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उत्साह, साहस और संकल्प के कारण, अमरीका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के नव युवकों को इस पुस्तक से बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, हमारी ...म में, अभी तक कहीं नहीं छपी। एक हिन्दी ही ... इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं ... विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

...शिरोमणि कालिदास के नाम को कौन नहीं ...? शकुन्तला नाटक, उन्हीं कविन्दूड़ामणि ...स का रचा हुआ है। इस नाटक पर यहाँ वाले नहीं विदेशी विद्वान् भी लट्टू है ... जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ... यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण ... हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा ... अनुवादित किया है। लीजिए, देखिए तो इस... में कैसा अनुपम आनन्द आता है। मूल्य ।)

मुकुट ।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्र ... बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। ... में परस्पर अनबन होने का परिणाम क्या ... इस छोटे से उपन्यास में यही बड़ी विलक्ष... साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग ... मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। मू...

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम ... नाम से सभी शिक्षित जन परिचित हैं। उ... परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह ... हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार है। यह उपन्यास ... स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन ... योग्य है। मूल्य ≡)

स्वर्णलता ।

(रोचक और शिक्षादायक सामाजिक उपन्यास)

यह उपन्यास प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना चाहिए ... इस उपन्यास को गृहस्थाश्रम का सच्चा ... समझना चाहिए। बँगला में इस उपन्यास की इतनी प्रतिष्ठा हुई है कि १९०८ तक इसके १४ संस्करण निकल चुके हैं। इस उपन्यास की शिक्षा बड़े मार्के की है। हिन्दी में यह उपन्यास अनुपम है। ... पृष्ठ की पोथी का मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन ...

चरित्रगठन।

जो नवयुवक विद्यार्थी चरित्रगठन के अभिलाषी तो इसे अवश्य ही पढ़ें, और विशेष कर उन्हीं लिए यह पुस्तक बनाई गई है। वे इस पुस्तक को कर आप तो लाभ उठावेंगे ही, किन्तु अपने भावी तानों को भी विशेष लाभ पहुँचा सकेंगे। इस क के सभी विषय सुपाठ्य हैं। जिस कर्तव्य से य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका न इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। ति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रति-गिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के थ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ वें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य मात्र के लिए केवल ॥ु बारह आना है।

कुमारसम्भवसार।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कवि-कुलगुरु कालिदास के "कुमार-सम्भव" य का यह मनोहर सार छप कर तैयार हो गया। येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदी जी की यह नोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना हिए। कविता बड़ी रसवती और प्रभावशालिनी। मूल्य केवल ।ु चार आने।

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल ज़ुत्शी, एम० ए० नाम को कौन नहीं जानता। आप उर्दू और गरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन। ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ो में खी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर काशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ खी गई है। इस पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगाकर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है:—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ो में)	२॥ु
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में)	।=ु
हिन्द में मगरबी तालीम (उर्दू में)	।=ु

कर्मयोग।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग-सम्बधी व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद करा कर यह "कर्म-योग" नामक पुस्तक छापी गई है। इसमें सात अध्याय हैं। उनमें क्रमशः—१—कर्म का मनुष्य चरित्र पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—धर्म क्या है?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—बेलाग रहना ही सच्चा त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का आदर्श—इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।=ु

संक्षिप्त इतिहासमाला।

लीजिए, हिन्दी में जिस चीज़ की कमी थी उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध हो गया। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई २०, २२ संख्याओं में पूर्ण होगी। इसकी क्रमशः एक एक पुस्तक इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित होती रहेगी। अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।=ु
२—फ्रांस का इतिहास	...	।=ु
३—रूस का इतिहास	...	।=ु
४—इँगलैंड का इतिहास	...	।=ु
५—जापान का इतिहास	...	।ु
६—स्पेन का इतिहास		।=ु

बालसखा-पुस्तकमाला ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' की सब किताबों की भाषा ऐसी सरल—सबके समझने योग्य—रक्खी है कि जिसे थोड़े पढ़े लिखे बालक भी बड़ी आसानी से पढ़ कर समझ लेते हैं। इस 'माला' में अब तक जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है :—

बालभारत—पहला भाग ।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) मूल्य आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग ।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य वही ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड ।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। भारतवासियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति ।

४—आज कल आर्य-सन्तान अपनी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रीति-रस्मों को न जान कर कैसे घोर अन्धकार में फँसती चली रही है सो किसी भी विचारशील से छिपा नहीं। इसी दोष के दूर करने के लिए 'मनुस्मृति' के उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला ।

५—नीतिविद्या बड़े काम की विद्या है। इसके चार नीतिज्ञ बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। शुक्र, चाणक्य और कणिक। इन्हीं के नाम से चार विख्यात हैं। शुक्रनीति, विदुरनीति, और कणिकनीति। ये सब पुस्तक संस्कृत हैं। हिन्दी जाननेवालों के उपकार के लिए इन चारों पुस्तकों का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद छापा। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के लायक़ है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग ।

६—लीजिए, 'श्रीमद्भागवत' की कथा भी सरल हिन्दी-भाषा में बन गई। जो लोग नहीं जानते, केवल हिन्दी-भाषा ही जानते हैं, अब श्रीमद्भागवत की भक्ति-रस-भरी कथाओं का स्वाद चख सकते हैं। इस 'बालभागवत' में गवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षाप्रद भक्ति रस से भरी हुई हैं। हर एक हिन्दी-प्रेमी को इस पुस्तक की एक एक कापी ज़रूर चाहिए। मूल्य ॥) आने

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्
श्रीकृष्णलीला ।

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल

बालगीता ।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात
यों को भुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक
पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उप-
से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह
ऐसा अमृतमय उपदेश भराहुआ है कि जिसके
से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है।
ष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए
पदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने
ा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह
लगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता
सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है।
। ॥)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध,
ता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और
दसमन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल
करण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था
उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर
ास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था
न्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये
इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीति-
क का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी
वाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों
पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

अरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के लिए
या भर के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का
र सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियां
निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया
इसलिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष
ों के पढ़ने लायक़ है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा
का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की
सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई
सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। कहां
तक कहें, इसके पढ़ने से अनेक लाभ होंगे। मूल्य
प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहा-
नियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी
गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों
को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर
सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा कृत
असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। यह
पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों
के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि
बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के
लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न
फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों
और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक,
पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम
की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों
को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि
आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना
जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक
मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए।
स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक
बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

❊ ❊ ❊ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❊ ❊

बालसखा-पुस्तकमाला ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें अब तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' की सब किताबों की भाषा ऐसी सरल—सबके समझने योग्य—रक्खी है कि जिसे थोड़े पढ़े लिखे बालक भी बड़ी आसानी से पढ़ कर समझ लेते हैं। इस 'माला' में अब तक जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है :—

बालभारत—पहला भाग ।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) मूल्य आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग ।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य वही ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड ।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। भारतवासियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति ।

४—आज कल आर्य-सन्तान अपनी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रीति-रस्मों को न आम कर लेने और व्यवहार में ... नहीं है और किसी भी विचारशील से ... इसी दोष के दूर करने के लिए 'मनुस्मृति' उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला ।

५—नीतिविद्या बड़े काम की विद्या है। ... और नीतिग्रन्थ बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। शुक्र, ... चाणक्य और कणिक। इन्हीं के नाम से चार ... विख्यात हैं। शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्य... और कणिकनीति। ये सब पुस्तकें संस्कृ... हिन्दी जाननेवालों के उपकार के लिए इन चारों पुस्तकों का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद ... इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के ... लायक़ है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग ।

६—लीजिए, 'श्रीमद्भागवत' की कथा ... सरल हिन्दी-भाषा में बन गई। जो लोग ... नहीं जानते, केवल हिन्दी-भाषा ही जानते हैं, ... अब श्रीमद्भागवत की भक्ति-रस-भरी कथा... स्वाद चख सकते हैं। इस 'बालभागवत' में ... गवत' की कथाओं का सार लिखा गया ... इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षाप्रद ... भक्ति रस से भरी हुई हैं। हर एक हिन्दी-प्रेमी ... को इस पुस्तक की एक एक कापी ज़रूर ... चाहिए। मूल्य ॥) आने

बालभागवत—दूसरा भाग ।

अर्थात्
श्रीकृष्णलीला ।

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बाल... का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। ... श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की ... लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य ...

पुस्तक मिलने का पता—**मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।**

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * *

बालविष्णुपुराण ।

१७—विष्णुपुराण में कितनी ही ऐसी विचित्र और शिक्षाप्रद कथायें हैं कि जिनके जानने की हिन्दी वालों को बड़ी ज़रूरत है । इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है । जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बालविष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए । इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए । मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए । प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए । बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है । इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुण-दोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं । कहाँ तक कहें, पुस्तक मनुष्य-मात्र के काम की है । इतनी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ॥) आठ आना रक्खा है ।

बालगीतावलि ।

१९—महाभारत में क्या नहीं है । उसमें सभी कुछ मौजूद है । महाभारत को रत्नों का सागर कहना चाहिए, शिक्षा का भण्डार कहना चाहिए । आप जानते हैं "बालगीतावलि" में क्या है ? इसमें महाभारत में से ९ गीताओं का संग्रह किया गया है । उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है । हमें पूरी आशा है कि समस्त हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे । मूल्य ॥) आठ आने ।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं । के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का- ज़रूर मँगाइए । मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार संग्रह यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है । सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको ध- का उद्योग करेंगे । मूल्य केवल ॥) आठ आ

बालपुराण ।

२२—पुराणों में बहुत सी ऐसी कथायें हैं मनुष्यों को बहुत कुछ उपदेश मिल सकता । पुराण इतने अधिक और बड़े हैं कि उन सबका प्रत्येक मनुष्य के लिए असम्भव नहीं तो साध्य अवश्य है । इसलिए सर्वसाधारण के लिए हमने अठारह महापुराणों का सार 'पुराण' तैयार करा कर प्रकाशित किया है । अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई । यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं । पुस्तक की है । इतनी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केव

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से । नहीं है । संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नाम में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी आख्यान लिखे हुए हैं । वे बड़े मनोरञ्जक शिक्षादायक हैं । उसी भोजप्रबन्ध का सार "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया । हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए । मूल्य बहुत ही कम केवल ॥) आठ आने ।

धोखे की टट्टी।

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती
नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य
के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो
ा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके
से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा
कर सकते हैं। ज़रा मँगाकर देखिए तो कैसी
खे की टट्टी" है। मूल्य ।=)

पार्वती और यशोदा।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी
हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा
ा फोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता
स्त्रियों के लिए ऐसे ऐसे उपन्यासों की अत्यन्त
श्यकता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित
तामसाद शुक्ल ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास
कर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार
ा है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य
ना चाहिए। मूल्य ।=)

सुशीला-चरित।

आज कल हमारे देश के स्त्री-समाज में ऐसे ऐसे
प, दुर्व्यसन और दुराचार घुसे हुए हैं जिनके
रण स्त्री-समाज ही नहीं पुरुष-समाज भी नाना
ार के दुःखजालों में फँस कर घोर नरक-यातना
ा रहा है। यदि भारतवासी अपने देश, धर्म और
ति की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से पहले,
प्रकार की उन्नतियों के मूल स्त्री-समाज का
ार करना चाहिए। फिर देखिए, आपकी सभी
मनायें आप से आप ही सिद्ध हो जायँगी। स्त्री-
ाज के सुधार की शिक्षा देने में 'सुशीलाचरित'
क बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री
सुशीला-चरित अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

बाला-बोधिनी।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बाला-बोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

समाज।

मिष्टर आर सी. दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

सुखमार्ग।

इस पुस्तक का जैसा नाम है इसमें गुण भी वैसा ही है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल।)

धोखे की टट्टी ।

'स उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य की बदनीयती और बदचलनी का फ़ोटो गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा कर सकते हैं। ज़रा मँगाकर देखिए तो कैसी खे की टट्टी" है। मूल्य ।=)

पार्वती और यशोदा ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता स्त्रियों के लिए ऐसे ऐसे उपन्यासों की अत्यन्त श्यकता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित तीप्रसाद शुक्ल ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास कर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य ना चाहिए। मूल्य ।=)

सुशीला-चरित ।

आज कल हमारे देश के स्त्री-समाज में ऐसे ऐसे व्य, दुर्व्यसन और दुराचार घुसे हुए हैं जिनके रण स्त्री-समाज ही नहीं पुरुष-समाज भी नाना गेर के दुःखजालों में फँस कर घोर नरक-यातना रहा है। यदि भारतवासी अपने देश, धर्म और ति की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से पहले, प्रकार की उन्नतियों के मूल स्त्री-समाज का धार करना चाहिए। फिर देखिए, आपकी सभी मनायें आप से आप ही सिद्ध हो जायँगी। स्त्री-माज के सुधार की शिक्षा देने में 'सुशीलाचरित' क बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री सुशीला-चरित अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

बाला-बोधिनी ।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बाला-बोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

समाज ।

मिस्टर आर सी दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है इसमें गुण भी वैसा ही है। इस पुस्तक के पढ़ने ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

का

हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया। इसमें ...एवीर शिवाजी की वीरता-पूर्ण ऐतिहासिक ...यें लिखी गई हैं। वीररसपूर्ण उपन्यास है। ... पढ़ने वालों को एक बार इसे अवश्य पढ़ना ...ए। मूल्य ॥=)

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

राजपूत-जीवन-सन्ध्या।

का भी अनुवाद तैयार हो गया। इसमें राज-...की वीरता कूट कूट कर भरी है। पर, साथ ...राजपूतों के वीरता-पूर्ण जीवन की सन्ध्या के ...न को पढ़ कर आपको दो आँसू ज़रूर बहाने ...गे। उपन्यास पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

शेखचिल्ली की कहानियाँ।

इस पुस्तक की अँगरेज़ी में हज़ारों कापियाँ बिक ...हैं, बँगला में भी ख़ूब बिक रही हैं। लीजिए, अब ...हिन्दी में भी यह किताब छप कर तैयार हो गई। ...बड़े मज़े की किताब है। इन कहानियों की प्रशंसा ...इतना ही कह देना बहुत होगा कि इन्हें शेख़-...चिल्ली ने लिखा है। सरस्वती में जो हीरा और लाल ...की कहानी छपी थी उसे इस किताब की कहानियों ...की बानगी समझिए। मूल्य ॥)

भारतीय विदुषी।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। इसके देखने से मालूम होगा कि पहले स्त्रियाँ कैसी कैसी विदुषी होती थीं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अ... हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्त... कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

रॉबिन्सन क्रूसो।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी दि... कर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के ... तो यह पुस्तक इतनी उपयोगी है कि जि... वर्णन नहीं हो सकता। प्रत्येक हिन्दी पढ़े लिखे... यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। क्रूसो के अ... उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, ... परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़... पाठक के हृदय पर ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ता... कि जिसका नाम नहीं। कूपमण्डूक की तरह ... पर ही पड़े पड़े सड़नेवाले आलसियों को इसे अव... पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। पुस... बड़े काम की है। मूल्य १)

क्षय-रोग।

(जनसाधारण की बीमारी तथा उसका इलाज)

(अनुवादक, पण्डित बालकृष्ण शर्मा)

क्षयरोग की भयङ्करता जगत्प्रसिद्ध है। ... बड़ा बुरा संक्रामक रोग है। नहीं मालूम कित... प्राणी प्रतिवर्ष इस रोग-राक्षस के पंजे में फँस क... इस लोक से चल बसते हैं। जर्मनी के बड़े ब... डाक्टरों और विद्वानों ने एक सभा की थी। इस... इस रोग से बचने के उपायों पर कितने ही निब... पढ़े गये थे। एक निबन्ध सर्वोत्तम समझा गया ... उसी को पारितोषिक भी मिला था। उसी पुस्त... का अनुवाद अब तक कोई २२ भाषाओं में हो चुका ... है। यह पुस्तक उसी निबन्ध का अनुवाद है। इस... बताये गये उपायों के द्वारा अब फ़ी सदी ७... रोगियों को आराम होने लगा है। पुस्तक बड़े ... काम की है। सब के पढ़ने लायक है। भाषा बड़ी ... सरल है। मूल्य ।-)

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़ के तीन नये ग्रन्थ।

सफलता और उसकी साधना के उपाय।

इसे नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक और हिन्दी-शब्दसागर के सहकारी सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा ने लिखा है। यह कई अँगरेज़ी ग्रन्थों को पढ़ कर और उनका आशय समझ कर अपने ढंग पर इस देश के लिए उपयेगी बना कर लिखा गया है। भाषा बहुत ही शुद्ध और सरल है। सफलता की इच्छा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के इसे पढ़ना चाहिए। स्कूलें में, लाइब्रेरियें में, रखने और इनाम में देने के लिए बहुत उपयेगी है। मूल्य कपड़े की जिल्द का बारह आना सादी का दश आना।

स्वावलम्बन (सेल्फ हेल्प)।

यह सेमुएल स्माईल्स के प्रसिद्ध अँगरेज़ी ग्रंथ का स्वतंत्र अनुवाद है। मूल ग्रंथ में जितने उदाहरण हैं वे सब विदेशी पुरुषों के हैं। परन्तु इसमें उनके स्थान में सैकड़ों देशी पुरुषों के उदाहरण चुन चुन कर दिये गये हैं। इसके लिए बहुत परिश्रम किया गया है। पचासों पुस्तकें पढ़ना पड़ी हैं। विदेशी उदाहरणों में से वे सब ज्यों के त्यों रहने दिये हैं, जो बहुत ही महत्त्व के हैं। और जिनके कारण इस पुस्तक का महत्त्व है। स्माइल्स-के इस ग्रंथ की प्रशंसा करने की ज़रूरत नहीं है। अँगरेज़ी में इसकी लाखों कापियाँ प्रतिवर्ष खपती हैं। अपने पैरों पर आप खड़े होने की, अपनी ही भरोसे अपनी उन्नति करने की, अपनी शक्ति का विश्वास दिलाने की शिक्षा इसमें कूट कूट कर भरी है। और जो इस देश के लिए बहुत आवश्यक है। मूल्य कपड़े की जिल्द का पौने दो रु० सादी का डेढ़ रुपया।

अन्नपूर्णा का मन्दिर।

यह बंग भाषा की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती निरुपमा देवी के उपन्यास का अनुवाद है। बहुत ही पवित्र पुण्यमय करुणरस-पूर्ण ग्रंथ है। इसे स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, सभी पढ़कर आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। अभी इसके प्रकाशित हुए एक ही वर्ष हुआ है कि इसके अँगरेज़ी और मराठी अनुवाद होचुके हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मैथिलीशरणजी ने इसे बहुत ही पसंद किया है और उन्हीं की प्रेरणा से यह हिन्दी में छपाया गया है। मूल्य पक्की जिल्द का १) सादी का बारह आना।

सिक्खों का परिवर्त्तन।

पंजाब के प्रसिद्ध लेखक डा० गोकुलचन्द एम० ए० पी० एच० डी० बैरिस्टर पटना, के अँगरेज़ी ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद है। इसमें इस बात का ऐतिहासिक-पद्धति से विचार किया गया है कि यह सीधा सादा पारमार्थिक धर्म राजनैतिक दोलाओं का धर्म कैसे बन गया। बहुत ही महत्त्व का ग्रन्थ है। इसके प्रचार के लिए थोड़ी सी प्रतियाँ मँगाई हैं। मूल्य डेढ़ रुपया।

नोट—सीरीज़ के स्थायी ग्राहकों को सब ग्रंथ पौनी कीमत में दिये जाते हैं। स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश फी सिर्फ आठ आना है। सीरीज़ में पहले [illegible] ग्रंथ निकल चुके हैं। सूचीपत्र मँगाइए।

मिलने का पता

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई

नई पुस्तकें !

रामचरितमानस

क्षेपकरहित असली रामायण

दुबारा छप कर तैयार होगया ।

आज तक भारतवर्ष में जितनी रामायण छपीं ार आज कल छप कर बिक रही हैं वे सब नक़ली हैं, योंकि उनमें कितने ही दोहे-चौपाइयां लोगों ने ओर से लिखकर मिला दिये हैं। असली रामायण केवल इंडियन प्रेस की छपी रामचरित-मानस है। क्योंकि इसका पाठ गुसाईं जी के हाथ की खी पोथी से मिला कर शोधा गया है। और भी तनी ही पुरानी लिखित पुस्तकों से पाठ मिला ला कर इसमें से कूड़ा-करकट अलग निकाल दिया या है। यही विशुद्ध रामायण हमने बड़े सुन्दर और त्तम अक्षरों में, बढ़िया काग़ज़ पर, छापी है। ल्द भी बँधी हुई है। मूल्य केवल २) दो रुपये।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला बद्रीमल एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर ध्य कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का र चन्द कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह क हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। न कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया या है। अब तक कवियों के सम्बन्ध में जितनी पुस्- लिखी गई हैं उन से इसमें कई तरह की नवीनता । पुस्तक छोटी होने पर भी बहुत काम की है। ल्य केवल ।) चार आने।

तारा

यह नया उपन्यास है। बंगला में "[illegible]" मक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुसार इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षा- र और सामाजिक है। यह इंडियन प्रेस में छपा है। २५० पेज की पोथी का मूल्य केवल [illegible])

सूचना

मेरे ग्रन्थ 'गीताय ईश्वरवाद' को हिन्दी में अनुवाद करने का एकमात्र हक़ किसरौल, मुरादाबाद के ज्वालादत्त शर्मा को है। किसी और महाशय को दी हुई अनुवाद की आज्ञा को मैं इस सूचना द्वारा मंसूख़ करता हूँ। यदि कोई और मनुष्य उक्त ग्रन्थ का अनुवाद करेगा तो वह हर्जे का देनदार होगा।

१३९ कार्नवालिस स्ट्रीट
कलकत्ता
५ अगस्त १५ ई०

हीरेन्द्रनाथ दत्त।

नई पुस्तकें !!

सचित्र

शरीर और शरीर-रक्षा

पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए० की लिखी हुई किताबें कैसी अच्छी और लाभप्रद होती हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। जिन्होंने उनकी लिखी हुई किताबें पढ़ी हैं, वे खुद जानते होंगे। यह पुस्तक भी उन्हीं पण्डित जी की कलम की करामात है। इस में शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। [illegible] २१ चित्र भी इस में दिये गये हैं। यह पुस्तक [illegible] है। मूल्य केवल ॥) आने है।

तरलतरंग

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से [illegible] निकल रही है [illegible]

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़ के तीन नये ग्रन्थ

सफलता और उसकी साधना के उपाय।

इसे नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक और हिन्दी-शब्दसागर के सहकारी सम्पादक बाबू राम
वर्म्मा ने लिखा है। यह कई अँगरेज़ी ग्रन्थों को पढ़ कर और उनका आशय समझ कर अपने ढंग प
देश के लिए उपयोगी बना कर लिखा गया है। भाषा बहुत ही शुद्ध और सरल है। सफलता की
रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसे पढ़ना चाहिए। स्कूलों में, लाइब्रेरियों में, रखने और इनाम में देने
बहुत उपयोगी है। मूल्य कपड़े की जिल्द का बारह आना सादी का दस आना।

स्वावलम्बन (सेल्फ हेल्प)।

यह सेमुएल स्माईलस के प्रसिद्ध अँगरेज़ी ग्रंथ का स्वतंत्र अनुवाद है। मूल ग्रंथ में जितने उदाह
वे सब विदेशी पुरुषों के हैं। परन्तु इसमें उनके स्थान में सैकड़ों देशी पुरुषों के उदाहरण चुन
दिये गये हैं। इसके लिए बहुत परिश्रम किया गया है। पचासों पुस्तकें पढ़ना पड़ी हैं। विदेशी उ
में से वे सब ज्यों के त्यों रहने दिये हैं, जो बहुत ही महत्त्व के हैं। और जिनके कारण इस पुस
महत्त्व है। स्माइल्स के इस ग्रंथ की प्रशंसा करने की ज़रूरत नहीं है। अँगरेज़ी में इसकी लाखों
प्रतिवर्ष खपती हैं। अपने पैरों पर आप खड़े होने की, अपने ही भरोसे अपनी उन्नति करने की
शक्ति का विश्वास दिलाने की शिक्षा इसमें कूट कूट कर भरी है। और जो इस देश के लिए बहुत आ
है। मूल्य कपड़े की जिल्द का पौने दो रु० सादी का डेढ़ रुपया।

अन्नपूर्णा का मन्दिर।

यह बंग भाषा की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती निरुपमा देवी के उपन्यास का अनुवाद है। ब
पवित्र पुण्यमय करुणरस-पूर्ण ग्रंथ है। इसे स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, सभी पढ़कर आनन्द प्राप्त कर स
अभी इसको प्रकाशित हुए एक ही वर्ष हुआ है कि इसके अँगरेज़ी और मराठी अनुवाद होचुके हैं।
के सुप्रसिद्ध कवि मैथिलीशरणजी ने इसे बहुत ही पसंद किया है और उन्हीं की प्रेरणा से यह
छपाया गया है। मूल्य पक्की जिल्द का १) सादी का बारह आना।

सिक्खों का परिवर्त्तन।

पंजाब के प्रसिद्ध लेखक डा० गोकुलचन्द एम० ए० पी० एच० डी० बैरिस्टर पटना, के
ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद है। इसमें इस बात का ऐतिहासिक-पद्धति से विचार किया गया है कि एक
सादा पारमार्थिक धर्म राजनैतिक योद्धाओं का धर्म कैसे बन गया। बहुत ही महत्त्व का ग्रन्थ है
प्रचार के लिए थोड़ी सी प्रतियाँ मँगाई हैं। मूल्य डेढ़ रुपया।

नोट—सीरीज़ के स्थायी ग्राहकों को सब ग्रंथ पौनी क़ीमत में दिये जाते हैं। स्थायी
प्रवेश फ़ी सिर्फ़ आठ आना है। सीरीज़ में पहले ११ ग्रंथ निकल चुके हैं।

मैनेजर, हि[illegible]

SARASVATI—Reg. No. A248.

ग १६, खण्ड २] अक्टोबर, १९१५ [संख्या ४, पूर्ण संख्या १९०



[illegible]] [illegible] [[illegible]

इंडियन प्रेस, प्रयाग, [illegible]

SARASVATI—Reg. No. A248.

ग १६, खण्ड २] आक्टोबर, १९१५ [संख्या ४, पूर्ण संख्या १९०




छोटे बच्चों के लिए
डोंगरे का
बालामृत.
शीशी का दाम १२ आना
डा० म० ४ आना

नई पुस्तक !

वन-कुसुम

[इ]स छोटी सी पुस्तक में छः कहा-[नियाँ छ]ापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक [ह]ैं कोई कहानी तो ऐसी है कि पढ़ते हँसी आये बिना नहीं रहती। मूल्य चार आने है।

सदुपदेश-संग्रह

[श्री] देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने [उर्दू भाष]ा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। [जो पश्चिमोत्तर प्रदेश, अवध, पञ्जाब] और बराड़ के विद्या-विभाग में [जारी है]। यह कई बार छापा गया। उसी नसीहत-[नामा का] यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-[मुनि और] महात्माओं ने अपने रचित ग्रन्थों में जो [उपदेश] लिखे हैं उन्हीं में से छांट छांट कर इस छोटी [पुस्तक] की रचना की गई है। शेख़सादी का [कथन है] कि 'अगर भीत पर भी कोई उपदेशात्मक [वाक्य लि]खा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसे अपने [हृदय पर अंकित क]र ले'। यह बिल्कुल ठीक है। बिना उपदेश के [मनुष्य क]ा आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता। [इस] पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उप-[देश हैं।] उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। [इसे पढ़कर स]भी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर [बन सकते] हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

[र]ाम काका की कुटिया

[यह पुस्तक शीघ्र ही हमा]रे यहाँ से हिन्दी-भाषा में बहुत शीघ्र प्रका-[शित होग]ी। यह बहुत रोचक उपन्यास है। अँगरेज़ी [में यह प]ुस्तक बहुत ही विख्यात है। भारतीय [भाषाओं] में भी इसके अनुवादों के कई संस्करण [हुए] हैं।

नई पुस्तक !!

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द-मूल्य केवल २॥)

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामाय[ण] संस्कृत में है। उसके हिन्दी-भाषानुवाद भी अने[क] हुए हैं। पर यह अनुवाद अपने ढँग का बिल्कु[ल] नया है। इसमें अक्षरशः अनुवाद है। भाषा सर[ल] और सरस है। हिन्दू मात्र रामायण को धर्मपुस्त[क] मानते हैं। असल में यह पुस्तक ऐसी ही है। इसके पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—पाँच काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में रहेंगे। उत्तरार्द्ध छप रहा है; वह जल्दी छप कर प्रकाशित होगा। जल्दी मँगाइए।

गीताञ्जलि

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में कितना आदर है; यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बँगला भाषा जानते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य १) एक रुपया।

मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

[illegible]६, खण्ड २] आक्टोबर १९१५—आश्विन १९७२ [संख्या ४, पूर्ण संख्या १९०

मेरा भारत

मेरे भारत ! मेरे देश !
बलिहारी तेरा वर वेश !
बाहर मुकुट विभूषित भाल
भीतर जटाजूट का जाल
ऊपर नभ नीचे पाताल
और बीच में तू प्रणपाल !
बन्धन में भी मुनिनिवेश
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ १ ॥

कभी सुरज सम धाराधार
कभी स्वरों से साम निनाद
कभी गगन-चुम्बी प्रासाद
कभी कुटी में ही आह्लाद
नहीं कहीं भी भय का लेश
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ २ ॥

है तेरी कृति में विश्रान्ति
भरी प्रकृति में परिणत शान्ति
भटक नहीं सकती है भ्रान्ति
आँखों में है अद्भुत कान्ति
[illegible] में है [illegible]
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ३ ॥

[illegible] का सुख है वास
[illegible] का भी विपुल विकास
जिस प्रकृति का पूर्ण विकास
फिर भी है तू [illegible]
हे [illegible] ! हे [illegible] !
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ४ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
मेरे [illegible]
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ५ ॥
हुआ विविध-वर्णाश्रम-विभाग
उधर गुणों का भी परिहार
फिर देखिए, दुर्दशा
फिर कहें हम कैसा द्वार ?
हृदय कहीं से करे प्रवेश
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ६ ॥
मन से सब भोगों का भोग
मन से बड़ा अलौकिक योग
पहले गद्गद का संयोग
स्वयं त्याग का फिर उद्योग
अद्भुत है तेरा उद्देश
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ७ ॥
बन कर तू चिरसाधन-धाम
हुआ आप ही आत्माराम
लिया नहीं तब तक विश्राम
जब तक पूरा किया न काम
दिये तुझी ने सब उपदेश
मेरे भारत ! मेरे देश ! ॥ ८ ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

पौराणिक राज-वंशों का समय-निरूपण।

[लेखक—श्रीयुत हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए०]

(४)

कान्यकुब्ज-वंश।

या दव-वंश-वर्णन में यह कहा गया है कि पुरूरवा का एक पुत्र अमावसु नाम का, पूर्व की ओर कान्यकुब्ज देश में जाकर, बसा। यही अमावसु इस वंश का मूल पुरुष था। इसी वंश में विश्वामित्र का जन्म होने के

बाद विश्वामित्र के चार पीढ़ी के नाम
गाधि-वंश या कुशिक वंश के नाम से
प्रसिद्ध है। राजा [illegible]
तथा सूर्यवंशी [illegible] था,
उसके पश्चात् पुराणों में भीम,
सुहोत्र और जह्नु—ये चार नाम
बातों के विवेचन से यह स्पष्ट हो
नाम केवल प्रसिद्ध राजाओं के हैं,

भीम, काञ्चनप्रभ और सुहोत्र के
जह्नु सिंहासन पर बैठा। यह बड़ा
उसने अनेक यज्ञ किये। उसका विवाह
[illegible] की कन्या कावेरी के साथ
यह स्पष्ट जान पड़ता है कि यह राजा
समकालीन था। राजा [illegible] और
बीच सूर्य वंश में बीस राजे होगये
इतने समय में कौशिक-वंश में तीन ही
होना सम्भाव्य नहीं। इससे सिद्ध है
के ये तीन नाम क्रम-प्राप्त नहीं, किन्तु
प्रसिद्ध राजाओं के नाम हैं।

यज्ञ करने की अपेक्षा एक और
राजा जह्नु का नाम प्रसिद्ध है। एक
के किनारे यज्ञ कर रहा था कि गङ्गाजी
गई और सारी यज्ञ-भूमि जलमग्न होगई
राजा जह्नु को बड़ा क्रोध आया। वह
"अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलम्
पतत्ते विफलं सर्वं पीतमम्भः करो

यह बात उसने कर दिखाई। पुरा
रखने वाले लोग इसका अर्थ सामान्य
झते हैं कि राजा जह्नु ने गङ्गा को पी
यह अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। यदि
करोम्यहम्" की जगह "जलमद्य [illegible]
तो दूसरी बात थी। पर यह बात नह
एव यहाँ पर दूसरी ही कल्पना की
है। गङ्गा की बाढ़ से हुई हानि देख कर
अवश्य ही क्रुद्ध हुआ होगा और उससे
का कुछ उपाय उसने सोचा होगा। सम

रने की कल्पना मन में करके उसने कहा —"हे गङ्गे ! इस गर्व का फल तुझे शीघ्र ही गा। देख मैं तेरा सब निर्मल जल, यहाँ के, पीन (पिया हुआ) कर देता हूँ"। बाद से का यही उपाय है। एक बार गङ्गा पी डालने ट से बचना असम्भव ही है। पर यहाँ निरा से यह काम सहज में ही हो सकता है। इस यही अनुमान होता है कि राजा जह्नु ने गङ्गाजी हरें निकाली होंगी और इस तरह गङ्गा को ई (पी हुई) देख कर उसे ऋषि लोगों ने जाह्नवी दिया होगा।

राजा जह्नु को कावेरी से सुमन्तु नाम का पुत्र । सुमन्तु का अजक, अजक का बलकाश्व और श्व का पुत्र राजा कुश था। कुश बड़ा परा- राजा हुआ। उसने अपना राज्य कन्नौज से गङ्गा के दक्षिण मगध तक बढ़ाया। उसके पुत्र थे—कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरय और । इन चारों में से तीन पुत्रों ने तीन नये नगर ये। कुशाम्ब ने कौशाम्बी, अमूर्तरय ने धर्मपुर वसु ने गिरिव्रज। कुशनाभ महोदय देश का ही हुआ। महोदय कान्यकुब्ज का प्राचीन नाम था। कुब्ज नाम पड़ने का कारण रामायण में यह ा है कि कुशनाभ के सौ कन्यायें थीं। एक बार के कारण ये सबकी सब कुब्जायें हो गईं। उनके हो जाने के क[illegible] से [illegible] महोदय का नाम यकुब्ज पड़

नेक
बड़े
-गुरु
स्रो
मय में

उनके पुत्र हुए। किन्तु पुराणों में लिखा है कि गर्भाधानार्थ जो चरु ऋचीक ने इन दोनों के लिए तैयार किये थे उनका अदला बदल हो जाने से गाधि की स्त्री को ब्रह्मतेजोयुक्त और ऋचीक की पत्नी को क्षात्रतेजोयुक्त पुत्र हुआ। गाधि के पुत्र का नाम विश्वामित्र और ऋचीक के पुत्र का नाम जमदग्नि हुआ। इसी विश्वामित्र ने एक समय वसिष्ठ-कुलोत्पन्न ऋषि की गाय चुराने का यत्न किया। पर उसमें सफल न होकर उसने ब्राह्मण होने की चेष्टा की और अन्त में वह ब्राह्मण हो भी गया। पुराणों में कई राजाओं के ब्राह्मण होने का वर्णन है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि उस समय जाति-निर्बन्ध इतने कड़े न थे और जाति जन्म पर नहीं, किन्तु कर्म पर ही निश्चित होती थी। इस प्रकार कान्यकुब्ज-राजाओं का वंश, अन्त में, ब्राह्मण-कुल में परिवर्तित हो गया। इन विश्वामित्र-कुलोत्पन्न ब्राह्मणों ने भी अनेक क्षत्रियों को शास्त्रविद्या सिखाई। पर, फिर इन्होंने राज्य न किया। इनके वंशज मगध-देश में कौशिकी नदी के किनारे आश्रम बना कर रहते थे।

(५)

हैहय-वंश।

पाठकों को याद होगा कि यादवों का वंश यदु-पुत्र क्रोष्टु से चला और यदु का दूसरा पुत्र सहस्र-जित् मालवे में जाकर बसा। सहस्रजित् का पुत्र शतजित् और शतजित् का पुत्र हैहय था। हैहय बड़ा पराक्रमी राजा हुआ। यह कुल उसीके नाम से विख्यात हुआ। हैहय के पश्चात् धर्म, धर्म-

क्षित तथा महिष्मान् नामक राजे हुए।
राजा ने माहिष्मती नगरी को, नर्मदा
पहाड़ी पर बसाया। महिष्मान् का
हुआ। भद्रश्रेण्य भी बड़ा साहसी
था। उसने उत्तर की ओर बढ़
का देश जीता और स्वयं काशी
। पर थोड़े ही

दिनों में दिवोदास ने फिर से अपना राज्य छीन लिया। इस युद्ध में भद्रश्रेण्य मारा गया॥

भद्रश्रेण्य की मृत्यु के पश्चात् राजा दुर्दम सिंहासन पर बैठा। दुर्दम का पुत्र कनक, कनक का कृतवीर्य और कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन हुआ। यही पिछला राजा कार्तवीर्यार्जुन नाम से विख्यात हुआ। कार्तवीर्यार्जुन ने अत्रिपुत्र दत्त की कृपा से ख़ूब बल-सम्पादन किया और आस पास के देश जीत कर चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया। अपने पराक्रम से यही कार्तवीर्यार्जुन पीछे से सहस्रबाहु कहाया। इसने अनेक यज्ञ किये, जिनमें यज्ञवेदी तथा यज्ञभूमि भी सोने की बनी थीं। इसने नाग लोगों का जीता और लङ्काधिपति रावण को बाँधकर माहिष्मती में क़ैद किया। पीछे से पुलस्त्य ऋषि की प्रार्थना पर इसने उसे छोड़ दिया। इस समय राक्षस लोग उत्तर की ओर बहुत बढ़ आये थे। काशी के राजा दिवोदास को इन राक्षसों ने मार कर कई साल तक काशी उजाड़ कर दी थी। अर्जुन के राज्य के अन्त में एक बार बड़ी भारी आग लगी। उसने बहुत प्रान्त और वन जला दिये। उसीसे वसिष्ठ का आश्रम भी जल गया। इस कारण ब्राह्मण लोग अर्जुन के राज्य से असन्तुष्ट हो गये। क्योंकि ऐसे बलवान राजा का आग से देश को बचाना कर्तव्य था। पर, अर्जुन ने इस कर्तव्य का पालन जान बूझ कर न किया था। उसने तो उलटा अग्नि का प्रकोप बढ़ा दिया था। इसी बीच में अर्जुन के कुछ लोगों ने भार्गव जमदग्नि की गाय चुराई। इससे भार्गव ब्राह्मण परशुराम, जो जमदग्नि का पुत्र था, बहुत सन्तप्त हुआ। उसने कार्तवीर्यार्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकार कर उसमें उसे मार डाला।

पुराणों में भार्गव परशुराम के द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय की जाने का वर्णन है। पर सब बातों का विचार करने पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। एक तो क्षत्रियों से परशुराम का इतना द्वेष होने का कोई कारण नहीं देख पड़ता।

दूसरे जिस अर्जुन का वध परशुराम
उसी के पुत्र जयध्वज का पराक्रमी राजा है
जयध्वज के पुत्र तालजंघ आदि का भी प्र
इस बात का परिपोषक नहीं। अनुमान
है कि अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् ताल
लोगों और भार्गव ब्राह्मणों में परस्पर मे
होगा और दोनों ने बहुत से क्षत्रिय-कुलों
किया होगा। पुराणकारों ने इसका
परशुराम को ही दे दिया जान पड़ता
हैहय-तालजंघों ने शक-यवन आदि लोगों
स्तान पर चढ़ाई करने के लिए बुलाया।
हुआ कि उत्तर से शकादि ने, दक्षिण से है
भार्गव ब्राह्मणों ने और आग्नेय दिशा से
आर्यावर्त पर चढ़ाई की। जीतते जीतते ये
अयोध्या पहुँचे। वहाँ इन्होंने बाहु नामक
राजा को भी मार डाला। इस अशान्ति-पूर्ण
ही पृथ्वी का इक्कीस बार निःक्षत्रिय होना
ने समझा होगा। अन्त में भार्गव ब्राह्म
हिन्दुस्तान छोड़ कर दक्षिण (कोंकण) में

कार्तवीर्यार्जुन के पश्चात् उसका पुत्र
सिंहासन पर बैठा। उस समय विदेह नामक
ने जयध्वज के नौकरों को बहुत तङ्ग कि
कारण जयध्वज ने विदेह राक्षस को मार
कूर्म-पुराण में लिखा है कि राजा लोगों
पूजन की प्रथा इसी जयध्वज ने आरम्भ की
ध्वज के पुत्र तालजंघ नाम से विख्यात थे।
अनेक राजाओं को पादाक्रान्त किया। इन
के पाँच गण थे—भोज, आनर्त, तुण्डिकेर,
और वीतिहोत्र। इनमें से वीतिहोत्र राजा
दूसरे लोग यादवगणों में गिने जाने लगे।
के पश्चात् उसका पुत्र अनन्त हुआ और
पश्चात् दुर्जय। दुर्जय ही कुल का
राजा हुआ। एक स्त्री के कारण यह राज्य
छोड़ कर चला गया। इसके कोई पुत्र न
कारण इसका राज्य दूसरे लोगों ने बाँट
इसी समय ज्यामघ नामक यादव राजा

हो उठा। इस कारण हैहय कुल का राज्य
गया। तब ये लोग अपने भाइयों के साथ
ज्य में ही सम्मिलित हो गये।

भावी भारत-व्यापी भाषा।

बादल की एक घटा आने पर दूसरी घटा आती है; आकाश से एक बादल के अलग हो जाने पर दूसरा भी अलग होने लगता है। सिर पर जब एक बला आजाती है तब दूसरी, तीसरी के भी आने में कुछ देर नहीं लगती; एक बला के टलने पर दूसरी
प टलने लगती है। एक रुपया हाथ में आया कि
नों खनखनाते पहुँचा; एक गया कि दूसरा भी
जब एक प्रकार की उन्नति होती है तब दूसरे प्रकार
होती है।

त की उन्नति का अब लग्गा लग गया है। लोग
रह प्रकार की उन्नति की चर्चा—चर्चा ही
ति के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के उद्योग
ऐसे समय में यदि भारतवासी एक देश-
ही चर्चा और उद्योग करें तो र

श्वर वह दिन शीघ्र ही
पूर्ण भारत में न सही,
ी भाषा की धूम
है जो टक्कर
?
, इस दिन
त हितैषी
चिन्ता से
में
साथ ही
रा
वाली

होने पर भी किसी एक भाषा को उस पद पर आरूढ़ करने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किया जारहा है। परन्तु, यह चिन्ता व्यर्थ है। किसी एक भाषा के देश व्यापी होने से दूसरी भाषा के साहित्य को धक्का नहीं पहुँचता। यूरप में फ्रेंच भाषा के महाद्वीप-व्यापी भाषा होने से किस भाषा को चोट पहुँची है? देश-व्यापी भाषा के ग्रन्थ बड़ी सरलता से अपनी अपनी मातृभाषा में अनुवादित किये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि एक देश-व्यापी भाषा के होने से देश की अन्य भाषाओं के साहित्य को हानि नहीं, किन्तु कुछ न कुछ लाभ ही, पहुँचता है। कुछ लोग समझते हैं कि देश-व्यापी भाषा का प्रचार होने पर उन्हें अपनी भाषा के साहित्य से सदा के लिए हाथ धोना पड़ेगा। यह उनकी भूल है। देश-व्यापी भाषा कोई प्रधान स्थान नहीं चाहती। प्रधान स्थान तो मातृ-भाषा ही का है।

देश-व्यापी भाषा के लिए भारत-हितैषियों के विशेष प्रयत्न न करने पर भी हर एक भारतीय भाषा, भारत-व्यापी बनने के लिए, संग्राम में प्रवृत्त है। जिस प्रकार हर एक पेड़ अन्य पेड़ों से बढ़ जाने के लिए, जी जान तोड़ कर बढ़ता है,
प्रकार हर एक जाति औरों से आगे हो जाने के लिए
न्त करती है, जिस प्रकार हर एक प्राणिवर्ग अन्य
न जाने के लिए लड़ता है, उसी
भाषा देश-व्यापी बनने के लिए
बाज़ी ले जाय वही देश-व्यापी

को चाहे सब भाषायें जी जान लड़ा कर
सेवक अपनी अपनी भाषा की सेवा में
ा वही भाषा
आ ी आदि के
होगी। और अयोग्य
लिए जो , आगे दौड़ धूप
। यह ती। यदि योग्य और
भाषा या थोड़ा भी बढ़ेगा
। तो । पहुँच जायगी।
र्ग पस्पर्धा देख पड़ती है, और
ी प्रश्न उठता है कि किस
े पर अन्त पहुँच जाय।

उसी को न, जो योग्य और अच्छी हो? पर, हाँ, फिर भी तो यह जानना है कि कौन योग्य और अच्छी है।

देश-व्यापी भाषा होने योग्य वही भाषा कही जा सकती है—

(१) जिसका प्रचार अधिक हो;

(२) जिसमें सब तरह के विचार सरलता से प्रकाशित किये जा सकें;

(३) जो नये सीखने वालों के लिए सरल अतएव कम श्रमसाध्य हो;

(४) जिसका साहित्य पुष्ट हो।

जो भाषा इन गुणों से वञ्चित होगी वह कदापि देश-व्यापी न हो सकेगी।

प्रथम, प्रचार के विचार से देखा जाय तो इस समय सबसे अधिक प्रचार हिन्दी ही का है। हिन्दी ने अपनी यात्रा का अधिकांश तै कर लिया है। १० करोड़ भारतवासी उसे बोलने लगे हैं। बाक़ी रहे लोगों में भी बहुत से उसे कुछ ही समय में बोलने लगेंगे। यहाँ पर हम उन लोगों की समझ के लिए क्या कहें जो हिन्दी को कोई भाषा ही नहीं समझते और फ़ारसी-अरबी से खचाखच भरी हुई उर्दू को घर घर की बोली बतलाते हैं।

दूसरे गुण के विचार से हिन्दी भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं से बढ़ कर नहीं, तो कम भी नहीं। उच्च से उच्च कोटि के दार्शनिक विचार सरलता से हिन्दी में प्रकट किये जा सकते हैं। नये से नये वैज्ञानिक आविष्कार-सम्बन्धी शब्द गढ़े जा सकते हैं। और, आज कल, भारत की कौन सी भाषा ऐसी है जो इस गुण के विचार से हिन्दी से बढ़ जा सकती हो? बङ्गाली, मराठी आदि एक दो भाषाओं को छोड़ कर और भाषायें तो उसकी बराबरी करने का दम भी नहीं भर सकतीं? बढ़ने की कौन कहे।

तीसरे गुण के विचार से तो हिन्दी निर्विवाद ही भारत की अन्य सभी भाषाओं से चढ़ी बढ़ी है। भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ चार अँगरेज़ों को भारत की चार भिन्न भिन्न भाषायें सिखलाइए, तो सबसे पहले हिन्दी सीखने वाला ही सफल होगा। बम्बई में पैर रखते ही अँगरेज़ सबसे पहले हिन्दी ही सीखता है। गुजराती और बँगला सीखने वाला तो कई सप्ताहों तक दो-चार वाक्यों के सिवा इन भाषाओं में कुछ बोल ही न सकेगा। लगभग यही हाल [illegible] सीखने वाले बङ्गाली का भी होगा। पर, हिन्दी मं[illegible] गुजराती सेठों और बङ्गाली बाबुओं का हाल देखि[illegible] हाथरस आये चार दिन हुए नहीं कि बाबू साहब[illegible] हिन्दी बोलने वाले दुकानदारों से सौदा ख़रीद र[illegible] हिन्दी बोल रहे हैं। सेठ जी ने रेल से उतर कर [illegible] रहने के लिए मकान ठीक ही नहीं किया, पर, [illegible] हज़ारों का लेनदेन हिन्दी ही में बातचीत करके तै कर[illegible] इस समय भारत में ऐसी और कौन सी भाषा है [illegible] नौसिखियों को इतनी जल्दी आ जाय? इसका कार[illegible] है कि भारतीय अन्य भाषाओं के साथ हिन्दी [illegible] समानता रखती है। गुजराती और बङ्गाली में जितनी [illegible]नता है उससे कहीं अधिक हिन्दी और गुजराती में [illegible] हिन्दी और बँगला में है।

हिन्दी की अपेक्षा बँगला में उपन्यास और [illegible] अधिक होने दो; मराठी में राजनैतिक चर्चा अधि[illegible] दो; उर्दू में रोज़ाना अख़बार ज़ियादह निकलते [illegible] भी प्राचीन साहित्य के लिहाज़ से हिन्दी ही का सि[illegible] से ऊँचा है। हिन्दी-पद्यसाहित्य के सम्मुख और स[illegible]तीय भाषाओं के पद्यसाहित्य सिर झुकाये हुए हैं [illegible] पढ़े लिखे लोगों की उदासीनता के कारण हिन्दी [illegible] विशेष उन्नति नहीं कर रहा है। नहीं तो इन लोगों [illegible] ही प्रयत्न से, थोड़े ही समय में, वह उन्नति हो [illegible] जो अन्य भाषाओं को बहुत समय तक नसीब नहीं [illegible] इतनी उदासीनता के रहते भी हिन्दी का साहित्य [illegible] हुआ भी नहीं है। आज कल धड़ाके के साथ उसक[illegible] हो रही है।

इन्हीं गुणों से विभूषित होने के कारण हिन्दी [illegible] वही लोग देश-व्यापी नहीं मानते जो हिन्दी [illegible] किन्तु अधिकांश महाराष्ट्र, गुजराती और बङ्गाली [illegible] उसे वैसा ही मानते हैं। अतएव हिन्दी को देश-व्[illegible] बनाने के लिए हमें जी जान से प्रयत्न करना चाहिए [illegible] जागो और जब तक अपना काम पूरा न करलो, [illegible] नाम न लो। "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोध[illegible]" यह हिन्दी के लिए कम गौरव की बात है कि [illegible] की साहित्य-परिषदों में भी हिन्दी को [illegible]

, के लिए मन्तव्य "पास" हो रहे हैं हैं ? अतएव क्या ऽी-भाषा-भाषियों के लिए कम लज्जा की बात है जो ऽन्य में वे स्वयं विशेष उत्साह न दिखावें ? हिन्दी ही अपना प्रचार बढ़ा रही है।

ज भाषा होकर भी अँगरेज़ी जितने लोगों में अपना नहीं कर पाती उतना हिन्दी एक विचित्र ढँग से कर । जितने लड़कों को हमारे स्कूल और कालेज अँगरेज़ी सिखा पाते, उन से कहीं अधिक आदमियों को हमारे हिन्दी सिखा देते हैं। एक ओर अँगरेज़ी शिक्षा के विशाल विश्वविद्यालय और विद्यालय हैं, दूसरी ओर के प्रचार के लिए काशी और प्रयाग जैसे तीर्थ तथा जैसे मेले हैं। अन्तर इतना ही है कि स्कूल और कालेज पढ़ाते हैं; तीर्थ-स्थान, बाज़ार और मेले बोल-चाल सिखाते हैं। हज़ारों आदमी हर साल तीर्थों की कर के और मेलों में धक्के मुक्के खा कर हिन्दी बोलना हैं। एक ओर कलकत्ते का एक बूढ़ा बङ्गाली के बाज़ार में सौदा ख़रीदते समय हिन्दी बोलना ता है, दूसरी ओर कलकत्ते में एक हिन्दी-भाषाभाषी नौकर अपने मालिक को और कुछ न सही तो हिन्दी देना ही सिखाता है। एक ओर, एक महाराष्ट्र दिल्ली की सैर करते हुए इक्के वाले से हिन्दी सीख हैं, तो दूसरी ओर दक्षिण में एक हिन्दी-भाषा-भाषी यात्री ई को धीरे धीरे हिन्दी सिखा रहा है। एक ओर, काशी हिन्दू कालेज में पढ़ने वाले अन्य-भाषा-भाषी लड़के सीख जाते हैं, दूसरी ओर अन्य प्रान्तों के कालेजों पढ़ने वाले हिन्दी-भाषा-भाषी लड़के वहाँ वालों को सिखाते हैं। सुदूर प्रान्तों में फेरी करने वाले हिन्दी-भाषी ख़ोमचे वाले को थोड़ा न समझिए। वह भी दो चार हर ही हिन्दी सिखाता है। इस तरह का प्रचार स्वाभाविक किसी की ताब नहीं कि इस प्रचार की बाढ़ को रोक यह वह प्रचार है जो एक बार शुरू हो कर बन्द हो सकता। हिन्दी के प्रचार का विशेष कारण यह है हिन्दी बोलने वाले भारतवर्ष भर में फैले हुए हैं और जा रहे हैं। इन लोगों में अधिकांश व्यापारी हैं। सच आज तो हिन्दी-बोल-चाल के प्रधान प्रचारक मारवाड़ी अन्य व्यापारी ही हैं। इनके फैलने के साथ ही साथ अन्य-भाषा-भाषी नगरों में हिन्दी-बोल-चाल का प्रचार होता है और वहाँ के बाज़ारही हिन्दी-बोल-चाल सिखाने के स्कूल बन जाते हैं।

इस प्रकार हम तुच्छ ख़ोमचे वाले से लेकर लखपती सेठ तक को हिन्दी-प्रचार करते देख रहे हैं। यह बड़े हर्ष की बात है। परन्तु, यह प्रचार केवल बोल-चाल की भाषा का है। हमें इतने ही से सन्तुष्ट न होना चाहिए। हिन्दी पढ़ने-लिखने और हिन्दी-साहित्य का भी प्रचार करना चाहिए। जब तक यह बात न होगी तब तक हिन्दी सारे देश की भाषा न हो सकेगी। अतएव हिन्दी-प्रेमियो, हिन्दी-प्रचार के लिए तत्पर हो जाइए। हिन्दी-साहित्य की वृद्धि कीजिए। अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख कर हिन्दी के भाण्डार को भर दीजिए। फिर आपका अभीष्ट अवश्य ही सफल होगा।

गिरिजानन्दन।

आकाश-गङ्गा।

स्वच्छ आकाश की ओर रात के समय देखने से एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफ़ेद बादल के समान अनुमान चार हाथ चौड़ा एक प्रकाश-मय पथ दिखाई देता है। इस पथ को आकाश गङ्गा कहते हैं। कोई कोई उसे दूध-गङ्गा के नाम से भी पुकारते हैं। अँगरेज़ी भाषा में उसे मिल्की वे (Milky Way) कहते हैं। यह प्रकाश-मय पथ अथवा आकाश-गङ्गा असंख्य तारों से बनी हुई एक तेजस्क मालिका है।

बड़े से बड़े दूर-दर्शक यन्त्र से इस आकाश-गङ्गा का जितना भाग एक बार में दिखाई देता है उसका एक चित्र एक विद्वान ने तैयार किया है। उस मूल चित्र की हज़ारों नक़लें की गई हैं। पर, उनमें असली चित्र की ख़ूबियाँ नहीं आ सकीं। असली चित्र को सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा देख कर अनेक बड़े बड़े खगोलज्ञ भी आश्चर्य से चकित हो गये हैं। आकाश-गङ्गा का यह चित्र उन्नीसवीं

है। यह इस शताब्दी का एक अद्भुत कार है। सम्पूर्ण नभोमण्डल के चित्र २५ भिन्न भिन्न प्रदेशों पर उतारे गये हैं। उनके आकाश के जो अद्भुत चमत्कार दिखाई उनका यथार्थ वर्णन मनुष्य की वाणी और से परे है। खगोल-शास्त्र के जानने वालों न तथा बुद्धि इन दृश्यों को देख कर आश्चर्य सागर में गोते खाने लगती है।

आकाश-गङ्गा हम से कितनी दूर है, इसका न भी हम में से बहुतों ने न किया होगा। दूरी की कुछ कल्पना हमें हो जाय, इसलिए सका कुछ हाल सुनाते हैं। मान लीजिए कि मिनट में एक मील चलने वाली रेलगाड़ी पर सवार हुए और ड्राइवर ने उसके इञ्जिन को श-गङ्गा की ओर बढ़ाया। एक घण्टे में साठ दौड़ने वाली हमारी गाड़ी दिन रात चलती ही। हम पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य को भी करके आगे निकल गये। इस प्रकार एक वर्ष तक रात दिन हमारी गाड़ी भागती रही। कहीं हमारे प्रवास का आधा भाग पूरा हो। घबराइए न! विचार कीजिए कि एक घण्टे ० मील चलने वाली गाड़ी ने एक अब्ज वर्षों तनी यात्रा की! हिसाब लगा कर वर्षों की जानने पर कदाचित् आपकी कल्पना को भी त होना पड़े। अपने प्रवास के आधे भाग पर थोड़ी देर के लिए ठहर जायँ और फिर श-गङ्गा की ओर देखें तो वहाँ से भी यह ही दिखाई देगी जैसी पृथ्वी से देख पड़ती इस स्थान से यदि हम उसका चित्र लें तो चित्रों में और पृथ्वी के ऊपर से लिये हुए चित्रों में बहुत थोड़ा अन्तर देख पड़ेगा। पर, यदि से अधिक तेज़ दूरदर्शक यन्त्र से हम देखें कदाचित् कुछ अधिक अन्तर मालूम हो। श-गङ्गा के सूर्य एक दूसरे से दूर हैं, यह तो यहाँ से भी दूरबीन द्वारा मालूम हो ती है। इस स्थान से यदि हम पीछे की ओर फिर कर देखें तो हमें मालूम होगा कि यहाँ से हमारा सूर्य भी हमें दृष्टिगोचर नहीं होता। तेज़ दूरदर्शक यन्त्र से देखने पर शायद यह हमें एक सामान्य तारे के सदृश देख पड़े। पर, आकाश में ऐसी असंख्य तारकायें होने से यह जानना कठिन होगा कि इनमें से हमारा सूर्य कौन सा है।

पाठक, हम मार्ग में बहुत ठहर गये। यात्रा अभी हमें बहुत दूर की करनी है। इसलिए हमारी गाड़ी फिर चलाई गई। एक अब्ज वर्ष तक इसी प्रकार और चलते रहने पर आकाश-गङ्गा की बाहरी सीमा के किसी भाग में हम पहुँच गये।

इस पिछले प्रवास में यदि हज़ार हज़ार वर्ष के अन्तर से हम आकाश-गङ्गा के चित्र लेते रहें तो पिछले चित्रों से नये चित्रों में थोड़ा थोड़ा भेद मालूम होता रहेगा। पहले के चित्रों में तारकायें बहुत पास पास दिखाई देती थीं। अब इन नये चित्रों में उनकी दूरी बढ़ती जाती है। आँखों से भी अब हमें हज़ारों सूर्य आकाश में दिखाई देने लगे हैं। जैसे जैसे हम आगे बढ़ते हैं, ये सूर्य हमें अधिक प्रकाशमान् और स्पष्ट दिखाई देते हैं और इनका परस्पर अन्तर भी अधिक जान पड़ता है। इस प्रकार दो अब्ज वर्ष तक प्रवास करने पर आकाश-गङ्गा के प्रदेश के किनारे हम अवश्य पहुँच गये। पर, आकाश-गङ्गा के भीतर आ पहुँचे, यह बात हम अब भी नहीं कह सकते। क्योंकि, ऊपर की ओर दृष्टि डालने से आकाश-पथ जैसा हमको पृथ्वी से दिखाई देता था वैसा ही असंख्य तारों से युक्त अब भी दिखाई देता है। डर है, प्रवास में हमारी गाड़ी कहीं किसी सूर्य के पास न चली जाय, जो हम और हमारी गाड़ी भस्मीभूत हो जायँ। ऐसा होने से हमारी राख अनन्त प्रदेशों में से कहाँ चली जायगी, इसका पता भी हमें न लगेगा।

पृथ्वी से आकाश-गङ्गा की दूरी का अनुमान पाठकों को हम ऊपर के उदाहरण से भी ठीक ठीक नहीं करा सके। वास्तव में यह हमारे लगाये हुए मीलों के हिसाब से भी अधिक दूर है। कई खगोल-

शताब्दी का एक आश्चर्यकारक आविष्कार है। इस चित्र में कोई चालीस हज़ार छोटे छोटे बिन्दु दिखाई देते हैं। यह प्रत्येक बिन्दु एक एक सूर्य का चित्र है। चन्द्रमा और पृथ्वी के पास के पाँच ग्रहों के सिवा आकाश में रात को जितने तारे देख पड़ते हैं वे सब शुक्ल-उष्ण अथवा रक्त-उष्ण प्रकाश वाले सूर्य हैं। हम इन सभी को "तारा" शब्द से ही पुकारते हैं। पर, यह नाम इनका ठीक नहीं। क्योंकि शास्त्रीय अर्थ इनका यह नहीं हो सकता। हमारा सूर्य इस पृथ्वी से १३,१०,००० गुना बड़ा है। यदि उसकी तुलना आकाश-मण्डल के तारों से की जाय तो मालूम हो कि सूर्य भी एक तारा ही है। आकाश गङ्गा नभोमण्डल में हमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई दिखाई देती है। उसमें छोटी बड़ी असंख्य तारकायें हैं। उनमें से प्रत्येक हमारे सूर्य से बहुत बड़ी है। पृथ्वी से बहुत दूर होने के कारण हमको ये तारकायें ऐसी दिखाई देती हैं मानों एक दूसरी के बहुत निकट हैं। पर, वास्तव में इनका परस्पर अन्तर करोड़ों मील का है। दूर से देखने से जङ्गल के वृक्ष बहुत पास पास उगे हुए मालूम होते हैं। पर, निकट जाने से यह ज्ञात होता है कि वे एक दूसरे से बहुत अन्तर पर हैं। इसी तरह आकाश-गङ्गा का प्रकाशमान पथ भी हमें ऐसा दिखाई देता है मानों मोती टँके हुए वस्त्र का एक लम्बा टुकड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ है। अत्यन्त दूरदर्शी दूरबीन से आकाश-गङ्गा का जो अप्रतिम सौन्दर्य दृष्टि-गोचर होता है [illegible]सका [illegible] शब्दों की शक्ति के बाहर है। [illegible] [illegible] द्वारा कुछ [illegible]

[illegible] विद्या [illegible] बिजली [illegible] तदनन्तर [illegible] और [illegible]

दीपकों को जलाने के बाद जो दृश्य हो जायगा उसके सौन्दर्य से तेज़ [illegible] देखे गये आकाश-गङ्गा के सौन्दर्य का [illegible] मान देखने वाले के ध्यान में आ सकेगा। दूरबीन से नीला आकाश कहीं कहीं ऐसा देता है मानों उसमें बड़े बड़े सूर्यों का दे[illegible] है और कहीं कहीं ऐसा भी देख पड़ता है इन सूर्यों की दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। कहीं बड़े बड़े मीनार और कहीं कहीं [illegible] भी दिखाई देते हैं। कहीं तो ये सूर्य एक [illegible] निकट ऐसे अव्यवस्थित रूप में पड़े हुए [illegible] देते हैं कि तेज़ से तेज़ दूरबीन भी उन्हें [illegible] नहीं दिखा सकते। इस दृश्य को देख कर को जो आनन्द होता है उसकी कल्पना [illegible] कठिन है। परमात्मा की इस मनोरम सौन्दर्य[illegible] रचना को देख कर विद्वान् लोग भूख, संसार के जटिल जञ्जालों को एकदम भू[illegible] हैं। इसके सिवा इस सूर्यमय प्रदेश की बड़ी गुफायें और बड़े बड़े दरवाज़े यह सूचित मानो वहाँ अवकाशरूपी अनन्त अरण्यों [illegible] देखने के लिए खिड़कियाँ बना दी गई हैं। आस पास के प्रकाशमान स्थानों के साथ [illegible] कियों की तुलना करने से ये काजल की काली काली दिखाई देती हैं। सूर्य के भाग से आगे की ओर दृष्टि ले जाने वाली खिड़कियों में से किसी एक की ओर दूरबीन का काँच हो जाता है तब दर्श[illegible] एकदम चकित हो जाना पड़ता है। आका[illegible] थोड़े बहुत चमत्कार दूसरों को दिखाने में [illegible] ग्राफ़ी की सहायता से मनुष्यों को किसी में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। इस दृश्य को दृष्टि एकटक देखती रह जाती है। वाणी इसे प्रकट नहीं कर सकती। [illegible] [illegible]म्य है। [illegible] पर अङ्कित हु[illegible] जाते हैं। [illegible] चित्र प्लेटों पर [illegible]

र भी थोड़ा बहुत हो चुका है। इन्हीं कारणों से
। पहले फ्रांस में सन्तानोत्पत्ति कम हो गई थी
की मनुष्य-संख्या घटने लगी थी। इस बात का
रेज़ी के "Influence of Civilization on
ation" नामक ग्रन्थ में अच्छी तरह किया गया
। के वाक्यों से उस देश के सामाजिक ह्रास के
। हाल मालूम हो जायगा—

Neither do we affirm that education
sole factor which reduces the birth-
is this is only one of the factors
combined with material ease, less
religious sentiments and an ardent
to attain a higher and better mate-
indard, form an aggregate of in-
ral and moral qualities which are
avourable to a high birth-rate

अवतरण में सामाजिक ह्रास के जिन कारणों का
किया गया है वे ये हैं:—(१) शिक्षा; (२) आधि-
सुख; (३) धार्म्मिक भाव, श्रद्धा और श्रेष्ठ मनो-
के विषय में उदासीनता; (४) विषयोपभोग की
इच्छा।

किसी देश में सामाजिक ह्रास होने लगता है तब
के प्रभावशाली मनुष्यों का उत्पन्न होना बन्द हो
और उसकी राजकीय स्थिति बिगड़ने लगती है।
स्वतन्त्र हैं वे इस सामाजिक ह्रास से बचने के लिए
ाय कर सकते हैं। परन्तु जो समाज राजकीय दृष्टि
के अधीन हैं वे यदि इस सङ्कट की अवस्था से
का कुछ उपाय न करें तो उनके नष्ट हो जाने में
आश्चर्य नहीं। मस्तिष्क के अपरिमित व्यय से
होती है उसके विषय में गायो नाम का एक लेखक
है—

The constitutions shaken by this
and over-application, they bequeath
ir children. And then these com-
vely feeble children, predisposed to
down even under ordinary strains
on their energies, are required to go
through a curriculum much more extend-
ed than that prescribed for the unenfeebl-
ed children of past generations. The
disastrous consequences, which might be
anticipated, are everywhere visible; and
they are accumulated by heredity"

Guyau. Education and Heredity.
Pp 130, 131.

क्या यही दशा हमारे वर्तमान शिक्षित समाज की नहीं
देख पड़ती? जब इन सब बातों पर विचार किया जाता है
तब मन में यह प्रश्न उठता है कि, क्या यह ह्रास अटल है?
क्या सभ्यता, सुधार और आधिभौतिक उन्नति तथा वैभव
के साथ सामाजिक ह्रास का योग सदा यों ही बना रहेगा?
क्या मनुष्य की बुद्धि का इतना विकास कभी न होगा कि
वह ऐसे उपायों को सोचे, जिनसे सभ्यता और सुधार के
लाभ और सुख तो प्राप्त हो जावें, परन्तु समाज की हानि
या ह्रास न होने पावे? आज तक के इतिहास से, पश्चिमी
सभ्यता और सामाजिक ह्रास के अनिवार्य सम्बन्ध को देख
कर, मोलिय स्कीनर नाम के एक ग्रन्थकार ने भी यही
प्रश्न किया है—

"Is there any reason to suppose that
the emasculation and degradation of
human creatures, *which has always taken
place whenever a high state of material
civilization has been reached*, is an abso-
lutely inevitable concomitant of all high
material civilization, for all time? Must
the story of History for ever repeat itself?"

निराश होने की बात नहीं है। विद्वानों ने सामाजिक
विकास के नियमों पर विचार करके कुछ ऐसे सिद्धान्त
निश्चित किये हैं जिनका अवलम्ब करने से यह सामाजिक ह्रास
टल सकता है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर इस अंश में
कुछ उपायों का वर्णन किया जायगा, जिनसे हम लोग अपने
समाज के वर्तमान और भावी ह्रास को रोक सकते हैं।

हिन्दुस्तान के निवासी बहुत दिनों से पाश्चात्य शिक्षा
पा रहे हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि जिनके पूर्वजों

शास्त्रियों ने तो गणना की है कि आकाश-गङ्गा के अनेक नक्षत्र हम से इतनी दूर हैं कि वहाँ से हमारी पृथ्वी तक उनका प्रकाश आने ही में ३,००० से १५,००० वर्ष तक का समय लगता है। प्रकाश का वेग एक सेकंड में १,८६,००० मील है। इससे पाठक स्वयं ही अनुमान कर लें कि आकाश-गङ्गा के सूर्य हमारी पृथ्वी से कितनी दूर हैं।

आकाश-गङ्गा के अगम्य प्रदेशों में चमकने वाले ये बड़े बड़े सूर्य किसी तेज़ दूरबीन से ही देखे जा सकते हैं। पर, जिन असंख्य पृथ्वियों को ये सूर्य प्रकाशित करते हैं उन्हें देखने के लिए कोई यन्त्र कैसे समर्थ हो सकता है? ये पृथ्वियाँ कैसी होंगी, इनमें कैसे प्राणी बसते होंगे, यहाँ राजकीय, धार्मिक, नैतिक आदि नियम कैसे प्रचलित होंगे—इस बात की क्या आप कल्पना भी कर सकते हैं? मान लीजिए कि आकाश-गङ्गा में एक अब्ज सूर्य हैं—वास्तव में तो उनकी संख्या इससे भी अधिक होगी—तो जिस प्रकार हमारे सूर्य के आस पास आठ ग्रह प्रदक्षिणा करते हैं उसी प्रकार आकाश-गङ्गा के प्रत्येक सूर्य के आस पास भी आठ आठ ग्रह प्रदक्षिणा कर रहे होंगे। इस प्रकार इस असीम आकाश में आठ अब्ज ग्रह तो ऐसे छिपे पड़े हैं कि वे हमें किसी तरह दिखाई ही नहीं देते।

यदि ये आठों अब्ज ग्रह एक साथ एक एक क्षण में नाश होने लगें तो भी आकाश के अनन्त प्रदेश में कुछ भी हेर फेर होता न जान पड़ेगा। जहाँ ऐसे अब्जों ग्रहों का हिसाब नहीं वहाँ महासागर में एक बूँद के समान हमारी यह पृथ्वी किस गिनती में है। परमेश्वर की अनन्त और अपार सृष्टि में हमारी इतनी बड़ी पृथ्वी का कोई हिसाब ही नहीं। हमारे पड़ोसी शुक्र और मङ्गल के निवासियों के सिवा कोई उसे पहचानता ही नहीं। महासागर की बालू की असंख्य कणिकाओं में से एक कणिका रही तो क्या और न रही तो क्या। जहाँ करोड़ों ग्रहों का तो क्या, करोड़ों सूर्यों का हिसाब नहीं मनुष्य की कौन गिनती है? परमेश्वर की इस अलौकिक रचना का विचार करके भी मनुष्य का अभि[illegible] न चूर्ण हो जाय तो बड़े ही दुःख की बात [illegible]

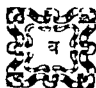
इस महान् आकाश में चमकती हुई [illegible] पृथ्वियों, अगणित सूर्यों और अगणित [illegible] का एक ब्रह्माण्ड है। हमारे शास्त्र कहते हैं [illegible] ऐसे २१ ब्रह्माण्ड हैं। वे सब ईश्वरीय माया [illegible] के जिस भाग में हैं उससे कई गुना अधि[illegible] वाला एक और प्रदेश है। उससे ब्रह्माण्डों [illegible] का अभी आरम्भ ही नहीं हुआ! यह इतना बड़ा [illegible] सम्भूत प्रदेश परमात्मा के अनन्त और [illegible] शरीर के साढ़े तीन करोड़ रोमों में से [illegible] तरह किसी एक कोने में पड़ा हुआ है। [illegible] तत्त्व जानने वाले महापुरुष यही कहते हैं। [illegible] माया के इस छोटे से प्रदेश में ही तेरा, तेरी [illegible] तेरे सूर्य का, और तेरे इस ब्रह्माण्ड का कोई [illegible] नहीं, तो परमात्म-प्रदेश में तेरी क्या गिनती है [illegible] है? अभिमान को छोड़, नम्र बन और [illegible] आश्चर्यकारक परमात्मा की शरण अनन्य [illegible] ग्रहण कर। यही एक मात्र तेरे कल्याण का [illegible]

[गुजराती की "महाकाल" नामक [illegible] अनुवादित]

श्रीलाल शालग्राम पव[illegible]

सामाजिक ह्रास से बचने के [illegible]

[४]



र्तमान समय में जिन तीन [illegible] हमारे समाज का ह्रास [illegible] उनका विचार पिछले [illegible] किया जा चुका है। [illegible] अपरिमित व्यय, शहरों में [illegible] (पश्चिमी शिक्षा तथा सभ्यता से उत्पन्न होने [illegible] की अनियन्त्रित स्वतन्त्रता का बुरा परिणाम [illegible] हमारे समाज पर [illegible] तरह और

हो-जातीय स्त्रिया ।

[illegible]

[illegible]

का वैभव इतिहास में प्रसिद्ध है, जिनके पूर्वजों ने धर्म, राजनीति और समाज के सम्बन्ध में बड़े बड़े बातों की खोज की है, उनके वर्तमान वंशजों में असाधारण गुण नहीं देख पड़ता! यदि यह पूछा जाय कि वर्तमान समय के हिन्दुस्तानियों में धैर्य, धारणा, निश्चय, उत्साह और महत्वा-कांक्षा क्यों नहीं देख पड़ती, तो उत्तर यह है कि मानसिक परिश्रम के अतिरेक से बुद्धि में एक प्रकार की क्षीणता आ गई है। इस क्षीणता को टालने का उपाय यही है कि जिस काम में पिता ने अपनी बुद्धि का—अपने मस्तिष्क का—विशेष व्यय किया हो उसी काम में सन्तान की बुद्धि का व्यय न होने देना चाहिए। यदि किसी घराने की प्रत्येक पीढ़ी के आदमी एक ही व्यवसाय में अपनी सारी बुद्धि का व्यय करने लगें तो कुछ समय के बाद उस घराने में मन्दबुद्धि के मनुष्य उत्पन्न होने लगेंगे और अन्त में उस घराने का ह्रास हो जायगा। यूरोप के समाजों का यही अनुभव है। इस विषय पर गायो नाम के विद्वान् लेखक ने—"शिक्षा और आनुवंशिक संस्कार"* नाम का ग्रन्थ लिखा है। अँगरेज़ी जानने वाले हमारे भाइयों को इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अवश्य विचार करना चाहिए। बुद्धि और भूमि की पारस्परिक तुलना करके गायो कहता है—जो भूमि हर साल जोती बोई जाती है उसका उपजाऊ-पन घट जाता है—वह निःसत्व हो जाती है। यही हाल बुद्धि (मस्तिष्क) का भी है। जैसे भूमि के उपजाऊपन की वृद्धि करने के लिए उसको कुछ समय तक पड़ी रहने देना चाहिए वैसे ही मस्तिष्क को भी कुछ समय तक बेकार पड़ा रहने देना चाहिए। इस उपाय से उसका ह्रास—उसकी क्षीणता—बन्द हो सकती है। जिन शिक्षित कुटुम्बों ने बुद्धि-व्यासङ्ग और मस्तिष्क ही के उपयोग का व्यवसाय कर रक्खा है उनको उचित है कि वे कुछ समय तक अपनी सन्तान के मस्तिष्क को विश्राम करने दें और उनको शारीरिक परिश्रम के कामों में लगावें। यदि विश्रान्ति लेना असम्भव हो तो एक पीढ़ी में जिस व्यवसाय में बुद्धि का विशेष उपयोग किया गया हो उसी व्यवसाय में दूसरी बुद्धि का अधिक उपयोग न किया जाय—कि व्यवसाय में बुद्धि का उपयोग हो। यह उद्धरण पिताओं और शिक्षकों के ध्यान देने योग्य है—

"It is the educator's duty no[t to] press the son to follow his father's [pro]fession, at least whenever that pro[fession] as that of the artist, politician, s[…] simply man of business, or man o[…] nence, requires very considerable ne[…] expenditure."

जो लोग सम्पत्ति, कीर्ति और वैभव की [...] फँस कर, मस्तिष्क की शक्ति के घट जाने पर भी, [...] उपयोग में लाने का हठ किया करते हैं उनसे [...] कि वे अपनी सन्तान को अमर्यादित विद्या[...] अलग रक्खें।

सामाजिक ह्रास को टालने का दूसरा उपाय [...] शिक्षित लोगों को देहाती जीवन के स्वीकार और [...] परिश्रम की ओर अधिक प्रवृत्त होना चाहिए। [...] और जो जातियाँ कई पीढ़ियों से विद्याव्यासङ्ग [...] और शहरों में रह कर अपनी पूर्वसञ्चित शक्ति [...] रही हैं उन्हें देहाती जीवन से निस्सन्देह लाभ [...] उपाय की उपयोगिता के विषय में, सामाजिक [...] कारणों का विचार करते समय, दूसरे नम्बर [...] बहुत कुछ लिखा जा चुका है। समाज के अस्तित्व [...] सिद्धान्त है कि पुरुषत्व की इच्छा रखने वाली [...] शालिनी और सामर्थ्यवती जातियाँ भी बहुत [...] देहाती जीवन से अलग नहीं रह सकतीं—

"It seems to be a law of ex[…] that the most dominant and po[…] races, *if they desire to keep their vi[…]* cannot remove themselves too f[…] too long from the primitive conditi[…] life."

इससे देहाती जीवन का महत्व स्वयं सिद्ध है। [...] में रहने से जो ह्रासकारक परिणाम किसी समाज [...]

---

* यह शब्द अँगरेज़ी भाषा के Heredity शब्द के लिए है। गत मई की 'सरस्वती' के २०२ वें पृष्ठ के पहले [कालम] में, इसी शब्द के लिए, 'वंशानुक्रम' लिखा गया है।

ई उनको टालने के लिए देहात में रहना, शारीरिक
। करना और प्रकृति की सहायता से अपनी खोई हुई
ों को फिर से प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।
न्देह न करना चाहिए कि यदि हम देहात में रहेंगे
ारी मानसिक शक्तियों के प्रकट होने और उनको काम
ाने का मौक़ा न मिलेगा; हमारी शक्तियां नष्ट हो
ो, हम असभ्य और गँवार हो जायँगे। नहीं। सच तो
'कि देहात ही में हमारी शारीरिक, मानसिक, नैतिक
शक्तियां गुप्त रीति से आप ही आप बढ़ती रहती हैं।
। की इस गुप्त अवस्था ही में—देहात के कष्टमय,
य गँवार तथा दरिद्र जीवन ही से—प्रतिभा की
ते हुआ करती है। सारांश यह कि यदि शहरों में
वाले और कई पीढ़ियों तक विद्याव्यासङ्ग ही में लगे
लोग अपनी सन्तान को देहात में—प्रकृति की गोद
-विश्रान्ति लेने न देंगे तो उनका वंश शीघ्र ही नष्ट
जायगा*।

सामाजिक ह्रास को टालने का तीसरा उपाय यह है
हमारे अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का विकास सदा
होता रहे। केवल बुद्धि की स्वतन्त्रता से मनुष्य की
ीण उन्नति नहीं हो सकती। सात्त्विक मनोवृत्तियों की
ता के विषय में एमरसन नामक ग्रन्थकार ने "On
e Sovereignty of Ethics" नामक ग्रन्थ में बहुत
छा वर्णन किया है। वर्त्तमान समय के जो अँगरेज़ी लिखे
लोग सिर्फ़ अपने स्वतन्त्र विचार या बुद्धि को अपना
र्गदर्शक मानते हैं उन्हें इस पुस्तक को एक बार अवश्य
। लेना चाहिए। हमारे यहां इन मनोवृत्तियों का समावेश
धर्म" में किया गया है। इतिहास देखने से मालूम होता
कि जिस समय लोगों में धर्मनिष्ठा प्रबल थी वह समय
श्य ही सब प्रकार प्रशंसनीय था। उलटा, जिस समय
गों में धर्मनिष्ठा दुर्बल या लुप्त हो गई थी उसी समय
सब प्रकार की अवनतियां हुई हैं। सामाजिक सुख, उत्साह
और आनन्द के अवसर सात्त्विक मनोवृत्तियों ही पर—
धर्मनिष्ठा ही पर—अवलम्बित रहते हैं। आस्तिकता,
भक्तिभाव, पाप का भय, आदरबुद्धि, उदार आचरण, स्वार्थ-
रहित प्रेम आदि सात्त्विक गुण धर्मनिष्ठा ही के फल हैं।
यदि हम इन शुद्ध मनोविकारों को अपने अन्तःकरण में
स्थान न देंगे तो हमारे अन्तःकरण की नीच मनोवृत्तियों ही
का उदय हुआ करेगा और अन्त में वह मनुष्य समाज
यथार्थ में "बुद्धिमान् पशु" हो जायगा! धर्मनिष्ठा और
सात्त्विक गुणों के संस्कारों ही से हमारे अन्तःकरण में वह
सारासार विवेक-शक्ति उत्पन्न होती है जिसको अँगरेज़ी में
Conscience कहते हैं। जिन लोगों ने पश्चिमी तत्त्वज्ञान
के ग्रन्थ पढ़े हैं वे जानते हैं कि यह सारासार विचार शक्ति,
बुद्धि और शुद्ध मनोविकारों के बहुत दिनों के उपयोग से
उत्पन्न होती है और वही फिर स्वाभाविक हो जाती है।
ऐसी अवस्था में जो लोग अपनी बुद्धि की स्वतन्त्रता ही को
सम्मानित किया करते हैं और श्रेष्ठ मनोवृत्तियों के विकास
की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते वे सचमुच अपने सामा-
जिक अस्तित्व की जड़ काट डालने का यत्न करते हैं। सारांश
यह कि धर्मनिष्ठा का—श्रेष्ठ मनोवृत्तियों और अनेक शुद्ध
संस्कारों के आधार पर बनी हुई सारासार विचार-शक्ति का—
समाज में ज्यों ज्यों विकास होता जायगा त्यों त्यों समाज
की वर्त्तमान क्षीणता भी दूर होती चली जायगी। हमारे
आधुनिक शिक्षितों को केवल बुद्धि की स्वतन्त्रता और
व्यक्ति-विशेष के सुख ही पर ध्यान न देना चाहिए; किन्तु
अपने अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का भी विकास
अवश्य करना चाहिए।

मृत्युलोक को विद्वान् "कर्मभूमि" कहते हैं। यहां
जीवन यात्रा के समय अनेक सङ्कटों का सामना करना
पड़ता है। कभी कभी तो अकल्पित सङ्कट उपस्थित हो
जाते हैं। उस समय यह सूझ नहीं पड़ता कि हमारा कर्तव्य
क्या है। मनुष्य की बुद्धि स्तब्ध हो जाती है और ऐसा
जान पड़ता है कि हमारा जीवन व्यर्थ ही गया। ऐसे ही
सङ्कट के समय कर्तव्यमार्ग दिखाने के लिए हमारे हृदय में
उचित मनोवृत्तियों का उदय होता है। वही बुद्धि को प्रेरित
करती हैं। यदि इन मनोवृत्तियों की प्रेरणाओं के अनुसार

* "Genius proceeds only from the boxes in which
e poor have, day by day, hoarded up their talents
stead of squandering them in follies. Nature ac-
tires her greatest riches when she is asleep. . . .
'e must resign ourselves to our sons being other
han we are, or to their ceasing to exist." Guyau-
ducation and Heredity.

। है उनको टालने के लिए देहात में रहना, शारीरिक श्रम करना और प्रकृति की सहायता से अपनी खोई हुई क्तियों को फिर से प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। सन्देह न करना चाहिए कि यदि हम देहात में रहेंगे हमारी मानसिक शक्तियों के प्रकट होने और उनको काम आने का मौक़ा न मिलेगा; हमारी शक्तियां नष्ट हो गी; हम असभ्य और गँवार हो जायँगे। नहीं। सच तो है कि देहात ही में हमारी शारीरिक, मानसिक, नैतिक दि शक्तियां गुप्त रीति से धीरे ही धीरे बढ़ती रहती हैं। ति की इस गुप्त अवस्था ही से—देहात के कष्टमय, भ्य गँवार तथा दरिद्र जीवन ही से—प्रतिभा की त्पत्ति हुआ करती है। सारांश यह कि यदि शहरों में रहने वाले और कई पीढ़ियों तक विद्याभ्यासङ्ग ही में लगे लोग अपनी सन्तान को देहात में—प्रकृति की गोद में—विश्रान्ति लेने न देंगे तो उनका वंश शीघ्र ही नष्ट हो जायगा*।

सामाजिक ह्रास को टालने का तीसरा उपाय यह है कि हमारे अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का विकास सदा होता रहे। केवल बुद्धि की स्वतन्त्रता से मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति नहीं हो सकती। सात्त्विक मनोवृत्तियों की श्रेष्ठता के विषय में एमरसन नामक ग्रन्थकार ने "On the Sovereignty of Ethics" नामक ग्रन्थ में बहुत अच्छा वर्णन किया है। वर्तमान समय के जो अँगरेज़ी लिखे पढ़े लोग सिर्फ़ अपने स्वतन्त्र विचार या बुद्धि को अपना मार्गदर्शक मानते हैं उन्हें इस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ लेना चाहिए। हमारे यहाँ इन मनोवृत्तियों का समावेश "धर्म" में किया गया है। इतिहास देखने से मालूम होता है कि जिस समय लोगों में धर्मनिष्ठा प्रबल थी वह समय प्रायः सब प्रकार प्रशंसनीय था। उलटा, जिस समय लोगों में धर्मनिष्ठा दुर्बल या लुप्त हो गई थी उसी समय सब प्रकार की अवनतियां हुई हैं। सामाजिक सुख और आनन्द के अवसर सात्त्विक मनोवृत्तियों ह धर्मनिष्ठा ही पर—अवलम्बित रहते हैं। भा भक्तिभाव, पाप का भय, आदरबुद्धि, उदार आचरण रहित प्रेम आदि सात्त्विक गुण धर्मनिष्ठा ही के यदि हम इन शुद्ध मनोविकारों को अपने अन्त स्थान न देंगे तो हमारे अन्तःकरण की नीच मनोवृ का उदय हुआ करेगा और अन्त में वह मनुष्य यथार्थ में "बुद्धिमान् पशु" हो जायगा। धर्मनि सात्त्विक गुणों के संस्कारों ही से हमारे अन्तःकरण सारासार विवेक-शक्ति उत्पन्न होती है जिसको अँ Conscience कहते हैं। जिन लोगों ने पश्चिमी के ग्रन्थ पढ़े हैं वे जानते हैं कि यह सारासार विचा बुद्धि और शुद्ध मनोविकारों के बहुत दिनों के उप उत्पन्न होती है और वही फिर स्वाभाविक हो जा ऐसी अवस्था में जो लोग अपनी बुद्धि की स्वतन्त्रता सम्मानित किया करते हैं और श्रेष्ठ मनोवृत्तियों के की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते वे सचमुच अपने जिक अस्तित्व की जड़ काट डालने का यत्न करते हैं। यह कि धर्मनिष्ठा का—श्रेष्ठ मनोवृत्तियों और मनो संस्कारों के आधार पर बनी हुई सारासार विचार-शक्ति समाज में ज्यों ज्यों विकास होता जायगा त्यों त्यों की वर्तमान क्षीणता भी दूर होती चली जायगी। आधुनिक शिक्षितों को केवल बुद्धि की स्वतन्त्रता व्यक्ति-विशेष के गुण ही पर ध्यान न देना चाहिए; अपने अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों का भी अवश्य करना चाहिए।

मृत्युलोक को विद्वान् "कर्मभूमि" कहते हैं। जीवन-यात्रा के समय अनेक सङ्कटों का सामना पड़ता है। कभी कभी तो अकल्पित सङ्कट आने हैं। उस समय यह सूझ नहीं पड़ता कि हमारा क्या है। मनुष्य की बुद्धि स्तब्ध हो जाती है और ज्ञान पड़ता है कि हमारा जीवन व्यर्थ ही गया। सङ्कट के समय कर्तव्यमार्ग दिखाने के लिए हमारे सञ्चित मनोवृत्तियों का उदय होता है। वही बुद्धि को करती है। यदि उन मनोवृत्तियों की प्रेरणाओं के

* "Genius proceeds only from the boxes in which the poor have, day by day, hoarded up their talents instead of squandering them in follies. Nature achieves her greatest riches when she is asleep ... We must resign ourselves to our sons being other than we are, or to their ceasing to exist." Guyau. Education and Heredity

कार्य किया जाय तो कर्त्तव्य में कुछ भी भूल न हो और हम सारे सङ्कटों और दुःखों को आनन्दपूर्वक सह लें। कर्त्तव्य-सम्बन्धी आनन्द से हमारा हृदय सदा उत्साहपूर्ण और प्रफुल्लित बना रहता है। यह सन्देह करने की आवश्यकता नहीं कि एक शुद्ध मनोवृत्ति दूसरी का विरोध करेगी। नहीं; ऐसा कभी नहीं होता। उदाहरणार्थ, अपनी सन्तान को देख कर हमारे हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है; जेठे बड़ों को देख कर आदर का भाव जागृत होता है; दीन जनों को देख कर करुणा का स्रोत बहने लगता है; और अनिवार्य सङ्कट में पड़ जाने पर ईश्वर का स्मरण होता है। जब सम्पत्ति की वृद्धि होती है तब परोपकार की ओर मन झुकने लगता है; जब कर्त्तव्य की जागृति होती है तब धर्मोपदेश और देश-सेवा की इच्छा भी बढ़ने लगती है। ज्यों ज्यों मनोवृत्तियाँ अधिकाधिक उदार और विकसित होती जाती हैं त्यों त्यों हमारे हृदय में सहानुभूति और भूतदया भी बढ़ती जाती है। जिस मनुष्य की सहानुभूति और भूतदया विश्वव्यापक हो जाती है वही हमारे प्राचीन ग्रन्थों में "उत्तम भागवत" कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११, अध्याय २

तात्पर्य यह कि शुद्ध मनोवृत्तियों का अनुसरण करने ही से मनुष्य के स्वभाव का विकास होता है और समाज उत्तम पद को पहुँच जाता है। ये मनोवृत्तियाँ हमारे सामाजिक जीवन के लिए नन्दनवन के समान हैं। यदि इस नन्दनवन का उच्छेद किया जायगा तो किसी भी व्यक्ति का हित न होगा, मनुष्य-समाज का कल्याण न होगा, सांसारिक जीवन की सफलता न होगी, कर्त्तव्य में कुछ भी विचित्रता न रहेगी और मनुष्य-जाति की अवनति होने लगेगी। अतएव, हम लोगों को अपने अन्तःकरण की श्रेष्ठ मनोवृत्तियों के विकास की ओर खूब ध्यान देना चाहिए।

चौथा उपाय। स्त्री-शिक्षा के विषय में बहुत सावधानी और दूरदृष्टि से काम करना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ अपढ़ और ज्ञानहीन हैं। इस लिए जब तक उनको पुरुषों के समान उच्च शिक्षा न दी जायगी तब तक हमारी सन्तान का और इस देश का सुधार न होगा। स्मरण रहे कि उनका यह कथन और यह उपाय ... समाज शास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यदि यह ... है कि अमर्यादित विद्या-व्यासङ्ग से हमारे युवकों का ... रिक तथा मानसिक ह्रास हो रहा है तो क्या यह ... हमारी स्त्रियों का भी न होगा? जैसे व्यक्ति ... आरोग्य-शास्त्र के कुछ नियम हैं और उनके अनुसार ... प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, वैसे ही समाज ... आरोग्य-शास्त्र के भी कुछ नियम हैं और उन्हीं के अनु... प्रत्येक स्त्री या पुरुष को चलना चाहिए। स्त्रियों के वि... में सामाजिक आरोग्य शास्त्र का कथन यह है:—"स्त्रि... पुरुषों से कम सामर्थ्य होता है। उनकी शारीरिक रचना ... अनुसार उनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि वे उसका व्यय ... निर्दिष्ट सन्तानोत्पादन के कार्य में तथा विद्या-व्यास... भी कर सकें। यदि हमें उत्तम सन्तान की चाह हो ... स्त्रियों की शिक्षा की मात्रा बहुत ही कम होनी चा... क्योंकि सन्तानोत्पादन के कार्य में स्त्रियों की बहुत ... शक्ति का व्यय हो जाता है। मस्तिष्क से काम लेना ... सन्तानोत्पादन करना, ये दोनों परस्पर-विरोधी कार्य ... यदि बेकन या न्यूटन की माताओं को विदुषी और ... बनाने का यत्न किया गया होता तो उनके गर्भ से बे... या न्यूटन का जन्म न होता। सन्तानोत्पादन के लिए ... बातों की आवश्यकता है—(१) स्त्रियों में गर्भधारण ... यथेष्ट सामर्थ्य हो; (२) उचित समय तक बच्चों को ... पिलाने और उनके पालन-पोषण की शक्ति उनमें ... (३) अतएव उनमें दुर्बलता न आनी चाहिए। यही स्त्रि... का प्रधान कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की ओर ध्यान ... ही स्त्रियों को शिक्षा दी जानी चाहिए। स्त्रियों की शि... का मुख्य उद्देश यही होना चाहिए कि वे अपनी श्रेष्ठ ... वृत्तियों की प्रेरणा अपनी सन्तानों के हृदयों में कर सकें...

"On the mother, in particular, ... the task of developing the heart."

जब हम सामाजिक आरोग्य-शास्त्र के उक्त ... ध्यान देते हैं तब उन लोगों के अज्ञान पर हँसी ... जो इस देश में उच्च स्त्री-शिक्षा का पक्षपात करते हैं। ... विषय पर जून महीने की सरस्वती में, लन्दन के ... डाक्टर पेच्ची के एक निबन्ध के आधार पर, ...

न हुआ है। इसे पढ़ने से यह बात मालूम हो कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने से क्या हानि होती ...र्डे नामक एक अमेरिकन लेखक कहता है—"यदि ...में स्त्री-शिक्षा का प्रचार इसी तरह और पचास ...क होता रहेगा तो हमारी स्त्रियां वन्ध्या हो जायँगी ...गामी पीढ़ियों की मातायें अटलांटिक महासागर के ...र से (अर्थात् असभ्य जातियों में से) लाई ..."।*

...न्त में सरस्वती के उक्त नोट के लिखने वाले के ...में ही हम भी यही प्रार्थना करते हैं कि—"स्त्रियों ...शिक्षा का प्रचार चाहने वाले हमारे देश-भाई ...य देशों के अनुभव से अपने मार्ग को प्रशस्त और ...न बनावें"।

माधवराव सप्रे ।

मन्दोदरी और रावण ।

(रामचरित-चिन्तामणि से उद्धृत)

मन्दोदरी ।

बुध वही गुण- सागर है वही ,
सकल लोक-जनेश्वर है वही ।
कुछ प्रियाऽप्रिय है जिसको नहीं,
विरति में रति में रति-तुल्य है ॥ १ ॥

पर रमा, रमणी विष-तुल्य है,
हठ नहीं करिए प्रिय ! मानिए ।
तनिक ताप इन्हें लगता नहीं—
वृजिन का, जिनका शुभ कर्म है ॥ २ ॥

नय-परायणता प्रिय हो जिसे,
अरुचि हो पर-पीड़न से जिसे ।
रमण ! हो फिर क्यों उसके नहीं
अहित भी हित भीतर से सदा ॥ ३ ॥

निजवधू-जन में रमिए प्रभो !
सुरसुतोपम है वह जानकी ।
न उसकी ममता फबती तुम्हें;
असुर हो सुर हो सकते नहीं ॥ ४ ॥

रसिक हो निगमागम के सही,
प्रिय ! सुराऽसुर से कर लीजिए ।
पर नहीं तुम में कुछ भी हुई
सुजनता जन-ताप निवारिणी ॥ ५ ॥

स्वमहिषी यदि पा कर वे लड़ें,
तब नहीं हटिए रण से कभी ।
बुध नहीं पहले अरि मारते—
लगुड़ से, गुड़ से यदि कार्य हो ॥ ६ ॥

प्रिय अभी कुछ भी बिगड़ा नहीं,
स्वमन को अपने वश कीजिए ।
अहह ! क्यों मनुजा छवि-जाल में
शकुल के कुल के सम हो फँसे ? ॥ ७ ॥

निज हिताऽहित को समझे न जो,
यदि न हो जिसमें कुछ भी दया ।
फिर दशानन ! क्यों उसकी नहीं
सुजनता खलतापन मानिए ? ॥ ८ ॥

भजन ही करिए अब ईश का,
अधरता अति-ताप-करी सदा ।
यदि बने, निज राज्य सहर्ष हो
तनय को नयकोविद ! दीजिए ॥ ९ ॥

जनकजा-गत-चित्त न हो प्रभो !
विवश हो वश हो कर काल के ।
निकट ही अब अन्तिम यातना—
दिवस है, यश है घटता नहीं ॥ १० ॥

रावण ।

कुछ नहीं कहिए समझे बिना,
यह सनातन की शुभ नीति है ।
इस लिए स्थिर हो करके प्रिये !
पिशुनता सुन लाइए की जरा ॥ १ ॥

अहह नाक बिना भगिनी हुई
प्रियतमे ! जिसकी करतूत से ।
विनय तू करती उसके लिए,
न समता रस-नाश-करी कर ॥ २ ॥

रहित हा ! स्वर-दूषण से किया,
प्रियमुते ! मुझको जिस राम ने ।

* Cf. "If this goes on for half a century, it needs ...prophet to predict, from the laws of heredity, that ...mothers of our future generations will have to be ...ught from beyond the Atlantic."

फिर मुझे डराते व्यर्थ क्यों अहो!
मान के रण के हम विज्ञ हैं ॥ ३ ॥

हृदय में वह मातृ-वात्सल्य है,
पुरुषता पर है उसकी मति।
गुजन है वह क्यों जिसकी छिपे।
शिशु के हर के मन मोहित हैं ॥ ४ ॥

समर है करता रिपु से नहीं,
वध भला हम हैं सुनते इसे।
जगत में भट की भट कालिमा—
अपार है, पर है मनआदि भी ॥ ५ ॥

जब यथा सुख-दायक शूर हैं,
मरण भी रण में शुभ है इसे।
इस लिए मन निर्भय हो सदा
विजन में जन में मन मग्न है ॥ ६ ॥

यम-सुरादिक भी मम सामने
रुक नहीं सकते क्षण भी कभी।
तदपि राम भिड़ा मुझसे अहो,
न बड़वा बड़वानल को हरे ॥ ७ ॥

बल नहीं अबले! मम जानती,
भय तभी तुझको नर से हुआ।
हम विपक्ष-निशा-तम के लिए
धुमणि हैं, मणि हैं निज वंश के ॥ ८ ॥

हर घड़ी मन में मम कामना
बस यही अब है सुन तू प्रिये!
कब करूँ रण-ताण्डव शत्रु के
निकर में कर में करवाल ले ॥ ९ ॥

तुम विहार करो गतचिन्त हो,
सुमदिरा मदिराक्षि! पिया करो।
कर नहीं सकता मम इन्द्र भी
प्रकृति की कृति की प्रतिकूलता ॥ १० ॥

रामचरित उपाध्याय

हिन्दुस्तानी सिपाहियों की वीरता

(१)



(हि)न्दुस्तानी फ़ौज के एक अंग्रेज़ अ... ईपर की लड़ाई में २७ नम्बर ... पल्टन के अपूर्व पराक्रम का ... लिख कर भेजा है उसको पढ़ ... भारतवासी ऐसा होगा जिसे ... रोम खड़े न हो गये होंगे ... युद्ध में उस पल्टन के अफ़सरों तथा सिपाहियों के ... उसके मन में शाबाशी के वचन न निकले होंगे! ... शायद अभी तक केवल अंग्रेज़ी में छपा है। परन्तु ... के पाठकों को उसके पढ़ने की उत्कण्ठा होगी। इस ... उसी वर्णन के आधार पर यह लेख हिन्दी में लिखा ...

२७ नं० की पल्टन पञ्जाब की साहसी पल्टनों ... है। इसमें दो कम्पनियां सिक्खों की, दो डोगरा राजपूतों ... दो पञ्जाबी मुसलमानों की और दो पश्चिमोत्तर सीमा ... के पहाड़ी पठानों की हैं। एक कम्पनी में सौ से ... अधिक जवान होते हैं। आज कल यह फ़्रांस और बेल्जियम ... में युद्ध कर रही है। जब से यह रणक्षेत्र में पहुँची है ... से जिस जिस लड़ाई में इसे लड़ना पड़ा है उन ... इसने अच्छी वीरता दिखाई है। परन्तु २६ अप्रैल से ... मई तक ईपर की भयङ्कर लड़ाई में जो काम इसने ... दिखाया उसे सुन कर बहादुर से भी बहादुर पल्टनों को ... हिला कर उसकी तारीफ़ करनी पड़ेगी।

इस पल्टन की वीरता का वर्णन करने के पहले ... सम्बन्धी कई बातों का कुछ विवरण लिखना इसलिए आव... श्यक है, कि उन्हें जाने बिना पाठक आगे लिखी हुई ... को पूरी तरह न समझ सकेंगे।

अब वह समय गया जब सिपाही खुले मैदान ... होकर लड़ते थे। कारण यह है कि आज कल की बन्दूकों ... दो मील तक निशाना मारा जा सकता है। एक मील तक ... मार इतनी विकट होती है कि चोट लगने से सिपाही ... मारा जाने का बड़ा भय रहता है। एक मील के आगे रहने ... वह थोड़ा बहुत घायल तो अवश्य ही हो जाता है। तोपों ... मार ८ से १२ मील तक कारगर होती है। व्योमयान आ... में उड़ते हुए आस पास घूम कर तोपख़ानों को यह ...

[illegible] कि शत्रु फलां जगह पर है; वह इस तरफ़ जा [illegible]सका गोला-बारूद किस स्थान पर है। इन कारणों [illegible] विचारवान् अफ़सर अपने सिपाहियों को खुले [illegible]ाने की आज्ञा नहीं देता, न उन्हें वहां रहने देता है। [illegible]ाही के पास कुदाली, फावड़े आदि रहते हैं। जिस [illegible]हरने की आवश्यकता हुई वहीं उसने ५, ६ फ़ुट [illegible] खोदा और उसकी आड़ में छिप रहा। बिना [illegible] होना मानो यमराज को उसी समय निमन्त्रण [illegible]ावश्यकता पड़ने पर यदि फ़ौज को खुले मैदान में [illegible] है, तो सिपाही लोग सर्प के समान धरती पर [illegible]ाते हैं। क्योंकि खड़े हुए आदमी पर तुरन्त [illegible] जाता है; पड़े आदमी पर निशाना ठीक नहीं [illegible] घास, झाड़ी, मेड, नाली, पेड़, खँडहर आदि [illegible]मले, उसी के सहारे जवान आगे बढ़ते हैं। घास [illegible] हुई अथवा धरती पर झाड़ी हुई तो बकरों के [illegible] पैर के बल चलते हुए, पत्तों के भीतर सिर [illegible]ाही लोग चलते हैं, जिससे दुश्मन के सिपाही [illegible] सकें कि ये लोग कहां हैं और ऊपर उड़ते हुए [illegible] पर बैठे हुए भेदिये भी उन्हें न पहचान सकें। [illegible]में इस जगह खुली हुई तो एक आड़ से दूसरी [illegible] कर बिजली के समान निकल जाने की चेष्टा [illegible]ते हैं। पर्दानशीन औरत, दूसरों की निगाह [illegible]लिए, अपना हाथ, मुँह, शरीर ढांक कर फुर्ती [illegible] सफ़ाई के साथ निकल जाती है, उससे खास [illegible] सफ़ाई के [illegible] ऐसे स्थान से [illegible] [illegible] प्रकार वह खाँ [illegible] प्रकार और [illegible] जाते हैं। [illegible] हुआ कि शत्रु [illegible] मनुष्य को [illegible] में यदि [illegible] हज़ार [illegible]

अब यह देखिए कि आज कल के युद्ध में मोर्चे किस प्रकार तैयार किये जाते हैं। मान लीजिए कि किसी पल्टन को मोर्चा बांधना है तो उसका पहला काम यह है कि वह कम से कम पांच छः फुट गहरा गढ़ा खोदे। उससे जो मिट्टी निकले उससे शत्रु की ओर एक मेड़ बना दी जाय। उसमें छोटे मोटे छेद, सिपाहियों को देखने और बन्दूक चलाने के लिए, छोड़ दिये जायँ। प्रत्येक खाई इतनी बड़ी हो कि उसमें पन्द्रह बीस अथवा अधिक सिपाहियों की टुकड़ी छिप सके। इसी तरह कुछ थोड़ी सी जगह छोड़ कर दूसरी खाई तैयार की जायगी। इस प्रकार सात आठ सौ सिपाहियों की एक पूरी पल्टन के लिए लगातार ४०, ५० खाइयां खुद जाती हैं। जब छिपने के लिए खाइयां तैयार हो जाती हैं तब उनमें सिपाहियों के लिए और भी सुभीते, अवकाश मिलने पर, किये जाते हैं। पहले तो खाइयां इतनी गहरी की जाती हैं कि बिना सिर झुकाये सिपाही निधड़क घूम फिर सकें। फिर उनकी दीवारों में लम्बे लम्बे खाने बनाये जाते हैं ताकि उनमें बन्दूकें, कारतूस, बम आदि रक्खे जावें। भट्ठियां तैयार की जाती हैं, जिनमें सर्दी विशेष होने पर आग सुलगा दी जाय; सिपाही अपना भोजन तथा चाय-पानी भी तैयार कर लें और गीले कपड़े भी सुखा लें। यदि बर्फ़ तथा पानी पड़ता हो तो [illegible] बड़े बड़े ताक बनाये जाते हैं, जिनमें थके-मांदे सिपाही सो सकें। शत्रु के व्योमयान आकर खाइयों पर बम के गोले छोड़ते हैं। इस कारण ऊपर से पेड़ों की डालियों आदि से इनका मुँह इस प्रकार ढक देते हैं जिससे [illegible] पर बैठे हुए शत्रु इनको न पहचान सकें। प्रत्येक खाई में कम से कम एक 'मशीन गन' नाम की करामाती बन्दूक रहती है। उसमें कारतूसों की माला पहना कर यन्त्र चलाने से बड़ी तेज़ी से गोलियों की धारा छूटती है। सिपाहियों की मामूली बन्दूकें एक मिनट में एक बार, बहुत हुआ तो दो बार, गोली [illegible] सकती हैं, परन्तु इस "मशीन गन" से एक मिनट में [illegible]० गोलियां चलती हैं। [illegible] "मशीन गन" [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible]

फिर भला इसको भय क्यों नहीं !
नाग के फन के हम निकट हैं ॥ ३ ॥

प्रकट में यह शत्रु महान है,
कुटिलता पर है इसमें भरी ।
सुगम है यह क्यों जिनको छिपे |
द्विरद के रद के सम नीति है ॥ ४ ॥

समर है करता रिपु से नहीं,
पर भला हम हैं सुनते इसे ।
जगत में भट की भट मालिका—
चपल है, पल है क्षणभारि भी ॥ ५ ॥

जब बना सुख-सागर शूर को,
मरण भी रण में शुभ है उसे ।
इस लिए मम निर्भय हो सदा
विजन में जन में मन मग्न है ॥ ६ ॥

यम-यजादिक भी मम सामने
रुक नहीं सकते क्षण भी कभी ।
तदपि राम भिड़ा मुझसे कहो,
न वड़वा वड़वानल को तरे ॥ ७ ॥

बल नहीं चलते | मम जानती,
भय सभी मुझसे नर से हुआ ।
हम विपद-निशा-तम के लिए
द्युमणि हैं, मणि हैं निज वंश के ॥ ८ ॥

हर घड़ी मन में मम कामना
बस यही अब है सुन तू प्रिये !
कब करूँ रण-ताण्डव शत्रु के
निकर में कर में करवाल ले ॥ ९ ॥

तुम विहार करो गतचिन्त हो,
सुमदिरा मदिराक्षि | पिया करो ।
कर नहीं सकता मम इन्द्र भी
प्रकृति की कृति की प्रतिकूलता ॥ १० ॥

हिन्दुस्तानी सिपाहियों की वीर

(१)



हिन्दुस्तानी फ़ौज के एक अंग्रेज़
ईपर की लड़ाई में १० नम्बर
पलटन के अद्भुत पराक्रम का
लिख कर भेजा है उसी पर
सरकारी देना [illegible]
होता नहीं न होता होते
युद्ध में उस पलटन के अफ़सरों तथा सिपाहियों ने कि
सरसे मन से भावनाओं के बचन न निकले होंगे ! य
शायद अभी तक केवल अंग्रेज़ी में छपा है । परन्तु
के पाठकों को इसके पढ़ने की उत्कण्ठा होगी । इस
उसी वर्णन के आधार पर यह लेख हिन्दी में लिखा ग

२० नं० की पलटन पञ्जाब की मशहूर पलटनों
है । इसमें दो कम्पनियां सिक्खों की, दो डोगरा राजपूतों
दो पञ्जाबी मुसलमानों की और दो पश्चिमोत्तर सीमा
के पहाड़ी पठानों की हैं । एक कम्पनी में सौ से
अधिक जवान होते हैं । आज कल यह फ़ौज फ़्रांस
में युद्ध कर रही है । जब से यह रणक्षेत्र में पहुँची है
से जिस जिस लड़ाई में इसे लड़ना पड़ा है उस
इसने अपूर्व वीरता दिखाई है । परन्तु २१ अप्रैल से
मई तक ईपर की भयङ्कर लड़ाई में जो काम इसने
दिखाया उसे सुन कर बहादुर से भी बहादुर पठानों को
हिला कर उसकी तारीफ़ करनी पड़ेगी ।

इस पलटन की वीरता का वर्णन करने के पहले
सम्बन्धी कई बातों का कुछ विवरण लिखना इसलिए
श्यक है, कि उन्हें जाने बिना पाठक आगे लिखी हुई
को पूरी तरह न समझ सकेंगे ।

अब वह समय गया जब सिपाही
हो

र अपनी जगह पर आ जाती है। इस टुकड़ी वाले अपनी नहीं कि पहली टुकड़ी वाले किस की तरह आगे हैं। इस तरह बढ़ने से एक तो सिपाहियों का दम टूटता, दूसरे दुश्मन की फ़ौज का ध्यान बँट जाता और हमला करने वालों की ओर से शत्रुओं पर बराबर चलती रहती है। यद्यपि ५७ नं० ने इसी प्रकार और बहादुरी के साथ पहली मंज़िल तै कर ली, उसमें बहुत से आदमी गिर गये। जर्मन लोगों ने लिया कि फ़ौज आ रही है; उनके गोलन्दाज़ों को का ज्ञान भी ठीक ठीक हो गया। इस कारण गोलियों गोलों की बौछार बेचारे हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर लगी। तो भी ग़नीमत थी। ५०० गज़ के अन्त में ऊँची धरती पर पहुँचे तब शत्रुओं को वे स्पष्ट दिखाई दे। इस समय जर्मनों की अग्नि-वर्षा ने महा भयङ्कर रूप धारण किया। तोपों के गोलों के धमाकों से कान फटने गोलियाँ तो मूसलाधार गिरने लगीं। जो गोले सिपाहियों के पास आकर गिरते इनसे किसी किसी के चिथड़े उड़ जाते—किसी का हाथ, किसी का पैर उड़ जाता। कोई सैनिक उड़ कर न जाने कहाँ जा गिरता। गोलियों की सिपाही धड़ाधड़ गिरने लगे। ऐसा मालूम होने लगा कि प्रलय हो रही है। परन्तु धन्य है ५७ नं० के वीरों को! एक भी सिपाही नहीं कचटाया। वे लोग शेरों के समान आगे बढ़ते ही गये।

१०० गज़ की दूरी पर ज़मीन नीची थी। बचे बचाये जो वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि कमाण्डिंग मेजर विलास घायल हो गये हैं; कप्तान रेडफ़ार्ड लफ़्टेनेन्ट बेनविज गोलों के फूटने से निकली हुई ज़हरीली गैस से बेहोश हो गये हैं; कप्तान माहन के पैर में चोट लग गई। परन्तु, तो भी, वे आगे बढ़ते ही गये।

अभी तक जो रास्ता पार हुआ था वह कितना कठिन था, बताया जा चुका है। परन्तु अन्त के छः सौ गज़ और भी भयङ्कर थे। पञ्जाबी सिपाही आगे बढ़ते ही गये। गिरते-पड़ते, मरते-मारते, जर्मन-खाइयों से केवल ८० गज़ की दूरी पर जा पहुँचे। एक झपट और कर पाते तो खाइयों पर वे कूद ही जाते। फिर तो एक एक सिपाही का एक एक पठान दस दस जर्मनों की खबर लेता।

जर्मन लोग तलवार अथवा संगीन की लड़ाई में हिन्दुस्तानी फ़ौज के सामने नहीं ठहर सकते, यह बात सभी को विदित है। अतएव जब जर्मनों ने देखा कि मशीन गनों, तोपों और बन्दूकों द्वारा इन्हें नहीं रोक सकते तब उन्होंने एक अमानुषीय अस्त्र का प्रयोग किया, अर्थात् ज़हरीली गैस छोड़ी।

गैस छूटने के पहले ५७ नं० का क्या हाल था, यह भी सुन लेना चाहिए। अँगरेज़ अफ़सरों में मेजर ड्यूहान, कप्तान मेक-कार्ड और कप्तान बेन्कम् मारे गये थे। हिन्दुस्तानी अफ़सरों में सूबेदार बधावासिंह और जमादार कृपासिंह भी काम आये थे। सूबेदार फ़तहजंग बहादुर, जमादार वजागरसिंह, जमादार हयात ख़ाँ और जमादार काले ख़ाँ घायल होकर गिर गये थे। सिपाही कितने मारे गये या घायल हुए थे, इसकी संख्या लेखक को ज्ञात नहीं। परन्तु उस पल्टन का भोर हो गया था, यह निश्चय समझना चाहिए। हर पल्टन में लड़ाई के समय १२ अँगरेज़ और १६ हिन्दुस्तानी अफ़सर रहते हैं। उनमें से उस हमले में कितने गये, इसकी भी ख़बर नहीं। अन्दाज़न अधिक से अधिक ५, ६ रह गये होंगे। अंगरेज़-अफ़सरों में केवल दो ऐसे बचे थे जो चल-फिर सकते थे। उनमें से कप्तान माहन घायल तो हो गये थे, परन्तु ज़िद करके साथ बने थे। लफ़्टिनेन्ट डीडस भी बिना आंच खाये न बचे थे। उन्हें भी ज़हरीली गैस का ठसका बैठ गया था; परन्तु अपूर्व धैर्य के साथ वे गिरते गिराते एक झोंपड़ी में जा घुसे और ४, ५ सिपाहियों की सहायता से झोंपड़ी की आड़ से जर्मनों को मशीन गन की मार देने लगे। हिन्दुस्तानी अफ़सरों में भी केवल ३ बचे थे। वे भी थोड़ा बहुत घायल थे। इतने में शत्रुओं ने पूर्वोक्त अमानुषीय पेंच खेला। सिपाहियों के पास इस गैस से बचने का कोई उपाय न था। किसे आशा थी कि जर्मनों के सदृश सभ्य लोग आधुनिक धर्म-युद्ध की नीति के विरुद्ध इस नीच प्रयोग का उपयोग करेंगे! यदि अँगरेज़ी सेना के सिपाही दूर होते तो वहाँ तक पहुँचने में गैस का बल कुछ कम हो जाता। परन्तु ५७ नं० के सिपाही केवल ८० गज़ की दूरी पर थे। उन्हें ताज़े से ताज़े गैस की तेज़ी सहनी पड़ी। इस गैस के नाक मुँह में जाने से जो कष्ट मनुष्यों तथा पशुओं को होता है उसका ठीक ठीक वर्णन करना बहुत कठिन है। उसका ठसका लगते ही गला घुटने, मुँह सूखने और सग़ज़ फटने लगता है और

इस प्रकार मोर्चा तैयार करके सिपाही लोग चूहों के समान घरों के भीतर रहते हैं, वहीं खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सब कार्य होते हैं। बाहर निकलना यदि अत्यन्त आवश्यक हुआ तो चिमगादड़ के समान ये लोग रात को निकलते हैं। दिन रात कुछ आदमी मेंड़ के छिद्रों से शत्रु को ताकते हुए बैठे रहते हैं। कोई कोई दूरबीन लगा कर भी देखा करते हैं। दुश्मन दिखाई देते ही सन्तरी लोग सिपाहियों को चेतावनी देकर मेंड़ पर बुला लेते हैं। बस, फिर क्या पूछना है, शत्रु पर गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी जाती है। यदि वह पास पहुँच गया तो उस पर बम के गोले भी फेंके जाते हैं। जर्मन लोग ... से ...
लगाने वाले तेज़ाब और प्राणनाशक गैस भी छोड़ते ...

तारीख़ २१ दिसम्बर के दिन २७ नं० की पल्टन ...
पुर ब्रिगेड (बेड़े) में शामिल थी। इस बेड़े में ...
एक गोरा पल्टन था, जिसका नाम कनाट रेंजर्स ...
पल्टन की दाहनी तरफ़ फ़रासीसियों का एक ...
गोरा पल्टन की दाहनी ओर २७ नं० और उसके ...
१२९ नम्बर बिलोचियों की पल्टन थी। इस प्रकार ...
का फ़ीरोज़पुर बेड़ा पूरा हुआ। उसकी दाहनी ओर ...
ब्रिगेड था, जैसा कि नीचे के नक़्शे में बताया गया ...

फ़रासीसी बेड़ा
फ़ीरोज़पुरी बेड़ा: कानाट रेंजर्स, नं० २७, नं० १२९
जालन्धरी बेड़ा
२०० गज़ कुछ चढ़ाव
कुछ उतार ४०० ग०
विशेष चढ़ाव ६०० गज़
जर्मन सेना

उस दिन नं० २७ को अन्य पल्टनों के साथ यह हुक्म हुआ कि सामने के जर्मन मोर्चों पर हमला करके जर्मन खाइयों को ले लो। हमला करने के पहले यह आवश्यक हुआ कि कुछ आदमी गुप्त रूप से जाकर सामने की ज़मीन को अच्छी तरह देख आवें, जिससे सिपाहियों को रवाना होने के पहले यह ज्ञात हो जाय कि किधर आड़ है, किधर बचाव हो सकता है और किधर नहीं हो सकता। परन्तु समय का अभाव होने के कारण यह काम न हो सका। अफ़सरों को इतना भी न मालूम था कि जर्मन लोगों की खाइयां किस विशेष जगह पर हैं। अनुमान से यह जाना गया कि प्रायः १२०० गज़ की दूरी पर जो पहाड़ियां हैं वहीं पर बहुत करके जर्मन लोग छिपे हुए हैं। अँगरेज़ी सेना के मोर्चे से ज़मीन का चढ़ाव २०० गज़ तक देख पड़ता था। वहां से अन्दाज़न चार सौ गज़ का उतार था। वहां से फिर ६०० गज़ का चढ़ाव था। यह सब पार करने पर उन पहाड़ियों तक सिपाही पहुँच सकते थे। इस पन्द्रह सौ गज़ के चढ़ाव-उतार-युक्त मैदान में कोई भी जगह ऐसी न थी जहां दुश्मन के गोले-गोलियां बराबर न आ सकती हों। आड़ तो कहीं थी ही नहीं। ऐसे मैदान से ...
उजाले में जाना मानो यमराज के दरबार में ...
भेज तुरन्त आने का निमन्त्रण देना था। ...
की दूरी पार करना लोहे के चने चाबना था ...
सौ गज़ की दूरी पार करके जर्मन फ़ौज की ...
हमला करना किस प्रकार सम्भव था? ऐसे प्र...
के मन में उठ सकते हैं। परन्तु सिपाहियों ...
निराला ही है। उन्हें अफ़सरों ने हुक्म दि...
तामील होनी चाहिए। यदि जलती आग में ...
मिले तो सच्चा सिपाही बिना आनाकानी ...
कूद पड़ेगा।

२७ नं० पल्टन के सिपाहियों ने झपट क...
सौ गज़ पार कर लिये। लड़ाई में जब कहीं कि...
किसी जगह झपट कर जाना होता है तब उसकी ...
बन जाती हैं और वे बारी बारी से दौड़ती हुई ...
टुकड़ी दौड़ कर १००—२० गज़ जाती है ...
लेट कर दुश्मन पर गोली चलाना आरम्भ ...
उतनी देर विश्राम भी कर लेती है। इतने में ...

अपनी जगह पर आ जाती है। इस टुकड़ी वाले अपनी [illegible] कि पहली टुकड़ी वाले जिस की तरह आगे [illegible]। इस तरह बढ़ने से एक तो सिपाहियों का दम [illegible]ता, दूसरे दुश्मन की फ़ौज का ध्यान बँट जाता [illegible]। हमला करने वालों की ओर से शत्रुओं पर बराबर [illegible] जारी रहती है। यद्यपि ४० नं० ने इसी प्रकार [illegible]र बहादुरी के साथ पहली मंजिल तै कर ली, [illegible] इसके बहुत से आदमी गिर गये। जर्मन लोगों ने [illegible]लेया कि फ़ौज आ रही है; उनके गोलन्दाज़ों को [illegible] का ज्ञान भी ठीक ठीक हो गया। इस कारण गोलियां [illegible] गोलों की बौछार बेचारे हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर [illegible]गी। तो भी ग़नीमत थी। २०० गज़ के अन्त में [illegible] ऊँची धरती पर पहुँचे सब शत्रुओं को वे स्पष्ट दिखाई [illegible]गे। इस समय जर्मनों की अग्नि-वर्षा ने महा भयङ्कर [illegible]धारण किया। तोपों के गोलों के धमाकों से कान फटने [illegible] गोलियां तो मूसलाधार गिरने लगीं। जो गोले सिपा-[illegible] के पास आकर गिरते उनसे किसी किसी के चिथड़े [illegible]ाते—किसी का हाथ, किसी का पैर उड़ जाता। कोई [illegible] समेत उड़ कर न जाने कहाँ जा गिरता। गोलियों की [illegible]से सिपाही धड़ाधड़ गिरने लगे। ऐसा मालूम होने [illegible] कि प्रलय हो रही है। परन्तु धन्य है ४० नं० के [illegible]वियों को! एक भी सिपाही नहीं कचटाया। वे लोग [illegible]पुरुषों के समान आगे बढ़ते ही गये।

[illegible] ६०० गज़ की दूरी पर ज़मीन नीची थी। बचे बचाये [illegible]ाही जो वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि कमाण्डिंग [illegible]सर मेजर विलांस घायल हो गये हैं, कप्तान रेडफ़ार्ड [illegible]र लफ़्टेनेन्ट बेनबिज गोलों के फूटने से निकली हुई ज़हरीली [illegible] से बेहोश हो गये हैं; कप्तान माहन के पैर में चोट लग [illegible]ई है। परन्तु, तो भी, वे आगे बढ़ते ही गये।

अभी तक जो रास्ता पार हुआ था वह कितना कठिन [illegible] यह बताया जा चुका है। परन्तु अन्त के छः सौ गज़ [illegible]र भी भयङ्कर थे। पञ्जाबी सिपाही आगे बढ़ते ही गये [illegible]र गिरते-पड़ते, मरते-मारते, जर्मन-खाइयों से केवल ८० [illegible]ज़ की दूरी पर आ पहुँचे। एक झपट और कर पाते तो [illegible] सीधी खाइयों पर वे कूद ही जाते। फिर तो एक एक [illegible]पञ्जाबी या एक एक पठान दस दस जर्मनों की ख़बर लेता।

जर्मन लोग तलवार अथवा संगीन की लड़ाई में हिन्दुस्तानी फ़ौज के सामने नहीं ठहर सकते, यह बात सभी को विदित है। अतएव जब जर्मनों ने देखा कि संगीन गोलों, तोपों और बन्दूकों द्वारा उन्हें नहीं रोक सकते तब उन्होंने एक अमानुषीय अस्त्र का प्रयोग किया, अर्थात् ज़हरीली गैस छोड़ी।

गैस छूटने के पहले ४० नं० का क्या हाल था, यह भी सुन लेना चाहिए। अँगरेज़ अफ़सरों में मेजर ड्यूहान, कप्तान मेक-कार्ड और कप्तान बेन्कस मारे गये थे। हिन्दुस्तानी अफ़सरों में सूबेदार बघावासिंह और जमादार कृपासिंह भी काम आये थे। सूबेदार फ़तहजंग बहादुर, जमादार उजागरसिंह, जमादार हयात ख़ाँ और जमादार काले ख़ाँ घायल होकर गिर गये थे। सिपाही कितने मारे गये या घायल हुए थे, इसकी संख्या लेखक को ज्ञात नहीं। परन्तु उस पलटन का भोर हो गया था, यह निश्चय समझना चाहिए। हर पलटन में लड़ाई के समय १४ अँगरेज़ और १६ हिन्दुस्तानी अफ़सर रहते हैं। उनमें से उस हमले में कितने गये, इसकी भी ख़बर नहीं। अन्दाज़न अधिक से अधिक ५, ६ रह गये होंगे। अँगरेज़-अफ़सरों में केवल दो ऐसे बचे थे जो चल-फिर सकते थे। उनमें से कप्तान माहन घायल तो हो गये थे, परन्तु ज़िद करके साथ बने थे। लफ़्टिनेन्ट डीडस भी बिना आंच खाये न बचे थे। उन्हें भी ज़हरीली गैस का ठसका बैठ गया था; परन्तु अपूर्व धैर्य के साथ वे गिरते गिराते एक झोंपड़ी में आ घुसे और ४, ५ सिपाहियों की सहायता से झोंपड़ी की आड़ से जर्मनों को मशीन गन की मार देने लगे। हिन्दुस्तानी अफ़सरों में भी केवल ३ बचे थे। वे भी थोड़ा बहुत घायल थे। इतने में शत्रुओं ने पूर्वोक्त अमानुषीय पेंच खेला। सिपाहियों के पास इस गैस से बचने का कोई उपाय न था। किसे आशा थी कि जर्मनों के सदृश सभ्य लोग आधुनिक धर्म-युद्ध की नीति के विरुद्ध इस नीच प्रयोग का उपयोग करेंगे! यदि अँगरेज़ी सेना के सिपाही दूर होते तो वहाँ तक पहुँचने में गैस का बल कुछ कम हो जाता। परन्तु ४० नं० के सिपाही केवल ८० गज़ की दूरी पर थे। उन्हें ताज़े से ताज़े गैस की तेज़ी सहनी पड़ी। इस गैस के नाक मुँह में जाने से जो कष्ट मनुष्यों तथा पशुओं को होता है उसका ठीक ठीक वर्णन करना बहुत कठिन है। उसका ठसका लगते ही गला घुटने, मुँह सूखने और मग़ज़ फटने लगता है और

प्राणी हाथ पैर पछाड़ कर धरती पर गिर पड़ता है। यदि गैस तेज़ अथवा ताज़ी हुई तो गला घुट कर प्राण निकल जाते हैं। यदि गैस से कोई मरा नहीं तो औषध सेवन करने पर भी अच्छे होने में कई हफ़्ते लग जाते हैं। बीमारी की दशा में भी मरीज़ का कष्ट असहनीय होता है।

इस आपत्ति से बचने के लिए अब तो सिपाही एक पट्टी और एक विशेष औषध से तर रुई की गद्दी रखते हैं। परन्तु उस समय इस प्रकार का कोई प्रबन्ध न था।

नं० ४७ पल्टन में एक तो अफ़सरों की कमी थी, दूसरे आदमी भी बहुत कम बचे थे, तीसरे इस पैशाचिक गैस का सामना करना पड़ा! आफ़त पर आफ़त! गला घुटने लगा। इस कारण बेहोश हो कर बचे खुचे आदमी धड़ाधड़ गिरने लगे। उनके बाईं तरफ़ जो गोरा पल्टन तथा फ़रासीसी बेड़ा बढ़ रहा था उसे भी गैस के कारण बहुत हानि उठा कर लौटना पड़ा। पंजाबियों का वहाँ रहना अब व्यर्थ था। लाचार हो कर नं० ४७ को भी अपने असीम पराक्रम का फल, जो प्रायः मिलने ही को था, छोड़ कर लौटना पड़ा। रास्ते में मुर्दों तथा घायलों के ढेर के ढेर उन्हें छोड़ने पड़े।

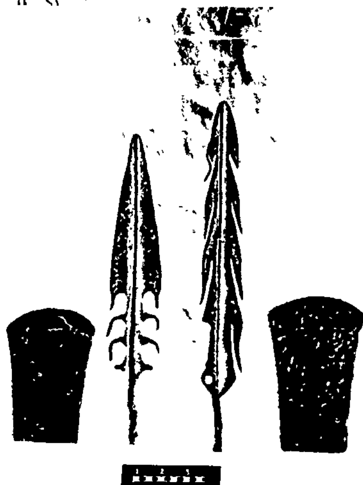
नं०५८ के जमादार मीर दोस्त ने (जो खाइयों की रक्षा के लिए पीछे छोड़ दिये गये थे) देखा कि घायल पीछे रह गये हैं और उन्हें गैस के कारण असह्य कष्ट हो रहा है। यह उनसे न देखा गया। बचे खुचे सिपाही, जो लौट कर आये थे, गैस के मारे तड़फड़ा रहे थे। उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन पर गैस ने कम असर किया था। उन्हें दवा आदि सुँघाने पर जब कुछ होश आया तब उन्हें मीर दोस्त ने अपने साथ चलने को कहा और उनकी सहायता से घायल अफ़सरों तथा सिपाहियों को उठा लाने का काम उन्होंने आरम्भ किया। जर्मनों ने इन पर भी गोली बरसाना आरम्भ किया। मीर दोस्त को चोट भी लगी, परन्तु उन्होंने इस काम को न छोड़ा। खोज खोज कर वे घायलों को लाते रहे। इस विलक्षण बहादुरी के बदले में जमादार साहिब तुरन्त सूबेदार बनाये गये और उन्हें विक्टोरिया क्रास का प्रसिद्ध तमग़ा मिला।

अब एक सिक्ख की बहादुरी देखिए। कप्तान [illegible] के अर्दली सिक्ख [illegible]सिंह के [illegible] था, इसने [illegible] के आरम्भ में ही, एक गोली इस [illegible] था। उसने बहुत [illegible]

जा रहा था; परन्तु उसको कप्तान साहिब के [illegible] हुक्म था। सो वह अपने घाव की परवा न करके पीछे पीछे बना रहा। परन्तु बहुत रुधिर जाने से धीरे धीरे बलहीन होता जाता था। इतने में [illegible] साहिब मारे गये। तब वह सिपाही उनकी लाश [illegible] पर लाद कर डेरे की ओर लौटा। परन्तु [illegible] के कारण बहुत दूर न जा सका। लाश उतारनी पड़ी। तलवार आदि लेकर वह गिरता पड़ता डेरे पर पहुँचा। सेवक मानसिंह को भी एक विशेष तमग़ा दिया गया।

जमादार मङ्गलसिंह की भी बात सुन [illegible] का टसका लगने से वे बेहोश होगये और [illegible] मैदान में ही पड़े रह गये। जमादार मीर दोस्त [illegible] उठा लाये। परन्तु ज्योंही उन्हें होश आया कि [illegible] दुख भूल गये और झपट कर दूसरों की सहायता [illegible] लिए लौट गये। वे स्वयं बड़े कष्ट में थे, परन्तु [illegible] न करके दूसरों की चिन्ता करते रहे। इस [illegible] भी दूसरे दर्जे के आर्डर आफ़ मेरिट का तमग़ा [illegible] अँगरेज़-अफ़सरों में कप्तान साहब तथा लफ़्टेंट [illegible] वीरता का वर्णन हम कर चुके हैं। लफ़्टेंट मीन [illegible] पराक्रम दिखलाया। इनका काम केवल यह था [illegible] बढ़ते हुए सिपाहियों को गोली-बारूद पहुँचाने [illegible] इन पर भी ताक ताक कर निशाना जमाते [illegible] गोलियों की परवा न करके ये अपना काम करने [illegible] में जब देखा कि अँगरेज़ अफ़सर गिर गये तब [illegible] सिपाहियों के साथ हमले में ये भी शामिल हो [illegible] जब इन्होंने देखा कि गोली-बारूद देने का [illegible] शिथिल होगया है तब दौड़ कर उसका प्रबन्ध [illegible] यह ठीक हो गया कि दौड़ कर फिर लड़ने लगे। [illegible] का उन्माद दिखाने के कारण इन्हें भी मिलिटरी [illegible] तमग़ा मिला है।

यहाँ पर ४७ नं० पल्टन के वीर पुरुषों की [illegible] समाप्त होती है। इस युद्ध में हिन्दुस्तानी फ़ौज [illegible] काम कर दिखाये हैं। अँगरेज़ी, फ़रासीसी, [illegible] सेनाओं की बहुतेरी पल्टनों ने भी ऐसे ऐसे [illegible] कर दिखलाये हैं कि अब उनका इतिहास लिखने [illegible] सिपाही जब सारी पृथ्वी पर इनका [illegible]



तांबे के प्राचीन बल्लम और कुल्हाड़ियां।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ही अशा है कि उन प्रसिद्ध वीरता सूचक घटनाओं में हिन्दुस्तानी पल्टनों के बहुतेरे कामों का वर्णन भी होगा।

नं० १७ ने ऐसा विलक्षण धैर्य, ऐसी अतुल वीरता, ऐसी क्ति और सेना-सम्बन्धिनी ऐसी आज्ञाकारिता का रण दिखाया है कि उसके समान दूसरा उदाहरण इतिहास में भी मिलना कदाचित् कठिन होगा। पल्टन ने ईपर की लड़ाई में अपना प्रायः सर्वनाश लेया है। पञ्जाब और सीमा-प्रान्त के सैकड़ों घरों न छा गया होगा। न जाने कितनी औरतें विधवा गई होंगी। कितने बालक अनाथ हो गये होंगे कितनी माताओं को पुत्रशोक सहना पड़ा होगा। उन वीर पुरुषों ने स्वार्थ नहीं देखा, केवल यश के अपने प्राण होम दिये। उन्होंने सच्चा क्षत्रिय-धर्म हा। उन्होंने हिन्दुस्तानियों का नाम उज्ज्वल कर दिया और जगत् को यह दिखा दिया है कि इस देश के निवासी पड़ने पर क्या कर सकते हैं और क्या करने की हिम्मत है। यदि इस देश के वासी उनके गुणों का अनुकरण और अपने छोटे छोटे बच्चों को उनकी वीरत्व-सूचक यें सुना कर उन्हें वैसा ही वीर बनाने की चेष्टा करें, तो यह कहेंगे कि इन सिपाहियों के प्राण व्यर्थ नहीं गये, वा जो घायल हो गये उन्होंने अपने घावों का कष्ट व्यर्थ भोगा। लज्जाशङ्कर झा।

कोर्ट आव् वार्ड्स।

[२]

प्रबन्ध।



र्ट आव् वार्ड्स के समस्त अधिकार बोर्ड आव् रेविन्यू को प्राप्त हैं। बोर्ड के अफ़सर कमिश्नरों की मारफ़त प्रत्येक ज़िले का काम ज़िले के हाकिम से लेते हैं या उसकी गरानी में कोर्ट के मैनेजर से कराते हैं। इस तरह प्रत्येक ज़िले का काम ज़िले के हाकिम ही के ताल्लुक़ होता है। काम का प्रबन्ध दो तरह होता है। एक प्रबन्ध "स्पेशल स्कीम" कहाता है। उसमें ज़िले के हाकिम की सहायता के लिए एक मैनेजर दिया जाता है। उस मैनेजर को निश्चित अधिकार प्राप्त रहते हैं। दूसरा प्रबन्ध "आर्डिनेरी स्कीम" कहाता है। उसमें समस्त अधिकार ज़िले के हाकिम के ही हाथ में रहते हैं। मालगुज़ारी वसूल करने इत्यादि की देख भाल के लिए उसे एक असिस्टेंट मैनेजर दिया जाता है। पहला "स्कीम" बड़े बड़े इलाक़ों में या ऐसे ज़िले में जारी होता है जहाँ अनेक इलाक़े मिल कर एक बड़े इलाक़े के बराबर हो जाते हैं। प्रायः १। या २ लाख वार्षिक आमदनी तक के इलाक़ों में "आर्डिनेरी स्कीम" जारी होता है। आमदनी इससे अधिक होने से "स्पेशल स्कीम" का आश्रय लिया जाता है। पर कभी कभी इसके प्रतिकूल भी कार-रवाई होती है। जिस ज़िले में कोर्ट की आमदनी बहुत ही कम होती है वहाँ असिस्टेंट मैनेजर भी नहीं दिया जाता। काम की देखभाल सरकारी अमलों ही को करनी पड़ती है।

ज़िले के हाकिम से लेकर बोर्ड तक जो देख-भाल होती है उसको श्रेष्ठ निरीक्षण अर्थात् "सुपीरियर सुपरविज़न" कहते हैं। इस निरीक्षण, निगरानी या देख-भाल के लिए जो अमले या अफ़सर रहते हैं उनका ख़र्च निकालने के लिए कोर्ट आव् वार्ड्स कर लगाता है। यह कर हर साल समस्त इलाक़ों की आमदनी के अनुसार घटा बढ़ा करता है। परन्तु आर्डिनरी स्कीम में ५) सैकड़ा और स्पेशल स्कीम में ३) सैकड़ा से अधिक नहीं हो सकता। आज कल यह कर आर्डिनरी स्कीम में २। और स्पेशल स्कीम में ११ रुपया सैकड़ा के लगभग लिया जाता है। कोर्ट आव् वार्ड्स इस बात की जाँच-परताल करता रहता है कि प्रबन्ध का ख़र्च आवश्यकता से अधिक न हो जाय। वह शायद ही कभी ऐसा ख़र्च स्वीकार करता है जो सब मिला कर १०) सैकड़ा से अधिक हो जाय।

बजट या चिट्ठा।

[illegible] की सुगमता के लिए कोर्ट आफ़ वार्ड्स प्रत्येक ज़िले के साल भर का बजट या चिट्ठा तैयार कराता है। इसकी [illegible] होती है। जब तक कोई ख़र्च इस बजट में दर्ज करके कोई भी मंज़ूर नहीं करा लिया जाता तब तक उसे करने का अधिकार किसी को नहीं होता। [illegible] में इस बजट का कुल ख़र्च ज़िले के सभी इलाक़ों पर, उनकी आमदनी के अनुसार, बाँट दिया जाता है। तब उस बँटी हुई रक़म के आधार पर प्रत्येक इलाक़े का एक और बजट बनता है। जब यह भी मंज़ूर हो जाता है तब ख़र्च होता है। इस बजट में कोर्ट आफ़ वार्ड्स सब तरह के ख़र्च दर्ज करा देता है। जैसे वार्ड का ख़र्च, मुक़द्दमों का ख़र्च, मकानात बनाने का ख़र्च, इत्यादि। इससे इस बात का भी अनुमान हो जाता है कि वर्ष में कितनी आमदनी होगी।

अब बजट बनाने का रिवाज उन रियासतों में भी हो गया है जो कोर्ट के अधीन नहीं हैं। बजट बनाना सुगम बात नहीं। ऐसा बजट बनाने में, जिसके बदलने की साल भर आवश्यकता न हो, बड़ी दूरदर्शिता की आवश्यकता है। अनेक ज़मींदारों को यह तो ज्ञात रहता है कि उनके इलाक़े की वार्षिक निकासी कितनी है, परन्तु उस निकासी को वार्षिक आमदनी समझ लेना भूल है। साल में कुछ न कुछ घटी-बढ़ी लगी ही रहती है। लगान में इज़ाफ़ा होता है; कृषक भाग जाता अथवा मर जाता है; फ़सल बिगड़ जाती है; लगान वसूल नहीं होता—इत्यादि। इन सब बातों पर विचार करके और मौसम की दशा देख कर यह अनुमान करना पड़ता है कि इस वर्ष इतनी आमदनी हो सकेगी। ख़र्च का ठीक ठीक अनुमान करना तो और भी कठिन है। क्योंकि अमलों (नौकर-चाकरों) को छोड़ कर और सारे ख़र्च अनियमित होते हैं। यथा—इसका अन्दाज़ करना कि अमुक [illegible] मुक़द्दमा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] — यही [illegible] काम है। इस दशा में [illegible] बजट [illegible] बनता तो [illegible] उसके अनुसार [illegible] होना [illegible] [illegible] कोर्ट आफ़ वार्ड्स के अधीन इलाक़ों [illegible] यह दशा है तब [illegible] अधीन इलाक़ों के बजटों की [illegible] इलाक़ों में तो बजट बनता ही नहीं, [illegible] इलाक़ा [illegible] हुआ तो देना पड़ा [illegible] जाता है कि उसके अनुसार एक दिन भी काम [illegible] हो सकता। यद्यपि [illegible] ही कुछ इलाक़े ऐसे [illegible] जिनमें साल भर बजट के अनुसार ही काम होता।

परन्तु वास्तव में बजट बड़ा उपयोगी [illegible] है। बिना उसके अँधेरी कोठरी में हाथ डालना [illegible] जहाँ मैनेजर मुक़र्रर है और मालिक के हाथ [illegible] केवल देख-भाल है वहाँ तो बजट ही के सहारे [illegible] की देख-भाल हो सकती है। मैनेजर इलाक़े [illegible] आमदनी और ख़र्च का बजट देता है। तद्नु[illegible] ही उसे ख़र्च करने का अधिकार दे दिया [illegible] है। उससे अधिक वह नहीं ख़र्च कर सक[illegible] मालिक का काम केवल इतना रह जाता है [illegible] देखता रहे कि उससे अधिक ख़र्च तो मैनेजर [illegible] कर रहा। आमदनी का भी यही हाल है। [illegible] दर्ज की गई आमदनी का ज़िम्मेदार भी मैनेजर [illegible] उसे उतनी आमदनी करनी ही चाहिए। उसमें [illegible] होने पर मालिक को यह देखना चाहिए कि [illegible] के जो कारण मैनेजर बताता है वे ठीक हैं या [illegible] और उसे पूरा करने का क्या उपाय है। ऊप[illegible] बता चुके हैं कि कोर्ट आव् वार्ड्स, अमलों के [illegible] के लिए, प्रति वर्ष कर लगाता है। जिन इलाक़ों [illegible] प्रबन्ध ज़मींदार ख़ुद करता है उनमें, [illegible] "प्राइवेट" रियासतों में, यह कर नहीं लगता [illegible]

...डेट अर्थात् हिसाब-किताब की जाँच ।

...र्ट आव् वार्ड्स बड़े बड़े इलाक़ों के हिसाब की ...-पड़ताल के लिए और अधिकांश यह देखने के ... कि कोई अमला या नौकर बेईमानी से रुपया तो ... लेता, हर साल एक आडिटर, अर्थात् जाँच करने ...ला, भेजता है। यदि उसे कुछ गड़बड़ मिलती है ... वह बता देता है। उसका प्रबन्ध हो जाता है। ...कारी आडिटरों की फ़ीस, मालगुज़ारी निकाल ..., आमदनी पर ॥) सैकड़ा होती है। आडिटर लोग ...ह में तीन चार महीने का हिसाब बड़ी बारीकी ... देखते हैं। यदि उसमें कुछ गड़बड़ पाते हैं तो और ... देखते हैं—नहीं तो नहीं। प्राइवेट अर्थात् मालिक ... के प्रबन्धाधीन रियासतों में अब तक इस जाँच ... प्रचार नहीं है। अतएव यह रुपया भी बचत रहता है। परन्तु यह बचत न करना ही अच्छा है। ...कि जाँच से मालिक को अपने मैनेजर के काम ... पूरा पूरा हाल ज्ञात होता रहता है। अब अनेक ...ग निज के तौर पर भी आडिटरों का काम करने ...गे हैं। उनको सरकार से ऐसा करने के सरटि-...फ़िकट मिले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि प्राइवेट ...यासतें भी इन लोगों से काम लें। इससे रिया-...तों की वार्षिक उन्नति या अवनति का ठीक ...ठीक पता उन्हें लग सकता है। यह काम थोड़े ...र्च से हो सकता है। आज कल प्राइवेट रियासतों ... बहुत दग़ाबाज़ी होती है। वह इस जाँच से अधि-...कांश बन्द हो सकती है। एक ही आडिटर से हर साल जाँच कराने की अपेक्षा नये नये आडिटर को बुलाना अच्छा है। रियासत के मुस्तक़िल नौकरों की ...कारगुज़ारी का असर नये आदमी पर कम पड़ेगा और मालिक को सच्चा हाल ज्ञात हो जायगा। आडिटर किसी नामी कम्पनी का आदमी होना चाहिए और उसकी रिपोर्ट पर मालिक को पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए। यह काम मैनेजर के सिपुर्द न करना चाहिए। क्योंकि आडिटर की रिपोर्ट में मैनेजर ही के काम की जाँच का उल्लेख रहता है। ऐसा न करने से आडिटर को दिया गया रुपया व्यर्थ जाता है। आडिटर की रिपोर्ट मालिक के इतमीनान के लिए होती है और सब कहीं ख़ुफ़िया समझी जाती है।

आडिटर के ख़र्च के सिवा पोस्टेज का ख़र्च, फ़ार्मों आदि की छपाई और स्टेशनरी (काग़ज़, क़लम, दावात आदि) का ख़र्च भी इसी प्रबन्ध के लिए निकाले गये रुपये से होता है। ज़िले के दफ़्तर का किराया, डाक ले जाने वाले हरकारों की तनख़्वाह और मैनेजर के दफ़्तर के पंखाकुली आदि का ख़र्च तथा उनका सफ़र-ख़र्च भी इसी मद से होता है। प्राइवेट रियासतें, दफ़्तर के किराये, डाक के ख़र्च (क्योंकि रियासतों में बेगारी, या बलहर, या गुड़ैत यह काम करते हैं) और मैनेजर के दफ़्तर के गर्मी के मौसम के ख़र्च से बरी होती हैं।

सदर-ख़र्च ।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, कोर्ट आव् वार्ड्स प्रबन्ध-सम्बन्धी कुल ख़र्च को १०) सैकड़ा से बढ़ने नहीं देता। प्राइवेट रियासतों में इसे निरीक्षण या निगरानी (सुपीरियर सुपरविज़न) का ख़र्च नहीं। ऊपर गिनाये हुए ख़र्च भी उन्हें नहीं करने पड़ते। इस दशा में हमारी राय है कि उनके सदर दफ़्तर का ख़र्च दो या ढाई रुपया सैकड़ा होना चाहिए। तफ़सील यह है—

मैनेजर की तनख़्वाह और सफ़र-ख़र्च ॥) सैकड़ा से ॥।) तक।

बाक़ी अमलों की तनख़्वाह ॥) सैकड़ा से १) तक।

आडिटर का ख़र्च ॥) सैकड़ा से ॥।) तक।

अन्य ख़र्च ।) सैकड़ा।

इसका टोटल निकालने पर २) सैकड़ा से २॥) तक हुआ।

थोड़ी तनख़्वाह के नौकर रखना बड़ी भूल है। ऐसे नौकरों के कारण अनेक रियासतें बर्बाद हो गई हैं। थोड़ी तनख़्वाह के आदमी ईमानदारी से अपना निर्वाह नहीं कर सकते। इनका परिणाम है।

बजट या चिट्ठा।

जाँच-परताल की सुगमता के लिए कोर्ट आव् वार्ड्स प्रत्येक ज़िले के ख़र्च का बजट या चिट्ठा तैयार कराता है। उसकी ख़ूब छान-बीन होती है। जब तक कोई ख़र्च इस बजट में दर्ज करके बोर्ड से मंज़ूर नहीं करा लिया जाता तब तक उसे करने का अधिकार किसी को नहीं होता। स्पेशल स्कीम में इस बजट का कुल ख़र्च ज़िले के सभी इलाक़ों पर, उनकी आमदनी के अनुसार, बाँट दिया जाता है। तब उस बँटी हुई रक़म के आधार पर प्रत्येक इलाक़े का एक और बजट बनता है। जब वह भी मंज़ूर हो जाता है तब रुपया ख़र्च होता है। इस बजट में कोर्ट आव् वार्ड्स सब तरह के ख़र्च दर्ज करा देता है। जैसे वार्ड का ख़र्च, मुक़द्दमों का ख़र्च, मकानात बनाने का ख़र्च, इत्यादि। इससे इस बात का भी अनुमान हो जाता है कि वर्ष में कितनी आमदनी होगी।

अब बजट बनाने का रिवाज उन रियासतों में भी हो गया है जो कोर्ट के अधीन नहीं हैं। बजट बनाना सुगम बात नहीं। ऐसा बजट बनाने में, जिसके बदलने की साल भर आवश्यकता न हो, बड़ी दूरदर्शिता की आवश्यकता है। अनेक ज़मींदारों को यह तो ज्ञात रहता है कि उनके इलाक़े की वार्षिक निकासी कितनी है, परन्तु उस निकासी को वार्षिक आमदनी समझ लेना भूल है। साल में कुछ न कुछ घटी-बढ़ी लगी ही रहती है। लगान में इज़ाफ़ा होता है; कृषक भाग जाता अथवा मर जाता है; फ़सल बिगड़ जाती है; लगान वसूल नहीं होता—इत्यादि। इन सब बातों पर विचार करके और मौसम की दशा देख कर यह अनुमान करना पड़ता है कि इस वर्ष इतनी आमदनी हो सकेगी। ख़र्च का ठीक ठीक अनुमान करना तो और भी कठिन है। क्योंकि अमलों (नौकर-चाकरों) को छोड़ कर और सारे ख़र्च अनियमित होते हैं। यथा—इसका अन्दाज़ करना कि अमुक वर्ष अमुक मुक़द्दमा लड़ना पड़ेगा और उसमें इतना, विवाह आदि के इतने न्योते देने पड़ेंगे, नात पर इतना ख़र्च पड़ेगा—बड़ी [illegible] काम है। इस दशा में यदि बजट ठीक ठी[illegible] बनता तो या तो उसके अनुसार काम [illegible] होता या उसे रोज़ रोज़ बदलना पड़ता [illegible] कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन इलाक़ों के ब[illegible] यह दशा है तब अपने ही अर्थात् [illegible]न्याधीन इलाक़ों के बजटों की कौन क[illegible] इलाक़ों में या तो बजट बनता ही नहीं, [illegible] इलाक़ा ऋणी हुआ तो ऐसा कड़ा बजट [illegible] जाता है कि उसके अनुसार एक दिन भी क[illegible] हो सकता। कदाचित् ही कुछ इलाक़े [illegible] जिनमें साल भर बजट के अनुसार ही का[illegible] होगा।

परन्तु वास्तव में बजट बड़ा उपयोगी [illegible] है। बिना उसके अँधेरी कोठरी में हाथ ड[illegible] जहाँ मैनेजर मुक़र्रर है और मालिक के [illegible] केवल देख-भाल है वहाँ तो बजट ही के स[illegible] की देख-भाल हो सकती है। मैनेजर [illegible] आमदनी और ख़र्च का बजट देता है। [illegible] ही उसे ख़र्च करने का अधिकार है दि[illegible] है। उससे अधिक वह नहीं ख़र्च कर [illegible] मालिक का काम केवल इतना रह जा[illegible] देखता रहे कि उससे अधिक ख़र्च तो मैं[illegible] कर रहा। आमदनी का भी यही हाल है[illegible] दर्ज की गई आमदनी का ज़िम्मेदार भी मै[illegible] उसे उतनी आमदनी करनी ही चाहिए। उ[illegible] होने पर मालिक को यह देखना चाहिए [illegible] के जो कारण मैनेजर बताता है वे ठीक [illegible] और उसे पूरा करने का क्या उपाय है। ऊपर [illegible] बता चुके हैं कि कोर्ट आव् वार्ड्स, [illegible] के लिए, प्रति वर्ष कर लगाता है। [illegible] प्रबन्ध ज़मींदार ख़ुद करता [illegible] "प्राइवेट" रियासतों में यह कर [illegible] बचत में जाता है।

दान के बदले कोर्ट आव वार्ड्स ने प्राविडेंट फंड जारी कर रक्खा है। उसमें १०) से ऊपर तनख़ाह पानेवालों को -) फ़ी रुपया हर महीने देना आवश्यक है। कोर्ट उसमें)॥ रुपया अपने पास से मिला कर डाकख़ाने में जमा करा देती है, या किसी बैंक आदि में रख देती है। वहाँ वह रुपया ब्याज से बढ़ा करता है। नौकरी छोड़ने के समय सब रुपया ब्याज समेत नौकरों को मिल जाता है। नौकरी छोड़ने पर बुढ़ापे में कर्मचारियों को सहारा मिलता है।

प्राइवेट रियासतों में भी इस फंड के जारी किये जाने की आवश्यकता है। इससे उनको अच्छे आदमी मिलने में सुभीता होगा और बुड्ढों को मरते दम तक, बल्कि उनकी सन्तान को पुश्त-दर-पुश्त, चाहे वे लायक़ हों चाहे नालायक़—नौकर रखने की आवश्यकता न रह जायगी। इसमें बहुत ख़र्च नहीं। परन्तु कर्मचारियों को इससे बड़ा सहारा मिलता है।

कोर्ट आव् वार्ड्स का असर।

नाबालिग़ ज़मींदारों, अर्थात् वार्डों, को नियत रक़म रुपया ख़र्च के लिए मिलता है। उससे अधिक न तो वे कोर्ट से पाते हैं और न उन्हें कहीं से ही मिलता है। अतः लाचार हो कर उनको अपना ख़र्च कम करना पड़ता है। जो कुछ उन्हें मिलता है उसीसे उन्हें अपना काम चलाना पड़ता है। इसका असर उनकी आदतों और व्यावहारिक बातों पर पड़ना चाहिए। मनमाना ख़र्च करने की लालसा रोकने से फ़िज़ूलख़र्ची की आदत कम हो जानी चाहिए। पर कुछ समझदार वार्डों को छोड़ कर औरों के विषय में यह बात प्रायः नहीं देखी जाती। कोर्ट से मनमाना रुपया न पा कर वे मन ही मन दुखी होते हैं और कोर्ट से पीछा छुड़ाने की कोशिश करने लगते हैं। इस हालत में वे बहुत कुछ ख़र्च भी करते हैं।

फ़िज़ूलख़र्च वार्डों को ऋण न मिलने से बड़ा कष्ट होता है। वे सदा ही किसी न किसी बहाने कोर्ट से रुपया झटका करते हैं और उसी मनुष्य को अपना मित्र समझते हैं जो उनको रुपया दिलाता है। ऐसे वार्ड मैनेजरों से प्रायः अप्रसन्न रहते हैं। क्योंकि रुपया न मिलने का एक मात्र कारण वे मैनेजर ही को समझते हैं।

बहुत कम उम्र के शिशु-वार्डों पर भी कोर्ट का कुछ अच्छा असर नहीं पड़ता। निज के नौकरों का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में होने से ख़ुशामदी नौकर उनके चारों ओर एकत्र हो जाते हैं। वे उनके मन में लड़कपन ही से अहङ्कार का बीज बो देते हैं और बुरी आदतों में फँसा देते हैं। फ़िज़ूलख़र्ची का स्वभाव भी अल्पवय ही से वे डाल देते हैं। इस कारण वे कोर्ट के समय ही में, इलाक़ा कोर्ट से छूटने पर रुपया देने का वचन देकर, ऋण लेने लगते हैं। फल यह होता है कि कोर्ट छूटने के थोड़े ही दिन बाद रियासत पर इतना ऋण हो जाता है कि फिर भी रियासत कोर्ट में आजाती है।

लेखक की राय है कि बहुत ही छोटी उम्र के शिशु-वार्डों के लिए छोटी तनख़ाह वाले निरीक्षक (गारजियन) नियत न होने चाहिए। वार्ड की देख-भाल का भार या तो मैनेजर ही के ऊपर रक्खा जाया करे, या कुछ वार्डों को एकत्र करके उन सबके लिए एक ही स्थान पर एक अच्छी तनख़ाहवाला निरीक्षक (गारजियन) नियत किया जाया करे। यह प्रबन्ध बहुत अच्छा है। मैनेजर या निरीक्षक को वार्ड के नौकरों पर पूरा अधिकार होना चाहिए और यह नियम हो जाना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो वार्ड के पास उसी के इलाके के नौकर न रक्खे जायँ। इस तरह के नौकर भावी लाभ के लोभ में वार्डों को पहले ही से बिगाड़ते हैं। इलाके ही के निवासी होने के कारण वे वार्डों से डरते भी रहते हैं। इस कारण वे बुरी आदतों से उन्हें रोक भी नहीं सकते। जहाँ तक सम्भव हो छोटी उम्र के वार्डों के पास वृद्ध और बदचलन नौकर रखना वर्जित हो।

कोर्ट का असर रियासत पर बहुत ही अच्छा पड़ता है। वह कोर्ट के ज़माने में ख़ूब बढ़ती है

ने का भय भी विशेष नहीं होता। वे उतना काम नहीं कर सकते जितना अच्छी शिक्षा पाये हुए ग कर सकते हैं। क्योंकि उनको उतनी लियाक़त नहीं होती। कहीं कहीं दीवान साहब की तनख़्वाह ल १२) है। उनको घोड़ा भी चाहिए। पर, ड़े का ख़र्च २०) मासिक होता है। ऐसा दमी १२) पर कैसे निर्वाह करेगा। ईमानदार र ज़िम्मेदार आदमी अच्छी तनख़्वाह पर ही मिल कता है। पर उसे रखने से परिणाम लाभदायक होता है।

वार्षिक रिपोर्ट।

कोर्ट आव् वार्ड्स अपने मैनेजरों के काम की चं करने के लिए और हर इलाक़े का हाल जानने लिए हर साल एक वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त करता है र उसकी ख़ुद देख-भाल करता है। उससे उसे ल भर के काम का अनुमान हो जाता है और भी ज्ञात हो जाता है कि मैनेजर ने कैसा काम या। उसमें अनेक बातें होती हैं। यथा—

—कृषि की दशा।
—वार्षिक आमदनी।
(अ) वार्षिक आमदनी में न्यूनाधिकता।
(ब) लगान कितना वसूल हुआ—वसूल होने में ठिनाइयाँ आदि।
(स) पिछले साल की बाक़ी और उसका सूल होना।
(द) क़र्ज़ का वसूल।
(य) तक़ावी का वसूल।
(फ) दूसरी आमदनी।
—वार्षिक ख़र्च—
(अ) लगान या भूमि-कर।
(न) प्रबन्ध का ख़र्च—
(स) वार्डों अर्थात् नाबालिग़ ज़मींदारों का ख़र्च (गुज़ारा आदि)।
(द) वार्डों की शिक्षा का ख़र्च।
(ढ) कुएँ, बाँध आदि का बनवाना।
(फ) चन्दे।
(ग) तक़ावी।
(ह) मुक़द्दमों का ख़र्च।
४—ऋण का भुगतान—
(ज) सूद वग़ैरह पर रुपया लगाना।
(क) तोशेख़ाने में जमा रुपया।
५—कृषकों की अवस्था या दशा का वर्ण
६—मुक़द्दमों का उल्लेख और उनके लि पैरवी।
७—हिसाब की जाँच।
८—नौकरों के काम की चर्चा।

ऐसी रिपोर्ट देखने से ही ज्ञात हो जा रियासत में कितनी उन्नति हुई। प्राइवेट में भी ऐसी वार्षिक रिपोर्टों की आवश्य जिन रियासतों में महाजनी का काम होता वार्षिक चिट्ठा बनता भी है। परन्तु वह केवल सारांश होता है। ऊपर दी हुई कुछ बातों श्यकता प्राइवेट रियासतों में नहीं। उन कुछ और बातें शामिल की जा सकती हैं।

हर रियासत को अपनी अपनी अ अनुसार रिपोर्ट के विषयों में न्यूनाधिक चाहिए। बहुधा मालिक कृषि और कृषकों जानते ही हैं। अतएव उस पर रिपोर्ट जरूरत नहीं। इसी तरह मालिकों को बहु द्दमों और नौकरों के काम काज का भी हा हैं। इन मदों को छोड़ने से साल भर के का खातेवार चिट्ठा रह जाता है। यह वि ही लाभदायक वस्तु है। उसमें एक ऐसा और बढ़ाना चाहिए जिससे मालिक को यह हो जाय कि वर्ष के भीतर इलाक़े की माले कितनी घटी-बढ़ी हुई।

प्राविडेन्ट फंड।

कोर्ट के नौकरों को पेन्शन नहीं मि बुढ़ापे में, काम-काज के लायक़ न रह नौकरी से अलग होने पर, उनको कष्ट न हो लिए सरकार अपने कर्मचारियों को पेन्श

शन के बदले कोर्ट आव वार्ड्स ने प्रावी-
डेंट फंड जारी कर रक्खा है। उसमें १०) से ऊपर
पानेवालों को ~) फ़ी रुपया हर महीने देना
है। कोर्ट उसमें ।) रुपया अपने पास से
डाकख़ाने में जमा करा देती है, या किसी
आदि में रख देती है। वहाँ यह रुपया
बढ़ा करता है। नौकरी छोड़ने के समय
व्याज समेत नौकरों को मिल जाता है।
करी छोड़ने पर बुढ़ापे में कर्मचारियों को
हारा मिलता है।

देट रियासतों में भी इस फंड के जारी किये
आवश्यकता है। इससे उनको अच्छे
मिलने में सुभीता होगा और बुड्ढों को मरते
क, बल्कि उनकी सन्तान को पुश्त-दर-पुश्त,
लायक हो चाहे नालायक—नौकर रखने
वश्यकता न रह जायगी। इसमें बहुत ख़र्च
है। परन्तु कर्मचारियों को इससे बड़ा
मिलता है।

कोर्ट आव् वार्डस का असर।

नाबालिग़ ज़मींदारों, अर्थात् वार्डों, को नियत
रुपया ख़र्च के लिए मिलता है। उससे
न तो वे कोर्ट से पाते हैं और न उन्हें
ही मिलता है। अतः लाचार हो कर
अपना ख़र्च कम करना पड़ता है। जो
उन्हें मिलता है उसीसे उन्हें अपना काम
पड़ता है। इसका असर उनकी आदतों और
बातों पर पड़ना चाहिए। मनमाना
करने की लालसा रोकने से फ़िज़ूलख़र्ची की
कम हो जानी चाहिए। पर कुछ समझदार
हो छोड़ कर औरों के विषय में यह बात
नहीं देखी जाती। कोर्ट से मनमाना रुपया
कर वे मन ही मन दुखी होते हैं और कोर्ट से
पुराने की कोशिश करने लगते हैं। इस
वे बहुत कुछ ख़र्च भी करते हैं।
वार्डों को अ[illegible] न
है। वे [illegible]

कोर्ट से रुपया झटका करते हैं और उसी मनुष्य
को अपना मित्र समझते हैं जो उनको रुपया दिलाता
है। ऐसे वार्ड मैनेजरों से प्रायः अप्रसन्न रहते हैं।
क्योंकि रुपया न मिलने का एक मात्र कारण वे मैने-
जर ही को समझते हैं।

बहुत कम उम्र के शिशु-वार्डों पर भी कोर्ट का
कुछ अच्छा असर नहीं पड़ता। निज के नौकरों का
प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में होने से ख़ुशामदी
नौकर उनके चारों ओर एकत्र हो जाते हैं। ये उनके
मन में लड़कपन ही से अहङ्कार का बीज बो देते
हैं और बुरी आदतों में फँसा देते हैं। फ़िज़ूल-
ख़र्ची का स्वभाव भी अल्पवय ही से ये डाल देते हैं।
इस कारण वे कोर्ट के समय ही में, इलाक़ा कोर्ट
से छूटने पर रुपया देने का वचन देकर, ऋण लेने
लगते हैं। फल यह होता है कि कोर्ट छूटने के
थोड़े ही दिन बाद रियासत पर इतना ऋण हो
जाता है कि फिर भी रियासत कोर्ट में आजाती है।

लेखक की राय है कि बहुत ही छोटी उम्र के
शिशु-वार्डों के लिए छोटी तनख़ाह वाले निरीक्षक
(गारजियन) नियत न होने चाहिए। वार्ड की देख-
भाल का भार या तो मैनेजर ही के ऊपर रक्खा
जाया करे, या कुछ वार्डों को एकत्र करके उन सबके
लिए एक ही स्थान पर एक अच्छी तनख़ाहवाला
निरीक्षक (गारजियन) नियत किया जाया करे। यह
प्रबन्ध बहुत अच्छा है। मैनेजर या निरीक्षक को
वार्ड के नौकरों पर पूरा अधिकार होना चाहिए
और यह नियम हो जाना चाहिए कि जहाँ तक
सम्भव हो वार्ड के पास उसी के इलाक़े के नौकर
न रक्खे जायँ। इस तरह के नौकर भावी लाभ के
लोभ में वार्डों को पहले ही से बिगाड़ते हैं। इलाक़े
ही के निवासी होने के कारण वे वार्डों से डरते भी
रहते हैं। इस कारण वे बुरी आदतों से उन्हें रोक
भी नहीं [illegible] सम्भव हो ऐसे [illegible]

ग्रैार नादिहन्दी छोड़ देती है। ज़मींदार के अनेक नियम-विरुद्ध करों से वह छुटकारा पा जाती है ग्रैार ग्रन्य महकमों के अत्याचार से भी बची रहती है। कोर्ट ग्राव् वार्ड्स उनको शिक्षा देने में, उनसे सफ़ाई का लिहाज़ रखाने में, उनका इलाज मुग्रा-लजा कराने में ग्रैार उनको ग्रैार तरह के लाभ पहुँचाने में भी सहायता देता है। रुपये की रसीद ग्रैार खेतों का पट्टा यथासमय पा जाने से प्रजा के हक़ की रक्षा होती है। इसे प्रजा बहुत पसन्द करती है। हाँ, ग्रलबत्ता, ग्रपने ग्रधिकार जान जाने से वह किसी के नाजाइज़ दबाने से कम दबती है। ग्रतः बहुत से मुलाज़िम प्रजा की यह स्वतन्त्रता नहीं पसन्द करते। इलाक़ा छूट जाने पर ज़मींदार से भी वह कुछ समय तक कम दबती है। ग्रतएव प्रजा को उसके ग्रधिकार बता देने के कारण कोर्ट को ज़मींदार धन्यवाद का पात्र नहीं समझते।

इलाके पर कोर्ट का सबसे ग्रच्छा ग्रसर पड़ता है। निकासी बढ़ जाती है। प्रजा प्रसन्नता से समय [illegible]र लगान देने लगती है, बक़ाया नहीं रहने पाता। [illegible]मीन की हैसियत ग्रच्छी हो जाती है। कुयें, [illegible] ग्रादि बन जाते हैं। प्रायः सभी क़ाबिल [illegible] ज़मीन जुत जाती है। झील-झाँकर, पड़ती [illegible] सभी से कुछ न कुछ ग्रामदनी होने लगती [illegible] लग जाते हैं। नाले पाट दिये जाते हैं। [illegible] बँध जाते हैं। ज़मीन की उन्नति के लिए ग्रैार [illegible] काम हो जाते हैं। यही कारण है जो [illegible] ग्राव् वार्ड्स [illegible] से [illegible] मुक्त देता है, [illegible] कर लेता है, ग्रैार इलाक़ा भी कभी [illegible] देता है।

[illegible]

हो सकती। यदि वार्डों को मरम्मत [illegible] दिया जाता है तो वे ख़ुश भी रहते [illegible] रहने का सुभीता भी करा लेते हैं। [illegible] समझ में जब तक कोई विशेष बाधा न [illegible] के साथ ही वार्ड से कह देना चाहिए। [illegible] मकान का ख़र्च भी उसमें शामिल है [illegible] लिहाज़ से गुज़ारा मुक़र्रर करना चाहि[illegible] पक्का काम कोर्ट के प्रबन्ध से ग्रच्छा होता है [illegible] सम्बन्ध में ख़र्च का तजरिबा लेखक को नहीं [illegible]

बाग़ात का इन्तज़ाम या तो कोर्ट के [illegible] के हाथ में होता है या वार्ड के ही सिपुर्द कर [illegible] जाता है। दोनों दशाग्रों में बाग़ात की [illegible] नहीं रहती। कोर्ट के नौकर उससे ग्रामदनी [illegible] ग्रैार ख़र्च कम करना चाहते हैं। इससे उनकी [illegible] बिगड़ जाती है। बाग़ तो शौक़ की चीज़ है [illegible] दनी की चीज़ नहीं। उसका ख़र्च [illegible] ख़र्च की तरह समझना चाहिए, जिससे [illegible] नहीं मिल सकता। यह ग्रामदनी का ज़रिया [illegible]

मुक़द्दमात की पैरवी भी कोर्ट ठीक [illegible] कर सकता। क्योंकि ग्रदालतों के नाजाइज़ [illegible] गवाहों की ख़ातिरदारी के ख़र्च कोर्ट [illegible] इससे न तो गवाह ही प्रसन्न रहते हैं [illegible] हरी के मुलाज़िम ही। इसका कोई [illegible] की समझ में नहीं ग्राता।

भगवद्गीता-रहस्य।

[illegible]

[illegible]

इनत है। इसका स्वीकार करने में सङ्कोच हमें केवल ात का है कि यह पुस्तक हमारे पास समालोचना के आई है। पर इसकी आलोचना करने की पर्याप्त ा हम में नहीं। हमारी समझ में तो इसके गुण-दोषों चार करने की शक्ति विरले ही विद्वानों में होगी। भारतवर्ष के मुख्य मुख्य सभी शास्त्रों का अध्ययन मनन किया है, और जिसने पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं के ान की भी अभिज्ञता प्राप्त की है वही इस पुस्तक के न्तों पर अच्छी तरह विचार कर सकता है। यही नहीं, गीता पर आज तक जितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध भाष्य और लिखे गये हैं उन सब से भी परिचय रखने वाला ृ ही इस पुस्तक की समालोचना करने का अधिकारी सकता है। इन गुणों में से एक भी गुण हम में नहीं। ब हम इसकी आलोचना करने के अधिकारी नहीं। ब तिलक महाशय की आज्ञा को शिरसा धारण करके सकी कुछ बातों का उल्लेख मात्र करेंगे।

न्द-भाषा और मराठी में आज तक गीता पर अनेक ें लिखी जा चुकी हैं। कई पुस्तकें तो हमने ऐसी हैं जिनमें गीता के प्रायः सभी भाष्य प्रकाशित करके सब का उद्देश और भिन्न भिन्न दृष्टि से उनका आशय समझाया गया है। परन्तु इस तरह की सभाष्य पुस्तकें ोप करके विद्वान् ही अधिक लाभ उठा सकते हैं। न्थों का आशय सर्व-साधारण जनों की समझ में बहुत आता है। हाँ, बँगला में एक छोटी सी पुस्तक ऐसी मारे देखने में आई है जिसे साधारण पढ़े-लिखे लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं और बहुत कुछ लाभ उठा हैं। गीता का प्रधान उद्देश क्या है, यह बात उस -पुस्तक में दो कल्पित व्यक्तियों के कथोपकथन-रूप में की गई है। उसके लेखक की भाषा और उसके सम की रीति ऐसी अच्छी है कि पढ़नेवाला, बिना प्रयास ब बातें समझता चला जाता है। ये सब उसके हृदय ा जाती हैं। इस बँगला-पुस्तक का नाम भी "गीता-" है। तिलक महाशय के "गीता-रहस्य" के अन्त में मूल गीता है, वैसे ही उसके भी अन्त में है। पर वह चीज है और यह प्रकाण्ड ग्रन्थ है। बँगला की पूर्वोक्त समय हमारे पास नहीं। हम इस ओर को एक

गांव में बैठे लिख रहे हैं। पर जहाँ तक हमें याद है वह किसी कालेज—शायद कटक-कालेज—के किसी प्रोफ़ेसर की लिखी हुई है और आठ ही दस आने मूल्य की है।

तिलक महाशय ने अपने इस ग्रन्थ की रचना में जो पाण्डित्य, और जो विचारशीलता, और जो लेखन-कौशल दिखाया है वह अद्भुत है। यह ग्रन्थ आपके कोई चालीस वर्षों के विचार और शास्त्र-चिन्तन का फल है। इसकी तैयारी में आपने संस्कृत, मराठी और अँगरेज़ी के सैकड़ों गहन ग्रन्थों का मनन किया है।

इस ग्रन्थ को आपने दो भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में गीता का रहस्य है, दूसरे में मूल गीता तथा उसका मराठी अनुवाद। पहला भाग १५ प्रकरणों में विभक्त है—यथा, विषय प्रवेश, कर्म्म जिज्ञासा, कर्म्म-योग शास्त्र, आधिभौतिक सुखवाद, सुखदुःख विवेक, क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-विचार, कापिल सांख्यशास्त्र, जगत् की उत्पत्ति और नाश, अध्यात्म, आत्मस्वातन्त्र्य, संन्यास और कर्म्मयोग, सिद्धावस्था और व्यवहार, भक्तिमार्ग, गीता के अध्यायों की सङ्गति, उपसंहार और गीता की बहिरङ्ग परीक्षा। अतएव यही भाग इस ग्रन्थ का सबसे अधिक मूल्यवान् अंश है। इसमें से भी पहला और अन्तिम, ये दो प्रकरण उन लोगों के लिए बड़े ही महत्त्व के हैं जो गीता के सम्बन्ध की विशेष विशेष बातें जानना चाहते हों। गीता और महाभारत का कर्तृत्व, गीता और उपनिषदों की परस्पर तुलना, गीता और ब्रह्मसूत्रों की पूर्वापरता, गीता का समय, गीता और बौद्धधर्म, गीता और बाइबिल आदि का विवेचन अन्तिम प्रकरण ही में है। इतिहास और पुरातत्त्व के प्रेमियों के जानने योग्य इसमें बहुत कुछ सामग्री है। इस प्रकरण के अन्त में यह समालोचना की गई है कि ईसाई धर्म के तत्व बहुत करके बौद्ध धर्म से ही लिये गये हैं। और, बौद्ध धर्म ने उन्हें अपने से पूर्ववर्ती वैदिक धर्म या गीता से लिया है। तिलक महाशय ने गीता का रचना काल सन् ई० ५०० वर्ष निश्चित किया है।

ग्रन्थ के दूसरे भाग में अर्थात्, गीता के मूल-संस्कृत श्लोक हैं और उनके नीचे मराठी में उनका अनुवाद है। पर मूल में जो बातें कहीं और जिनका अथवा साधारण पाठकों के

और नादिहन्दी छोड़ देती है। ज़मींदार के अनेक नियम-विरुद्ध करों से वह छुटकारा पा जाती है और अन्य महकमों के अत्याचार से भी बची रहती है। कोर्ट आव् वार्ड्स उनको शिक्षा देने में, उनसे सफ़ाई का लिहाज़ रखाने में, उनका इलाज मुआ-लजा कराने में और उनको और तरह के लाभ पहुँचाने में भी सहायता देता है। रुपये की रसीद और खेतों का पट्टा यथासमय पा जाने से प्रजा के हक़ की रक्षा होती है। इसे प्रजा बहुत पसन्द करती है। हाँ, अलबत्ता, अपने अधिकार जान जाने से वह किसी के नाजाइज़ दबाने से कम दबती है। अतः बहुत से मुलाज़िम प्रजा की यह स्वतन्त्रता नहीं पसन्द करते। इलाक़ा छूट जाने पर ज़मींदार से भी वह कुछ समय तक कम दबती है। अतएव प्रजा को उसके अधिकार बता देने के कारण कोर्ट को ज़मींदार धन्यवाद का पात्र नहीं समझते।

इलाक़े पर कोर्ट का सबसे अच्छा असर पड़ता है। निकासी बढ़ जाती है। प्रजा प्रसन्नता से समय पर लगान देने लगती है, बक़ाया नहीं रहने पाता। ज़मीन की हैसियत अच्छी हो जाती है। कुवें, तालाब आदि बन जाते हैं। प्रायः सभी क़ाबिल ज़राअत ज़मीन जुत जाती है। झील-झाँकर, पड़ती आदि सभी से कुछ न कुछ आमदनी होने लगती है। वृक्ष लग जाते हैं। नाले पाट दिये जाते हैं। बाँध बँध जाते हैं। ज़मीन की उन्नति के लिए और भी अनेक काम हो जाते हैं। यही कारण है जो कोर्ट आव् वार्ड्स [illegible] से क़र्ज़ चुका देता है, [illegible] इकट्ठा कर लेता है, और इलाक़ा भी कभी कभी बढ़ा देता है।

कोर्ट का असर मकानात, बाग़ात और मुक़-दमात पर बहुत अच्छा नहीं पड़ता। प्रायः देखा गया है कि अक्सर मकानात ठीक नहीं होते और ख़र्च ज़ियादह पड़ जाता है। यदि ठेके पर काम कराया जाता है तो ठेकेदार ही बहुत सा [illegible] जाता है। यदि काम [illegible] से होता है तो काम ज़ियादह होने से उसकी ठीक निगरानी नहीं हो सकती। यदि वार्डों को मरम्मत का [illegible] दिया जाता है तो वे ख़ुश भी रहते हैं और रहने का सुभीता भी करा लेते हैं। लेखक की समझ में जब तक कोई विशेष बाधा न हो, [illegible] के साथ ही वार्ड से कह देना चाहिए कि मकान का ख़र्च भी उसमें शामिल है [illegible] लिहाज़ से गुज़ारा मुक़र्रर करना चाहिए [illegible] पक्का काम कोर्ट के प्रबन्ध से अच्छा होता है [illegible] सम्बन्ध में ख़र्च का तजरिबा लेखक को नहीं [illegible]

बाग़ात का इन्तज़ाम या तो कोर्ट के [illegible] के हाथ में होता है या वार्ड के ही सिपुर्द कर [illegible] जाता है। दोनों दशाओं में बाग़ात की दशा [illegible] नहीं रहती। कोर्ट के नौकर उससे आमदनी [illegible] और ख़र्च कम करना चाहते हैं। इससे उसकी [illegible] बिगड़ जाती है। बाग़ तो शौक़ की चीज़ है [illegible] दनी की चीज़ नहीं। उसका ख़र्च अस्तबल [illegible] ख़र्च की तरह समझना चाहिए, जिससे कुछ [illegible] नहीं मिल सकता। यह आमदनी का ज़रिया [illegible]

मुक़द्दमात की पैरवी भी कोर्ट ठीक ठीक [illegible] कर सकता। क्योंकि अदालतों के नाजायज़ ख़र्च [illegible] गवाहों की ख़ातिरदारी के ख़र्च कोर्ट नहीं [illegible] इससे न तो गवाह ही प्रसन्न रहते हैं और न [illegible] हरी के मुलाज़िम ही। इसका कोई [illegible] की समझ में नहीं आता।

भगवद्गीता-रहस्य।

[illegible]



[illegible]



लिए ज़रूरी है उन सब को मारेट के भीतर देकर तिलक ने कथासूत्र की ऐसी सङ्गति लगा दी है कि पढ़ने वालों को उपन्यास, इतिहास या अन्य साधारण पुस्तक पढ़ने का सा आनन्द आता है। उन्हें यह भासित ही नहीं होता कि वे अनुवाद पढ़ रहे हैं। विषय इतना गहन होने पर भी तिलक महाशय ने उसे ऐसी अच्छी तरह और ऐसी प्राञ्जल भाषा में समझाया है कि साधारण विद्या-बुद्धि के आदमी भी आपके कथन का आशय सहज ही में हृदयङ्गम कर सकते हैं। आपकी लेखशैली के प्रधान गुण स्पष्टता और शुद्धता हैं। आपने अपने मन के भावों को इस तरह व्यक्त किया है कि आपके कथन का तात्पर्य समझने में ज़रा भी प्रयास नहीं पड़ता।

अच्छा तो इस गीता की रचना हुई क्यों? भारतीय युद्ध के लिए कौरवों और पाण्डवों की सेना ने कुरुक्षेत्र में मोरचे डाल दिये। प्रत्येक पक्ष अपने विरोधी पक्ष का संहार करने के लिए उद्यत हो गया। तब अपने ही बन्धु-बान्धवों को संहारोन्मुख देख अर्जुन को बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने हथियार रख दिये। वे बोले—बाज़ आये हम उस राज्य से जिसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने ही वंशजों का नाश करना पड़े। कहाँ युद्ध की तैयारी, कहाँ यह विरक्ति! काम बिगड़ता देख कृष्ण ने अर्जुन को गीता में गाया गया उपदेश सुनाया। उसे सुन कर अर्जुन का सन्देह दूर हो गया। उनका विषाद जाता रहा। वे युद्ध करने पर राज़ी हो गये। जिस गीता का उद्देश अर्जुन को युद्ध के लिए उद्युक्त करना था उसमें सांख्य, योग, वेदान्त—ब्रह्मज्ञान—और भक्ति का बखेड़ा क्यों? इसी प्रश्न का तर्क-सम्मत उत्तर देने और पूर्ववर्ती भाष्यकारों का भ्रम दिखाने के लिए ही तिलक ने गीता के रहस्य का उद्घाटन किया है। आज कल जितने विख्यात व्याख्याकार—शङ्कर, चिद्घनानन्द, रामानुज, निम्बार्क आदि—हो गये हैं किसी ने इस बात का ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया। किसी ने इस बात को सप्रमाण और युक्ति-सङ्गत तर्क द्वारा नहीं सिद्ध किया कि जो मनुष्य कर्म्म से निवृत्त हो रहा है—जिसके हृदय में विरक्ति की भावना प्रबल हो रही है—उसे एक मात्र कर्म्मोन्मुख करने की चेष्टा छोड़ कर श्रीकृष्ण ने ब्रह्मज्ञान सिखाने का क्यों प्रयास किया? उन्हें अर्जुन से शस्त्र-ग्रहण कराना था। इस कारण उनका कर्तव्य था कि वे उन्हें प्रवृत्ति का मार्ग दिखाते; सांख्य, यो... वेदान्त की बातें छेड़ कर निवृत्ति का मार्ग दि... क्या आवश्यकता थी? तिलक ने इसी प्रश्न का उ... है और ऐसा उत्तर दिया है कि शायद ही कोई खण्डन कर सके। उनकी युक्तियाँ और उनकी तर्क... इतनी हेतुमूलक, इतनी सबल और इतनी प्रमाणपूर्ण... देख कर आश्चर्य होता है कि पूर्ववर्ती विद्वान् उन्हें... छोड़ कर अन्यत्र कैसे चले गये। तिलक ने गीता... यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि गीता निवृत्ति पर... वह प्रवृत्ति पर है। अर्थात् उसका मुख्य उद्देश कर्म... निष्काम कर्म्म की—प्रधानता दिखाना है। इसी से ... कर्म्मयोग का विवेचन है। उसमें जहाँ कहीं "योग"... है वहाँ उसका आशय "कर्म्म-योग" है। इसी... आपने इस ग्रन्थ का पूरा नाम "श्रीमद्भगवद्गीता-रहस्य... कर्म्मयोग-शास्त्र" रक्खा है। तथापि आप यह नहीं क... गीता में ब्रह्मज्ञान और भक्ति आदि निवृत्तिमूलक मार्ग... का निरूपण ही नहीं। है अवश्य और उसके ... आवश्यकता भी है; क्योंकि शुद्धबोधस्वरूप परम... ज्ञान-सम्पादन करके अपने अन्तःकरण को पवित्र... निर्म्मल करना तथा परिणाम या फल की रत्ती भर भी... न करके अपने कर्तव्य कर्म्म का निर्वाह करना ही ... का परम कर्तव्य है। परन्तु निवृत्ति-मार्ग की जि... बातें गीता में हैं वे गौण हैं; निवृत्ति-मार्ग का ... देना गीता का मुख्य उद्देश नहीं। मुख्य उद्देश... निष्काम कर्म्म करने का उपदेश देना है। इस कर्म्म... बाहर की बातें क्यों लिखी गईं, प्रधान विषय से ... कैसा सम्बन्ध है और उनकी सन्धि एक दूसरे से ... प्रकार मिलती गई है, यह देखने और जानने की ... रखते हों वे तिलक महाराज के ग्रन्थ को ध्यान से पढ़ें।

गीता के सम्बन्ध में ग्रन्थकार की जो राय है उसे ... में, कुछ कुछ उन्हीं के शब्दों में, सुन लीजिए:—

"अर्जुन का मोह दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने, वेदान्तशास्त्र के आधार पर, कर्म्म और अकर्म्म का, ... साथ ही, मोक्षप्राप्ति के उपायों का विवेचन गीता में ... है। श्रीकृष्ण का उपदेश है कि कर्म्म कभी छूटते ही ... और उन्हें छोड़ना भी न चाहिए। पर उन्हें बुद्धि...





इंडियन प्रेस, प्रयाग।

लेडी हारडिंग हास्पिटल (भीतरी दृश्य)

चाहिए। योग्य-युक्ति-प्रयोग द्वारा कर्म्म-सम्पादन मनुष्य पाप-भागी नहीं होता। ऐसे कर्म्म-सम्पादन से मैं, मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। इस युक्ति का ज्ञानमूलक और भक्तिप्रधान कर्म्मयोग। गीता मे र्मयोग का प्रतिपादन है।"

तिलक के कथन का यही सार है। गीता मे जितने किंवा जितने सिद्धान्तों का वर्णन है उन सब का रीति से प्रकरणशः विभाग करके उनमें से मुख्य युक्तिवादों का निरूपण आपने गीता-रहस्य में किया ऐसा करने में आपने अपने मत की पुष्टि के लिए न कितने ग्रन्थों के प्रमाण, जगह जगह पर, दिये हैं। ही आपने पाश्चात्य देशों के तत्त्ववेत्ताओं के भी सिद्धान्तों उल्लेख किया है और गीता के रहस्यों से उनकी तुलना है। पश्चिमी विद्वानों की राय है कि कर्माकर्मविवेक नीतिशास्त्र पर सब से पहला ग्रन्थ अरिस्टाटल का है। तिलक ने तुलनापूर्वक यह दिखाया है कि इन लोगों है मत ठीक नहीं। गीता में अरिस्टाटल की भी अपेक्षा क व्यापक और अधिक तात्त्विक दृष्टि से नीति-शास्त्र के का विचार किया गया है, और गीता अरिस्टाटल के बहुत की है। इसी तरह आपने साक्रेटीज़, मिल, स्पेंसर, मीन और स्टोइक पन्थ के ग्रीक पण्डितों के सिद्धान्तों वर्णन करके यह दिखाया है कि इन सभी के सिद्धान्तों गीता अलङ्कृत है, प्रत्युत गीता की विचारपद्धति इन नों की विचारपद्धति से भी अधिक युक्तिपूर्ण और है।

गीता-रहस्य में जहां जहां पर प्राचीन भाष्यकारों का दिखाया गया है वहां वहां रहस्यकार की विचार-सरणि बोटि-क्रम देख कर बड़ा कौतूहल होता है और साथ आपकी व्यापक विद्वत्ता पर आश्चर्य भी होता है। खन तो आपने इतनी निर्दयता से किया है जिसकी ना नहीं। पर साथ ही आपने इस खण्डन के लिए ऐसी शैली का अवलम्ब किया है कि आपको कोई दोषी नहीं जा सकता। आपने बड़ी ही योग्यता से यह दिखाया है प्राचीन विद्वानों के भाष्यों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। आपने यह बताया है कि देश, काल, पात्र और तत्का-लिक सामाजिक व्यवस्था के अनुसार ही पूर्ववर्ती भाष्यों का प्रणयन हुआ है। उस समय वैसे ही भाष्य बन सकते थे। अतएव उन भाष्यकारों से जो भ्रम हो गये हैं उसमें उनका कुछ भी दोष नहीं। परन्तु अब वह समय नहीं। अब अनेक नई नई बातें और नई नई विद्यायें मालूम हो गई हैं। बहुत प्राचीन काल का इतिहास भी अब अधिक उपलब्ध है। अतएव इस ज्ञानवृद्धि के काल में उन पुराने भाष्यों में विवेचन किये गये रहस्य स्वीकार नहीं किये जा सकते। इस दशा में अपनी त्रुटियों के लिए भाष्यकार दोषी नहीं। इस प्रकार, बड़े ही अनोखे ढँग से, आपने प्राचीन पण्डितों और प्राचीन ग्रन्थों के पृष्ठपोषक लोगों के कोप को शान्त करने की चेष्टा की है।

लिखा है—"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र-विस्तरैः"। यह बहुत ठीक है। अकेली गीता का अच्छी तरह अध्ययन कर लेना ही बस है। और सारे शास्त्रों के अध्ययन में व्यर्थ कालक्षेप करने की क्या आवश्यकता? गीता समग्र शास्त्रों का सार है। उसमें ब्रह्मविद्यान्तर्गत (कर्म्म-)योग-शास्त्र का निरूपण है। ब्रह्मविद्या और भक्ति के जो मूलतत्त्व हैं उन्हीं के आधार पर नीति और सत्कर्म्म के भवन का भी निर्माण हुआ है। ज्ञान, संन्यास, कर्म्म और भक्ति के समुचित मेल का आश्रय लेकर मनुष्य को किस प्रकार अपना जीवन सफल करना चाहिए, इसका विवेचन गीता से बढ़ कर अन्यत्र नहीं। इसी से तिलक महोदय की राय है कि उनकी वर्णित पद्धति का अनुसरण करके युवावस्था से ही गीता का परिशीलन और चिन्तन करना चाहिए। बुढ़ापे में गीता पढ़ने से उतना लाभ नहीं हो सकता। निष्काम कर्म्म करने का अभ्यास छोटी उम्र से ही करना उचित है। हिन्दू-धर्म्म और नीतिशास्त्र के मूलतत्त्वों का ज्ञान जितना ही शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा। हमारी समझ में तो गीता-रहस्य के तत्त्व धर्म्म, समाज और नीति शास्त्र आदि में सभी कहीं चरितार्थ हो सकते हैं।

तिलक के इस अनुपम ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद हो रहा है। अनुवाद माधवराव सप्रे, बी० ए० कर रहे हैं। यह बात हिन्दी के सौभाग्य की सूचक है।



लेडी हार्डिंग हास्पिटल (भीतरी दृश्य)

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

"व" का प्रचार।


क समाचारपत्र-सम्पादक महाशय ने "व" (और) के घटते हुए प्रयोग पर दुःख प्रकट करते हुए बड़ी उत्कण्ठा से उसका प्रचार बढ़ाने की सलाह दी है। लेखक की राय में यह "व" थोड़े में बहुत अर्थ देता है; इस लिए इसका प्रचार बढ़ाना आवश्यक है। जहाँ तक हमें स्मरण है, इस सलाह का खण्डन-मण्डन किसी ने नहीं किया और न इस सलाह के अनुसार इस उपयोगी "व" का प्रचार ही बढ़ा है। ऐसी अवस्था में इस शब्द के विषय में कुछ विचार किया जाना अनुचित न होगा।

"व" हिन्दी अथवा संस्कृत का शब्द नहीं है, किन्तु यावनी है। इसका प्रचार उर्दू में अधिक है और उस भाषा में यह, (वाव) के रूप में लिखा जाता है; पर इसका उच्चारण बहुत कुछ "ओ" का होता है। यह उच्चारण उर्दू के "नामो-निशान" सदृश समासों में स्पष्ट सुनाई देता है। जिन लोगों ने हिन्दी में इस "व" का प्रचार किया है उन्होंने, (वाव) के केवल व्यञ्जन कार्य पर ध्यान दिया है; और उसी के अनुसार उसे "व" लिखना आरम्भ कर दिया है। यदि इसके अधिक प्रचलित स्वरोच्चारण पर ध्यान दिया जाता तो हिन्दी में ध्वनि के अनुसार इसका उच्चारण और रूप "ओ" होता।

हिन्दी में इस "व" के ह्रास का कारण इस शब्द के इतिहास ही में पाया जाता है। इसका प्रयोग न पुराने शिष्ट लेखकों ने किया है और न आधुनिक शिष्ट लेखक ही करते हैं। हिन्दी-गद्य की उत्पत्ति के बहुत समय पीछे तक इसका प्रचार नहीं हुआ और आज कल तो प्रायः इने गिने साधारण लेखकों को छोड़ कर किसी को भी इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं ज्ञात होगी। लेखक महाशय का व्यर्थ दुःख ही इस बात का परिचायक है कि हिन्दी के शिष्ट लेखक इस "व" को प्रयोग के

योग्य नहीं समझते। हिन्दी में "व" ।
किन्तु विद्यार्थी एक शब्द "व" (या) है, ।
कभी भूल से लोग "व" समझ लेते हैं
वे "व" का प्रयोग नहीं करते। जो ले
यावनी शब्द का प्रयोग करते हैं वे बहुधा
के अर्थ में भी भूल से लिख देते हैं, जिस
के अर्थ में एक प्रकार की अस्थिरता सी
और शिष्ट लेखक भ्रम के निवारण के लि
के प्रयोग से बचने की चेष्टा करते हैं। ए
की आवश्यकता नहीं है कि "व" केवल
प्रयुक्त होता है। अपढ़ लोग तो इसे बहुध
ही नहीं।

मध्यप्रदेश के कुछ लेखक इस "व" के
जान पड़ते हैं। उनके इस प्रेम से उत्पन्न हु
का एक उदाहरण मध्यप्रदेशीय हिन्दी पहली
के उनतीसवें पाठ में पाया जाता है, जहाँ
महाशय ने "स्वच्छता व सफ़ाई" लिखा
इस वाक्यांश में "व" का अर्थ "और" है
प्रत्यक्ष भूल है, क्योंकि "स्वच्छता" और "स
अलग अलग दो भावनायें नहीं हैं, और, य
का अर्थ "वा" (या) है तो समझना च
इस "व" से बूढ़े ग्रन्थकार की अपेक्षा
विद्यार्थी को, जिसके लिए पहली पुस्तक लि
है, अवश्य ही अधिक मति-भ्रम होता होगा।

संयुक्त-प्रदेश के एक कवि महाशय
अलग ही पन्थ निकाला है। उन्हें "व" से
प्रेम है कि उन्होंने , (वाव) के दोनों रू
मिलाकर "व" को "वो" करके "गगन वो
लिख डाला है। इस "वो" का अर्थ
समझ लिया गया है, पर यह ध्वनि हिन्दी में
नहीं है। यदि ये कवि चाहते तो इस
निकाल कर "ओ" के प्रयोग से अपनी
अधिक ललित कर सकते थे।

हिन्दी में इस "व" के प्रयोग की कोई
आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि हमारी भाषा में
"एवं", "तथा"—तीन तीन शब्द हिन्दी

अवस्था में "व" के घटते हुए प्रयोग पर खेद
। वृथा है, उसके प्रचार की आशा करना वृथा
सके प्रचार के लिए शिष्ट लेखकों को फुस-
वृथा है और उसका प्रचार करना वृथा है।

यदि किसी को "और" के उच्चारण में समय
चित करनी है अथवा उसे पूरा लिखने के लिए
। नहीं है तो वह "औ" क्यों न लिखे और
—बोलने में "और" के बदले बहुधा जल्दी के
ह "औ" सुनाई देता है; परन्तु व्यर्थ ही एक
लित विदेशी शब्द को, जिसके कारण भाषा
लाभ के बदले हानि अधिक है, पुनर्जीवित करना
ल है।

यहाँ पर हम उर्दू के उन सामासिक शब्दों के
प में भी कुछ लिखते हैं जिनमें यह "व" आता
र जिनको हमारे कुछ शिष्ट लेखक तत्सम रूप
हिन्दी में लिखते हैं। "नामो-निशान" (نام و نشان)
ा-हवा (آب و ہوا) आदि शब्दों में जो "व"
) आता है वह हिन्दी में द्वन्द्व-समास के नियम
नुसार अशुद्ध है और जब ये शब्द हिन्दी में
हैं तब इन्हें हिन्दी के नियमों का पालन करना
श्यक है। जो लोग उर्दू पढ़े हैं वे अपनी भाषा-
ना के सहारे पूर्वोक्त शब्दों में "व" का अस्तित्व
सकते हैं; पर केवल हिन्दी जानने वाले न
को पहचानते हैं और न "नामो-निशान",
बो-हवा", आदि बोलते हैं। उनके लिए "नाम-
ान" वैसा ही शुद्ध है जैसा "नाम-रूप" है।
स्वती सम्पादक की तरह जो शुद्धता-वादी लेखक
प्रकार के विदेशी शब्दों को अविकृत रूप में
ते हैं उनसे हिन्दी-व्याकरण को यह डर लगा
ा है कि वे किसी दिन "दालो रोटी", "हाथो-
", आदि न लिखने लगें।

कामताप्रसाद गुरु।

निवेदन—"नामोनिशां" या "नामो-निशान" और
ो-हवा"—ये उर्दू के मुहावरे हैं और त्यों के
हिन्दी में आ गये हैं। उर्दू में "दालो-रोटी"
"हाथो-पाँव" लिखने का रिवाज नहीं। अत-
एव यदि वे इस तरह लिखे जायँ तो उर्दू में भी
अपप्रयोग समझे जायँ, हिन्दी में तो समझे ही
जायँ। सरस्वती-सम्पादक।

व्यर्थ कोप।



... ... क्या दुख ... कौन सा ... करने वाला है अगर वह दुःख से पड़ा पड़ा चीखता और पुकारता रहे यहाँ तक कि रोग उसके मृत्यु का कारण हो जाय, समझदार मनुष्य उसे कुछ दोष न देंगे और क्षमा योग्य जानेंगे। परन्तु जो अपने रोग का ज्ञाता हो उसके कारण को समझता हो और औषध पास रखा होने पर उसके हाथ न लगाता हो ऐसे रोगी को कौन क्षमा योग्य मानेगा और उस पर किस बुद्धिमान् को दया आवेगी? बड़े शोक की बात है कि हमारा हिन्दुस्तान पिछले प्रकार का रोगी है। जानता है कि उसकी दुर्दशा का कारण क्या है, परन्तु काम वही करता है जिस से रोग को सहायता प्राप्त हो और वह निर्बल होने की अपेक्षा प्रबल हो।

जून की सरस्वती में एक उपाध्याय महाशय का एक लेख प्रकाशित हुआ है। वह मुसलमानों से अत्यन्त क्रोधित हैं कि उन्होंने संस्कृत-शब्दों का अशुद्ध उच्चारण केवल इस लिए किया कि हिन्दी का तिरस्कार करें—यह हमारे महाशय की कोरी विचार-शीलता है। सम्भव है कि मुसलमानों ने जान बूझ कर ऐसा कभी न किया होगा। इनके अशुद्ध उच्चारण का कारण हम आगे चल कर बतावेंगे। उपाध्याय जी अगर क्रोध के वशीभूत न होते तो वह हमारे सहमत होते कि मुसलमान क्षमा योग्य हैं। अगर न भी सही तो इनका लेख असभ्यतासूचक [illegible] और हानिकारक अधिक है। किसी लेख के लिखने और उसके प्रकाशित करने का केवल यही प्रयोजन है कि सर्वसाधारण को उस से लाभ प्राप्त हो। जिस लेख का फल इसके विरुद्ध है वह लेखक की [illegible] का [illegible] करने वाला और [illegible] नहीं कि पाठकों को हानि पहुँचाने वाला है। [illegible]

"व" का प्रचार।



एक समाचारपत्र-सम्पादक महाशय ने "व" (और) के घटते हुए प्रयोग पर दुःख प्रकट करते हुए बड़ी उत्कण्ठा से उसका प्रचार बढ़ाने की सलाह दी है। लेखक की राय में यह "व" थोड़े में बहुत अर्थ देता है; इस लिए इसका प्रचार बढ़ाना आवश्यक है। जहाँ तक हमें स्मरण है, इस सलाह का खण्डन मण्डन किसी ने नहीं किया और न इस सलाह के अनुसार इस उपयोगी "व" का प्रचार ही बढ़ा है। ऐसी अवस्था में इस शब्द के विषय में कुछ विचार किया जाना अनुचित न होगा।

"व" हिन्दी अथवा संस्कृत का शब्द नहीं है, किन्तु यावनी है। इसका प्रचार उर्दू में अधिक है और उस भाषा में यह, (वाव) के रूप में लिखा जाता है; पर इसका उच्चारण बहुत कुछ "ओ" का होता है। यह उच्चारण उर्दू के "नामो-निशान" सदृश समासों में स्पष्ट सुनाई देता है। जिन लोगों ने हिन्दी में इस "व" का प्रचार किया है उन्होंने, (वाव) के केवल व्यञ्जन-कार्य पर ध्यान दिया है; और उसी के अनुसार उसे "व" लिखना आरम्भ कर दिया है। यदि इसके अधिक प्रचलित स्वरोच्चारण पर ध्यान दिया जाता तो हिन्दी में ध्वनि के अनुसार इसका उच्चारण और रूप "ओ" होता।

हिन्दी में इस "व" के ह्रास का कारण इस शब्द के इतिहास ही में पाया जाता है। इसका प्रयोग न पुराने शिष्ट लेखकों ने किया है और न आधुनिक शिष्ट लेखक ही करते हैं। हिन्दी-गद्य की उत्पत्ति के बहुत समय पीछे तक इसका प्रचार नहीं हुआ और आज कल दो चार इने गिने साधारण लेखकों को छोड़ कर किसी को भी इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं ज्ञात होती। लेखक महाशय का व्यर्थ दुःख ही इस बात का परोक्ष साक्षी है कि हिन्दी के शिष्ट लेखक इस "व" का प्रयोग के योग्य नहीं समझते। हिन्दी में "व" का स[ब] किन्तु भिन्नार्थी एक शब्द "व" (या) है, जिसे कभी भूल से लोग "व" समझ लेते हैं और वे "व" का प्रयोग नहीं करते। जो लेखक यावनी शब्द का प्रयोग करते हैं वे बहुधा इसे "[या]" के अर्थ में भी भूल से लिख देते हैं, जिससे के अर्थ में एक प्रकार की अस्थिरता सी [हो] और शिष्ट लेखक भ्रम के निवारण के लिए के प्रयोग से बचने की चेष्टा करते हैं। य[ह] की आवश्यकता नहीं है कि "व" केवल लिखने [में] प्रयुक्त होता है। अपढ़ लोग तो इसे बहुधा [जानते] ही नहीं।

मध्यप्रदेश के कुछ लेखक इस "व" के बड़े [प्रेमी] जान पड़ते हैं। उनके इस प्रेम से उत्पन्न हुई [भूल] का एक उदाहरण मध्यप्रदेशीय हिन्दी पहली [पुस्तक] के उनतीसवें पाठ में पाया जाता है, जहाँ ग्र[न्थकार] महाशय ने "स्वच्छता व सफ़ाई" लिखा है। इस वाक्यांश में "व" का अर्थ "और" है तो [यह] प्रत्यक्ष भूल है; क्योंकि "स्वच्छता" और "स[फ़ाई]" अलग अलग दो भावनायें नहीं हैं, और, यदि [व] का अर्थ "वा" (या) है तो समझना चाहि[ए] इस "व" से बूढ़े ग्रन्थकार की अपेक्षा विद्यार्थी को, जिसके लिए पहली पुस्तक लिखी है, अवश्य ही अधिक मति-भ्रम होता होगा।

संयुक्त-प्रदेश के एक कवि महाशय ने अलग ही पन्थ निकाला है। उन्हें "व" से प्रेम है कि उन्होंने, (वाव) के दोनों [रूप] मिलाकर "व" को "वो" करके "गगन वो लिख डाला है। इस "वो" का अर्थ ... समझ लिया गया है, पर यह ध्वनि हिन्दी में नहीं है। यदि ये कवि चाहते तो इस ... निकाल कर "औ" के प्रयोग से अपनी ... अधिक ललित कर सकते थे।

हिन्दी में इस "व" के प्रयोग की ... श्यकता भी नहीं है, क्योंकि हमारी भाषा में "... "एवं", "तथा"—तीन तीन शब्द विद्य[मान]

प्रवस्था में "व" के घटते हुए प्रयोग पर खेद
वृथा है, उसके प्रचार की आशा करना वृथा
के प्रचार के लिए शिष्ट लेखकों को फुस-
वृथा है और उसका प्रचार करना वृथा है ।
दि किसी को "और" के उच्चारण में समय
पत करती है अथवा उसे पूरा लिखने के लिए
नहीं है तो वह "औ" क्यों न लिखे और
—बोलने में "और" के बदले बहुधा जल्दी के
"औ" सुनाई देता है; परन्तु व्यर्थ ही एक
लित विदेशी शब्द को, जिसके कारण भाषा
ाभ के बदले हानि अधिक है, पुनर्जीवित करना
ल है ।

यहाँ पर हम उर्दू के उन सामासिक शब्दों के
में भी कुछ लिखते हैं जिनमें यह "व" आता
र जिनको हमारे कुछ शिष्ट लेखक तत्सम रूप
न्दी में लिखते हैं । "नामो-निशान" (نام و نشان)
-हवा (آب و ہوا) आदि शब्दों में जो "व"
आता है वह हिन्दी में द्वन्द-समास के नियम
नुसार अशुद्ध है और जब ये शब्द हिन्दी में
हैं तब इन्हें हिन्दी के नियमों का पालन करना
यक है । जो लोग उर्दू पढ़े हैं वे अपनी भाषा-
ा के सहारे पूर्वोक्त शब्दों में "व" का अस्तित्व
सकते हैं; पर केवल हिन्दी जानने वाले न
को पहचानते हैं और न "नामो निशान",
ा-हवा", आदि बोलते हैं । उनके लिए "नाम-
न" वैसा ही शुद्ध है जैसा "नाम-रूप" है ।
नी सम्पादक की तरह जो शुद्धता-वादी लेखक
ाकार के विदेशी शब्दों का अविकृत रूप में
े हैं उनसे हिन्दी-व्याकरण को यह डर लगा
है कि वे किसी दिन "दालो रोटी", "हाथो-
, आदि न लिखने लगें !

कामताप्रसाद गुरु ।

रेदन—"नामोनिशां" या "नामो-निशान" और
ा हवा"—ये उर्दू के मुहावरे हैं और त्यों के
न्दी में आ गये हैं । उर्दू में "दालो-रोटी"
"हाथो-पाँव" लिखने   नहीं । अत
एव यदि ये इस तरह लिखे जायँ तो उर्दू में भी
अपप्रयोग समझे जायँ, हिन्दी में तो समझे ही
जायँ ।   सरस्वती-सम्पादक ।

व्यर्थ कोप ।

क्या दुख
कौन सा
करने वाला
पड़ा चीखना
और पुकारना रहे यहाँ तक कि रोग
उसके मृत्यु का कारण हो जाय, समझ-
दार मनुष्य उसे कुछ दोष न देंगे और क्षमा योग्य जानेंगे।
परन्तु जो अपने रोग का ज्ञाता हो उसके कारण को समझता
हो और औषध पास रखा होने पर उसके हाथ न लगाता
हो ऐसे रोगी को कौन क्षमा योग्य मानेगा और उस पर किस
बुद्धिमान् को दया आवेगी ? बड़े शोक की बात है कि
हमारा हिन्दुस्तान पिछले प्रकार का रोगी है । जानता है
कि उसकी दुर्दशा का कारण क्या है, परन्तु काम वही
करता है जिस से रोग को सहायता प्राप्त हो और वह निर्बल
होने की अपेक्षा प्रबल हो ।

जून की सरस्वती में एक उपाध्याय महाशय का एक
लेख प्रकाशित हुआ है । वह मुसलमानों से अत्यन्त क्रोधित
हैं कि उन्होंने संस्कृत-शब्दों का अशुद्ध उच्चारण केवल
इस लिए किया कि हिन्दी का तिरस्कार करें—यह हमारे
महाशय की कोरी विचार-हीनता है । सम्भव है कि मुसल-
मानों ने जान बूझ कर ऐसा कभी न किया होगा । उनके
अशुद्ध उच्चारण का कारण हम आगे चल कर बतावेंगे ।
उपाध्याय जी यदि क्रोध के वशीभूत न होते तो वह हमारे
सम्मत होते कि मुसलमान क्षमा के पात्र हैं । अगर न भी
सही तो हमारा क्रोध [illegible] थोड़ा और हानिकारक
अधिक है । किसी लेख के लिखने और उसके प्रकाशित
करने का केवल यही प्रयोजन है कि [illegible] को इस
से लाभ प्राप्त हो । जिस लेख का फल इसके विरुद्ध है वह
लेखक की लेखनी का [illegible] करने वाला और [illegible] नहीं
कि पाठकों को हानि पहुँचाने वाला है । [illegible]

"व" का प्रचार ।

योग्य



क समाचारपत्र-सम्पादक महा ने "व" (ग्रोर) के घटते प्रयोग पर दुःख प्रकट करते बड़ी उत्कण्ठा से उसका प्रच बढ़ाने की सलाह दी है। लेख की राय में यह "व" थोड़े में बहुत अर्थ देता है; इस लिए इसका प्रचार बढ़ाना आवश्यक है। जहां तक हमें स्मरण है, इस सलाह का खण्डन-मण्डन किसी ने नहीं किया ग्रोर न इस सलाह के अनुसार इस उपयोगी "व" का प्रचार ही बढ़ा है। ऐसी अवस्था में इस शब्द के विषय में कुछ विचार किया जाना अनुचित न होगा।

"व" हिन्दी अथवा संस्कृत का शब्द नहीं है, किन्तु यावनी है। इसका प्रचार उर्दू में अधिक है ग्रोर उस भाषा में यह, (वाव) के रूप में लिखा जाता है; पर इसका उच्चारण बहुत कुछ "ग्रो" का होता है। यह उच्चारण उर्दू के "नामो-निशान" सदृश समासों में स्पष्ट सुनाई देता है। जिन लोगों ने हिन्दी में इस "व" का प्रचार किया है उन्होंने, (वाव) के केवल व्यञ्जन कार्य पर ध्यान दिया है, ग्रोर उसी के अनुसार उसे "व" लिखना आरम्भ कर दिया है। यदि इसके अधिक प्रचलित स्वरोच्चारण पर ध्यान दिया जाता तो हिन्दी में ध्वनि के अनुसार इसका उच्चारण ग्रोर रूप "ग्रो" होता।

हिन्दी में इस "व" के ह्रास का कारण इस शब्द के इतिहास ही में पाया जाता है। इसका प्रयोग न पुराने शिष्ट लेखकों ने किया है ग्रोर न आधुनिक शिष्ट लेखक ही करते हैं। हिन्दी-गद्य की उत्पत्ति के बहुत समय पीछे तक इसका प्रचार नहीं हुआ ग्रोर आज कल
लेखकों को छोड़
की आवश्यकता
का अर्थ दुःख ही
कि हिन्दी के लिए

जून १९१५, पृष्ठ ३४७) आगे पण्डित बदरीनाथ लिखते हैं। उर्दू के ढंग की कुछ कविता करते मुँह के बल गिरते हैं। (सरस्वती, जून १९१५, २५)

[illegible]

...की तक़्तीअ़ तो यों हुई—

...	फ़ाइलातुन	मफ़ऊलु	फ़ाइलातुन
...	ए स्वयम्भू	...	...

...कृपा करके इसकी तक़्तीअ़ तो कीजिये देखिए कि एक ...की दुम बढ़ी जाती है कि नहीं?

[illegible]

...ी और संस्कृत अगर अलग भाषायें हैं तो किसी ...ड़ नहीं बिगड़ सकतीं और न उन का तिरस्कार ...ता है।

जो बड़ेन को लघु कहो, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं।

(रहीम)

सलीम जय़फ़र—
मुन्शी आलिम

'हो'—जातीय एक नया सम्प्रदाय।

भारतवर्ष के आदिम निवासी अनार्य्य कहलाते हैं। इन अनार्यों की कई जातियाँ हैं। इन्हीं में से कोल (Kolarian) भी हैं। पहले पहल ये जङ्गलों में रहते और फल, मूल ...न्य पशुओं के मांस से अपना जीवन-निर्वाह ...थे। न तो इनके रहने को घर थे और न पह...ा कपड़े। जहाँ पाते वहाँ ये अपना डेरा जमा ...र वर्षा तथा धूप से बचने के लिए छाया... पेड़ों की डालियों से झोपड़ियाँ बना लेते थे। ...समय ये एक प्रकार के पशु थे। पर अब ...दशा में कुछ सुधार होने लगा है। जब ये ...सभ्य हुए तब घर बनाने और कपड़े पहनने ...तभी से ये 'हो' कहलाने लगे। अब इनकी जाति का नाम ही 'हो' हो गया है। इनकी भाषा में 'हो' मनुष्य को कहते हैं।

आज कल ये सिंहभूमि ज़िले में अधिक पाये जाते हैं। इस ज़िले में सरकार ने इनकी शिक्षा का कुछ विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है। बिना फ़ीस दिये ही ये इस ज़िले के स्कूलों में पढ़ सकते हैं। किसी किसी को तो वज़ीफ़ा भी मिलता है। कोई कोई अब नौकरी-चाकरी भी करने लगे हैं। इन सब का रहन सहन निराला ही है। ये दल बाँध कर बाज़ारों में घूमते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी इकट्ठी हो कर बाज़ार जाती हैं। युवक-युवतियाँ कभी कभी एक साथ परस्पर हाथ मिलाये बाज़ारों में फिरती हैं। स्त्रियों में एक विलक्षणता यह है कि जहाँ उनमें से कोई हँसी वहाँ बिना कारण भी अन्य सभी विकट हँसी हँसने लगती हैं।

अब ये गाँवों में घर बना कर बसते और खेती-बारी तथा मज़दूरी से अपना पेट पालते हैं। जब किसी के यहाँ बालक पैदा होता है तब आस पास के सब लोग उसके यहाँ आकर इकट्ठे होते हैं और दावत खा खाकर आनन्द मनाते हैं। लड़का जब युवावस्था को प्राप्त होता है तब उसकी शादी की तैयारी की जाती है। पर इस जाति में व्याह करना बड़ा कठिन काम है। वर के पिता को बहुत ख़र्च करना पड़ता है। उसे कन्या के पिता को दस से बीस तक बैल और बहुत सा चावल, दाल इत्यादि अन्न देना पड़ता है। इसमें असमर्थ होने पर शादी रुक जाती है। शादी न होने के कारण ही वहाँ की बहुत सी स्त्रियाँ कुलटा हो जाती हैं। जब किसी की शादी होने लगती है तब आस पास के सब 'हो' स्त्री-पुरुष उसके यहाँ इकट्ठे होते हैं। एक भोज दिया जाता है। भोज में खाने पीने का अच्छा प्रबन्ध रहता है। ऐसे समय ये हँड़िया (भात से बनाया हुआ मद्य) ख़ूब पीते हैं और मतवाले होकर ख़ूब नाचते गाते हैं। सारी युवतियाँ एक साथ मिल कर मण्डप में घूमती और नाचती हैं। आदमी पशी, मांदल (एक प्रकार का ढोलक) नक़ारा,

के लेख से सिवा इसके कि हिन्दू मुसलमान एक दूसरे से और घृणा करें और कोई लाभ नहीं हो सकता । अगर थोड़े से मुसलमानों ने, जो हिन्दी-ज्ञाता न थे, कुछ शब्दों को ठीक ठीक न लिखा या न बोला तो कौन सा अन्धेर हो गया और अगर हुआ भी तो बताइए कि क्या उनका लेख अब उनसे ठीक ठीक शब्द कहला लेगा और अगर उसने कहला भी लिया तो इसका फल क्या होगा । उनके क्रोध भरे लेख ने सरस्वती के हिन्दू और मुसलमान पाठकों का जी दुखाया और हिन्दू मुसलमानों को मिलाना तो मिला ना उनमें भेद और बढ़ा दिया । अगर यह यह लेख न लिखते तो यह भेद घटता नहीं तो जहाँ का तहाँ स्थिर अवश्य रहता । अब उसने भाषा की तुच्छ सेवा कर के देश की बहुत बड़ी हानि की । यह अच्छा न किया ।

पहला विज्ञापन स्पष्ट यह बात बता रहा है कि मुसलमान हिन्दी के ज्ञाता न थे । अगर होते तो उनको क्या आवश्यकता थी कि जिस मार्ग पर वह अपने पिछले विज्ञापन बाँटने के समय चले उसे पहला विज्ञापन बाँटते समय न स्वीकार करते । ऐसा ज्ञात होता है कि सभासदों में एक आध इतनी हिन्दी जानता था कि उर्दू को नागरी अक्षरों में लिख दे । उसने अपने संस्कृत-प्रेमी मित्रों से जो दो चार शब्द सुने थे उनको लिख मारा । इस विज्ञापन से जब प्रयोजन सिद्ध न हुआ तो यह समझ में आया कि विज्ञापन की भाषा बदल दें । भाषा बदलने में मौलवी साहब की स्वयं आर्य्य-साहित्य ने सहायता की । जिन लोगों ने आर्य्य धार्मिक लिटरेचर उर्दू में देखा है वह इस बात को बहुत अच्छे प्रकार जानते हैं कि हमारे महाशयों ने कहाँ तक उर्दू में संस्कृत के शब्द मिलाये हैं । इन पुस्तक रचने वालों ने अपने विचार और धर्म को तो उर्दू में प्रकाशित करने का सम्बन्ध किया, परन्तु उसके गले पर उलटी छुरी फेरी । एक तो भाषा वह बर्त्ती जो उर्दू पढ़ने लिखने वाले न जानते थे । पेट भर कर संस्कृत शब्द भर दिये और उस पर अपराध यह किया कि इन शब्दों पर एराब न लगा कर पाठकों को ठीक ठीक उच्चारण न सिखाया । उर्दू वाले अनाथ अब क्या कर सकते थे । जो उच्चारण उनको भला प्रतीत हुआ उसी को स्वीकार कर लिया । यह फ़ारसी शब्द न थे जिन्हें ग़यासुल्लुग़ात में देख लेते और न अरबी के कि सुराह काम देती । तीसरे विज्ञापन के हेडिंग का प्रथम शब्द ही साहब की विद्वता को अच्छे प्रकार प्रगट कर रहा है । यदि हिन्दी ज्ञाता होते तो यह शब्द ठीक ठीक ... "मीमिज़ा" शब्द का रूप पाठकों को यों दि... "मुअजिज़ः" । मौलवी साहब से मुसलमानों को ... जाना चाहिए कि उन्होंने उनके धार्म्मिक साहित्य का ... अशुद्ध लिख कर उनका और उनके धर्म्म का निरादर ... यह भी सम्भव है कि संस्कृत के जो शब्द ठीक ठी... हैं उसका कारण छापेख़ाने वालों की कृपा हो, क्यों... देखने में आया है कि अगर कोई शब्द पुस्तक लि... ने अशुद्ध लिख दिया तो कमपोज़ीटर्स उसे ठीक कर... उपाध्याय जी ने अपने लेख में यह कहीं नहीं बताय... लकचरर्स में से कोई मुसलमान ऐसा भी था जिसने ... हिन्दी में कुछ कहा हो । यह दूसरा प्रमाण है कि वह ... कितनी हिन्दी जानते थे जिन्होंने विज्ञापन बाँट कर ... मिश्र को अप्रसन्न किया ।

उपाध्याय जी के कोप का दूसरा कारण शब्दों का ... उच्चारण है । हमारे महाशय इस बात को तो जानते ... होंगे कि अभ्यास भी इस संसार में कोई पदार्थ है । ... जो कुछ अभ्यास से कर लेता है वह बिना अभ्यास ... कर सकता । इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ़ारसी और ... की लिपि में प्रायः वह अक्षर विद्यमान हैं जो हिन्दी ... में पाये जाते हैं । परन्तु उर्दू, फ़ारसी और अरबी ... कोई अक्षर नहीं जो "ण" से मिलता हो । उपाध्या... देखिए हम आप को अभ्यास का एक खेल दिखावें । यह तो बताइए कि आपने "मुर्दे" को "मुर्दे" (... से) क्यों लिखा (सरस्वती, जून १९१९, पृष्ठ ... पेराग्राफ २) ? क्या आप इस शब्द के ठीक ठीक ... करने की योग्यता नहीं रखते, या संस्कृत और हिन्दी ... उच्चारण ऐसा है कि आप के लिए इस शब्द का ... कठिन हो गया ? आप के लेख से तो ऐसा बोध होता है ... कि आप फ़ारसी भी जानते हैं । फिर यह क्यों !

जैसे अब मुसलमानों से बिगड़ गये, आशा है ... भी कुछ कहें । हम आप को हिन्दी वालों का अपराध ... हैं । मिस्टर गुलेरी "ग़ोमर्द" लिखते हैं (सरस्वती ... १९१९, पृष्ठ ३४१) और "पड़दे" बोलते हैं (...

जून १९१२, पृष्ठ ३४२) आपके पण्डित बद्रीनाथ लिखते हैं। उर्दू के ढंग की कुछ कविता करने [ि]ह के बल गिरते हैं। (सरस्वती, जून १९१२, ३)

द बन्दे है न स्वम्भू सब के बनाया तूने"

सकी तक़तीय़ तो यों हुयी—

फ़ऊलु	फ़ाय़िलातुन	मफ़ऊलु	फ़ाय़िलातुन
दयनके	ए स्वम्भू	सबको ब	नाया तू ने

स कृपा करके इसकी तक़तीय़ तो कीजये देखए कि एक ही दुम बढ़ी जाती है कि नहीं ?

में है सब तू सब में, सब तू है तू सभी है'

न्दी और संस्कृत अगर उत्तम भाषाये हैं तो किसी के नहीं बिगड़ सकतीं और न उन का तिरस्कार ता है।

जो बड़ेन को लघु कहो, नहि रहीम घट जाँहि ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाँहि ।

(रहीम)

सलीम जय़फ़र—
मुन्शी आलिम

—जातीय एक नया सम्प्रदाय ।

भारतवर्ष के आदिम निवासी अनार्य्य कहलाते हैं । इन अनार्य्यों की कई जातियाँ हैं । इन्हीं में से कोल (Kolarian) भी हैं । पहले पहल ये जङ्गलों में रहते और फल, मूल य पशुओं के मांस से अपना जीवन-निर्वाह । न तो इनके रहने को घर थे और न पह- कपड़े । जहाँ पाते वहीं ये अपना डेरा जमा र वर्षा तथा धूप से बचने के लिए छाया ड़ों की डालियों से झोपड़ियाँ बना लेते थे । मय ये एक प्रकार के पशु थे । पर अब दशा में कुछ सुधार होने लगा है । जब ये भ्य हुए तब घर बनाने और कपड़े पहनने र्भी से ये 'हो' कहलाने लगे । अब इनकी जाति का नाम ही 'हो' हो गया है। इनकी भाषा में 'हो' मनुष्य को कहते हैं ।

आज कल ये सिंहभूमि ज़िले में अधिक पाये जाते हैं । इस ज़िले में सरकार ने इनकी शिक्षा का कुछ विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है । बिना फ़ीस दिये ही ये इस ज़िले के स्कूलों में पढ़ सकते हैं । किसी किसी को तो वज़ीफ़ा भी मिलता है । कोई कोई अब नौकरी-चाकरी भी करने लगे हैं । इन सब का रहन-सहन निराला ही है । ये दल बाँध कर बाज़ारों में घूमते हैं । इनकी स्त्रियाँ भी इकट्ठी हो कर बाज़ार जाती हैं । युवक-युवतियाँ कभी कभी एक साथ परस्पर हाथ मिलाये बाजारों में फिरती हैं । स्त्रियों में एक विलक्षणता यह है कि जहाँ उनमें से कोई हँसी वहाँ बिना कारण भी अन्य सभी विकट हँसी हँसने लगती हैं ।

अब ये गाँवों में घर बना कर बसते और खेती-बारी तथा मज़दूरी से अपना पेट पालते हैं । जब किसी के यहाँ बालक पैदा होता है तब आस पास के सब लोग उसके यहाँ आकर इकट्ठे होते हैं और दावत खा खाकर आनन्द मनाते हैं । लड़का जब युवावस्था को प्राप्त होता है तब उसकी शादी की तैयारी की जाती है । पर इस जाति में ब्याह करना बड़ा कठिन काम है । वर के पिता को बहुत ख़र्च करना पड़ता है । उसे कन्या के पिता को दस से बीस तक बैल और बहुत सा चावल, दाल इत्यादि अन्न देना पड़ता है । इसमें असमर्थ होने पर शादी रुक जाती है । शादी न होने के कारण ही यहाँ की बहुत सी स्त्रियाँ कुलटा हो जाती हैं । जब किसी की शादी होने लगती है तब आस पास के सब 'हो' स्त्री-पुरुष उसके यहाँ इकट्ठे होते हैं । एक भोज दिया जाता है । भोज में खाने पीने का अच्छा प्रबन्ध रहता है । ऐसे समय ये हँड़िया (भात से बनाया हुआ मद्य) ख़ूब पीते हैं और मतवाले होकर ख़ूब नाचते गाते हैं । सारी युवतियाँ एक साथ मिल कर मण्डप में घूमती और नाचती हैं । आदमी बाँसी, माँदल (एक प्रकार का ढोलक) नगाड़ा,

मानने लगते हैं। अच्छे नट का यही कर्तव्य है कि जब तक वह रङ्ग-भूमि में रहे तब तक प्रेक्षकों के मन पर अपना पूर्ण प्रभाव जमाये रहे। उदाहरण के लिए जिस समय मराठी के सन्त तुकाराम नाटक में तुकाराम हरिकीर्तन करता है उस समय सारे दर्शक अपने आपको भूल कर उसका अनुयायी समझने लगते हैं और उसके शब्दों पर ताली बजा बजा कर ख़ुद भी हरिनाम स्मरण करने लगते हैं। इसी तरह "प्रेम-संन्यास" में कमलाकर की दुष्टता को देख कर सब लोग इतने दुखी हो जाते हैं कि उनका मन यही चाहने लगता है कि रङ्ग-मञ्च पर चढ़ कर कमलाकर का अन्त कर दें। इससे स्पष्ट है कि नाटक मनुष्यों के हृदयों पर कैसा प्रभाव डालता है।

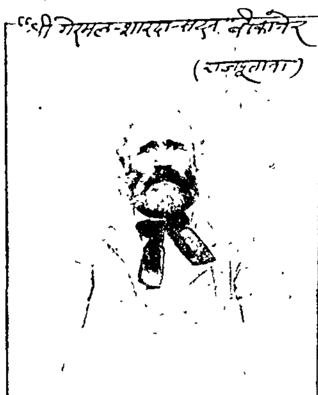
नाटक कैसे हों ?

नाटक-रचना कोई आसान बात नहीं। नाटक में वे गुण चुन चुन कर रखने चाहिए जो मनुष्यों के हृदयों पर उन्नति की छाप जमायें। ऐसा न करने से नाटकों का परिणाम विपरीत और भयङ्कर होता है। हिन्दी के नाटकों और नाटक-मण्डलियों का ख़याल आते ही बड़ा दुःख होता है। हिन्दी की अच्छी नाटक-मण्डलियाँ तो हैं ही नहीं। लोग पारसी नाटक-मण्डलियों को ही हिन्दी की नाटक-मण्डलियाँ मान कर अपनाते हैं। "गुलेबकावली" या "इन्द्र सभा" के तमाशे देख कर वे अपने आपको परित्नाम का बुलबुल मान बैठते हैं। रङ्ग-भूमि में अश्लील और अनुचित बातों का बहुधा अभिनय करके इस तरह की कई मण्डलियों ने नाटक को बहुत ही बिगाड़ डाला है। हिन्दी-नाटकों का प्रयोग तो इन मण्डलियों के नाटकों में बहुत ही कम होता है। और तो और "हरिश्चन्द्र-नाटक" में जब [illegible] का [illegible] करता है तब वह तो कह [illegible] है—"[illegible]"। [illegible] [illegible] [illegible]

याते हैं। किसी किसी पुस्तक के दृश्य (Scenes) तो ऐसी विचित्रता से गढ़े गये हैं कि महल के बाद सरोवर, सरोवर के बाद बाग़ों वा और बाग़ों के बाद जङ्गल आदि के दृश्य हैं। इन्हें नाटक दिखानेवाला न तो अलग कर सकता है और न थोड़े से समय और उतनी ही जगह में अभिनय करके उन्हें दिखा सकता है। नाटक लिखते समय इस ओर ध्यान होना चाहिए कि दो बड़े बड़े दृश्य, जो अधिक समय और अधिक स्थान माँगते हों, एक के बाद एक न आने पावें। जब ऐसे दृश्यों को दिखलाना हो तब एक दृश्य को दिखा कर रास्ते के छोटे दृश्य में कुछ पात्रों को ला कर कुछ समय व्यतीत करना चाहिए। ऐसा करने से परदे के पीछे दूसरा दृश्य अच्छी तरह से तैयार हो जायगा। [illegible] दृश्य परदा उठा कर दूसरा बड़ा दृश्य दिखाया जा [illegible] नाटककारों के लिए रास्ते का दृश्य बड़े काम का होता है। जहाँ कहीं दृश्य (Scene) [illegible] उन्हें कुछ कठिनता मालूम हुई, बस, वहीं रास्ते का दृश्य रख दिया। पारसी नाटकों में ऐसे समय जो पात्र सामने आते हैं उनसे असली नाटक के पात्रों से प्रायः कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इस प्रकार उनके यहाँ साथ ही साथ दो नाटकों का अभिनय होता रहता है। [illegible] दूसरा नक़ल कहाता है। यहाँ मेरी समझ में [illegible] मण्डलियों का अनुकरण करना ठीक है। [illegible] दृश्य के पात्रों का सम्बन्ध भी मुख्य नाटक से होना चाहिए।

नाटक से भाषा को लाभ।

मैं ऊपर बतला चुका हूँ कि नाटक का मनुष्यों के हृदयों पर कैसे [illegible] [illegible] देखना चाहिए कि भाषा पर उसका कैसा [illegible] पड़ता है। यह स्वाभाविक बात है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]



मिस्टर केर हार्डी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

[ख]-चालना भी नहीं जानते। पर, पारसी मण्ड[लियों] के नाटक देखते देखते ये अब उर्दू के ऐसे [शब्द] ग्रैार फ़िकरे कहते ग्रैार बोलते हैं कि सुन [कर दं]ग रह जाना पड़ता है। इसका कारण यह है कि [नाटक]शाला में लोग एकाग्र-चित्त होकर अभिनय देखते [हैं। उ]समें जो कोई नवीन घटना या अच्छा भाषण [होता है] उसे समझने की सब चेष्टा करते हैं। इस [प्रकार] धीरे धीरे वे उन शब्दों को आसानी से [समझ]ने लगते हैं। इसी तरह यदि बहुत सी हिन्दी-[नाटक]-मण्डलियाँ देश में अपने अभिनय दिखाने [लगें] तो क्या हिन्दी-भाषा का प्रभाव लोगों पर न [पड़े]? अवश्य ही पड़े। छोटी मोटी बातों में जहाँ [अरबी] फ़ारसी के बड़े बड़े लफ्ज़ काम में लाते हैं, [वहाँ हिन्दी] के सरल ग्रैार मधुर शब्दों का वे अवश्य [प्रयो]ग करने लगें। इस प्रकार सर्व-साधारण में [हिन्दी]-नाटकों के द्वारा हिन्दी-भाषा का प्रचार सर[लता] से हो सकता है।

हिन्दी के उपन्यास।

[कि]सी कल्पित कहानी या किसी मनुष्य के चरित्र [को ऐ]से वाक्यों में बाँध कर या ऐसे विस्तार के [साथ] लिखना कि पाठकों के मन में उसका चित्र [खिंच] जाय, वही उपन्यास है। वही उपन्यास [उत्तम] कहा जाता है जिसको पढ़ने में, आदि से अन्त [तक], मनुष्य का मन न ऊबे। केवल इतना ही नहीं, [लेखक] के उद्देशों से सहानुभूति ग्रैार जिस [मा]र्ग से पाठकों को चलाने की वह इच्छा रखता [है] उस पर चलने की प्रबल इच्छा—अधिक नहीं [तो प]ढ़ने समय तक—बनी रहे। यदि वह इतना करने [में स]मर्थ है तो समझना चाहिए कि उपन्यासकार [ने अ]पना कर्तव्य अच्छी तरह पालन कर दिया।

[उ]पन्यास में हर बात का वर्णन उत्तम रीति से किया [जाना चाहिए]। वर्तमान समय में लोगों की रुचि अस्वा[भावि]क बातों से जाती रही है। इसलिए उपन्यासों [में ऐ]सी बातें न लिखी जायँ तो अच्छा। हिन्दी में [नाट]कों की तरह उपन्यासों की भी बुरी दशा है। [हिन्द]ी के वर्तमान उपन्यास जासूसी ग्रैार तिलिस्म के भाण्डार हैं। उनके लेखक तिलिस्म के फन्दे में ऐसे फँस गये हैं कि उन्हें भाषा का ध्यान ही नहीं रह गया है। कुछ लोगों का ध्यान अवश्य अब इस ग्रोर आकृष्ट हुआ है। अब वे उपन्यासों की रचना में भाषा पर भी उचित ध्यान देने लगे हैं। नये प्रकाशित उपन्यासों में बहुत से ऐसे हैं जो दूसरी भाषाओं से अनुवादित हैं। हिन्दी में जासूसी उपन्यासों का आधिक्य तो है, पर सामाजिक उपन्यासों की बहुत ही कमी है। बालकों ग्रैार बालिकाओं के पढ़ने योग्य उपन्यास तो हैं ही नहीं। अन्यान्य भाषाओं में बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य उपन्यास लिखने का बड़ा प्रयत्न हो रहा है। बहुत अच्छा हो यदि हिन्दी-प्रेमी भी इस ग्रोर ध्यान दें। एक अँगरेज़ का कथन है—"Child is the father of man."—अर्थात् बालक-बालिकायें ही समय पर पिता ग्रैार माता के पदों पर पहुँचेंगी। यदि अच्छे ग्रैार शिक्षाप्रद उपन्यासों-द्वारा उनके अपरिपक्व मन पर उत्तम गुणों का प्रभाव डाला जाय तो होनहार सन्तति का कितना बड़ा उपकार हो। अँगरेज़ी, मराठी ग्रैार बँगला आदि भाषाओं में इस प्रकार की पुस्तकें बहुत हैं ग्रैार बहुत बनती जा रही हैं। पर, हिन्दी में लोगों का इस ग्रोर ध्यान ही नहीं। अँगरेज़ी के—"Basket of Flowers"—के ढँग पर यदि हिन्दी में कुछ उपन्यास लिखे जायँ तो बालकों का बड़ा उपकार हो। आप यह न समझें कि हिन्दी में मराठी ग्रैार अँगरेज़ी के समान बड़े बड़े लेखक नहीं। एक से एक एम० ए०, बी० ए० विद्वान् लेखक मैाजूद हैं। क्षमा कीजिए, कहने में भूल हुई। हमारे एम० ए० ग्रैार बी० ए० सज्जनों को इतना अवकाश ही नहीं कि वे हिन्दी में पुस्तकें या लेख लिखने का प्रयत्न करें। उनके हृदयों में तो स्काट, रेनाल्ड्स, डिकेन्सन् ग्रैार कारेली आदि धुरन्धर उपन्यासकारों के वर्णित दृश्य देदीप्यमान हो रहे हैं। फिर भला, बेचारी हिन्दी का वे क्यों पूछें? बहुत से ग्रैाल-देजुएट तो यह समझते हैं कि हिन्दी में लेख लिखना अपनी ग्रैार अपनी हिन्दी की इज़्ज़त कम करना है।

भेद-भाव।

अब विचार यह करना है कि नाटकों और उपन्यासों में भेद क्या है? नाटक में जिस तरह अङ्क होते हैं उसी तरह उपन्यास में परिच्छेद आदि होते हैं। नाटक में बहुधा जब कोई बड़ी घटना हुई, या किसी ने किसी का ख़ून किया, या किसी को बचाया, तब यवनिका-पतन (Drop Scene) होता है। उपन्यास में भी इसी तरह जहाँ कहीं विचित्र घटना आई कि परिच्छेद का अन्त हुआ। आगे चल कर फिर दो तीन परिच्छेद तक पहली घटना का कुछ सम्बन्ध ही नहीं मिलता। ये सब बातें मनुष्य की आतुरता को बढ़ाने के लिए हैं। नाटक में हम दर्शकों के सामने एक बात को प्रत्यक्ष रूप में अभिनय करके दिखला देते हैं और उपन्यास में हम उसी को वर्णन और कल्पना के द्वारा पाठकों के हृदय के भीतर चित्र की तरह अङ्कित कर देते हैं।

वाक्य-रचना।

यहाँ पर इन दोनों की वाक्य-रचना के सम्बन्ध में भी कुछ कहना उचित है। नाटक में जहाँ तक हो सके सरल और छोटे वाक्य रक्खे जायँ। ऐसे वाक्यों का प्रभाव ज़ोरदार होता है। गूढ़ और तत्त्व-ज्ञान-सम्बन्धी वाक्यों की अधिकता न होनी चाहिए। क्योंकि, नाट्यशाला में, उस समय, लोगों को मनन करने का अवकाश नहीं रहता। इसके विपरीत, उपन्यास में चाहे जितने बड़े और उत्तम वाक्य लिखे जा सकते हैं। वाक्यों को समझ कर लोग उनके भीतरी रहस्यों को जितना ही अवगत करेंगे उतना ही उन्हें आनन्द मिलेगा। जो विषय उपन्यास में पूर्ण रूप से और विस्तार-पूर्वक आता है वही नाटक में संक्षेप से आता है। क्योंकि, नाटक में हृदय-विशेष ज़रा देर ही देखा जा सकता है। पर उपन्यास में मनन करने का भी सुभीता रहता है।

विपिनविहारी श्रीवास्तव।

आशा।

जब दिल दुख से घबराता है, भय से शरीर थर्राता है,
जब साहस पीठ दिखाता है, पद हटना का हट ठाता है,
तब तू ढाढ़स बँधवाती है।
क्या सब्ज़ बाग़ दिखलाती है॥१॥

जब घोर विपद्-घन घिरते हैं, सिर पर दुख आते फिरते हैं,
नर बने बावले फिरते हैं, प्रिय प्राण डूबते तिरते हैं,
तब तू ही उन्हें बचाती है।
नौका बन कर आ जाती है॥२॥

दौर्भाग्य-दुष्ट जब आता है, नित नई आपदा लाता है,
मन सुहृदों का फिर जाता है, आँखें हर एक दिखाता है,
तब प्राण-सङ्गिनी बनती है।
तुझ से बस गाढ़ी छनती है॥३॥

जब जब नर व्याकुल होता है, खाता दुख-सर में गोता है,
अपने अभाग्य पर रोता है, जब हाथ धैर्य से धोता है,
तब करुणा तुझको आती है।
तू उसका मन बहलाती है॥४॥

जब चिन्ता-चिता धधकती है, पीड़ा की लपट बरसती है,
मुँह खोल मृत्यु पथ तकती है, कर यत्न बुद्धि भी थकती है,
तब झट चुपके से आती है।
तू आश्वासन दे जाती है॥५॥

जब व्यथा व्यथित मन करती है, दुरशङ्का सुख सब हरती है,
जब भूख प्यास भी मरती है, निद्रा भी आते डरती है,
तब आकर थपकी देती है।
सब मनो-व्याधि हर लेती है॥६॥

दुख मुझे लिखा क्या थोड़ा था, क्या विधि का धोखा देना था,
दिल दुःखों ने यों तोड़ा था, मैं ने सिर अपना फोड़ा था,
यदि आशा तू न पकड़ लेती।
निज-बन्धन में न जकड़ लेती॥७॥

अब कुटिया में दुख पाता हूँ, आशा के महल बनाता हूँ।
पद पीछे नहीं हटाता हूँ, जब तुझे दाहने पाता हूँ।
तुझ पर वारूँ तन मन सारा।
तू ही है जीवन-धन प्यारा॥८॥

मनोरी।

[उत्त]री अमेरिका में "सीपोहो-कानुमा-कोहकी" नामक जाति।

[स]भ्य संसार जानता है कि अमेरिका के मूल-निवासियों का नाम नेटिव अमेरिकन या अमेरिकन इन्डियन है। जब कोलम्बस ने इस नई [दुनि]या का पता लगाया था तब यही जाति वहाँ [रहती ग]ई थी। तभी से इसको इन्डियन कहते हैं। [अपनी] जन्म-भूमि की रक्षा के लिए ये लोग ख़ूब [लड़े] और अब भी कभी कभी लड़ जाया करते [हैं]। पर सूर्य के सामने दीपक का प्रकाश नहीं [ठहरता]। बहुत से इसी तरह लड़ भिड़ कर मर गये। [जो] बचाये थोड़े से रह गये हैं। ये अब कुछ पढ़ने [लिख]ने भी लगे हैं। अमेरिका की सरकार इनके [लिए] ख़र्च भी करती है। पर, तो भी, ये लोग अधि[कत]र जङ्गलों में ही रहते हैं। इनके खाने पीने का ढङ्ग, [रस्म]-रिवाज, भाषा इत्यादि सभी जुदा है। ये कई [दलों] में विभक्त हैं। हर दल का नाम अलग [अल]ग है। यहाँ उन इन्डियन लोगों के विषय में [कुछ] न लिखा जायगा जो सभ्य हो चुके हैं या [हो]ते जा रहे हैं। जो जङ्गलों में रहते हैं और [जिन्]होंने रेल-जहाज़ अभी तक नहीं देखा उन्हीं की [बातें] इस लेख में की जायगी। अमेरिका के एक [सज्ज]न ने इन जातियों की बस्तियों में ख़ूब भ्रमण [किय]ा है। उन्हीं के लेख के आधार पर मैं यह लेख [लिख] रहा हूँ।

इन लोगों के एक दल का नाम है "सीपोहो-[का]नुमा-कोहकी"। इसका अर्थ है ऐसे लोग जो [बहुत] ख़ुश रहें।

दूसरे दलों का खान पान, रस्म-रिवाज क़रीब [क़]रीब इसी जाति का सा है। पर भाषा इत्यादि [कई] बातों में कुछ फ़रक है। जहाँ यह जाति बसती [है] उस गाँव का नाम मन्डसन या मन्डसन है। इस [व]जह अमेरिका वाले इनको "मेन्डसन्-इन्डियन" भी कहते हैं। इन लोगों की संख्या तीन हज़ार से अधिक नहीं। ये लोग दूसरे दलों की तरह इधर उधर भ्रमण नहीं करते। दूसरे दलों के लोग भ्रमणकारी होते हैं—जैसे हमारे देश में नागा लोग। एक दल दूसरे का जानी दुश्मन होता है। धनुष-बाण, भाला, चाकू इत्यादि इनके हथियार हैं। इनका धनुष, लकड़ी या हड्डी का होता है। धनुष की लम्बाई ढाई फीट से लेकर तीन फीट तक होती है। प्रत्येक व्यक्ति एक धनुष-बाण, चाकू और भाला हर समय अपने पास रखता है। पहले ये लोग पत्थर या सींग का बाण बनाते थे। पर अब लोहे का बना बनाया ख़रीद लेते हैं। घोड़े की सवारी ये ख़ूब जानते हैं। जिस तरह में ये लोग बसते हैं, वहाँ भैंसे बहुत पाये जाते हैं। यही इनकी मुख्य ख़ूराक है। ये भैंसे हमारे देश की तरह के नहीं होते। इनकी गर्दन पर शेर की तरह लम्बे लम्बे बाल होते हैं। रङ्ग भूरा, काला और सफ़ेद भी होता है। अमेरिका के सभी अजायब-घरों में इनके नमूने रक्खे हैं। इन्हीं भैंसों का "मन्डसन" लोग शिकार करते हैं। बहादुर ये इतने होते हैं कि देखते ही देखते भैंसे का काम तमाम कर डालते हैं। बाण ये इतनी तेज़ी से छोड़ते हैं कि वह भैंसे के बदन को छेद कर आर-पार निकल जाता है। कभी कभी ऐसे शिकारों में शिकारी भी भैंसों के शिकार हो जाया करते हैं। ये लोग जब कभी पैदल शिकार करते हैं तब भैंसे की खाल पहन लेते हैं। उसमें सींग भी लगे रहते हैं। फिर ये सिर झुका कर भैंसों के झुण्ड में चले जाते हैं। तब इनके बाण छूटने लगते हैं। एक मिनट में बीस से लेकर पच्चीस तक बाण ये लोग छोड़ सकते हैं। यदि बाण भैंसे के कलेजे में लगा तो दो ही मिनट में उसका काम तमाम हो जाता है। वहाँ भैंसे ख़ूब ताक़तवर होते हैं। भैंसे इनके घोड़ों को मार कर गिरा देते हैं। यदि ऐसा शिकार होता है तो शिकारियों को बहुत चोटें आती हैं। पर ऐसे बहुत कम हैं। ये लोग आग की परवा भी

काम करते हैं। शिकार ख़तम होने पर ख़ूब आम-मान होता है। भैंसे की खाल ये गोल लेते हैं और मांस काट कर खाते हैं। साल में यह शिकार दो ही तीन दफ़े होता है, क्योंकि भैंसे सादि गर्माई में चक्कर लगाया करते हैं। जब किस गाँव के निकट पहुँचते हैं तभी वहाँ इनका शिकार होता है। हर शिकार में बहुत से भैंसे मारे जाते हैं। इनका मांस धूप में सुखा कर ये लोग कूट डालते हैं। उसका आटा बना डालते हैं। इसी आटे की रोटी बना कर ये खाते हैं। चर्बी से ये तेल बनाते हैं। यही इनका मक्खन या घी है।

ये लोग भैंसे ही की खाल पहनते हैं। उसीसे डेरे (Tent) भी बनाते हैं। भैंसे की जीभ को ये अद्भुत पदार्थ समझते हैं। भोज इत्यादि के मौक़े पर उसकी बड़ी इज़्ज़त होती है। अमेरिका के पूर्वोक्त महाशय के साथ इन लोगों ने कैसा बर्ताव किया, इसका भी हाल उन्हीं की ज़बानी सुन लीजिए:—

"मुझे एक दफ़े नेवता मिला। मैं गया। बैठने के लिए मृग-चर्म बिछा दिया गया। मैं, वहाँ की रस्म के अनुसार, पालथी मार कर (Cross-legged) बैठ गया। तब गाँव के मुखिया ने मुझे एक लम्बा पाइप (हुक्का) दिया। मैंने उसे पिया। इनकी तम्बाकू भी भैंसे ही की हड्डी की होती है। खाने के लिए तीन तश्तरियों में, जो लकड़ी की थीं, भैंसे की जीभ, भैंसे के मांस से बनी हुई रोटी और चर्बीवाला मक्खन आया। नमक किसी में भी नहीं। ये लोग नमक नहीं खाते। मुखिया मेरे सामने बैठ गया और हुक्का पीने लगा। जब मैं हुक्का पी चुका तब मुखिये ने मांस का एक टुकड़ा लिया। उसे "होपेने-चो-वापा-दो"—यह मन्त्र पढ़ कर उसने सामने रक्खी हुई आग में डाल दिया। फिर उसने इशारा किया कि आप भोजन करें। मैं भोजन करता जाता था और मुखिया बैठा बैठा हुक्का पीता जाता था। उस समय और कोई खाता न था। यही भोजन करते समय कोई बोलता भी न था। यही

पर बहुत से स्त्री-बच्चे बैठे थे, पर सब चुप बै
मैं खा चुका तब मुखिया ने फिर वही हुक्
दिया। चलते समय वही मृग-छाला, जिस प
बैठा था, मुझे भेंट में दिया गया। मैंने धन्य
पूर्वक उसको स्वीकार किया। तब उसने
मिलाया और फिर आने के लिए इच्छा प्रक
डेरे पर आ कर मैंने अपने साथी से पूछा कि
करने के पहले मुखिया क्या पढ़ता है और मांस
आग में क्यों फेंक देता है? उत्तर मिला कि मन्
ठीक ठीक अर्थ तो मुखिया के सिवा और कोई न
जानता, पर तुम्हारी तरफ़ से उसने अपने
को याद किया था। खाने के पहले देना
नियमानुकूल बात है।"

जिस पदार्थ या जिस बात के विषय में ये
कुछ नहीं जानते या इनके लिए वह अद्भुत
मालूम होती है उसे ये ऐसे नाम से पुकारते
जिसका अर्थ गुप्त होता है। इन लोगों के
फ़्रान्सीसी सौदागर कारोबार करते हैं। सौदा
लोग उस शब्द की जगह "मेडिसिन" का प्र
करते हैं। पर दर असल उस शब्द का क्या
होता है, यह नहीं बताया जा सकता। और
लेख में ऐसे शब्द की जगह "मेडिसिन" का
प्रयोग किया जायगा। मेडिसिन की एक एक झो
हर व्यक्ति के पास होती है। यह लम्बी होती
इसमें हड्डी, खोपड़ी, शंख, सीप इत्यादि अड़े र
हैं। जब बालक १५ या १६ वर्ष का हो जाता
तब उसके मुखिया उससे पूछते हैं कि तू किस
की झोली चाहता है। तब वह बालक दो
दिन तक किसी महती शक्ति या महान् आ
(Great Spirit) के नाम ले लेकर चिल्लाता
जब उसको स्वप्न में किसी जानवर या चिड़िया
रक्त-रूप दिखाई देता है तब उसी जानवर को
कर उसी की खाल की झोली बनाई जाती है।
झोली के विषय में कुछ टोना-टटका भी कि
जाता है। यह एक अमूल्य चीज़ समझी जाती
और जान से भी अधिक प्यारी होती है। यह है

ाय हर व्यक्ति के साथ रहती है। यदि संयोग-
र खो जाय या लड़ते समय फट फुट जाय तो
ा संस्कार होता है। परन्तु दूसरा संस्कार
क नहीं होता जब तक झोली पाने वाला
दुश्मन को रण में मार न डाले। जब वह
में किसी दूसरे दल के आदमी को मार
है तब उसको दूसरी झोली मिलती है।
सने रण में दुश्मन से कोई झोली छीन ली
उसकी हो जाती है। यह झोली प्राण रक्षक
की सदा पूजा होती है। इसका नाम "मेडि-
न" (जादू की झोली) है। यह झोली ही इन
ा ईश्वर है।

त्योहार।

ा जो समय शिकार में जाता है उसे छोड़
ी समय में ये लोग त्योहार मनाया करते
त्योहार का नाम है भैंसा नाच इस त्योहार
ोग भैंसे की खाल पहन कर इकट्ठे होते हैं।
ग भैंसे मान लिये जाते हैं पर कुछ
। प्रत्येक शिकारी के हाथ में धनुषबाण
। यह बात अक्सर लड़ाई का होता है
क पर झुण्ड रहता है इसके बाद शिकार

लगता है वह मैदान से हटा दिया जाता है।
तरह जब तक एक दल का बिलकुल ही
नाश नहीं हो जाता लड़ाई हुआ करती है।
के महीने इसी तरह कट जाते हैं। जो दल जीत
है उसको मुखिया इनाम देता है। उस दल के
बहादुर समझे जाते हैं।

इन लोगों के और भी कई त्योहार हैं। पर,
में यही लड़ाई भिड़ाई होती है। साल में इनका
मुख्य त्योहार होता है और कई दिन तक मन
जाता है। इसका भी नाम "मेडिसिन" रक्खा
है। इसमें मनुष्य का बलिदान भी होता है।
जान से कोई नहीं मारा जाता। जिस आदमी
चढ़ाना होता है उसकी बड़ी दुर्गति होती
हर साल दो आदमियों के साथ ऐसा बर्ताव कि
जाता है। उनको बाँधकर ये लोग लटका देते
फिर उनका बदन चाकू से काटते और चम
खींचते हैं। जिन आदमियों की यह दुर्गति होती
वे मेडिसिन-मैन' (जादूगर या परमात्मा)
पुकारते हैं। वे कहते हैं कि हे सबसे बड़े "मेडिसि
हम तुम्हारे नाम पर इतनी बड़ी वेदनाएँ सह
हैं हमारी रक्षा करो स्त्री-पुरुष सभी
शामिल होते हैं। अन्त में इन दोनों की

कम करते हैं। शिकार ख़तम होने पर ख़ूब नाच-गान होता है। भैंसे की खाल को ये खींच लेते हैं और मांस चट कर जाते हैं। साल में यह शिकार दो ही तीन दफ़े होता है, क्योंकि भैंसे सारी तराई में चक्कर लगाया करते हैं। जब जिस गाँव के निकट पहुँचते हैं तभी वहाँ इनका शिकार होता है। हर शिकार में बहुत से भैंसे मारे जाते हैं। उनका मांस धूप में सुखा कर ये लोग कूट डालते हैं। उसका आटा बना डालते हैं। इसी आटे की रोटी बना कर ये खाते हैं। चर्बी से ये तेल बनाते हैं। यही इनका मक्खन या घी है।

ये लोग भैंसे ही की खाल पहनते हैं। उसीसे डेरे (Tent) भी बनाते हैं। भैंसे की जीभ को ये अद्भुत पदार्थ समझते हैं। भोज इत्यादि के मौक़े पर उसकी बड़ी इज़्ज़त होती है। अमेरिका के पूर्वोक्त महाशय के साथ इन लोगों ने कैसा बर्ताव किया, इसका भी हाल उन्हीं की ज़बानी सुन लीजिए:—

"मुझे एक दफ़े नेवता मिला। मैं गया। बैठने के लिए मृग-चर्म बिछा दिया गया। मैं, वहाँ की रस्म के अनुसार, पालथी मार कर (Cross-legged) बैठ गया। तब गाँव के मुखिया ने मुझे एक लम्बा पाइप (हुक़्क़ा) दिया। मैंने उसे पिया। इनकी तम्बाकू भी भैंसे ही की हड्डी की होती है। खाने के लिए तीन तश्तरियों में, जो लकड़ी की [illegible] पर बहुत से स्त्री-बच्चे बैठे थे, पर सब चुप थे। मैं खा चुका तब मुखिया ने फिर वही [illegible] दिया। चलते समय वही मृग-छाला, जिस [illegible] बैठा था, मुझे भेंट में दिया गया। मैंने धन्य[illegible] पूर्वक उसको स्वीकार किया। तब उसने [illegible] मिलाया और फिर आने के लिए इच्छा प्रकट [illegible] डेरे पर आ कर मैंने अपने साथी से पूछा कि भो[illegible] करने के पहले मुखिया क्या पढ़ता है और मांस [illegible] आग में क्यों फेंक देता है? उत्तर मिला कि मन्त्र[illegible] ठीक ठीक अर्थ तो मुखिया के सिवा और कोई [illegible] जानता, पर तुम्हारी तरफ़ से उसने अपने इ[illegible] को याद किया था। खाने के पहले ऐसा क[illegible] नियमानुकूल बात है।"

जिस पदार्थ या जिस बात के विषय में ये लो[illegible] कुछ नहीं जानते या इनके लिए वह अद्भुत [illegible] मालूम होती है उसे ये ऐसे नाम से पुकारते [illegible] जिसका अर्थ गुप्त होता है। इन लोगों के स[illegible] फ़्रान्सीसी सौदागर कारोबार करते हैं। सौदा[illegible] लोग उस शब्द की जगह "मेडिसिन" का प्र[illegible] करते हैं। पर दर असल उस शब्द का क्या [illegible] होता है, यह नहीं बताया जा सकता। ख़ैर, [illegible] लेख में ऐसे शब्द की जगह "मेडिसिन" का प्रयोग किया जायगा। मेडिसिन की एक एक हो[illegible] हर व्यक्ति [illegible] होती है। यह लम्बी होती [illegible] इसमें हर [illegible] र इत्यादि जड़े [illegible]

य हर व्यक्ति के साथ रहती है। यदि संयोग-
द खो जाय या लड़ते समय फट फुट जाय तो
या संस्कार होता है। परन्तु दूसरा संस्कार
क नहीं होता जब तक झोली पाने वाला
दुश्मन को रण में मार न डाले। जब यह
में किसी दूसरे दल के आदमी को मार
है तब उसको दूसरी झोली मिलती है।
सने रण में दुश्मन से कोई झोली छीन ली
उसकी दो जाती है। यह झोली प्राण-रक्षक
की सदा पूजा होती है। इसका नाम "मेडि-
न" (जादू की झोली) है। यह झोली ही इन
का ईश्वर है।

त्योहार।

का जो समय शिकार में जाता है उसे छोड़
की समय में ये लोग त्योहार मनाया करते
क त्योहार का नाम है भैंसा-नाच। इस त्योहार
लोग भैंसे की खाल पहन कर इकट्ठे होते हैं।
लोग भैंसे मान लिये जाते हैं और कुछ
ी। प्रत्येक शिकारी के हाथ में धनुष-बाण
है। यह बाण अकसर लकड़ी का होता है
नोक पर मुड़ा रहता है। इसके बाद शिकार
लगता है। जिसके कलेजे के पास बाण लग
ह मरा समझा जाता है। बाण लगते ही
र पड़ता है। इसी तरह कई घण्टे तक झूठा
र होता रहता है।

सरा त्योहार भी इसी प्रकार का है। पर उसमें
दस से लेकर पन्द्रह वर्ष तक के लड़के झूठी
लड़ते हैं। गर्मी के दिनों में यह कवायद प्रति
सवेरे होती है। हर लड़के के हाथ में लकड़ी का
बाण रहता है। बाण भद्दा होता है, जिसमें
के चुभे नहीं। खेल के पहले सब लड़के
कर दिये जाते हैं। वे दो दलों में बाँट दिये
हैं। एक दल दूसरे को दुश्मन मान लेता है
लड़ाई आरम्भ हो जाती है। गाँव का मुखिया
दूसरे लोग भी तमाशा देखते हैं। जिसके बाण
लगता है वह मैदान से हटा दिया जाता है। इसी
तरह जब तक एक दल का बिलकुल ही कृत्रिम
नाश नहीं हो जाता लड़ाई हुआ करती है। गर्मियों
के महीने इसी तरह कट जाते हैं। जो दल जीतता
है उसको मुखिया इनाम देता है। उस दल के लोग
बहादुर समझे जाते हैं।

इन लोगों के और भी कई त्योहार हैं। पर, सब
में यही लड़ाई भिड़ाई होती है। साल में इनका एक
मुख्य त्योहार होता है और कई दिन तक मनाया
जाता है। इसका भी नाम "मेडिसिन" रक्खा गया
है। इसमें मनुष्य का बलिदान भी होता है। पर,
जान से कोई नहीं मारा जाता। जिस आदमी को
चढ़ाना होता है उसकी बड़ी दुर्गति होती है।
हर साल दो आदमियों के साथ ऐसा बर्ताव किया
जाता है। उनको बाँधकर ये लोग लटका देते हैं।
फिर उनका बदन चाकू से काटते और चमड़ा
खींचते हैं। जिन आदमियों की यह दुर्गति होती है
वे "मेडिसिन-मैन" (जादूगर या परमात्मा) को
पुकारते हैं। वे कहते हैं कि हे सबसे बड़े "मेडिसिन"
हम तुम्हारे नाम पर इतनी कड़ी वेदनायें सह रहे
हैं; हमारी रक्षा करो। स्त्री-पुरुष सभी इसमें
शामिल होते हैं। अन्त में उन दोनों की उँगलियाँ
काटकर "मेडिसिन" पर चढ़ा दी जाती हैं। तब
सब मिलकर नाचते, कूदते और गाते हैं। और
किसी भी त्योहार में स्त्रियाँ नाचने-कूदने में पुरुषों
का साथ नहीं देतीं। उनके कर्म धर्म पुरुषों से
भिन्न हैं। पर वे पुरुषों के त्योहारों को देख अवश्य
सकती हैं। इस त्योहार में अग्नि में मांस इत्यादि भी
भूना जाता है। जहाँ यह जलसा होता है वहाँ
सबके बीच में अग्नि जलाई जाती है और जब तक
त्योहार समाप्त नहीं होता जलती रहती है।
त्योहार के समय उपवास भी करना पड़ता है।

रहन-सहन।

रहने के लिए ये लोग डेरे गाड़ते हैं। इनका
डेरा भैंसे की खाल का होता है। अब कपड़े का भी

कम करते हैं। शिकार ख़तम होने पर ख़ूब नाच-गान होता है। भैंसे की खाल को ये खींच लेते हैं और मांस चट कर जाते हैं। साल में यह शिकार दो ही तीन दफ़े होता है, क्योंकि भैंसे सारी तराई में चक्कर लगाया करते हैं। जब जिस गाँव के निकट पहुँचते हैं तभी वहाँ इनका शिकार होता है। हर शिकार में बहुत से भैंसे मारे जाते हैं। उनका मांस धूप में सुखा कर ये लोग कूट डालते हैं। उसका आटा बना डालते हैं। इसी आटे की रोटी बना कर ये खाते हैं। चर्बी से ये तेल बनाते हैं। वही इनका मक्खन या घी है।

ये लोग भैंसे ही की खाल पहनते हैं। उसीसे डेरे (Tent) भी बनाते हैं। भैंसे की जीभ को ये अद्भुत पदार्थ समझते हैं। भोज इत्यादि के मौक़े पर उसकी बड़ी इज्ज़त होती है। अमेरिका के पूर्वोक्त महाशय के साथ इन लोगों ने कैसा बर्ताव किया, इसका भी हाल उन्हीं की ज़बानी सुन लीजिए:—

"मुझे एक दफ़े नेवता मिला। मैं गया। बैठने के लिए मृग-चर्म बिछा दिया गया। मैं, वहाँ की रस्म के अनुसार, पालथी मार कर (Cross-legged) बैठ गया। तब गाँव के मुखिया ने मुझे एक लम्बा पाइप (हुक्क़ा) दिया। मैंने उसे पिया। इनकी तम्बाकू भी भैंसे ही की हड्डी की होती है। खाने के लिए तीन तश्तरियों में, जो लकड़ी की थीं, भैंसे की जीभ, भैंसे के मांस से बनी हुई रोटी और चर्बीवाला मक्खन आया। नमक किसी में भी नहीं। ये लोग नमक नहीं खाते। मुखिया मेरे सामने बैठ गया और हुक्क़ा पीने लगा। जब मैं हुक्क़ा पी चुका तब मुखिये ने मांस का एक टुकड़ा लिया। उसे "हापेने-चो-यापा-दी"—यह मन्त्र पढ़ कर उसने सामने रक्खी हुई आग में डाल दिया। फिर उसने इशारा किया कि आप भोजन करें। मैं भोजन करता जाता था और मुखिया बैठा बैठा हुक्क़ा पीता जाता था। इस समय और कोई खाता न था। भोजन करते समय कोई बोलता भी न था। वहाँ पर बहुत से स्त्री-बच्चे बैठे थे, पर सब चुप थे। जब मैं खा चुका तब मुखिया ने फिर वही हुक्क़ा मुझे दिया। चलते समय वही मृग-छाला, जिस पर मैं बैठा था, मुझे भेंट में दिया गया। मैंने धन्यवाद पूर्वक उसको स्वीकार किया। तब उसने हाथ मिलाया और फिर आने के लिए इच्छा प्रकट की। डेरे पर आ कर मैंने अपने साथी से पूछा कि भोजन करने के पहले मुखिया क्या पढ़ता है और मांस आग में क्यों फेंक देता है? उत्तर मिला कि मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ तो मुखिया के सिवा और कोई न जानता, पर तुम्हारी तरफ़ से उसने अपने इष्टदेव को याद किया था। खाने के पहले ऐसा करना नियमानुकूल बात है।"

जिस पदार्थ या जिस बात के विषय में ये लो[ग] कुछ नहीं जानते या इनके लिए वह अद्भुत [है] मालूम होती है उसे ये ऐसे नाम से पुकारते [हैं] जिसका अर्थ गुप्त होता है। इन लोगों के सा[थ] फ़्रान्सीसी सौदागर कारोबार करते हैं। सौदागर लोग उस शब्द की जगह "मेडिसिन" का प्रयोग करते हैं। पर दर असल उस शब्द का क्या अ[र्थ] होता है, यह नहीं बताया जा सकता। ख़ैर, इ[स] लेख में ऐसे शब्द की जगह "मेडिसिन" का ही प्रयोग किया जायगा। मेडिसिन की एक एक झोली हर व्यक्ति के पास होती है। यह लम्बी होती है। इसमें हड्डी, खोपड़ी, शंख, सीप इत्यादि भरे र[हते] हैं। जब बालक १५ या १६ वर्ष का हो जाता है तब उसके मुखिया उससे पूछते हैं कि तू किस तर[ह] की झोली चाहता है। तब वह बालक दो ती[न] दिन तक किसी महती शक्ति या महान् आत्मा (Great Spirit) के नाम ले लेकर चिल्लाता है। जब उसको स्वप्न में किसी जानवर या चिड़िया का रूप दिखाई देता है तब उसी जानवर को मार कर उसी की खाल की झोली बनाई जाती है। इस झोली के विषय में कुछ टोना-टटका भी कि[या] जाता है। यह एक अमूल्य चीज़ समझी जाती है और जान से भी अधिक प्यारी होती है। यह होती

र समय हर व्यक्ति के साथ रहती है। यदि संयोग-श यह खो जाय या लड़ते समय फट फुट जाय तो र नया संस्कार होता है। परन्तु दूसरा संस्कार ब तक नहीं होता जब तक झोली पाने वाला किसी दुश्मन को रण में मार न डाले। जब वह लड़ाई में किसी दूसरे दल के आदमी को मार डालता है तब उसको दूसरी झोली मिलती है। यदि उसने रण में दुश्मन से कोई झोली छीन ली तो वही उसकी हो जाती है। यह झोली प्राण-रक्षक है। इसकी सदा पूजा होती है। इसका नाम "मेडिसिन-बैग" (जादू की झोली) है। यह झोली ही इन लोगों का ईश्वर है।

त्योहार।

इनका जो समय शिकार में जाता है उसे छोड़ कर बाकी समय में ये लोग त्योहार मनाया करते हैं। एक त्योहार का नाम है भैंसा-नाच। इस त्योहार में सब लोग भैंसे की खाल पहन कर इकट्ठे होते हैं। कुछ लोग भैंसे मान लिये जाते हैं और कुछ शिकारी। प्रत्येक शिकारी के हाथ में धनुप-बाण रहता है। यह बाण अकसर लकड़ी का होता है और नोक पर मुड़ा रहता है। इसके बाद शिकार होने लगता है। जिसके कलेजे के पास बाण लग गया वह मरा समझा जाता है। बाण लगते ही वह गिर पड़ता है। इसी तरह कई घण्टे तक झूठा शिकार होता रहता है।

दूसरा त्योहार भी इसी प्रकार का है। पर उसमें केवल दस से लेकर पन्द्रह वर्ष तक के लड़के झूठी लड़ाई लड़ते हैं। गर्मी के दिनों में यह क़वायद प्रति दिन सवेरे होती है। हर लड़के के हाथ में लकड़ी का धनुप-बाण रहता है। बाण भद्दा होता है, जिसमें किसी के चुभे नहीं। खेल के पहले सब लड़के खड़े कर दिये जाते हैं। वे दो दलों में बाँट दिये जाते हैं। एक दल दूसरे को दुश्मन मान लेता है और लड़ाई आरम्भ हो जाती है। गाँव का मुखिया और दूसरे लोग भी तमाशा देखते हैं। जिसके बाण लगता है वह मैदान से हटा दिया जाता है। इसी तरह जब तक एक दल का बिलकुल ही कृत्रिम नाश नहीं हो जाता लड़ाई हुआ करती है। गर्मियों के महीने इसी तरह कट जाते हैं। जो दल जीतता है उसको मुखिया इनाम देता है। उस दल के लोग बहादुर समझे जाते हैं।

इन लोगों के और भी कई त्योहार हैं। पर, सब में यही लड़ाई भिड़ाई होती है। साल में इनका एक मुख्य त्योहार होता है और कई दिन तक मनाया जाता है। इसका भी नाम "मेडिसिन" रक्खा गया है। इसमें मनुष्य का बलिदान भी होता है। पर, जान से कोई नहीं मारा जाता। जिस आदमी को चढ़ाना होता है उसकी बड़ी दुर्गति होती है। हर साल दो आदमियों के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है। उनको बाँधकर ये लोग लटका देते हैं। फिर उनका बदन चाक़ू से काटते और चमड़ा खींचते हैं। जिन आदमियों की यह दुर्गति होती है वे "मेडिसिन-मैन" (जादूगर या परमात्मा) को पुकारते हैं। वे कहते हैं कि हे सबसे बड़े "मेडिसिन" हम तुम्हारे नाम पर इतनी कड़ी वेदनायें सह रहे हैं; हमारी रक्षा करो। स्त्री-पुरुष सभी इसमें शामिल होते हैं। अन्त में उन दोनों की उँगलियाँ काटकर "मेडिसिन" पर चढ़ा दी जाती हैं। तब सब मिलकर नाचते, कूदते और गाते हैं। और किसी भी त्योहार में स्त्रियाँ नाचने-कूदने में पुरुषों का साथ नहीं देतीं। उनके कर्म धर्म पुरुषों से भिन्न हैं। पर वे पुरुषों के त्योहारों को देख अवश्य सकती हैं। इस त्योहार में अग्नि में मांस इत्यादि भी भूना जाता है। जहाँ यह जलसा होता है वहाँ सबके बीच में अग्नि जलाई जाती है और जब तक त्योहार समाप्त नहीं होता जलती रहती है। त्योहार के समय उपवास भी करना पड़ता है।

रहन-सहन।

रहने के लिए ये लोग डेरे गाड़ते हैं। इनका डेरा भैंसे की खाल का होता है। अब कपड़े का भी

बसने लगा है। इनके बसने का ढङ्ग निराला ही है। इनकी छोलदारियाँ गोलाकार गाड़ी जाती हैं। गाँव का हर कुटुम्ब अपनी अपनी छोलदारी अलग बनाता है। सारे डेरे वृत्ताकार डाले जाते हैं। बीच में कुछ मैदान खुला छोड़ दिया जाता है। हर डेरे का द्वार मैदान की तरफ़ होता है। मैदान में भैंसे की खोपड़ी एक ऊँचे लट्ठे से टाँग दी जाती है। खोपड़ी में कुछ जादू किया जाता है। गाँव के लोग इस खोपड़ी से अपनी रक्षा समझते हैं। लाल, पीली झण्डियाँ भी गाड़ी जाती हैं। "मेडिसिन" नामक प्रधान त्योहार इसी गोलाकार मैदान में मनाया जाता है। .खेमे के भीतर हड्डियाँ, खोपड़ियाँ इत्यादि टँगी रहती हैं। ये लोग दिन में दो दफ़े भोजन करते हैं। पर भूख लगने पर किसी समय भी खा सकते हैं। स्त्री-पुरुष एक साथ भोजन नहीं करते। ऐसा करना अनुचित समझा जाता है।

खाना पकाना स्त्री का ही कर्तव्य है। पुरुष पहले भोजन करते हैं। बाद को स्त्रियाँ। बच्चे किसी भी समय खा सकते हैं। कोई भी पुरुष या स्त्री किसी के .खेमे में बे-रोकटोक जा सकती है। इच्छा होने से वहाँ भोजन भी .खुशी के साथ मिल सकता है। स्त्री-पुरुष एक साथ स्नान नहीं करते। स्त्रियों के लिए अलग तालाब होता है। इस तालाब के चारों तरफ़ कुछ ऊँची दीवार होती है। जब स्त्रियाँ नहाने जाती हैं, रखवाले धनुष-बाण लेकर दीवार से कुछ दूर बैठते हैं। गर्मियों में हर रोज़ स्नान होता है। यहाँ पुरुष नहीं जा सकते। यह केवल बच्चों और स्त्रियों के लिए है। स्त्रियाँ शायद नङ्गी होकर नहाती हैं और .खूब जल-क्रीड़ा करती हैं। जाड़ों में कभी कभी गरम पानी से स्नान होता है।

गाँव में एक आदमी मुखिया मान लिया जाता है। वही पुरुष मुखिया हो सकता है जिसने रण में अधिक दुश्मन मारे हों। मुखिये को भेड़िये की पदवी प्रदान की जाती है। उसके नीचे दूसरा मुखिया होता है। उसको दि
है। ऐसे ही तीस चालीस छो
जाते हैं। उन्हींके आज्ञानुसार
जो जितना ही रण-बाँकुरा है
इज़्ज़त होती है। हर व्यक्ति
पगड़ी पहनता है। पगड़ी में त
घोंघे, घुँघचियाँ, सीपें इत्यादि
सबसे अधिक बहादुर होता है
सींग भी लगाने का अधिकार है।
नहीं लगा सकते। शाड़ इत्यादि
सूचित किया जाता है कि इसने
हैं। उन्हीं की यह निशानी है। गा
लाल चिह्न बनाते हैं। जो पुरुष जित
रण में घायल करता है वह उतने
पर लगाता है। स्त्रियाँ भी गालों पर
हैं, पर वे केवल सुन्दरता के लिए होते
के केश लम्बे लम्बे होते हैं, यहाँ तक
चलती हैं तब बाल ज़मीन छूते रहते हैं
माँग भी काढ़ती हैं। सिर के बालों को वे
में बाँट देती हैं। मत्थे पर बड़ी सुन्दरता
वे लाल चिह्न बनाती हैं। पुरुषों के भी
बड़े होते हैं, पर गर्दन के नीचे बढ़ते ही
डाले जाते हैं। पुरुष भी माँग निकालते हैं, पर
चिह्न नहीं लगाते। सवेरे उठते ही स्त्री, पुरुष,
अपने अपने बालों में तेल की मालिश करते
तेल रीछ के गुर्दे से बनाया जाता है।

स्त्रियाँ पुरुष की दासी समझी जाती हैं
भोजन पकाना, घर का सब काम सँभालना उन
धर्म है। वे लड़ाई-भिड़ाई करना नहीं जानतीं।
खेती का काम स्त्रियाँ भी करती हैं। भैंसे का सींग
हर स्त्री अपने पास रखती है। उसीसे खेत गोड़ा
जाता है। खेत में मकई बोई जाती है। उसका
भुट्टा (बाल) मनुष्य के अँगूठे से बड़ा नहीं होता।
जब कभी पानी नहीं बरसता तब बड़े बड़े ढोंग
रचे जाते हैं। इस विषय में अमेरिका के पूर्वोक्त
महाशय का कथन सुनिए:

"खेत सूखा जा रहा था। स्त्रियाँ बेहाल थीं। ...ने गाँव के मुखिये से पानी बरसाने के लिए ...ना की। मुखिये ने सब सरदारों को इकट्ठा ...। फिर सब ग्राम-वासी मैदान में जमा हुए। एक मञ्च बनाया गया। उस पर एक मनुष्य ...ा हो गया। वह श्रोता-जनों से कहने लगा— मित्रो! मुझमें बड़ी बड़ी शक्तियाँ हैं। मैं ज़रूर ... बरसाऊँगा। जिसने हमको बनाया है और ...हें कोई नहीं जानता वह ज़रूर पानी बरसा- ...। इसके बाद उसने बादल की तरफ़ तीर ...ना शुरू किया। सब लोग ज़ोर ज़ोर चिल्लाने ...। यह कारवाई सूर्योदय से आरम्भ हुई और ...स्त तक होती रही। पर पानी न बरसा। ...रे रोज़ दूसरा मनुष्य मञ्च पर चढ़ा। उसने ...केसी महती शक्ति को याद कर करके बादलों ... तीर मारे। पर, फिर भी पानी न बरसा। ...रे रोज भी यही तमाशा हुआ। पर, फल कुछ ...आ। तब गाँव के स्त्री-पुरुषों ने कहा, इन लोगों ...ह महती शक्ति प्रसन्न नहीं। चौथे रोज़ एक ... आदमी उतारू हुआ। उसने चिल्ला चिल्ला कर ...ना आरम्भ किया—हे शक्तिसम्पन्न! हे बादलों ...वश में कर लेने वाले! हे सूर्य्य को बनाने ...! तुम हमारी रक्षा करो। तुम्हारे नाम पर ...बड़े बड़े दुख उठा रहे हैं—इत्यादि। संयोगवश ... शाम को पानी बरसने लगा। बिजली कड़कने ...। मैं हैरान हुआ कि यहाँ किस वैज्ञानिक कला ...ाम किया। इस जाति का कहना है कि जब ...पानी नहीं बरसता तब तब यही तरकीब की ...ती है। कभी पानी बरस जाता है, कभी नहीं। ...बहुधा बिना बरसे नहीं रहता"।

विवाह।

दिन और वर्ष की गणना करना ये लोग नहीं ...ते। जब लड़की सयानी हो जाती है तब उसका ...ाह होता है। लड़के का विवाह भी बड़े होने ...होता है। लड़की का विवाह अन्दाज़न बारह वर्ष से लेकर पन्द्रह वर्ष तक की उम्र में होता है। लड़के का भी विवाह इसी उम्र में होता है। पर जब तक वह लड़ना न सीख ले तब तक कुँवारा रहता है। लड़की पिता के वश में होती है। पिता लड़की को बेचता है। सुन्दर से सुन्दर लड़की की क़ीमत दो घोड़े, भैंसे की खाल, मृगचर्म इत्यादि है। अब इन लोगों को विवाह में ह्विस्की (शराब) भी मिल जाती है। लड़के की तरफ़ से दो गैलन के क़रीब शराब दी जाती है। लड़के के पिता को भी खिलाने पिलाने में कुछ ख़र्च करना पड़ता है। व्यभिचार से ये लोग बहुत दूर रहते हैं। स्त्री को पुरुष के अधीन रहना पड़ता है। बिना पुरुष की आज्ञा के वह कुछ नहीं कर सकती। पर स्त्रियाँ ख़ुश रहती हैं और अपने काम में लगी रहती हैं। गाँव के सरदार कई स्त्रियाँ रख सकते हैं। और लोग भी चाहें तो कई स्त्रियाँ रख सकते हैं। पर सब ऐसा नहीं करते।

अन्त्येष्टि-संस्कार।

ये लोग मुर्दे को गाड़ते नहीं, फूँकते भी नहीं। मर जाने पर भैंसे की ताज़ी खाल से शव को लपेट देते हैं। उसके बदन पर ख़ूब तेल चुपड़ दिया जाता है। मुर्दे के बदन के साथ धनुष-बाण, भाला, झोली इत्यादि सब सामान बाँध दिया जाता है। फिर उसको ग्राम से कुछ दूर, एक मञ्च पर, रख देते हैं। यह मञ्च इतना ऊँचा होता है कि कुत्ता, भेड़िया आदि कोई जानवर उसके ऊपर नहीं पहुँच सकता। इसी मञ्च पर मुर्दा सूख जाता है। जब उसका मांस इत्यादि गल जाता है तब उसकी खोपड़ी तोड़ दी जाती है और वह ख़ेमे के पास मैदान में रक्खी जाती है। इसी तरह हर पुरुष-स्त्री का संस्कार होता है। शरीर की अन्य हड्डियाँ गाड़ दी जाती हैं। स्त्री अपने पति की खोपड़ी के पास नित्य जाती है। रोना धोना बड़े दुःख के साथ होता है। प्रति दिन शव को खाने के लिए भोजन दिया जाता है। ऐसा ही बर्ताव

खोपड़ी के साथ भी किया जाता है। पति के मरने पर स्त्री अपने केश कटा डालती है। और किसी के मरने पर पुरुष अपने अपने बाल कटाते हैं, पर बिलकुल मुड़ाते नहीं।

अमेरिका के पूर्वोक्त महाशय की राय।

"सभ्य संसार इन इन्डियन लोगों को जानवर समझता है। इनको वह अज्ञानी समझता है। पर यह सरासर भूल है। ये लोग ज्ञान-शक्ति रखते हैं। ये ईश्वर के उपासक हैं। हर बात में ये किसी अलौकिक शक्ति को याद करते हैं। जो कुछ ये करते हैं, किसी सिद्धान्त के अनुसार करते हैं। स्वर्ग-नरक को भी ये मानते हैं। इनका कहना है कि पृथ्वी पर आदिम मनुष्य हमीं हैं। स्त्रियों और बच्चों से ये हार्दिक प्रेम रखते हैं। क्या हम लोगों में दोष नहीं? क्या सभ्य कहाने वाले सभी महात्मा हैं? इन्डियन कभी इस पर बहस नहीं करते कि अमेरिका वाले लम्बा कोट क्यों पहनते हैं? पतलून क्यों पहनते हैं? कोट के पीछे बटन क्यों वे फ़ायदा लगाते हैं? पर हम उनकी पोशाक को जङ्गली समझ कर ही उनसे घृणा करते हैं। ये लोग चोरी नहीं करते, जेब नहीं काटते। यदि कोई बुराई इनमें है तो यह कि ये आपस में बहुत लड़ा-भिड़ा करते हैं। इसी लड़ाई से इनकी संख्या दिन पर दिन कम होती जाती है। इसी लड़ाई के कारण ही इन लोगों में बहु-विवाह की चाल जारी हो गई है। क्योंकि लड़ाइयों में पुरुष मरते रहते हैं। इस कारण युवतियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। यदि ये ऐसा न करें तो करें ही क्या? क्या व्यभिचार इससे अच्छा है? हम लोगों को इनकी रक्षा करनी चाहिए। ये भी मनुष्य हैं और थोड़े ही दिनों में सभ्य हो सकते हैं। इनके हाथ ह्विस्की (शराब) बेच बेचकर हम लोगों ने इनको और भी बिगाड़ डाला है। कितने ही स्त्री-पुरुष इस शराब के शिकार हो जाते हैं। यही इस भूमि के असली स्वामी हैं। ख़ुशी की बात है कि हमारी सरकार इनमें शिक्षा का प्रचार कर रही है। ये हमारे हैं। ये भी अमेरिका के नागरिक हैं। इनको उतना अधिकार मिलना चाहिए जितना हमको मिला।"

पूर्वोक्त महाशय की यह राय मैंने उन्हीं शब्दों में लिख दी है।

यदि कोई भारतवासी इन जातियों की देख भाल करे तो इनके संस्कार इत्यादि के विषय में उसे बहुत कुछ जानकारी हो जाय। यद्यपि यह जाति जङ्गली और असभ्य कही जाती है, पर इनमें कन्या का विवाह-संस्कार बारह वर्ष की अवस्था में होता है। परन्तु सभ्यता का दम भरते वाले हम अभी तक यही प्रस्ताव "पास" कर रहे हैं कि रजोदर्शन के पहले ही कन्या का विवाह हो जाना चाहिए। इस विषय में तो हमारी अपेक्षा ये जङ्गली ही भले हैं।

वीरसेनसिंह
(अमेरिका)

महाकवि श्रीहर्ष।



स्कृत का काव्यसाहित्य एक ऐसी रमणीक और मन लुभाने वाली वाटिका है जिसमें का व्यरसलोलुप भ्रमर हर तरह के रस का स्वाद लेता हुआ विहार कर सकता है। कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, दण्डी, श्रीहर्ष इत्यादि कवियों के काव्य इस वाटिका की अनेक सुन्दर सुन्दर क्यारियां हैं। इन क्यारियों में श्रीहर्ष-कृत नैषध-चरित एक ऐसी क्यारी है जिसके पुष्पों की मीठी और तीखी सुवास काव्य-रस-चापला वि... पाठकों को अपनी ओर अनायास आकर्षित कर लेती है। इस लेख में इसी काव्य का थोड़ा सा गुण-दोष विवेचन करने और इसके कर्ता महाकवि श्रीहर्ष का कुछ परिचय देने का प्रयत्न किया जायगा।

श्रीहर्ष का परिचय और स्थितिकाल।

श्रीहर्ष कन्नौज के राजा जयचन्द की सभा के ... पण्डित थे। इनकी माता का नाम मामल्लदेवी और पिता का नाम हीर था, जैसा कि इन्होंने इस श्लोकार्द्ध में लिखा है—

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।

शास्त्रार्थ में किसी पण्डित से हार कर इनके पिता इतने खिन्न हुए कि राजा की नौकरी छोड़ बैठे। यह हार उन्हें यहाँ तक अखरी कि इसी के कारण वे सुरधाम सिधार गये। अपने मृत्यु-समय अपने पुत्र श्रीहर्ष को अपने पास बुला कर उन्होंने कहा कि तुम हमारा बदला उस पण्डित से शास्त्रार्थ में अवश्य लेना। श्रीहर्ष ने वैसाही किया भी। अपने कुटुम्ब का सारा भार भाई-बन्धुओं को सौंप कर आप विद्या पढ़ने के लिए विदेश चले गये। ऐसी किंवदन्ती है कि किसी महात्मा से चिन्तामणि मन्त्र का उपदेश लेकर और उसे जप कर ये सरस्वती देवी के कृपापात्र हो गये। उसी मन्त्र के प्रभाव से इन्होंने शास्त्रार्थ में अपने पिता को परास्त करने वाले पण्डित को जीता और कवि-कल्पना तथा दार्शनिक ज्ञान में अद्वितीय विद्वान् हुए। कन्नौज के राजा के यहाँ ये अपने पिता के स्थान पर फिर नियुक्त किये गये और राजा ही के कहने से इन्होंने नैषध-चरित महाकाव्य, बाईस सर्गों का, बनाया। उसमें विदर्भ देश के राजा भीम की राजकुमारी दमयन्ती पर नल के अनुराग और उन दोनों के स्वयंवर आदि का वर्णन है। इस क़िस्से को कवि ने बड़ी उत्कृष्ट कविता में लिखा है। यह ग्रन्थ इतना उत्तम समझा गया कि काव्य की बृहत्त्रयी में पण्डितों ने इसे मुख्य स्थान दिया।

काव्यप्रकाशकार मम्मट भट्ट ने अपने काव्यप्रकाश में सब कवियों के काव्यों से उदाहरण दिये हैं। उस समय तक माघ, भारवि आदि जो कवि हो चुके थे, गुण दोष-निरूपण द्वारा, उन सभी की कविता की साधारण समालोचना मम्मट ने की है। पर श्रीहर्ष के नैषध का एक भी श्लोक कहीं पर उन्होंने उदाहरण में नहीं दिया। इससे निश्चय होता है कि मम्मट के बाद श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित निर्माण किया। किंवदन्ती है कि श्रीहर्ष मम्मट के भानजे थे। जब मम्मट काव्यप्रकाश बना चुके तब श्रीहर्ष की भेंट उनसे हुई। श्रीहर्ष ने नैषधचरित उन्हें दिखलाया और कहा कि आपने काव्यप्रकाश में सब कवियों की समालोचना करके उनके गुण-दोष-निरूपण किये, हमारे नैषध की समालोचना क्यों नहीं की। तब मम्मट ने जवाब दिया कि हमारे पास जो जो ग्रन्थ थे उनका गुण दोष-निरूपण किया गया। यदि तुम्हारा काव्य भी उस समय बना होता तो उसकी भी समालोचना हो गई होती। अच्छा अब दिखाओ। मम्मट ने उसे पूरा पढ़ कर श्रीहर्ष से कहा कि यदि तुम अपने इस काव्य को लिख कर कुछ पहले हमको दिखलाते तो बहुत अच्छा होता। काव्यप्रकाश में दोषों के उदाहरण देने के लिए जो हमने अनेक ग्रन्थों से दूषित पद्य संग्रह किये हैं उसमें हमको बहुत परिश्रम पड़ा है। यदि तुम्हारा नैषध हमारे सामने होता तो हमारा बहुत परिश्रम बच जाता, क्योंकि अकेले इसीमें सब दोषों के उदाहरण भरे पड़े हैं। इस पर श्रीहर्ष ने कहा कि एक दोष दिखाइए तो सही। इस पर मम्मट ने दूसरे सर्ग के बासठवें श्लोक को पढ़ सुनाया। उसमें नल ने हंस को दमयन्ती से अपना सन्देश सुनाने के लिए विदा करते समय उसे आशीर्वाद दिया है। इस श्लोक का प्रथम चरण है—"तव वर्त्मनि वर्ततां शिवम्" अर्थात् तुम्हारा मार्ग सुखकर हो। इस पर मम्मट ने कहा कि ऐसा पदच्छेद क्यों न किया जाय—"तव वर्त्म निवर्ततां शिवम्" अर्थात् तुम्हारा मार्ग सुख से रहित हो। इस पर श्रीहर्ष उदास हो कर चुप हो रहे।

भोजराजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण में नैषध के श्लोक उदाहरण में नहीं दिये गये। इससे भी सिद्ध है कि श्रीहर्ष भोज के पीछे हुए हैं। भोज का समय १०२६ से १०८३ ईसवी तक स्थिर किया गया है। अतएव श्रीहर्ष का समय ग्यारहवीं शताब्दी के उपरान्त होना चाहिए। डाक्टर बूलर ने अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया है कि श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दी के उत्तर भाग में विद्यमान थे। यही समय राजा जयचन्द का भी है।

श्रीहर्ष का पाण्डित्य।

श्रीहर्ष सिर्फ़ कवि ही न थे, किन्तु दर्शन-शास्त्र के पूर्ण पण्डित और ग्रन्थकार थे। इसका उन्हें अभिमान भी था कि मैं केवल कवि ही नहीं, प्रतिभा शाली कवियों से बहुत आगे बढ़ा हुआ हूँ। इसी अंश में इन्होंने कई ऐसे श्लोक रच डाले हैं जिनसे अभिमान और गर्व टपक रहा है। संस्कृत-साहित्य का कोई अंग नहीं जिस पर श्रीहर्ष की प्रखर बुद्धि न गई हो। इनका दूसरा ग्रन्थ खण्डनखण्ड खाद्य है, जो दर्शन का बड़ा अद्भुत और कठिन ग्रन्थ है। इसमें

लगाने में पण्डितों के दांतों पसीना आता है। उसमें श्रीहर्ष ने अन्य मतों का खण्डन विचित्र ढँग से करके वेदान्त मत का मण्डन किया है। विजयप्रशस्ति, अर्णववर्णन, नवसाहसाङ्क-चरित-चम्पू आदि कई ग्रन्थ और भी श्रीहर्ष-कृत हैं, जो अब तक नहीं छपे। जिनको श्रीहर्ष के पाण्डित्य की टटोल करना हो उन्हें चाहिए कि नैपध का दसवां, तेरहवां और सत्रहवां सर्ग देखें। दसवें सर्ग में कवि ने सरस्वती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के वर्णन में विलक्षण चातुरी दिखाई है। सर्व-विद्यामयी सरस्वती का वर्णन बड़े ही नये ढँग का है। उसमें श्रीहर्ष की कविता का परम प्रकर्ष है। तेरहवें सर्ग में पञ्चनली का वर्णन है। नल के रूप में इन्द्र आदि चार देवता और पांचवें नल, सब, एक साथ बैठे हैं। जो श्लोक वहाँ पर हैं उनसे दुहरा अर्थ निकलता है। एक तो यह अर्थ निकलता है कि "यह नल है" और दूसरा यह अर्थ निकलता है कि "ये इन्द्र हैं, या वरुण हैं, या अग्नि हैं, या यम हैं। कहीं इन्हें न वर लेना; ये झूठे नल हैं। देवता लोग नल के रूप में आ बैठे हैं। धोखे में न आ जाना; नहीं तो पछताना पड़ेगा"। इन श्लोकों के श्लेषपूर्ण शब्दों में श्रीहर्ष ने अपने पाण्डित्य का अन्त कर डाला है। सत्रहवां सर्ग भी श्रीहर्ष के पाण्डित्य का बहुत अच्छा प्रमाण है। इस सर्ग में बौद्ध नास्तिक तथा निरीश्वरवादियों का मत कई श्लोकों में बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रतिपादित किया गया है।

श्रीहर्ष संस्कृत-भाषा को अपने वश में किये हुए थे। ऐसा मालूम होता है कि भाषा उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। वे जैसा चाहते थे भाषा का उपयोग करते थे। यद्यपि श्रीहर्ष ने अपने काव्य में अधिकतर क्लिष्ट और जटिल भाषा का प्रयोग किया है तथापि कई स्थलों में उन्होंने बहुत ही सरल भाषा भी लिखी है, जिससे सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष का भाषा के ऊपर सम्पूर्ण अधिकार था। इस तरह की सरल भाषा के उदाहरण प्रथम सर्ग में राजा नल के पकड़ लेने पर हंस का विलाप है, जो बहुत ही हृदय-विदारक और कारुणिक है। इसी तरह तृतीय सर्ग में हंस और दमयन्ती का संवाद है।

श्रीहर्ष की सरल भाषा के दो एक उदाहरण हम यहां पर उद्धृत करते हैं—

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः॥

अर्थात्—मेरे स्नेही मित्र—"संसार की ऐसी ही दशा है"—यह कह कर और थोड़ी देर तक मेरे लिए आंसू बहा कर मुझे भूल जायँगे। इस तरह उनका शोक तो दूर हो जायगा; किन्तु हे माता! तुमसे सुतशोकरूपी सागर कैसे पार किया जायगा?"

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः।
वियोक्ष्यते वल्लभयेति निर्गता लिपिर्ललाटंतपनिष्ठुराक्षरा॥

अर्थात्—हे विधाता! जिन तुम्हारे कर कमलों से मेरी प्रिया के शीतल और कोमल अङ्गों की रचना हुई है, उन्हीं तुम्हारे हाथों से "वल्लभा से मेरा वियोग होगा" ये अक्षर मेरे विषय में कैसे निकले?

श्रीहर्ष की भाषा में यह खूबी है कि वह रस के अनुकूल है। जिस रस का वर्णन वे करते हैं वह रस उनकी भाषा से टपकने लगता है। श्रीहर्ष की रसानुकूलता के कुछ उदाहरण लीजिए—

पृथ्वीश एष नुदतु त्वदनङ्गताप-
मालिंग्य कीर्तिचयचामरचारुचापः।
संग्रामसङ्गतविरोधिशिरोधिदण्ड-
खण्डिक्षुरप्रसरसंभ्रमरन्ध्रप्रतापः॥

इस एक ही श्लोक में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। पहले अर्द्धभाग में मधुर और कोमल शब्द लाये गये हैं, क्योंकि उसमें शृङ्गार-रस का वर्णन है। किन्तु दूसरे अर्द्धभाग में वीर-रस है। इसलिए उसमें रस के अनुकूल कर्णकटु शब्दों का प्रयोग किया गया है।

एतेनोत्कृत्तकण्ठप्रतिसुभटनटारब्धनाट्याद्भुतानां
कष्टं द्रष्टैव नाभूद् भुवि समरसमालोकिलोकान्तरेऽपि।
अर्वैरस्यैरवेगैः कृतसुरसुरलीमद्गुविद्रूयमान-
क्ष्मापृष्ठोत्तिष्ठदन्धकरणरणधुरारेणुधारान्धकारात्॥

यह श्लोक वीर-रस-पूर्ण है। इस के प्रत्येक शब्द से वीर-रस टपक रहा है।

श्रीहर्ष की गर्वोक्ति।

कालिदास को छोड़ कर प्रायः सभी कवियों ने अभिमान और गर्व से भरी हुई बातें कही हैं। बाण, भवभूति

पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि कोई भी इस दोष से बचे नहीं। पर गर्वोक्ति में श्रीहर्ष इन सब से बढ़ चढ़ कर थे। श्रीहर्ष को अपनी विद्वत्ता और कवित्व शक्ति का बहुत बड़ा गर्व था। इसी गर्व में आ कर इन्होंने कई ऐसे श्लोक लिख मारे हैं जिन से बेहद अभिमान टपक रहा है; जैसे—

> यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी
> कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते।
> मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः
> किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः॥

अर्थात्—परम मनोहारिणी सुन्दरी रमणी युवा पुरुष के चित्त को जिस तरह आकर्षित करती है, उसी तरह निरे बालक के चित्त को नहीं आकर्षित करती। इसी तरह मेरी कविता यदि परिपक्व-बुद्धि विद्वानों के चित्त को प्रमुदित करती है तो नीरस और रूखी तबीयत वालों की निन्दा से क्या?

> ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्
> यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम्।
> यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
> श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्॥

अर्थात्—जिसे कन्नौज के राजा से दो पान और आसन मिलता है; जो समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करता है; जिसका काव्य शहद के समान मीठा है; जिसने तर्कशास्त्र में अपने प्रतिपक्षियों को परास्त कर दिया है; उस श्रीहर्ष कवि की यह कृति विद्वान् पुरुषों को आनन्द देने वाली हो!

> दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं
> तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्।
> स परमपरः क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते
> मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्॥

इस श्लोक में तो श्रीहर्ष ने गर्वोक्ति का खातमा कर दिया। इसमें इन्होंने अपने को अमृत का उत्पन्न करने वाला क्षीरसागर बनाया है, और शेष सब कवियों को जल्द सूख जाने वाली नदियों को उत्पन्न करने वाले पहाड़ी पत्थर!

श्रीहर्ष और कालिदास।

पदलालित्य, ओज और अतिशयोक्ति में श्रीहर्ष बहुत बढ़े चढ़े हैं। इनकी वर्णनशैली के विस्तार का ओर छोर नहीं। किन्तु प्रसाद-गुण, सरलता, मनुष्य-हृदय-सम्बन्धी बातों का ज्ञान, गठीले पदविन्यास में एक अनोखी चातुरी आदि गुण जो कालिदास की रचना में पाये जाते हैं, वे श्रीहर्ष के काव्य में नहीं। कहीं कहीं पर श्रीहर्ष ने नैषध को जान-बूझ कर ऐसा क्लिष्ट कर डाला है कि वह पत्थर का एक टुकड़ा सा मालूम पड़ता है, जिस पर अच्छे अच्छे विद्वानों की बुद्धि भी वैसी ही टकराती है जैसे कि संगतराश का हथोड़ा पत्थरों के टुकड़ों पर टकराता है। कालिदास का काव्य सरस, सरल, भावपूर्ण और नैसर्गिक है, इसी से उनकी कविता पाठकों के हृदयों में चुभती है—सिर्फ़ दिमाग़ ही में नहीं रह जाती। स्वाभाविक और सरल कविता ही यथार्थ कविता है। उसी से आत्मा तन्मय और मन प्रसन्न होता है। यह गुण कालिदास के काव्य में पूरी तौर से पाया जाता है। इसके विपरीत नैषध-काव्य में अतिशयोक्ति, क्लिष्ट-कल्पना अस्वाभाविक और दीर्घ वर्णन अधिक पाये जाते हैं। इसी से नैषध की कविता हृदय में नहीं चुभती, वह सिर्फ़ चित्त को प्रसन्न करके दूर हो जाती है। किन्तु श्रीहर्ष की कल्पनाओं और अतिशयोक्तियों में एक ऐसा अनोखा चमत्कार है कि उनको बार बार पढ़ने की इच्छा होती है। कालिदास और श्रीहर्ष में क्या तारतम्य है, यह वही सहृदय काव्यरसप्रेमी जान सकते हैं जो दोनों के काव्यों का अच्छी तरह अनुशीलन किये हुए हैं। श्रीहर्ष और कालिदास में क्या अन्तर है, यह हम दो एक उदाहरण देकर यहाँ पर बतलाते हैं।

दूसरे सर्ग में हंस नल से दमयन्ती के रूप और गुणों की प्रशंसा करता है। रूप के वर्णन में कवि ने दमयन्ती के नख-शिख का वर्णन नये ढँग से किया है। अपने भर सक श्रीहर्ष ने दमयन्ती के नख-शिख-वर्णन में प्रतिभा का अन्त कर दिया है। पर कुमारसम्भव में कालिदास ने पार्वती के नख-शिख का जो स्वाभाविक, सरल, तथा क्लिष्ट-कल्पना-रहित वर्णन किया है उसको श्रीहर्षकृत दमयन्ती का वर्णन नहीं पाता। यह बात दोनों वर्णनों का मिलान करके पढ़ने से साफ़ प्रकट हो जाती है।

दसवें, ग्यारहवें और बारहवें सर्गों में दमयन्ती के स्वयंवर का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। यद्यपि इन तीन सर्गों में श्रीहर्ष ने शब्दाडम्बर द्वारा अपना प्रौढ़ पाण्डित्य खूब दिखाया है, पर जिसे कविता का रस कहते हैं वह इसमें बहुत ही थोड़ा है। कवि के कालिदासकृत

लगाने में पण्डितों के दाँतों पसीना आता है। यहाँ श्रीहर्ष ने अन्य मतों का खण्डन विचित्र ढँग से करके वेदान्त मत का मण्डन किया है। विजयप्रशस्ति, अर्णववर्णन, नवसाहसाङ्क-चरित-चम्पू आदि कई ग्रन्थ और भी श्रीहर्ष-कृत हैं, जो अब तक नहीं छपे। जिनको श्रीहर्ष के पाण्डित्य की टटोल करना हो उन्हें चाहिए कि नैषध का दसवाँ, तेरहवाँ और सत्रहवाँ सर्ग देखें। दसवें सर्ग में कवि ने सरस्वती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के वर्णन में विलक्षण चातुरी दिखाई है। सर्व-विद्यामयी सरस्वती का वर्णन बड़े ही नये ढँग का है। उसमें श्रीहर्ष की कविता का परम प्रकर्ष है। तेरहवें सर्ग में पञ्चनली का वर्णन है। नल के रूप में इन्द्र आदि चार देवता और पांचवें नल, सब, एक साथ बैठे हैं। जो श्लोक यहाँ पर हैं उनसे दुहरा अर्थ निकलता है। एक तो यह अर्थ निकलता है कि "यह नल है" और दूसरा यह अर्थ निकलता है कि "ये इन्द्र हैं, या वरुण हैं, या अग्नि हैं, या यम हैं। कहीं इन्हें न वर लेना; ये झूठे नल हैं। देवता लोग नल के रूप में आ बैठे हैं। धोखे में न आ जाना; नहीं तो पछताना पड़ेगा"। इन श्लोकों के श्लेषपूर्ण शब्दों में श्रीहर्ष ने अपने पाण्डित्य का अन्त कर डाला है। सत्रहवाँ सर्ग भी श्रीहर्ष के पाण्डित्य का बहुत अच्छा प्रमाण है। इस सर्ग में बौद्ध नास्तिक तथा निरीश्वरवादियों का मत कई श्लोकों में बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रतिपादित किया गया है।

श्रीहर्ष संस्कृत-भाषा को अपने वश में किये हुए थे। ऐसा मालूम होता है कि भाषा उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। वे जैसा चाहते थे भाषा का उपयोग करते थे। यद्यपि श्रीहर्ष ने अपने काव्य में अधिकतर क्लिष्ट और जटिल भाषा का प्रयोग किया है तथापि कई स्थलों में उन्होंने बहुत ही सरल भाषा भी लिखी है, जिससे सिद्ध होता है कि श्रीहर्ष का भाषा के ऊपर सम्पूर्ण अधिकार था। इस तरह की सरल भाषा के उदाहरण प्रथम सर्ग में राजा नल के पकड़ लेने पर हंस का विलाप है, जो बहुत ही हृदय-विदारक और कारुणिक है। इसी तरह तृतीय सर्ग में हंस और दमयन्ती का संवाद है।

श्रीहर्ष की सरल भाषा के दो एक उदाहरण हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः! सुतशोकसागरः॥

अर्थात्—मेरे स्नेही मित्र—"संसार की ऐसी ही दशा है"—यह कह कर और थोड़ी देर तक मेरे लिए आँसू बहा कर मुझे भूल जायँगे। इस तरह उनका शोक तो दूर हो जायगा, किन्तु हे माता! तुमसे सुतशोकरूपी सागर कैसे पार किया जायगा?"

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः।
वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता लिपिर्ललाटंतपनिष्ठुराक्षरा॥

अर्थात्—हे विधाता! जिन तुम्हारे कर कमलों से मेरी प्रिया के शीतल और कोमल अङ्गों की रचना की है, उन्हीं तुम्हारे हाथों से "वल्लभा से मेरा वियोग होगा" ये अक्षर मेरे विषय में कैसे निकले?

श्रीहर्ष की भाषा में यह खूबी है कि वह रस के अनुकूल है। जिस रस का वर्णन वे करते हैं वह रस उनकी भाषा से टपकने लगता है। श्रीहर्ष की रसानुकूलता के कुछ उदाहरण लीजिए—

पृथ्वीश एष तुदतु त्वदनङ्गताप-
मालिंग्य कीर्तिचयचामरचारुचापः।
संग्रामसङ्गतविरोधिशिरोधिदण्ड-
खण्डिप्रसरसंप्रसरत्प्रतापः॥

इस एक ही श्लोक में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। पहले अर्द्धभाग में मधुर और कोमल शब्द रक्खे गये हैं, क्योंकि उसमें शृङ्गार-रस का वर्णन है। किन्तु दूसरे अर्द्धभाग में वीर-रस है। इसलिए उसमें रस के अनुकूल कर्णकटु शब्दों का प्रयोग किया गया है।

एतेनोत्कृत्तकण्ठप्रतिसुभटनटारब्धनाट्याद्भुतानां
कष्टं द्रष्टैव नाभूद् भुवि-समरसमालोकिलोकास्पदेऽपि।
अश्वैरस्वैरवेगैः कृतखुरखुरलीमङ्क्षुविक्षुद्यमान-
क्ष्मापृष्ठोत्तिष्ठदन्धकरणरणधुरारेणुधारान्धकारात्॥

यह श्लोक वीर-रस-पूर्ण है। इस के प्रत्येक शब्द से वीर-रस टपक रहा है।

श्रीहर्ष की गर्व

कालिदास को छे
मान और गर्व

[न]ीयते ह्रीविधुरः स्वजैत्रं श्रुत्वा विधुस्तस्य मुखं मुखात्रः।
समुद्रस्य कदापि पूरे, कदाचिदभ्रभ्रमदभ्रगर्भे॥

[अ]र्थात्—यह सुन कर कि मेरी शोभा का जीतने वाला [उस]का मुख है, चन्द्रमा लज्जित होकर कभी तो सूर्यमण्डल [में] छिपता है, कभी अभ्रपटल में लुकता फिरता है, [और] समुद्र के जल में मारे लज्जा के जा डूबता है।

[ज]तो न हृदापि मया धृतः प्रतिरितीव नलं हृदयेशयम्।
[ज्व]विर्मुञ्जि बोधयति स्म सा विरहपाण्डुतया निजशुद्धताम्॥

[अ]र्थात्—सीता ने अग्नि में प्रवेश करके अपनी शुद्धता [प्रकट] की थी। इसी से दमयन्ती भी कामाग्नि में अपना [तन ज]लाती है, जिससे हृदय-स्थित नल को विदित होजाय [कि मैंने] स्वप्न में भी कभी दूसरे पति की इच्छा नहीं की।

[रु]जा न पृथुर्दवथुव्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
[द]माशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमसासुमुपासितुमुदधुराः॥

[अ]र्थात्—अग्नि की दाह-व्यथा कोई व्यथा नहीं। विर[ह] से उत्पन्न व्यथा ही वास्तव में विषम व्यथा है। यदि [ऐसा न] होता तो किसी की भी परवा न करके मृत पति के [साथ ध]धकती अग्नि में क्यों स्त्रियाँ प्रवेश कर जातीं?

[वि]निपातनैर्भ्रमिमवाप्य दिवः खलु पात्यते।
[शि]लातलपदि स्फुटमुत्पतत्कणगणाधिकतारकिताम्बरः॥

[अ]र्थात्—इस चन्द्रमा ने जो अनेक विरहिणी स्त्रियों [का वध] कर पाप किया है उसी से फिरा कर अँधेरी रात-[रूपी] पत्थर-शिला के ऊपर, आकाश से, यह पटका जाता [है। पट]कने पर यह खण्ड खण्ड हो जाता है। उस समय [जो टुक]ड़े ऊपर को उड़ते हैं इन्हीं से अँधेरी रात का आकाश [तारों के स]मूह से परिपूर्ण हो जाता है। अँधेरी रात में जो [ता]रे दिखाई पड़ते हैं उसका यही कारण है।

[म]मकारदलाङ्कुरं शशिकुरङ्गमुखे सखि ! निक्षिप।
[इ]ति दुरितैः स्मरपावकमुंसयदि तेन समुच्छ्वसिमि क्षणम्॥

[अ]र्थात्—हे सखि ! मेरा कर्णभूषण जो तमाल-पल्लव [है उसे तू] चन्द्रमा के गोद में स्थित हिरन के मुख में रखने [के लिए] दे दे। वह उस पल्लव को खा कर मोटा हो जायगा [और मो]टा होकर इस पापी चन्द्रमा को ढक लेगा। उसके [ढक जा]ने पर मैं कुछ क्षण भर सांस तो ले सकूँगी। चन्द्रमा के [ढक जा]ने पर मेरी पीड़ा कुछ तो कम होगी।

यजुदरः कथयन्ति पुराविदो मधुभिदं किल राहुशिरश्छिदम्।
विरहिमूर्द्धभिदं निगदन्ति न क नु शशी यदि तज्जठरानलः॥

अर्थात्—सीधे सादे ऋषि लोग विष्णु को राहुशिरश्छिद् अर्थात् राहु का सिर काटने वाला कहते हैं। उनको चाहिए कि राहुशिरश्छिद् के स्थान में विरहिमूर्द्धभिद् अर्थात् विरही-जनों के सिर काटने वाले के नाम से विष्णु को पुकारें। क्योंकि यदि वे राहु का सिर न काट लेते तो, ग्रहण के समय, चन्द्रमा उसके उदर में जाकर जठराग्नि में भस्म गया होता।

हृदयमाश्रयसे यत मामकं ज्वलयसीत्थमनङ्ग तदेव किम्।
स्वयमपि क्षणदग्धनिजेन्धनः क भवितासि हताश ! हुताशवत्॥

अर्थात् रे काम ! यदि तू मेरे हृदय में वास करता है तो अपने रहने के स्थान मेरे हृदय को क्यों इतना जला रहा है ? रे पापी ! तू बड़ा मूर्ख है। तू अग्नि के समान अपने आश्रयस्थान को क्षण भर में जला कर रहेगा कहां ? जैसे अग्नि अपने आश्रय काठ को जला कर कहीं का नहीं रहता वैसे ही तू भी अपने निवासस्थान, मेरे हृदय, को जला कर फिर कहां वास करेगा ?

पद्मादुपद्मानमवेक्ष्य लक्ष्मीमेकस्य विष्णोः श्रयतात् सपत्नीम्।
आस्येन्दुमस्या भजते जिताब्जं सरस्वती तद्विजिगीषया किम्॥

अर्थात्—लक्ष्मी और सरस्वती—विष्णु की ये दो स्त्रियाँ हैं और लक्ष्मी का वास कमल में है। किन्तु दमयन्ती के मुख-चन्द्र ने कमल की शोभा को जीत लिया। इसीसे क्या सरस्वती दमयन्ती के मुख में वास करती है कि मैं अपनी सौत लक्ष्मी से बढ़ जाऊँ ?

निजांशनिःसा... मुखमुखमग्न किं वेधसेदं मुखमालयन्ती।
[illegible]

थोड़ के नीचे कुएँ में गड़ा होता है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है। एक एक अङ्ग की शोभा का निर्माण समाप्त होने पर, ब्रह्मा ने अँगूठे से दबा कर और मुख सामने रख कर जो देखा कि यह कैसी बनी, तो अँगूठे के दबाव का वही गड्ढा कुएँ में बना रह गया।

[illegible] हृदयं नि[illegible]।
[illegible]॥

अर्थात्—अरे [illegible] ! तुम्हारे [illegible], मेरा हृदय, [illegible] है। फिर तुम क्यों [illegible] ? क्यों [illegible] नहीं [illegible] ? क्या [illegible]

रघुवंश के इन्दुमती-स्वयंवर में अज की जगह नल के रक्खा है। पर वह छटा और रस, जो कालिदास के शब्दों में है, नैषध में नहीं। दमयन्ती-स्वयंवर में श्रीहर्ष ने बहुधा कालिदास ही की नकल की है। वहाँ इन्दुमती के स्वयंवर में सुनन्दा राजाओं का वर्णन करती है यहाँ सरस्वती राज-समाज का वर्णन करती है। पर असल और नकल में क्या अन्तर है, यह दोनों के साथ पढ़ने से मालूम हो जाता है।

श्रीहर्ष की कल्पना और अतिशयोक्ति की बानगी।

श्रीहर्ष की कल्पनाशक्ति बहुत ऊँचे दर्जे की है; वह खूब ऊँची उड़ती है। अतिशयोक्ति कहने में श्रीहर्ष की बराबरी कोई कवि नहीं कर सकता। श्रीहर्ष के काव्य में स्वभावोक्ति बहुत कम पाई जाती है। यहाँ पर हम कुछ पद्य नैषध से ऐसे उद्धृत करते हैं जिनसे पता लग जायगा कि श्रीहर्ष की कल्पनाशक्ति किस दर्जे की है और उनकी उक्तियाँ कितनी विलक्षण हैं—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ॥

अर्थात्—नल की दिग्विजय-यात्रा में, उसके प्रकाशमान प्रतापरूपी अग्नि के धुएँ के समान, सेना के चलने से रास्ते में जो धूल उड़ी वही सुधासमुद्र में गिर कर कीचड़ हो गई और आज तक चन्द्रमा में कलङ्क के रूप में विद्यमान है। अर्थात् सुधासमुद्र से जब चन्द्रमा निकला था तब समुद्रसम्बन्धी कीचड़ उसमें लगी हुई थी। अतएव वह कलङ्क नहीं, वही कीचड़ है जो नल की सेना के पैरों से उड़ी हुई धूल के समुद्र में गिरने से बनी थी।

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा।
तनोति भानोः परिवेषकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि॥

अर्थात् दिन और रात दोनों को प्रकाशित करने के लिए नल के प्रताप का सूर्य और यश का चन्द्रमा तो विद्यमान ही था, फिर इन प्रत्यक्ष सूर्य और चन्द्र को मैंने क्यों बनाया ? यह बात जब जब ब्रह्मा के मन में उठती है तब तब वह सूर्य और चन्द्रमा, इन दोनों के चारों ओर मण्डल रूपक का घेरा देता है, जैसे कोई अपनी भूल प्रकट करने को अशुद्ध अक्षर के चारों ओर घेरा कर दे। लिखने में जो भूल हो जाती है उसके चारों ओर घे[रा] देने की चाल पहले समय में थी। सूर्य और चन्द्र[मा के] आस पास कभी कभी मण्डल देख पड़ता है, यही [बा]त इसी से कवि ने "यदा यदा" कहा। कवि ने इनके [प्रताप] और यश का वर्णन बिलकुल ही निराले ढँग का किया है।

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम्
इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितैः पयोधिरोधक्षममुद्धतं रजः॥

अर्थात्—हमारी गति इतनी है कि यह पृ[थ्वी हमारे] लिए कुछ भी चीज़ नहीं। इसे तो हम थोड़ी ही दे[र में पार कर] जायँगे। इसलिए टापों से धूल उड़ाते हुए घोड़े सम[ुद्र] को पाटने की फ़िक्र में हैं। मतलब यह कि समुद्र [भी] स्थल हो जायगा तो चलने के लिए भूमि मिल जा[यगी]।

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिम॥

अर्थात्—चन्द्रमण्डल की शोभा का जो दु[कड़ा था] उसी को लेकर विधाता ने दमयन्ती का मुख ब[नाया]। इसी से जितना भाग चन्द्रमण्डल का निकाल लि[या] उतना गढ़ा अब तक चन्द्रमा में नीलेपन के बहाने दि[खाई देता] है। अर्थात् चन्द्रमा के बीच में छिद्र हो जाने से उसके [भीतर] गत आकाश की नीलिमा जो दिखाई देती है वही का[लिमा है]।

सुषमाविषये परीक्षणे निखिलं पद्ममभाजि तन्मुखात्।
अधुनापि न भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनमुज्झति स्फु[टम्]॥

अर्थात्—कमलों के साथ जो इसके मुख की [परीक्षा] की गई तो वे सब हार कर मारे लज्जा के जल में डू[ब गये]। आज तक जल में डूबने का उन्हें जो अभ्यास है उसका [यही] कारण है।

धिक् तं विधेः पाणिमजातलज्जं निर्माति यः पर्वणि पूर्णमि[न्दुम्]।
मन्ये स विज्ञः स्मृततन्मुखश्रीः कृतार्धमौज्झद्धरमूर्ध[नि यस्तम्]॥

अर्थात्—ब्रह्मा के उस हाथ को धिक्कार है जो द[मयन्ती का] मुख-चन्द्र निर्माण करके फिर भी पर्व पर्व में पूर्ण[िमा को] पूर्ण चन्द्रमा बनाता है। नहीं नहीं, मालूम होता [है ब्र]ह्मा निरा जड़ नहीं है। कभी कभी उसको सुध हो आ[ती है] भी देखने को मिलता है। क्योंकि ...
जब नल के मुख की ...
...शिर में ...
होता है।

अर्थात्—देखिए, चन्द्रमा की नायिका रात्रि की द्वार-पालिका का काम सायङ्कालीन सन्ध्या कर रही है। अस्त होते हुए सूर्य की लम्बी लम्बी किरणावली लाल रङ्ग से रँगी हुई उसकी छड़ी है। वह दिन को प्रवेश करने से रोक रही है। यह सन्ध्याकाल का वर्णन है।

आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम्॥

अर्थात्—यह सूर्यरूपी परिव्राजक दण्ड लेकर और सब दिशाओं में घूम कर सन्ध्यासमय स्नान करने के लिए पश्चिम समुद्र में डूब कर, सायङ्कालीन लाल-आकाशरूपी काषायमय वस्त्र धारण कर रहा है।

[illegible] कौमुदीभिः क्षीरस्य धाराभिरिव क्षणेन।
[illegible] नीली रुचिरस्वरूपा तमोमयीयं रजनीरजक्या॥

अर्थात्—हे दमयन्ती, रातरूपी धोबिन ने दूध की धारा के सदृश चाँदनी से आकाश में फैले हुए अन्धकाररूपी [illegible] कपड़े को इसी तरह धो डाला जिस तरह कि धोबिन [illegible] को दूध से क्षणमात्र में धो डालती है। अर्थात् चाँदनी से आकाश निर्मल हो गया।

श्रीहर्ष का प्रातःकाल और सन्ध्याकाल-वर्णन उतना उत्तम [illegible] प्राकृतिक नहीं, जितना शिशुपालवध के नवम और [illegible] सर्ग में माघ कवि का किया हुआ वर्णन है।

उपसंहार।

इस लेख में हमने महाकवि श्रीहर्ष और उनके काव्य के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट किये हैं। संस्कृत-[illegible] के इस प्रसिद्ध महाकवि के सम्बन्ध में हमें जो कुछ [illegible] था हमने विवेकशील सहृदय पाठकों की सेवा में निवेदन कर दिया। श्रीहर्ष में कवित्व-शक्ति और पाण्डित्य [illegible] था, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर उनमें कालि-दास के समान सहृदयता न थी। हमारा यही विचार है। [illegible] है कि कुछ हमारे इस विचार से सहमत न हों। अस्तु।

जनार्दन भट्ट।

सहज-ज्ञान और स्वभाव।



क्षा का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। प्रत्येक गृहस्थ अपने बच्चों को शिक्षित करने में यत्न कर रहा है। परन्तु शिक्षा देना कब और किस नियत समय पर ही क्यों आरम्भ करना चाहिए—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर मनोविज्ञान (Psychology) से ही मिल सकता है। यह शास्त्र मानवधर्म-शास्त्र के सदृश केवल बहुत से आदेशों को ही देनेवाला नहीं किन्तु उन आदेशों के कारणों को भी स्पष्टतया बतानेवाला है। अतएव उन आदेशों का पालन करने में किसी प्रकार की शङ्का नहीं रह जाती।

आज मैं उक्त शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले सहज ज्ञान और स्वभाव (Instinct and Habit) के विषय में कुछ निवेदन करने का साहस करूँगा और यह दिखलाऊँगा कि उनका प्रयोग केवल बच्चों ही में नहीं, किन्तु बुड्ढों तक में हो सकता है।

आवश्यक कार्य करने की उस शक्ति का नाम सहज ज्ञान है जिसमें कर्त्ता को अपने कार्य का परि-णाम न ज्ञात हो और जिसके करने की रीति उसने कभी पहले न सीखी हो। जब बच्चे के मुख में कोई वस्तु रख दी जाती है तब वह उसे बिना पूर्व ज्ञान के काटने लगता है। जब उसका प्यार किया जाता है तब वह मुसकराने लगता है। जब उसे चोट लगती है तब वह रोने लगता है। जब कोई भया-नक वस्तु देखता है तब वह भय से भागता है। यहाँ काटना, रोना, भागना इत्यादि कार्यों को बच्चा बिना पूर्व-ज्ञान के और बिना परिणाम जाने ही करता है। अतएव ये सब सहज ज्ञान के उदाहरण हैं।

सहज-ज्ञान की सहायता से प्राणी [illegible] करने में समर्थ होता है। यह देखा गया है कि दो तीन दिन के मुर्गी के बच्चे किसी [illegible] पदार्थ का अनुसरण करने लगते हैं। [illegible] है। [illegible]

सुख भोगने की आशा लगी हुई है ? कहाँ का आलस्य तुम्हें घेरे हुए है जो तन से जल्दी नहीं निकल जाते। जब घर में आग लगती है तब उसमें कोई नहीं रहता; जल्द बाहर निकल जाता है।

ममादरीदं विदरीतुमान्तरं तदर्थिकल्पद्रुम ! किञ्चिदर्थये।
भिदां हृदि द्वारमवाप्य मैव मे हतासुभिः प्राणसमः समं गमः॥

अर्थात्—हे याचकों के कल्पद्रुम ! मेरा हृदय विदीर्ण होना ही चाहता है। इससे मैं तुम से एक प्रार्थना करती हूँ। वह प्रार्थना यह है कि मेरा हृदय फटने पर दरार-रूपी जो द्वार हो जायगा उस द्वार से, मेरे पापी प्राणों के साथ, मेरे हृदय से कहीं तुम भी न चले जाना।

यत्कस्यामपि भानुमान्न ककुभि स्थेमानमालम्बते—
जातं यद् घनकाननैकशरणप्राप्तेन दावाग्निना।
एषैतद्भुजतेजसा विजितयोस्तावत्तयोरौचिती—
धिक्तं वाडवमम्भसि द्विषि भिया येन प्रविष्टं पुनः॥

अर्थात्—सूर्य किसी दिशा में भी स्थिर नहीं रहता; सदा भ्रमण किया करता है। दावाग्नि घने वन की शरण लेती है। इस राजा के भुजा के तेज से जीते गये इन दोनों के लिए यह उचित ही है। क्योंकि अभिमानी जन शत्रु से जीते जाने पर लज्जा के मारे एक देश में वास नहीं करते, किन्तु सर्वत्र घूमा करते हैं, अथवा डर के मारे घने वन में भाग कर शरण लेते हैं। अतएव सूर्य और दावाग्नि ने जो किया वह उचित ही किया। किन्तु उस वाडवाग्नि को धिक्कार है जो इसके भुजा के तेज से डर कर अपने सहज-शत्रु समुद्र के जल में घुस कर बैठा है। अभिमानी जन परास्त होकर भी किसी वैरी की शरण नहीं जाते। वाडवाग्नि ने ऐसा किया, अतएव उसे धिक्कार !

वरस्य पाणिः परघातकौतुकी वधूकरः पङ्कजकान्तितस्करः।
सुराज्ञि तौ तत्र विदर्भमण्डले ततो निबद्धौ किमु कर्कशैः कुशैः॥

अर्थात्—वर का हाथ पर (शत्रु) की हिंसा करने वाला है और वधू का हाथ कमल की कान्ति का चुराने वाला है। क्या इसी लिए वधू और वर दोनों के हाथ कर्कश कुशों से बाँधे गये हैं ? विदर्भदेश में सुराज्य है—अतएव वहाँ चोर और परहिंसकों के अवश्य ही हथकड़ी पड़नी चाहिए। दमयन्ती के पाणिग्रहण के समय का यह श्लोक है। कन्यादान के समय वर और वधू दोनों के हाथ कुश से बाँध दिये जा[ते हैं,] यह देशाचार है। उसी हस्त-बन्धन पर यह उत्प्रेक्षा है।

नभसि महसां ध्वान्तध्वांक्षप्रमापणपत्त्रिण-
मिह विहरणैः श्यैनंपातां रवेरवधारयन्।
शशविशसनत्रासादाशामयाचरमां शशी
तदधिगमनात्तारापारावतैरुदडीयत॥

अर्थात्—अन्धकाररूपी कौवों को मार कर सूर्य-[किरण]रूपी बाज़ को आकाश में भ्रमण करता देख, चन्द्रमा ने [समझा] कि सूर्य शिकार के लिए निकला है। इस कारण (चन्द्रमा) अपने शश (ख़रगोश) के मारे जाने के डर से [पश्चिम] दिशा को भाग गया और यही समझ कर तारारूपी [कबूतर] उड़ गये। यह वर्णन प्रभात-काल का है।

धयतु नलिने माध्वीकं वा न वाभिनवागत-
कुमुदमकरन्दौघैः कुक्षिंभरिभ्रमरोत्करः।
इह तु लिहते रात्रीतर्ष रथाङ्गविहङ्गमा
मधु निजवधूवक्त्राम्भोजेऽधुनाधरनामकम्।

अर्थात्—प्रभात-समय आ कर भ्रमर के झुण्ड क[मल के] मकरन्द का पान करें या न करें, क्योंकि वे रात्रि में [कुमुद] के मकरन्द से अपना पेट भर कर तृप्त हो गये हैं। किन्तु [चक्र]वाक पक्षी, जो रात भर प्रिया के वियोग में प्यासे रहे हैं, [अब] प्रिया के मुखरूपी कमल में अधररूपी मधु का पान बड़े आनन्द से प्रातःकाल कर रहे हैं।

दिनमिव दिवाकीर्तिस्तीक्ष्णैः क्षुरैः सवितुः करै-
स्तिमिरकबरीलूनां कृत्वा निशां निरवीवसत्।
स्फुरति परितः केशास्तोमैस्ततः पतयालुभि-
र्ध्रुवमधवलं तत्तच्छायच्छलाद्वनान्तिकम्॥

अर्थात्—दिनरूपी नाई ने सूर्य के किरणरूपी तेज़ [उस्तरे] से निशा के अन्धकाररूपी केशसमूह को मूड़ कर उसे [देश से] बाहर निकाल दिया जिस तरह कि व्यभिचारियों को मूड़ा कर देश से बाहर निकाल दी जाती है। वृक्षादि वस्तुओं की जो छाया पड़ती है वही मुण्डन का आकाश से गिरे हुए केशसमूह हैं।

परय दुग्धाम्भोनवपूर्णनियन्त्रणवर्ती हितकरसरस।
निशिस्यमानादनि सन्ध्यगति रविविम्बोदयरदीक्षण

अर्थात्—देखिए, चन्द्रमा की नायिका रात्रि की द्वारपालिका का काम सायङ्कालीन सन्ध्या कर रही है। अस्त होते हुए सूर्य की लम्बी लम्बी किरणावली लाल रङ्ग से रँगी हुई उसकी छड़ी है। वह दिन को प्रवेश करने से रोक रही है। यह सन्ध्याकाल का वर्णन है।

उदग्र दण्डं सकलासु दिक्षु योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।
अपि निमज्जन्निव वारिधौऽयं सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम्॥

अर्थात्—यह सूर्यरूपी परिव्राजक दण्ड लेकर और सब दिशाओं में घूम कर सन्ध्यासमय स्नान करने के लिए पश्चिम समुद्र में डूब कर, सायङ्कालीन लाल-आकाशरूपी काषायमय वस्त्र धारण कर रहा है।

पश्य भैमि गेन्दोदरि कौमुदीभिः क्षीरस्य धाराभिरिव क्षणेन।
प्रक्षालि नीलो रुचिरम्बरस्था तमोमयीयं रजनीरजक्या॥

अर्थात्—हे दमयन्ती, रातरूपी धोबिन ने दूध की धारा के सदृश चाँदनी से आकाश में फैले हुए अन्धकाररूपी काले धब्बे को उसी तरह धो डाला जिस तरह कि धोबिन कपड़े के काले दाग़ को दूध से क्षणमात्र में धो डालती है। अर्थात् चाँदनी से आकाश निर्मल हो गया।

नैषध का प्रातःकाल और सन्ध्याकाल-वर्णन उतना उत्तम और प्राकृतिक नहीं, जितना शिशुपालवध के नवम और एकादश सर्ग में माघ कवि का किया हुआ वर्णन है।

उपसंहार।

इस लेख में हमने महाकवि श्रीहर्ष और उनके काव्य के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट किये हैं। संस्कृत भाषा के इस प्रसिद्ध महाकवि के सम्बन्ध में हमें जो कुछ कथित आव ... र पाठकों की सेवा ... नि और ... । पर ...

सहज-ज्ञान और स्वभाव।



शिक्षा का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। प्रत्येक गृहस्थ अपने बच्चों को शिक्षित करने में यत्न कर रहा है। परन्तु शिक्षा देना कब और किसी नियत समय पर ही क्यों आरम्भ करना चाहिए—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर मनोविज्ञान (Psychology) से ही मिल सकता है। यह शास्त्र मानवधर्म-शास्त्र के सदृश केवल बहुत से आदेशों को ही देनेवाला नहीं, किन्तु उन आदेशों के कारणों को भी स्पष्टतया बतलानेवाला है। अतएव उन आदेशों का पालन करने में किसी प्रकार की शङ्का नहीं रह जाती।

आज मैं उक्त शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले सहज-ज्ञान और स्वभाव (Instinct and Habit) के विषय में कुछ निवेदन करने का साहस करूँगा और यह दिखलाऊँगा कि उनका प्रयोग केवल बच्चों ही में नहीं, किन्तु बुड्ढों तक में हो सकता है।

आवश्यक कार्य करने की उस शक्ति का नाम सहज ज्ञान है जिसमें कर्ता को अपने कार्य का परिणाम न ज्ञात हो और जिसके करने की रीति उसने कभी पहले न सीखी हो। जब बच्चे के मुख में कोई वस्तु रख दी जाती है तब वह उसे बिना पूर्व ज्ञान के काटने लगता है। जब उसको प्यार किया जाता है तब वह मुसकराने लगता है। जब उसे चोट लगती है तब वह रोने लगता है। जब कोई भयानक वस्तु देखता है तब वह भय से भागता है। यहाँ काटना, रोना, भागना इत्यादि कार्यों को बच्चा बिना पूर्व-ज्ञान के और बिना परिणाम ज्ञान के करता है। अतएव ये सब सहज ज्ञान के उदाहरण हैं।

सहज-ज्ञान की सहायता से प्राणी आत्मरक्षा करने में समर्थ होता है। यह देखा गया है कि दो तीन दिन के मुर्गी के बच्चे किसी भी चलते फिरते पदार्थ का अनुसरण करने लगते हैं। इसीलिए वे ... को ... में ... लेते हैं। इस प्रकार

का सहज-ज्ञान उनको भोजन की प्राप्ति में भी सहायक होता है।

मनो-विज्ञान के जाननेवालों ने इन सहज-ज्ञानों के विषय में निम्नलिखित दो नियम निर्दिष्ट किये हैं—

(१) सहज-ज्ञान अल्पकाल तक ही रहता है।

(२) स्वभावोदय से सहज-ज्ञान का नाश हो जाता है।

(१) प्राणियों में सहज-ज्ञान केवल थोड़े काल तक रहता है। उस उतने ही समय के भीतर यदि प्राणी उसे प्रयोग में न लावे तो वह नाश को प्राप्त हो जाता है। जब मुर्गी के बच्चे अपनी माता को देखने से दस दिन तक वञ्चित रक्खे जाते हैं तब वे फिर अपनी माता को देख कर उसके पास नहीं जाते। जब दूध पीने वाले जानवरों के बच्चे अपनी माता का दूध, सहज-ज्ञान की उपस्थिति के समय, नहीं पाते तब वे फिर अपनी माता का दूध नहीं पीते। इन उदाहरणों से विदित होता है कि बच्चों में सहज ज्ञान थोड़े ही काल तक रहता है। फिर वह नष्ट हो जाता है।

(२) स्वभावोदय अर्थात् आदत पड़ जाने से सहज-ज्ञान का नाश हो जाता है। मतलब यह कि जब प्राणी पुनः पुनः अपने सहज-ज्ञान का प्रयोग करता है तब उसे वैसा करने का स्वभाव पड़ जाता है और सहज-ज्ञान नष्ट हो जाता है। अपने सहज-ज्ञान से जिस जगह पशु रहने लगता है उसे वह फिर नहीं छोड़ता। जहाँ वह चरने के लिए जाना आरम्भ कर देता है वहीं जाया करता है। इन उदाहरणों से यह प्रकट है कि स्वभाव पड़ जाने पर सहज-ज्ञान नष्ट हो जाता है, क्योंकि उस समय पशु अपने सहज-ज्ञान की प्रेरणा से दूसरे स्थान में जाने के अयोग्य हो जाता है।

इन दोनों नियमों का व्यवहार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षक का धर्म है कि वह अपने शिष्यों के सहज-ज्ञानों का शीघ्र अनुसन्धान करके उनको स्वभाव में परिणत कर दे। जिन स्वभावों का आधार सहज-ज्ञान होता है वे चिर-स्थायी और दृढ़ होते हैं। अतः वे बड़े महत्त्व[illegible] समझे जाने चाहिए।

मनुष्यों की बाल्यावस्था में सहज-ज्ञान बहुत [illegible] होते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे उनको [illegible] समय अच्छे विषयों में लगा दें। बहुत से लो[ग] अपने छोटे बच्चों को खेलने से रोकते हैं और कह[ते] हैं कि जब वे बड़े होंगे तब खेल लेंगे; अभी उनको ख़ूब पढ़ना चाहिए। लोगों का ऐसा विचार अत्य[न्त] हानिकारक है, क्योंकि जब लड़के बड़े होते हैं त[ब] खेलने से डरते हैं और पढ़ने में अधिक आसक्त [हो] जाने से अपने शारीरिक स्वास्थ्य को खो बैठते हैं। छोटे छोटे लड़कों को भूत-प्रेतों की कहानियों [से] भय-भीत करना भी अनुचित है। ऐसी कहानि[यों] से वे अधिक कायर हो जाते हैं।

स्वभाव किसे कहते हैं, यह बात प्रायः स[भी] को ज्ञात है। उठना, बैठना, कपड़े पहनना, कपड़े उतारना, खाना, पीना इत्यादि सभी स्वभा[व] से ही होते हैं।

कोई कार्य पुनः पुनः करने से जब उसे क[रने] का स्वभाव पड़ जाता है तब उस स्वभाव से नि[म्न]लिखित दो प्रकार के लाभ होते हैं:—

(१) काम करने में अधिक परिश्रम नहीं पड़ता [illegible] काम भी अच्छा होने लगता है। और,

(२) सावधानता की विशेष आवश्यकता न[हीं] रहती। जो काम प्रारम्भ में बड़ी सावधानता [से] करना पड़ता है वह स्वभाव पड़ जाने पर सहज [में] हो जाता है।

स्वभाव पड़ जाने और अन्यमनस्क होने [से] मनुष्य कभी कभी अत्यन्त हास्योत्पादक काम क[र] बैठता है। यथा—एक प्रोफ़ेसर साहब रास्ते में च[ले] जाते थे। अकस्मात् वे एक गाय से टकरा गये। उन्होंने फ़ौरन अपनी टोपी उतारी और कहने लगे— "I beg your pardon, madam" (दे[वी] क्षमा कीजिए)।

स्वभाव का भी बड़ा महत्त्व है। स्वभाव [के] अच्छे या बुरे होने ही से मनुष्य सुशील अथ[वा]

"श्री गिरमठ-शारदा-सदन बीकानेर



आश्विन ।

प्रथम पिण्ड हित प्रकट पितर पावन घर आवैं ।
नवदुर्गनि नर पूजि स्वर्ग अपवर्गहि पावैं ॥
छत्रनु दै छितिपाल लेत भुव लै संग पण्डित ।
केशवदास अकाश अमल जल-थल जन-मण्डित ॥
रमनीय रजनि रजनीश-रुचि रमा रमनहू रास रति ।
कल-केलि-कल्पतरु क्वार महिं कन्त न करहु विदेश-गति ॥

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

शील हो जाता है। उन्नति का एक मात्र आधार स्वभाव है। यदि मनुष्य में स्वभाव पड़ जाने की शक्ति न होती तो वह कदापि विद्वान् अथवा सुख हो सकता। वर्णमाला लिखने का अभ्यास करने पर यदि उसे लिखने का स्वभाव न पड़ जाता तो मनुष्य विशेष न लिख सकता, क्योंकि लिखना सीखने के समय जिस तरह उसे धीरे धीरे हस्त-सञ्चालन और श्रम करना पड़ा था उसी तरह उसे सदा ही करना पड़ता।

बहुत से मनुष्यों को प्रायः कोई न कोई बुरी आदत पड़ जाती है। वे उन आदतों को छोड़ना चाहते हैं। ऐसा करने में उन्हें परिश्रम तथा यत्न की आवश्यकता होती है। किसी मनुष्य को कदापि ऐसा न समझना चाहिए कि वह अपने बुरे स्वभावों को दूर न कर सकेगा। मनोविज्ञान का यह नियम है कि जब मन में दो प्रकार के विचारों में युद्ध छिड़ जाता है तब अधिक बलवान् ही विजयी होता है। अतः जिस स्वभाव को छोड़ना हो उसके विरुद्ध स्वभाव को सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए और विचार द्वारा उसे पुष्ट करते रहना चाहिए। अन्त में बुरा स्वभाव अवश्य ही छूट जायगा।

शिवदयालु गुप्त।

विविध विषय।

१—महकमा कोरट।

कोर्ट आव् वार्ड्स के सम्बन्ध में एक लेख गत मास की सरस्वती में निकल चुका है। दूसरा इस संख्या में प्रकाशित है। इन लेखों के लेखक "अभिज्ञ" महाशय से हमारी कुछ प्रार्थना है। आप से यह निवेदन है कि आप दो तीन लेख और लिखने की कृपा करें। एक लेख में तो आप यह बतावें कि कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन इलाक़ा होने से, सब बातों को देखते, हानि होती है या लाभ। आपके लेखों से तो दोनों बातें सूचित होती हैं। रियासत कोर्ट में चली जाने से यदि कुछ लाभ होता है तो कुछ हानि भी होती है। कुछ मदों में ख़र्च अधिक होता है, यह बात तो "अभिज्ञ" महाशय ने स्वयं ही स्वीकार की है। इसके सिवा और भी कुछ हानियों का उल्लेख आपने किया है। अतएव हानि-लाभों की तुलना करके और उनके गौरव-लाघव पर ध्यान देकर आपको यह बताना चाहिए कि रियासतों का कोर्ट में जाना अच्छा है या बुरा। दूसरे लेख में आप इस बात की मीमांसा करें कि वार्डों—ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों के लड़कों—को शिक्षा किस तरह की मिलनी चाहिए। उनकी वर्तमान शिक्षा का क्रम अच्छा है या नहीं। उसमें कुछ रद्दो-बदल की ज़रूरत है या नहीं। लखनऊ में जो स्कूल इन लोगों की शिक्षा के लिए है उसमें इन्हें सभी आवश्यक बातें सिखाई जाती हैं या नहीं। इन लोगों को क्रिकेट, फुटबाल, घोड़े की सवारी और साधारण शिक्षा के सिवा कुछ विशेष शिक्षा की भी ज़रूरत है। सबसे अधिक महत्त्व की शिक्षा, जो इन्हें मिलनी चाहिए, यह है कि ये अपनी रिआया को नोच-खसोट की चीज़ न समझें। इसी रिआया ही की बदौलत इन्हें लाखों रुपये की आमदनी होती है। अतएव उसकी आराम-तकलीफ़ का ख़याल रखना इनका सबसे बड़ा कर्तव्य है। इस बात की इन्हें दृढ़ शिक्षा देनी चाहिए। अपना ख़र्च और सरकारी मालगुज़ारी निकाल कर बाक़ी रुपये को इन्हें ऐसे कामों में लगाना चाहिए जिससे रिआया में अमन-चैन की वृद्धि हो, कृषकों की दशा सुधरे, शिक्षा की उन्नति हो, बीमारी घटे। इस निमित्त इन्हें स्कूल और अस्पताल खोलने, कुएँ, तालाब और बाँध बनवाने, देहाती बैंक खोलने, उन्नत रीति से खेती कराने आदि का उपदेश स्कूल में मिलना चाहिए। क़ानून लगान (Rent Act), क़ानून मालगुज़ारी—(Land Revenue Act) और ज़ाब्ता दीवानी (Civil Procedure Code) की भी विशेष विशेष बातों की शिक्षा इन्हें मिलनी चाहिए।

कोर्ट आव् वार्ड्स के सम्बन्ध में हमें कुछ और भी निवेदन करना है—

(१) वार्डों और मैनेजरों की एक सभा स्थापित होनी चाहिए। उसमें मैनेजरों और उन वार्डों को, जो रियासत का इन्तज़ाम अब अपने हाथ में ले चुके हैं या जिनका इन्तज़ाम

या प्रबन्धतज़ामी के कारण कोर्ट में आ गया है, एक दूसरे से मिलने और प्रबन्ध-सम्बन्धी बातें करने का अवसर मिलना चाहिए। ऐसी सभा एक दफ़े स्थापित हुई भी थी, परन्तु न मालूम क्यों बन्द हो गई।

(२) जो इलाक़े ऋणी होते जाते हैं या जिनका प्रबन्ध अच्छा नहीं थे, यदि उस ज़िले में मैनेजर मुक़र्रर है तो, उसकी निगरानी में दे दिये जायँ। वह उनका बजट बना दे और समयानुकूल सलाह मशविरा देता रहे। वर्ष के अन्त में वह गवर्नमेंट को रिपोर्ट करे कि बजट की पाबन्दी की गई या नहीं और नहीं तो क्यों नहीं? प्रबन्ध सँभलता है या बिगड़ता जाता है? यह उन रियासतों की बात है जो यथार्थ में कोर्ट के अधीन नहीं।

(३) कोर्ट आव् वार्ड्स एक पत्र चन्दे से निकाले। वह उर्दू और हिन्दी में निकले। उसमें प्रबन्ध-विषयक तथा अन्य उपयोगी लेख निकला करें। कोई मैनेजर ही उसका सम्पादक नियत किया जाय।

(४) कोर्ट आव् वार्ड्स की मुलाज़िमत "प्राविन्शल" कर दी जाय, जिससे लोगों को तरक़्क़ी मिलने और कार-गुज़ारी दिखाने का अवसर मिले। ऐसा करने के पहले कोर्ट आव् वार्ड्स को चाहिए कि एक मैनेजर और एक आडिटर नियत करे। वे सब जगह घूम कर देखें कि कम से कम कितने आदमी ऐसे हैं जिनकी मुलाज़िमत "प्राविन्शल" हो सकती है। इस समय तो कहीं आवश्यकता से कम मुलाज़िम हैं, कहीं अधिक।

(५) यह नियम कर देना चाहिए कि २५) से अधिक वेतन पर, इन्ट्रेन्स से कम लियाक़त का आदमी न नियत होगा। आज कल तो वे लोग कोर्ट में नौकर होते हैं जिनको और कहीं नौकरी नहीं मिलती, क्योंकि कोर्ट में एक तो तरक़्क़ी की विशेष आशा नहीं, दूसरे इसका ठिकाना नहीं कि कब वे बरख़ास्त हो जायँगे।

(६) मैनेजरों और असिस्टेंट मैनेजरों को कानपुर के कृषि-कालेज में या कहीं और जगह सर्वे और कृषि का काम कम से कम छः महीने तक सीखना चाहिए।

(७) ख़ास ख़ास वार्डों को छोड़ कर औरों की सीर मैनेजर के हाथ में रहनी चाहिए। इसका इन्तिज़ाम महकमे डाइरेक्टरी से होना चाहिए। ख़र्च देकर इसमें जो बचत हो वह वार्ड को मिलनी चाहिए। ऐसा करने से कोर्ट को जो "फ़ार्म" खोलने पड़ते हैं उसकी आवश्यकता न होगी। दूसरे, वार्ड को अलग कर्मचारी रखने की ज़रूरत न पड़ेगी। इससे वह बुरे परामर्श से बचते रहेंगे। सीर में ख़र्च कम होगा। वार्ड मुनाफ़े में रहेगा।

(८) कोर्ट के मैनेजरों को डिप्टी कमिश्नरी के सब सम्बन्धी अधिकार दे देना चाहिए। ऐसा करने से उनकी ज़िम्मेदारी बढ़ जायगी और काम अच्छा होगा।

"अभिज्ञ" महाशय से प्रार्थना है कि एक लेख में आप इन सूचनाओं पर भी विचार करें और लिखें कि इन्हें ये लाभदायक समझते हैं या नहीं।

२—भारत के अति-प्राचीन ताँबे के शस्त्रास्त्र

कालभेद के अनुसार विद्वानों ने कुछ ऐसे युगों की कल्पना की है जिनमें कुछ विशेष विशेष धातुओं की प्रधानता थी। प्रस्तर-युग में पत्थर के, लोह-युग में लोहे के, ताम्र-युग में ताँबे के ही हथियारों और औज़ारों की प्रधानता थी। हमारे देश, भारत, में भी यही बात थी। इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने, समय समय पर, अनेक लेख प्रकाशित किये हैं। हाल में श्रीपण्डित हीरानन्द शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० का एक लेख एशियाटिक सोसायटी आफ़ बेङ्गाल के जर्नल में निकला है। इस लेख में शास्त्रीजी ने ताँबे के बहुत पुराने कितनेही औज़ारों की प्राप्ति का हाल लिखा है। विन्सेंट स्मिथ आदि जिन पुरातत्त्वज्ञों ने इस देश के ताँबे के शस्त्रास्त्रों पर लेख लिखे हैं उनके भी कुछ लेखों का आपने हवाला दिया है। उनके तथा स्वयं प्राप्त किये और देखे हुए कुछ नये औज़ारों और शस्त्रों के चित्र भी आपने दिये हैं। यात्री जब महावन जाते हैं तब वहाँ के राधाकृष्ण के मन्दिर के, और परिहार के मन्दिर के भी, पुजारी भाले का फल और घड़ियाल मारने के काँटे या बल्लम दिखाते हैं और कहते हैं कि ये अर्जुन के बाणों के फल हैं। इन औज़ारों और अन्य शस्त्रों का संक्षिप्त वर्णन और उनके चित्र देकर शास्त्रीजी ने उनकी तौल भी लिखी है। ये सब ताँबे के हैं और बहुत पुराने हैं। कानपुर, उन्नाव, बुलन्दशहर और हरदोई में इस तरह के अनेक शस्त्र मिले हैं। उनमें से कुछ तो लखनऊ के अजायब-घर में रक्खे हैं, कुछ विलायत में हैं, कुछ कहीं हैं, कुछ कहीं। जिस समय ताँबे

...। प्राधान्य था उस समय तलवारें, खंजर, भाले, बाण के ... फल, कुल्हाड़ियां, फरसे या परशु आदि सब प्रायः तांबे ही के बनते थे। मगर, घड़ियाल और कछुवे आदि मारने के लिए तांबे के ही कांटे या बाण उस समय लोग व्यवहार करते थे। वे बनते तो तांबे के थे, पर इनमें लकड़ी ही के लगते थे। ऐसे दो कांटों और कुल्हाड़ियों के चित्र अन्यत्र, इसी संख्या में प्रकाशित हैं। ये चारों चीज़ें पूर्वोक्त शास्त्रीजी ने, १९११ ईसवी में, मझावर्न (बिठूर) से प्राप्त की थीं।

३—राजाओं की गुण-ग्राहकता।

जिनके सिर पर पेट-पूजा की चिन्ता सवार रहती है उनसे सरस्वती की पूजा नहीं बन पड़ती। बन भी पड़ती है तो अच्छी तरह साङ्गोपाङ्ग नहीं बन पड़ती। पुराने ज़माने की याद कीजिए। जितने बड़े बड़े विद्वान, कवि और ग्रन्थकार इस देश में हो गये हैं उनमें से अधिकांश किसी न किसी राजा या महाराजा के आश्रित अवश्य थे। उनको रुपये-पैसे की कमी न थी। उनके लिए सब तरह के आराम का प्रबन्ध था। इसी से वे सदा विद्याव्यासङ्ग में ही लगे रहते थे और नये नये ग्रन्थों और काव्यों आदि की रचना कर के लोक-कल्याण करते थे। साथही वे अपना नाम भी अमर कर जाते थे और अपने आश्रयदाता का भी। बड़े बड़े राजाओं ही के दरबार में विद्वान् पण्डित और कवि न रहते थे। छोटे छोटे ठाकुरों और तअल्लुकेदारों के भी यहां एक आध कवि अवश्य रहता था। हमारे ग्रामवासी प्रसिद्ध कवि सुखदेव मिश्र का इस प्रान्त के कई राजा-रईसों के यहां आवागमन था। एक नवाब साहब तक उनका आदर करते और उन्हें बहुत कुछ देते थे। मिश्र जी उनके नाम से फ़ाज़िलअली-प्रकाश नाम का एक ग्रन्थ छोड़ गये हैं। पर अब ये सब बातें स्वप्न हो गई हैं। इसमें कुछ अपराध हमारा भी है। यथेष्ट योग्यता प्राप्त किये बिना ही हम सम्पादक, ग्रन्थकार और कवि बनना चाहते हैं। पर विद्याविषयक ढोंग सब कहीं नहीं चल सकता। जिन नरेशों और रईसों में विद्या है वे ऐसे ढोंगियों की क़दर करने से रहे। जिनमें विद्या और गुण-ज्ञान नहीं उनके लिए तो लेखकों और ग्रन्थकारों का होना और न होना दोनों तुल्य है। उनको इनसे क्या लाभ और क्या काम? तथापि, फिर भी, हिन्दी लिखने वालों में कितने ही ऐसे योग्य लेखक हो गये हैं जो इन लक्ष्मीपतियों की कृपा के पात्र थे। अब भी इस तरह के कितने ही लेखक विद्यमान हैं। पर शायद ही कभी किसी की दृष्टि इनकी ओर खिंची हो।

सन्तोष की बात है कि ऐसे ज़माने में भी उर्दू के प्रेमी रईसों का ध्यान उर्दू-लेखकों की ओर है। कितने ही नवाबों और रईसों के यहां अब भी अच्छे अच्छे शायर और अरबी फ़ारसी के विद्वान् हैं। भूपाल की बेगम साहबा ने बहुत रुपया खर्च कर के कुछ पुस्तकें लिखाई हैं। हैदराबाद के निज़ाम साहब ने हज़ारों रुपया उर्दू के लेखकों, सम्पादकों और कवियों को दे डाला है। सुनते हैं, अभी हाल में, उन्हो ने लाहोर के पैसा अख़बार के सम्पादक को २७०० रुपया साल देना मंज़ूर किया है। हैदराबाद के "मुशीर" नामक उर्दू-पत्र को वे २०० रुपया और बम्बई के इस्लामिक मेल नामक अंगरेज़ी पत्र को १०० रुपया महीना देते हैं। वर्तमान युद्ध के समाचार प्रकाशित करने के लिए सिकन्दराबाद से "बुलेटीन" नाम का एक पत्र निकलता है। वह दैनिक है। उसे निज़ाम सरकार से १००० रुपया महीना मिलता है।

४—शिक्षा-सम्बन्धी खर्च।

गवर्नमेंट की एक रिपोर्ट से मालूम हुआ कि सन् १९१३–१४ ईसवी में ७९ लाख छात्रों ने इस देश के सब प्रकार के विद्यालयों में शिक्षा पाई। इन इतने छात्रों को शिक्षा देने में कोई १० करोड़ रुपया खर्च हुआ। किस प्रान्त में कितना खर्च पड़ा इसकी तफ़सील नीचे देखिए।

बङ्गाल में	२ करोड़ २१ लाख
मदरास में	१ करोड़ ८० लाख
बम्बई में	१ करोड़ ६० लाख
संयुक्त प्रान्त में	१ करोड़ २८ लाख
जोड़	६ करोड़ ८९ लाख

बाक़ी रुपया और और प्रान्तों में खर्च हुआ। शिक्षा में हमारा प्रान्त और प्रान्तों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ है, पर आबादी में नहीं। बङ्गाल, मदरास और बम्बई से यहां की आबादी कम नहीं, अधिक है। अतएव यह इसका दुर्भाग्य ही समझना चाहिए जो यहां शिक्षा के सदृश परमोपयोगी काम में, इसकी अत्यन्त आवश्यकता होने पर भी, इतना कम खर्च किया गया। पूर्वोक्त वर्ष जो खर्च शिक्षा के लिए किया गया उसका—

२१ फ़ी सदी माध्यमिक शिक्षा के लिए
२१ फ़ी सदी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए
९ फ़ी सदी कालेज की शिक्षा के लिए

हुआ। बाक़ी ४९ फ़ी सदी और और प्रकार की शिक्षा तथा शिक्षा-सम्बन्धी और कामों में ख़र्च हुआ। सब प्रकार के स्कूलों और कालेजों में फ़ी छात्र, साल भर में, जितना ख़र्च पड़ा उसकी तफ़सील नीचे दी जाती है—

	रुपया	आना	पाई
प्रारम्भिक मदरसों में	४	११	०
माध्यमिक स्कूलों में	२२	०	०
ट्रेनिङ्ग-स्कूलों में	१२१	११	०
मामूली कालेजों में	११२	१३	०
व्यवसाय-सम्बन्धी कालेजों में	३३१	७	०

सन् १९१३—१४ में सब मिला कर विद्यालयों की संख्या १, ८६, ००० थी। उनमें शिक्षा पाने वाले छात्रों का औसत ख़र्च, साल में, फ़ी छात्र १०८) पड़ा।

५—लड़ाई में रुई का ख़र्च।

रुई से कपड़े ही नहीं बनते। और भी कितनी ही चीज़ों के सिवा, वह बारूद—बिना धुयें वाली बारूद—बनाने के भी काम आती है। जर्मनी में जो रुई जाती है उसका अधिकांश अमेरिका से ही आता है। अँगरेज़ी बेड़े की बदौलत अब वह नहीं जाने पाती। तटस्थ देशों की मारफ़त अब तक कुछ कुछ रुई जर्मनी पहुँच जाती थी। पर अब अँगरेज़ी बेड़े ने उसके अवरोध को और भी कड़ा कर दिया है। जर्मनी वाले जो यह कहते हैं कि हमारे व्यापार का अवरोध करके अँगरेज़ी गवर्नमेंट हमें भूखों मार डालना चाहती है उसमें बहुत कम तथ्य है। उन्हें खाद्य पदार्थों की कमी उतनी नहीं खलती जितनी कि रुई की आमदनी की रोक खलती है। यह सारा हाहाकार रुई के ही लिए है। लड़ाई के मैदान में जर्मनी की सेना को कभी कभी एक घंटे में दो लाख फ़ैरें करनी पड़ती हैं। सुनते हैं, ढाई लाख फ़ैर करने के लिए काफ़ी गोले वहाँ रोज़ तैयार होते हैं। एक फ़ैर में २ सेर रुई ख़र्च हो जाती है। इस हिसाब से ढाई लाख फ़ैरों के लिए पाँच लाख सेर, अर्थात् १२५० मन, रुई रोज़ चाहिए! इसके सिवा गोलियों के लिए रुई अलग चाहिए; फ़ौज की तोपों के लिए भी अलग। ख़ैर, उसे जाने दीजिए। बड़ी तोपों के लिए ही बारूद तैयार करने के लिए दो हज़ार मन रुई की रोज़ दरकार होती है। अर्थात् एक महीने के लिए ६० हज़ार और साल भर के लिए ७ लाख ३० हज़ार!! यदि इस रुई का जाना बन्द हो जाय तो जर्मनी को घुटने टेकते देर न लगे। इसके रोने धोने और अन्धाधुन्ध [illegible] निरपराध व्यापारी जहाज़ों को डुबोने का सब से बड़ा कारण यही है। यदि उसके व्यापार का अवरोध और भी सख़्ती से किया जाय तो युद्ध की समाप्ति शीघ्र ही हो जाय। अमेरिका के एक युद्ध-विद्या-विशारद की यही राय है।

६—प्लेग से नरनाश।

यथासम्भव प्रजा की रक्षा करना राजा का काम है। इसी से सरकार, पता प्रमाण मिलने पर, नर-हत्या करने वाले को फाँसी देती है। अत्यन्त नीच मानी गई जाति के मनुष्य की हत्या के लिए भी उसने वही दण्ड नियत किया है जो अत्यन्त उच्च मानी गई जाति के मनुष्य की हत्या के लिए है। इस सम्बन्ध में उसने अमीर और ग़रीब दोनों को एक ही काँटे से तोला है। यही उचित भी है। उसकी दृष्टि में प्रजा के सब अङ्ग एक से हैं। और तो क्या, भ्रूण-हत्याकारी तक के लिए उसने कड़ा दण्ड दिये जाने का विधान कर रक्खा है। प्रजा की प्राण-रक्षा और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ही उसने अस्पताल और दवाख़ाने खोले हैं। इसी लिए उसने सफ़ाई का भी एक महकमा अलग बना रक्खा है। गवर्नमेंट के इतना यत्नशील होने पर भी प्लेग से आज तक न मालूम कितना मनुष्य-संहार इस देश में हो चुका है। उस दिन कौंसिल के एक मेम्बर के पूछने पर गवर्नमेंट ने बताया कि इस प्रान्त में हैज़े और प्लेग से, सिर्फ़ तीन वर्षों में, कई लाख आदमी मर गये। हिसाब नीचे देखिए:—

	हैज़े से	प्लेग से
१९१२	१८,८६४	१,१४,६४२
१९१३	६०,४२७	१,०७,६८२
१९१४	३२,४६८	१,०३,६६४
जोड़	१,११,८११	३,२६,६८२

देखिए, एक लाख बारह हज़ार के लगभग मनुष्य तो हैज़ा खा गया और सवा तीन लाख के ऊपर प्लेग! यह अकेले एक सूबे का हिसाब है और तीन ही वर्ष का है।

ों को छोड़ दीजिए। प्लेग ने तो आज तक सारे देश की ... सियार जन-संख्या कम कर दी। लाखों नहीं, शायद करोड़ों ादमी इसकी विकराल दाढ़ के शिकार हो गये ! इस नर-ाश को रोकने के उपाय गवर्नमेंट अवश्य करती है। पर, ान पड़ता है, वे उपाय काफ़ी नहीं। काफ़ी होते तो अब क मृत्यु संख्या बहुत कम हो जाती। योरप के वर्तमान ुद्ध में जितने सैनिक आज तक मारे गये हैं उनसे कहीं धिक मनुष्य इस देश में प्लेग से मर चुके हैं और अब क बराबर मरते चले जा रहे हैं। इस नर-नाश को रोकने े लिए गवर्नमेंट को कुछ अधिक सचेष्ट होना चाहिए। ोग के निवारण के लिए उसे विशेष उपायों की योजना रनी चाहिए।

७—इंडियन सोल्जर्स फंड।

हिन्दुस्तानी सेना के जो सैनिक अगस्त १९१४ से ांस, बेलजियम, अफ़रीक़ा, गैलिपोली, फ़ारिस की खाड़ी ौर भूमध्य सागर में लड़ रहे हैं उनके आराम के लिए—न्हें कपड़े-लत्ते और खाने-पीने की चीज़ें पहुँचाने तथा ायल होने पर उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए—विलायत में एक कोश (फंड) खोला गया है। उसका नाम ै—इंडियन सोल्जर्स फंड। ईसाई धर्म के—आर्डर आव् ेंट जान आव् जेरूसलम—नामक सम्प्रदाय के प्रबन्ध से ह फंड खुला है। इस फंड की, अक्तोबर १९१४ से मार्च १९१५ तक की, एक सचित्र रिपोर्ट हमें मिली है। उसमें स फंड से सम्बन्ध रखने वाली कार्य्यावली का वर्णन है। स फंड के तीन उद्देश हैं:—

(१) घायल सैनिकों के लिए अस्पताल खोलना।

(२) सरकारी अस्पतालों में भेजे गये घायलों को ाराम पहुँचाना।

(३) हिन्दुस्तानी सेना के आराम के लिए आवश्यक पड़े-लत्ते तथा अन्य चीज़ें पहुँचाना।

इस फंड की कमिटी में विलायत के अनेक नामी नामी ोग शामिल हैं। बड़े बड़े घरों की कितनी ही स्त्रियां भी ैं। भरतपुर की महारानी, रतन ताता और आग़ाख़ां का ी नाम कमिटी के सभासदों में है।

रिपोर्ट से मालूम हुआ कि पहले छः महीने में इस मिटी को १९ लाख से भी अधिक रुपया चन्दे में मिला। उसमें से कोई ६ लाख ख़र्च हुआ। १३ लाख के क़रीब बाक़ी रहा। अकेले आर्डर आव सेंट जान सम्प्रदाय ने ही डेढ़ लाख रुपया दिया। हमारे वाइसराय, लार्ड हारडिंग, ने इम्पीरियल इंडियन रिलीफ़ फंड से एक लाख रुपया भेजा। लार्ड कर्ज़न की अपील पर ४½ लाख रुपया इसे मिला। इसके सिवा और सैकड़ों दानियों से इसने लाखों रुपया प्राप्त किया। इस दान की तफ़सील रिपोर्ट के अन्त में दी हुई है। उसमें दो तीन भारतीय राजाओं के भी नाम हैं। गोंडाल के ठाकुर साहब के नाम पर १२ हज़ार रुपया दर्ज है।

इस फंड की कमिटी ने जो अस्पताल खोला है उसका नाम है—लेडी हारडिंग हास्पिटल। उसमें आठ दस सुयोग्य डाक्टर और सर्जन नियत हैं। कितनी ही दाइयां भी हैं। घायलों के इलाज मुआलजे के सिवा उनके रहने के लिए, उनके मनोरञ्जन के लिए और उनके खाने पीने के लिए भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। इस अस्पताल में सैकड़ों घायलों की चिकित्सा होती है।

घायलों के लिए गवर्नमेंट ने जो अस्पताल खोल रक्खे हैं उनकी संख्या तीस चालीस के लगभग है। कुछ फ़्रांस में हैं, कुछ इँगलेंड में, कुछ ईजिप्ट में, कुछ भूमध्य सागर में, कुछ कहीं, कुछ कहीं। इन अस्पतालों के हिन्दुस्तानी घायलों को आवश्यक वस्तुयें पहुँचाने के लिए इस फंड की कमिटी ने सरकारी अफ़सरों की सलाह से बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा है। जहां जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वहां वे चीज़ें पहुँचा दी जाती हैं। इस काम के लिए कमिटी ने अलग अलग छोटी छोटी कमिटियां बना रक्खी हैं। उनको इसने सब काम बांट दिया है। इन सब कमिटियों के मेम्बरों की संख्या साठ सत्तर से कम नहीं।

जो सैनिक घायल नहीं—जो लड़ाई पर हैं—उनकी भी सहायता यह कमिटी करती है। उन्हें भी आज तक लाखों रुपये के मोल की चीज़ें यह दे चुकी है। यही नहीं, किन्तु यदि कोई किसी ख़ास सैनिक के लिए कोई पदार्थ—कोई पारसल—भेजता है तो यह उसे भी लेकर पाने वाले के पास पहुँचा देती है। रिपोर्ट में इन सब चीज़ों की तालिका दी हुई है जो इस कमिटी ने आज तक हिन्दुस्तानी सैनिकों को पहुँचाई हैं। उन्हें देख कर आश्चर्य होता है

और साथ ही ईसाई धर्म के इस सम्प्रदाय की दयाशीलता और परोपकार पर आनन्द भी होता है। इस तालिका में सैकड़ों चीज़ें हैं। कुछ की तफ़सील नीचे दी जाती हैः—

१—मोज़े	४२,२२३
२—कमीज़	१०,८४०
३—पायजामे	१,१०६
४—कम्मल	१,४०१
५—रूमाल	६ ७१३
६—पगड़ी का कपड़ा	२१,२६४ गज़
७—मिश्री	६,००० सेर
८—मिठाई	१४,००० सेर
९—तम्बाकू	२,००० सेर
१०—सिगरेट	२७,०३,७६०
११—लिखने का कागज़	६६,६७० तख़्ते
१२—लिफ़ाफ़े	६२,४००

कहाँ तक गिनावें—नमक, मिर्च, मसाले, तेल, फल, मेवे, कघे, कत्था, सुपारी आदि ऐसी सैकड़ों उपयोगी वस्तुयें सिपाहियों के इस कमिटी की बदौलत मिली हैं जिनका मिलना और किसी तरह बहुत ही कम सम्भव था। कुरान और ग्रन्थ साहब की सैकड़ों कापियां भी इसने बांटी हैं। पर रामायण का कहीं नाम न देख कर आश्चर्य हुआ।

लोक-सेवा और परोपकार इसे कहते हैं।

८—पुरातत्त्व-विभाग की रिपोर्ट।

भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के डाइरेक्टर-जनरल, सर जोन मार्शल, की वार्षिक रिपोर्ट के पहले भाग की एक कापी गवर्नमेंट ने कृपा करके सरस्वती के लिए भी भेजी है। यह रिपोर्ट १९१२—१३ की है। इसमें किसी और का कोई लेख नहीं। सारी रिपोर्ट डाइरेक्टर जनरल ही की ओर से है। इसमें साल भर के काम का विवरण है। अनेक चित्रों से रिपोर्ट का महत्त्व बढ़ गया है। इसे देखने से जान पड़ता है कि यह महकमा कितना और कैसा काम कर रहा है। भारत के प्राचीन इतिहास आदि की जितनी रक्षा इसकी बदौलत हो रही है उतनी और किसी तरह नहीं। जिन इमारतों, जिन पुस्तकों, जिन सिक्कों, जिन वस्तुओं और जिन राजाओं के नाम तक का पता न था—जिनके अस्तित्व तक का ज्ञान किसी को न था—उनका पताही इस महकमे ने नहीं लगाया, उनकी रक्षा का प्रबन्ध भी इसने कर दिया है, उनके दर्शन भी इसने करा दिये हैं, और उनसे जाने कि ऐतिहासिक तत्त्वों का उद्‌घाटन भी इसने कर दिया है और बराबर करता जा रहा है। यदि यह महकमा न होता तो हमारे पूर्वजों के सैकड़ों स्मृति-चिह्न पृथ्वी के पेट में ही पड़े रहते। अतएव भारतवासियों को इस महकमे का, और उसकी प्रतिष्ठा करने वाले ब्रिटिश राज्य का, कृतज्ञ होना चाहिए।

इस रिपोर्ट में और और बातों के सिवा तक्षशिला, पाटलिपुत्र और सांची की खुदाई के काम का विस्तृत वर्णन है। पाटलिपुत्र में जो खुदाई हो रही है वह श्रीयुत रतन ताता की उदारता का फल है। उसका, वर्णन सरस्वती में हो चुका है। सांची के स्तूपों की खुदाई का काम भूपाल बेगम साहिबा के खर्च से हुआ है। यह जगह भूपाल रियासत में, भिलसा के पास, है। स्वयं डाइरेक्टर साहब ने वहां दो-तीन महीने रह कर अपनी ही निगरानी में खुदाई का काम कराया है। सांची के स्तूप बहुत पुराने हैं। ये सन् ईसवी से भी बहुत पहले के हैं। उन पर लेख और पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। पर उन लेखों और पुस्तकों में बहुत बातें भ्रमपूर्ण लिख गई हैं। वर्तमान खुदाई से उनमें से कितने ही भ्रमों का निराकरण हो गया और कितनी ही नई नई बातें मालूम हुई। इन स्तूपों में और उनके आस पास, ब्राह्मी लिपि में, अब तक ४८० लेख मिल चुके थे। अब के ३०० से भी अधिक लेख और मिले। ये सब लेख अँगरेजी और फ्रेंच भाषाओं में पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायँगे। पुस्तक में कोई १०० फोटो भी रहेंगे। जिन इमारतों से इनका सम्बन्ध है उनका वर्णन तथा और भी अनेक ऐतिहासिक तत्त्वों का विवरण इसमें रहेगा। यह पुस्तक बड़े ही महत्त्व की होगी। इसके सम्पादन और प्रकाशन में बहुत रुपया खर्च होगा। यह सब भूपाल-दरबार देगा।

जिस साल की यह रिपोर्ट है उस साल सबसे अधिक महत्त्व का काम तक्षशिला के खँडहरों की खुदाई का हुआ। इस खुदाई के विषय में भी एक लेख, कुछ समय पूर्व, सरस्वती में निकल चुका है। अतएव उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं। तक्षशिला बहुत पुरानी जगह है। सिकन्दर की चढ़ाई के पहले उसकी क्या दशा थी और

[उ]सके राज्य में शामिल था, अथवा वहाँ कौन कौन राजे हुए —इसका कुछ पता नहीं। इस विषय में सिर्फ़ इतनाही [कह]ा जा सकता है कि तक्षशिला में उस समय एक बहुत बड़ा [वि]श्वविद्यालय था और वह कला-कौशल, विज्ञान तथा विद्या [के] कारण बहुत प्रसिद्ध था। ईसा के ३२६ वर्ष पहले वह [सिक]न्दर के अधिकार में आया। इसके चार वर्ष बाद चन्द्र[गुप्त] मौर्य्य ने उसे सिकन्दर के अधिकारियों से छीन लिया। [अश]ोक के समय तक उस पर मौर्य्य वंश की सत्ता रही। [तद]नन्तर, बाक्ट्रिया के राजा ऐन्टिओकस के दामाद डेमिट्रि[य]स ने उस पर दख़ल कर लिया। उसने और उसके वंशजों [ने क]ोई डेढ़ दो सौ वर्ष तक तक्षशिला में राज्य किया। इसके [बा]द शक और पह्लव-राजाओं का राज्य हुआ। उनके बाद, [अर्था]त् ६० ईसवी के लगभग, कनिष्क आदि कुशान-वंशी [राज]ाओं ने तक्षशिला पर शासन किया। इस प्रकार कोई [८०]० वर्ष के भीतर, भिन्न भिन्न पाँच राज्यों की सत्ता तक्ष[शि]ला पर रही। चौथी शताब्दी में, जब कुशान-वंशी राजाओं [के प्र]भुत्व का ह्रास और गुप्तवंशी राजाओं के प्रभुत्व का विकास [हुआ] तब से, तक्षशिला की अवनति का आरम्भ हुआ। [सा]तवीं सदी में जब चीन का परिव्राजक ह्वेन-सांग वहां [आ]या तब वहां की बड़ी बड़ी इमारतें उजाड़ हो गई थीं और [वह] काश्मीर के अधिपति का रक्षित राज्य हो गया था।

तक्षशिला के खँडहर और टीले रावलपिण्डी से २० मील [हैं]। अपनी उन्नति के समय वहाँ तीन नगर थे। वे एक दूसरे [से प्र]ायः मिले हुए थे। वे कोई १२ वर्ग मील में थे। खोदने [से व]हाँ न मालूम कितने स्तूपों और मन्दिरों का पता चला [है]। अनेक सिक्के, मूर्त्तियाँ, रत्न, चाँदी-सोने के आभूषण [आ]दि भी प्राप्त हुए हैं। सिक्कों की गिनती ६०० के ऊपर [है]। ये सब बहुत पुराने सिक्के हैं—कुशान-वंशी राजाओं के [चला]ये हुए हैं। जिनको इस विषय में अधिक जानने की इच्छा [हो] वे इस रिपोर्ट को पढ़ें। उसका मूल्य केवल २) है।

९—आस्ट्रिया की "स्कोडा" नामक तोप।

जर्मनी की तोपों की बड़ी प्रशंसा है। उनका गोला बीस [बी]स मील दूर जाता है। जर्मनी ने अपने मोरचों से फ्रान्स [के] डनकर्क नामक नगर पर जो गोलाबारी दो तीन दफ़े की [है] वह ऐसी ही तोपों से की है। लोगों का ख़याल था कि बेलजियम के लीज, नामूर और ऐंटवर्प आदि बड़े ही मज़बूत क़िलों को जर्मनी ने इन्हीं तोपों से तोड़ा था। पर यह बात अब ग़लत साबित हुई है। विलायत के अख़बारों ने इस बात को सप्रमाण सिद्ध किया है कि इन क़िलों को तोड़नेवाली तोपें जर्मनी की बनी हुई न थीं। वे आस्ट्रिया की थीं। और भी कई पत्रों ने यही बात लिखी है। आस्ट्रिया में एक जगह पिलस्यन है। उसी के निकट तोप-बन्दूक़ आदि का एक कारख़ाना है। उसका नाम है—"स्कोडा वर्क्स"। इसी कारख़ाने में बनी हुई तोपों से पूर्वोक्त क़िले तोड़े गये थे। १९०७ में इस तरह की तोपें बनाने का विचार आस्ट्रिया वालों के मन में उत्पन्न हुआ। तदनुसार बड़े धड़ाके से काम शुरू किया गया और १९१० के जुलाई महीने में पहली "स्कोडा" तोप बन कर तैयार हुई। परीक्षा करने पर वह सब बातों में ठीक निकली। तबसे आज तक और भी अनेक तोपें तैयार हो चुकी हैं। इस तोप के मुँह का व्यास १२ इंच है। यह कोई ११ मन वज़नी गोला खाती है। इसका गोला एक सेकंड में ३७२ गज़ के हिसाब से उड़ता है। इससे एक मिनट में एक गोला दाग़ा जाता है। इसके गोले में यह विशेषता है कि क़िले की जिस दीवार या बुर्ज पर यह मारा जाता है उसमें घुस जाने के बाद यह फटता है। फटने ही दीवार या बुर्ज के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। ऐंटवर्प का क़िला बहुत ही मज़बूत समझा जाता था। पर इस तोप की कुछ ही बाढ़ों ने उसे तोड़-फोड़ डाला। सात मील दूर से ऐंटवर्प के एक गुम्मज़ पर चलाया गया इसका एक गोला ठीक निशाने पर जा कर लगा और उसके भीतर धँस गया। यह तोप इस तरह बनाई गई है कि इसके टुकड़े टुकड़े अलग किये जा सकते हैं और सिर्फ़ चालीस मिनट में फिर, जहां इच्छा हो, जोड़ दिये जा सकते हैं। तीन मोटरकारों पर लाद कर यह एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाई जाती है। १०० घोड़े की ताक़त का एंजिन इन मोटरकारों को खींचता है और १२ मील फ़ी घंटे के हिसाब से चलता है। इन तोपों के गोले भी आस्ट्रिया ही में बनते हैं। अमेरिका के "सायंटिफ़िक अमेरिकन" नामक पत्र ने लिखा है कि कुछ "स्कोडा" तोपें १६ इंच व्यास के मुँह की भी बनाई गई हैं। जर्मन और ब्रिटिश सेना में भी भीषण क़ालमर्दिनी तोपों की कमी नहीं।

१०—शङ्कराचार्य्य का समय ।

जुलाई मास की सरस्वती में महाशय रामकर्ण का जो लेख श्रीशङ्कराचार्य्य के विषय में निकला है उसमें उक्त लेखक ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की भूल सिद्ध की है। उन्होंने यह दिखाया है कि शङ्कराचार्य्य का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। लेकिन यह लेख ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रामाणिक है। इसकी प्रमाणता के लिए कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का लेख ठीक है, केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शृङ्गेरी मठ में रक्खे हुए ताम्रपत्र के अनुसार २२०० वर्ष लिखा है। संस्कृत-चन्द्रिका और वेदप्रकाश ने भी यही समय माना है। वेदप्रकाश के लेख का उतना अंश नीचे दिया जाता है:—

"जिनका समय सत्यार्थप्रकाश में २२०० वर्ष के लगभग स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने लिखा है, जिसको ३० वर्ष हुए, उसका ब्योरा हम संस्कृत-चन्द्रिका से लेकर इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिनके विषय में नवीन लोग जो योरप के विद्वानों का मत लेते हैं, जो केवल सातवीं ईसवी सदी (शताब्दी) में होने से १३०० वर्ष से भी कम आता है। हमको प्राचीनों और नवीन विद्वानों के मत में किसी का पक्षपात नहीं है परन्तु प्रमाणों के अनुसार जो सिद्ध हो उसी का पक्ष है। ईसवी दसवीं सदी में शङ्कराचार्य्य की शिष्यपरम्परा में नृसिंहाश्रमजी हुए हैं जो द्वारकापुरी के शारदा-पीठ पर विराजमान हुए, जिनको गुर्जरदेशाधिपति श्रीमान् राजा सर्वजिद्वर्मा ने ताम्रपत्र समर्पण किया था। यह ताम्रपत्र अब तक द्वारकापुरी में वर्तमान है। शङ्कराचार्य्यजी ने जिन सुरेश्वराचार्य्य को द्वारका की गद्दी पर स्थापित किया था तब से नृसिंहाश्रमजी तक २८ आचार्यों के काल का क्रम यह है—

नाम	युधिष्ठिर-सवत्		अनुशासनकाल
१—श्रीसुरेश्वराचार्य्य	२६४९ से २६९१	तक	४२ वर्ष
२—श्रीचित्सुखाचार्य्य	२६९१ से २७१५	,,	२४ ,,
३—श्रीसर्वज्ञानाचार्य्य	२७१५ से २७७४	,,	५९ ,,
४—श्रीब्रह्मानन्दतीर्थ	२७७४ से २८२३	,,	४९ ,,
५—श्रीस्वरूपाभिज्ञाचार्य्य	२८२३ से २८९०	,,	६७ ,,
६—श्रीमङ्गलमूर्त्याचार्य्य	२८९० से २९४२	,,	५२ ,,
७—श्रीभास्कराचार्य्य	२९४२ से २९६५	,,	२३ ,,
८—श्रीप्रज्ञानाचार्य्य	२९६५ से ३००८	,,	४३ ,,
९—श्रीब्रह्मज्योत्स्नाचार्य्य	३००८ से ३०४०	,,	३२ ,,
१०—श्रीआनन्दाविर्भावाचार्य्य	३०४० युधिष्ठिर-सवत् से ९ विक्रमी तक		११ ,,
११—श्रीकलानिधितीर्थ	९ से ८२	,,	७३ ,,
१२—श्रीचिद्विलासाचार्य्य	८२ से ११९	,,	३७ ,,
१३—श्रीविभूत्यानन्दाचार्य्य	११९ से ११३	,,	११ ,,
१४—श्रीनृसिंहाश्रमाचार्य्य	१११ से १०१	,,	[illegible]
१५—श्रीवरतन्तुपाद	२०१ से ११९	,,	[illegible]
१६—श्रीयोगारूढाचार्य्य	११९ से ३६०	,,	११
१७—श्रीविजयडिण्डिमाचार्य्य	३६० से ३६१	,,	[illegible]
१८—श्रीविद्यातीर्थ	३६१ से ४१०	,,	[illegible]
१९—श्रीचिच्छक्तिदेशिक	४१० से ४८१	,,	[illegible]
२०—श्रीविज्ञानेश्वरतीर्थ	४८१ से ५१०	,,	[illegible]
२१—श्रीऋतम्भराचार्य्य	५१० से ६०८	,,	९८ ,,
२२—श्रीअमरेश्वरतीर्थ	६०८ से ६६९	,,	६१ ,,
२३—श्रीसारानन्ददेशिक	६६९ से ७३१	,,	६२ ,,
२४—श्रीसमाधिरसिकाचार्य्य	७३१ से ७९९	,,	६८ ,,
२५—श्रीनारायणाश्रम	७९९ से ८३६	,,	३७ ,,
२६—श्रीवैकुण्ठाश्रम	८३६ से ८८१	,,	४५ ,,
२७—श्रीत्रिविक्रमाश्रम	८८१ से ९११	,,	३० ,,
२८—श्रीनृसिंहाश्रम	९११ से ९६०	,,	४९ ,,
			जोड़ ३३११

सवत् ९६० विक्रमीय से आगे अति प्रसिद्ध समय के आचार्यों की परम्परा लिखने से छोड़ दी गई है। इस सूची में जो अनुशासन के वर्ष हैं उनमें महीने नहीं जोड़े हैं। महीने जोड़ने से कुछ न्यूनाधिक समय आ सकता है। गद्दी पधारने और शरीर त्याग के सवत् के साथ महीने का भी लेख है जो हमने यहाँ उद्धृत नहीं किया।

राजा सुधन्वा ने जो आदि-शङ्कराचार्य्य को ताम्रपत्र अर्पण किया था उसमें युधिष्ठिर-सवत् २६६३ लिखा है।

इन २८ आचार्यों में सोलहवें आचार्य्य श्रीयोगारूढाचार्य्य की आयु बहुत बड़ी हुई, क्योंकि १११ वर्ष तो उनका गद्दी पधारने से लगा समय है। यदि २४ वर्ष भी पहले लगावें तो १३५ वर्ष होते हैं जिनसे उनके ब्रह्मचर्य का योगारूढाचार्य्य का माहात्म्य माना जाता है। वास्तव में योगसाधन से ही बढ़ती है।

इस प्रकार सतां हि सन्देहपदेषु० इत्यादि कालिदास-कृत श्लोक के श्रीकुमारिल-भट्ट प्रणीत तन्त्रवार्तिक-ग्रन्थ में वर्तमान होने से और कुमारिल भट्ट के शङ्कराचार्य्य समकालीन होने से और शङ्कराचार्य्य के २६३१ युधिष्ठिर-सवत् में जन्म लेने से स्पष्ट है कि कालिदास, कुमारिल, शङ्कर इन तीनों का समय २३०८ वर्ष लगभग है। जो लोग ईसवी सन् से केवल १५०० वर्ष पूर्व युधिष्ठिर-सवत् और कलियुगारम्भ मान कर कलियुग को १८०० वर्ष मात्र गत बताते हैं वे सब इन प्रमाणों से भले प्रकार निरस्त हैं। कलियुग को वास्तव में ५००० वर्ष से ऊपर व्यतीत हो चुका है।

गोवर्धन-पीठ पर आज तक १४१ आचार्य्य विराजमान हुए। इनके १७ वर्ष प्रति आचार्य्य के समय का मध्य भाग (औसत) मानने से भी २३०० वर्ष के ऊपर समय आता है"।

अतः हमारी सम्मति में भी शङ्कराचा[illegible] वर्ष हो गये, क्योंकि नृसिंहाश्रम का [illegible]

क्रम-संवत् है और आज कल १९७२ संवत् है। अतः
ज से १०१२ वर्ष नृसिंहाश्रम को हुए हो गये। उसमे
ई आचार्यों का अनुशासनकाल १३३७ वर्ष था। अतः
व मिला कर २३०० वर्ष हो गये। इस प्रकार ऐतिहासिक
ष्टि से शङ्कराचार्य्य ईसवी के ३०० वर्ष के पूर्व विद्यमान थे।

दिवाकर शुक्ल (गुरुकुल, वृन्दावन)

११—केर हार्डी साहब की मृत्यु।

केर हार्डी साहब ग़रीब के लड़के थे। १७ वर्ष तक
होंने मज़दूरी की। सात ही आठ वर्ष की उम्र में वे कोयले
खान में भरती हुए। वहाँ वे मज़दूरी भी करते थे और
ने लिखने की चेष्टा भी करते थे। कोयले और लकड़ी के
ड़ों से उन्होंने ज़मीन पर अँगरेज़ी वर्णमाला और अँगरेज़ी
दमे लिखना सीखा। धीरे धीरे वे ख़ूब लिख पढ़ लेने
। खान के काम में भी उन्होंने अच्छी उन्नति की।
का पद और वेतन दोनों बढ़ते गये। २४ वर्ष की उम्र
उन्होंने वहाँ काम किया। मज़दूर उन्हें अपना नेता
ने लगे। फल यह हुआ कि वे मज़दूरों की तरफ़ से
लेंयामेंट के मेम्बर हो गये। १२ वर्ष तक उन्होंने हाउस
ऑफ़ कामन्स में मज़दूरों के प्रतिनिधि बन कर काम किया।
समय तक उन्होंने एक पत्र का सम्पादन कार्य्य भी
या। लेबर-लीडर नाम का एक पत्र भी उन्होंने निकाला।
ने पार्लियामेंट में भारत का सदा पक्ष लिया। भारत-
सियों के साथ उनकी इतनी सहानुभूति थी कि १९००
र्ष में वे ख़ुद भारतवर्ष आये। यहाँ घूम घूम कर उन्होंने
की दुरवस्था स्वयं देखी और भारतवासियों के दुःख-दर्द की
था स्वयं सुनी। इस देश की उन्नति के लिए आपने सदा
ह बहुत प्रयत्न किया। एतदर्थ यह देश उनका सदा
णी रहेगा। गत मास, ६० वर्ष की उम्र में, आपका
हान्त हुआ।

पुस्तक-परीक्षा।

१—श्रीसत्यार्थविवेक—इस बृहत पुस्तक की रचना
स्वामी [illegible] ने की है। इसे प्रकाशित किया है—"भारत-
धर्म-महामण्डल के प्रधान कार्य्यालय के [illegible]
विभाग"—ने। इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या सात सौ
के ऊपर और मूल्य १॥) है। जिल्द बँधी हुई है। छपाई
नवलकिशोर प्रेस की है और साधारण है। काग़ज़ भी
साधारण है। बनारस में भारतधर्म्म महामण्डल का निज का
छापाख़ाना है। मालूम नहीं, फिर क्यों यह पुस्तक और
छापेख़ाने में छपाई गई और मण्डल का रुपया मण्डल ही
में न रख कर अन्यत्र ख़र्च किया गया। इसके टाइटिल पेज
पर लिखा है कि इसका एक "राज-संस्करण" भी है,
जिसका मूल्य ४) है। यह संस्करण शायद "स्वाधीन नर-
पतियों" और महामण्डल के नामी नामी पृष्ठ-पोषकों के
लिए है। हिन्दी के टुटपुँजिये समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं
के लिए सस्ते, डेढ़ रुपये वाले, संस्करण की ही कापी उनकी
स्थिति के अनुकूल समझी गई है; काम चाहे उनके समा-
लोचना-रूप विज्ञापन से सौ रुपये का भले ही निकल जाय।
महा-मण्डल में महती उदारता होनी चाहिए। पर उसकी
छोटी छोटी बातें भी बहुधा खटकने वाली होती हैं।
पुस्तक भेजने वाले महाशय ने पुस्तक के साथ एक लम्बा
चौड़ा विज्ञापन भेजा है और अपने पत्र में हमारा ध्यान
उसकी ओर दिलाया है। यह हमारे "सुभीते" के लिए
है—शायद इस लिए कि हमें पुस्तक देखने का कष्ट न
उठाना पड़े, विज्ञापन में की गई प्रशंसा की नक़ल हम कर
दें और "सर्व-साधारण इसे (पुस्तक को) ख़रीद कर लाभ
उठा सकें"। सर्व-साधारण को लाभ हो जाय, महा-मण्डल
को लाभ हो जाय, पर समालोचक पत्र या पत्रिका को लाभ
न होने पावे! विज्ञापन न छपाया जाय, विज्ञापन का काम
समालोचना से निकल जाय, पर मूल्य हो सिर्फ़ डेढ़ रुपये
मूल्य की एक कापी!!! अस्तु।

पुस्तकारम्भ में [illegible] श्रीबाबू [illegible] मिश्र का
लिखा हुआ चार पृष्ठों का एक [illegible] अँगरेज़ी में है। इसमें
[illegible], धर्ममहामण्डल के [illegible] श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी
की और प्रस्तुत पुस्तक की प्रशंसा है। इसके बाद ग्रन्थ-
कार की भूमिका है। भूमिका में लिखा है कि इस पुस्तक
के दो खण्ड [illegible] और [illegible] होंगे। समालोच्य पुस्तक
प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में [illegible] अनुवाक हैं।
उनमें जिन विषयों का विवेचन है उनकी तालिका [illegible]
[illegible] है—

१—(क) धर्म्म
(ख) दान-धर्म्म
(ग) तपो-धर्म्म
(घ) कर्म्म-यज्ञ
(ङ) उपासना-यज्ञ
(च) ज्ञान-यज्ञ
(छ) महा-यज्ञ

२—(क) वेद
(ख) वेदाङ्ग
(ग) उपाङ्ग अर्थात् दर्शन-शास्त्र
(घ) स्मृति-शास्त्र
(ङ) पुराण-शास्त्र
(च) तन्त्र-शास्त्र
(छ) उपवेद
(ज) ऋषि और पुस्तक

३—(क) साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म
(ख) वर्ण-धर्म्म
(ग) आश्रम-धर्म्म
(घ) पुरुष धर्म्म से नारी-धर्म्म की विशेषता

इस प्रकार यह पुस्तक ३ समुल्लासों और १६ अध्यायों में विभक्त है। इसमें जिन बातों का वर्णन है वे सभी सनातनधर्म्मावलम्बियों के जानने योग्य हैं। जिन ग्रन्थों के आधार पर ये लिखी गई हैं वे सभी को सुलभ नहीं। सुलभ भी हों तो उनका तत्त्व समझना केवल कुछ ही लोगों के वश की बात है। अतएव इस पुस्तक के लाभदायक होने में सन्देह नहीं। इसकी रचना में रचनाकार ने अपनी बुद्धि और अपने निज के विचारों से भी काम लिया है। इस कारण पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। जो बातें साधारण आदमियों की समझ में अच्छी तरह नहीं आ सकतीं वे पुस्तक-प्रणेता के विवेचन से ख़ूब स्पष्ट हो गई हैं। जगह जगह संस्कृत-ग्रन्थों के प्रमाण भी उद्धृत कर दिये गये हैं। इससे लेखक महाशय का कथन पुष्ट हो गया है। यह बात सनातन-धर्म्मावलम्बी सरल-हृदय सज्जनों की श्रद्धा का कारण भी हो सकती है। पुस्तक की भाषा न बहुत सरल और न बहुत क्लिष्ट है।

समष्टि-रूप से यह पुस्तक अच्छी है। जिन लोगों के लिए इसकी रचना है उन्हें, उनके काम की बहुत बातें इसमें हैं। जो नहीं हैं वे अगले खण्डों में बहुत करके आ जायँगी। भिन्न भिन्न ग्रन्थों से सनातन-धर्म्म की बिखरी हुई बातों का सङ्कलन करके और उन्हें अच्छे ढङ्ग से लिख कर पुस्तककार स्वामीजी ने बड़ा काम किया है। अतएव सनातन-धर्म्म के अनुयायियों के आप अवश्य ही कृतज्ञता-भाज[illegible] हमारी मन्द बुद्धि में धर्म्म की भित्ति श्रद्धा है। [illegible]

में विज्ञान ढूँढ़ना सरासर भूल है। वैज्ञानिक[illegible] का आविष्कार देव-समाज के अग्निहोत्रीजी को ही [illegible] हो। श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से तो धर्म्म के [illegible] अङ्ग और सभी सिद्धान्त मान्य हो सकते हैं। प[illegible] बीसवीं शताब्दी में सभी श्रद्धालु नहीं। अधिकांश शि[illegible] मनुष्य बुद्धि और विवेक को ताक पर नहीं रख सकते। [illegible] लोगों से स्वामी दयानन्दजी का यह कहना कि—

"पुराण वेद के व्याख्या-ग्रन्थ हैं। अतः सर्वथा [illegible] मूल हैं"—

इन्हें कहाँ तक मान्य होगा, हम नहीं कह स[illegible] स्वामीजी ने ऐसी ऐसी सैकड़ों बातें इस पुस्तक में कही [illegible] ये तर्क और विचार के आगे नहीं ठहर सकतीं। स्थ[illegible] हमें उनमें से दस पाँच का भी उल्लेख करने के [illegible] अवकाश नहीं। सबसे अधिक आश्चर्य तो हमें स्वामीजी[illegible] उस विवेचन से हुआ जिसमें आपने वेदों के आविर्भाव [illegible] उनकी अपौरुषेयता पर विचार किया है। सुनते हैं, स्वाम[illegible] अच्छे वक्ता हैं। पर इस सम्बन्ध में आपकी नि[illegible] उक्तियाँ पढ़ कर विश्वास नहीं होता कि वे श्रोताओं [illegible] प्रमाण-पुष्ट उक्तियों के द्वारा हँसाते, रुलाते या उन्हें [illegible] करते होंगे। हृदय में भावावेश उत्पन्न करके लोगों को [illegible] करना और उन्हें अपनी अभीष्ट दिशा की ओर झुका[illegible] जाना एक बात है और गोखले की तरह न काटी जाने [illegible] युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा उन्हें अपने पक्ष का पो[illegible] बना लेना दूसरी बात है। आपके कथन में, कई जगह, [illegible] दूसरी बात की हमें कमी मिली—

"न हि सत्यात्परो धर्म्मः"

के भरोसे ही हमने अपने मन की यह सच बात लि[illegible] का साहस किया है। आशा है, इस स्पष्टोक्ति के लिए स्[illegible] दयानन्दजी हमें क्षमा करेंगे।

२—तीन अच्छी पुस्तकें—यह देख कर सन्तोष [illegible] सुख होता है कि हिन्दी-साहित्य की वृद्धि अब दिन पर दि[illegible] अधिकाधिक हो रही है। दस वर्ष पहले, [illegible] में [illegible] [illegible] पुस्त[illegible] [illegible] पर अब जहाँ [illegible] पुस्तकें निकलती हैं [illegible] हैं [illegible] आज ही [illegible] [illegible] इस [illegible]

हैं। इनमें से पहली का नाम है—भारतीय शासन-पद्धति, प्रथम भाग। इसकी पृष्ठ-संख्या ११० और मूल्य प्राठ आने है। छपाई, साफ़ सुथरी और कागज़ अच्छा है। इसे पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अँगरेज़ी की कई पुस्तकों के आधार पर लिखा है। अँगरेज़ी में इस विषय की अनेक पुस्तकें हैं। इस प्रान्त के भी एक सज्जन ने इस विषय की एक पुस्तक लिखी है। उसे प्रकाशित हुए कई साल हुए। पर हिन्दी में एक भी पुस्तक इस विषय की अब तक न थी। इस अभाव की अब अंशतः पूर्ति हो गई; अगले भाग निकलने पर पूर्णतः हो जायगी। "भारत का शासन किस रीति से होता है और किस अधिकारी को कितने और कैसे अधिकार प्राप्त हैं, यही इसमें बताया गया है"। पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है— उपोद्घात, इँगलेंड में भारत की शासन-व्यवस्था, भारत सरकार, प्रादेशिक सरकारें, ज़िले की शासन-व्यवस्था, न्यायालयों के कार्य्य और अधिकार, पुलिस और जेल। इस अध्याय-सूची से ही इसकी उपयोगिता का अनुमान अच्छी तरह किया जा सकता है। समाचारपत्रों के सम्पादक, लेखक और पाठक ही नहीं, विद्यार्थी तथा अन्य लोग भी इससे बहुत सी ज्ञातव्य बातें जान सकते हैं। इसके मिलने का पता—पण्डित प्रताप-नारायण वाजपेयी, ३३, धीनाथदास लेन, कलकत्ता। दूसरी पुस्तक का नाम है—भारतीय आत्मत्याग। इसकी पृष्ठ-संख्या १२१ और मूल्य १० आने है। छपाई और कागज़ दोनों चीज़ें, अच्छी हैं। इसे रियासत करौली के श्रीयुत कुँवर नारायणसिंह ने लिखा है। इन्हीं को लिखने से यह मिल सकती है। अँगरेज़ी में एक पुस्तक—A Book of Golden Deeds नाम की है। उसी को आदर्श मान कर इसकी रचना की गई है। इसमें हम्मीर, चूड़ा जी, हाड़ा कुम्भ, बाजी प्रभु देशपाण्डे और बालाजी पन्त आदि बीस पच्चीस उदाराशय, स्वामिभक्त, देश-भक्त, वीरशिरोमणि पुरुषों के आत्मत्याग का वर्णन है। पन्ना धाय और कृष्णाकुमारी का भी वर्णन है। विशेष कर के राजपूताने के इतिहास से ही इसकी सामग्री ली गई है। बाबू मैथिलीशरण गुप्त आदि की लिखी हुई कवितायें भी यत्र तत्र इसमें उद्धृत हैं। बड़े महत्त्व की पुस्तक है। अपने देश के आत्मत्यागी पुरुषों के अनेक जीवनचरित अन्यदेशों में लिखे गये हैं। वहाँ ऐसे पुरुषों का सदा नाम-स्मरण किया जाता है और उनके चरित बड़े प्रेम से पढ़े जाते हैं। कुँवरजी की कृपा से एक ऐसी पुस्तक हिन्दी में भी हो गई। तीसरी पुस्तक है—भारतीय नीति-कथा इसकी पृष्ठ-संख्या १७० और मूल्य १२ आने है। पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी ने इसे लिखा है। मिलने का पता—हिन्दी-हितैषी कार्य्यालय, देवरी, सागर। महाभारत में आदि-पर्व से लेकर उद्योग पर्व तक जितनी सुनीतिसूचक कथायें हैं उन सब का सारांश इसमें है। इन कथाओं से अनेक प्रकार की शिक्षायें मिलती हैं। इनमें कृष्ण, भीष्म, अर्जुन, कर्ण, द्रोण, कुन्ती, द्रौपदी, युधिष्ठिर, विदुर आदि का बहुत कुछ हाल भी है और उनके गुणों का उल्लेख भी। अतएव यह पुस्तक लड़कों, लड़कियों और स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगिनी है।



३—वेदान्तसमुच्चयः। इसका आकार मँझोला और पृष्ठ संख्या तीन सौ के ऊपर है। जिल्द बँधी हुई है। छपाई निर्णयसागर प्रेस की है; वह बहुत शुद्ध, सुन्दर और साफ़ है। टाइप बड़ा और कागज़ अच्छा है। मूल्य २॥) है। मिलने का पता—श्रीसरस्वती डीपो, कवेश्वर की पोल, सामे वाडीया, अहमदाबाद। इस पुस्तक को देख कर और यत्र तत्र इसे पढ़ कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। इस सङ्ग्रह के सङ्कलनकर्ता महर्षि हरेराम शर्म्मा को अनेक साधुवाद। वेदान्ती विद्वानों और वेदान्त-प्रेमियों के लिए आपने वेदान्त-विषय के अनेक संस्कृत-स्तोत्रों और ग्रन्थों का सङ्ग्रह इसमें प्रकाशित किया है। इसका नाम है यद्यपि वेदान्त-समुच्चय तथापि योग और भक्ति-सम्बन्धी छोटे छोटे स्तोत्र-ग्रन्थ भी इसमें शामिल कर दिये गये हैं। इसमें लिखा है कि यह सङ्ग्रह श्रीमदादिशङ्कराचार्य्य के ग्रन्थों ही का सङ्ग्रह है। पर इसमें उन रचनाओं के सिवा जो शङ्कराचार्य्य के नाम से प्रसिद्ध हैं, औरों की रचनायें भी सम्मिलित हैं। उदाहरणार्थ—श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र भी इसमें सङ्गृहीत हैं। त्रोटकाचार्य-प्रणीत श्रुतिसार-समुद्धरणम् नाम का स्तोत्र भी रख दिया गया है। इसके सिवा यह भी सम्भव है कि जो स्तोत्र शङ्कराचार्य्य के नाम से इसमें छपे हैं उनमें से भी कितने ही स्तोत्र आदि शङ्कराचार्य्य के रचे हुए न हों। पर इससे कुछ भी हानि नहीं। महर्षि जी ने इस प्रकार के सभी उत्तमोत्तम स्तोत्रों और पुस्तकों

में एकत्र छपा कर बड़ा काम किया। शङ्कराचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ उपदेशसाहस्री, शतश्लोकी, विवेकचूड़ामणि आदि ग्रन्थ सब इसमें आ गये हैं। शङ्कराचार्य की रचना में एक अलौकिक रस है। उनकी भाषा बहुत ललित और सरल है। वेदान्त सदृश क्लिष्ट विषय को उन्होंने विवेकचूड़ामणि में ऐसे सरस और सरल संस्कृत पद्यों में वर्णन किया है कि थोड़ी संस्कृत जानने वाले भी उनका भाव समझ सकते हैं। सौन्दर्य्यलहरी और आनन्दलहरी आदि के पाठ से तो वही आनन्द मिलता है जो महाकवियों के काव्यों से मिलता है। इस सङ्ग्रह में सब मिला कर चालीस प्रबन्ध हैं। यह बहुत ही उपयोगी सङ्ग्रह है—आदरणीय है, अवलोकनीय है, सङ्ग्रहणीय है।

☼

४—राणा जङ्गबहादुर। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा जो "मनोरञ्जन पुस्तकमाला" निकाल रही है उसकी यह सातवीं पुस्तक है। इसकी पृष्ठ-संख्या २७० और मूल्य १ रुपया है। पुस्तक पर पतली जिल्द है। छपाई साफ़ सुथरी और काग़ज़ अच्छा है। इसके लेखक बाबू जगन्मोहन वर्म्मा हैं। इसमें नेपाल के प्रधान अमात्य जनरल जङ्गबहादुर का जीवनचरित है। यह चरित अब तक अँगरेज़ी जानने वालों ही के लिए सुलभ था। अब हिन्दी के सौभाग्य और वर्म्मा महाशय की कृपा से केवल हिन्दी जानने वालों के लिए भी सुलभ हो गया। चरित सरल भाषा में योग्यतापूर्वक लिखा गया है। जङ्गबहादुर बड़े नामी और बड़े वीर पुरुष थे। उनके वीरोचित कार्यों का इसमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। और और बातों के सिवा नेपाल के षट्चक्र, तिब्बत पर चढ़ाई, १८५७ के बलवे में अँगरेज़ों की सहायता, जङ्गबहादुर की योरप-यात्रा, उनकी राजनीतिज्ञता, उनका सुप्रबन्ध—आदि विषयों का भी वर्णन इस पुस्तक में है। इससे उस समय की अनेक ऐतिहासिक बातों का भी ज्ञान हो सकता है। बड़ी अच्छी—बड़े महत्त्व की—पुस्तक है। ख़ूब मनोरञ्जक भी है। इसकी भूमिका के आरम्भ में जो श्लोक है उसका चौथा चरण—

"महाजनो येन गता स पंथा"

ठीक नहीं। वह—महाजनो येन गतः स पन्थाः—होना चाहिए। यह भूल प्रूफ़ देखते समय शायद दृष्टि-दोष से रह गई है।

५—मारवाड़ी-सहायक-समिति का विवर… कलकत्ते में इस नाम की जो सभा दो ढाई वर्ष से स… है उसका यह दूसरा वार्षिक विवरण है। समाचारपत्रों… प्रकाशित रिपोर्टों और इस विवरण से प्रकट होता है कि… समिति अपने नाम के अनुसार ही काम कर रही है। इ… प्रधान उद्देश लोक-सेवा है। हरद्वार और कुम्भ के मेलों… समय इसने बहुत अच्छा काम किया। हज़ारों यात्रियों… इसने सहायता दी। और भी अनेक मेले-ठेलों में इ… प्रतिनिधियों ने लोगों को सहायता पहुँचाई। विद्या-प्र… और हिन्दी के ग्रन्थ-साहित्य की वृद्धि करना भी इ… उद्देश है। इस उद्देश की सिद्धि के लिए भी इसने यथा… शक्ति भर काम किया। एक और भी बड़ा लाभदायक… यह कर रही है। इसने कलकत्ते में एक औषधालय खो… रक्खा है। उसमें सर्व-साधारण को मुफ़्त दवा मिलती है… जिस साल की यह रिपोर्ट है उस साल इस औषधालय… कोई सत्तर अस्सी हज़ार आदमियों ने फ़ायदा उठाया… अकेले इस औषधालय के लिए इसे कोई पांच सौ ह… महीना ख़र्च करना पड़ता है। इसका सारा काम चन्दे… चलता है। ऐसी उपयोगिनी और लोकसेवारत स… को धन से सहायता देना सभी समर्थ भारतवासियों… कर्तव्य है।

☼

६—पञ्चौली पुस्तकावली। भरतपुर के स्कू… पण्डित गङ्गाशङ्कर पञ्चौली हेड मास्टर हैं। आपने अपने… से एक पुस्तक-मालिका निकालने का आरम्भ किया है… इस मालिका की दो पुस्तकें आपने हमें भेजी हैं। प… पुस्तक का नाम है—कृषि-विद्या, भाग ४। इसमें दू… सम्बन्ध रखने वाली वैज्ञानिक, व्यावहारिक और… बातें हैं। दूध का व्यवहार यद्यपि सभी करते हैं; परन्तु… क्या पदार्थ है, उसमें कौन कौन से भौतिक तत्त्व मि… है और अस्वच्छ दूध कितना हानिकारक है—यह ब… कम लोग जानते हैं। यही तथा और अनेक लाभदाय… बातों का वर्णन इसमें है। यन्त्रों के कई चित्रों से पुस्तक… उपयोगिता बढ़ा दी गई है। पृष्ठ-संख्या ३२ और मूल्य… आने है। दूसरी पुस्तक का नाम है—कृषिविद्या, भाग… यह पुस्तक और भी काम की है। इसमें ईख की… उसे बोने और सींचने आदि की प्रणाली, और उसमें…

[illegible] शकर बनाने की रीति बताई गई है। अँगरेज़ी, मराठी, [illegible]राती और बँगला में इस तरह की न मालूम कितनी [illegible]कें हैं। पर हिन्दी में बहुत कम हैं। अतएव ऐसी [illegible] छोटी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। इनका ख़ूब [illegible]र होना चाहिए। इसकी पृष्ठ-संख्या २० और मूल्य [illegible] आने है। लेखक ही को लिखने से शायद ये दोनों पुस्तकें [illegible]मिलती हैं।

※

७—सनातन धर्म्म के सरल नियम। आकार [illegible]ा, पृष्ठ-संख्या ३३; मूल्य डेढ़ आना; लेखक पण्डित-[illegible]प्रसाद मिश्र, हेड पण्डित, सनातन-धर्म्म स्कूल, इटावा। [illegible] बिलकुल ही नये ढँग की पुस्तक है। इसमें कथोपकथन [illegible]प में साधारण धर्म्म की शिक्षा दी गई है। वेद और [illegible]स्मृति से छोटे छोटे वाक्य और श्लोक उद्धृत कर के, [illegible] पुस्तकान्त में इनका हिन्दी अनुवाद भी देकर इसमें [illegible]र्मिक नियमों का निर्देश किया गया है।

उदाहरण—

(१) ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत

(२) समयं न कुर्यात्

(३) नात्मर्मविरुध्येत

(४) नानृतं ब्रूयात्

(५) न कुर्य्यात् पापम्

बच्चों को ये वाक्य बहुत शीघ्र याद हो सकते हैं और [illegible]वस्था में पढ़ने पर यथासमय व्यवहृत हो सकते हैं। यह [illegible] इटावे के पूर्वोक्त स्कूल में पढ़ाई जाती है। जिन [illegible] स्कूलों में धर्म शिक्षा देने का नियम है उनमें भी यह [illegible] होने योग्य है।

※

८—सत्साहित्य-ग्रन्थ माला। इस माला के सम्बन्ध [illegible] एक बार सरस्वती में निकल चुका है। इसके संचालक [illegible] [illegible] मिश्र काव्यतीर्थ हैं। आप कोल्हापुर के [illegible] स्कूल के प्रधान पण्डित हैं। इस माला की दो [illegible] प्रकाशित हो गई। एक का नाम है—सूक्ति मुक्तावली। [illegible] आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य [illegible] [illegible] है। इसमें पण्डित रामचरित उपाध्याय की लिखी [illegible] [illegible] दी गई, २० कविताओं का संग्रह है। जिनमें [illegible] कविताएँ सरस्वती में छप चुकी हैं [illegible] स्वाद अवश्य ही जानते होंगे। कवितायें प्रायः सभी सुन्दर और सरस हैं। भाषा बोलचाल की है। विषय उपयोगी हैं और उनमें से कितनेही सामयिक हैं। दूसरी पुस्तक का नाम है—निर्भय-भीम-व्यायोग। इसकी पृष्ठ-संख्या २४ और मूल्य दो आने है। आकार पहली पुस्तक के सदृश है। बारहवीं सदी में रामचन्द्र विजय सूरि नाम के एक कवि हो गये हैं। उन्होंने सौ ग्रन्थों की रचना की थी। यह पुस्तक उन्हीं की लिखी हुई है। मूल संस्कृत में है। उसका यह हिन्दी-अनुवाद है। व्यायोग एक प्रकार का रूपक है। उसमें एकही अङ्क होता है। धनञ्जयविजय को छोड़ कर अब तक और कोई व्यायोग हिन्दी में न था। इसके मूल संस्कृत पद्यों का अनुवाद बाबू मैथिलीशरण गुप्त का किया हुआ है। पद्यांश में प्रायः वीर रस है। नाटकी पुस्तक है। इसमें भीमसेन के द्वारा बक राक्षस का वध वर्णन है। छपाई दोनों पुस्तकों की अच्छी है, पर, बहुत सी अशुद्धियाँ रह गई हैं। सत्साहित्य-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक होने वालों को ये दोनों पुस्तकें दो आने में ही मिल सकती हैं। शर्त यह है कि ग्राहकों के रजिस्टर में नाम लिखाई की फ़ीस चार आने और वी०पी० ख़र्च दो आने साथ ही भेजा जाय।

※

९—अशोक अनुशासन। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १११ + ३३ + ३, मूल्य १) [illegible], लेखक श्रीचारुचन्द्र [illegible] [illegible] [illegible], एम० ए०, [illegible]। बँगला भाषा की इस पुस्तक की [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] की है। [illegible] इसमें अशोक के अनुशासनों का मूल पाठ, संस्कृत में उनका [illegible] [illegible] में उनका अनुवाद, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

निवृत्ति के लिए उनकी चेष्टा आदि का अच्छा प्रमाण मिलता है। ऐसी पुस्तक की हिन्दी में भी बड़ी आवश्यकता है।



१०—रचना-विचार। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य १२ आने, लेखक-पण्डित रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ और बाबू महावीरसिंह, मिलने का पता—सुबोध-ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर। इस तरह की छोटी छोटी कितनी ही पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। पर इसमें विशेषता है। यह बिहार की नई शिक्षा प्रणाली के अनुसार रची गई है। वहां मैट्रिकुलेशन से बी॰ ए॰ तक के और ट्रेनिंग स्कूलों के भी छात्रों को हिन्दी-रचना (Composition) सिखाई जाती है। इन्हीं के लिए यह लिखी गई है। पुस्तक पांच अध्यायों में विभक्त है—(१) हिन्दी-भाषा का इतिहास (२) शब्द-प्रकरण (३) वाक्य-प्रकरण (४) मिश्र प्रकरण (५) प्रबन्ध-प्रकरण। इनमें से पहले और पांचवें प्रकरण के विषय बड़े महत्त्व के हैं। लेखक महाशय ने पुस्तक को बड़े परिश्रम से लिखा है और प्रबन्ध लिखने तथा रचना-निर्म्माण की रीतियां आदि यथाशक्ति खूब अच्छी तरह समझाई हैं। अतएव यह पुस्तक बिहार के स्कूलों में जारी करने लायक़ है।



११—सन्तबानी-संग्रह। यह संग्रह इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस ने, दो भागों में, प्रकाशित किया है। पहले भाग का मूल्य १ रुपया और दूसरे का १=) है। दोनों पर काग़ज़ की पतली जिल्द है। टाइप बड़ा और स्पष्ट है; काग़ज़ साधारण। पहले भाग में कबीर, रैदास, गुरु नानक, दादू दयाल आदि २४ महात्माओं की साखियां हैं। इसके सिवा, कुछ फुटकर साखियां भी हैं। प्रत्येक महात्मा की साखियों के आरम्भ में उसका कुछ जीवन वृत्त भी है। दूसरे भाग में २५ महात्माओं—साधु-सन्तों—के "शब्द" हैं। इनमें से अनेक महात्मा पहुँचे हुए साधु थे। उनके वचनों में ब्रह्मज्ञान—अध्यात्म-विद्या—के तत्त्व भरे हुए हैं। इन साधुओं ने जो कुछ कहा है प्रायः अपने अनुभव के आधार पर कहा है। इनका वेदान्त-ज्ञान पुस्तक प्राप्त ज्ञान न था। अतएव इनकी साखियां और शब्द बड़े महत्त्व के क्या, अनमोल, हैं। अब तक इनके वचन बिखरे हुए यत्र तत्र पड़े थे। प्रकाशकों ने उनका संग्रह निकाल कर बड़े उपकार का काम किया। सुनते हैं, बेलवेडियर प्रेस ने साधु सन्तों की के संग्रह भी अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किये हैं। प[र] गोर के लेखक के देखने में नहीं आये।



१२—उद्भ्रान्त प्रेम। इस नाम की एक पु[स्तक] बँगला में है। श्रीयुत चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय इसके [लेखक] हैं। इसे उन्होंने अपनी पत्नी के वियोग से व्यथित [होकर] लिखा था। इसमें वियोग-जन्य व्यथाओं के उद्गार हैं। [इ]न उद्गारों में यत्र तत्र तत्त्वज्ञान, राजनीति, स्वदेश[भक्ति] प्रेम और धर्म्म के भी तत्त्व निहित हैं। बङ्गदेश में [इसका] बड़ा आदर है। यह एक प्रकार का गद्य काव्य है। [यह] पुस्तक उसी का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक [हैं] हैं—श्रीयुत द्वारकानाथ मैत्र और वासुदेव आचार्य। [अनु]वाद मज़े का है, अच्छी तरह समझ में आ जाता है। [पर] मूल में जो रस है उसकी अनुवाद में कुछ कमी है। [अनुवाद] की भाषा में एक प्रकार की अपूर्णता है। अतएव [अनुवाद] में उसका प्रतिबिम्ब उतारना सहज था भी नहीं। [पुस्तक] की पृष्ठ-संख्या १३३ और मूल्य ८ आने है। मिलने[का] पता—उपासनी एँड कम्पनी, चोर बागान, कलक[त्ता]। उद्भ्रान्त प्रेम का एक और हिन्दी-अनुवाद बांकीपुर से नि[कला] है। उसका परिचय अगली संख्या में देने का विचार है।



१३—विचार-शक्ति। आकार मँझोला, पृष्ठ-सं[ख्या] ४५, मूल्य ६ आने, अनुवादक—पण्डित रामेश्वरदत्त श[र्म्मा] "संस्कृत टीचर" सुनीपत—से प्राप्य। बाबू निहालच[न्द] थॉट-पावर (Thought Power) नाम की एक पु[स्तक] का अनुवाद उर्दू में किया है। उसी का यह हिन्दी-रूप[ान्तर] है। इसमें इच्छा-शक्ति के प्राबल्य, माहात्म्य, साधन और आदि का अच्छा वर्णन है। पुस्तक का विषय अच्छा, भाषा गड़बड़ है।



१४—सयाजी-चरितामृत। पृष्ठ-संख्या १[..] मूल्य १ रुपया; लेखक—पण्डित श्रीरामशर्म्मा, प्रकाशक-पण्डित भगवद्दत्त शर्म्मा, कारेली बाग़, बड़ौदा से प्राप्य। यह पुस्तक अच्छे टाइप में, अच्छे काग़ज़ पर, छपी है। [...] हाफ़टोन चित्रों से विभूषित है। आदर्श-नरेश महारा[ज] गायकवाड़, सर सयाजीराव, का इसमें जीवन-चरित है

आपकी विद्याभिरुचि, प्रजाप्रेम, न्यायशीलता आदि सर्वश्रुत हैं। कलाकौशल, शिक्षा, व्यापार-व्यवसाय आदि की वृद्धि के लिए आपने अपने राज्य में जो कुछ किया है वह अन्य राजाओं के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। आपने अपने राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़ कर दी है और दूसरी देशी भाषा के रूप में हिन्दी को भी पाठशालाओं में स्थान दिया है। ऐसे उदार-चरित और यशस्वी राजा का चरित सभी के पढ़ने योग्य है।



१५—स्यादिशब्दसमुच्चयः। गुजरात के धवलक्क (धोलका ?) नगर में वीसलदेव नामक एक राजा हो गया है। उसका समय विक्रम-संवत् १३००—१८ है। उसके आश्रय में अमरचन्द्र सूरि नामक एक महाकवि था। वह जैन था। इस कवि का संक्षिप्त वर्णन राजशेखर-सूरि-कृत प्रबन्धकोश नामक ग्रन्थ में है। प्रस्तुत संस्कृत-पुस्तक उसी कवि की रचना है। इसमें २६ श्लोक, अनुष्टुप् छन्द में, हैं। उनमें वर्णक्रम से लिङ्ग-निर्णय है। पहले स्वरान्त शब्दों का लिङ्ग-निर्देश है, फिर व्यञ्जनान्त शब्दों का, फिर सर्वनामगणवर्ती शब्दों का, और, अन्त में, संख्यावाचक शब्दों का। इसके अनन्तर ग्रन्थकार ही की रची हुई टीका है। उसमें हेमचन्द्र के व्याकरण के सूत्र उद्धृत करके निर्दिष्ट शब्दों की सिद्धि भी करके दिखाई गई है। इस छोटी सी पुस्तक के मूल श्लोक कण्ठ कर लेने से संस्कृत शब्दों का लिङ्ग-ज्ञान होने में बड़ी सहायता मिल सकती है। इसका रचयिता सचमुच ही महाकवि था। पुस्तक की भूमिका में इसके सम्बन्ध का जो लेख प्रबन्धकोश से नक़ल किया गया है उससे सूचित होता है कि कठिन से कठिन समस्याओं की तत्काल पूर्ति कर देना इसके लिए एक मामूली बात थी। वह आशु-कवि था। प्रबन्धकोश के अनुसार इसने २१ दिन तक तपस्या करके सरस्वती से वर पाया था। सरस्वती का वर था—"सिद्धकविर्भव नि रेवतारपनिगृढागारविनरवेधि"। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य १० आने है। इसका संशोधन पं० लालचन्द्र भगवान ने किया है। उन्हीं से यह मिल सकती है। पता—जैनकोठी कोठी, बनारस।



कार्ड्स। ये कार्ड पण्डित नटेश्वर रामदत्त पचोली (गिरडा-गंज, जबलपुर) से मिलते हैं। तीन 'सेट' दो दो आने के हैं, दो 'सेट' ढाई ढाई आने के और एक डेढ़ डेढ़ आने का। पिछले में ६ कार्ड और बाक़ी सब में बारह बारह हैं। इनमें मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, फूल-पत्तों और तितली आदि पतङ्गों के क्रम विकसित चित्र हैं। कुछ कार्ड चित्रों के भी हैं। ये सब "ड्राइंग" सीखने वालों के लिए बहुत उपयोगी हैं। कार्डों के साथ एक छोटी सी पुस्तक भी है। उसमें इन कार्डों का परिचय और ड्राइंग की रीति आदि का वर्णन है।



१७—सन्ततिरत्न—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य ४½ आने; अनुवादक पण्डित जीवारामलाल पेन्शनर, कटनी मुड़वारा—से प्राप्य। यह एक मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। लड़कों को किस प्रकार रखना चाहिए, उनको किस तरह और कैसी शिक्षा देनी चाहिए, उनके शील-स्वभाव आदि की रक्षा के लिए क्या करना चाहिए—इन तथा और भी ऐसी ही अनेक लाभदायक बातों का वर्णन इसमें है। पति-पत्नी की परस्पर बात चीत के द्वारा लेखक ने अपना वक्तव्य प्रकट किया है। यह ढंग बहुत रोचक है। पुस्तक अच्छी है। छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण है। भाषा कहीं कहीं चिन्त्य है, मराठी मुहावरे ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं। पाठशाला, मदरसा, स्कूल या मकतब के लिए "शाला" शब्द का प्रयोग किया गया है। महाराष्ट्र-देश के निवासी ही प्रायः इस शब्द का व्यवहार मदरसे के अर्थ में करते हैं।



१८—स्वामी दयानन्द और जैन धर्म। पृष्ठ-संख्या १२०; मूल्य ८ आने; काग़ज़ और छपाई उत्तम, लेखक पण्डित हंसराज शास्त्री, प्राप्ति-स्थान—जैन गेज़ट लाइब्रेरी, अमृतसर। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ में अन्य धर्मानुयायी सम्प्रदायों तथा सम्प्रदाय ग्रन्थों के विषय में जो बहुत सी बातें लिखी हैं उनकी एक आलोचना इस पुस्तक के आरम्भ में है। तदनन्तर जैन धर्म पर स्वामीजी के द्वारा किये गये आक्षेपों और आरोपों की समालोचना है। समालोचना युक्तिपूर्ण है। उसमें पूर्वोक्त आक्षेपों का खण्डन है। पुस्तक सभी के देखने लायक़ है।



१९—हिन्दी-निबन्ध। सन् १९१४ की सरस्वती के पृष्ठ १८१ पर। बात की समालोचना की है। [illegible]

सीताराम शास्त्री के इस हिन्दी-निरुक्त का दूसरा भाग भी प्रकाशित होगया। इसमें निरुक्त का दूसरा अध्याय समाप्त है। जैसा कि लिखा जा चुका है, यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है। अतएव संग्रह करने योग्य है।



२०—आरोग्य-रक्षा। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १४४; मूल्य ८ आना; छपाई और कागज़ अच्छा; लेखक—श्रीयुत कल्याणसिंह वैद्य, प्राप्ति-स्थान—हिन्दू-औषधालय, नया-बाज़ार, अजमेर। इसके विषयों की संख्या १० है—(१) स्वस्थ मनुष्य (२) दिनचर्य्या (३) रात्रि-चर्य्या (४) ऋतु-चर्य्या (५) प्रकृति (६) सदाचार (७) महामारी या वबा (८) वबाई बीमारियाँ (९) आकस्मिक घटनायें (१०) दुर्व्यसन। इस पुस्तक के अन्तिम चार प्रकरण विशेष उपयोगी हैं। उनसे बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। और प्रकरणों में कही गई भी अधिकांश बातें शिक्षा-दायक हैं। पर तीसरे प्रकरण, रात्रि-चर्य्या, में कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी कोई ज़रूरत न थी।



नीचे जिनके नाम दिये गये हैं वे पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) अनाथ पुकार—लेखक, अध्यापक पं० गणपति उपाध्याय, बांकीपुर

(२) श्रीबदरीविशाल का फ़ोटो और स्तुति—प्रेषक, पं० महीधर शर्म्मा, बदरिकाश्रम, गढ़वाल

(३) समस्यापूर्ति-पयोनिधि—प्रेषक, साहित्य-संवर्द्धिनी सभा, बहरायच

(४) ख़ूब इलाज किया } प्रेषक, श्रीदुर्गा ...
(५) पुरुषहीन घोड़ा }

(६) गुरुर्घंटाल का व्याख्यान—प्रेषक, जैन साधु मुनि विमलविजय, ...

(७) आयसवाल महाजन हितकारिणी सभा, कलकत्ता, का प्रथम त्रैमासिक रिपोर्ट } प्रकाशक, हरगोविन्द दास गुप्त, कलकत्ता

(८) सार्वजनिक हित, भाग १—लेखक, मुनी माणिक ...

(९) मँझली बहू—अनुवादक, पं० पारसनाथ त्रिपाठी काव्यतीर्थ, शाहपुर पट्टी, ...

(१०) शिव-महापूजा—प्रकाशक, पं० विजयशङ्कर ... शर्म्मा, राजो...

चित्र-परिचय।

(१)
गणेश

इस संख्या का पहला रङ्गीन चित्र गणेशजी का है। चित्र एक नामी चित्रकार का बनाया हुआ है। पण्डित हनुमान् शर्म्मा की कृपा से यह हमें जयपुर से प्राप्त हुआ है।

---

(२)
आश्विन

इस चित्र में दिखाये गये दृश्य का वर्णन उसीके नीचे छपे हुए छप्पय-छन्द में है।

Printed and published by Apurva Krishna Basu, at the Indian Press, Allahabad

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पु

मानस—कोश।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को अब बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए।

※सचित्र हिन्दी महाभारत※

(मूल आख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-भाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष का ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना हो, यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके प्राचीन धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित्र को पढ़कर ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को पवित्र और उन्नत बनाना हो, तो इस "महाभारत" ग्रन्थ को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी चित्ताकर्षक और बड़ी मनोहारिणी

है। प्रत्येक पढ़ी लिखी
महाभारत मँगा कर
लाभ उठाना चाहिए। म

(कविरत्न श्रीप

दयानन्द

मह

हिन्दी-

जिसके देखने के
उत्कण्ठित हो रहे थे, ि
सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वा
जिसकी सरल, मधुर औ
सहस्रों आर्यों की वार्
महाकाव्य छप कर तैयार
समाज के लिए बड़े गौरव
का भूषण कहें तो अत्युक्ति
ग्रन्थों को छोड़ कर आज
छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं
ऊँचा है। प्रत्येक वैदिक
ग्रन्थ लेकर अपने घर
चाहिए। यह महाकाव्य र
मूल ग्रन्थ के रायल आ
हैं। इसके अतिरिक्त ५७
का परिचय, विषयानुक्रम
शुद्धिपूर्ति, ग्रन्थालय-प्रश
आदि अनेक विषयों का स
उत्तम सुनहरी जिल्द
का मूल्य सर्वसाधारण के
चार रुपये ही रक्खा है।

सौभाग्य

पढ़ी लिखी स्त्रियों को
चाहिए। इसके पढ़ने से
ग्रहण कर सकती हैं। मूल्

कविता-कलाप

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

[इ]स पुस्तक में सरस्वती से आरम्भ करके ४६ [तक] की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया [है।] हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए, [ए]ल, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, पण्डित [क]ामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और [प]ण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की ओजस्विनी [लेखनी] से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह [प्रत्ये]क हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। [इस]में कई चित्र रंगीन भी हैं। ऐसी उत्तम सचित्र [पुस्त]क का मूल्य केवल २) दो रुपये।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला ।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और [स्वामी] दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल [तक] के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और [सहा]यकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये [हैं।] दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी [और] पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों [तथा] कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये [हैं।] हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढंग की अकेली हैं। [स्]कूलों में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्रों को [ये] पुस्तकें पारितोषिक में देने योग्य हैं। प्रत्येक [हिन्]दी-भाषा भाषी को यह 'रत्नमाला' मँगाकर अपना [पुस्तकालय] अवश्य सुशोभित करना चाहिए। प्रत्येक भाग [में] ४० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग [का] १।) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य [ती]न रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित ।

अभी तक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी जिसमें आरम्भ से अन्त तक मुख्यतया सती सीता जी की अनुकरणीय जीवन-घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन हो, जिसमें सीताजी के जीवन की प्रत्येक घटना पर स्त्रियों के लिए लाभदायक उप-देश दिया गया हो। इसी अभाव को दूर करने के लिए हमने "सीता-चरित" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सीताजी की जीवनी तो विस्तार-पूर्वक लिखी ही गई है किन्तु साथ ही उनकी जीवन-घटनाओं का महत्त्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मंगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि इसमें केवल सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी है। आशा है, स्त्री शिक्षा के प्रेमी महा-शय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ ३३० । [illegible] । सजिल्द । [illegible] के लिए मूल्य बहुत ही कम । केवल १।) [illegible] ।

कवितावली [illegible]-माला ।

[illegible]

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * * *

चरित्रगठन ।

जो नवयुवक विद्यार्थी चरित्रगठन के अभिलाषी हैं वे तो इसे अवश्य ही पढ़ें, और विशेष कर उन्हीं के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। वे इस पुस्तक को पढ़ कर आप तो लाभ उठावेंगे ही, किन्तु अपने भावी सन्तानों को भी विशेष लाभ पहुँचा सकेंगे। इस पुस्तक के सभी विषय सुपाठ्य हैं। जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका उल्लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। उन्नति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य नाममात्र के लिए केवल ॥।) बारह आना है।

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कवि-कुलगुरु कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदी जी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। कविता बड़ी रसवती और प्रभावशालिनी है। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा ।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल जुत्शी, एम० ए० के नाम को कौन नहीं जानता। आप उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। इस पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगाकर अवश्य लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है :—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में)	२॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में)	।=)
हिन्द में मगरबी तालीम (उर्दू में)	।=)

कर्मयोग ।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद करा कर यह "कर्मयोग" नामक पुस्तक छापी गई है। इसमें सात अध्याय हैं। उनमें क्रमशः—१—कर्म का मनुष्य चरित्र पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—धर्म क्या है ?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—बेलाग रहना ही सच्चा त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का आदर्श—इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।=)

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

लीजिए, हिन्दी में जिस चीज़ की कमी थी उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध हो गया। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई २०, २२ संख्याओं में पूर्ण होगी। इसकी क्रमशः एक एक पुस्तक इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित होती रहेगी। अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं :—

१—जर्मनी का इतिहास	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	।≡)
३—रूस का इतिहास	।=)
४—इँगलेंड का इतिहास	।=)
५—जापान का इतिहास	।)
६—स्पेन का इतिहास	।=)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० ऋद्धिधरनाथ भट्ट, बी० ए०, प्राज्ञ)

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, यदि उसको सांसारिक नियमों का ज्ञान नहीं, यदि उसको नैतिक और सामाजिक रीतियों का बोध नहीं तो तण्डुलरहित तुषों के समान उसकी विद्वत्ता निष्प्रयोजन है। हमारी हिन्दी का बालकोपयोगी साहित्य अभी ऐसी पुस्तकों से ख़ाली पड़ा है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बनाकर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको "कर्तव्य-शिक्षा" की पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है। पौने तीन सौ पृष्ठ की भारी पोथी का मूल्य केवल १) एक रुपया।

प्रकृति ।

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढँग की एक ही है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जाननेवालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें और जगत् की उत्पत्ति, आकाशतरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि, १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को बड़े चाव के साथ मँगाकर पढ़ेंगे और अनेक लाभ उठावेंगे। मूल्य १) एक रुपया।

राजर्षि ।

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप कर अपने प्रेमी पाठकों की प्रतीक्षा कर रहा है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़यालात से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं। उपन्यास पढ़ने पर जो हर्ष होगा, जो शिक्षा मिलेगी और जो हृदय में पवित्र भाव का संचार होगा, उसके आगे इस इतने बड़े ओजस्वी उपन्यास का ॥।=) आना मूल्य कुछ नहीं के बराबर ही समझना चाहिए।

सचित्र

शरीर और शरीर-रक्षा ।

पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए० की लिखी हुई किताबें कैसी अच्छी और लाभप्रद होती हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। जिन्होंने उनकी लिखी हुई किताबें पढ़ी हैं, वे ख़ुद जानते होंगे। यह पुस्तक भी उन्हीं पण्डित जी की कलम की करामात है। इस में शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और अपने लाभ उठा सके। मनुष्य के अङ्गप्रत्यङ्ग सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है। मूल्य केवल ॥) आने है।

बालगीता।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात [मनुष्]यों को भुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक [और] पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उप[देशों] से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह [जग]ह ऐसा अमृतमय उपदेश भराहुआ है कि जिसके [पढ़]ने से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है। [श्री]कृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए [इस उ]पदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने [बाल]कों को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह ["ब]ालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता [का] सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। [मूल्]य ॥)

बालोपदेश।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, [वनि]ता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और [शी]लसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल [अ]न्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था [त]ब उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर [स]न्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीति-शतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के लिए दुनिया भर के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इसलिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। कहाँ तक कहें, इससे पढ़ने से अनेक लाभ होंगे। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा कृत असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ नियमों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * * *

धोखे की टट्टी।

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती र नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य ड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके ढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा हण कर सकते हैं। ज़रा मँगाकर देखिए तो कैसी धोखे की टट्टी" है। मूल्य ।=)

पार्वती और यशोदा।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा का फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता । स्त्रियों के लिए ऐसे ऐसे उपन्यासों की अत्यन्त वश्यकता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित मताप्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास खकर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार या है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य ना चाहिए। मूल्य ।=)

सुशीला-चरित।

आज कल हमारे देश के स्त्री-समाज में ऐसे ऐसे गुण, दुर्व्यसन और दुराचार घुसे हुए हैं जिनके रण स्त्री-समाज ही नहीं पुरुष-समाज भी नाना र के दुःखजालों में फँस कर घोर नरक-यातना ग रहा है। यदि भारतवासी अपने देश, धर्म और ति की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से पहले, प्रकार की उन्नतियों के मूल स्त्री-समाज का ार करना चाहिए। फिर देखिए, आपकी सभी मनायें आप से आप ही सिद्ध हो जायँगी। स्त्री-ाज के सुधार की शिक्षा देने में 'सुशीलाचरित' क बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री सुशीला-चरित अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

बाला-बोधिनी।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बाला-बोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), =)॥, ।), ।-), ।=), है।

समाज।

मिष्टर आर सी दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उप-न्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

सुखमार्ग।

इस पुस्तक का जैसा नाम है इसमें गुण भी वैसा ही है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुःखी हैं, सुख की खोज में दिन रात फिर पड़ते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल।)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

SARASVATI—Reg. No. A248

ाग १६, खण्ड २] नवम्बर, १९१५ [संख्या ५, पूर्ण संख्या १९१



वार्षिक मूल्य ४)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, में छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची।

चित्र-सूची।







मृत्यु के समय आप भारत में मध्यप्रदेश के नर्मदा-डिवीज़न के सेशन्स जज थे।

आप पारसी थे। आपका जन्म बम्बई के प्रसिद्ध कामा-वंश में हुआ था। आपके पितामह श्रीयुत एच० बी० कामा, सी० आई० ई०, का बनवाया हुआ बम्बई में एक प्रसिद्ध अस्पताल है। इस अस्पताल का नाम कामा-अस्पताल है। श्रीयुक्त सी० बी० एन० कामा के पिता का नाम एन० पी० कामा था। ये बम्बई हाई-कोर्ट के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे।

सी० बी० एन० कामा और उनके भाई का जन्म एक साथ ही हुआ था। ये दोनों भाई यमज थे। इन दोनों के रूप, रङ्ग और आकार-प्रकार में अद्भुत समानता थी। स्वभाव भी दोनों का बिलकुल एक दूसरे से मिलता था। यहाँ तक कि दोनों भाइयों की बुद्धि में भी कोई विभिन्नता न थी। दोनों एक ही तरह लिखते, एक ही तरह पढ़ते और एक ही तरह की कल्पनायें किया करते थे। परीक्षा के समय अलग अलग बिठा कर उत्तर लिखाने पर भी इनके उत्तर एक दूसरे के उत्तर से ज्यों के त्यों मिल जाते थे। लोगों को इनकी इस समानता पर बड़ा आश्चर्य होता था। इन दोनों भाइयों के जन्म के थोड़े ही दिनों बाद एक ज्योतिषी ने इनकी माता से कहा था कि ये दोनों भाई असाधारण बुद्धिमान् होंगे। इन दोनों की शारीरिक बनावट के साथ मानसिक प्रवृत्ति भी ठीक एक ही सी होगी। पर, एक भाई की थोड़ी ही अवस्था में अचानक मृत्यु हो जायगी।

ये दोनों भाई एन्ट्रेंस पास करके कालेज में पढ़ने लगे। चार ही वर्ष में दोनों ने बम्बई-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पास कर ली। बी० ए० की परीक्षा के समय सी० बी० एन०

हो सके। एम० ए० के
प्रथम हुए। अतएव गवर्न
छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। छा
उच्च शिक्षा की प्राप्ति
रवाना हुए।

इँगलेंड में गणित-वि
होती है। उसमें पास हो
प्रतिष्ठित उपाधि मिलती है
और उनके भाई दोनों इस
के विश्वविद्यालय में भरती
भाई परीक्षा में उत्तीर्ण हो
इन्होंने परीक्षकों को इस
कि हम दोनों भाइयों की ले
कल्पना-शक्ति एक ही सी
दिखाई देने पर हम दोनों के
किया जाय कि वे एक दू
लिखे गये हैं। इस पर परी
को दूर दूर बिठाया। पर,
लिखे हुए उत्तर देखे तब उन
न रहा। दोनों के उत्तर एक
वर्णन करने में दोनों ने एक
चित्तवृत्ति और मानसिक श
हद हो गई। फल यह हुआ
नम्बर मिले और दोनों का न
ब्राकेट के भीतर, रक्खा गया

रेंगलर परीक्षा में पास
भारतीय सिविल-सर्विस की
हुए। उसमें भी दोनों भाई
इसी समय घोड़े से गिर कर
मृत्यु हो गई।

सिविल-सर्विस परीक्षा में
बी० एन० कामा "सर आइ



परलोकवासी सी॰ वी॰ एन॰ कामा एम॰ ए॰,
एल-एल॰ एम॰ आई॰ सी॰ एस॰

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मृत्यु के समय आप भारत में मध्यप्रदेश के नर्मदा-डिवीज़न के सेशन्स जज थे।

आप पारसी थे। आपका जन्म बम्बई के प्रसिद्ध कामा-वंश में हुआ था। आपके पितामह श्रीयुत एच० बी० कामा, सी० आई० ई०, का बनवाया हुआ बम्बई में एक प्रसिद्ध अस्पताल है। इस अस्पताल का नाम कामा-अस्पताल है। श्रीयुक्त सी० बी० एन० कामा के पिता का नाम एन० पी० कामा था। ये बम्बई हाई-कोर्ट के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे।

सी० बी० एन० कामा और उनके भाई का जन्म एक साथ ही हुआ था। ये दोनों भाई यमज थे। इन दोनों के रूप, रङ्ग और आकार-प्रकार में अद्भुत समानता थी। स्वभाव भी दोनों का बिलकुल एक दूसरे से मिलता था। यहाँ तक कि दोनों भाइयों की बुद्धि में भी कोई विभिन्नता न थी। दोनों एक ही तरह लिखते, एक ही तरह पढ़ते और एक ही तरह की कल्पनायें किया करते थे। परीक्षा के समय अलग अलग बिठा कर उत्तर लिखाने पर भी इनके उत्तर एक दूसरे के उत्तर से ज्यों के त्यों मिल जाते थे। लोगों को इनकी इस समानता पर बड़ा आश्चर्य होता था। इन दोनों भाइयों के जन्म के थोड़े ही दिनों बाद एक ज्योतिषी ने इनकी माता से कहा था कि ये दोनों भाई असाधारण बुद्धिमान् होंगे। इन दोनों की शारीरिक बनावट के साथ मानसिक प्रवृत्ति भी ठीक एक ही सी होगी। पर, एक भाई की थोड़ी ही अवस्था में अचानक मृत्यु हो जायगी।

ये दोनों भाई एन्ट्रेंस पास करके कालेज में पढ़ने लगे। चार ही वर्ष में दोनों ने बम्बई-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पास कर ली। बी० ए० की परीक्षा के समय सी० बी० एन० कामा का स्वास्थ्य कुछ ख़राब था। किन्तु दूसरे वर्ष कालेज के प्रिन्सिपल और बम्बई-विश्वविद्यालय की उदारता से आप बी० ए० और ए० एम० दोनों कक्षाओं की परीक्षाओं में एक ही साथ सम्मिलित हो सके। एम० ए० की परीक्षा में दोनों भाई प्रथम हुए। अतएव गवर्नमेंट से दोनों भाइयों को छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। छात्रवृत्ति प्राप्त करके दोनों उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए इँगलेंड के रवाना हुए।

इँगलेंड में गणित-विषयक एक उच्च परीक्षा होती है। उसमें पास हो जाने पर रेंगलर की प्रतिष्ठित उपाधि मिलती है। सी० बी० एन० कामा और उनके भाई दोनों इसी परीक्षा के लिए केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में भरती हुए। यथासमय दोनों भाई परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। परीक्षा के पहले इन्होंने परीक्षकों को इस बात की सूचना दी थी कि हम दोनों भाइयों की लेखन-शैली, विचार और कल्पना-शक्ति एक ही सी है। अतएव समानता दिखाई देने पर हम दोनों के उत्तरों पर सन्देह न किया जाय कि वे एक दूसरे की कापी देख कर लिखे गये हैं। इस पर परीक्षकों ने दोनों भाइयों को दूर दूर बिठाया। पर, जब उन्होंने दोनों के लिखे हुए उत्तर देखे तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दोनों के उत्तर एक से थे। एक फूल का वर्णन करने में दोनों ने एक ही सी ग़लती की थी। चित्तवृत्ति और मानसिक शक्ति की समानता की हद हो गई। फल यह हुआ कि दोनों को तुल्य नम्बर मिले और दोनों का नाम एक ही श्रेणी में ब्राकेट के भीतर, रक्खा गया।

रेंगलर परीक्षा में पास होकर दोनों भाई भारतीय सिविल-सर्विस की परीक्षा में सम्मिलित हुए। उसमें भी दोनों भाई पास हो गये। पर इसी समय घोड़े से गिर कर एक भाई की अचानक मृत्यु हो गई।

सिविल-सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सी० बी० एन० कामा "सर आइज़क न्यूटन" नामक छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए उम्मेदवार हुए। यह छात्रवृत्ति गणित और ज्योतिष के प्रौढ़ विद्वानों को मिलती है। कितने ही वर्षों से यह किसी अँगरेज़ को भी न मिली थी। सी० बी० एन० कामा



परलोकवासी सी॰ वा॰ एन॰ कामा एम॰ ए॰,
एल-एल॰ एम॰ आई॰ सी॰ एस॰

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मृत्यु के समय आप भारत में मध्यप्रदेश के नर्मदा-डिवीज़न के सेशन्स जज थे।

आप पारसी थे। आपका जन्म बम्बई के प्रसिद्ध कामा-वंश में हुआ था। आपके पितामह श्रीयुत एच० बी० कामा, सी० आई० ई०, का बनवाया हुआ बम्बई में एक प्रसिद्ध अस्पताल है। इस अस्पताल का नाम कामा-अस्पताल है। श्रीयुत सी० बी० एन० कामा के पिता का नाम एन० पी० कामा था। ये बम्बई हाई-कोर्ट के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे।

सी० बी० एन० कामा और उनके भाई का जन्म एक साथ ही हुआ था। ये दोनों भाई यमज थे। इन दोनों के रूप, रङ्ग और आकार-प्रकार में अद्भुत समानता थी। स्वभाव भी दोनों का बिलकुल एक दूसरे से मिलता था। यहाँ तक कि दोनों भाइयों की बुद्धि में भी कोई विभिन्नता न थी। दोनों एक ही तरह लिखते, एक ही तरह पढ़ते और एक ही तरह की कल्पनायें किया करते थे। परीक्षा के समय अलग अलग बिठा कर उत्तर लिखाने पर भी इनके उत्तर एक दूसरे के उत्तर से ज्यों के त्यों मिल जाते थे। लोगों को इनकी इस समानता पर बड़ा आश्चर्य होता था। इन दोनों भाइयों के जन्म के थोड़े ही दिनों बाद एक ज्योतिषी ने इनकी माता से कहा था कि ये दोनों भाई असाधारण बुद्धिमान् होंगे। इन दोनों की शारीरिक बनावट के साथ मानसिक प्रवृत्ति भी ठीक एक ही सी होगी। पर, एक भाई की थोड़ी ही अवस्था में अचानक मृत्यु हो जायगी।

ये दोनों भाई एन्ट्रेंस पास करके कालेज में पढ़ने लगे। चार ही वर्ष में दोनों ने बम्बई-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पास कर ली। बी० ए० की परीक्षा के समय सी० बी० एन० कामा का स्वास्थ्य कुछ ख़राब था। किन्तु दूसरे वर्ष कालेज के प्रिन्सिपल और बम्बई-विश्वविद्यालय की उदारता से आप बी० ए० और ए० एम० दोनों कक्षाओं की परीक्षाओं में एक ही साथ सम्मिलित हो सके। एम० ए० की परीक्षा में दोनों प्रथम हुए। अतएव गवर्नमेंट से दोनों भाइयों छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। छात्रवृत्ति प्राप्त करके उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए इँगलैंड रवाना हुए।

इँगलैंड में गणित-विषयक एक उच्च परीक्षा होती है। उसमें पास हो जाने पर रैंगलर प्रतिष्ठित उपाधि मिलती है। सी० बी० एन० क[ामा] और उनके भाई दोनों इसी परीक्षा के लिए के[म्ब्रिज] के विश्वविद्यालय में भरती हुए। यथासमय दे[ोनों] भाई परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। परीक्षा के प[हले] इन्होंने परीक्षकों को इस बात की सूचना दी कि हम दोनों भाइयों की लेखन-शैली, विचार [और] कल्पना-शक्ति एक ही सी है। अतएव समा[नता] दिखाई देने पर हम दोनों के उत्तरों पर सन्दे[ह न] किया जाय कि ये एक-दूसरे की कापी देख [कर] लिखे गये हैं। इस पर परीक्षकों ने दोनों भा[इयों] को दूर दूर बिठाया। पर, जब उन्होंने दोनों [के] लिखे हुए उत्तर देखे तब उनके आश्चर्य का ठिक[ाना] न रहा। दोनों के उत्तर एक से थे। एक फ़ुल[...] वर्णन करने में दोनों ने एक ही सी ग़लती की थ[ी।] चित्तवृत्ति और मानसिक शक्ति की समानता [की] हद हो गई। फल यह हुआ कि दोनों को तु[ल्य] नम्बर मिले और दोनों का नाम एक ही श्रेणी [के] ब्राकेट के भीतर, रक्खा गया।

रैंगलर परीक्षा में पास होकर दोनों भ[ाई] भारतीय सिविल-सर्विस की परीक्षा में सम्मिलि[त] हुए। उसमें भी दोनों भाई पास हो गये। [पर] इसी समय घोड़े से गिर कर एक भाई की अचान[क] मृत्यु हो गई।

सिविल-सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सी० बी० एन० कामा "सर आइज़क न्यूटन" नाम[क] छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए उमेदवार हुए। [य]ह छात्रवृत्ति गणित और ज्योतिष के प्रौढ़ विद्वा[नों] को मिलती है। कितने ही वर्षों से यह कि[सी] अँगरेज़ को भी न मिली थी। सी० बी० एन० का[मा]



परलोकवासी सी॰ बी॰ एन॰ कामा एम॰ ए॰,
एल-एल॰ एम॰ आई॰ सी॰ एम॰

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

[illegible]सकी प्रवेश-परीक्षा पास करके वृत्ति प्राप्त की। इसके बाद आपने बैरिस्टरी की परीक्षा [पास] की। इसी बीच में आपने यूरोप की भिन्न [भिन्न] कई एक भाषाओं का अध्ययन भी कर [लिया] था। सन् १९०४ ईसवी में, केवल २६ वर्ष की [अवस्था] में, आप विलायत से भारत लौट आये।

भारत आकर आप मध्य-प्रदेश की सिविल-[सर्वि]स में प्रविष्ट हुए। उस प्रान्त में आप नरसिंह-[पुर], छिंदवाड़ा, रायपुर, अमरावती और होशङ्गा-[बा]द आदि ज़िलों के असिस्टेंट कमिश्नर, डिस्ट्रिक्ट और सेशन्स जज आदि पदों पर काम [कर]ते रहे।

यहाँ आकर आपने देशी भाषाओं का अध्ययन [आर]म्भ किया। सिविल-सर्विस के मुलाज़िमों को [इ]स देश की एक न एक भाषा सीखना आवश्यक [है]। किन्तु आपने भारत की एक नहीं अनेक [भा]षायें सीख लीं। हिन्दी, उर्दू, गुजराती, बँगला, [उ]ड़िया, मराठी आदि मुख्य मुख्य प्रचलित भाषाओं [के] अतिरिक्त आपने संस्कृत, पाली, अरबी और [फ़ा]रसी का भी उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन [सब] भाषाओं की परीक्षायें आपने नामवरी के साथ [पा]स कर लीं। इस कारण आपको कोई २६ हज़ार [रु]पया इनाम में मिला। आपने अरबी पढ़ाने के लिए [अर]ब से एक मौलवी बुलाया था। संस्कृत और [फ़ा]रसी भी आपने अच्छे अच्छे विद्वानों की सहा[यत]ा से सीखा था। इस प्रकार कोई २० भाषाओं [के] आप पूरे पण्डित थे। उनमें आप [illegible] [illegible] और बात-चीत कर सकते थे।

सी० बी० एन० कामा भारत के बड़े भक्त थे। [illegible] प्रकार के तो आप बड़े ही पक्षपाती थे। आपका हृदय यहाँ की दरिद्रता देख कर [illegible] [illegible] था। आप कहा करते थे कि यदि [illegible] [illegible] को प्रारम्भिक शिक्षा [illegible] [illegible] [illegible] भारत की दरिद्रता शीघ्र ही दूर हो [illegible]। [illegible] [illegible] में एक [illegible] विश्वविद्यालय [illegible] [illegible] आप बड़े पक्षपाती थे।

आपकी सुयोग्यता के कारण बड़े बड़े सरकारी अफ़सर आपकी इज़्ज़त करते थे। विद्या के लिहाज़ से आप मध्य-प्रदेश में सबसे प्रथम आसन ग्रहण करते थे। सिविल-विभाग की सूची से पता चलता है कि आप जैसा बहुभाषाभिज्ञ पदाधिकारी इस समय सिविल-सर्विस में और कोई नहीं। आपकी न्याय-शीलता, उदारता और दया को वही जानते हैं जिन्हें कभी आपसे काम पड़ा है या जिन्होंने आपके अधीन काम किया है।

प्रचलित भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आपने पुरातन और लुप्त भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया था। आपने मृत्यु के कुछ मास पहले से चैल्डियन* (Chaldian), असीरियन (Assyrian) और हिब्रू भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था।

आप कलकत्ते की रायल एशियाटिक सोसायटी के फ़ेलो (सभासद) थे। मृत्यु के एक दिन पहले आपने उसे अपनी कोई ७ हज़ार पुस्तकें दान कर दीं। इन ७ हज़ार पुस्तकों में से एक भी ऐसी नहीं जिसे आपने आद्योपान्त न देखा हो और जिसमें आपके लिखे नोट्स न हों। गत जनवरी में आप, छिंदवाड़े के [illegible] [illegible] [illegible] हिन्दी के प्रसिद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

कोई ६ वर्ष हुए, आपका विवाह नागपुर के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

* [illegible]

श्रीयुत कामा ने कापी राइट एक्ट पर एक पुस्तक लिख कर विलायत भेजी थी। इस पर वहाँ से आप को 'मास्टर आव् ला' की उच्च उपाधि मिली। युद्ध छिड़ जाने पर आप सेंसर (Censor) के आफ़िस में काम करने के लिए बुलाये गये थे। पर आपने जाने से अनिच्छा प्रकट की।

श्रीयुत कामा को मरते समय इस बात का बड़ा शोक रहा कि वे अपनी विदुषी और सुशीला गृहिणी से इतनी जल्दी जुदा हो गये*।

कामा महाशय ने जिन जिन ज़िलों में काम किया वहाँ वहाँ के लोग आप पर बड़ी श्रद्धा और प्रीति रखते थे। आपका हर काम विचारपूर्ण और पक्षपातरहित होता था। मध्य-प्रदेश के निवासी आपके सदृश उदारहृदय और पक्षपातहीन न्याय-कर्त्ता के न्याय से बहुत सन्तुष्ट थे। शोक है कि यह अधखिला फूल असमय में ही मुरझा गया।

मर्ज़े मर्ग से आजिज़ है ख़ुदाई सारी।
सद फलातूं को यहाँ हाथ ही मलते देखा।

ब्रजमोहनलाल वर्म्मा।

उज्जैन।



ध्य-हिन्दुस्तान में मालवा-प्रान्त बहुत बड़ा है। उसमें अनेक राजा, महाराजा, रईस और जागीरदार हैं। वे इन्दौर के पोलिटिकल एजंट के अधीन हैं। मालवे में महाराजा ग्वालियर का राज्य अधिक है। मालवे की भूमि आस पास की भूमि से बहुत ऊँची है। यहाँ की मुख्य नदी चम्बल है। उसकी कई एक छोटी छोटी सहायक नदियां हैं। विन्ध्याचल पर्वत भी दूर तक फैला हुआ है। यहाँ की भूमि बड़ी ही उपजाऊ है। भिन्न भिन्न प्रकार का अधिकता से उत्पन्न होता है। गेहूँ, ज्वार, बाजरा, म[illegible] अलसी, चना, रुई, अफ़ीम, गल्ला इत्यादि बहुत चीज़ें से दूर देशों को भेजी जाती हैं। कहीं कहीं जङ्गल भी उनसे इमारत की लकड़ी अधिक मिलती है।

आज कल मालवे की बोली हिन्दी, मराठी, गुज[illegible] और मारवाड़ी का मिश्रण है। इसको मालवी भाषा कहते इस भाषा में आज तक कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया। प[illegible] बही-खाते, लेन देन के लेख और कुछ खेल की कि[illegible] इस भाषा में हैं। यहाँ के प्राचीन निवासी भील, ब[illegible] और सांसी हैं। बनजारे और कालबेलिये (सांप वाले) इन्हीं में से निकले हैं। बरगुण्डों की बोली निराली वह और किसी बोली से नहीं मिलती। मालवे के बड़े सीधे, दयालु, मिलनसार और शान्त-स्वभाव वाले हैं। इन्हें पगड़ी बांधने का बड़ा शौक़ है। स्त्रियों में [illegible] परदा नहीं। जैनी, मारवाड़ी बनिये, और बोहरे बड़े व्या[illegible] और दूकानदार होते हैं। पहले यहाँ का व्यापार [illegible] गुजरात और पूरब के देशों से अधिक था। पञ्जाब से [illegible] लोग मेवा लाया करते थे। इस बात का पता पुराने [illegible] और पड़ावों से लगता है।

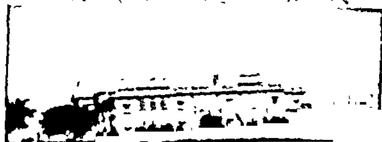
मुझे उज्जैन का हाल लिखना है। इस लिए [illegible] का थोड़ा सा इतिहास पहले लिखे देता हूँ। माल[illegible] मुख्य नगर—उज्जैन, राजगढ़, नरसिंहगढ़, भूपाल, [illegible] धार, जावरा, महेश्वर, नीमच आदि हैं। परन्तु इतिहा[illegible] लिए बहुत पुराने और प्रसिद्ध स्थान ये हैं—मांडू, [illegible] उज्जैन (अवन्तिका), रायसिन, (भूपाल के निकट) [illegible] (देवास के पहाड़ों में) और सारङ्गपुर।

मालवे का पुराना इतिहास नहीं मिलता। मुस[illegible] के लिखे इतिहास से भी इस विषय में कुछ प[illegible] चलता। हिन्दुओं के लेख और इतिहास तो नष्ट हो[illegible] हैं। यहां शिलालेख और ताम्रपत्र बहुत कम मिलते [illegible] सम्भव है, यदि प्राचीन स्थान खुदाये जावें तो यह [illegible] पूरी हो जाय। अवन्तिखण्ड नामक ग्रन्थ में केवल [illegible] स्नान, मन्दिर, तीर्थयात्रा और दान-पुण्य का वर्णन उसमें इतिहास कुछ भी नहीं। मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता [illegible]

* "Though not afraid of dying I leave behind me such a good gentle soul dear wife to mourn for me at such a tender age."



भर्तृहरि की गुफा (उज्जैन)।

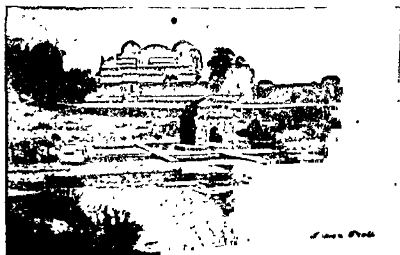


[illegible] (उज्जैन)।

डियन प्रेस, प्रयाग।



वेधशाला, उत्तरी ध्रुव देखने का स्थान (उज्जैन) ।



कालियादेह का महल और कुण्ड (उज्जैन) ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

...सुरहिता में मालवे का हाल लिखा है। उसमें हिन्दू मुसलमान शासकों के नाम भी लिखे हैं। परन्तु उसके में बहुत अन्तर मालूम पड़ता है। इन्दौर के पोलिटिकल एजेंसी साहब के समय में एक मुन्शी ने मालवे का हाल लिखा था। वह कुछ तो अँगरेज़ी ढँग का है और ...रिता के ढँग का। राजाओं की वंशावली में भी ...द है।

मालवे का कुछ थोड़ा सा इतिहास अँगरेज़ी मराठी ...र उर्दू की किताबों में मिलता है। उससे यह पता ...ता है कि पहले मालवे की दो राजधानियाँ थीं—मांडू ...र अवन्तिका। कभी कोई राजा मांडू में रहता, कभी ...न्तिका में। अशोक का राज्य उज्जैन में था। उसके ...द गुप्त राजा हुए। इस वंश का राज्य सन् ४०१ ईसवी ...क रहा। फिर हूण-जाति ने यहाँ राज्य किया। इसके ...छे कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन का राज्य हुआ। इस ...मय तक बौद्ध-धर्म्म का भारत में बड़ा ज़ोर था। तदनन्तर ...लवे में परमार-राजाओं का राज्य प्रारम्भ हुआ। उनमें ...ज आदि बड़े बड़े प्रतापी राजा हुए। यशोवर्मा के समय ...एक शिलालेख का अर्धांश उज्जैन में एक मसजिद के ...स मिला है। वह संस्कृत में है। उसमें लिखा है कि ...सन् ११३१ में मालवाधीश यशोवर्मा पर अनहिलपट्टण ...राजा जयसिंह ने चढ़ाई करके उसे हरा दिया और मालवे ...र अपना अधिकार कर लिया।

मालवे में परमार-वंश का राज्य सन् १२०० ईसवी तक ...रहा। अब भी मालवे में कई जगह परमारों का राज्य है। ...परमारों के बाद अलाउद्दीन ख़िलजी ने मालवा फ़तह किया। ...उसके बाद यहाँ के मुसलमान सूबेदार स्वतन्त्र हो गये और ...सन् १४०१ से सन् १५६१ तक राज्य करते रहे। उनमें ...नसिरुद्दीन और दिलावरख़ाँ ग़ोरी बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। ...बहादुरशाह गुजराती ने भी कुछ दिन तक मालवे पर राज्य ...किया। इसके बाद शेरशाह का झण्डा उड़ा। शेरशाह के ...बाद मालवा अकबर के हाथ लगा। औरङ्गज़ेब के समय में ...यह जयपुर के राजाओं के अधीन था। कुछ दिन तक निज़ाम ...का भी यहाँ अधिकार रहा। सन् १७५० ईसवी में बालाजी ...बाजीराव पेशवा को दिल्ली के बादशाह की तरफ़ से मालवे के ...अधिकार की सनद मिली। तब राणोजी सेन्धिया पेशवा की ...ओर से मालवे के अधिपति हुए।

उज्जैन हिन्दुओं की सात पवित्र पुरियों में से है। उसके अनेक नाम हैं—अमरावती, अवन्तिका, कनकशृङ्ग, कुमुद्वती, कुशस्थली, पद्मावती, प्रतिकल्पा, शिवपुरी, विशाला इत्यादि। स्कन्दपुराण और अवन्ति खण्ड में इस नगर की अपूर्व महिमा वर्णित है। हिन्दू मानते हैं कि भगवान् महाकाल यहाँ सदा ही निवास करते हैं। सिप्रा में स्नान करना बड़ा पुण्य माना जाता है। यहाँ मुण्डन करवाने और पिण्डदान करने से पितृगण तृप्त होते हैं। चम्बल से सिप्रा मिल कर उज्जैन के दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। उसके किनारे किनारे सुन्दर घाट और मन्दिर हैं। कुछ स्थलों का विवरण नीचे दिया जाता है।

सिद्धवट।

जैसे प्रयाग में अक्षयवट है उसी तरह यहाँ सिद्धवट है। वह सिप्रा के किनारे एक सुन्दर घाट पर है। उसके सामने ही सिद्धनाथ महाराज की मूर्ति है। स्थान बड़ा रमणीय है। जल अथाह भरा हुआ है। अनेक जलचर जलक्रीड़ा करते रहते हैं। उन्हें वहाँ चबेना आदि मिला करता है। बड़े बड़े विशाल घाट बने हैं। यहीं पर मुण्डन होता है और पिण्डदान किया जाता है। यात्रियों के ठहरने के लिए एक पक्की धर्मशाला है। इसको, २० वर्ष हुए, सेठ रामचन्द्रजी ने बनवाया था। कार्तिक शुक्ला १३ और १४ को यहाँ बड़ा मेला लगता है। मालवे और नीमाड़ प्रान्त के बहुत यात्री यहाँ आते हैं। सिप्रा नदी पार करके सिद्धवट के घाट को जाना पड़ता है। मेले के समय एक कच्चा पुल बनवा दिया जाता है। कभी कभी पुल के न होने से लोग नावों द्वारा आते जाते हैं। गाड़ी-घोड़े वाले बड़ा चक्कर काट कर वहाँ पहुँच सकते हैं। यदि एक पक्का पुल बनवा दिया जाय तो लोगों को इतना कष्ट न हो। सिद्धवट के निकट सरकारी सेन्ट्रल जेल है। उसमें अच्छी अच्छी दरियाँ और कालीन बुने जाते हैं। कुछ दूर चल कर कालभैरव का मन्दिर है। इस मन्दिर का दरवाज़ा बड़ा सुन्दर है।

कालियादेह।

सिद्धवट से करीब दो मील के फ़ासले पर, नदी के निकट, उत्तर की ओर, कालियादेह नामक स्थान है। यहाँ नदी की दो धारें हो गई हैं। बीच में एक टापू सा है।

काल की है। इस मसजिद के एक ओर बहुत से बिल्लोची लोग बसते थे। इस लिए इस महल्ले का नाम बिलोचीपुरा हो गया है। आज कल जो अनन्तनारायण का मन्दिर है वह नया है। वह इस मसजिद के पीछे नदीतट पर है।

घाट।

नदी के इस तरफ़ सिंह-पर्व में उदासी साधु ठहरते हैं। उस पार गुरु दत्त का अखाड़ा है। उसमें गुसाईं साधु ठहरते हैं। कुछ दूर बाग़ीचों में दूसरे साधु, निर्मले और दादूपन्थी आदि, ठहरते हैं। सिंहस्थ में बड़ा आनन्द आता है। यह मेला हर बारहवें बरस उज्जैन में हुआ करता है। एक महीने तक बड़ी धूमधाम रहती है। वैशाख-शुक्ला पूर्णिमा को अन्तिम स्नान होता है। वैरागी और उदासी इस ओर, गुसाईं उस ओर, स्नान करते हैं। संवत् १९६६ के मेले में महाराजा ग्वालियर ने लाखों रुपया ख़र्च करके मेले का अच्छा प्रबन्ध कराया था। अन्त में साधुओं को दान-दक्षिणा देकर वे हर्षपूर्वक विदा किये गये। इस मेले में हज़ारों साधु, सन्त और भिखारी आते हैं। हज़ारों गृहस्थ भी साधुओं के दर्शन और इस शुभ अवसर पर सिप्रा-स्नान के लिए यहाँ आते हैं।

हरसिद्धि देवी।

यह परमार-राजपूतों की कुल-देवी समझी जाती है। उज्जैन में यही मुख्य देवी है। पर इसका मन्दिर बिलकुल नया है। मालूम होता है कि इसका पुराना मन्दिर तोड़ दिया गया। कहते हैं, राजा विक्रम और शालिवाहन दोनों ही इस देवी की पूजा किया करते थे। इस मन्दिर के सामने दो दीपमालिकायें बनी हैं। यहाँ कभी कभी रोशनी होती है। इन दीप-स्तम्भों में बड़ी भारी कारीगरी है। हर दीवट में बेल-बूटे हैं। पशुओं और पक्षियों की मूर्त्तियाँ भी हैं। एक दीप-स्तम्भ कुछ पुराना सा मालूम होता है। उसकी बनावट में भी कुछ अन्तर है। इस मन्दिर के पास की एक बावड़ी में एक छोटा सा खम्भा है। उसमें चारों ओर बड़ा बारीक काम है। उस पर संवत् १४४७ खुदा हुआ है।

सरदारसिंह की छतरी।

इसी मन्दिर के बाहर दक्षिण की ओर पिरज़ोदा मोदा नामक स्थान के महाराज सरदारसिंहजी की एक छोटी सी छतरी है। मालूम होता है कि वे संवत् ११[illegible] में यहाँ पर लड़ाई में मारे गये थे।

महाकाल।

हरसिद्धि के दर्शन करके महाकाल में आइए। [illegible] मुक़ाम बहुत प्राचीन है और आस पास की ज़मीन से [illegible] ऊँचा है। इस स्थान को कोट (गढ़) कहते हैं। [illegible] चारों ओर बड़ी बड़ी दीवारें थीं और दीवारों के पास ए[illegible] का बड़ा ख़न्दक था। एक तरफ़ हरसिद्धि का तालाव है[illegible] सुनते हैं, यह मन्दिर राजा विक्रम ने बनवाया था। कालिद[illegible] ने भी अपने ग्रन्थों में इस मन्दिर की, इसके आस पास [illegible] राज-भवनों की और यहाँ के राजाओं की प्रशंसा लिखी [illegible]

इस मन्दिर के चौक में बड़ी बड़ी धर्म्मशालायें [illegible] पाठशालायें थीं। बड़े बड़े पण्डित, शास्त्री और ज्योति[illegible] यहाँ रहा करते थे। साधु-संन्यासी भी रहते थे। [illegible] दूर से विद्यार्थी यहाँ विद्याभ्यास के लिए आया करते [illegible] हिन्दू-राजाओं के महल भी यहीं थे। अभी तक उनके [illegible] बने हैं। एक दो जगह बौद्ध-मूर्त्तियाँ भी देखी जाती हैं।

सन् १२३० ईसवी में सुलतान अल्तमश ने इस न[illegible] पर चढ़ाई की। उसने तमाम मन्दिर तुड़वा डाले; मूर्त्ति[illegible] खण्डित करवा दीं। इसी ने महाकाल का भी म[illegible] तुड़वाया और उसके आस पास की दीवारें गिरवा दीं। [illegible] भी दीवारों के कुछ अंश शेष हैं। महाकाल की मूर्त्ति[illegible] टुकड़े वह दिल्ली ले गया। सब बड़ी बड़ी इमारतें ढह [illegible] गईं। मुसलमानों का ज़ोर बढ़ता गया। पास ही इन[illegible] एक महल बनवाया और पूर्वोक्त तालाब के निकट ही [illegible] खुदवाया। बाग़ीचे लगे और महाकाल के मन्दिर के [illegible] पर मसजिद बनवाई गई। कुण्ड को बतौर हम्माम के [illegible] में लाते रहे। हम्माम के निशान अब तक मौजू[illegible] बहुत दिनों तक महाकाल की यात्रा बन्द रही। जो [illegible] मुसलमानों ने बनवाया था उसको आमख़ास कहते [illegible] उसमें मालवे के सुलतान और दिल्ली के बादशाह के सूबे[illegible] रहा करते थे। कुँवे को अब तक इसी नाम से पु[illegible] हैं। सौभाग्य से मालवा बालाजी बाजीराव के हाथ आ[illegible] उसने रामचन्द्र नामक एक शेणवई ब्राह्मण को यहाँ [illegible] बनाया। उसने महाकाल और हरसिद्धि के म[illegible]

[illegible]वाने का हुक्म भी उसने दिया। ये दोनों मन्दिर उसी समय में, सन् १७४२ में, बने।

[illegible] महल खँडहर हो गया है। महाराज [illegible]राव सेन्धिया का महल भी यहाँ बना हुआ है। अन्यान्य [illegible] प्रसिद्ध सरदारों के महल भी यहाँ हैं। महाकाल मन्दिर मालवे में बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ का शिवलिङ्ग [illegible] के १२ ज्योतिर्लिङ्गों में से है। श्रावण में और [illegible] के समय महाकाल की सवारियाँ बड़े धूमधाम से [illegible] हैं। यह मन्दिर बड़ा सुन्दर है। शिखर की बनावट [illegible] है। मानों ८४ लिङ्गों के मुकुट महाकाल पर हैं। पर, नीचे के खम्भों में बड़ा अन्तर दीखता है। [illegible] एक प्रकार का है, दूसरा दूसरे प्रकार का। महाकाल [illegible] गुफा में विराजते हैं। दूसरी ओर एक और मन्दिर है। [illegible] महाकाल का पुराना मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिर के [illegible] दो तीन और मन्दिर हैं। उनमें बौद्ध और जैन [illegible] की कारीगरी दृष्टिगोचर होती है। उनकी छतों में [illegible] पुरानी चित्रकारी है। पुराने मन्दिर के पास एक बहुत [illegible] खँडहर है। इसके पत्थरों से ज्ञात होता है कि यहाँ [illegible] समय कुछ भवन थे। यदि यह स्थान खोदा जाय [illegible] बातें मालूम हों।

इसी कोट (गढ़) की हद में एक बहुत पुराना दरवाज़ा [illegible] लदाव का बना हुआ है। कमानी का नाम [illegible] पत्थर बहुत बड़े बड़े हैं। दरवाज़े की छत ज़मीन से [illegible] फुट ऊँची मालूम होती है। आश्चर्य है, इतनी [illegible] ऐसा पत्थर कैसे ले गये होंगे। दरवाज़ा बहुत [illegible] है। [illegible] हौदे के हाथी इसके भीतर जा सकता है। यह [illegible] समय का पुराना दीखता है। पत्थरों के जोड़ों [illegible] मसाला [illegible]। दरवाज़े में बड़े बड़े [illegible] हैं। दरवाज़े के बग़ली खम्भों की पूजा होती है। [illegible] पर यहाँ भैंसे काटे जाते हैं। कहते हैं, राजा [illegible] का उपासक था। उसी ने यह दरवाज़ा बनवाया [illegible] स्थापना की। किसी समय यहाँ [illegible] की [illegible] थे। अब भी कालिका के मन्दिर में और [illegible] दोनों [illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible] है। यह देवी पर [illegible] है। [illegible] होती है। [illegible] के समय दो [illegible] के सब दरवाज़ों पर कहीं भैंसे, कहीं बकरे, काटे जाते हैं। शराब की भी अविच्छिन्न धारा बहती है।

लदाव का यह बड़ा दरवाज़ा २४ खम्भों की देवी का दरवाज़ा कहलाता है। इसके खम्भों में कहीं कोई लेख भी होगा। पर, सिन्दूर के मारे उसका पता नहीं लगता। यह भवन विक्रम के समय का नहीं, किन्तु परमार-राजपूतों के समय का है। नहीं मालूम सुलतान अल्तमश के पञ्जे से यह कैसे बच गया। सम्भव है, पुराने समय में गढ़ और महाकाल के मन्दिर को लोग इसी दरवाज़े से आते जाते रहे हों।

बेगम का बाग़।

कोट (गढ़) के बाहर दक्षिण दिशा में बेगम का बाग़ है। यह बाग़ तालाब के किनारे है। बनावट में यह बहुत बढ़िया मालूम होता है। इस जगह मदरसे, हम्माम, [illegible] और अच्छे अच्छे बग़ीचे थे। मीठे और शीतल जल के कुँए भी यहाँ हैं। [illegible] नामक एक सूबेदार [illegible] में रहता था। जब उसकी बेटी का देहान्त हुआ तब उसने बेटी की यादगार में एक दरगाह बनवाई। इस बात को हुए २२५ वर्ष का समय हुआ। आज कल हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ इस दरगाह पर मन्नत मानती हैं और चढ़ावे चढ़ाती हैं। अब यह स्थान धूल में मिल गया है। केवल दरगाह ही टूटी फूटी दशा में रह गई है। इस मक़बरे के हर तरफ़ संगमरमर की पटियों पर अरबी और फ़ारसी भाषाओं में बहुत [illegible] खुदे हुए हैं। इन लेखों में दरगाह की तारीख़ और [illegible] हैं। [illegible] है। [illegible] होगा। [illegible], न वह [illegible] रहा, न वह [illegible]।

[illegible]।

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है।

महात्मा मुहम्मद साहब जब मरणासन्न हुए तब उनके शिष्य हज़रत अली ने आयेशा को भेज कर उनसे पुछवाया कि इनके बाद ख़लीफ़ा का अधिकारी कौन होगा। अली साहब ने कहा कि पहले अधिकारी अबूबकर सिद्दीक़ होंगे, उनके पीछे हज़रत उमर, तत्पश्चात् उसमान के पुत्र [illegible] उसमान। इस पर आयेशा ने फिर पूछा कि तब [illegible] ख़लीफ़ा कौन होगा। जवाब मिला कि पूछने वाला होगा।

मुहम्मद साहब के [illegible] होने पर उनकी [illegible] मुताबिक़ उपर्युक्त तीनों महानुभाव ख़लीफ़ा हुए। [illegible] उसमान के मरने पर आयेशा ने [illegible] इमाम [illegible] का दावा किया। क्योंकि मुहम्मद साहब ने [illegible] अधिकारी [illegible] के पश्चात् पूछने वाले को ही अधिकारी [illegible] था और पूछने वाले यही हज़रत आयेशा थे। [illegible] अली ने कहा कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर भेजा था। अतः [illegible] [illegible] ख़लीफ़ा [illegible] था और मुझे ही [illegible] [illegible]

हज़रत अली मुहम्मद साहब के [illegible] [illegible] शिष्य भी थे। [illegible] है कि [illegible] साहब ने [illegible] ही पूछने वाला कहा है। [illegible] [illegible] अली ने ही आयेशा को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ कि आयेशा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहें। इसके उपरान्त, हज़रत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के अधिकारी हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हज़रत अली के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होने का एक यह भी कारण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आयेशा को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] के नियुक्त किये हुए इब्न मुलजिम नाम[illegible] घातक के हाथ से मसजिद में नमाज़ पढ़ते [illegible] आहत हुए। घातक ने तलवार से उनके [illegible] एक गहरा घाव कर दिया। तत्काल ही इमाम [illegible] के [illegible] द्वारा वह पकड़ा गया। हज़रत [illegible] [illegible] ने उसी दम उसे मार डालना चाहा [illegible] [illegible] साहब ने ऐसा करना अन्याय [illegible] [illegible] कि—"यदि मैं जीता बच जाऊँ [illegible] [illegible] कोई बुरा बरताव न किया जाय [illegible] [illegible] [illegible] भी इसका छोड़ देना ही [illegible] [illegible] [illegible] लोग अपने क्रोध को [illegible] [illegible] [illegible] देना ही चाहो, तो मेरे मरने [illegible] [illegible] पर भी इसी तलवार से उतना [illegible] [illegible] कि इसने मुझ पर कि[illegible] [illegible] [illegible]"। इमाम साहब [illegible] [illegible] के कारण वे एक दिन में [illegible] [illegible] उनके [illegible] घातक [illegible] [illegible] [illegible] दूसरा घाव किया [illegible] [illegible] [illegible] के बाद वह [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] कानून प्रकट [illegible] [illegible] [illegible] गई। [illegible] [illegible] को [illegible] विद्रोह क[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हसन ने, [illegible] [illegible] [illegible] से कहा कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] इनसे सहमत [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त [illegible]

[illegible] [illegible] लोग [illegible] [illegible] [illegible] हसन ही [illegible] [illegible] [illegible] कि यह [illegible] [illegible] [illegible] भावी प्रबन्ध [illegible] [illegible] नहीं। इमा[illegible] [illegible] [illegible] पर कुछ [illegible] [illegible] [illegible]

ी, अर्थात् जहां जय प्राप्त हुआ है। यह नगर सिप्रा के
ने तट पर दक्षिण और उत्तर दिशा में बसा हुआ है। सिप्रा
घाटी में आ जाने और आस पास सैकड़ों वृक्षों और
ह बाग़ीचों के होने से यह नगर दूर से बिलकुल ही
दिखाई देता। लम्बाई इसकी चौड़ाई से अधिक है।
के बीचों बीच एक बहुत बड़ा राज-मार्ग है। उसके
ओर हर तरह की दूकानें हैं। इसी को बड़ा बाज़ार
है। परन्तु इस बाज़ार के हर एक भाग का अलग
नाम है। सर्राफ़ा बाज़ार बड़ा सुन्दर है। यहां
ी साहूकार, महाजन, व्यापारी, हुण्डीवाल और सेठ
है। अफ़ीम का व्यापार यहां बहुत होता था, पर,
कल बाज़ार में फीकापन नज़र आने लगा है। रुई
पार धीरे धीरे उन्नति कर रहा है। आशा है, वह
के घाटे को शीघ्र ही भुला देगा। उज्जैन में देशी
बहुत बनता था। कई एक कारख़ाने और बहुत सी
याँ। वे सब अब नाम-शेष हैं। छीपी लोग अभी
ाई और दुपट्टों पर रँगाई का काम करते हैं। छपाई
ी है। पर, वह बात नहीं जो पहले थी। आमनुमा
ां बहुत अच्छे बनते हैं। इन्हें यहां वाले "केरी"
। इनकी बड़ी माँग है। ये दूर दूर तक भेजे जाते
ी लोग देशी जूते बहुत बढ़िया बनाते हैं। कंघे
भी बहुत अच्छी बनती हैं और बाहर भेजी जाती
सम और धूप उत्तम मिलती है। बेला के सफ़ेद
र कलियों से बड़े सुन्दर और मनोहर हार बनते
प्रकार के हार और कहीं नहीं गूँथे जाते। गुड़
यहां बहुत होती थी, पर बाहर का माल अब यहां
ता है। इस कारण गन्ना कम बोया जाता है।
करघों से साड़ियाँ और मोटा कपड़ा अब तक यहां
ा है।

से महाराजा माधवराव सेन्धिया ग्वालियर की
विराजे तब से उज्जैन की काया पलट गई है। एक
लेज बन गया है और कई एक अन्य पाठशालायें
गई हैं। उनमें हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू,
फारसी और संस्कृत भाषायें पढ़ाई जाती हैं।
भूगोल, इतिहास आदि विषय भी नियमानुसार
ते हैं। एक अस्पताल बहुत अच्छा बना है। उसमें
रोगियों की अधिक सुधि ली जाती है। सरकारी पलटन
की छावनी भी यहां है। महाराजा साहब की कोठी देखने
लायक़ है। उसके समीप एक सुन्दर बाग़ीचा भी है। रुई
के सोलह सत्रह कारख़ाने यहां हैं। दो पुतलीघर भी हैं।
कुछ समय पहले उज्जैन हैज़े का घर समझा जाता था।
पर, महाराजा साहब की कृपा से अब नगर में निर्मल जल
के नल लग गये हैं। इससे महामारी का खटका अब
बिलकुल मिट गया है।

उज्जैन की लोक-संख्या प्रायः ३९,००० है। मुसलमानों
से हिन्दू अधिक हैं। सब जाति के ब्राह्मण यहां बसते हैं।
बोहरे लोग, जो बड़े बड़े दूकानदार और व्यापारी हैं, शिया-
पन्थ के मुसलमान हैं। उनका पहनावा बहुत पुराना और
बादशाही ढंग का है। उनकी स्त्रियां हिन्दुओं का जैसा पहनावा
पहनती हैं। ये लोग गुजराती बोली बोलते हैं। उज्जैन में
इन लोगों का बहुत बड़ा थोक है।

उज्जैन के आस पास दो चार रणभूमियां भी हैं। पर
उनका वर्णन यहां नहीं किया जाता। सुनते हैं कि प्राचीन
काल में यहां १०,००० मन्दिर थे। परन्तु अब तो केवल
२००० अथवा २१०० देवस्थान रह गये हैं। २० या २१
बड़ी बड़ी धर्मशालायें हैं। यहां हज़ारों यात्री उतर सकते
हैं। ४—५ अन्नसत्र भी हैं। वहां सैकड़ों साधु सन्तों,
भिखारियों और दीन-दुखियों को नित्य भोजन मिला करता
है। नगर में एक गोशाला है। उसमें अनेक गायों की रक्षा
होती है। पहले जो अनेक स्त्रियां सती हो गई हैं उनके
कई एक स्तम्भ अब तक यहां खड़े हैं।

ठाकुर कन्हैयालाल (उज्जैन)

ताज़िया।



[मु]हर्रमी के प्रायः सभी पाठकों ने एक न एक बार ताज़ियादारी अवश्य देखी होगी। पर कतिपय लोग शायद यह न जानते होंगे कि ताज़िये वास्तव में क्या हैं और वे क्यों उठाये जाते हैं। अतएव उनके मनोविनोदार्थ आज हम ताज़ियों का ऐतिहासिक वृत्तान्त सुनाते हैं।

जयसिंहपुरा ।

उज्जैन के एक कोने में, दक्षिण ओर, यह महल्ला है। जयपुरनरेश राजा जयसिंह का कुछ दिन तक यहां अधिकार था। राजा गिरधर यहां का हाकिम था। राजा जयसिंह की बनवाई वेधशाला यहां पर है। इस वेधशाला को यहां वाले यन्त्रमहल कहते हैं। दिल्ली, काशी, मथुरा और जयपुर में भी इसी प्रकार की वेधशालायें हैं। यह सन् १७३३ ईसवी की है। वेधशाला के सब स्थान अभी तक बने हुए हैं। पर वे खँडहर से हो गये हैं। यह मुहल्ला भी राजा जयसिंह के नाम से ही जयसिंहपुरा कहाता है। शत्रुओं के हमले रोकने के लिए उज्जैन के आस पास नगर-कोट भी बनवाया गया था। वेधशाला के पास नदी में दो कुँवे हैं। वे पहले नदी के किनारे खेत में थे। पर, मिट्टी के कटने और धार के बदलने से अब बीच में आ गये हैं। बड़े पक्के हैं। ऊपर शिखर पर पत्थरों में रस्सियों के चिह्न हैं। एक कुआ आधा है और दूसरा समूचा। ये छः सात सौ वर्ष के पुराने मालूम होते हैं।

कारवान सराय ।

यह सराय बीच नगर में है। बहुत बड़ी है। निरी पत्थर की है। कहते हैं कि अकबर बादशाह के समय में यह बनी थी। नीचे छत में बहुत भारी खम्भे हैं। ऊपर बड़े बड़े पत्थर पटे हैं। कुछ भाग नष्ट हो गया है, परन्तु अधिक भाग मौजूद है। इसके सब के सब पत्थर हिन्दू-मन्दिरों के हैं।

पञ्चक्रोशी ।

यह यात्रा वैशाख मास में होती है। वैशाख बदी दशमी के दिन लोग नागचन्द्रेश्वर के दर्शन करके यात्रा प्रारम्भ करते हैं। नगर से पांच कोस दूर चारों दिशाओं में चार शिवलिङ्ग हैं। एक एक शिवलिङ्ग के दर्शन करके यात्री आगे बढ़ते जाते हैं। चार दिन में चारों लिङ्गों की यात्रा करके वे नगर की ओर आते हैं। कुछ लोग रोज़ रोज़ एक एक लिङ्ग की यात्रा करके घर चले आते हैं। अमावास्या के दिन सब यात्री अष्टतीर्थों का स्नान और दर्शन करके महाकाल पर मेले में एकत्र होते हैं। वे फिर नागचन्द्रेश्वर के दर्शन करके घर चले जाते हैं। पञ्चक्रोशी का बड़ा माहात्म्य है। दूर दूर से लोग यहां आते हैं। मिंहस्थ [illegible] बड़ी भीड़ रहती है। सरकारी बन्दोबस्त रहता है। [illegible] राह न भूलें, इस लिए मार्ग में चिह्न बना दिये जाते [illegible] दिन में लोग वृक्षों की शीतल छाया के तले पड़ाव [illegible] रात में ठण्डे ठण्डे चलते हैं। रात को वहीं शिव-मन्दि[र] [illegible] निकट विश्राम करते हैं। सवेरा होते ही स्नान, दर्शन [illegible] दूसरी ओर चल देते हैं। भारत में केवल दो ही [illegible] में पञ्चक्रोशी की यात्रा होती है। एक काशी में, [illegible] अवन्तिका में।

कालियादह का दरवाज़ा ।

यह दरवाज़ा बाज़ार में कालियादह गांव की ओर [illegible] दुर्गा-अष्टमी पर यहां बकरा चढ़ता है। हिन्दू लोग [illegible] शुभ कार्य्य के समय अथवा कोई शुभ कार्य्य करके [illegible] द्वार से नहीं आते जाते। शव लेकर भी यहां से [illegible] निकलते। नित्य साधारण काम-काज के लिए ही [illegible] जाते हैं। मुसलमान आदि तो सब काम के लिए इसी [illegible] से निकलते हैं। हिन्दू लोग समझते हैं कि इस दर[वाज़े] में कोई प्रेत या पिशाच वास करता है। कुछ लोग [illegible] हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में एक बार यहां [illegible] हो गया था। किसी किसी का मत है कि यहां शराब [illegible] गोश्त की दुकानें थीं। पर, अब वह बात नहीं।

गोपालमन्दिर ।

बीच बाज़ार में गोपालजी का मन्दिर है। [illegible] पत्थर का है। बड़ा सुन्दर है। संवत् १८९२ में महारा[ज] दौलतराव सेन्धिया की रानी बैजाबाई ने इस मन्दि[र] [को] बनवाया था। ऊपर का गुम्बज़ सङ्गमरमर का है। [illegible] किवाड़ों और देहली में चांदी का काम है।

सात सागर ।

जब जब अधिक मास आता है तब सब सात सा[गर] [illegible] अर्थात् सात तालाबों में लोग स्नान करते हैं। वे [illegible] को दान दक्षिणा भी देते हैं। एक मास तक इन [illegible] सागरों के घाटों पर बड़ा मेला रहता है।

उज्जैन की वर्त्तमान दशा ।

उज्जैन शब्द के दो अर्थ हैं—(1) उ + जैन, [illegible] मतलब यह कि—यहां जैन धर्म का नाश हुआ है। (२) [illegible]

चौबीस खंभे का दरवाज़ा (उज्जैन)।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

महात्मा मुहम्मद साहब जब मरणासन्न हुए तब उनके शिष्य हज़रत अली ने माविया को भेजकर उनसे पुछवाया कि उनके बाद ख़िलाफ़त का अधिकारी कौन होगा। नबी साहब ने कहा कि पहले अधिकारी अबूबकर सिद्दीक़ होंगे, उनके पीछे खत्ताब के पुत्र उमर, तत्पश्चात् अफ़्फ़ान के पुत्र उसमान। इस पर माविया ने फिर पूछा कि तदनन्तर ख़लीफ़ा कौन होगा। जवाब मिला कि पूछने वाला होगा।

मुहम्मद साहब के प्राणान्त होने पर उनके कथनानुसार उपर्युक्त तीनों महानुभाव ख़लीफ़ा हुए। इमाम उसमान के मरने पर माविया ने ख़िलाफ़त का दावा किया। क्योंकि मुहम्मद साहब ने उसमान के पश्चात् पूछने वाले को ही अधिकारी बताया था और पूछने वाले वही हज़रत माविया थे। हज़रत अली ने कहा कि मैंने आपको अपना दूत बनाकर भेजा था। अतः उस समय वास्तविक पूछने वाला मैं था और मुझे ही ख़िलाफ़त मिलनी चाहिए।

हज़रत अली मुहम्मद साहब के दामाद थे और शिष्य भी थे। सम्भव है कि नबी साहब ने उनको ही पूछने वाला कहा हो। क्योंकि वे जानते भी थे कि अली ने ही माविया को उनके पास भेजा था। जो हो, बहुत वितण्डावाद के अनन्तर यह निश्चित हुआ कि माविया अपने जीवन काल में ख़लीफ़ा रहें। इसके उपरान्त, हज़रत अली और उनके वंश वाले ख़िलाफ़त के अधिकारी होंगे। माविया के बाद हज़रत अली के वंश वालों को अधिकारी निश्चित होने का एक यह भी कारण लिखा है कि उस समय माविया के पुत्र यज़ीद अपने बुरे आचरणों से समाज के [illegible] ख़िलाफ़त पाने के अयोग्य प्रमाणित हो चुके थे। वे [illegible] शराबी थे [illegible] लम्पट [illegible] थे। उन्होंने एक बार एक [illegible] को, जिसके [illegible] को हज़रत अली ने [illegible] की लड़ाई में मार डाला था, [illegible] कि वह किसी [illegible] अली [illegible] बदला [illegible]। [illegible] हज़रत अली [illegible]

दिनों के नियुक्त किये हुए इब्न मुलजिम नामक [illegible] घातक के हाथ से मसजिद में नमाज़ पढ़ते [illegible] आहत हुए। घातक ने तलवार से उनके कन्धे [illegible] एक गहरा घाव कर दिया। तत्काल ही इमाम [illegible] के सहचरों द्वारा वह पकड़ा गया। हज़रत के [illegible] न्धियों ने उसी दम उसे मार डालना चाहा। [illegible] इमाम साहब ने ऐसा करना अन्याय बताकर [illegible] माया कि—"यदि मैं जीता बच जाऊँ तो इसके साथ कोई बुरा बरताव न किया जाय। और मैं मर जाऊँ तो भी इसको छोड़ देना ही अच्छा होगा। कदाचित् तुम लोग अपने क्रोध को न रोक सको, इसे दण्ड देना ही चाहो, तो मेरे मरने के पीछे इसके कन्धे पर भी उसी तलवार से उतना ही घाव [illegible] देना जितना कि इसने मुझ पर किया था। [illegible] यही न्याय-दण्ड है"। इमाम साहब उसी घाव की यन्त्रणा के कारण दो एक दिन में सुरलोक [illegible] गये। उनके कथनानुसार घातक के कन्धे पर भी ठीक उतना ही गहरा घाव किया गया। दो [illegible] दिन कष्ट भोगने के बाद वह भी इस लोक [illegible] चल बसा।

यज़ीद की यह करतूत प्रकट हो जाने पर [illegible] भर में खलबली मच गई। लोगों ने माविया [illegible] ख़िलाफ़त के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा। [illegible] अली के बड़े पुत्र हसन ने, जो मुहम्मद साहब [illegible] नाती थे, माविया से कहा कि आप शाम प्रान्त [illegible] आकर शासन कीजिए और यह प्रान्त मेरे [illegible] छोड़ दीजिए। इससे सहमत होकर माविया [illegible] चले गये और मदीना-प्रान्त हज़रत हसन के [illegible] हो गया।

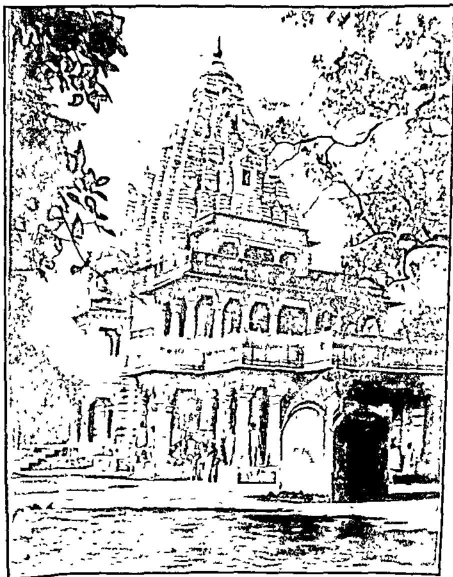
यज़ीद ने यह सोच कर कि मेरे पिता के [illegible] शाम प्रान्त भी हसन ही को मिलेगा, हसन [illegible] को बहकाया कि वह अपने पति को किसी [illegible] मार डाले। [illegible] हो [illegible] है। वह [illegible] [illegible] में आ गई। इमाम हसन को [illegible] खिलाया गया। पर कुछ न हुआ। [illegible] [illegible] का [illegible]

ला सुने न गया। हसन के अनुयायियों को सब
नें मालूम हो गई। इस बार उनकी धीरता जाती
ी। यज़ीद को इसका प्रतिफल चखाने के लिए
ें खींच कर वे टूट पड़े हुए। रण की दुन्दुभी
ने लगी। नक्कारे शब्द करने लगे। "मा चलो!"
धूम मच गई। वृन्द का दट्टा भी घज कर
कान फाड़ने लगा। वीर योद्धे खाना के
र इमाम हुसैन के फाटक पर पहुँचे। परन्तु
। इमाम हुसैन! धन्य तुम्हारी सहिष्णुता!
। तुम्हारी उदारता! उन्होंने कापुरुषता से नहीं
। के मोह से नहीं, धननाश के भय से भी नहीं,
ह हिंसा के डर से, एक के लिए अनेक के
ा होने के भय से, अपने बन्धु-नाश का कारण
ेच्छा बना कर मीठे वचनों से सब को शान्त
। सब लोग क्रोध को पीकर अपने अपने घर
गये।

इसके उपरान्त हुसैन अपने मृत भाई हसन के
र प्रतिष्ठित हुए। इन्हीं दिनों माविया का पर-
न्यास हो जाने से उसका अधिकार यजीद को
हुआ। यज़ीद ने हुसैन से उनका मुरीद बनने
ए कहला भेजा। हुसैन साहब ने उत्तर दिया
दि वे सच्चरित्र तथा निर्दोष होते तो अवश्य
की शिष्यता स्वीकार कर लेता। किन्तु वे
नहीं हैं। उनके समान अपवित्र, भ्रष्ट-चरित्र
क्रूर व्यक्ति का मैं कदापि मुरीद नहीं हो
ा। उत्तर ठीक ही था; पर यजीद को इससे
चोट लगी। हुसैन साहब भी यह जान गये।
। यह भी भली भाँति मालूम हो गया कि लोगों
माड़ कर उसके विरुद्ध खड़ा करने का सन्देह
ज़ीद ने मुझ पर किया है, जो किसी प्रकार
नहीं हो सकता। अतः वह अवश्य उपद्रव
। इन कारणों से ख़िलाफ़त छोड़ कर शान्ति-
जीवन व्यतीत करने के लिए वे बाल-बच्चों-
मदीना से कावे शरीफ़ को चले गये।

कूफ़ा के लोगों ने यह समाचार पाकर उनको
वहाँ रहने के लिए आग्रहपूर्वक बुला भेजा।
हुसैन साहब ने पहले अपने चचेरे भाई मुसलिम
को बाल-बच्चों-समेत वहाँ भेजा। मुसलिम ने वहाँ
पहुँच कर, कुछ दिन वास करने के उपरान्त, हुसैन
साहब को लिखा कि आप निर्भय चले आवें। यहाँ
के अधिवासियों के हृदयों में निःसन्देह आप के विषय
में अपूर्व भक्ति है। पत्र पढ़कर हुसैन साहब कूफ़ा
जाने को तैयार हुए और वहाँ वालों को इसकी
सूचना दे दी।

गुप्तचरों से यह समाचार पाते ही यजीद ने
ओबैदुल्ला को, १२ हजार सिपाहियों का सेनापति
बनाकर, कूफ़ा की ओर भेजा। कूफ़ा में उस
समय हुसैन साहब के आगमनोपलक्ष्य में नाना
प्रकार के उत्सव हो रहे थे। लोगों की एक बृहत्
संख्या सभा-मण्डप में एकत्र थी। नाच गान हो
रहा था। चतुर ओबैदुल्ला, हुसैन साहब का कपट-
वेश बना कर तथा उन्हीं की सी पोशाक पहन कर,
नगर में घुसा और सभा में जा पहुँचा। सभा के
लोगों ने हुसैन साहब के भ्रम से बड़े आदर के साथ
उसको लिया। अवसर देख कर ओबैदुल्ला ने सीटी
बजाई। उसके सिपाहियों ने तुरन्त ही वहाँ पर
उपस्थित सभी मनुष्यों को पकड़ लिया। सब के
पीछे मुसलिम साहब भी पकड़े गये और बाल-बच्चों-
सहित मारे गये। तब हूर ने ओबैदुल्ला के आदेश
से कई हजार सिपाही लेकर कावे शरीफ़ की ओर
यात्रा की। मार्ग में हुसैन साहब को उसने घेर
लिया और अपने मालिक का संदेसा कह सुनाया।
किन्तु इमाम साहब ने यज़ीद का शिष्य बनना
स्वीकार न किया। उन्होंने कहा कि मैं करबला
चलता हूँ; वहीं चल कर जो चाहना सो करना।
ज्यों ही उन्होंने करबला में प्रवेश किया त्यों हीं
शत्रुओं ने उन्हें फिर घेर लिया। बाहर से रसद
का भी भीतर जाना बन्द कर दिया। करबला
के नीचे बहती हुई फ़रात नदी का जल भी रोक
दिया। वहाँ कोई दूसरा जलाशय न था जिससे
हुसैनी दल की प्राण-रक्षा होती। निदान जल
के बिना प्यास से तड़प तड़प कर लोग मरने



महाकालेश्वर का मन्दिर—उज्जैन ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

[illegible] गया । हसन के [illegible] को [illegible] मालूम हो गई । इस तरह [illegible] है । [illegible] को इसका [illegible] के लिए [illegible] कर [illegible] खड़े हुए । [illegible] करने लगे । "हा हसन !" [illegible] ही धूम मच गई । [illegible] का [illegible] कर [illegible] चाहने लगा । और दोनों [illegible] के [illegible] इमाम हुसैन के फाटक पर पहुँचे । परन्तु [illegible] इमाम हुसैन ! धन्य तुम्हारी सहिष्णुता ! [illegible] तुम्हारी उदारता ! उन्होंने कातुरता से नहीं [illegible] के मोह से नहीं, अपमान के भय से भी नहीं [illegible] हिंसा के डर से, एक के लिए अनेक का [illegible] होने के भय से, अपने बन्धु-नाश का कारण उपेक्षा बना कर मीठे वचनों से सब को शान्त किया । सब लोग क्रोध को पीकर अपने अपने घर लौट गये ।

इसके उपरान्त हुसैन अपने मृत भाई हसन के पद पर प्रतिष्ठित हुए । इन्हीं दिनों मोआविया का परलोक-वास हो जाने से उसका अधिकार यज़ीद को प्राप्त हुआ । यज़ीद ने हुसैन से उनका मुरीद बनने के लिए कहला भेजा । हुसैन साहब ने उत्तर दिया कि यदि वे सच्चरित्र तथा निर्दोष होते तो अवश्य ही उनकी शिष्यता स्वीकार कर लेता। किन्तु वे वैसे नहीं हैं । उनके समान अपवित्र भ्रष्ट-चरित्र तथा क्रूर व्यक्ति का मैं कदापि मुरीद नहीं हो सकता। उत्तर ठीक ही था, पर यज़ीद को इससे गहरी चोट लगी । हुसैन साहब भी यह जान गये । इनको यह भी भली भाँति मालूम हो गया कि लोगों को उभाड़ कर उसके विरुद्ध खड़ा करने का सन्देह भी यज़ीद ने मुझ पर किया है, जो किसी प्रकार दूर नहीं हो सकता । अतः वह अवश्य उपद्रव करेगा। इन कारणों से खलाफ़त छोड़ कर शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए वे बाल-बच्चों-समेत मदीना से काबे शरीफ़ को चले गये।

कूफ़ा के लोगों ने यह समाचार पाकर उनको अपने यहाँ रहने के लिए आग्रहपूर्वक बुला भेजा। हुसैन साहब ने पहले अपने चचेरे भाई मुसलिम को बाल-बच्चों-समेत यहाँ भेजा । मुसलिम ने यहाँ पहुँच कर कुछ दिन वास करने के उपरान्त, हुसैन साहब को लिखा कि आप निर्भय चले आवें । यहाँ के अधिवासियों के हृदयों में निःसन्देह आप के विषय में अपूर्व भक्ति है । पत्र पढ़कर हुसैन साहब कूफ़ा जाने को तैयार हुए और वहाँ वालों को इसकी सूचना दे दी ।

गुप्तचरों से यह समाचार पाते ही यज़ीद ने ओबैदुल्ला को, १२ हज़ार सिपाहियों का सेनापति बनाकर, कूफ़ा की ओर भेजा । कूफ़ा में उस समय हुसैन साहब के आगमनोपलक्ष्य में नाना प्रकार के उत्सव हो रहे थे । लोगों की एक बृहत् संख्या सभा-मण्डप में एकत्र थी । नाच गान हो रहा था । चतुर ओबैदुल्ला, हुसैन साहब का कपटवेश बना कर तथा उन्हीं की सी पोशाक पहन कर, नगर में घुसा और सभा में जा, पहुँचा । सभा के लोगों ने हुसैन साहब के भ्रम से बड़े आदर के साथ उसको लिया । अवसर देख कर ओबैदुल्ला ने सीटी बजाई । उसके सिपाहियों ने तुरन्त ही वहाँ पर उपस्थित सभी मनुष्यों को पकड़ लिया । सब के पीछे मुसलिम साहब भी पकड़े गये और बाल-बच्चों-सहित मारे गये । तब हुर ने ओबैदुल्ला के आदेश से कई हज़ार सिपाही लेकर काबे शरीफ़ की ओर यात्रा की । मार्ग में हुसैन साहब को उसने घेर लिया और अपने मालिक का संदेसा कह सुनाया । किन्तु इमाम साहब ने यज़ीद का शिष्य बनना स्वीकार न किया । उन्होंने कहा कि मैं करबला चलता हूँ; वहीं चल कर जो चाहना सो करना । ज्यों ही उन्होंने करबला में प्रवेश किया त्यों हीं शत्रुओं ने उन्हें फिर घेर लिया । बाहर से रसद का भी भीतर जाना बन्द कर दिया । करबला के नीचे बहती हुई फ़रात नदी का जल भी रोक दिया। वहाँ कोई दूसरा जलाशय न था जिससे हुसैनी दल की प्राण-रक्षा होती। निदान जल के बिना प्यास से तड़प तड़प कर लोग मरने

लगे। हुसैन साहब ने हुर को बहुत समझाया और कहा कि—"जल का मार्ग छोड़ दो। जल के बिना लोग मर रहे हैं। मेरे लिए इतने प्राणियों का संहार क्यों करते हो? मैंने ख़िलाफ़त छोड़ ही दी। मदीना भी त्याग दिया। अब क्या चाहते हो? केवल फ़क़ीर की तरह मुझे जगत् में जीने की इच्छा है।" पर हाय! उस निर्दयी को तनिक भी दया न आई।

हुसैन के साथ केवल डेढ़ सौ मनुष्य और हुर के साथ हज़ारों लड़ाकू थे। लाचार उभय पक्ष में घोर संग्राम हुआ। दोनों पक्ष के ढेर के ढेर मनुष्य शहीद हुए। हुसैनी पक्ष के सब लोग खेत रहे। केवल हुसैन साहब और उनके रोगी पुत्र ज़ैनुल-आबदीन बच रहे। पुत्र ने पिता से कहा कि अब पहले मुझे ही युद्ध में जाकर अपनी रुग्णावस्था का अन्त करने दीजिए। पीछे आप जाइएगा। परन्तु पुत्र-वत्सल हुसैन से ऐसा कब हो सकता था। वे राज़ी न हुए। इसी समय, अवसर पाकर, लूट-पाट करने के लिए शत्रु लोग डेरे में प्रवेश करने लगे। फिर क्या था। इमाम साहब की शान्ति भङ्ग हो गई, आँखें अङ्गारे की तरह चमकने लगीं। भुजायें फड़कने लगीं। सारे शरीर का रुधिर उबलने लगा। क्रोध से अधीर होकर शत्रुओं पर सिंह के समान वे टूट पड़े। दो दिन तक अकेले घोर युद्ध किया। निदान दूसरे दिन सन्ध्या को शस्त्राघातों से विवश होकर भूतल-शायी हुए। हुर की आज्ञा से एक सिपाही ने उनका सिर काट कर ओबैदुल्ला के पास पहुँचाया। ओबैदुल्ला एक सुन्दर तश्तरी में रख कर उसे शाम ले गया और यज़ीद को भेंट किया। पापी यज़ीद ने हुसैन साहब के उस मृत मुख पर छड़ी मार कर अनेक भर्त्सनायें कीं। इमाम के पुत्र ज़ैनुल आबदीन, जो क़ैद करके लाये गये थे, बुलाये गये। यज़ीद ने उनसे पूछा कि अब तुम क्या चाहते हो। इमाम-पुत्र ने कहा कि पिता का सिर मुझे मिल जाय। सिर उनको दे दिया गया, उसको लेकर उन्होंने [illegible] दफ़न किया। यज़ीद ने ज़ैनुल-आबदीन को बाल-बच्चों समेत छोड़ दिया। वे वहाँ से मदीना चले आये और वहीं रहने लगे।

कहते हैं कि हुसैन साहब के अनुयायियों ने पीछे यज़ीद और ओबैदुल्ला को भी इसी प्रकार से काट कर मार डाला।

पहले पहल तुर्किस्तान के बादशाह तैमूरलङ्ग ने एक ताज़िया बनाकर इस घटना का स्मारक स्थापित किया। फिर तो पूछना ही क्या है। मुसलमानों में यह जगद्व्यापी त्योहार हो गया। दिन दूना रात चौगुना बढ़ कर अब तो यह इतना सर्वव्यापक हो गया है कि जहाँ मुसलमानों का एक भी घर है वहाँ भी प्रति वर्ष कम से कम एक ताज़िया अवश्य उठता है। हिन्दुओं में भी बहुत लोग यह त्योहार मनाते हैं।

रामचीज़ तिवारी

तुलसीदास।

(१)

देख कर सहसा हमारी साधना म्रियमाण—
जिस कमण्डलु के अमृत ने थे बचाये प्राण
वह तुम्हारे हाथ में था साधु तुलसीदास!
जी उठी फिर भावना, दृढ़ हो गया विश्वास।

(२)

जब तमोमय शून्य में भग रहे थे सब ओर
जब अज्ञानों की घटायें घर रही थीं घोर।
तब तुम्हीं ने था किया अनगन-सरोज-विकास,
कवि कहें या रवि तुम्हें हे अमर तुलसीदास!

(३)

हो गया जब आदि-कवि का मार्ग दुर्गमतीव
सुगम तुम ने ही किया करके उसे कमनीय।
सुन जीवन-धन जिसे हो जायँगे हम पार
देखता रह जायगा संसार-पारावार।

(४)

राम रसायन भी तुम्हारा हुआ [illegible],
चाहें [illegible] जिसे सब [illegible]।

काव्य से इतिहास हैं, इतिहास से हैं तन्त्र,
तन्त्र से फिर हैं तुम्हारे वाक्य वैदिक मन्त्र !

(५)

ये संस्कृत-सिन्धु में पाये जहां जो रत्न—
मथित करने में उन्हें करके अलौकिक यत्न।
हार जो तुमने दिये इस देश को उपहार—
कर सकेगा कौन उनके मूल्य का निर्धार ?

(६)

प्रस्फुटित करके हमारा पुण्य पूर्णादर्श
हृदय को तुम ने दिया है अमृत-हस्तस्पर्श।
राम राजा ही नहीं, पूर्णावतार पवित्र ;
पर न हमसे भिन्न है साकेत का गृहचित्र ॥

(७)

है हमारे अर्थ बस आदर्श ही आराध्य,
और साधन भी उसी का है हमारा साध्य।
जो हमारे सामने करदे उसे प्रतिभात
है वही तुम-सा हमारा विश्व-कवि विख्यात ॥

(८)

प्रकृति-पट पर धन्य वह अन्तर्जगत का दृश्य ;
धन्य वह सङ्गीतमय सत्काव्य हृदय स्पृश्य।
धन्य भारतवर्ष का प्रतिभा-प्रकाश-विलास,
धन्य रामचरित्र मानस, धन्य तुलसीदास !

मैथिलीशरण गुप्त।

मन की दृढ़ता।

(१)

जिस दिन मिस्टर मोहनलाल बॅरिस्टरी की परीक्षा पास करके और साथ ही एक गोरी बीबी को अपनी धर्मपत्नी बना कर अपने देश को लौटे उस दिन उनकी मित्र मण्डली में बड़ी खलबली [illegible]ई। बहुत लोगों ने तो उन्हें मूर्ख ठहराया, और भविष्यत् जीवन बड़ा दुःख-दायी होगा, यह जान कर हार्दिक दुःख प्रकट किया। एक सोहनलाल ही ऐसे थे जो उन्हें बड़ा भाग्यवान् समझते थे। ऐसा समझने का कारण था। सोहनलाल के मन में बहुत दिनों से यह गुप्त आकांक्षा थी कि मैं एक मेम साहिबा को अपनी सहधर्मिणी बनाऊँ। बेचारे सोहन इसी सोच-विचार में थे कि इसी बीच उनकी माता ने एक किशोरी के साथ उनका विवाह कर दिया। भग्न मनोरथ सोहन अपने अदृष्ट के अनुकूल चलने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतने में मित्र-वधू 'रोज़' बीबी ने आ कर उनसे हाथ मिलाया। सोहन के सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गई। उनकी सारी चेष्टायें व्यर्थ हो गईं।

वसन्त-काल आ जाने से जैसे पत्रहीन पेड़ों पर नवीन पत्रोद्गम हो जाता है उसी तरह सोहन की मुरझाई हुई आशालता फिर से नई हो गई। बाला वधू ललिता से अब उनका चित्त विमुख होने लगा। रोज़ के साथ बातचीत करने से ललिता अब उन्हें एकदम गँवार जँचने लगी। हिन्दू-कुलाङ्गना के सङ्कोच पूर्ण सलज्ज भाव से सोहन को घृणा पैदा हो गई। प्रति दिन मोहन के बँगले पर आने जाने से रोज़ के साथ उनकी जितनी ही घनिष्ठता होती गई उतना ही वे ललिता का साथ छोड़ने लगे। अन्त में, भीतर अपने कमरे में सोना छोड़ कर वे बाहर सोने लगे। गँवार ललिता अब अपने पतिदेव के दर्शनों से भी वञ्चित हुई। पर वह बेचारी इसका कुछ कारण न समझ सकी। किन्तु सोहन की दूर-दर्शिनी माता को निश्चय हो गया कि पुत्र के चरित्र में अवश्य ही कुछ दोष उत्पन्न हुआ है। सोहन की माता अत्यन्त बुद्धिमती और प्रिय-वादिनी थीं। उसने एक दिन सोहन को बुला कर कहा—"क्यों सोहन, तुझे हो क्या गया है ? रात दिन तू बाहर ही रहता है। यह क्या तमाशा है ? तू समझता है कि मैं कुछ जानती ही नहीं।" सोहन ने कुछ [illegible] से उत्तर दिया। [illegible] दिन है कि सोहन ने अपनी माता के साथ [illegible] से [illegible] [illegible] 'आज़ादी' क्या ? मुझ

हाँ की बातें पसन्द नहीं । मैं चाहे जहाँ रहूँ तुम्हें क्या" ? पुत्र की ऐसी रूखी बातें माता को असह्य हो गईं । "मेरे सामने ये बातें करते तुझे लज्जा भी न आई । तेरे जैसे कुपूत का मुँह भी न देखना चाहिए" । यह कहती हुई माता अपने कमरे में जा कर बिछौने पर लेट गईं । पुत्र-वधू ललिता व्यस्त होकर सास के पैर-तले बैठ गई । वह उसके पैरों पर हाथ फेरती हुई पूछने लगी —"माँ, आप आज अभी क्यों सो रहीं ? क्या तबीयत कुछ ख़राब है" ? बहू के इन ममता-भरे वचनों से सास की आँखों से आँसू की धारा बह चली । ललिता ने उसके इस रोने का कारण कुछ न समझा । तथापि वह शान्ति की चेष्टा करने लगी ।

(२)

भारत में आने के पहले रोज़ के मन में यह धारणा थी कि भारतवासी सभी काले और कुरूप होते हैं । इसका कारण शायद यह हो कि मोहन नाम ही के मोहन थे । सूरत-शकल से नाम का कोई सम्बन्ध न था । पर, यहाँ आकर सोहन को देखने से रोज़ की वह धारणा बिलकुल ही जाती रही । सोहन की अनिन्दित अनुपम सुन्दरता देख कर रोज़ उन पर मुग्ध हो ही रही थी अब उनके सौजन्य-पूर्ण व्यवहार से वह उनकी ओर एकदम ही आकृष्ट हो गई । साथ ही सोहन भी उस पर ऐसे मोहित हो रहे थे जैसे भक्त अपने आराध्य देवता का स्वरूप देख कर उस पर मोहित हो जाता है । नित्य ही उस गोरी देवी के दर्शन और उसके कर-कमलों में अपनी प्रेमाञ्जलि अर्पण करना सोहन का मुख्य कर्तव्य कर्म हो रहा था । सोहन प्रति दिन सायङ्काल रोज़ को साथ लेकर मोहन के बँगले की फुलवाड़ी में टहलते थे । उस समय उन दोनों में परस्पर अत्यन्त मधुर स्वर से अपूर्व अनुरागभरी बातें हुआ करती थीं । किसी किसी दिन मोहन भी उन दोनों के साथ हो जाया करते, किन्तु बड़े ही गिरे हुए मन से । सोहन के साथ रोज़ की इतनी घनिष्ठता उन्हें बिलकुल [illegible] थी । पर वे सब तरह लाचार थे । गोरी [illegible] पर हस्तक्षेप करना उनके

सामर्थ्य के बाहर था । किन्तु पति के सामने [illegible] का इस प्रकार दुराचरण उन्हें एक दम असह्य हो गया । एक दिन उन्होंने रोज़ से साफ़ सा[illegible] दिया कि मैं नहीं चाहता कि तुम सोहन के [illegible] किसी प्रकार का सम्बन्ध रक्खो । उसे मैं [illegible] अपने बँगले पर आने से मैं रोक दूँगा और [illegible] उससे अब न मिल पाओगी । रोज़ यह क्यों [illegible] लगी । उस योरुपियन लेडी ने तीव्र भाव से [illegible] बात का प्रतिवाद करके उनसे कहा—"[illegible] समय तुमसे कुछ ऐसी लिखा-पढ़ी तो हु[illegible] कि मैं किसी के साथ बात-चीत न कर[illegible] फिर तुम्हारे देश की स्त्रियों की तरह [illegible] दासी नहीं कि जो आज्ञा करो वही मैं [illegible] मैं तुम्हें सावधान किये देती हूँ कि अ[illegible] स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप न करना" । [illegible]

गोरी बीबी और काले साहब की [illegible] रही थीं कि इतने में हँसते हुए सोहनल[illegible] दोनों को गुड् बाई किया । पति को अ[illegible] करने की इच्छा से रोज़ तुरन्त ही से[illegible] पकड़ कर बाग़ में टहलने चली गई । [illegible]

(३)

रोज़ के इस अनुचित व्यवहार [illegible] के मारे पागल से हो गये । कमरे [illegible] एक पिस्तौल रक्खी थी । मोहन [illegible] देखने लगे । उनके मन में आया [illegible] रोज़ और सोहन की हत्या करके [illegible] बदला ले लूँ । पर, कुछ सोच-स[illegible] उसे वहीं रख दिया । जब रात [illegible] लेकर मोहन बाग़ीचे की तरफ़ च[illegible]

रोज़ और सोहन दोनों बाग़ी[illegible] मन में चिन्ता होने के कारण [illegible] साथ बात-चीत करने में कुछ अ[illegible] भाव को देख कर सोहन प्रेम[illegible] लगे—"रोज़, आज तुम्हें क्या [illegible] इस प्रकार बातें कर रही हो [illegible] है" ? "नहीं, आज मेरा चित्त [illegible] कह कर रोज़ ने सारा हाल [illegible]

ं मुँह पर ही ऐसी स्पष्ट बातें कहना ठीक । पर शोक ! तुम्हारे साथ मेरी जो दो चार बातें करती थीं शायद वे भी अब बन्द हो जायँ" । कह कर सोहन कातर-दृष्टि से रोज़ की ओर लगे । "नहीं अब इसका कुछ निपटारा ही करके गी । उसको क्या अधिकार जो मुझे तुमसे न है"—यह कहती हुई रोज़ ने आदर के साथ का हाथ पकड़ लिया । ठीक उसी समय को ताक कर मोहन ने पिस्तौल उठाई । पर चलाते समय उनका हाथ काँपने लगा । ारण, कुछ सोच समझ कर, मोहन वहाँ ले गये । जाते समय मन ही मन से कहने "नहीं, इन दोनों को जी से न मारूँगा । इस मारने में इन दोनों से अच्छी तरह बदला गा" ।

स घटना के थोड़े ही दिनों बाद रोज़ और विवाहबन्धन तोड़ कर अलग हो गये । इस र अधिक शोरोग़ुल मचाना मोहन को अच्छा । इसी कारण उन्होंने बिना किसी झगड़े-बखेड़े बाप और बड़े भाई के मत के विरुद्ध गोरी बीबी ह करके जो पाप उन्होंने किया था, मानों प्रायश्चित्त कर डाला । रोज़ के कारण माँ-बाप, भाई-बहिन सबको छोड़ दिया था । ई वर्ष बाद मोहन अपने घर लौटे और गुरु-ा चरण छू कर उनसे क्षमा माँगी ।

ोहन की बहुत दिनों की मनोकामना अब पूरी जिस दिन रोज़ और सोहन की शादी हुई देन रात को मोहन ने भी एक किशोरी का ग्रहण किया ।

ोहन चाहते तो रोज़ और सोहन की शादी में डाल सकते थे । क्योंकि, इसके पहले ही सोहन याह हो चुका था । यह बात मोहन को मालूम ादि कहीं रोज़ को इस बात का पता लग तो वह सोहन से बात भी न करती, ब्याह तो ा । पर, न जाने क्या सोच कर मोहन ने रोज़ बात छिपा रक्खी । विवाह हो जाने के बाद दो महीने तक सोहन ने रोज के साथ बड़े ही सुख से अपने दिन काटे । सोहन ने स्वप्न में भी न सोचा था कि उनके इस आनन्द में कभी बाधा पड़ेगी । मोहन का परिणाम देख कर भी उन्हें यह सन्देह न हुआ था कि रोज़ और भी किसी की अनुरागिनी बन कर उन्हें भी "डाईवोर्स" कर सकती है । उनके मन में दृढ़विश्वास था कि रोज़ आज उन पर जैसी प्रीति रखती है सदा ही वह उन पर वैसी ही प्रीति बनाये रक्खेगी । पर हाय ! आज उनकी वही प्रेममयी रोज़ उनके लिए सहसा चामुण्डा सी हो गई । दोनों आँखें लाल लाल करके वह उनसे कहने लगी—"तुमने मेरे साथ बड़ी दग़ाबाज़ी की । मुझे कभी यह ख़याल न था कि तुम ऐसे दग़ाबाज़ निकलोगे । अगर पहले यह बात मुझे मालूम हो जाती तो मैं तुम्हें कुत्ते की तरह दुरियाती" । यह सुन कर सोहन कुछ देर तक अवाक् से रह गये । अन्त में रुकी हुई आवाज़ से वे कहने लगे—"मैंने तुमसे कौन सी दग़ाबाज़ी की" ? "बस, बस, अब चुप रहो । तुम यह अच्छी तरह समझ रक्खो कि हम लोग जैसे 'लव', अर्थात् प्यार, करना जानती हैं वैसे ही अपमान का बदला भी लेना जानती हैं । छिः छिः तुम कैसे बेहया हो । एक बीबी के रहते तुम्हें दूसरी से शादी करते शर्म न आई" । अब सोहन की समझ में सारी बातें आगईं । उनका शरीर काँपने लगा । वे बहुत सँभल कर बोले—"बात झूठ है । इसके पहले कभी मेरी शादी नहीं हुई । तुम्हारे ही साथ मेरी पहली शादी हुई है" । इस जवाब को सुनते ही रोज़ एक विकट हँसी हँस कर बोली—"इस बात की जाँच अदालत में होगी । मैं तुम्हें सहज में छोड़नेवाली नहीं" । रोज़ घृणा की दृष्टि से सोहन की ओर देखती हुई वहाँ से चली गई ।

अब तो सोहनलाल करम ठोंक कर बैठ गये । उन्होंने निरपराधिनी ललिता तथा प्रिय मित्र मोहनलाल को जैसा मानसिक कष्ट पहुँचाया था उसका फल उन्हें हाथों हाथ मिल रहा है ।

× × × × ×

(४)

सोहनलाल की माँ और ललिता को भी इस की ख़बर लग गई । माता के हृदय में पुत्रस्नेह की

नदी फिर बह चली। सोहन का परिणाम सोच कर वह अकुला उठी। उसे धन की कमी न थी। सोहन की ओर से उसने तीन प्रसिद्ध बैरिस्टरों को पैरवी करने के लिए नियत किया। पर उसके मन में सोहन के छूटने की आशा तिल भर भी न थी। बैरिस्टर भी कह रहे थे कि भर सक हम सब उनको छुड़ाने की चेष्टा करेंगे; पर छूटने की आशा बहुत कम है। बेचारी ललिता की दशा अधिक शोचनीय थी। वह सास से पूछने लगी—"माँ, यदि मैं इस समय मर जाऊँ तो वे निर्दोषी ठहराये जायँगे या नहीं"—"नहीं, बेटी, ऐसी बातें न कर। तू मेरे घर की लक्ष्मी है। शायद तुझ पर ही दया करके भगवान् मेरे बच्चे की रक्षा करें"। यह कह कर सोहन की माता ने पुत्रवधू को अपनी गोद में खींच लिया। ललिता के फिर वैसा ही प्रश्न करने पर वह कहने लगी—"तू बिलकुल ही पगली है! अरे तुझे कितना समझाऊँ? एक स्त्री के रहते जब सोहन ने उस चुड़ैल के साथ ब्याह किया तभी वह दोषी ठहर चुका"। ललिता रोती हुई बोली—"हाय, यदि मैं इसके पहले ही मर गई होती"। अब तो सासबहू की आँखों से गङ्गा-यमुना की धारा बहने लगी।

दो तीन दिन बाद आँखें पोंछती हुई ललिता ने आ कर सास से कहा—"माँ, मेरे नाम सम्मन आया है। मुझे गवाही देने के लिए कचहरी जाना होगा। आप उन्हें आशीर्वाद दें। आपके पुण्य-बल से ही शायद वे छूट जायँ"। बहू की इस बात से, बड़ा दुःखित होने पर भी, सास को हँसी आ गई। वह अपने मन में कहने लगी—"इसे इतना भी ज्ञान नहीं कि इसकी गवाही तो सोहन के लिए और भी विपदा-जनक होगी"।

(५)

आज कचहरी में बड़ी भीड़ है। ऐसी भीड़ शायद ही कभी हुई होगी। दोनों ओर से बड़े बड़े वकील बैरिस्टर नियत किये गये हैं। सोहनलाल हँसते हुए कटहरे में रोज़ के बैरिस्टर की बातें सुन रहे हैं। [illegible] के ने सोहनलाल से सवाल किया— [illegible] "[illegible] "तुम [illegible] है"। सोहनलाल ने जवाब दिया—"मैं निर्दोषी [illegible] इसके पहले मेरी शादी नहीं हुई। रोज़ एक [illegible] रेज-युवक की अनुरागिनी बन कर मुझ पर [illegible] मिथ्या दोष लगा रही है"। इस जवाब को सुन [illegible] रोज़ के बैरिस्टर ने मुसकराते हुए कहा—"इस मा[illegible] में मेरे प्रधान गवाह हाज़िर हैं। मैं उन्हें पेश [illegible] का हुक्म चाहता हूँ। उनकी गवाही से झूठ [illegible] का पता लग जायगा"। इस पर, न्यायाधीश [illegible] आज्ञानुसार, घूँघट काढ़े एक स्त्री अदालत में [illegible] गई। उसने आते ही थोड़ा सा घूँघट हटा [illegible] चारों तरफ़ देखा। कुछ दूर कठघरे के भी[illegible] ललिता के आराध्य देव सोहनलाल उसे दिख [illegible] पड़े। चार आँखें होते ही सोहन का चेहरा फी[illegible] पड़ गया। पर, उनके दर्शनों से ललिता का सा[illegible] दूना हो गया। पति को निर्दोष ठहराने का सङ्[illegible] करके वह यहाँ आई है। अतएव ललिता ने सङ्[illegible] दूर कर दिया। उसने पूरे तौर से मुँह खोल दिया। उसे देख कर सोहन सोचने लगे—"मोहन [illegible] नरद क्या ललिता भी मुझसे बदला लेने आई है पर, इसमें उसका कुछ दोष नहीं। मैंने उस [illegible] पर बड़ा अत्याचार किया है। अब उसकी बारी [illegible] वह क्यों छोड़ने लगी"?

अदालत आदमियों से खचाखच भरी रहने पर भी इस समय चारों ओर ऐसा सन्नाटा छाया हुआ है कि यदि एक सुई भी ज़मीन पर गिरे तो उसकी आवाज़ साफ़ साफ़ सुनाई दे। सबसे पहले रोज़ के पैरोकार ने खड़े होकर सोहन की तरफ़ [illegible] करके ललिता से सवाल किया—"आप इन्हें [illegible] जानती हैं"? ललिता ने पति की ओर देख कर स्पष्ट स्वर में जवाब दिया—"पहचानती क्यों नहीं? यही हमारे आश्रयदाता और रक्षक हैं"। यह [illegible] सुन कर रोज़ मुसकराने लगी। उसके पास [illegible] हुए [illegible] युवक [illegible] ने भी सोहनलाल [illegible] तरफ़ कटाक्ष-पूर्ण दृष्टि से देखा। सोहनलाल [illegible] बड़े [illegible] थे। सोहन ने बदला लेने का उन्हें [illegible] [illegible] मिल गया है न? इससे उनके आनन्द [illegible] [illegible]

बैरिस्टर साहब ने फिर ललिता से सवाल किया—"तब तो आप उनका नाम भी जानती होंगी ? बताइए क्या नाम है" ?

ललिता ने फिर अपने आराध्य देव का दर्शन किया। पति का मुँह देखते ही उस पर मानों बिजली सी दौड़ गई। उसके दुर्बल हृदय में नवीन बल का सञ्चार हो उठा। पर, हिन्दू ललना हो कर वह पति का नाम कैसे उच्चारण करे ? किन्तु पति को बचाने के लिए उसे आज सब कुछ करना पड़ेगा।

मोहनलाल ने धीमी आवाज़ से अँगरेज़ बैरिस्टर से कहा—"आप ऐसा सवाल उनसे न करें। क्या आपको मालूम नहीं कि हिन्दू स्त्रियाँ पति का नाम नहीं लेतीं"। बैरिस्टर साहब हँस कर ललिता से बोले—"इस सवाल का जवाब देने में आपको कुछ एतराज़ हो तो रहने दीजिए"। ललिता ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"नहीं, ज़रा भी एतराज़ नहीं। इनका नाम है, बाबू सोहनलाल वर्मा"।

ललिता की इस बात पर मोहन तथा अदालत में उपस्थित सभी लोग आश्चर्य युक्त हो गये। सोहनलाल भी बहुत विचलित हुए। बैरिस्टर साहब ने फिर सवाल किया—"आपके साथ बाबू सोहनलाल जी की शादी हुए कितने दिन हुए" ? ललिता प्रसन्न होकर बोली—"मेरे साथ शादी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मेरा इतना सौभाग्य कहाँ कि वे मेरे साथ शादी करें"।

इस जवाब पर रोज़ के पक्षवाले घबरा सा गये। बैरिस्टर साहब भी एक गँवार
...करते बड़ी
...क से होकर
...। अच्छा
...का

भोजन।



नित्य ही हमें भोजन करने की आवश्यकता पड़ती है। अतएव इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि हमारा भोजन कैसा होना चाहिए। हम अच्छी तरह जानते हैं कि निराहार रहना हमें बहुत बुरा मालूम होता है। साथ ही हम यह भी स्वीकार करते हैं कि यदि जीवित रहना अभीष्ट है तो हमें अवश्य भोजन करना पड़ेगा। इस पर भी हम में से बहुत कम लोग इस बात पर विचार करने का कष्ट उठाते हैं कि हमें

भोजन की आवश्यकता

क्यों है ? कल्पना कीजिए, हमारा शरीर एक वाष्प-यन्त्र (Engine) है। यन्त्र का बाइलर (Boiler) या बटलोई जल से भरी हुई है और यन्त्र के सब भागों में अच्छी तरह तेल दिया हुआ है। इतना होने पर भी यन्त्र अपना कार्य्य नहीं कर सकता, अर्थात् वह चल नहीं सकता। बात यह है कि जब तक बाइलर के नीचे आग न सुलगाई जायगी तब तक वह कदापि न चल सकेगा। भाफ के द्वारा इञ्जिन चलने लगता है। भाफ पैदा करने अर्थात् शक्ति का सञ्चार करने के लिए ईंधन की आवश्यकता अवश्य पड़ती है।

मनुष्य के शरीर की भी यही दशा है। हमारी शक्ति शरीर के भिन्न भिन्न भागों के जलने अथवा क्षय होने (C[illegible]n) से उत्पन्न होती है। भोजन इसके लिए ...देता है। एक बार यन्त्र का चलना प्रारम्भ ...त होता है कि कोयले अथवा ईंधन ...रे धीरे कुछ विश्राम से ...े कोयले के स्थान ...ड़ता है। इसी प्रकार ...होता है उसकी ...श्यकता पड़ती है। ...और युवा-अवस्था में हमारा ...है। इस बढ़ाव के लिए ...की आवश्यकता पड़ती है।

शरीर के ताप (Temperature) की स्थिति

के लिए भी भोजन आवश्यक है। शरीर में धातुओं के सदा व्यय होते रहने पर ताप की प्राकृतिक उष्णता ९८ दरजे से कुछ अधिक रहती है। हमें मालूम है कि जब हम बीमार पड़ते हैं तब डाक्टर हमारे मुँह या बग़ल में एक छोटा सा यन्त्र लगाता है। इस यन्त्र को थर्मामीटर (Thermometer) अर्थात् उष्णता-मापक यन्त्र कहते हैं। डाक्टर जानता है कि हमारे शरीर की प्राकृतिक उष्णता सर्वदा कितनी रहनी चाहिए। उतनी उष्णता के कम होने या बढ़ जाने पर वह फ़ौरन जान जाता है कि हम रोगी हैं या नीरोग।

शीत-प्रधान देशों में यदि शरीर के ताप को यथास्थित रखने का कोई उपाय न हो—पेट को भोजन न मिले—तो मनुष्य-शरीर धीरे धीरे ठण्डा पड़ जाय और शीघ्र ही वह मृत्यु का ग्रास बन जाय। उष्ण-प्रधान देशों में भी यही परिणाम होता है। हम लोगों को अच्छी तरह मालूम है कि मृत्यु के समय उष्णता कम होते होते देह ठण्डी पड़ जाती है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि भोजन करना नीचे लिखे हुए चार मुख्य कारणों से आवश्यक है:—

(१) काम करने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए।
(२) शरीरस्थ धातुओं की व्यय-पूर्ति के लिए।
(३) अङ्गों की बाढ़ और पुष्टता के लिए।
(४) देह में उष्णता उत्पन्न करने के लिए।

अब हमें देखना चाहिए कि किस प्रकार का भोजन हमारी इन आवश्यकताओं की पूर्ति उत्तमता के साथ कर सकता है। साथ ही हमें यह भी जानना चाहिए कि इस प्रकार के खाद्य पदार्थ किस नियम से एक दूसरे के साथ मिलाये जाकर सेवन किये जा सकते हैं।

इस बात को जानने के लिए हमें पहले

शरीर की रचना

पर कुछ विचार करना चाहिए। हमें मालूम है कि मनुष्य-शरीर भिन्न भिन्न अङ्गों और उन अङ्गों के अवयवों से बना हुआ है। हमारे सारे अङ्ग और अवयव रासायनिक पदार्थों के संयोग से बने हुए हैं।

शरीर का प्रायः दो तिहाई भाग जल से बना हुआ है। यह जलीय पदार्थ हाइड्रोजन (जलजनक वायु) और आक्सिजन (प्राणप्रद वायु) का यौगिक पदार्थ है। इस जल के कारण हमारे शरीर की रगें कोमल हैं और इसीके द्वारा पौष्टिक पदार्थ, जो हम सेवन करते हैं, हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाते हैं। शरीर का अवशिष्ट तिहाई भाग रासायनिक तत्त्वों से बना हुआ है। रासायनिक तत्त्वों में मुख्य ये हैं—

(१) आक्सिजन
(२) हाइड्रोजन
(३) नाइट्रोजन
(४) कोयला (Carbon)
(५) गन्धक (Sulphur)
(६) फ़ासफ़ोरस (Phosphorous)

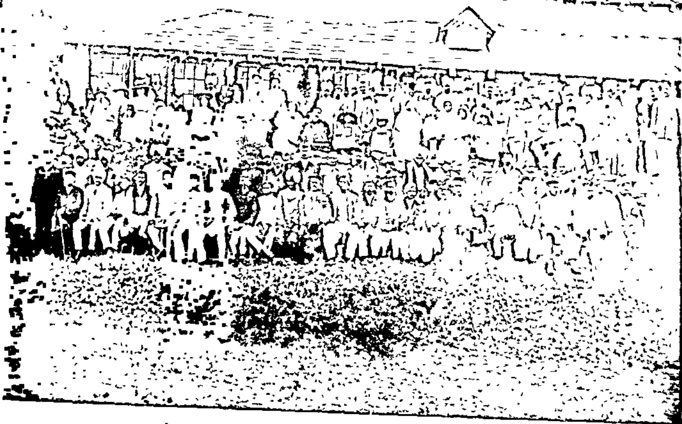
इनमें से पहले तीन तत्त्व प्राकृतिक अवस्था में वायुरूप पाये जाते हैं। पर अन्तिम तीन दृढ़ हैं। अनवाही या दृढ़ अवस्था में जब मनुष्य-देह में इन तत्त्वों का संयोग होता है तब इनसे कुछ और पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थों को आरगेनिक (Organic) कहते हैं।

ऐसे पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो कारबन, हाइड्रोजन और आक्सिजन के संयोग से बनते हैं, जैसे चर्बी। इन्हें उष्णता या बलवर्द्धक (Non-Nitrogenous) पदार्थ कहते हैं। दूसरे वे जो नाइट्रोजन, आक्सिजन, हाइड्रोजन और कोयले के संयोग से बनते हैं। ऐसे पदार्थों में कभी कभी थोड़ा सा गन्धक या फ़ासफ़ोरस भी मिला रहता है। इन्हें मांसवर्द्धक (Nitrogenous) पदार्थ कहते हैं।

शरीर में कई प्रकार के खनिज पदार्थ भी हैं—जैसे लवण जो शरीर के प्रत्येक भाग में है, चूना जो हड्डियों में और लोहा जो रक्त में है। उपर्युक्त पदार्थ शरीर में इस हिसाब से मौजूद हैं:—

जल	...	६१.०	फ़ी सदी
चर्बी	...	१५.४	,, ,,
खनिज पदार्थ	...	५.५	,, ,,
अन्य पदार्थ	...	१८.१	,, ,,

इससे यह सिद्ध है कि ज्यों ज्यों ये पदार्थ शरीर में व्यय होते जाते हैं त्यों त्यों इनके स्थान पर ऐसे ही और



भोवाली स्वास्थ्य निवास (सनाटोरियम) के कर्मचारी, रोगी और दर्शक आदि।



लफ़टेन्ट जे० सी० स्माइथ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

श्रम करने पर भी नहीं थक सकते। इस बात की ख़ूब परीक्षा हो चुकी है। चर्बी से देह की उष्णता भी बनी रहती है। उष्ण-प्रदेशों में चाहे यह बात विशेष आवश्यक न भी हो, पर शीत-प्रदेशों में तो मनुष्य इसका बहुत अधिक उपयोग करते हैं। अतएव चर्बी तीन कारणों से अधिक लाभकारी है—

(१) वह पाचन-शक्ति को बढ़ाती है, जिससे देह पुष्ट होती है। (२) वह बल को भी बढ़ाती है और (३) शरीर को गरम रखती है।

यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि अधिकता से चर्बी काम में लाई जाय तो वह देह में इकट्ठी हो जाती है। अतएव मनुष्य स्थूल हो जाता है। मनुष्य की पाचन-शक्ति घट जाती है और उसका कलेजा बिगड़ जाता है।

बिना चर्बी वाले पदार्थों में भी न्यूनाधिक अंश में कोयला,हाइड्रोजन और आक्सिजन रहता है। ऐसे पदार्थों में हाइड्रोजन का भाग आक्सिजन से ठीक दूना रहता है, जैसे जल में। ऐसे पदार्थ केवल वनस्पति के रूप में पाये जाते हैं—जैसे, शकर, गोंद, मांड़ी (निशास्ता) आदि। आलू, चावल, मकई, कुटवा, आरारोट आदि में मांड़ी (Starch) सब से अधिक मात्रा में रहती है। मांड़ी ठंडे पानी में नहीं घुलती। पर गर्म पानी में फूट कर निकले हुए इसके नन्हें नन्हें दानों से एक प्रकार की लेई सी बन जाती है। पकाये हुए मांड़ीदार पदार्थ पाचक होते हैं, किन्तु उन्हें कच्चा पचाना कठिन होता है।

शकर भी पौधों से प्राप्त होती है, विशेषतः ईख और चुकन्दर से। इसके गुण भी चर्बीदार पदार्थों के समान हैं। पर, मनुष्य के लिए लिए पदार्थों की इतनी आवश्यकता नहीं।

यह न समझना चाहिए कि इन दो प्रकार के पदार्थों से ही हमारा काम पूरा हो सकता है या हमारी [illegible] का कोई प्रकार निर्वाह हो सकता है। देह में [illegible] आदि पदार्थों का [illegible] हमेशा [illegible] रहता है। इस [illegible] कारण नाइट्रोजन [illegible] पदार्थ, किसी न किसी रूप में, आहार के [illegible] इतनी देर से [illegible] चाहिए।

भिन्न भिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ।

[illegible] की अधिकता से [illegible] कि भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थों की आधी छटांक मात्रा में कितने ग्रेन का[रबन] और कितने ग्रेन नाइट्रोजन रहता है। एक औंस [की] आधी छटांक में कोई ४३८ ग्रेन होते हैं। इस हिसा[ब से] वज़न में एक ग्रेन दो रत्ती से कुछ कम हुआ—

		नाइट्रोजन	कारबन
कच्चा मांस	...	१४.३	३१
पका हुआ मांस	...	१६.३	११०
मछली	...	१२.६	४८
मुरग़ी इत्यादि	...	१४.७	२७
रोटी (मैदे की)	...	९ ९	११६
गेहूँ का आटा	...	७.७	१६६
जव का आटा	...	८ ६	१७३
चावल	...	३.९	१७१
मकई	...	७.०	१६६
आरारोट	...	०.६	१६२
मटर	...	१९.४	१२६
आलू	...	१.४	४१
घी	...	०.७	२६६
अण्डा	...	६ ४	६८
दूध	...	२.८	३०
मक्खन	...	१ ६	१०१
शकर	...	—	१३८

मांस और अण्डे आदि से हम घृणा करते हैं। [इस] कारण उनके विषय में अधिक लिखना व्यर्थ है। पर [इ]तना बता देना आवश्यक है कि मांस बहुत देर में हज़म होता है। मांस खाना भारतवर्ष के सदृश उष्ण देश में अनावश्यक [ही] नहीं, हानिकारक भी है। यदि मांस खाना ही हो तो [अण्डा] खाना अच्छा है। अण्डा बहुत पौष्टिक होता है और [जल्द]ी पच जाता है।

अण्डे और मांस की अपेक्षा दूध [illegible] अच्छा है। यदि केवल दूध ही का सेवन किया जाय तो मनुष्य [illegible] जीवित रह सकता है। क्योंकि, जीवन-रक्षा के लिए [जो] [illegible] पदार्थ आवश्यक हैं वे सब दूध में मौजूद हैं। [illegible] नाइट्रोजन पदार्थ, चर्बी, शकर, खनिज पदार्थ [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

ही चाहिए। इसके द्वारा बालक बढ़ना, बल प्राप्त करता और मोटा होता है। ताज़ा दूध सब से अधिक बलवर्द्धक और पाचक है। बच्चों के लिए तो दूध बहुत ही लाभदायक है। रुग्णावस्था में तो दूध के बिना काम ही नहीं चल सकता। क्योंकि उसमें अधिक पाचक पदार्थ और दूसरा नहीं। इसकी बनावट इस प्रकार है:—

		गाय	स्त्री
मांसोत्पादक पदार्थ	...	४·१	२·२५
चर्बी	...	३·६	३ ३४
शक्कर	...	५·२	३ ७७
नमक	...	०·८	—
जल	...	८६·०	८१ ४
		१००·०	१०० ०

इन खाद्य पदार्थों के सिवा जो प्राणियों से हमें प्राप्त होते हैं और भी ऐसे पदार्थ हैं जिनमें नाइट्रोजन अधिक रहता है। ये वनस्पति-जन्य पदार्थ हैं। इनमें गेहूँ मुख्य है। इससे हम रोटी तैयार करते हैं। आटे में फी सदी ७ ७ नाइट्रोजन और १६·६ कारबन रहता है। बिना छना हुआ आटा यद्यपि शक्तिवर्द्धक होता है, तथापि वह पाचक कम होता है।

गेहूँ की रोटी बना लेने से उसके नाइट्रोजन और कारबन का कुछ भाग नष्ट हो जाता है। पर पाचक शक्ति उसकी बढ़ जाती है। रोटी में एक दोष है। यद्यपि उसमें कारबन और नाइट्रोजन आवश्यकतानुसार वर्तमान रहता है, तथापि चर्बी और नमक का भाग बहुत कम रहता है। रोटी के साथ घी मक्खन आदि का उपयोग करने से यह दोष दूर हो जाता है।

रोटी शीघ्र नहीं पचती। पर वह पूड़ियों से अधिक पाचक होती है। बात यह है कि सेंकने से गेहूँ की माँड़ी के दाने फूट जाते हैं।

चावल भी अच्छा खाद्य पदार्थ है। परन्तु, उसमें नाइट्रोजन का भाग बहुत कम, माँड़ी का अधिक है। साथ ही चर्बी उसमें होती ही नहीं। इस कारण रोटी से वह कम बलवर्द्धक है। पर वह पच शीघ्रता से जाता है।

कहीं कहीं दीन-दरिद्र लोग गेहूँ के बदले मकई काम में लाते हैं। इसकी भी रोटी अच्छी होती है। क्योंकि इसमें चर्बी, नाइट्रोजन, कारबन तीनों पाये जाते हैं।

आलू अब हमारे देश में अधिकता से पैदा होता है उसमें सब से अधिक भाग माँड़ी का रहता है। उसमें कारबन का हिस्सा नाइट्रोजन से चालीस गुना अधिक है।

मटर, चना, अरहर, उड़द आदि दाल वाले पदार्थ भी पौष्टिक खाद्य हैं। उनमें, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाइट्रोजन का भाग अधिक रहता है—क़रीब क़रीब उतना ही जितना मांस में। दाल-चावल का खाना पूरा वैज्ञानिक भोजन है। क्योंकि, चावल से अधिक माँड़ी और दाल से अधिक नाइट्रोजन प्राप्त होता है। घी, मक्खन, तेल आदि का उपयोग भी, जहाँ तक सम्भव हो, करना उचित है।

भोजन के साथ कुछ शक्कर, गुड़ आदि के उपयोग की भी बड़ी आवश्यकता है। पर बहुत नहीं। चाय और दूध में जितना मीठा पड़ता है उतना ही काफ़ी है।

वनस्पति भी हमारे खाद्य पदार्थ हैं। शाक, गोभी, मूली, गाजर, शलजम, बैंगन, लौकी और पालक इत्यादि से हमें नमक और एक प्रकार का तेज़ाब मिलता है। शरीर-रक्षा के लिए इन पदार्थों की बड़ी ज़रूरत है। यदि ये हमें न मिलें तो हमारे शरीर में एक प्रकार का रोग (Scurvy) पैदा हो जाय।

इन पदार्थों के सिवा कई प्रकार के मसाले भी खाने के काम आते हैं—जैसे नमक, मिर्च, राई, ज़ीरा, हल्दी इत्यादि। लाल मिर्च को लोग कम काम में लाते हैं। यद्यपि ये हमारे आहार नहीं, तथापि इनसे हमारा भोजन सुस्वादु हो जाता है, उसमें रुचि बढ़ती है और वह शीघ्र पच जाता है। पर, बहुत मसालेदार भोजन करना हानिकारक है।

मिश्रित भोजन की आवश्यकता।

भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थों में कारबन और नाइट्रोजन का भाग एक सा नहीं रहता। शरीर के लिए नाइट्रोजन और कारबन का कुछ आवश्यक अंश हमें प्रति दिन अवश्य चाहिए। इस कारण हमारा आहार मिश्रित हो तो अच्छा है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, शरीर के लिए प्रति दिन ४,२०० ग्रेन कारबन और १०० ग्रेन नाइट्रोजन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, यदि हम केवल रोटी ही खावें तो १००

प्रेन नाइट्रोजन की प्राप्ति के निमित्त प्रायः डेढ़ सेर रोटियाँ हमारे लिए प्रति दिन होनी चाहिए। पर, इस दशा में हम कारबन आवश्यकता से अधिक खा जायँगे। इस कारण एक सेर रोटी के साथ ६ छटाँक तरकारी खाना अच्छा है। इससे कारबन और नाइट्रोजन का यथेष्ट अंश मिल सकता है। इसी प्रकार यदि केवल चावल ही काम में लाया जाय तो नाइट्रोजन का यथेष्ट अंश न मिलने से पेट फूट जाय और अजीर्ण हो जाय। इसी लिए चावल-दाल का मिश्रित भोजन बहुत अच्छा है। एक ही प्रकार का भोजन करने से रुचि कम हो जाती है, भूख भी घट जाती है और मिर्च आदि खाने का अभ्यास बढ़ जाता है।

नीरोग मनुष्य का दैनिक आहार साधारणतः इस प्रकार का होना चाहिए—

मांसवर्द्धक पदार्थ	...	२ १६	छटाँक
चर्बीयुक्त पदार्थ	...	१ ६	,,
माँड़ीयुक्त पदार्थ	...	५.८	,,
नमक	...	.५	,,
		१० ०६	,,

इसके सिवा प्रायः दो सेर जल।

जिस मनुष्य को परिश्रम नहीं करना पड़ता उसके लिए प्रति दिन आठ छटाँक भोजन काफ़ी है। पर, परिश्रमी मनुष्य के लिए १३ छटाँक से एक सेर तक अन्न की आवश्यकता है।

भारतवर्ष के सदृश जल-वायु वाले देश में परिश्रमी मनुष्य का भोजन साधारणतः इस प्रकार होना चाहिए—

चावल या रोटी	...	६	छटाँक
तरकारी	...	२½	,,
घी, तेल, मसाला	...	१	,,
नमक	...	¼	,,
दाल	...	½	,,

पर, प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार खाने की सामग्री तथा मात्रा को घटा बढ़ा भी सकता है।

भोजन-जन्य रोग

अधिक भोजन से पेट में विकार पैदा होता है; मेदे में भोजन पचाने की शक्ति नहीं रह जाती। इससे पेट भारी हो जाता है और सुस्ती मालूम होती है। बदहज़मी, अती-सार, संग्रहणी और पाण्डुरोग आदि भी हो जाते ... एव जितना खाने की इच्छा हो उससे कुछ ... खाना चाहिए।

बहुत कम अन्न खाने अथवा उपवास करने का ... बुरा होता है। उससे शरीर क्षीण हो जाता है, ... जाती है और अन्त में मृत्यु हो जाती है। म... पदार्थ न मिलें तो भी यही दशा होती है। बहु... खाने से भी मनुष्य बीमार पड़ जाता है।

भोजन करने का समय

नियत समय पर भोजन करना भी बहुत आवश्... भोजन विधि-पूर्वक करना चाहिए। प्रातःकाल कुछ ... भोजन कर लेना चाहिए। १० या ११ बजे इ... भोजन करना और सन्ध्या को ५ या ७ बजे ब्याल... चाहिए। रात्रि में, जहाँ तक हो सके, हलका ही ... करना उचित है। कारण यह कि भरपेट भोजन के ... सोना हानिकारक है। ठीक समय पर भोजन न करना ... नहीं। भोजन पचने के उपरान्त दूसरी बार भोजन ... पहले पेट को कुछ विश्राम लेने की आवश्यकता रह... नियत समय पर भोजन न करना या और कुछ खा... हानिकारक है। खाने के पदार्थ खूब चाब कर धी... धीरे खाना उचित है। भोजन के साथ अधिक ... लेना भी हानिकारक है।

पकाना

भोजन पकाया हुआ क्यों खाना चाहिए, इसके ... कारण हैं—

(१) पका हुआ खाद्य देखने में अच्छा और ... अधिक सुस्वादु होता है।

(२) वह शीघ्रता से पच जाता है।

(३) पकाये हुए खाद्य को पचाने में मेदे को ... मिहनत करनी पड़ती है।

(४) पकाने से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

(५) पकाये हुए पदार्थ शीघ्र सड़ते या बिगड़ते न...

पेय पदार्थ

पेय पदार्थों के मुख्यतः दो प्रकार हैं। पहला म... दूसरा अमादक।

प्रमादक पदार्थों में दूध, जल, चाय और कहवा आदि मुख्य हैं।

चाय एक पौधे की पत्तियों से तैयार की जाती है। वह चीन, भारत और लङ्का में विशेषता से पैदा होती है। हरी पत्तियाँ तैयार करने पर काली हो जाती हैं। चाय बनाने की तरकीब प्रायः सभी जानते हैं। इससे उसका वर्णन करने की ज़रूरत नहीं। चाय की पत्तियाँ उबलते हुए पानी में बहुत देर तक न रखनी चाहिए। क्योंकि, देरी होने से उनमें से एक प्रकार का रस (Tannin) निकल आता है। वह पेट के लिए हानिकारक है। साधारणतः यह कोई भोजन नहीं। पर थोड़ी सी अच्छी बनी हुई चाय पीने से शरीर में कुछ फुर्ती आजाती है। वह रगों और पुट्ठों के लिए शक्ति-वर्द्धक होती है। वह मादक नहीं और न वह शिथिलता ही उत्पन्न करती है। पर, यदि अधिकता से उसका सेवन किया जाय या यदि वह विधि-पूर्वक न बनाई जाय तो उससे भूख न लगना, अजीर्ण, निद्रानाश, हृदय का धड़कना और नसों की शिथिलता आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। दूध और चीनी पड़ जाने पर वह अधिक गुणकारी हो जाती है।

काफ़ी (अर्थात् कहवा) एक प्रकार के पौधे के बीज से बनती है। वह अरब, अफ़्रीका आदि उष्ण प्रदेशों में पैदा होती है। कहवे के बीज भून कर उनका चूर्ण बना लिया जाता है। उस पर खौलता हुआ पानी डाल देते हैं। इससे वह पीने लायक़ हो जाती है। एक प्याले कहवे के लिए चाय भर्दा [illegible] चूर्ण डालना चाहिए। इसके भी गुण चाय के समान हैं। यह थकावट को दूर करती है।

मादक पदार्थ—मीठे अथवा शक्कर-युक्त पदार्थों के सड़ने से उनमें एक प्रकार का रासायनिक (Fermentation) विकार उत्पन्न हो जाता है। इसीसे मद्य बन जाता है। पश्चिमी देशों में [illegible] का सेवन [illegible]

जाने से शरीर की कुछ उष्णता निकल जाती है। यह समझना भूल है कि ठंडे दिनों में मद्य पीने से शरीर गरम रहता है। चमड़े में रक्त भर जाने से कुछ समय तक गर्मी अधिक अवश्य रहती है। पर, उसके बाहर निकलते ही शरीर की प्राकृतिक उष्णता कम हो जाती है। मद्य पीने के उपरान्त शिथिलता आती है। यदि अधिक मद्य पिया जाय तो पुट्ठों और रगों पर बुरा असर पड़ता है। इस दशा में मनुष्य को अपने आप को सँभालना कठिन हो जाता है। न बोलने की शक्ति रहती है और न चल फिर सकने ही की। मदिरा यदि अधिक मात्रा में पी जाय तो उससे मृत्यु का होना भी सम्भव है। जिस मनुष्य को मद्य पीने का अभ्यास पड़ जाता है उसकी बड़ी दुर्दशा होती है।

मद्य पीना अनावश्यक ही नहीं, किन्तु बहुत हानिकारक भी है। बहुत बलहीन हो जाने अथवा वृद्धावस्था में उससे कुछ लाभ शायद हो सकता हो। रुग्णावस्था में यदि वैद्य की आज्ञा हो तो बताई हुई मात्रा में मद्य पान किया जा सकता है। पर यह और देशों की बात है। हमारे देश में तो मद्य पान की कुछ भी आवश्यकता नहीं।

[विज्ञान परिषद् की ओर से]

[illegible]।

सुमन।

[[illegible]]

सुमन ! आज तू पड़ा हुआ है [illegible]
[illegible], हाय ! [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

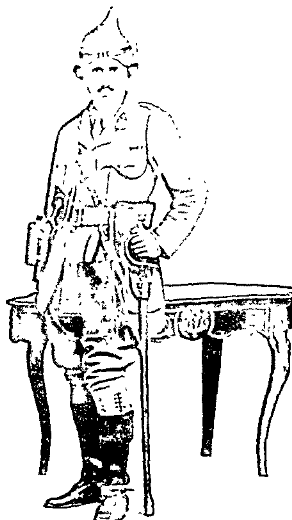
और तीरे की लड़ाइयों में बहुत नाम पाया है। परन्तु वर्तमान युद्ध के मुक़ाबले में उन लड़ाइयों में लड़ना मानो लात मार कर पापड़ तोड़ना था। आज कल यह फ़्रांस में लड़ रही है।

१७ मई १९१५ को, रात के समय, इस पल्टन की एक कम्पनी को आज्ञा मिली कि "ग्लोरी होल" नाम की एक खाई के कुछ भाग पर क़ब्ज़ा करो और "गार्डन हाइलेन्डर्स" नाम की घाँघरे वाली गोरा पल्टन को, जो वहाँ थी, वापस भेजो। "हाइलेन्डर्स" के सिपाही कई दिनों से बराबर लड़ रहे थे। उन्होंने जर्मन लोगों की एक खाई में घुस कर और उन्हें वहाँ से भगा कर उस पर अपना क़ब्ज़ा भी कर लिया था। इसी जीती हुई खाई पर अपना दख़ल जमाये रखने के लिए सिक्ख-कम्पनी को हुक्म हुआ। परन्तु, अभाग्यवश, उसके बाईं तरफ़, पास ही, जो खाई थी उस पर जर्मनों ही का क़ब्ज़ा था। उन लोगों ने अपनी और सिक्ख-खाई के बीच छोटे मोटे वृक्ष, लकड़ आदि डाल कर एक प्रकार की आड़ बना ली थी। जब किसी खाई पर पहले पहल क़ब्ज़ा किया जाता है तब सिपाही लोग पहला काम यह करते हैं कि नई खाई से अपने पीछे की खाइयों में जाने के लिए एक गहरी नाली खोद लेते हैं। उसी के भीतर से गोला, बारूद, रसद आदि भेजी जाती है। खुले मैदान से आना जाना असम्भव होता है। परन्तु सिक्ख लोग यह काम नहीं कर सके। क्योंकि वे आधी रात को पहुँचे थे।

समय तीन चार बजे तड़के का था। अभी उजेला न हुआ था। इस समय कप्तान फेंटन ने देखा कि शत्रु की फ़ौज बाईं तरफ़ की खाई में छिपे छिपे आ रही है। सिक्खों ने तुरन्त मोर्चा बचाना आरम्भ किया। परन्तु [illegible] होता है, इसकी [illegible] कारण न हो सकी। जब [illegible] का समय आया तब देखा गया कि बाईं तरफ़ की खाई में शत्रुओं की संख्या बहुत ज़ियादह है। [illegible] यह [illegible] विदित हुआ कि हम पर तुरन्त ही हमला होगा। वे लोग इस [illegible] में थे कि दूसरे [illegible] से लगातार बम्ब फेंके जायँ। सिक्खों ने [illegible] से बम्ब फेंकना आरम्भ किया। इस प्रकार बम्ब [illegible] दो [illegible] रही। सिक्ख लोग [illegible] न डिगे। शत्रु की खाई में सैनिक बहुत ज़ियादह थे। इस कारण वे लोग मनमाने बम्ब फेंक सकते थे। उनकी खाई का सम्बन्ध भी पीछे से नाली द्वारा था। सो उनको [illegible] बराबर मिलता जाता था और काम पड़ने पर कुमक भी आ सकती थी। सिक्ख लोग इने गिने कुल सौ जवान थे। वे एक प्रकार से एक कुवे में बन्द से थे। पीछे से कुमक आने का कोई रास्ता न था। तथापि वे निडर होकर [illegible] लड़ते रहे। जब दो पहर का समय निकट आया तब मालूम हुआ कि सूखे बम्ब बहुत कम रह गये हैं। बाक़ी सब गीले हैं, जिन्हें फेंकने से कुछ भी लाभ नहीं। [illegible] पीछे की खाइयों को सङ्केत द्वारा समाचार भेजे गये। [illegible] "गार्डन हाइलेन्डर्स" की वही पल्टन थी जो रात को वापस गई थी। उसके अफ़सरों ने दो बार गोलों के सन्दूक़ भेजने का प्रयत्न किया; परन्तु दोनों बार उनकी चेष्टा व्यर्थ गई। जो टुकड़ियाँ भेजी गईं उनको बहुत हानि उठानी पड़ी। उनके अफ़सर भी मारे गये। लाचार उनको वापस जाना पड़ा। और अधिक प्रयत्न करना व्यर्थ समझा गया।

इधर खाई में बम्ब के गोले प्रायः चुक गये थे। वे और न आवें तो जर्मनों को रोकने का कोई उपाय नहीं। और यदि वे खाई में घुस आवें तो नाक कट जाती। इस कारण सिक्ख-कम्पनी के कप्तान ने सिपाहियों से पूछा कि कौन कौन आदमी खुले मैदान में जाकर गोलों के सन्दूक़ लाने को तैयार हैं। इस काम के लिए जाना मानो मौत को बुलाना था। परन्तु प्रत्येक सिपाही ने हाथ उठा दिया कि हम तैयार हैं। कप्तान साहब ने दस सिपाही चुन लिये और उनके साथ लफ़टंट स्माइथ को भेजा। स्माइथ साहब की उम्र केवल २१ वर्ष की है; अभी स्कूल से निकले हैं। तिस पर भी बड़े साहसी हैं। ये भी बड़े उत्साह से सिपाहियों के साथ चले। येन केन प्रकारेण वे अंग[illegible] पल्टन की खाइयों में कुशलतापूर्वक जा पहुँचे। पहुँचना तो कुछ कम कठिन था, परन्तु लौटती बार बम्बों से भरे हुए भारी भारी सन्दूक़ लाना था। प्रत्येक सन्दूक़ में ९६ बम्ब थे। उनको उठाने के लिए चार चार मनुष्यों की आवश्यकता थी।

दो बजे दोपहर को [illegible] शुरू हुआ। [illegible] की दूरी पर बाईं तरफ़ की खाई में पहुँचना था। [illegible]



माननीय कप्तान मलिक उमर हयातखाँ तिवाना, सी० आई० ई०

[युद्धस्थल में ए० डी० सी० का काम कर रहे हैं ।]

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



२३ नंबर सिक्ख-पायनियर्स पलटन के अफ़सर और सिपाही

[आ]ड़ वाड़ कुछ न थी। लाचार सिपाहियों ने धरती [प]ेट कर सरकते सरकते चलना आरम्भ किया। परन्तु [सन्द]ूक भारी थे। वे किस प्रकार उठें? सिपाहियों ने [अ]पने साफ़े खोले। उनका एक छोर तो उन्होंने [सन्द]ूकों की कड़ियों से बाँधा और दूसरा अपनी कमर से। [इस] प्रकार वे आगे खिसकते चले। पीछे से दो चार सिपाही [सन्द]ूक को ढकेलने लगे। "हाइलेन्डर" पल्टन की खाई [के] मेंह से कुछ दूरी पर एक कम गहरी नाली थी। [पह]ले के समय "हाइलेन्डर" लोगों ने जब बम्ब पहुँचाने [का] प्रयत्न किया था तब उनका बहुत नुक़सान हुआ था। [उन] लोगों को भी इसी रास्ते से आना पड़ा था। इस[लि]ए वह नाली लाशों से भरी हुई थी। सिपाहियों को [लाशों] के ऊपर से खिसकते जाना पड़ा। जब वे मुर्दों के [ऊप]र होकर खिसकते तब उनका बदन जर्मन लोगों को [दिख] जाता और वे ताक ताक कर निशाना मारते। यदि [व]हाँ से निकल भी जायँ तो सन्दूक कैसे निकलें? मुर्दों के [बी]च में आ जाने के कारण वे अटक जाते। यदि झटका [दे क]र सन्दूक खींचें तो ठोकर खाने का भय और ठोकर [से ब]म्ब फूटने और सब के वहीं उड़ जाने की शङ्का! यदि [सन्द]ूक लाशों के ऊपर आ जाय तो जर्मन लोग और भी [गोल]ी मार मारें। कारण यह कि यदि गोली सन्दूक में [लग] जाय तो बिना प्रयत्न के ही सब सिपाहियों का नाश [हो] जाय। ऐसा विकट प्रसङ्ग! कैसे सन्दूक खाइयों [तक] पहुँचें?

इधर जर्मन लोगों ने देखा कि सिक्ख बम्ब ला रहे हैं। [फ]िर क्या था। गोलियों की झड़ी लग गई। तोपों के [गोल]े आस पास गिर कर फूटने लगे। सिक्खों की जहाँ दृष्टि [जा]ती थी वहीं कराल काल मुँह फाड़े खड़ा दिखाई देता [था]। मामूली आदमी तो उस भयङ्कर अग्निवर्षा को देख[कर] डर के मारे वहीं मर जाता। परन्तु ये ११ मनुष्य [सा]धारण मनुष्य न थे। वे महावीर थे। वे धीरे धीरे आगे [बढ़]ते ही जाते थे। मारने वाले से बचाने वाला ज़बरदस्त [है] इस कहावत की मानो वे घोषणा करते जाते थे।

वे केवल बीस गज़ आगे न बढ़े थे कि इतने में सिपाही [illegible] गिर [illegible]। ८० गज पहुँचने [illegible] [illegible]सिंह सिपाही भी

गोली लगने के कारण बेकाम होकर गिर गये। रह गये ६ सिपाही और लफ़्टेंट साहब। एक सन्दूक के लिए कम से कम ४ मनुष्य चाहिए। तो भी अपूर्व पराक्रम दिखला कर छः ही मनुष्य दोनों सन्दूकों को ले चले। उन्हें अपनी फ़िक्र न थी। फ़िक्र इस बात की थी कि बम्ब न पहुँचने से खाई वाले अपने साथियों की क्या गति होगी। ख़ैर किसी तरह वे लोग उस नाली के छोर तक पहुँचे। परन्तु रास्ते में नारायणसिंह और सम्पूरनसिंह, दो सिपाही और, मारे गये। नायक मङ्गलसिंह और सिपाही गङ्गासिंह तथा हरनामसिंह घायल हो गये। बचे लफ़्टेंट साहब और लालसिंह सिपाही। एक सन्दूक तो छोड़ना ही पड़ा। दूसरे को भी ले जाना असम्भव मालूम होने लगा। पर इन दोनों वीरों के लिए कोई बात असम्भव न थी। आगे नाली की भी आड़ न थी। खुले मैदान में सरकते, खींचते, लुढ़कते, पसीने से लदफद वे आगे बढ़े। उधर जर्मनों ने और भी भयङ्कर मार मारनी शुरू कर दी। परन्तु हम ऊपर कह आये हैं कि मारने वाले से बचाने वाला ज़बरदस्त है। उनके ज़रा भी चोट न लगी और वे अपनी खाई के पास एक नाले में जा पहुँचे। पर उसमें पानी इतना था कि वहाँ से उतरने में सन्दूक के भीग जाने का डर था। नाला पार होते ही जर्मन लोगों की गोलियाँ, आड़ आ जाने के कारण, न पहुँच सकतीं। घबराये हुए मनुष्यों को तो प्राणों की पड़ी थी और वे सीधे चले आते। परन्तु इन्हें तो सन्दूक पहुँचाना था। और उसके भीग जाने से सब काम बिगड़ जाता। इस लिए वे नदी के इसी पार रहे और सूखी जगह ढूँढने लगे। कुछ देर में वह मिल भी गई। पर इतनी देर तक जर्मनों ने उनके मारने का कोई उपाय न उठा रक्खा। ईश्वर ने उनकी रक्षा की और वे नदी पार करके अपनी खाई में कूद पड़े। सारी खाई "जय गुरुजी का खालसा! जय गुरुजी की फ़तेह"! की ध्वनि से गूँज उठी। वहाँ पहुँच कर उन लोगों की जो देखभाल हुई तो मालूम हुआ कि [illegible] गोलियों के छेदों से परिपूर्ण है। फिर भी ईश्वर की कृपा से वे बाल बाल बच गये।

[illegible] [illegible]

का तमग़ा। खेद की बात है कि वीर लालसिंह खाई में पहुँचने पर थोड़ी देर के बाद मारा गया। लफ़टेन्ट साहब सचमुच ही भाग्यवान् हैं। एक बार वे चुरट सुलगा कर हाथ में लिये खड़े थे कि गोली लगने से चुरट उड़ गया, पर उनकी उँगलियों के आँच भी न लगी।

यही १५ नं० सिक्ख पल्टन की वीरतासूचक कथा है। धन्य है उस पञ्जाब-भूमि को जहाँ ऐसे ऐसे वीर उत्पन्न होते हैं।

लज्जाशङ्कर झा।

सबल और निबल।

चौपदे

मर मिटे पिट गये सहा सब कुछ।
  पर निबल की सुनी गई न कहीं।
है सबल के लिए बनी दुनिया।
  है निबल का यहाँ निबाह नहीं ॥ १ ॥

जान पर बीतती किसी की है।
  और कोई है जी को बहलाता।
एक को धूल में मिला करके।
  दूसरा है कमाल दिखलाता ॥ २ ॥

घर किसी का उजाड़ होता है।
  और बनते महल किसी के हैं।
है किसी गेह का दिया बुझता।
  और कहीं दीये जलते घी के हैं ॥ ३ ॥

दूसरों का बिगाड़ करके रंग।
  रंग अपना सभी जमाते हैं।
एक के नाम को मिटा करके।
  दूसरे लोग नाम पाते हैं ॥ ४ ॥

क्या कहें बात हम अमीरों की।
  [illegible] होंगे दुखी इन्हें गुन के।
बे-कसों का गला दबा देना।
  खेल है बायें हाथ का उनके ॥ ५ ॥

[illegible] न हज़ारों [illegible] मरे कोई।
  [illegible]

पर उन्हें क्या, करेंगे मन मानी।
  जब कि पुतले-सितम कभी ऐंठे ॥ ६ ॥

काम से काम है उन्हें रहता।
  वे भला कब हुए किसी के हैं।
और पिसते को पीस देना ही।
  नित्त के चोचले धनी के हैं ॥ ७ ॥

चैन कितने लोग पाते ही नहीं।
  जान कितनी जो न हाथों से गई।
नित कलेजा सैकड़ों कुचले बिना।
  पाँव सीधे पड़ नहीं सकते कई ॥ ८ ॥

क्या कहें, जी है धड़क उठता बहुत।
  फूँक और उजाड़ घर फूले फले।
लालसायें राज या धन मान की।
  आज भी हैं रेतती लाखों गले ॥ ९ ॥

बे-बसी जिन पर बरसती है बहुत।
  आँख से आँसू बहा करके घड़ों।
गेंद जैसे हैं लुढ़कते धूल में।
  ठोकरें खा खा गिरे सिर सैकड़ों ॥ १० ॥

छिन गये सुख, चाह मिट्टी में मिली।
  औ कलेजों ने बुरी टेसें सहीं।
लोग लाखों लुट गये सरबस गया।
  औ हुआ क्या? एक की बातें रहीं ॥ ११ ॥

दूसरों की पीर कब समझी गई।
  और के दुख की हुई परवाह कब।
बात कहते गरदनें कितनी गयीं।
  औ घड़ा बैठा कोई बे-पीर जब ॥ १२ ॥

जो सभी का मांस से ही है बना।
  है कलेजा दूसरों के पास भी।
कौन लुट जाना नहीं जिसका गया।
  पर समझता यह नहीं कोई कभी ॥ १३ ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

तिब्बत के दलाई लामा।



ब्बत के लोग दलाई लामा को ईश्वर का अवतार मानते हैं। उनका विश्वास है कि मनुष्य से जो कुछ पाप पुण्य होता है उसका निर्णय यही करते हैं। अपने निर्णय के अनुसार मनुष्य को नरक या स्वर्ग देना भी इन्हीं काम है। एक दलाई लामा की मृत्यु के बाद रे दलाई लामा उनके स्थान पर नियत किये जाते । दलाई लामा के चुनाव में बड़ी कठिनता ती है।

जब दलाई लामा मरने लगते हैं तब वे कुछ न बतला देते हैं कि मैं अमुक रूप से अमुक र में अवतार लूँगा। उनके मरने के बाद पैदा वाले लड़कों का नाम और पता लिख कर के अफ़सर तिब्बत की राजधानी ल्हासा को देते हैं।

कुछ दिनों बाद इस विषय में जाँच-पड़ताल ती है। जाँच पड़ताल हो चुकने पर दलाई लामा बतलाये हुए चिह्न जिन लड़कों में पाये जाते हैं के नाम लिख लिये जाते हैं। इसके बाद एक श्चित तिथि को कुछ लोग एकत्र होते हैं। इनमें ुङ्ग-गोम्पा का ज्योतिषी, बड़े बड़े अफ़सर, कुछ मा और आम्बा नामक चीन का राजदूत- ये मिल रहते हैं। ये लोग पुटाला नामक महल के एक किन कमरे में इकट्ठे होकर विचार करते हैं। कों के चुने हुए नाम अलग अलग काग़ज़ के कड़ों पर लिखे जाते हैं। यह काम बड़ी सावधानी किया जाता है। काग़ज़ के सभी टुकड़े एक ही र मोड़े जाते हैं। उनके मोड़ आदि में ज़रा सा भेद भाव नहीं रक्खा जाता। इन सब मुड़े हुए कड़ों को एक सोने के प्याले में रख कर आम्बा नामक अधिकारी बुद्धदेव की मूर्ति के सामने घुटनों के बल बैठ जाता है। वह मूर्त्ति से र्थना करता है कि हम लोग दलाई लामा के चुनाव में सफल-मनोरथ हों। प्रार्थना करके वह काग़ज़ के उन टुकड़ों को प्याले में इस तरह घुमाता है कि सब इकट्ठे हो जायँ। इसके अनन्तर प्याला मेज़ पर रख दिया जाता है। दो लकड़ियों के सहारे उससे काग़ज़ का एक टुकड़ा निकाला जाता है। ऐसा करते समय आम्बा अपनी आँखें बन्द कर लेता है। जो टुकड़ा निकलता है उस पर लिखा हुआ नाम सब लोगों को सुनाया जाता है। बस, इसी नाम का लड़का दलाई लामा की गद्दी का हक़दार समझा जाता है। यह काम ठीक उसी तरह होता है जिस तरह हमारे यहाँ किसी वस्तु पर चिट्ठी डाली जाती है।

पर वर्त्तमान दलाई लामा के विषय में ये बातें कुछ भी नहीं हुई थीं। पहले दलाई लामा के बतलाये हुए सारे चिह्न इनमें जन्म से ही मिल गये थे। नेचुङ्ग-गोम्पा के एक ज्योतिषी ने भी इन्हें दलाई लामा का अवतार बतलाया था।

वर्त्तमान दलाई लामा के पहले १२ दलाई लामा और हो गये हैं। ये तेरहवें हैं। इनका जन्म १८७६ ईसवी में हुआ था। इनका पूरा नाम है—ग्वांग थुपतेन ग्यात्सो—अर्थात् बुद्धधर्म का प्रभावशाली समुद्र। लामा का अर्थ है पुजारी, और दलाई लामा का, सबसे बड़ा पुजारी। तिब्बत में दलाई लामा को ग्यालवा रिम्पोछे अर्थात् शाहंशाह विजयी कहते हैं। आजकल लोग इन्हें पारलौकिक अर्थात् सारी सृष्टि का प्रभु भी कहते हैं।

दलाई लामा के रहने के लिए ल्हासा शहर के बाहर पोटाला हिल्स नामक स्थान में पोटाङ्ग मार्पो, अर्थात् लाल महल नामक एक प्रासाद है। इसे बने लगभग १०० वर्ष हुए। इसमें नीचे से ऊपर तक ९ खंड हैं। सबसे ऊपर की छत में सोने के पत्र जड़े हुए हैं।

वर्तमान दलाई लामा का जन्म ल्हासा नगर से १०० मील दूर की [illegible] गाँव में हुआ था। इनके जन्म दिन को उस समय बहुत ही चिह्न हुए थे। ...

कर अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। दलाई लामा के दो बड़े भाई थे। उनमें से एक अभी तक मौजूद हैं। वे पोटाला-गोम्पा में प्रधान अध्यापक का काम करते हैं। दूसरे भाई का कुछ पता नहीं।

वर्तमान दलाई लामा तीन वर्ष के थे तभी इन्हें यह पदवी दी गई थी। जब ये छः वर्ष के हुए तब चीन-सरकार की स्वीकृति से इनकी शिक्षा-दीक्षा का काम देपुन-गोम्पा के पुजारी को सौंपा गया। शिक्षा समाप्त करके धीरे धीरे इन्होंने तिब्बत के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। राज्य-प्रबन्ध इनके हाथ आते ही तिब्बत की उन्नति होने लगी। चीन को यह बात अच्छी न लगी। क्योंकि, चीन का जो राजदूत तिब्बत में रहता था वही वहाँ का परोक्षरूप से शासक भी था। वर्तमान दलाई लामा ने उक्त राजदूत की परवा न की। वे तिब्बत की उन्नति में लग गये।

कहते हैं कि भूतपूर्व दलाई लामा जब राज्यकार्य चलाने लायक़ हो जाते थे तब चीन के अधिकारी गुप्तरूप से उनका काम तमाम कर डालते थे। इस प्रकार शासन का भार चीन के राजदूत ही के ऊपर रहता था। इस बात की सत्यता असत्यता का हाल भगवान् ही जाने।

चीन के तिब्बत से रुष्ट होने का प्रधान कारण यह बतलाया जाता है—वर्तमान दलाई लामा का राजतिलकोत्सव देखने के लिए रूस का एक फ़ौजी अफ़सर लासा जाना चाहता था। उसने चीन-सरकार के पास आवेदन-पत्र भेज कर जाने की अनुमति माँगी। चीन ने उसकी यात्रा के प्रबन्ध के लिए तिब्बत के ग्याबो नामक अधिकारी को आज्ञा दी। पर तिब्बत की मन्त्रिसभा ने इसे स्वीकार न किया। उसने अपने यहाँ किसी विदेशी का आना अच्छा न समझा। इसी मन्त्रिसभा और ग्याबो के हाथ में तिब्बत का शासन-सूत्र था।

इस उत्तर से चीन-सरकार को बुरा लगा। वह अपने को तिब्बत का मालिक समझती थी। सन् १८१४ ईसवी में, नेपाल और तिब्बत की ल के समय उसने तिब्बत को सहायता भी दी तभी से तिब्बत की सीमाओं पर चीनी फ़ौजें रहने लगी थीं। तिब्बत वालों ने उस समय बात का कुछ भी विरोध न किया था।

अब चीन-सरकार ने तिब्बत को दण्ड ठाना। वह तिब्बत पर अपना पूरा अधिकार का उपाय सोचने लगी। अन्त में सन् १९१ चीन और तिब्बत में लड़ाई छिड़ ही गई।

दलाई लामा का विचार था कि लड़ाई से का व्यर्थ ही तहस-नहस न किया जाय। पर ति वालों के जोश को वे शान्त न कर सके। अन्त दलाई लामा तिब्बत छोड़ कर अँगरेज़-सरकार छत्रच्छाया में हिन्दुस्तान चले आये। यहाँ उन्हों शिमला, कलकत्ता, बनारस आदि स्थानों में भ्र किया और दो वर्ष तक दार्जिलिङ्ग में रहे। अ में तिब्बत की जीत हुई और दलाई लामा हिन्दुस्ता से अपने देश को लौट गये।

इस पराजय से चीन-सरकार का क्रोध वै भी बढ़ा। पर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने दोनों के पारस्परिक झगड़े को मिटा देना चाहा। कुछ समय पहले शिमले में राज-कर्मचारियों की ए बैठक हुई थी। उसमें तिब्बत और चीन के राजदू भी थे। चीन-सरकार ने मेल के प्रस्ताव का शाय विरोध किया। इसी से शायद मेल न हो सका सुनते हैं, अब फिर चीन और तिब्बत में लड़ छिड़ी है।

तिब्बत वाले कहते हैं कि वर्तमान दलाई ला के बाद अब और कोई दलाई लामा न होगा।

दलाई लामा से उतर कर ताशी लामा हैं इनका दरजा दलाई लामा से कुछ ही कम है दलाई लामा की आज्ञा का पालन करना ये अप कर्तव्य समझते हैं। तिब्बत के निवासियों पर इन भी बड़ा प्रभाव और प्रभुत्व है। ल्हासा की पश्चि दिशा में शिगात्सी नामक एक नगर है। वहाँ आप रहते हैं।

तिब्बत में लामाओं, अर्थात् पुरोहितों, का ही प्राधान्य है। राज्य-सञ्चालन, धर्म-व्यवस्था, धर्म और विद्या प्रचार सब इन्हीं के हाथ में है। कोई भी धार्मिक उत्सव बिना इनके नहीं होता। उत्सवों के समय ये नाचते भी हैं। इनका यह धार्मिक नृत्य बहुत ही कौतूहलवर्धक होता है।

मातादीन पाण्डेय।

भारतवर्ष।

ऋषि होते थे मनुज जहाँ के करते थे कुछ पाप नहीं;
पशु पक्षी तक क्षुधा-अनल का सहते थे सन्ताप नहीं।
जहाँ आज भी पतित-पावनी बहती गङ्गा-धारा है—
सब देशों में पूत पूज्य वह भारत-वर्ष हमारा है॥ १॥
नश्वर समझ जगत को जिसने केवल दिया धर्म पर ध्यान;
यह अपनी वह वस्तु अन्य की, ऐसा जिसको हुआ न ज्ञान।
गैरों को भी दे कर जिसने अपना धर्म उबारा है—
सब देशों में धर्म-धुरन्धर भारत वही हमारा है॥ २॥
पर-पीड़न को पाप समझ कर, परोपकार समझ निज धर्म,
दुष्टों के भी साथ आज तक जिसने किया न कुत्सित कर्म।
हिंसा-रहित दया से पूरित जिसकी नीति उदारा है—
सब देशों में स्वार्थ-शून्य वह भारतवर्ष हमारा है॥ ३॥
मानव दानव दोनोंही का जिसने सुभग विभाग किया।
अध्यापन-अध्ययन-कार्य में केवल जिसने भाग लिया।
सृष्टि-उत्पत्ति प्रलय का कारण जिसने ठीक विचारा है—
सब देशों में ज्ञान-गेह वह भारतवर्ष हमारा है॥ ४॥
शिल्प शास्त्र कृषि-कर्म, कला-कौशल का जो है जन्म-स्थान,
जग का जड़ता-तिमिर हटा कर चमका है जो सूर्य समान।
मानव-जीवन का पृथ्वी पर जिसने चित्र उतारा है—
सब देशों में सभ्य-शिरोमणि भारत वही हमारा है॥ ५॥
सब कामों में सब के आगे चलता था जो सहित विवेक,
वही आज सब के पीछे हो भोग रहा है कष्ट अनेक।
निज गौरव को तदपि चित्त से जिसने नहीं बिसारा है—
सब देशों में मान-धनी वह भारतवर्ष हमारा है॥ ६॥
दुखी देख कर अखिल विश्व को जिसने ज्ञान-निधान किया,
बड़ा बना-ये को भी जिसने शिक्षित सभ्य-समान किया।
मुक्ति-रत्न का देने वाला जिसने धर्म प्रचारा है—
सब देशों का उपदेशक वह भारतवर्ष हमारा है॥ ७॥
धोखा देकर के परस्व का लेना आया जिसे नहीं;
चींटी तक को भी दुख देना मन में भाया जिसे नहीं।
सदा न्याय के लिए सत्य का जिसने लिया सहारा है।
सब देशों में सत्य-सिन्धु वह भारतवर्ष हमारा है॥ ८॥
शस्य-श्यामला धरा सदा थी षट् ऋतुओं के साथ जहाँ,
पारस तक बँटते रहते थे नरनाथों के हाथ जहाँ।
सुरपति ने भी जिसके आगे आ कर हाथ पसारा है—
सब देशों का मौलि-मुकुट वह भारतवर्ष हमारा है॥ ९॥
हे जगदीश! दीन दुख-हारक, दुर्मति-नाशक, दया-निधान,
धर्म-ग्लानि बढ़ रही है नित निज प्रण पर कुछ दीजे ध्यान।
आर्त स्वर से आज व्यग्र हो जिसने तुम्हें पुकारा है—
सब देशों में दीन दुखी वह भारतवर्ष हमारा है॥ १०॥

रामचरित उपाध्याय

कृत्रिम नेत्र।

सरस्वती के पाठकों को मालूम ही होगा कि अन्धे मनुष्यों के पठन-पाठन के निमित्त एक विशेष प्रकार की छपेवाली पुस्तकें आज कल प्रचलित हैं। उन पुस्तकों के पन्नों पर हाथ फेरने से अँगुलियों पर जो असर होता है उसी के ज्ञान से अक्षरों का बोध होता है। इस परिपाटी में अनेक कठिनाइयाँ हैं। उसके सीखने में समय बहुत लगता है। इन पुस्तकों की क़ीमत भी इतनी अधिक रखनी पड़ती है कि मामूली आदमी उनको मोल भी नहीं ले सकते। इसीलिए वैज्ञानिक लोग कई वर्षों से एक सहज तरकीब ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। दो-चार यन्त्रों का आविष्कार भी हो चुका था, पर उनसे पूरि कामयाबी न हुई थी। पर अमेरिका-निवासी अध्यापक ब्राउन के असीम परिश्रम से अब एक ऐसा कृत्रिम नेत्र बन गया है जिसके द्वारा कोई भी अन्धा मनुष्य किसी भी पुस्तक अथवा समाचार-पत्र को सहज

के सारे उपकरण और साधन झपाटे से काम में लाये जाने लगे। ब्रिटिश गवर्नमेंट को कौन कौन काम तत्काल ही करने पड़े, इसका दिग्दर्शन नीचे किया जाता है।

पहला काम। जितनी फ़ौज इकट्ठी की जा सके उतनी इकट्ठी करना। फिर उसे क़वायद, परेड इत्यादि सिखा कर युद्ध-विद्या में अच्छी तरह शिक्षित कर देना।

दूसरा काम। सारी जल और थल-सेना के लिए गोले-गोलियाँ, बारूद, तोप, बन्दूक़ आदि युद्ध की जितनी सामग्री है सब जमा करना।

तीसरा काम। इस इतनी बड़ी सेना के खाने-पीने और कपड़े-लत्ते का प्रबन्ध करना।

चौथा काम। नये रँगरूट भरती करके उन्हें क़वायद, परेड सिखाना और यह देखते रहना कि उनकी तन्दुरुस्ती तो नहीं बिगड़ती। इसके सिवा लड़ाई के मैदान से लौटे हुए घायलों का इलाज करना और अच्छे हो जाने पर फिर उन्हें लड़ाई पर भेजना।

पाँचवाँ काम। कई लाख फ़ौज युद्ध के लिए तैयार करके जल, थल और आकाश में महीनों नहीं, बरसों लड़ाई जारी रखना। अतएव प्रति दिन करोड़ों रुपये के ख़र्च का पहले ही से प्रबन्ध करना।

छठा काम। खेत-खलिहान में, कारख़ानों में, दूकानों में और दफ़्तरों में काम करनेवाले लाखों आदमियों को वहाँ से लाकर फ़ौज में भरती करना। उनसे गोले, बारूद और हथियार बनवाना तथा लड़ाई से सम्बन्ध रखनेवाले और सैकड़ों काम भी कराना। इस दशा में खेती, व्यापार, तथा उद्योग-धन्धों में लगे हुए इन लोगों की जगह पर और आदमियों का प्रबन्ध करके सब काम पूर्ववत् जारी रखना।

सातवाँ काम। शत्रुओं के देशों से जो माल आता था उसके बन्द हो जाने से उत्पन्न हुई असुविधा को दूर करना। और देशों से आनेवाले माल से भरे हुए जहाज़ों को शत्रु द्वारा डुबाये जाने से बचाना। लड़ाई के लिए रेल, तार, जहाज़, मोटर, इत्यादि पर अधिकार करके उनसे युद्ध-सम्बन्धी सैकड़ों काम लेना। ये सब ऐसी बातें थीं जिनके कारण [illegible] के [illegible] को अनेक प्रकार की [illegible] हो [illegible]। ये सब [illegible] दूर [illegible]।

आठवाँ काम। लड़ाई के कारण लाखों आद[illegible] को विपत्ति-ग्रस्त होना पड़ता है। कितने ही कुटुम्ब[illegible] भूखों मरने की नौबत आती है। ऐसे लोगों के लिए [illegible] से अनन्त धनराशि एकत्र करके उन्हें सहायता पहुँचाना।

ये सब आवश्यकतायें मैंने बहुत थोड़े शब्दों में सू[illegible] की हैं। इनकी पूर्ति के लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट और ब्रि[illegible] जाति ने जो दूरदर्शिता, जो अध्यवसाय और जो प्रय[illegible] हैं उन पर विचार करने से मन आश्चर्य-सागर में निम[illegible] जाता है। इन सब बातों की सफलता के लिए जो [illegible] विलायत में किया गया उसका संक्षिप्त वर्णन भी इस छो[illegible] लेख में नहीं हो सकता। तथापि इन कार्यों के सम्ब[illegible] में क्या क्या कार्रवाई हुई, यह मैं बहुत ही थोड़े [illegible] में बतलाने की चेष्टा करूँगा।

सेना की वृद्धि।

युद्ध के कारण ब्रिटिश गवर्नमेंट को अपनी स्था[illegible] सेना बढ़ा कर बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ी। युद्ध[illegible] पहले उसकी नियमित सेना में केवल ४,११,४४[illegible] सैनि[illegible] थे। इसके अतिरिक्त ७७,५०० गोरे सैनिक भारत में [illegible] थे। उनका ख़र्च भारत ही को देना पड़ता था। वे इस [illegible] में शामिल नहीं। पर अब देखिए, इतने थोड़े समय में [illegible] नेमेंट ने एकदम अपनी सेना के सैनिकों की संख्या बढ़ा [illegible] ३० लाख कर दी है। कुछ ही समय के भीतर यह सं[illegible] बढ़ कर ३० से ४० लाख हो जानेवाली है।

ब्रिटिश गवर्नमेंट ने एकदम इतनी बड़ी सेना कैसे इ[illegible] कर ली यह बतलाने के पहले यहाँ पर यह भी बता देना [illegible] है कि उसने युद्ध के पहले इतनी कम सेना रक्खी क्यों [illegible]। बात यह है कि ब्रिटेन के सम्मिलित राज्यों की भौगोलि[illegible] स्थिति कुछ ऐसी है कि उन पर जलमार्ग से ही आक्रमण [illegible] की सम्भावना रहती थी। इसीसे यह आवश्यक हुआ कि [illegible] एक ऐसी नौ-सेना और लड़ाकू जहाज़ों का ऐसा ज़बर[illegible] बेड़ा सदैव तैयार रक्खे जो अद्वितीय हो। ब्रिटेन के स[illegible] राज्यों को स्थल मार्ग से कोई डर था ही नहीं। इसीसे [illegible] सी ही स्थल-सेना पर ब्रिटिश सरकार ने सन्तोष किया।

ब्रिटिश सरकार के वर्तमान [illegible] की [illegible] पुराने [illegible] को हाथ में लेकर [illegible] हैं। [illegible] में वे देखेंगे कि [illegible] का [illegible]

पुओं का समूह है। उन टापुओं का क्षेत्रफल कोई १,२१, ७१ वर्ग मील है। सन् १९१४ ईसवी की मनुष्य गणना के अनुसार उनकी आबादी ४ करोड़ ६४ लाख ७ हज़ार ३७ है। इन टापुओं में ग्रेट-ब्रिटेन और आयरलैंड सबसे बड़े हैं। ग्रेट-ब्रिटेन अलग अलग तीन विभागों में विभक्त है—इँगलैंड, स्काटलैंड और वेल्स। संयुक्त राज्यों के सभी टापू चारों ओर समुद्र से घिरे हुए हैं। इनकी रक्षा के लिए, अन्यान्य देशों के साथ इनका जो व्यापार है उसकी रक्षा के लिए, तथा संयुक्त राज्य के जो उपनिवेश तथा अधीन राज्य हैं उनकी रक्षा के लिए बड़ी भारी नौ-सेना रखना ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए कितना आवश्यक था, इस बात को सभी जान सकते हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट बाहर किसी से लड़ना नहीं चाहती थी। इसी कारण उसने स्थल-सेना अधिक नहीं रक्खी। ब्रिटिश जाति का बहुत दिनों से यह निश्चय रहा है कि उसे इतनी नाविक शक्ति रखनी चाहिए जो और किसी भी राज्य की नाविक शक्ति से दूनी हो। साथ ही वह ख़ूब तैयार भी रहे। इसमें किसी बात की कमी न रहे। स्थल-सेना बढ़ाने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी गई। इसीसे ब्रिटिश गवर्नमेंट ने सन् १९१३-१४ में नौसेना-विभाग में जहां ४० करोड़ ३२ लाख २० हज़ार ख़र्च किये वहां स्थल-सेना-विभाग में उसने केवल ४२ करोड़ ३३ लाख ही रुपये ख़र्च करना उचित समझा। लड़ाई शुरू होने के समय ब्रिटिश नाविक शक्ति संसार की सभी नाविक शक्तियों से बढ़ी-चढ़ी थी। यही नहीं, वह तत्काल ही अपना काम करने के लिए तैयार भी थी। इसका कारण नौ-सेना-विभाग की दूरदर्शिता थी।

परन्तु कुछ समय से लोगों के ध्यान में यह आने लगा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को भी अपनी स्थल-सेना की शक्ति बढ़ानी चाहिए। उन्होंने गवर्नमेंट पर दबाव भी डाला। उन्होंने कहा, योरप के अन्यान्य देश अपनी अपनी सेना बढ़ाने में लगे हैं। वहां पर सब की सेना में भरती होना वहाँ क़ानून से अनिवार्य कर दिया गया है। अब दशा पहले की ऐसी नहीं। बहुत सम्भव है कि हमें योरप की किसी शक्ति से किसी दिन लड़ना पड़े। अतएव हमें भी स्थल-सेना बढ़ाना चाहिए। भारत के भूतपूर्व कमांडर-इन-चीफ़ फ़ील्ड-मार्शल लार्ड राबर्ट्स इस मत के पोषक थे। इनके अनुयायी भी बहुत लोग हो गये थे। लार्ड राबर्ट्स ने सेना बढ़ाने और सेना में भरती होना अनिवार्य करने के लिए बहुत परिश्रम और प्रयत्न भी किया।

तथापि विलायत का अधिकांश प्रजा-मत स्थल-सेना की वृद्धि के पक्ष में न था। उन्होंने कहा कि हम योरप के किसी देश के साथ झगड़ा करें ही क्यों, जो हमें स्थल-सेना बढ़ानी पड़े। जब हम किसी से लड़ना चाहते ही नहीं तो व्यर्थ सेना बढ़ाने की क्या ज़रूरत? यदि आवश्यकता ही हुई तो हम लोग ख़ुशी से सेना में भरती होंगे। क़ानून बना कर लोगों को ज़बरदस्ती सेना में भरती करना अनावश्यक है। यही कारण था कि स्थल-सेना की वृद्धि के विषय में लार्ड राबर्ट्स जैसे नामी पुरुष का भी प्रस्ताव सफल न हुआ।

कुछ वर्ष हुए, विलायत में स्थल-सेना की वृद्धि के लिए एक नई सेना तैयार की गई। इसका नाम "टेरिटोरियल" सेना रक्खा गया। यह नियमित सेना न थी। इसे स्वतन्त्रों की सेना कहना चाहिए। जो लोग इसमें ख़ुशी से भरती होते थे, उन्हें साल में कुछ ही समय तक क़वायद परेड आदि सीखना पड़ता था। इन लोगों को वर्दी आदि भी मिलती थी। कुछ ख़र्च भी मिलता। निश्चित समय तक फ़ौजी काम करके ये लोग अपने अपने घर चले जाते थे और अपने अपने व्यवसाय में लग जाते थे। इनके रखने का यह उद्देश था कि यदि कोई शत्रु विलायत पर हमला करे तो इनकी सेना तुरन्त सङ्गठित कर दी जाय और ये लोग देश की रक्षा करें। इनकी संख्या युद्ध शुरू होने के पहले ३,२१,११२ थी। इनकी यह संख्या ब्रिटिश सेना की उसी संख्या के अन्तर्गत थी जो हम ऊपर बता चुके हैं। इनका ख़र्च भी स्थल-सेना के ख़र्च में ही शामिल था। अस्तु।

"टेरिटोरियल" नाम की यह दो लाख सेना बढ़ जाने से भी ब्रिटिश गवर्नमेंट की स्थल और जल सेना सम्बन्धी नीति में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। यह नीति पूर्ववत् बनी रही। "ब्रिटेन [illegible]" नामक प्रसिद्ध [illegible] ग्रन्थ के सम्पादक, मि० [illegible] [illegible] सदृश [illegible] समाचारों के [illegible] [illegible] गवर्नमेंट की इसी [illegible] के [illegible] में। [illegible] [illegible] की [illegible] का [illegible] [illegible] थी।

रवाना हुए। जितने विश्वविद्यालय हैं उन सब में शिक्षा पाने वाले बी॰ ए॰ और एम॰ ए॰ क्लासों के छात्र हज़ारों की संख्या में दौड़ पड़े। ऐसे शायद कुछ ही कुटुम्ब रह गये होंगे जिनका कोई भी निकट या दूर का सम्बन्धी इस समय अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध के मैदान में न लड़ रहा हो।

ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में दो करोड़ पुरुष हैं। उनमें से इस समय ३० लाख के लगभग युद्धस्थल में शस्त्र-सञ्चालन कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य सब से बड़ी बात यह है कि फ़ौज में भरती होने के लिए इन में से एक आदमी पर भी बलप्रयोग नहीं किया गया। सब लोग अपने ही मन से ख़ुशी ख़ुशी फ़ौज में भरती हुए हैं। भरती होना अब तक बन्द नहीं। हर रोज़ हज़ारों रँगरूट नाम लिखाते हैं।

यह सब होने पर भी कुछ लोगों की राय है कि जो जवान अब तक सेना में नहीं भरती हुए उन्हें बलपूर्वक भरती करना चाहिए। उनका कहना है कि कुछ लोग इस बात की राह देख रहे हैं कि जब तक उनसे यह न कहा जायगा कि तुम्हारा देश तुम्हारी सेवा का मुहताज है तब तक वे सेना में नाम न लिखावेंगे। ऐसे लोग डाँप-डपे वाले नहीं, उनकी [illegible] हैं। ये लोग सरकार ऐसे क़ानून की राह देख रहे हैं जो इन्हें सेना में भरती होने के लिए मजबूर करे। कितने ही आदमी इस राय के क़ायल भी हैं। वे कहते हैं कि ऐसे क़ानून के जारी होने की ज़रूरत है। [illegible]

[illegible]

अफ़सरों और सैनिकों से सहायता कर रहे हैं। यद्यपि ठीक नहीं मालूम कि कैनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड ने कितनी सेना भेजी है, तथापि इनमें से प्रत्येक [illegible] भेजी गई सेना की संख्या कम नहीं। दक्षिणी [illegible] ने पहले शत्रु जर्मनों को परास्त कर उनसे वह [illegible] लिया जो दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीक़ा कहाता है। फिर साम्राज्य की रक्षा के इरादे से बहुत सी सेना योरप [illegible] स्थल में भेजने का निश्चय किया। यह सेना वहाँ जा रही है। आशा है, शीघ्रही वह योरप में पहुँच [illegible]

भारत से भेजी गई जो सेना अपने सम्राट् [illegible] इस समय योरप में लड़ रही है उसके कितने ही [illegible] और अफ़सरों से मिलने का मुझे मौक़ा मिला है। [illegible] की रक्षा के लिए अपना रुधिर बहाने में ये लोग [illegible] कम नहीं। ब्रिटिश जाति और ब्रिटिश उपनिवेशों के [illegible] जिस उत्साह से लड़ रहे हैं, हमारे भारतीय वीरों का [illegible] उस से रत्ती भर भी कम नहीं। जिन जिन लोगों से [illegible] सब ने यही कहा कि योरप में आकर अपने राजा के [illegible] से लड़ने का हमें बहुत बड़ा गर्व है। जिस उत्साह से [illegible] और इस समय युद्ध के मैदान में लड़ रहे हैं, इसका [illegible] प्रमाण देने के लिए मैं सरदार [illegible] के एक पत्र से कुछ वाक्य उद्धृत करता हूँ। [illegible] साहब २१ नम्बर [illegible] पायोनियर्स [illegible] में [illegible] थे। अभी हाल ही में वे फ़्रांस में [illegible] हुए हैं। जिस समय [illegible] एक साथी को, जो लन्दन में [illegible] रहे हैं, एक पत्र लिखा। इन्हीं महाशय की कृपा [illegible] सरदार साहब का पत्र देखने को मिला है। [illegible] सरदार साहब लिखते हैं—

[illegible]

[illegible]

भारतीय सेना का युद्ध के मैदान में भेजा जाना भी बड़ी बुद्धिमानी का काम हुआ। इसका बहुत कुछ श्रेय लार्ड किचनर और उनके सहकारियों को है। वर्तमान युद्ध में यदि भारतीय सैनिक न शामिल होते तो भारत के हृदय में अवश्य ही चोट लगती। जर्मनी यह समझता था कि भारतीय सैनिक युद्ध में न शामिल किये जायँगे। आश्चर्य है, कितने ही भारत-प्रवासी ब्रिटिश नागरिकों का भी यही खयाल था। उनकी राय थी कि यह युद्ध ईसाइयों में ही आपस में हो रहा है। अन्य धर्म्म के अनुयायियों को उसमें शामिल करना उचित नहीं। सन्तोष की बात है, लार्ड किचनर और सम्राट् के मन्त्रियों ने इस बकवाद पर ध्यान न दिया।

भारत के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उसकी सेना कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड आदि उपनिवेशों की सेना के पहले ही युद्धस्थल में पहुँच गई। उसकी संख्या भी थोड़ी नहीं। सारे उपनिवेशों की सेना की सम्मिलित संख्या से वह अधिक नहीं तो उतनी अवश्य है। फिर, भारतीय सेना ने जो बहादुरी इस युद्ध में दिखाई है वह भी किसी अन्य देश या अन्य जाति की सेना की बहादुरी से कम नहीं। लार्ड किचनर ने एक और भी बड़ा ही अद्भुत काम किया। उन्होंने भारत और उपनिवेशों की सेना की रवानगी इतनी गुप्त रक्खी कि शत्रु को उसकी ज़रा भी सुनगुन न लगी। फल यह हुआ कि सारी सेना युद्ध के भिन्न भिन्न स्थलों में सुरक्षित पहुँच गई। एक भी सैनिक नष्ट नहीं गया। सेनावाहक जहाज़ों को डुबाने की ताक में रहने पर भी शत्रु का प्रयत्न निष्फल गया। हाँ, अभी हाल में, दरेदानियाल जाने वाली सेना को कुछ हानि अवश्य पहुँची। पर यह हानि न-गण्य है।

जो सेना तैयार थी उसे लार्ड किचनर ने फ्रांस रवाना कर दिया, जिसमें वह शीघ्र ही युद्ध के मैदान में पहुँच गई। उधर तो यह किया इधर विज्ञापन में रँगरूट भरती का आश्चर्यकारक प्रबन्ध शुरू कर दिया। चारों तरफ़ रँगरूट और व्याख्यानदाता आदि भेज दिये गये। लोग दल के दल फ़ौज में भरती होने लगे। तरह तरह के विज्ञापनों से देश का कोना कोना भर गया। जातीय अपमान का बदला चुकाने के लिए लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जाने लगा। अमीर-ग़रीब, व्यापारी और कारीगर सभी युद्ध में शामिल होने के लिए उत्साहित किये गये। अपने राजा, अपनी जननी जन्म भूमि, अपने घर और अपनी स्त्री-जाति की रक्षा के लिए ब्रिटिश नागरिकों को शत्रु के विरुद्ध तलवार उठाने की उत्तेजना दी गई।

जो लोग फ़ौज में भरती होने योग्य नहीं उनसे यह प्रार्थना की गई कि आप औरही तरह अपने देश—अपनी मातृ-भूमि—की रक्षा करें। आप अपने मित्रों, अपने भाइयों, अपने निकट सम्बन्धियों को उत्तेजित कीजिए कि वे अपनी जन्म-भूमि की रक्षा के लिए शत्रु के विरुद्ध में शस्त्र धारण करें; अपने देश और अपने राजा के प्रति उनका जो कर्तव्य है उसका वे पालन करें। देखिए, शत्रु कैसी क्रूरता कर रहा है—वह निर्बल स्त्रियों और अबोध बच्चों पर भी दया नहीं दिखाता है। बड़े बड़े प्राचीन शहरों को जलाना और प्रार्थना मन्दिरों तक को भूमिसात् कर रहा है। ऐसे अत्याचारी और निर्दयी शत्रु को उसके अन्याय का दण्ड देना प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक का कर्तव्य है।

स्त्रियों से यह प्रार्थना की गई कि तुम अपने पतियों और पुत्रों को उत्साहित करके सेना में भरती कराने की चेष्टा करो। जो शत्रु पवित्र स्त्री जाति का भी अपमान कर रहा है उससे बदला लेना तुम्हारा भी कर्तव्य है।

इस प्रकार की अपीलों और उत्साह पूर्ण प्रार्थनाओं से ग्रेटब्रिटेन का शहर शहर, गांव-गांव गूँज उठा। मकानों में, दूकानों में, गलियों में, रेलों में, होटलों में, स्कूलों में, यहाँ तक कि खिड़कियों तक में विज्ञापन चिपके हुए दिखाई देने लगे। अख़बारों और सामयिक पुस्तकों की तो बात ही नहीं। लिफ़ाफ़ों, पोस्टकार्डों, डाकख़ाने की टिकटों की छोटी छोटी पुस्तकों तक में रङ्ग बिरङ्गे विज्ञापन प्रकाशित हुए। सारा ग्रेट ब्रिटेन विज्ञापनमय हो गया।

इन अपीलों और प्रार्थनाओं का फल भी आश्चर्यजनक हुआ। इसने मित्रों के हृदय में आनन्द का महासागर बहा दिया और शत्रुओं का दिल दहला दिया। छोटे मोटे आद-मियों की तो बात ही नहीं, अमीरों, कोट्याधीशों और बड़े बड़े लार्डों के कुटुम्बी भी लार्ड किचनर की सेना में भरती होने लगे। राजराजेश्वर के बड़े राजकुमार प्रिन्स आव् वेल्स भी फ़ौज में भरती हो कर युद्धस्थल में

स्टेड साहब ने इसका उल्लेख कई दफ़े अपने पत्र में किया था। राज्य-सञ्चालन सम्बन्ध में विलायत के उदार दल की ही प्रभुता १९०५ ईसवी से अब तक अविच्छिन्न चली आती है। यह दल लोगों को ज़बरदस्ती सेना में भरती करने का सदा ख़िलाफ़ रहा है। इसी से गवर्नमेंट की सेना-सम्बन्धिनी नीति में परिवर्तन नहीं हो सका।

थल-सेना बढ़ाने के सम्बन्ध में गवर्नमेंट ने यद्यपि अपनी नीति नहीं बदली तथापि सेना बढ़ाने और न बढ़ाने की चर्चा बराबर होती ही रही। इस सम्बन्ध में वाद-प्रतिवाद हो ही रहा था कि जुलाई १९१४ के अन्त में युद्ध के बादल उमड़ते हुए दिखाई दिये। ग्रेट-ब्रिटेन ने देखा कि इस युद्ध में शामिल हुए बिना स्वार्थ ही की हानि नहीं, किन्तु प्रतिष्ठा की भी हानि है। अतएव अपने मान और हित की रक्षा के लिए उसने युद्ध में शामिल होना ही अपने लिए उचित समझा। और शक्तियों के साथ, जिनमें जर्मनी भी शामिल था, वह सन्धि-पत्र द्वारा वचन-बद्ध हो चुका था कि पड़ोसी देशों पर आक्रमण करने के इरादे से कोई देश अपनी सेना बेलजियम से न ले जा सकेगा। जर्मनी ने इस अभिवचन को तोड़ना चाहा। उसने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा को तोड़ कर बेलजियम की भूमि से सेना चढ़ा ले जाने और फ्रांस को बरबाद कर देने का सङ्कल्प किया। ग्रेट-ब्रिटेन से यह न देखा गया। यदि ब्रिटिश गवर्नमेंट चुप रहती और जर्मनी को फ्रांस तथा बेलजियम को बरबाद कर देने देती तो संसार के सामने वह मुँह दिखाने लायक़ न रहती। उस पर पवित्र प्रतिज्ञा तोड़ने का पाप लगता। इसके सिवा एक बात और भी थी। यदि बेलजियम और फ्रांस को जीत कर जर्मनी इन दोनों देशों को पादाक्रान्त कर लेता तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती। इस दशा में, सम्भव था, कि वह किसी दिन अपनी बढ़ी हुई शक्ति से ग्रेट-ब्रिटेन को भी नीचा दिखाने की चेष्टा करे। इन्हीं कारणों से ग्रेट-ब्रिटेन को बेलजियम, फ्रांस और रूस का साथ देना पड़ा। उनको सहायता देना उसके लिए अनिवार्य हो गया। जर्मनी ने एकदम ही इन तीनों देशों के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। इस दशा में इँगलैंड को लाचार होकर पूर्वोक्त तीनों देशों का पक्ष ग्रहण करना पड़ा।

बेलजियम और फ्रांस को सहायता देने, और अत्याचारी शत्रु जर्मनी के प्रयत्न को विफल करने, के लिए ग्रेट-ब्रिटेन को सहसा बहुत बड़ी सेना जमा करने की आवश्यक[ता हुई।] परन्तु ऐसे सङ्कट के समय भी उसने किसी को [ज़बरदस्ती] सेना में भरती करना उचित न समझा। उस विषा[द-पूर्ण] सङ्कट के समय सारी ब्रिटिश जाति उसे टालने के [लिए] जान से चेष्टा करेगी। उसका यह विश्वास सच [निकला।] ब्रिटिश टापुओं के प्रत्येक कोने से हज़ारों की संख्या [में लोग] फ़ौज में भरती होने लगे। रँगरूटों के ताँते बँध ग[ये। फल] यह हुआ कि वर्ष ही सवा वर्ष में ब्रिटिश-सेना [की संख्या] ३०—४० लाख हो गई। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश [जाति] को जो सफलता प्राप्त हुई है वह अद्वितीय है। इ[स] भूमण्डल में और किसी देश या राज्य को कभी ऐ[सी सफ]लता नहीं हुई। इस सफलता के कारणों में से ती[न] मुख्य हैं—

पहला कारण, भारत के भूतपूर्व कमांडर-[इन-चीफ़] लार्ड किचनर की योग्यता है। रँगरूट भरती करने [में] उन्होंने जिन युक्तियों से काम लिया वे उनके सिवा [शायद ही] किसी दूसरे को सूझतीं।

दूसरा कारण, ब्रिटिश-जाति का स्वार्थ-त्य[ाग है।] अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े सभी ने न अपने आराम [की परवा] की न तकलीफ़ की। निडर होकर और अपना [अपना] व्यवसाय छोड़ कर सब लोग ख़ुशी ख़ुशी फ़ौज [में भरती] हो गये।

तीसरा कारण, भारतवर्ष तथा ब्रिटिश साम्[राज्य के] अन्यान्य अंशों की सहानुभूति है। इन सबने बड़ी ख़ु[शी से] अपनी अपनी सेनायें साम्राज्य की रक्षा के लिए भेज [दीं।]

कुछ ही महीनों में यह इतनी बड़ी प्रचण्ड से[ना] तैयार हो गई, इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता है। [इस सेना-] सङ्ग्रह से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातों का उल्ले[ख नीचे] किया जाता है।

लार्ड किचनर को युद्ध का मन्त्री बनाने में सम्र[ाट् के] मन्त्रियों ने अपूर्व बुद्धिमानी की। लार्ड किचनर पर [...] ही की श्रद्धा नहीं है। सारी ब्रिटिश जाति की है। [युद्ध-] विषयों के वे पूर्ण ज्ञाता हैं। सेना-सङ्गठन में तो क[ोई] उनकी बराबरी नहीं कर सकता। यह उन्हीं के प्रब[न्ध की] महिमा है जो अँगरेज़ी सेना तत्काल ही अपने अपने [नियत] स्थान पर पहुँच गई।

भारतीय सेना का युद्ध के मैदान में भेजा जाना भी बड़ी बुद्धिमानी का काम हुआ। इसका बहुत कुछ श्रेय लार्ड किचनर और उनके सहकारियों को है। वर्तमान युद्ध में यदि भारतीय सैनिक न शामिल होते तो भारत के हृदय में बेतरह ही चोट लगती। जर्मनी यह समझता था कि भारतीय सैनिक युद्ध में न शामिल किये जायँगे। आश्चर्य है, कितने ही भारतप्रवासी ब्रिटिश नागरिकों का भी यही विचार था। उनकी राय थी कि यह युद्ध ईसाइयों में ही हो रहा है। अन्य धर्म के अनुयायियों को उसमें शामिल करना उचित नहीं। सन्तोष की बात है, लार्ड किचनर और सम्राट् के मन्त्रियों ने इस बकवाद पर ध्यान न दिया।

भारत के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उसकी सेना कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलेंड आदि उपनिवेशों की सेना के पहले ही युद्धस्थल में पहुँच गई। उसकी संख्या भी थोड़ी नहीं। सारे उपनिवेशों की सेना की सम्मिलित संख्या से यह अधिक नहीं तो उतनी अवश्य है। फिर, भारतीय सेना ने जो बहादुरी इस युद्ध में दिखाई है वह भी किसी अन्य देश या अन्य जाति की सेना की बहादुरी से कम नहीं। लार्ड किचनर ने एक और भी बड़ा ही अद्भुत काम किया। उन्होंने भारत और उपनिवेशों की सेना की रवानगी इतनी गुप्त रक्खी कि शत्रु को उसकी ज़रा भी ख़बर न लगी। फल यह हुआ कि सारी सेना युद्ध के भिन्न भिन्न स्थलों में सुरक्षित पहुँच गई। एक भी सैनिक मारा नहीं गया। सेनावाहक जहाज़ों को डुबाने की ताक में रहने पर भी शत्रु का प्रयत्न निष्फल गया। हाँ, अभी हाल में, दरेदानियाल जाने वाली सेना को कुछ हानि अवश्य पहुँची। पर यह हानि नगण्य है।

जो सेना तैयार थी उसे लार्ड किचनर ने [illegible] रवाना किया, जिसमें वह शीघ्र ही युद्ध के मैदान में पहुँच जाय। इधर तो यह किया उधर विज्ञापन में रंगरूट भरती करने का आश्चर्यकारक प्रबन्ध शुरू कर दिया। अनेक उपदेशक और व्याख्यानदाता चारों ओर भेज दिये गये। नये नये लोग फ़ौज में भरती होने लगे। तरह तरह के विज्ञापन से देश का कोना कोना भर गया। जातीय कर्त्तव्य का [illegible] के लिए लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जाने लगा। अमीर-ग़रीब, व्यापारी और कारीगर सभी युद्ध में शामिल होने के लिए उत्साहित किये गये। अपने राजा, अपनी जननी जन्मभूमि, अपने घर और अपनी स्त्री-जाति की रक्षा के लिए ब्रिटिश नागरिकों को शत्रु के विरुद्ध तलवार उठाने की उत्तेजना दी गई।

जो लोग फ़ौज में भरती होने योग्य नहीं उनसे यह प्रार्थना की गई कि आप औरही तरह अपने देश—अपनी मातृ-भूमि—की रक्षा करें। आप अपने मित्रों, अपने भाइयों, अपने निकट सम्बन्धियों को उत्तेजित कीजिए कि वे अपनी जन्म-भूमि की रक्षा के लिए शत्रु के विरुद्ध में शस्त्र धारण करें; अपने देश और अपने राजा के प्रति उनका जो कर्त्तव्य है उसका वे पालन करें। देखिए, शत्रु कैसी क्रूरता कर रहा है—वह निर्बल स्त्रियों और अबोध बच्चों पर भी दया नहीं दिखाता है। बड़े बड़े प्राचीन शहरों को जलाता और प्रार्थना मन्दिरों तक को भूमिसात् कर रहा है। ऐसे अत्याचारी और निर्दयी शत्रु को उसके अन्याय का दण्ड देना प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक का कर्त्तव्य है।

स्त्रियों से यह प्रार्थना की गई कि तुम अपने पतियों और पुत्रों को उत्साहित करके सेना में भरती कराने की चेष्टा करो। जो शत्रु पवित्र स्त्री जाति का भी अपमान कर रहा है उससे बदला लेना तुम्हारा भी कर्त्तव्य है।

इस प्रकार की अपीलों और उन्माद पूर्ण प्रार्थनाओं से ग्रेटब्रिटेन का शहर शहर, गाँव गाँव गूँज उठा। मकानों में, दूकानों में, गलियों में, रेलों में, होटलों में, स्कूलों में, यहाँ तक कि खिड़कियों तक में विज्ञापन चिपके हुए दिखाई देने लगे। अख़बारों और सामयिक पुस्तकों की तो बात ही नहीं। चिट्ठियों, पोस्टकार्डों, डाकख़ाने की टिकटों की छोटी छोटी पुस्तकों तक में यह विज्ञापन प्रकाशित हुए। सारा ग्रेटब्रिटेन विज्ञापनमय हो गया।

इन अपीलों और प्रार्थनाओं का फल भी आश्चर्यजनक हुआ। इसने ब्रिटनों के हृदय में आनन्द का महासागर बहा दिया और [illegible] का दिल [illegible] दिया। छोटे मोटे आदमियों की तो बात ही नहीं, [illegible], [illegible] और बड़े बड़े घरों के युवक भी लार्ड किचनर की सेना में भरती होने लगे। [illegible] ने बड़े उत्साह [illegible] [illegible] फ़ौज में भरती हो कर युद्ध [illegible]

रवाना हुए। जितने विश्वविद्यालय हैं उन सब में शिक्षा पाने वाले बी० ए० और एम० ए० क्लासों के छात्र हज़ारों की संख्या में दौड़ पड़े। ऐसे शायद कुछ ही कुटुम्ब रह गये होंगे जिनका कोई भी निकट या दूर का सम्बन्धी इस समय अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध के मैदान में न लड़ रहा हो।

ग्रेट-ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में दो करोड़ पुरुष हैं। उनमें से इस समय ३० लाख के लगभग युद्धस्थल में शस्त्र-सञ्चालन कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य सब से बड़ी बात यह है कि फ़ौज में भरती होने के लिए इन में से एक आदमी पर भी बलप्रयोग नहीं किया गया। सब लोग अपने ही मन से ख़ुशी ख़ुशी फ़ौज में भरती हुए हैं। भरती होना अब तक बन्द नहीं। हर हफ़्ते हज़ारों रँगरूट नाम लिखाते हैं।

यह सब होने पर भी कुछ लोगों की राय है कि जो जवान अब तक सेना में नहीं भरती हुए उन्हें बलपूर्वक भरती करना चाहिए। उनका कहना है कि कुछ लोग इस बात की राह देख रहे हैं कि जब तक उनसे यह न कहा जायगा कि तुम्हारा देश तुम्हारी सेवा का मुहताज है तब तक वे सेना में नाम न लिखायेंगे। ऐसे लोग बाल-बच्चे वाले नहीं, उनकी आमदनी भी ख़ासी है। ये लोग चुपचाप ऐसे क़ानून की राह देख रहे हैं जो इन्हें सेना में भरती होने के लिए मजबूर करे। कितने ही राजनीतिज्ञ इस राय के क़ायल भी हैं। वे कहते हैं कि ऐसे क़ानून के जारी होने की ज़रूरत है। तथापि अधिकांश ब्रिटिश नागरिक इसका विरोध करते हैं। उनकी सम्मति है कि जिस ढङ्ग से आज तक सेना की संख्या बढ़ाई गई है वह बुरा नहीं। उससे यथेष्ट कामयाबी हुई है और आगे भी होगी। उसे बदलना अच्छा नहीं। मेरा निज का यही मत है। पर युद्ध-क्षेत्र का विस्तार बढ़ने से शायद यह ढँग बदलना पड़े।

सेना की संख्या बढ़ाने में ब्रिटिश साम्राज्य के और और हिस्सों ने भी ख़ूब उत्साह दिखाया है। उन्होंने भी हज़ारों रँगरूट [illegible] को सेना में भरती करके युद्धस्थल को भेजा है। [illegible] के [illegible] भागों से [illegible] की टुकड़ियाँ आई हैं और [illegible] आ रही हैं। भारतवर्ष से भेजी गई सेना का ज़िक्र [illegible] हो चुका है। [illegible] मालूम हुआ, हमारे [illegible] के बड़े [illegible]

अफ़सरों और सैनिकों से सहायता कर रहे है। यद्यपि ठीक नहीं मालूम कि केनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ी[...] ने कितनी सेना भेजी है, तथापि इनमें से प्रत्येक [...] भेजी गई सेना की संख्या कम नहीं। दक्षिणी [...] ने पहले शत्रु जर्मनों को परास्त कर उनसे वह [...] लिया जो दक्षिण-पश्चिमी अफ़रीक़ा कहाता है। फि[...] साम्राज्य की रक्षा के इरादे से बहुत सी सेना योर[...] स्थल में भेजने का निश्चय किया। यह सेना यहाँ [...] आ रही है। आशा है, शीघ्रही वह योरप में पहुँच [...]

भारत से भेजी गई जो सेना अपने सम्राट् [...] इस समय योरप में लड़ रही है उसके कितने ही [...] और अफ़सरों से मिलने का मुझे मौक़ा मिला है। [...] की रक्षा के लिए अपना रुधिर बहाने में ये लोग [...] कम नहीं। ब्रिटिश जाति और ब्रिटिश उपनिवेशों के [...] जिस उत्साह से लड़ रहे हैं, हमारे भारतीय वीरों [...] उस से रत्ती भर भी कम नहीं। जिन जिन लोगों से [...] सब ने यही कहा कि योरप में आकर अपने राजा के [...] से लड़ने का हमें बहुत बड़ा गर्व है। किस उत्साह से [...] वीर इस समय युद्ध के मैदान में लड़ रहे हैं, इसका [...] बढ़ कर प्रमाण देने के लिए मैं सरदार बलवन्तसिं[...] दुर के एक पत्र से कुछ वाक्य उद्धृत करता हूँ। [...] साहब ३३ नम्बर सिक्ख पायोनियर्स नामक पल्टन में [...] मेजर थे। अभी हाल ही में वे घाव से वीर-गति [...] हुए हैं। जिस समय लड़ाई छिड़ी उस समय उन्हों[...] एक सम्बन्धी को, जो लन्दन में बारिस्टरी की शि[...] रहे हैं, एक पत्र लिखा। इन्हीं महाशय की कृपा [...] सरदार साहब का पत्र देखने को मिला है। अपने [...] सरदार साहब लिखते हैं—

"प्यारे [illegible], अब तो तुम्हें मालूम हो ही गया होगा। [illegible] + + + + + + [illegible]"।

इसके दो दिन बाद [illegible] साहब ने अपने [illegible] को फिर एक पत्र लिखा। उसमें [illegible] है, उसे भी सुन लीजिए—



तिब्बत के दलाई लामा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



तिब्बत के ताशी लामा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

...रे क़-लिखते बड़ी ख़ुशी होती है कि लड़ाई पर जाने के लिए मेरी प्रा-
...भी पूरा हो गया। हम लोग बहुत जल्द रवाना होंगे। मैं इसके आगे
...ही स्वर्ग या क़ाबी से निकला। यह हम लोगों का सौभाग्य है जो अपने
...ईर सम्राट् की सेवा करने का मौका हमें भी मिल गया।"

इस युद्ध के समय भारत ने जिस उत्साह से ब्रिटिश ...मेंट और ब्रिटिश साम्राज्य का साथ दिया है, उससे ब्रिटिश ...गों के हृदय पर बहुत बड़ा असर पड़ा है। उन्हें अब ...बात का ख़याल हुआ है कि वे भारतवासियों का ...स कर सकते हैं। वे लोग अब भारतवासियों के साथ ...भाई के सदृश बर्ताव कर रहे हैं।

दुःख और सुख।

...त्र को है क़रार न दुख को क़रार है।
...ीज़ है दुनिया में वह सब बेक़रार है॥ १॥
...र में चार आये चार उठ खड़े हुए।
...यह कब से तार यहाँ बरक़रार है॥ २॥
...र सवार किश्तिये उम्रे रवाँ में हाँ।
...है कोई पार कोई जाता पार है॥ ३॥
...न्नये हस्ती पे है चौसर बिछी हुई।
...है कहीं जीत कहीं होती हार है॥ ४॥
...न बीन तेरी अबस ऐ सिकन्दरा।
...जहाँ तो दार ना पैदा किनार है॥ ५॥
...है कहीं घर घर नाचे कहीं मचे।
...ा है कहीं हवा कहीं लालाज़ार है॥ ६॥
...र कहीं बपा है कहीं शादी की है धूम।
... कहीं ख़िज़ाँ है कहीं पर बहार है॥ ७॥
...कहीं क़सीदे कहीं मरसिये पढ़ें।
...हमनें कहीं है कहीं मार मार है॥ ८॥
...ुलशने जहाँ में कहीं गुल है कहीं ख़ार।
...है कोई शाद कोई सोगवार है॥ ९॥
... यहाँ दम्तर तो फिर ग़म में क्यों मरे।
...ख़िज़ाँ है वहाँ जहाँ आनी बहार है॥ १०॥
...बकम बेसूद है तेरा ऐ शहंशाह।
...ाते हैं उन्हें जिन्हें ख़ुशियों से प्यार है॥ ११॥

श्रीगोपाल ब्रह्मचारी।

पौराणिक राज-वंशों का समय-निरूपण।

[लेखक—श्रीयुत हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए०]

(५)

विदेह-कुल



सूर्य-वंश के वर्णन में लिखा गया है कि इक्ष्वाकु के निमि नाम का एक और पुत्र था। निमि के जेठे भाई विकुक्षि से, जो शशाद के नाम से भी प्रसिद्ध था, सूर्य-वंश, अर्थात् अयोध्या के राजाओं का वंश, चला। निमि अयोध्या से पूर्व की ओर बढ़ा और स्वतन्त्र होकर राज्य करने लगा। एक यज्ञ में उसने वसिष्ठ को निमन्त्रण दिया। इस निमन्त्रण का स्वीकार करके भी वसिष्ठ ने लोभ से एक और यज्ञ में जाने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और निमि को वहाँ यज्ञ में उपस्थित होने के लिए आज्ञा दी। निमि ने यह न माना। उसने दूसरे ऋत्विजों को बुला कर अपना यज्ञ शुरू किया। बाद को जब वसिष्ठ ऋषि आये तब वे निमि पर बड़े क्रुद्ध हुए और उससे झगड़ा करने लगे। इस झगड़े में वसिष्ठ ने निमि को और निमि ने वसिष्ठ को मार डाला। पर निमि के मारे जाने पर भी अन्य ऋषियों ने यज्ञ जारी रक्खा और देह रहित निमि की आत्मा को ही यजमान मान कर उसे सनाथ किया। इसीसे निमि को विदेह नाम प्राप्त हुआ॥

निमि के पश्चात् ऋषियों ने उसके पुत्र मिथि को राजा बनाया। इसी मिथि ने मिथिला नगरी बसाई। इसी का दूसरा नाम जनक था। यह बड़ा ब्रह्म-ज्ञानी राजा हुआ। इस वंश के सभी राजा लोग प्रायः जनक के नाम से प्रसिद्ध थे। ये सब राजे सांसारिक विषयों से विरक्त रहते थे। इन्होंने केवल अपने ही देश पर राज्य किया, उसे बढ़ाने की कभी चेष्टा न की। इसी कारण इस कुल में पराक्रम राजा एक भी न हुआ।

राजा मिथि ककुत्स्थ, अनेनस् या ययाति का समकालीन था। उससे सीरध्वज जनक तक, जो दशरथ और रामचन्द्र का समकालीन था, पुराणों में उन्नीस राजाओं के नाम मिलते हैं—उदावसु, नन्दि-वर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहद्रुक्थ, महावीर्य, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतीन्धक, कृतिरथ, देवमीढ़, विबुध, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा और ह्रस्वरोमा। इतने ही समय में अयोध्या में कोई साठ राजे होगये। इससे स्पष्टतया ज्ञान होता है कि ये नाम बराबर क्रम से नहीं हैं। ये केवल उस समय के मुख्य मुख्य राजाओं के नाम हैं। अयोध्या तथा मिथिला के राजाओं की संख्या सीरध्वज से लेकर महाभारत के युद्ध तक एक ही है। इससे भी पिछले ही कथन की पुष्टि होती है कि उक्त काल के ये उन्नीस राजे मुख्य राजे हैं।

राजा सीरध्वज जनक की कन्या सीता श्रीरामचन्द्रजी से ब्याही थी। सीरध्वज का छोटा भाई कुशध्वज था। एक बार सांकाश्य देश का राजा सुधन्वा सीता को तथा उस शैव धनुष को जो राजा जनक के यहाँ था, छीनने के लिए आया। राजा सीरध्वज ने उससे युद्ध किया। युद्ध में सुधन्वा को मार कर अपने भाई कुशध्वज को उसने सांकाश्य का राज्य दे दिया। इसी कुशध्वज की कन्यायें भरत और शत्रुघ्न से ब्याही थीं। विदेह-कुल में सिवा इस लड़ाई के किसी और लड़ाई का पता नहीं मिलता। भागवत में लिखा है कि कुशध्वज सीरध्वज का पुत्र था, परन्तु अन्य प्रमाणों को देखते यह कथन चिन्त्य ही जान पड़ता है।

राजा सीरध्वज के पश्चात् उसका पुत्र भानुमान् राजा हुआ। भानुमान् का पुत्र शतद्युम्न, शतद्युम्न का शुचि और शुचि का ऊर्जवह हुआ। ऊर्जवह के पुत्र का नाम सनद्वाज था। सनद्वाज के पश्चात् कुनि, कुनि के अनन्तर अञ्जन और अञ्जन के बाद कुलजित् राजा हुआ। कुलजित् के ही समय में पौरव-वंशी कुरु राजा के पुत्र सुधन्वा ने मगध-राज्य संस्थापित किया। कुलजित् के पश्चात् अरिष्टनेमि मिथिलाधीश हुआ और अरिष्टनेमि के अनन्तर श्रुतायु। श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्व का [illegible] और सृंजय का क्षेमारि हुआ। क्षेमारि से [illegible] महाभारत के समय तक मिथिला में उन्नीस [illegible] हुए। उनमें से पहले पाँच राजाओं के नाम [illegible] नस्, समरथ, सत्यरथ, सात्यरथि और उपगुरु [illegible] उपगुरु के पश्चात् छठा राजा उपगुप्त और [illegible] स्वागत हुआ। स्वागत के बाद सुनर, सुव[illegible] और सुभास राजे हुए। सुभास का पुत्र सु[illegible] अयोध्या के राजा अग्नि-वर्ण का और दक्षि[illegible] पाञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का समकालीन [illegible] सुश्रुत के परवर्ती पाँच राजाओं के नाम ये थे [illegible] जय, विजय, ऋत, सुनय, और वीतहव्य। वीत[illegible] राजा मागध जरासन्ध का समकालीन था। वी[illegible]हव्य का पुत्र धृति, धृति का बहुलाश्व और बहुला[illegible] का कृति हुआ। यह कृति तथा अयोध्या का रा[illegible] बृहद्बल दोनों महाभारती युद्ध में कौरवों के पक्ष [illegible] थे और दोनों उसी युद्ध में मारे गये। अयोध्या [illegible] राज्य महाभारत के पश्चात् भी बना रहा, [illegible] जनक-वंश का अन्त कृतिराज के बाद ही सम[illegible] होगया। बहुत सम्भव है, महाभारत के अनन्त[illegible] मागध राजा सोमाधि ने अपने राज्य में मिथिला-[illegible] भी मिला लिया हो।

दिष्ट-वंश

राजा मनु के इक्ष्वाकु के सिवा एक दिष्ट ना[illegible] का एक और पुत्र था। उसका वंश भी रामचन्द्र [illegible] समय तक चला। राजा दिष्ट के नाभाग नाम का एक पुत्र था। उसने बहुत सी सम्पत्ति वाणिज्य से प्राप्त की। नाभाग का पुत्र भलन्दन हुआ। भल[illegible]न्दन का पुत्र वत्सप्रीति था। इन राजाओं ने युद्ध से राज्य बढ़ाने की अपेक्षा वैश्यकर्म से ही राज्य की समृद्धि बढ़ाने की चेष्टा की। कृषि और वाणिज्य की ओर इनका ध्यान अधिक था।

वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु, प्रांशु का प्रजानि, और उसका खनित्र हुआ। खनित्र के बाद चाक्षुष, फिर विंश, फिर विविंश राजा हुआ। विविंश [illegible]

[illegible] खनीनेत्र और खनीनेत्र के पश्चात् करन्धम [illegible] हुआ। करन्धम के पुत्र का नाम अविक्षित [illegible] अविक्षित् बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने [illegible] पुण्य कार्य्य किये, जिनके प्रभाव से उसे मरुत्त [illegible] का बड़ा प्रतापी और विजयी पुत्र प्राप्त हुआ। [illegible] मरुत्त ने दिग्विजय करके चक्रवर्तित्व का पद [illegible] किया। उसने अनेक यज्ञ किये। उसके [illegible] तथा सम्पत्ति का वर्णन ऋग्ब्राह्मण में भी है। [illegible] एक ग्रन्थ में आविक्षित मरुत्त [illegible] उल्लेख है। लिखा है:—

[illegible] श्लोकोऽभिगीतो—"मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्या- [illegible] गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद" इति। अर्थात् राजा मरुत्त के यहाँ मरुद्गण तो परो- [illegible] वाले थे और देवता सभासद थे। इस प्रकार [illegible] का वर्णन वेदों में है उसके विषय में इतना तो [illegible] ही कहना पड़ेगा यह राजा असाधारण [illegible] तथा प्रभावशाली था। रामायण के [illegible] इस मरुत्त के यज्ञ में एक बार लङ्का के [illegible] रावण ने आकर ऊधम मचाया था। पर [illegible] की प्रार्थना से राजा मरुत्त ने उसे क्षमा [illegible] दिया।

राजा मरुत्त का पुत्र नरिष्यन्त था। नरिष्यन्त [illegible] दम, दम का राज्यवर्धन और राज्यवर्धन [illegible] सुधृति हुआ। सुधृति के पश्चात् नर, केवल, [illegible], वेगवत्, बुध और तृणबिन्दु नामक [illegible] हुए। पुराणों के अनुसार यह तृणबिन्दु त्रेता- [illegible] में विद्यमान था। इसी तृणबिन्दु के [illegible] विशाल ने वैशाली नगरी बसाई। राजा [illegible] भी बड़ा पराक्रमी राजा था। उसने कई [illegible] किये। विशाल के पश्चात् हेमचन्द्र और [illegible] नामक राजे हुए। सुचन्द्र का पुत्र धूम्राश्व [illegible] राजा धूम्राश्व के अनन्तर वैशाली का राजा [illegible] हुआ और सृञ्जय के पश्चात् सहदेव। सह- [illegible] अनन्तर वैशाली में चार राजे हुए—कृशाश्व, [illegible], जनमेजय और सुमति। रामायण के अनु- [illegible] सुमति राजा ने रामचन्द्र का स्वागत किया था, जब वे विश्वामित्र के साथ मिथिला जा रहे थे।

दिष्ट इक्ष्वाकु का समकालीन था और सुमति रामचन्द्र का। दिष्ट से सुमति तक इस कुल के केवल चौंतीस राजाओं के नाम पुराणों में पाये जाते हैं। रामचन्द्रजी इक्ष्वाकु से चौसठवें राजा थे। ये सब राजे भी एक के बाद एक नहीं हुए। ये भी केवल प्रधान प्रधान राजे ही माने जा सकते हैं। सुमति के पश्चात् किसी किसी पुराण में दिष्ट-वंश का वर्णन ही नहीं है। इससे अनुमान किया जाता है कि रामचन्द्र के ही राज्यकाल में यह वंश समाप्त हो गया होगा और यह राज्य सम्भवतः अयोध्या के राज्य में मिला लिया गया होगा।

दिनों का नामकरण किसने किया ?

[प्रत्युत्तर]



छ समय हुआ, दिनों के नामकरण के सम्बन्ध में मेरा एक लेख 'सरस्वती' में छपा था। उसका 'खण्डन' एक महाशय ने 'विद्यार्थी' में प्रकाशित किया है। इसे एक मित्र की कृपा से मैंने पढ़ा। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि मेरे प्रश्नों के कारण कुछ तो इस विषय में चर्चा हुई। प्रत्युत्तर में मुझे कुछ विशेष कथन की आवश्यकता तो नहीं प्रतीत होती, तथापि, सम्भव है, कुछ लोगों को 'विद्यार्थी' के लेख से भ्रम हुआ हो। इस लिए मैं अपने पक्ष को और अधिक साफ़ किये देता हूँ। खण्डनकर्त्ता महाशय ने कई अनुचित आक्षेप किये हैं। उन्होंने 'ज्योतिषियों' की हिमायत भी [illegible] है। [illegible] इन बातों की उपेक्षा करना ही मेरा [illegible] है। [illegible] केवल [illegible] है। [illegible] नहीं होगा।

मैं इस लेख में भी [illegible]

राजा मिथि ककुत्स्थ, अनेनस् या ययाति का समकालीन था। उससे सीरध्वज जनक तक, जो दशरथ और रामचन्द्र का समकालीन था, पुराणों में उन्नीस राजाओं के नाम मिलते हैं—उदावसु, नन्दिवर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहदुक्थ, महावीर्य, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतीन्धक, कृतिरथ, देवमीढ़, विबुध, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा और ह्रस्वरोमा। इतने ही समय में अयोध्या में कोई साठ राजे होगये। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि ये नाम बराबर क्रम से नहीं हैं। ये केवल उस समय के मुख्य मुख्य राजाओं के नाम हैं। अयोध्या तथा मिथिला के राजाओं की संख्या सीरध्वज से लेकर महाभारत के युद्ध तक एक ही है। इससे भी पिछले ही कथन की पुष्टि होती है कि उक्त काल के ये उन्नीस राजे मुख्य राजे हैं।

राजा सीरध्वज जनक की कन्या सीता श्रीरामचन्द्रजी से व्याही थी। सीरध्वज का छोटा भाई कुशध्वज था। एक बार सांकाश्य देश का राजा सुधन्वा सीता को तथा उस दैव धनुष को जो राजा जनक के यहाँ था, छीनने के लिए आया। राजा सीरध्वज ने उससे युद्ध किया। युद्ध में सुधन्वा को मार कर अपने भाई कुशध्वज को उसने सांकाश्य का राज्य दे दिया। इसी कुशध्वज की कन्यायें भरत और शत्रुघ्न से व्याही थीं। विदेह-कुल में सिवा इस लड़ाई के किसी और लड़ाई का पता नहीं मिलता। भागवत में लिखा है कि कुशध्वज सीरध्वज का पुत्र था, परन्तु अन्य प्रमाणों को देखने से यह कथन चिन्त्य ही ज्ञात पड़ता है।

राजा सीरध्वज के पश्चात् उसका पुत्र भानुमान् राजा हुआ। भानुमान् का पुत्र शतद्युम्न, शतद्युम्न का शुचि और शुचि का ऊर्जवह हुआ। ऊर्जवह के पुत्र का नाम सनद्वाज था। सनद्वाज के पश्चात् कुनि, कुनि के पश्चात् अञ्जन और अञ्जन के बाद ऋतुजित् राजा हुआ। ऋतुजित् के ही समय में दीर्घवर्णा वृद्ध राजा के पुत्र सुधन्वा ने सांकाश्य-राज्य संस्थापित किया। ऋतुजित् के पश्चात् अरिष्ट-नेमि मिथिलाधीश हुआ और अरिष्टनेमि के पश्चात्

श्रुतायु। श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्व का सृ(ञ्जय) और सृञ्जय का क्षेमारि हुआ। क्षेमारि से ले(कर) महाभारत के समय तक मिथिला में उन्नीस रा(जा) हुए। उनमें से पहले पाँच राजाओं के नाम (अने-)नस्, समरथ, सत्यरथ, सात्यरथि और उपगु(रु)। उपगुरु के पश्चात् छठा राजा उपगुप्त और स्वा(गत)? स्वागत हुआ। स्वागत के बाद सुनर, सुश्रु(त) और सुभास राजे हुए। सुभास का पुत्र सु(श्रुत) अयोध्या के राजा अग्नि-वर्ण का और दक्षिण पाञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का समकालीन था। सुश्रुत के परवर्ती पाँच राजाओं के नाम ये थे: जय, विजय, ऋत, सुनय, और वीतहव्य। वीतह(व्य) राजा मागध जरासन्ध का समकालीन था। (वीत-)हव्य का पुत्र धृति, धृति का बहुलाश्व और बहुला(श्व) का कृति हुआ। यह कृति तथा अयोध्या का रा(जा) बृहद्बल दोनों महाभारती युद्ध में कौरवों के पक्ष थे और दोनों उसी युद्ध में मारे गये। अयोध्या (का) राज्य महाभारत के पश्चात् भी बना रहा, (पर) जनक-वंश का अन्त कृतिराज के बाद ही समा(प्त) होगया। बहुत सम्भव है, महाभारत के अनन्(तर) मागध राजा सोमाधि ने अपने राज्य में मिथिला (को) भी मिला लिया हो।

दिष्ट-वंश

राजा मनु के इक्ष्वाकु के सिवा एक दिष्ट ना(म) का एक और पुत्र था। उसका वंश भी रामचन्द्र (के) समय तक चला। राजा दिष्ट के नाभाग नाम (का) एक पुत्र था। उसने बहुत सी सम्पत्ति वाणिज्य (से) प्राप्त की। नाभाग का पुत्र भलन्दन हुआ। भल(-)न्दन का पुत्र वत्सप्रीति था। इन राजाओं ने युद्ध से राज्य बढ़ाने की अपेक्षा वैश्यकर्म से ही राज्य की समृद्धि बढ़ाने की चेष्टा की। कृषि और वाणिज्य की ओर इनका ध्यान अधिक था।

वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु, प्रांशु का प्रजानि, इसका खनित्र हुआ। खनित्र के बाद क्षुप, फिर विंश, फिर विविंश राजा हुआ। विविंश के

पूर्वजों ने बाहर वालों को सिखलाईं और बहुत सी उनसे सीखीं भी। यदि कोई सज्जन यह दिखला दे कि अमुक बात हमारे बड़ों ने विदेश से सीखी, तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं। कोई विद्वान् यदि इसके विरुद्ध प्रमाण दे सके तो और भी अच्छा है। सत्यान्वेषी लोगों को उसके मानने में दुराग्रह न होगा। पर व्यर्थ आक्षेपों से कुछ भी लाभ नहीं।

'ज्योतिर्वित्' महाशय ने जो लेख मेरे नोट के खण्डन में लिखा है उसे मैंने कई बार पढ़ा। पर मुझे यही ज्ञात न हुआ कि उन्होंने सिद्ध क्या किया अथवा खण्डन किस बात का किया। जहाँ तक उनके लेख को मैं समझ सका हूँ, मेरी धारणा है कि मेरे प्रश्न वैसे के वैसे ही हैं और मेरा अनुमान भी "पुनस्तत्रैवावलम्बितो वेतालः" की तरह पूर्ववत् निश्चयात्मक ही है। उसे मैं फिर संक्षेप से यहां लिखे देता हूँ—

आपने यह तो मान लिया कि अति प्राचीन लेखों में दिनों के नाम नहीं पाये जाते। पर इतना आपने और बढ़ा दिया कि—"उस समय दिन लिखने की रीति न थी"।

मेरी दूसरी बात यह थी कि सूर्य्य-सिद्धान्त-सदृश ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थों में दिन के स्वामी ग्रह का उल्लेख तो है, परन्तु सप्ताह के दिनों का नाम नहीं है। इसके उत्तर में आप लिखते हैं कि मैंने—"कोई भी ज्योतिष का सिद्धान्त ध्यान-पूर्वक पढ़ा ही नहीं"। अस्तु। आपने अनेक ग्रन्थ पढ़ने पर भी तो कोई स्थल ऐसा नहीं दिखलाया जहां सप्ताह के दिनों के नाम लिखे हों।!!! मैंने तो यह स्वयं ही लिख दिया था कि उन ग्रन्थों में दिन या वार के स्वामी का नाम अवश्य है। यही बात आपने भी दुहरा डाली। यदि आप सप्ताह के दिनों के नामों का उल्लेख कहीं दिखला देते तो शायद आपके कथनानुसार यह सिद्ध हो जाता कि आपने ज्योतिष के ग्रन्थ खूब ध्यान-पूर्वक पढ़े हैं। परन्तु आप दिखलाते कहां से, वहां कुछ हो भी तो।

मेरी तीसरी बात यह थी कि जिस तरह अन्यत्र 'Week' या ...—ऐसे पदों का प्रयोग प्रायः देखने में आता है उस तरह हमारे ग्रन्थों में नहीं देखने में आता। 'ज्योतिर्विद्' महाशय ने ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दिया जिससे कोई बात इस कथन के प्रतिकूल सिद्ध हो।

मेरे चौथे कथन को तो आपने कट भ्रमात्मक कर डाला। यह तो वही बात हुई कि—"मुखमर्दी... शतहन्ता हरीतकी"। 'ग्रह' शब्द तो नौ (९) का ... शायद आपके ग्रन्थों में ७ का ही वाचक हो। ... मालूम नहीं कि 'ग्रह'-पद से सात ग्रहों का ही बो... है, नौ का नहीं। आपके लेख से मुझे तो यह प्रती... है कि आप इस बात का ख़याल करके कि विज्ञान (... वालों ने राहु-केतु को कुछ और ही सिद्ध किया है, ग्र... ग्रह मानते हुए डरते हैं। आपही कहिए, जब हम ... की मूर्त्तियां प्राचीन मन्दिरों में प्रत्यक्ष देख रहे हैं त... संख्या ७ कैसे मानलें। क्या आप अपने पक्षांश की ... लिए अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध चलेंगे? आपकी ... क्या राहु-केतु ग्रह नहीं? देखिए कालिदा... कहते हैं"—

रामस्येन्दोरिव ग्रहः। रघुवंश १२। २८

महाभारत में क्या लिखा है, सो भी देखिए—

चन्द्रः सूर्य्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्बुधः।

१३। १७। ३...

और नीचे उतर कर देखिए, विशाखदत्त लिखते हैं—

क्रूरग्रहः स केतुः इत्यादि—

मुद्राराक्षस

"सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चापि बृहस्पतिः।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहा नव"॥

इत्यादि स्मृति-वाक्यों से तो हम लोग नौ ही ग्रह म... चले आये हैं। वराहमिहिर या किसी एक आध और ... ने जो सात ही ग्रह मान लिये हों तो यह सर्वमान्य सि... नहीं हो सकता। ग्रह-पूजा में क्या आप सात ही की ... करते हैं? नौ के ध्यान या मन्त्र नहीं पढ़ते?

ये तो हुए प्रश्नों के उत्तर। बाक़ी बातों की भी ... सी आलोचना की जाती है। साथ ही कुछ और बातों ... भी उल्लेख किया जायगा।

प्रतिपक्षी महाशय ने यह सिद्ध करने का साहस कि... है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वार या हफ़्ते के दिनों ... वर्णन है। जिस प्राचीनतम आर्ष ग्रन्थ से इन्होंने अवत... दिये हैं वह सूर्य-सिद्धान्त है। क्षण भर के लिए हम इस ...

मान लेते हैं कि सूर्य-सिद्धान्त में आदित्यवार, सोमवार आदि सब नाम पाये जाते हैं। पर मानने से भी क्या सिद्ध है? सूर्य सिद्धान्त का निर्माणकाल कौन सा है, इसका तो पहले निर्णय कर लीजिए। यदि उसकी रचना "यवन-संसर्ग" के पहले की हो, तो आपका पक्ष अवश्यमेव स्वयंसिद्ध है; उसे कोई काट न सकेगा। मैंने तो अपने लेख में केवल यही लिखा है कि ज्योतिष के सूर्य-सिद्धान्त-सदृश प्रसिद्ध ग्रन्थों में सप्ताह के दिनों का नाम नहीं, दिन के स्वामी का नामोल्लेख मात्र है। इस कारण, अर्थात् दिनों का प्रचार-बाहुल्य न होने के कारण, सम्भावना या अनुमान यही कहता है कि हमारे यहाँ उस समय सप्ताह का या उसके दिनों का नया व्यवहार हुआ होगा। अर्वाचीन ग्रन्थों का उदाहरण देना व्यर्थ है। आर्यभट या वराहमिहिर या अन्य आचार्य यदि दिनों का परिचय देते हैं तो क्या हुआ। उनके ग्रन्थों में तो "यवन-संसर्ग" का प्रभाव साफ़ ही दिखाई देता है। उनके पारिभाषिक शब्द ही इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने ग्रीकों (यूनानियों) अथवा मोटे तौर पर यवनों से ज्योतिष की बहुत सी बातें सीखीं। वराहमिहिर के होरा-शास्त्र को देखिए, उसमें कितने यूनानी शब्द हैं। यथा—

(१) होरा (Greek, Hôrâ),

(२) केन्द्र (Greek, Kentron),

(३) जामित्र (Greek, Diametron) इत्यादि, वहाँ लिखे रोमक-सिद्धान्त (= Roman Manual) का नाम इस बात का प्रबल प्रमाण है। 'ज्योतिर्विद्' महाशय का कहना कि रोमक से रोम (Rome) अभीष्ट नहीं, केवल उनका कथनमात्र है। इससे मेरा मतलब यह नहीं कि हमारे पूर्वजों ने ज्योतिष में सभी कुछ यवनों से सीखा या उन्हीं के आधार पर अपने आविष्कार किये। नहीं, उन्होंने ज्योतिष-शास्त्र की बहुत सी बातें पाश्चात्य विद्वानों को सिखलाईं। प्रकृत लेख से उनका सम्बन्ध नहीं। इस कारण उनका उल्लेख करके मैं पाठकों का समय नहीं लेना चाहता। पूर्वोक्त शब्द यूनानी हैं, इसका एक मात्र प्रमाण यह है कि उनका संस्कृत-धातु कल्पित है।

[illegible] यह युक्ति कि जैसे आज कल २। ८। १२ से तारीख़ [illegible] सन् १९१२ ईसवी का बोध होता है, किन्तु [illegible] कोई नहीं लिखता, इसी तरह पहले इस देश में दिन लिखने का रिवाज न था, कुछ भी बल नहीं रखती। यद्यपि चिट्ठियों में बहुधा हम लोग ऐसा प्रयोग करते हैं, तथापि दिनों का भी प्रयोग किया ही जाता है। जहाँ कहीं हम लोग कोई दिन नियत करेंगे वहाँ दिन का उल्लेख अवश्य ही करेंगे। विज्ञप्ति-पत्रों और निमन्त्रण की चिट्ठियों आदि में दिन का नाम प्रायः सदा ही लिखा जाता है। महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ों और काग़ज़-पत्रों में तो दिन का अवश्य ही उल्लेख किया जाता है। जहाँ निर्धारण आवश्यक होता है अथवा जहाँ तारीख़ का ठीक ठीक बोध कराना होता है वहाँ अवश्य ही दिन लिखा जाता है। दानादि के सम्बन्ध में पहले सब बातों का लिखना ज़रूरी समझा जाता था। इसीसे दान-पत्रों में साल, महीना, दिन, तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्त आदि प्राय सभी का उल्लेख किया जाता था। परन्तु यह सब तब से होने लगा जब से हम लोगों को इन बातों का ठीक ठीक ज्ञान हुआ। उसके पहले नहीं। अपने सङ्कल्प ही को देखिए, उसमें किस किस का उल्लेख है।

प्रसङ्गवश मैं यहाँ पर इतना और लिख देना चाहता हूँ कि कुशान-राजाओं के समकालीन लेखों की तरह महाराज अशोक के शासन-लेखों से भी मेरे अनुमान की पुष्टि होती है। जैसे स्तम्भ-लेख नम्बर ५ में महाराज अशोक ने आज्ञा दी है कि अमुक अमुक दिन अमुक अमुक जीव न मारा जाय। शासन का कुछ भाग यहाँ उद्धृत किया जाता है—

[illegible]

अर्थात् पक्ष के आठवें, चौदहवें और पन्द्रहवें दिन, तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में, तीन ऋतुओं की पूर्णिमा में, और उपवास के दिन [illegible] न किये जायँगे। [illegible] मेढ़ा, सूअर तथा अन्यान्य पशु, जो [illegible] किये जाते हैं, वे भी [illegible] न किये जायँगे। तिष्य, पुनर्वसु और पूर्णिमाओं में [illegible] और घोड़ों का [illegible] किया जाना निषिद्ध है।

क्या ही अच्छा होता यदि इस लेख में वार भी लिख कर दिये जाते। पर उस समय वारों का प्रचार ही न था।

इसी तरह यदि किसी कुशान-वंश के राजा या उसके समय के किसी लेख में वारों का नाम लिखा जाता तो भी वह



लामों का नाच।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

(२) हमने यह लेख लिखकर सरस्वती के हिन्दू और मुसलमान पाठकों का जी दुखाया है और आपस का भेद बढ़ा दिया है।

(३) मुसलमानों ने संस्कृत शब्दों का अशुद्ध उच्चारण और वर्ण विन्यास जान बूझकर नहीं किया है।

(४) हमने 'मुर्दे' को (ग़ालिम जी के शब्दों मे डबल से) 'मुर्द्दे' लिखकर वैसी ही भूल की है जैसी मुसलमानों से हुई है।

इन चार आक्षेपों के सिवा दो आक्षेप और हैं जो ...ना चूक कर आगरे और लाहौर तक पहुँच गये हैं। ...के अनुरोध से हम उन आक्षेपों को भी यहाँ ...ते हैं:—

(५) आर्यों ने अपने धार्मिक लिटरेचर (हिन्दी-...रिया") में "पेट भर कर" संस्कृत-शब्द भरे हैं और ...के गले पर उलटी छुरी फेरी है।

(६) कुछ हिन्दी लेखक यावनी शब्दों को दूसरे ही ...र से बोलते और लिखते हैं। वे उर्दू ढँग की कविता ...ते हैं और मुँह के बल गिरते हैं।

इन आक्षेपों का उत्तर हम क्रमशः देते हैं:—

(१) विद्वान् लोग इस बात को मानते हैं कि किसी भी ...षा में विदेशी भाषा के उच्चारण और वर्ण-विन्यास का ...रा पूरा अनुकरण नहीं हो सकता। तथापि विदेशी शब्दों का रूपान्तर इतना अधिक भी नहीं होता जिससे उनकी पहचान ही न हो सके। 'मुर्दे' को 'मुर्द्दे' लिखने से किसी भी न्यायी और विचार-शील मनुष्य को इस शब्द का अर्थ समझने में भ्रम होना सम्भव नहीं है, परन्तु "विषय" को "विख", "प्रहर" को "पहरा", "प्रकृति" को "परकरती" अथवा "शूद्र" को "शुद्दर" बोलने या लिखने से बहुत ...र अनर्थ हो सकता है।

हमें इस बात की न कोई चिन्ता है और न कोई खेद है कि मुसलमान लोग संस्कृत शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करते हैं, क्योंकि हमने अपनी भाषा के अक्षरों अथवा शब्दों की ठेकेदारी की रजिस्टरी नहीं कराई है। अंगरेज़ लोग भी हम लोगों से कभी इस बात पर अप्रसन्न नहीं होते कि हमने उनके इतने बड़े "लार्ड" शब्द को "लाट" कर दिया है। हमारा आक्षेप केवल इतना ही है कि जब मुसलमानों को (ग़ालिम जी के मतानुसार) यह मालूम होगया कि फ़ारसी लदे विज्ञापन से हिन्दुओं को कुछ भी लाभ नहीं है और जब उन्होंने हिन्दुओं के समझने योग्य भाषा में दूसरा और तीसरा विज्ञापन दिया तब व्याख्यानों में उनको ऐसी भाषा व्यवहार में लानी थी और संस्कृत-शब्दों का ऐसा उच्चारण करना था जिसे हिन्दू लोग, जो उर्दू नहीं जानते थे, समझ सकते। जिन थोड़े से शब्दों की सहायता से व्याख्यान का सार समझने की आशा थी उन्हीं का उच्चारण जब कुछ का कुछ हुआ तब श्रोताओं की मनोऽवस्था का अनुमान आप स्वयं ही कर सकते हैं। लेख का उद्देश यही था कि ऐसी दशा फिर कभी न हो।

(२) इस लेख से सरस्वती के हिन्दू पाठकों का जी दुखने का प्रमाण अभी तक नहीं मिला है; पर आपके समान विचार वाले मुसलमान सज्जनों का जी दुखने का एक विशेष कारण हो सकता है, जिसके लिए आप ही उत्तर दाता हैं। आपने भाषा के प्रश्न के साथ जाति का प्रश्न उपस्थित कर दिया है; पर भाषा के अधिकार जाति के अधिकार से भिन्न होते हैं। मुसलमानों के समान महाराष्ट्र, बङ्गाली, गुजराती और मदरासी लोग भी हिन्दी लिखने और बोलने में भूलें करते हैं और धर्म-सुधारकों के समान भाषा-सुधारक भी समय पड़ने पर इन लोगों की भाषा की समालोचना करते हैं। अब यदि ये लोग भी पुकार मचाने लगें कि हमारी भूलें दिखा कर व्याख्याता जी हमारा दिल दुखाते हैं तो व्याख्याताओं के सदृश लेखकों को लेखनी उठाने का साहस ही न हो। फिर, किसी जाति की भाषा सम्बन्धिनी अशुद्धता दिखाने से उस जाति का जी दुखने की सम्भावना नहीं है— यह बात आपके ही मत से सिद्ध होती है। आप लिखते हैं कि "उर्दू फ़ारसी, और अरबी, तीनों में कोई अक्षर नहीं जो 'ण' से मिलता हो", इस लिए हिन्दी अक्षर उर्दू भाषा के लिए उपयुक्त नहीं हैं। हाल में यदि स्वर्गमूर्ति [illegible] दुर्गेश महाराज ने हिन्दी को "मुर्दा ज़बान" कहकर हिन्दुओं का दिल नहीं दुखाया है तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि हमने "बच्चा" कहने वालों को "बचा" की भूल बता कर अपराध किया है। आप लोगों को कवियों की उर्दू-कविता में ("कबर" के बदले) "कबीरी की बू" आती है, पर हम लोगों ने अपना हक़ में यह कभी नहीं

सम्भावना की जा सकती कि उस समय वारों के नाम प्रचलित थे। गत वर्ष तक्ष-शिला में राजा एज़ीज़ (Azes) के समय का एक लेख सर जान मारशल साहब को मिला है। उसमें महीने का नाम तो है, साथ ही उसके दिन की संख्या भी है, परन्तु वार का नाम नहीं। इससे क्या सूचित हुआ? यही न कि उस समय वारों का नामकरण न हुआ था? एज़ीज़ के समय के इस लेख का पहला भाग इस तरह पढ़ा गया है—

स १००० २० १० ४ १ १ अयस अषडस
मसस दिवसे १० ४ १ इस दिवसे
प्रदिस्तवित भगवतो धतुओ०

अर्थात्—राजा एज़ीज़ (Azes) के १३६ वें वर्ष आषाढ़ महीने के १५ वें दिन और आज के या इस दिन भगवान् की धातु की प्रतिष्ठा हुई।

यदि ऐसे स्थलों में वारों का नामोल्लेख मिल जाता तो इन प्रश्नों का तुरन्त फ़ैसला हो जाता। प्रतिवादी महाशय ही अब इस अधूरे काम को पूरा करें तो उनकी बात रह जाय।

मेरा कथन केवल इतना ही है कि भारतवर्ष के प्राचीनतम लेखों में दिनों या वारों के नाम नहीं मिलते। अर्वाचीन लेखों में मिलते हैं। इससे यही अनुमित होता है कि उस समय शायद उनका ज्ञान हमें न रहा हो। 'ज्योतिर्विद्' महाशय के कहने का मतलब यह है कि इनका ज्ञान हमें था, पर, इनका व्यवहार उस समय न होता होगा। इस पर मेरी प्रार्थना यह है कि यदि मुझे कोई ऐसा प्रमाण मिल जाय जिससे इन नामों की सत्ता हमारे देश में ईसामसीह से चिरकाल पहले निश्चित हो जाय तो मैं उनकी बात मान सकता हूँ, अन्यथा नहीं। दुबारा अन्वेषण से मुझे इतना प्रतीत होता है कि ईसा मसीह की प्रथम शताब्दी में वारों का ज्ञान शायद हमें था—एथीनिया के रहने वाले फिलोस्ट्रेटस नाम के एक विद्वान् ने (Philostratus, the Athenian) एपोलोनियस त्याना (Apollonius Tyana) की जीवनी में किसी भारत वर्षीय महात्मा (Iarchas ?) के विषय में लिखा है कि उसने एपोलोनियस को सात अँगूठियाँ दी थीं, तिन पर भिन्न भिन्न ग्रहों का नाम खुदा था और जिन्हें वह उस उस नाम के दिन पहनता था। एपोलोनियस ग्रीस देश का निवासी था। उसने ईसा मसीह के प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में इस देश की यात्रा की थी। पर यहाँ एक और कठिनाई की बात है। वह यह कि एपोलोनियस के भारतवर्ष आने का कुछ भी प्रमाण प्राप्त नहीं। इसके फिलोस्ट्रेटस की पुस्तक सिर्फ़ गप्पाष्टकों से भरी हुई। उसकी बातें विश्वसनीय नहीं। वह बहुत पीछे लिखी गई है। उसका रचना-काल २१६-१८ ईसवी है। इस दशा में उसका कथन ग्राह्य नहीं।

महाभारत के प्रमाण से यह तो सूचित है कि हमारे पूर्वज अज्ञात समय से ग्रहों का परिचय रखते थे। तिस पर भी हमारे प्राचीन लेखों में वारों का व्यवहार नहीं मिलता, यह बात बहुत विस्मय-जनक है।

मेरी प्रार्थना यह है कि इस सम्बन्ध में मुझे किसी प्रकार का आग्रह नहीं। यदि किसी को कोई ऐसा उदाहरण या प्रमाण ज्ञात हो जिससे यह सिद्ध हो जाय कि एतद्देशीय विद्वानों ने ही वारों का नामकरण किया या दूसरों को सिखाया अथवा ईजिप्ट या बेबिलोनिया की सभ्यता के पहले हमें वारों का ज्ञान था तो मैं बहुत ही प्रसन्न और कृतज्ञ हूँगा। इस दशा में मैं खुले दिल से—"एतद्देशप्रसूतस्य" इत्यादि मनु-वाक्य का फिर से उच्चारण करूँगा।

हीरानन्द शास्त्री

"व्यर्थ कोप" की शान्ति।



सरस्वती की गत संख्या में श्रीयुत सय्यद जफ़र मुन्शी आलिम नामक एक मुसलमान सज्जन का लेख छपा है जिसमें गत जून की सरस्वती के "मुसलमानी हिन्दी" नामक लेख का खण्डन है। आनन्द की बात है कि मुन्शी आलिम साहब मुसलमान होकर हिन्दी पढ़ते हैं और उसमें लेख लिखने की चेष्टा करते हैं। आपके लेख में बहुत सा शब्द-... होने पर भी दो चार सार की बातें भी हैं। लेखक महाशय ने हम पर नीचे लिखे आक्षेप किये हैं:—

(१) संस्कृत-शब्दों का अशुद्ध उच्चारण और अशुद्ध विन्यास करने के कारण हम मुसलमानों से कुपित हुए

प की दृष्टि से नहीं, किन्तु हिन्दी-लेखकों की दृष्टि से "ग्रान्तीयता" का दोष है और उस शब्द का शुद्ध अपभ्रंश और निश्चित करना हिन्दी-लेखकों के विचार का विषय है।

जिस मिसरे की दुम (?) बढ़ने की बात पर आप लेखक को मुँह के बल गिरता हुआ बतलाते हैं वह आपकी प्यारी "तक़्तीअ" के अनुसार भी अशुद्ध नहीं है। देखिए—

मफ़ऊल	फ़ाइलातुन	मफ़ऊल	फ़ाइलातुन
तुममें है	सब तू सब में	सब तू है	तू सभी है

आपने "ॠ" और त्रि के समान जो स्वर हिन्दी में रखे हैं वे हमने केवल आपकी विचित्र वर्णमाला समझ- कर नहीं लिखे। यदि यह भी मान लिया जाय कि आपकी तक़्तीअ के अनुसार यह चरण शुद्ध नहीं है—क्योंकि हम उस तक़्तीअ का भेद नहीं जानते—तो भी यह रचना हमारे छन्दशास्त्र के अनुसार शुद्ध है। देखिए—

I I I I I S I S S I I S I S I S S
सुद्ध बनके ए स्वयम्भू, सबको बनाया तूने = १२ + १२

I I S I I I I I S I I S I S I S S
तुझ में हैं सब तू सब में, सब तू है तू सभी है = १२ + १२

यह हिन्दी का दिक्पाल छन्द है, जिसमें १२ × १२ के विश्राम से प्रत्येक चरण में २४ मात्रायें होती हैं।

"रविता विराम होई, दिक्पाल छन्द सोई"।
(छन्द प्रभाकर)

हिन्दी में आपको कई छन्द ऐसे मिलेंगे जो आपको कई ढँग के ज्ञान पड़ेंगे, पर हिन्दी में कोई भी छन्दशास्त्र सम्बन्धिनी पुस्तक पढ़ने से आप का यह भ्रम दूर हो जायगा।

अन्त में मेरा निवेदन है कि एक प्रतिष्ठित हिन्दी-लेखक के विषय में "मुँह के बल गिरना" कहने से आपका कौन सूचित ... शान्ति !

प्रियतम ...

अन्तर्जातीय क़ानून।

[लेखक—अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०]



क़ानून शान्तिरक्षा के लिए है। कला-कौशल और व्यापार की उन्नति हो, विद्या का प्रचार हो, पारस्परिक प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि हो, क़ानून का यही उद्देश है। शासित जनों की आर्थिक दशा अच्छी हो, उनके जान-माल की रक्षा हो, निर्बल पर सबल अत्याचार न कर सके, शासक की यही आकांक्षा होनी चाहिए। कोई किसी के स्वत्व और अधिकार को न छीन सके, परस्पर न्याय और धर्म का व्यवहार हो, यही क़ानून की मनशा है।

अन्तर्जातीय क़ानून की परिभाषा यह है—

"That body of rules and principles which regulate the intercourse of states with each other and to some extent the relations of a state with the subjects of another state."

अर्थात् अन्तर्जातीय क़ानून वह है जो संसार के समस्त सभ्य राज्यों के पारस्परिक आचरण का नियमन करे। इस परिभाषा से यह साफ़ ज़ाहिर है कि इस क़ानून या नियमावली की पाबन्दी सब राज्यों पर लाज़िमी है। इस तरह के क़ानून के सम्बन्ध में बहुत सी किताबें लिखी जा चुकी हैं। यह विषय बड़े महत्त्व का है। वर्तमान समय के महाभारत में प्रवृत्त राज्यों के दाँव-पेच समझने के लिए तो इस क़ानून का पूर्ण ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। अतएव इस क़ानून की उत्पत्ति, उन्नति और इसके आधुनिक रूप के सम्बन्ध में, संक्षेप से, कुछ लिखना इस लेख का मुख्य उद्देश है।

उत्पत्ति।

लगभग १११ वर्ष ईसा के पहले रोम के प्रजातन्त्र देश की तूती बोल रही थी। रोम ही इस समय कला-कौशल और व्यापार का [illegible] था। वहीं विद्या और सभ्यता का अनुकरण था। अब दूर दूर से लोग वहाँ विद्या पढ़ने और कला-कौशल में प्रवीण होने के लिए

कहा कि मुसलमान लेखक हमारा जी दुखाते हैं। यदि आपका जी दुखने का कोई साधार कारण है तो हम आपके दुख से दुखी हैं।

(३) इस बात का पता लगाना कठिन है कि मुसलमान व्याख्याता लोग हिन्दी जानते थे या नहीं; पर हिन्दी के विषय में उनके तिरस्कार का प्रमाण "हिन्दी—विन्दी" समास से ही मिल जाता है। यदि हम कहें कि "तक़रीर" कोई "उर्दू—सुर्दू" का शब्द है तो श्रोताओं को उस भाषा के विषय में हमारी पूज्य बुद्धि का पता अवश्य लग जायगा। हिन्दी के "मनु" शब्द को "मनू" कहने के लिए क्या कारण है? यदि आर्यों ने अपने धार्मिक साहित्य की भाषा में उर्दू अक्षरों पर "ऐराब" नहीं लगाये हैं तो क्या, उनके अभाव में आपने अपने मन से "तशदीद" लगाली! यह तिरस्कार नहीं तो अक्षम्य उदासीनता अवश्य है।

(४) आलिम जी ने अपना नाम "ज़फ़र" हिन्दी में लिखने के लिए हिन्दी अक्षरों के नीचे (आधार के समान) बिन्दियाँ लगा कर शुद्ध उच्चारण की पराकाष्ठा दिखा दी; पर इस बात का विचार न किया कि हिन्दी में क्या कोई ऐसा भी शब्द है जिसमें "अ" के पश्चात् फिर "अ" आता है, अथवा "अ" के पश्चात् "अ" का उच्चारण हो सकता है। न्याय तो तब था जब वे अपने "नून" के नीचे एक और बिन्दी लगा कर अपने सहधर्मियों को "ण" का उच्चारण सिखाते। यदि उर्दू, फ़ारसी और अरबी तीनों में कोई अक्षर नहीं जो "ण" से मिलता हो तो हिन्दी और संस्कृत में कौन सा ऐसा अक्षर है जो आपके गला-घोंटू "अ" से मिलता है! आप अपने एक अस्वाभाविक उच्चारण को स्थिर रखने के लिए दूसरी भाषा के अक्षरों को भी हिला देते हैं, पर अपनी भाषा में अकेले एक "ण" के न होने से आप मुसलमानों के सब अशुद्ध और उट-पटांग उच्चारण क्षन्तव्य समझते हैं!

हमने "मुर्दे" को "मुर्द्दे" अपने संस्कृत-व्याकरण के अनुसार लिखा है; क्यों कि यह शब्द हमारी भाषा में अपना व्याकरण बग़ल में दाबकर नहीं आया है। संस्कृत में आचार्यों ने उच्चारण की सूक्ष्मता पर इतना ध्यान दिया है कि उन्होंने रेफ के पश्चात् कई अक्षरों को विकल्प से द्वित्व करने का नियम तोड़ निकाला है। यदि आप संस्कृत-शब्दों पर ध्यान देवें तो आप को तुरन्त जान पड़ेगा कि "धर्म", "म[illegible] आदि शब्द अपने स्वाभाविक उच्चारण के अनुसार [illegible] से "धर्म्म", "मर्द्दन" आदि लिखे जाते हैं। यह आ[illegible] दिखाया हुआ "अभ्यास का खेल" नहीं है; किन्तु शब्द की विशेषता है। इसी रीति से हमने "मुर्दे" को "[illegible] 'द' से" लिख कर मानो उसे सजीव कर दिया है।

अब हम दो चार शब्द उन लोगों के विषय में भी [illegible] देते हैं जिन्हें आलिमजी ने हमारे सङ्ग का दोष लगा[illegible]

(५) यदि आर्यों ने उर्दू में "पेट भर कर" [illegible] शब्द लिखने से उर्दू के गले पर छुरी फेरी है तो आप ने हिन्दी में भरे पेट पर पेट भर कर फ़ारसी, अर[illegible] भर कर और हिन्दी को "उर्दू" (अथवा लश्कर[illegible] "बर्दू") बना कर हिन्दी के गले पर क्या तलवार नह[illegible] है! यहाँ तो आपने पक्षपात की पराकाष्ठा दिखला दी! [illegible] आर्य लोग आप की सलाह मानते तो जिन हिन्दू लो[illegible] नागरी अक्षरों का प्रचार मिट गया है उनके लिए "पुन[illegible] के बदले "तनासुख़" लिख कर "वैदक" धर्म का [illegible] करते! इस सलाह के अनुसार वे लोग अपने को "[illegible] (श्रेष्ठ) न कह कर मुसलमानों के समान "आरि[illegible] (लज्जित) कहते तो अच्छा था!

(६) जो लोग "परदे" को "पड़दे" लिखते [illegible] भाषा के उसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं [illegible] उल्लेख ऊपर हो चुका है—अर्थात् किसी भी भा[illegible] विदेशी उच्चारण और वर्ण-विन्यास का पूरा पूरा पालन [illegible] हो सकता। आप लोग भी कदाचित् इसी सिद्धान्त के [illegible] "देश" को "देस" लिखते और बोलते हैं। क्या [illegible] कभी महाराष्ट्र-लोगों से भी यह पूछा है कि आप लोग सब मराठी में "पड़दा" क्यों बोलते और लिखते हैं? और आपके बताने पर वे लोग भूल स्वीकार करके "पड़दा" "परदा" लिखने और बोलने लगेंगे? वे लोग आपको उत्तर देंगे कि "पड़दा" शब्द उर्दू में भलेही "परदा" पर हमारी मराठी उर्दू नहीं है और हम लोगों में "प[illegible] ही शिष्ट समझा जाता है। एक महाराष्ट्र सज्जन ने तो [illegible] में "पड़दा" नामक कविता लिख कर इस शब्द को [illegible] ऊँचा दिया है। यदि "पड़दे" शब्द में कोई दोष है [illegible]

आया करते थे। थोड़े दिनों में विदेशियों की संख्या वहाँ बहुत बढ़ गई। तब यह कठिनाई उपस्थित हुई कि उनके लिए कानून कैसा हो? भला, रोम-निवासी कब चाहते थे कि विदेशी उनके जातीय नियमों (Civil Laws) से लाभ उठावें। इससे उनके जातीय गौरव को बट्टा लगता था। साथ ही देशोन्नति के लिए उनका बहिष्कार करना भी युक्ति-सङ्गत न था। इस लिए रोम-साम्राज्य में जस जेन्टियम (Jus Gentium) नामक कानून बनाया गया। उसी के अनुसार रोम में रहने वाले विदेशियों और रोम-निवासियों के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा होता था। जस जेन्टियम (Jus Gentium) कानून में उन्हीं नियमों का समावेश है जो प्रत्येक राष्ट्र में साधारणतः काम में लाये जाते हैं। इस कानून में उन्हीं नियमों को स्थान दिया गया था जो उस समय के निकटवर्ती समाजों में प्रचलित थे। उसमें उन नियमों को स्थान ही नहीं दिया गया—उनकी चर्चा ही नहीं की गई—जो रीति-रस्म, रिवाज, जल-वायु और भूमि की विशेषता के कारण एक ही राज्य में प्रचलित थे अथवा एक ही जाति के लिए उपयुक्त थे। यद्यपि जस जेन्टियम (Jus Gentium) को आधुनिक अन्तर्जातीय नियम कहना अत्युक्ति है तथापि उसके नियम वर्तमान नियमों से कई अंशों में बहुत मिलते जुलते हैं।

उन्नति।

लगभग २७ वर्ष ईसा के पहले रोम-साम्राज्य स्थापित हुआ। उस समय विश्वव्यापी साम्राज्य (Universal Empire) के प्रश्न ने बड़ा हलचल मचा रक्खा था। सब की यही आन्तरिक इच्छा थी कि एक ऐसा बड़ा साम्राज्य स्थापित हो जो अन्य छोटे छोटे राज्यों का अधिकार-सूत्र अपने हाथ में रक्खे, उनके पारस्परिक झगड़ों का फ़ैसिला करे और उनकी रक्षा भी करे। परन्तु, दैव की इच्छा वैसी न थी। विश्वव्यापी साम्राज्य का सितारा देखते ही देखते डूब गया। कई छोटे-मोटे स्वाधीन राज्यों का विकास हो गया। इन राज्यों में परस्पर लड़ाई झगड़ा होने लगा। थोड़े ही दिनों बाद धर्म में भी प्रोटेस्टंटस (Protestants) और केथलिक्स (Catholics) ये दो दल हो गये। इनमें

आधुनिक अन्तर्जातीय नियमों का निर्माण हुआ। वे राजनैतिक स्वाधीनता और भूमि (Territorial Sovereignty) के आध सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में नर-हत्या हुई। उस समय लोगों ने युद्धों की संख्या भीषणता कम करने के लिए कुछ और नियमों करना चाहा। उन्होंने सोचा कि ऐसे नियमों और युद्ध कम हो जायगा। इस कार्य की पू प्रसिद्ध कानूनदाँ ह्यूगो ग्रोटियस (Hugo चुना गया। उसका जन्म सन् १५८३ में हुआ ग्रोटियस आधुनिक अन्तर्जातीय कानून का जन्म जाता है। वह हालैंड देश का निवासी था। बड़ी अच्छी किताब लिखी। किताब का नाम Treatise on the Law of War and ग्रोटियस ने यूनान के स्टोइक पन्थ के दार्शनि Philosophers) के प्राकृतिक नियमों (Jus N को अपने सिद्धान्तों का आधार माना। प्रोफ़ेस का कहना है—

(१) That there is a determina nature.

अर्थात्—हर देश में कुछ ऐसे नियम पा जिनका पालन मनुष्य अपनी आत्मा की प्रेरण करता है। ईश्वर की कृपा से जन्म के साथ पैदा एक हृदयस्थ शक्ति हर मनुष्य को ऐसे नियमों करने के लिए बाध्य करती है। इसके लिए कि की आवश्यकता नहीं। साथ ही किसी के आ ज़रूरत नहीं। ऐसे नियम मनुष्य-मात्र को स्वीकृत उनका पालन वह अपनी रक्षा के लिए किया करता

(२) That International law is b on states *inter se.*

अर्थात्—सारे राष्ट्र इन नियमों के पालन के लि हैं। इन्हीं नियमों के द्वारा दो या दो से अधिक पारस्परिक झगड़े का निपटारा हो सकता है।

(३) Sovereigns should be rela each other, like the members of a

सर्व राजाओं का परस्पर सम्बन्ध देश के ज़मींदारों के
पर सम्बन्ध के सदृश होना चाहिए । मतलब यह कि उनमें
ति बने रहें और एक दूसरे के स्वत्व और अधिकार को
। कोई राज्य, चाहे वह कितना ही समृद्ध और शक्तिशाली
किसी छोटे और अशक्त राज्य पर बिना कारण अन्या-
र कर सके । इसी का नाम राजनैतिक स्वतन्त्रता है ।

इसके बाद कई सन्धियाँ हुईं । उनमें कितने ही नये
म निश्चित हुए । उदाहरण के लिए:—

(१) वेस्टफेलिया की सन्धि । इसमें यह नियम निश्चित
कि प्रत्येक राज्य, चाहे बड़ा हो चाहे छोटा, अपनी
। के भीतर हर तरह स्वाधीन है ।

(२) सन् १८४१ की सन्धि । इसमें यह निश्चित हुआ
निरस्य समुद्र पर प्रत्येक राज्य का पूर्ण अधिकार
जैसे, इँगलेंड का इँगलिश चैनल (अँगरेज़ी खाड़ी) पर ।

(३) वाशिङ्गटन की सन्धि—के अनुसार प्रत्येक तटस्थ
का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य के किसी भाग में
युद्ध लिप्त राज्य (Belligerent) को युद्ध की तैया-
रने से रोके ।

(४) सन् १८६२ के सेंटपीटर्सबर्ग की घोषणा एवं
। की द्वितीय जर्मन पञ्चायत इत्यादि ।

न सन्धियों में विशेषतया उदासीन—तटस्थ—राज्यों
कर्तव्य निश्चित किये गये हैं । इन प्रस्तावों या नियमों
म्बन्ध में अध्यापक लीकोक (Prof. Lekok) ने
है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में तटस्थता-
: नियमों की उन्नति पर ही अधिक ध्यान दिया गया
न सन्धियों में सब से उत्तम वह है जो सन् १९०७ में
The Hague) नगर में हुई थी । उसमें युद्ध-सम्बन्धी
लिन नियम निश्चित हुए—

(१) जिस शत्रु ने हथियार रख दिया हो उसे न
चाहिए ।

(२) अचानक धावा (Surprise Assaults)
निषिद्ध है ।

(३) पुस्तकालयों में आग लगा देना, कला-कौशल
ज्ञान की चीज़ें नष्ट करना निषिद्ध है ।

(४) प्रजा का धन लूटना भी मना है ।

(५) प्रजा की स्वाधीनता और कुल-मर्यादा की रक्षा
दारों का कर्तव्य है ।

(६) गोलन्दाज़ी करते समय धर्मस्थान या प्रार्थना-मन्दिर (Churches), कलाभवन, विज्ञानशाला और अजायबघर की यथा शक्ति रक्षा करनी चाहिए ।

(७) ऐसे "टारपीडो" का व्यवहार निषिद्ध है जो निशाना चूकने पर भी कुछ न कुछ और हानि पहुँचावें ।

(८) प्रजा का धन और माल ज़ब्त न किया जाय । इत्यादि ।

उपसंहार ।

वर्तमान महाभारत में इन नियमों का कहाँ तक पालन हो रहा है, यह बात समाचारपत्रों के पाठक अच्छी तरह जानते हैं । इन अन्तर्जातीय नियमों के अनादर करने वाले कौन हैं, यह बात कुछ देशों की युद्ध-सम्बन्धिनी कहावतों से साफ़ ज़ाहिर हो जायगी । हम यहाँ पर पाठकों के जानने के लिए उनमें से कुछ कहावतें लिखते हैं—

अँगरेज़ों की कहावतें ।

(१) Since the foolish part of mankind will make wars from time to time, with each other, not having sense enough otherwise to settle their differences, it certainly becomes the wiser part, who cannot prevent these wars, to alleviate as much as possible the calamities attending them. (Benj. Franklin)

अर्थात्—जो मन्द-बुद्धि बिना युद्ध के अपने झगड़ों का निपटारा नहीं कर सकते, उन्हें चाहिए कि वे युद्ध की भीषणता कम करने का प्रयत्न करें । बेंजामिन फ़्रैंकलिन

(२) My thoughts are turned on peace: already have our quarrels filled the world with widows and with orphans (Addison).

अर्थात्—हमें शान्ति चाहिए, युद्ध की इच्छा अब नहीं रही । हमारे पारस्परिक झगड़ों के कारण विधवाओं और अनाथों की संख्या बहुत हो गई है । एडिसन

(३) War, the needy bankrupt's last resort (Rowe)

आया करते थे। थोड़े दिनों में विदेशियों की संख्या वहाँ बहुत बढ़ गई। तब यह कठिनाई उपस्थित हुई कि उनके लिए क़ानून कैसा हो? भला, रोम-निवासी कब चाहते थे कि विदेशी उनके जातीय नियमों (Civil Laws) से लाभ उठावें। इससे उनके जातीय गौरव को बट्टा लगता था। साथ ही देशोन्नति के लिए उनका बहिष्कार करना भी युक्ति-सङ्गत न था। इस लिए रोम-साम्राज्य में जस जेन्टियम (Jus Gentium) नामक क़ानून बनाया गया। उसी के अनुसार रोम में रहने वाले विदेशियों और रोम-निवासियों के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा होता था। जस जेन्टियम (Jus Gentium) क़ानून में उन्हीं नियमों का समावेश है जो प्रत्येक राष्ट्र में साधारणतः काम में लाये जाते हैं। इस क़ानून में उन्हीं नियमों को स्थान दिया गया था जो उस समय के निकटवर्ती समाजों में प्रचलित थे। उसमें उन नियमों को स्थान ही नहीं दिया गया—उनकी चर्चा ही नहीं की गई—जो रीति-रस्म, रिवाज, जल-वायु और भूमि की विशेषता के कारण एक ही राज्य में प्रचलित थे अथवा एक ही जाति के लिए उपयुक्त थे। यद्यपि जस जेन्टियम (Jus Gentium) को आधुनिक अन्तर्जातीय नियम कहना अत्युक्ति है तथापि उसके नियम वर्तमान नियमों से कई अंशों में बहुत मिलते जुलते हैं।

उन्नति।

लगभग २७ वर्ष ईसा के पहले रोम-साम्राज्य स्थापित हुआ। उस समय विश्वव्यापी साम्राज्य (Universal Empire) के प्रश्न ने बड़ा हलचल मचा रक्खा था। सब की यही आन्तरिक इच्छा थी कि एक ऐसा बड़ा साम्राज्य स्थापित हो जो अन्य छोटे छोटे राज्यों का अधिकार-सूत्र अपने हाथ में रक्खे, उनके पारस्परिक झगड़ों का फ़ैसिला करे और उनकी रक्षा भी करे। परन्तु, दैव की इच्छा ऐसी न थी। विश्वव्यापी साम्राज्य का निशाना देखते ही देखते टूट गया। कई छोटे मोटे स्वाधीन राज्यों का विकास हो गया। इन राज्यों में परस्पर लड़ाई झगड़ा होने लगा। थोड़े ही दिनों बाद धर्म्म में भी प्रोटेस्टन्ट (Protestants) और कैथलिक (Catholics) ये दो दल हो गये। इनमें बराबर ३० वर्ष तक परस्पर लड़ाई होती रही।

आधुनिक अन्तर्जातीय नियमों का निर्माण इसी हुआ। वे राजनैतिक स्वाधीनता और भौमिक प्र (Territorial Sovereignty) के आधार पर सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में नर-हत्या बड़ी हुई। उस समय लोगों ने युद्धों की संख्या और भीषणता कम करने के लिए कुछ और नियमों का करना चाहा। उन्होंने सोचा कि ऐसे नियमों से न और युद्ध कम हो जायगा। इस कार्य्य की पूर्ति के प्रसिद्ध क़ानूनदाँ ह्युगो ग्रोटियस (Hugo Gro चुना गया। उसका जन्म सन् १५८३ में हुआ था। ग्रोटियस आधुनिक अन्तर्जातीय क़ानून का जन्मदाता जाता है। वह हालैंड देश का निवासी था। उसने बड़ी अच्छी किताब लिखी। किताब का नाम है— Treatise on the Law of War and Peac ग्रोटियस ने यूनान के स्टोइक पन्थ के दार्शनिकों (S Philosophers) के प्राकृतिक नियमों (Jus Natur को अपने सिद्धान्तों का आधार माना। प्रोफ़ेसर ग्रो का कहना है—

(१) That there is a determinal law nature.

अर्थात्—हर देश में कुछ ऐसे नियम पाये ज जिनका पालन मनुष्य अपनी आत्मा की प्रेरणा से करता है। ईश्वर की कृपा से जन्म के साथ पैदा होने एक दुर्दमनीय शक्ति हर मनुष्य को ऐसे नियमों का प करने के लिए बाध्य करती है। इसके लिए किसी प की आवश्यकता नहीं। साथ ही किसी के आदेश की ज़रूरत नहीं। ऐसे नियम मनुष्य मात्र को मालूम होते उनका पालन वह अपनी रक्षा के लिए किया करता है।

(२) That International law is bind on states *inter se*.

अर्थात्—सारे राष्ट्र इन नियमों के पालन के लि हैं। इन्हीं नियमों के द्वारा दो या दो से पारस्परिक झगड़े का निपटारा हो सकता है

(३) Sovereigns should each other, like the mem of Roman Proprietors.

ाचार्यजी ने ही इनको महासूत्र के नाम से उल्लेख
। इसके अतिरिक्त अब तो यह भी सिद्ध हो चुका है
ान वेदान्त सूत्र कोई और पुराने सूत्रों की आवृत्ति है।
ु लोग कहते हैं कि गीता में बौद्ध मत के सम्बन्ध
श्लोक हैं। अतएव गीता गौतम बुद्ध के पीछे रची
ये श्लोक गीता के सोलहवें अध्याय में ७ से १८ तक
ं आसुरी प्रकृति वाले मनुष्यों का वर्णन है। इस
प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर ने कोई सम्मति नहीं प्रकाशित
ु प्रोफ़ेसर अमलनेरकर और प्रोफ़ेसर विल्सन
है कि असुरों के वर्णन का सम्बन्ध बौद्ध-मतावल-
है।

न तैलङ्ग इस सम्मति के भी सर्वथा विरुद्ध हैं। उनका
के यह वर्णन चार्वाकों का है, बौद्धों का नहीं।
ं सन्देह नहीं कि चार्वाक बौद्धों से बहुत पहले के
े ग्रन्थों में इनका बहुधा वर्णन है। चार्वाकों के
तिजी ने एक सूत्र-बद्ध पुस्तक लिखी थी, जो अब
ती। परन्तु और ग्रन्थों से इस पुस्तक का होना
ा है। माधवाचार्य-कृत सर्व-दर्शन संग्रह में भी
ा उल्लेख है।

ीता उपनिषदों के सिद्धान्तों से भरी हुई है।
ः स्पष्ट है कि इसकी रचना का समय उपनिषदों
्रों की रचना के समय के बीच का है। पर इसमें
न्त हैं इनसे सूचित होता है कि यह बौद्ध मत के
के पहले की है और यह समय ईसा के पूर्व छठी
।

के दूसरे अध्याय के पैंतालीसवें श्लोक में निर्द्वन्द्व
इससे विदित होता है कि गीता पाणिनि से पहले
ंकि द्वन्द्व-समास का प्रचार पाणिनि-सूत्रों से पहले
णिनि ही इस समास के उद्भावक नहीं। वह
हले से चला आता है। इन्होंने इसे स्वीकार किया
है।

सी विद्वानों ने हमारे प्राचीन साहित्य की रचना
। कई भागों में बांटा है। उनके अनुसार पहला
रचना का है। इसी समय वेद-मन्त्रों की सृष्टि
ाल के उन्होंने दो विभाग किये हैं। पहले में
ऋग्वेद बना, दूसरे [illegible] यजु, साम,
और अथर्व वेद की रचना हुई। प्रोफ़ेसर मेकडोनल इस समय को ईसा के पूर्व २००० से १००० वर्ष तक बताते हैं। दत्त महाशय की भी यही सम्मति है।

दूसरा काल उपनिषदों और ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना का है, जो ईसा के पूर्व १००० से ५०० वर्ष तक बताया जाता है।

तीसरा काल सूत्र-ग्रन्थ-रचना का है, जो ईसा के पूर्व ५०० वर्ष से २०० वर्ष तक है।

चौथा काल धर्म-शास्त्रों की रचना का है, जो ईसा के २०० वर्ष पहले से ५०० वर्ष पीछे का है।

अब यह निश्चय करना है कि इन समय-विभागों में से किस समय-विभाग में महाभारत की रचना हुई, क्योंकि गीता उसीका अंश है। पर, इसका निर्णय करना सहज नहीं, क्योंकि महाभारत की रचना एक ही समय में नहीं हुई। उसके रचने वालों की संख्या भी एक से अधिक है। ख़ैर, महाभारत किसी समय में क्यों न बना हो, वेदों से सिद्ध है कि कुरु-पाञ्चाल-युद्ध ईसा के १२ या १३ शताब्दी पहले हुआ था।

महाभारत के आदि-पर्व में लिखा है कि जब शौनकादि ऋषि नैमिषारण्य में यज्ञ कर रहे थे उस समय उग्रश्रवा ऋषि वहाँ आकर उपस्थित हुए। शौनकादिक की प्रार्थना पर उन्होंने महाभारत की कथा वर्णन की। उग्रश्रवा ने महाभारत की कथा वैशम्पायन से सुनी थी और वैशम्पायन ने व्यास से। वैशम्पायन का कथन है कि व्यास ने अपने चार शिष्यों और पुत्र शुक को यह कथा सुनाई थी। इनमें से प्रत्येक ने महाभारत को प्रकाशित किया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो महाभारत व्यासजी ने कथन किया था वह यह नहीं है। यह इन शिष्यों में से किसी एक का कथन किया हुआ है। परन्तु है यह व्यासजी के असली महाभारत के आधार पर।

पश्चिमी विद्वानों ने इस प्रश्न की बड़ी खोज की है और इसे बड़े ध्यान से पढ़ा है। वे कहते हैं कि इस ग्रन्थ की [illegible] हुई है। यथा—

(१) आदि-पर्व में लिखा है कि महाभारत में ८८०० ऐसे श्लोक हैं जिनका अर्थ व्यास और शुकदेवजी को छोड़ कर और कोई नहीं जानता। अतएव शायद आरम्भ में

तो जानते हों। इससे यूरोप के विद्वानों ने यह तात्पर्य निकाला है कि पहले इस ग्रन्थ में केवल ८८०० श्लोक थे, जो ईसा के ५०० वर्ष पहले रचे गये थे। गृह्य-सूत्रों से भी इतनी ही श्लोक-संख्या का पता लगता है।

(२) आदि-पर्व में यह भी लिखा है कि जो भारत-संहिता व्यासजी ने रची थी उसमें २४००० श्लोक थे और गीता उनमें शामिल थी। इस दूसरी आवृत्ति में शिव, विष्णु, कृष्ण आदि का स्थान ब्रह्मा के समकक्ष माना गया है। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ही सबसे बड़े देवता समझे जाते थे। इस लिए इसके रचे जाने का समय ईसा के तीन सौ वर्ष पहले का है। इस अनुमान का यह भी कारण है कि यूनान देश के विद्वानों ने, विशेष कर मेगास्थनीज़ ने, इन देवताओं के पूजे जाने का हाल लिखा है।

(३) महाभारत के दूसरे पर्व में श्लोकों की संख्या ८४, ८३७ बताई गई है। इस कारण यह तीसरी आवृत्ति हुई।

(४) इस समय हरिवंश पुराण सहित महाभारत में १,०७,३९० श्लोक हैं। अतएव यह चौथी आवृत्ति हुई।

तीसरी और चौथी आवृत्तियों का समय ईसा से २०० वर्ष पहले से ४०० वर्ष पीछे तक माना गया है। ईसा के ४५०-५०० वर्ष पीछे के जो दानपत्र मिले हैं उनसे पाया जाता है कि महाभारत की चौथी, अर्थात् अन्तिम आवृत्ति, ईसा के ४०० वर्ष पीछे बनी थी।

एल के विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर ई० ए० होपकिन साहब, जिन्होंने महाभारत का सम्पादन किया है, इन आवृत्तियों का निम्न-लिखित समय बतलाते हैं—

पहली आवृत्ति ईसा के ४०० वर्ष पूर्व बनी। इस आवृत्ति में केवल मन्त्र थे।

दूसरी आवृत्ति में पाण्डवों के वीर-चरित्रों का वर्णन था। पर और और कथायें भी सम्मिलित थीं। उसमें कृष्ण देवता माने गये थे। यह आवृत्ति ईसा के ४००-२०० वर्ष पूर्व बनी थी।

तीसरी आवृत्ति ईसा के पूर्व २०० वर्ष से उसके बाद ... वर्ष पीछे तक बनी। इसमें कृष्ण पूर्ण-रीति ... वर्णन किया ...

चौथी आवृत्ति ईसा के पूर्व २०० वर्ष से उ... ४०० वर्ष तक बनी। इस में वर्तमान सभी ... हुए और पहले पर्व की भूमिका भी लिखी गई ... साहब की सम्मति में समग्र महाभारत ईसा के ... पीछे बन चुका था।

इन आवृत्तियों में से सबसे पीछे की आ... का सम्मिलित होना अनुमान किया जा... रचना धर्म-शास्त्रों से पहले की नहीं। औ... रचना का समय ईसा के २०० वर्ष प... हुआ है।

गीता का समय-निश्चय करने के लिए ... प्रमाण हैं। अभावात्मक और भावात्मक। अ... यह है कि पूर्वोक्त चार प्रकार के ग्रन्थ-रच... का पता नहीं लगता। अर्थात् मन्त्र, ... और सूत्र-ग्रन्थों के रचनाकाल में गीता न... प्रमाण यह है कि चारों काल-विभागों ... गीता में मिलते हैं। गीता में उन सब... दिखाई देती है। अतएव पूर्व-निर्दिष्ट ... यह है कि धर्मशास्त्रों की रचना के स... से पूर्व की गीता नहीं। अर्थात् वह स... और कुछ पीछे की है। ईपिक इण्डि... लेखक श्रीयुत सी० वी० वैद्य, राम० ... चरितात्मक ग्रन्थों की रचना ईसा ... पहले की है। क्योंकि महाभारत ... वर्ष पहले हुआ था। व्यासजी महा... पीछे न बना होगा; पर अन्तिम आ... पहले के लगभग सूत जी के ... अर्थात् यह अशोक के पूर्व और ... होगी।

भगवद्गीता के रचना-काल ... की यह सम्मति है कि महाभार... समय की गीता नहीं। किन्तु ... की है। प्रमाण में वे यह कहते ... स्थलों में गीता का उल्लेख ... गीता के श्लोक भी महाभारत ...



गोरा, गोरम्मा और गिरजा ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

है एकही समय में रचा गया है। गीता के रचने वाले व्यासजी हों अथवा वैशम्पायनजी हों, पर थे वे बड़े विद्वान्। गीता बहुत पुरानी है। बुद्ध के जन्म से शताब्दियों पहले वह बन चुकी थी। अठारहों अध्यायों का विषय-प्रवाह एक सा है। कहीं विच्छेद भाव नहीं। उसकी रचना सरल और सुगम है। थोड़े में बहुत कुछ कह दिया गया है। गीता की रचना का समय उसकी भाषा से भी अनुमित हो सकता है। गीता बोल-चाल की सरल संस्कृत में है। गीता में बौद्ध मत की कोई बात नहीं।

पण्डित सीतानाथ तत्त्व-भूषण की सम्मति है कि गीता ईसा के जन्म के कुछ पहले या पीछे बनी थी।

जो प्रमाण ऊपर दिये गये हैं उन पर जो आक्षेप किये जा सकते हैं उनकी भी बानगी देख लीजिए। अभावात्मक प्रमाणों द्वारा यह कहा जाता है कि गीता के सिद्धान्त मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद् और सूत्र समय के रचे हुए ग्रन्थों में नहीं हैं। सूत्र ग्रन्थों का समय ईसा के पूर्व २०० से १०० वर्ष तक बताया जाता है और कहा जाता है कि गीता उस समय के पीछे बनी होगी। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या गीता में सूत्र-ग्रन्थों की बातें हैं? गीता में तो ऐसी कोई बात नहीं। अतएव इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि गीता इस समय के पहले बनी थी? इसमें सन्देह नहीं कि गीता में मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद्-ग्रन्थों के सिद्धान्त पाये जाते हैं। परन्तु सूत्र-ग्रन्थों की कोई बात नहीं।

गीता में छहों शास्त्रों के सिद्धान्त विद्यमान हैं। परन्तु वे सिद्धान्त वेदों और उपनिषदों के हैं। अतएव सब प्राचीन हैं। यह नहीं कि वे वर्तमान छहों शास्त्रों से लिये गये हों। गीता में शास्त्रों के नाम नहीं। अतएव यह सिद्ध नहीं कि गीता ने इन ग्रन्थों से अपने सिद्धान्त लिये हैं। उपनिषदों के बहुत से श्लोक गीता में जैसे के तैसे पाये जाते हैं।

इन्हीं कारणों से गीता का बनना ईसा के ६०० वर्ष पहले से पहले सिद्ध होता है। क्योंकि ईसा के २०० वर्ष पहले से सूत्रग्रन्थों का बनना प्रारम्भ हुआ था। परन्तु गीता उसके पहले ही बन चुकी थी। यह अनुमान तेलंगजी का कथन नहीं। भारतवर्ष के बड़े बड़े विद्वानों की सम्मति है कि गीता की रचना ईसा के ६०० वर्ष पहले हुई होगी। इस अनुमान को काटने वाले जब तक कोई और प्रबल प्रमाण न मिलें तब तक इसी को ठीक मानना उचित होगा।

हमारे सनातनी पण्डितों के विचार से गीता पूर्वोक्त समय से और भी पहले की है। वे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपने मुख से गीता का उपदेश अर्जुन को कुरुक्षेत्र में किया था। जितना समय महाभारत के युद्ध को हुआ उतनाही गीता को बने हुआ।

कन्नोमल, एम०ए०

विविध विषय।

१—भारत में शिक्षा-प्रचार।



[शि]क्षित भारतवासियों को शिक्षा-प्रचार के लिए अधिक प्रयत्न-शील देख कर गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ने अब नई नई रिपोर्टें प्रकाशित करना आरम्भ किया है। ऐसी एक रिपोर्ट निकले अभी कुछ ही समय हुआ। उसका सम्बन्ध १९१३—१४ ईसवी से है। उसका नाम है—Indian Education in 1913-14. इस रिपोर्ट से मालूम होता है कि शिक्षा प्रचार में सर्वत्र उन्नति हो रही है। गत तीन वर्षों में शिक्षा पानेवाले छात्रों की संख्या इस प्रकार थी।

१९११—१२	६७,८०,७२१
१९१२—१३	७१,६०,१४४
१९१३—१४	७२,१८,१४७

इस हिसाब से १९१२—१३ और १९१३—१४ में, छात्रों की संख्या में, ७,३७,४२६ की वृद्धि हुई। और १९१२—१३ की अपेक्षा १९१३—१४ में ३,२०,२०३ छात्र बढ़े। इसका मतलब यह हुआ कि इस विशाल देश में जितने बच्चे (लड़के लड़कियाँ) स्कूल जाने योग्य हैं। उनमें से फ़ी सदी १९.६ को, १९१३—१४ में, शिक्षा मिली; बाक़ी ८०.४ शिक्षा से वञ्चित रहे। यदि कुल आबादी के हिसाब से हिसाब लगाया जाय तो फ़ी सदी ३ ही का औसत पड़ा। अर्थात् १९१३—१४ में सौ में केवल ३ जन स्कूल में थे! इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा प्रचार के सम्बन्ध में गवर्नमेंट का ध्यान पहले की अपेक्षा अब अधिक है।

तथापि देश की बढ़ी हुई निरक्षरता को देखते अभी और भी सहायता और सुभीते की ज़रूरत है।

शिक्षा-प्रचार में जो वृद्धि १९१३—१४ में हुई है उसका सूबेवार हिसाब नीचे दिया जाता है—

सूबा	१९१२-१३ की अपेक्षा फ़ी सदी कितने छात्र बढ़े	स्कूल जाने योग्य उम्र वालों में फ़ी सदी कितने ने शिक्षा पाई
मदरास	७·६	२३·७
बम्बई	४·२	२१·३
बङ्गाल	१·७	२२·६
संयुक्त-प्रान्त	४·०	११·६
पञ्जाब	७·२	१४·७
ब्रह्मदेश	६·६	२७·८
बिहार और उड़ीसा	१·७	१५·६
मध्य-प्रदेश	८·६	१५·६
आसाम	१०·७	२०·३
पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रान्त	१५·५	१३·५
कुर्ग	६·५	२१·०
देहली	१४·७	२१·७
टोटल	५·०	१९·६

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि हमारा प्रान्त शिक्षा में कहाँ तक पिछड़ा हुआ है। मान लीजिए, किसी गाँव में १०० बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल जाने योग्य हैं। पर स्कूल जाते उनमें से केवल ११½ हैं! ऐसी हीन दशा इस देश के और किसी प्रान्त की नहीं। छात्रों की संख्या-वृद्धि के लिहाज़ से भी इस प्रान्त की दशा अच्छी नहीं। बङ्गाल, तथा बिहार और उड़ीसे को छोड़ कर अन्य सभी प्रान्तों में इस प्रान्त की अपेक्षा छात्रों की संख्या अधिक बढ़ी है।

× × × × ×

माध्यमिक शिक्षा देनेवाले (Secondary) स्कूलों की संख्या आदि का विवरण नीचे देखिए—

	स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या
अँगरेज़ी के हाई स्कूल	१,३४१	४,६६,१९१
अँगरेज़ी के मिडिल स्कूल	२,६७४	३,१६,४६५
देशी भाषाओं के मिडिल स्कूल	२,२५६	२,२५,९६०

१९१३-१४ में माध्यमिक शिक्षा पानेवाले छात्रों की संख्या में ६९,५७२ की वृद्धि हुई। इस वृद्धि का सार... अँगरेज़ी स्कूलों में शिक्षा पाने... ही से अधिक है ... की रिपोर्ट में लिखा है कि इस ... है। पर माँग जितनी ... अधिक नहीं। इसका ... हज़ारों लड़के इधर से ... फिरते हैं। उन्हें अँगरेज़ी ... स्कूलों और कालेजों के ... दिया है, पर उतने से ... माँग की पूर्ति नहीं ... की भी संख्या बढ़ी है ... की भी। इस समय ... हैं और उनमें, १९१२

र्ष में उनकी संख्या में कोई ४३ हजार की वृद्धि
ई ।

× × × × +

अब ज़रा सारे भारत की प्रारम्भिक शिक्षा का हाल
ए—

	स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या
।२–१३	१,१४,०२४	४०,६८,०४३
३–१४	१,१६,६२०	४१,७३,६१६

र् १९१२-१३ की अपेक्षा १९१३-१४ में दो लाख से
अधिक लड़कों ने प्रारम्भिक शिक्षा पाई । इसमें लड़कियों
संख्या शामिल नहीं । यह केवल लड़कों के स्कूलों का
ब है । इस संख्या-वृद्धि में हमारे प्रान्त के प्रारम्भिक
के लड़कों की संख्या १८,६२२ थी । अर्थात् १९१३-
में इतने अधिक लड़कों ने यहाँ शिक्षा पाई । संयुक्त-
के प्रारम्भिक मदरसों की संख्या, १९१३-१४ में,
४४ थी और उनमें शिक्षा पानेवाले लड़कों की संख्या
,,१२६ ।

इस समय सारे देश में ११,०२,२४२ लड़कियाँ शिक्षा
ती हैं । अर्थात् स्कूल जाने योग्य उम्र की १०० लड़कियों
ल ६ स्कूल जाती हैं ।

शिक्षा-प्रचार में पहले से वृद्धि अवश्य हुई है । तथापि
में ८० बच्चों ने अब तक स्कूल का मुँह नहीं देखा ।
त अभी और अधिक खर्च करने तथा और अधिक मद-
ालने की ज़रूरत है । स्कूलों में काफ़ी जगह के प्रबन्ध
ो बड़ी ज़रूरत है । वृद्धि के अवरोधक नियमों में परि-
की भी ज़रूरत है ।

२—काश्मीर में शिक्षा-प्रचार ।

शिक्षा-प्रचार में काश्मीर भी आगे कदम बढ़ा रहा है ।
र ६ सितंबर १५ को वहाँ के शिक्षा विभाग के अफ़सरों
नगर में एक सभा की । उसमें शिक्षा-सम्बन्धिनी अनेक
पर विचार हुआ । इस सभा की रिपोर्ट से मालूम
कि महाराजा साहब, काश्मीर, अपनी रियासत में
-प्रचार की यथेष्ट वृद्धि करना चाहते हैं । उनकी इच्छा
सभी शिक्षा-प्राप्ति-योग्य लड़कों और लड़कियों के लिए
के साधन—पाठशालायें और स्कूल
। महाराजा की इस सदिच्छा की
कम है ।

पूर्वोक्त सभा में एक सबसे अधिक महत्त्व की बात
विचार हुआ । वह यह कि शिक्षा किस भाषा के द्वारा
जाय । निश्चय हुआ कि दूसरे मिडिल दरजे तक सब विष
की शिक्षा देशी भाषा ही के द्वारा दी जाय और ती
मिडिल दरजे में भी इतिहास की शिक्षा अपनी ही भाषा
दी जाय । यह बहुत अच्छा हुआ । छोटे दरजों में दे
भाषाओं के द्वारा शिक्षादान की आवश्यकता जब ब्रिटि
गवर्नमेंट ने भी स्वीकार कर ली है तब देशी रियासतों
तो इसके पहले ही अपनी भाषा को योग्य स्थान दे
चाहिए था । पञ्जाब में यद्यपि काश्मीरी और पञ्जाब
भाषाओं का भी प्रचार है तथापि मिडिल तक की शिक्षा
हिन्दी और उर्दू को ही स्थान दिया गया है । श्रीनगर
श्रीप्रताप हाई स्कूल—नाम की एक संस्था है । लाला ठाकु
दास भण्डारी, बी०ए०, उसके हेड मास्टर हैं । पूर्वोक्त सभ
में उपस्थित सज्जनों की संख्या १४ थी । उनमें से एक आ
भी थे । १३ की राय हुई कि मिडिल में जिसकी इच्छा हो
हिन्दी में शिक्षा-प्राप्ति करे और जिसकी इच्छा हो उर्दू में
पर लाला साहब ने इसकी मुख़ालफ़त की । आपने राय दी
कि राज्य के किसी भी स्कूल में हिन्दी फटकने न पावे, उर्दू
ही का अखण्ड राज्य रहे । जो काश्मीर संस्कृत भाषा और
देवनागरी की सुन्दर लिपि के लिए हज़ारों वर्ष तक प्रसिद्ध
हो चुका है उसी के शिक्षा-विभाग के एक हेड मास्टर की
यह राय सचमुच ही आश्चर्य में डालनेवाली है । ख़ैर
हुई, जो आप की राय से और कोई सभ्य सहमत न हुआ
और उर्दू के साथ हिन्दी को भी स्थान मिल गया ।

इस सभा में और भी कितने ही उपयोगी प्रस्ताव
"पास" हुए । छोटे बच्चों के दरजों में को ३० बच्चों के
लिए एक और दूसरे दरजों में को ४० के लिए एक अध्या-
पक नियत करने का निश्चय किया गया । साथ ही यह भी
निश्चय हुआ कि जब तक अध्यापकों की संख्या न बढ़ाई
जाय तब तक यदि कहीं इससे अधिक छात्र हों तो उन्हें
पृथक् शिक्षा दी जाय । यह नियम उनकी शिक्षा प्राप्ति का
बाधक न
ही होना भी चाहिए था । यही
रक्षा । हुआ नहीं । पर इसके
मालूम नहीं ।
अच्छा है ।

इस सभा ने स्कूलों और कालेजों के छात्रों की स्वास्थ्य-परीक्षा का भी प्रबन्ध किया। लड़कियों को हिन्दी, उर्दू, पञ्जाबी और फ़ारसी भाषाओं में आवश्यक और व्यावहारिक शिक्षा देने का भी निश्चय किया। इसके लिए अब ऐसी शिक्षा सुलभ कर दी जायगी जिससे वे गृहिणी और माता के कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन कर सकें। यह ख़ूब हुआ। लड़कियों को ऐसी ही शिक्षा मिलनी चाहिए।

३—बड़ौदे में शिक्षा प्रचार।

महाराजा गायकवाड़, सेर सयाजी राव, बड़े ही प्रजावत्सल शासक हैं। वे सचमुच ही अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हैं। अब वे यह चेष्टा कर रहे हैं कि उनके राज्य में एक भी आदमी बे पढ़ा न रहे। वहां कई साल से शिक्षा अनिवार्य्य है। माता-पिता को अपने लड़कों और लड़कियों को क़ानूनन मदरसे भेजना पड़ता है। न भेजने पर उन्हें सज़ा मिलती है—जुर्माना देना पड़ता है। १९१३—१४ से सम्बन्ध रखने वाली बड़ौदा-राज्य की वार्षिक रिपोर्ट से मालूम हुआ कि अनिवार्य्य शिक्षा पाने वाले लड़कों की उम्र अब बढ़ा कर १४ और लड़कियों की १२ कर दी गई है। पहले इससे कम थी। अर्थात् अब १४ वर्ष तक की उम्र के लड़कों और १२ वर्ष तक की उम्र की लड़कियों को, शिक्षा-प्राप्ति के लिए, ज़रूर ही मदरसे जाना पड़ेगा। माता पिता और अभिभावक ऐसा करने के लिए मजबूर हैं; उनका उज्र, माकूल होने पर भी, न सुना जायगा। कुछ भी हो, इतनी उम्र तक लड़कों और लड़कियों को शिक्षा अवश्य ही प्राप्त करनी पड़ती है। इन कारणों से बड़ौदा राज्य से निरक्षरता भाग रही है। इस राज्य की आबादी २०,२६,३२० है। उसमें से १८, ६१, १६८ के लिए शिक्षा-प्राप्ति के साधन सुलभ कर दिये गये हैं। कुछ ही मौज़े ऐसे रह गये हैं जहां मदरसा नहीं—फ़ी सदी एक से भी कम मौज़े बिना मदरसे के हैं। क्या ही अच्छा होता यदि हमारी गवर्नमेंट भी शिक्षा-प्राप्ति के साधनों की विशेष वृद्धि कर देती। अभी तो अपने यहां फ़ी सदी ७० मौज़े ऐसे होंगे जहां एक भी मदरसा, मकतब या पाठशाला नहीं।

४—ईसाइयों के स्कूलों में धर्म्म-शिक्षा।

माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री, गोखले महाशय [illegible]

के शासन पर आज कल भार ही अर्पित है। उन्होंने एक ऐसी ही पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है। उसका मूल्य [illegible] है। नाम है—A Conscience Clause for India in Indian Education Codes. पुस्तक का विषय बड़े महत्व का है। भारतीय गवर्नमेंट किसी के धर्म का न पक्षपात करती है न उसमें दख़ल ही करती है। वह सब तटस्थ रहती है। स्कूलों और कालेजों में भी वह इसी तटस्थता की नीति का प्रयोग करती है। वह धार्मिक झगड़ों से दूर रहती है। पर पादड़ी लोगों ने इस देश में जो स्कूल और कालेज खोल रक्खे हैं उनमें ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य है। वहां बाइबल-क्लासों की बड़ी महिमा है। सभी छात्रों को ईसाई धर्म की पुस्तकों के सबक़ पढ़ने सुनने पड़ते हैं। गवर्नमेंट इन संस्थाओं को रुपये-पैसे से मदद भी करती है। शास्त्रीजी ने इस पुस्तक में बड़ी योग्यता से दिखाया है कि ऐसी धर्म्म-शिक्षा अनिवार्य्य न होनी चाहिए। गवर्नमेंट को नियम बना देना चाहिए कि जिसका जी चाहे अपने लड़कों को बाइबल-क्लासों में जाने दे, जिसका जी न चाहे न जाने दे। ईसाई धर्म्म पर विश्वास हो या न हो, सब को ज़बरदस्ती अपने धर्म्म के तत्त्व समझना न्याय नहीं। बात बहुत ठीक है। शास्त्री जी ने इस सम्बन्ध में अब तक विलायत में और इस देश में भी जो कुछ किया और कहा गया है सब का सम्यक् उल्लेख करके अपनी बात को ख़ूब परिपुष्ट कर दिया है। आपकी सलाह मानने योग्य है।

५—स्कूल-लीविंग्-सर्टिफ़िकेट-परीक्षा।

इस नाम की एक परीक्षा है। इसकी सृष्टि कुछ ही वर्षों से हुई है। मैट्रिक्यूलेशन से इसमें कुछ अधिक और विशेष विषय पढ़ाये जाते हैं। गवर्नमेंट इस परीक्षा को प्रधानता देती है। इसकी इस साल की परीक्षा का फल गवर्नमेंट गैज़ट में निकले कुछ समय हुआ। इस साल यह परीक्षा १९१६ छात्रों ने दी। उनमें से ११४६ की दूसरी भाषा उर्दू और केवल ७२८ की दूसरी भाषा हिन्दी थी। इन छात्रों को संस्कृत या फ़ारसी में भी परीक्षा देनी पड़ती है। इन भाषाओं में परीक्षा देने वालों में से २६७ ने फ़ारसी और केवल ३६० ने संस्कृत में परीक्षा दी। फ़ारसी में परीक्षा देने वालों में से अनेक छात्र हिन्दू थे। पर संस्कृत में परीक्षा देने वाला शायद एक भी मुसल्मान न होगा। "शायद"

हम इस लिए कहते हैं, क्योंकि इसका विश्वसनीय लेखा कहीं हमारे देखने में नहीं आया। पर अनुमान यही कहता है कि मुसल्मानों को संस्कृत से ज़रा भी प्रेम नहीं। हिन्दू अलबत्ते ख़ुशी से फ़ारसी पढ़ते हैं। फ़ारसी ही क्यों वे उर्दू पढ़ना भी अधिक पसन्द करते हैं और कितने ही उर्दू को ही अपनी मातृ-भाषा बताते हैं। जिन छात्रों की दूसरी भाषा उर्दू थी उनकी संख्या-वृद्धि का कारण हिन्दुओं ही को समझना चाहिए। इस दशा में यह शोर मचाना और यह शिकायत करना कि उर्दू-फ़ारसी की शिक्षा कम हो रही है अथवा हिन्दी-प्रचार की चर्चा ने उसे हानि पहुँचाया है, बिलकुल निर्मूल मालूम होता है।

६—अमेरिका और इँगलेंड में प्रकाशित पुस्तकें।

संयुक्त राज्य, अमेरिका, और इँगलेंड में १९१४ ईसवी में जिस विषय की जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं उसका लेखा नीचे दिया जाता है:—

संयुक्त-राज्य, अमेरिका

विषय	संख्या
१—सङ्गीत	११२
२—गृह-प्रबन्ध	१३५
३—फुटकर विषय	१४१
४—खेल कूद	१६४
५—व्यवसाय	२२६
६—शिक्षा	२६५
७—ललित कला	३१०
८—कृषि	३७१
९—दर्शन	४०८
१०—क़ानून	५०७
११—वैद्यक	५४२
१२—भूगोल और भ्रमण	५४२
१३—इतिहास	५४१
१४—जीवन-चरित	६०४
१५—बालोपयोगी	६३५
१६—इंजिनियरी	६६६
१७—विज्ञान	६००
१८—साधारण साहित्य	७१२
१९—कविता और नाटक	६०२
२०—धर्म और ईश्वर-विषयक	१०३२
२१—समाज-शास्त्र और सम्पत्ति-शास्त्र	१०३८
२२—उपन्यास	१०९३
कुल	१२,०१०

इँगलेंड

विषय	संख्या
१—सङ्गीत	५५
२—गृह-प्रबन्ध	८६
३—फुटकर	१४६
४—व्यवसाय	१५५
५—दर्शन	१७६
६—तुलना-मूलक भाषा-शास्त्र	१८५
७—कृषि	१९८
८—ललित-कला	२०४
९—क़ानून	२७६
१०—साधारण साहित्य	३००
११—शिक्षा	३७५
१२—फ़ौजी और जहाज़ी	४०२
१३—विशेष साहित्य	४३०
१४—वैद्यक	४५४
१५—जीवन-चरित	४४२
१६—इतिहास	४५४
१७—भूगोल	५१३
१८—बालोपयोगी	५३१
१९—कविता और नाटक	५४२
२०—कारीगरी	५८७
२१—समाज शास्त्र और सम्पत्ति शास्त्र	६६६
२२—विज्ञान	८४०
२३—धर्म	९६६
२४—उपन्यास	२११२
कुल	११,२३७

कुछ लोग हिन्दी में उपन्यासों की संख्या बढ़ती देख घबरा रहे हैं। वे देखें कि और देशों की क्या दशा है। इँगलेंड और अमेरिका में शिक्षा-प्रचार का यह हाल है कि शायद ही कोई अपढ़ वहाँ हो। परन्तु इन सुशिक्षित और सभ्यताभिमानी देशों में भी उपन्यासों और कथा-कहानि

[illegible]रूद जिन चीज़ों के योग से बनती है उनमें रुई मुख्य है। [illegible]ई जिन देशों में पैदा होती है वे अधिकांश अंगरेज़ी-राज्य के [illegible]न्तर्गत है। संयुक्त-राज्य, अमेरिका ही, एक ऐसा देश है जहाँ [illegible]गरेज़ी राज्य नहीं और जहाँ रुई अधिकता से होती है। [illegible]र्मनी और आस्ट्रिया में रुई नहीं; वहां कपास की खेती नहीं होती। युद्ध छिड़ने के पहले ही जर्मनी ने बहुत सी रुई एकत्र कर ली होगी। क्योंकि लड़ने के लिए वह पहले ही से तैयार हो रहा था। युद्ध छिड़ने के बाद भी, जहाँ तक [illegible]से मिली होगी उसने रुई ख़रीदी होगी। क्योंकि युद्ध की सामग्री प्रस्तुत करने के लिए रुई सबसे अधिक ज़रूरी चीज़ है। युद्धारम्भ होने पर अंगरेज़ी राज्य से रुई का जर्मनी जाना बन्द हो गया। पर तटस्थ देशों की राह से—विशेष करके अमेरिका से—फिर भी बहुत रुई जर्मनी जाती रही। ब्रिटिश गवर्नमेंट यदि चाहती तो उसका भी जाना रोक देती—इसकी भी गिनती युद्ध वर्ज्य पदार्थों में कर लेती। पर अमेरिका की मित्रता के लिहाज़ से उसने ऐसा नहीं किया। रुई का चालान बन्द करने से अमेरिका की हानि थी। पर अब अमेरिका के संयुक्त राज्यों से ब्रिटिश गवर्नमेंट का [illegible] हो गया है और रुई को भी अब ब्रिटिश गवर्नमेंट ने वर्ज्य वस्तु मान लिया है। नतीजा यह होगा कि जर्मनी को अब रुई न मिलेगी। शायद मिलेगी भी तो बहुत कम। इस दशा में, डेढ़ दो हज़ार मील तक फैले हुए युद्ध क्षेत्र में, जर्मनी और आस्ट्रिया की पन्द्रह बीस हज़ार तोपें कैसे चलेंगी? अनुमान तो यही कहता है कि इस स्थिति से जर्मनी के परित्राण की कम आशा है। और कोई देश होता [illegible] पैसे भर भी रुई जर्मनी में न आने देता। पर ब्रिटिश गवर्नमेंट की नीति निपुणता, सफाई और उदारता को देखिए कि [illegible] किसी तटस्थ देश को हानि नहीं पहुँच [illegible] दी। १८६१ ईसवी में अमेरिका के संयुक्त राज्यों [illegible] स्वयं ही युद्ध वर्ज्य पदार्थ माना था। इस कारण ब्रिटिश गवर्नमेंट जब चाहती तभी अमेरिका से रुई का [illegible] कर सकती थी। पर [illegible] अमेरिका को [illegible]

[illegible]

मात्र है। इन चीज़ों से बनी हुई बारूद बहुत कमज़ोर होगी। आस्ट्रिया और जर्मनी की सारी तोपें रुई से बनी हुई [illegible] के ही लिए हैं। किस तोप में कितनी बारूद भरी चाहिए और किसका गोला कितनी दूर तक निशाने [illegible] सकता है, इन सब बातों का हिसाब रुई से बनी हुई [illegible] के लिहाज से ही लगाया गया है और तदनुसार ही तैयार किये गये हैं। और कोई बारूद काम में लाने से [illegible] सारा हिसाब रद्द हो जायगा। इसका इलाज यह है कि इस दूसरी तरह की बारूद के लिए तदनुकूल तोपें बनाई जायँ, अथवा वर्तमान तोपों की नलियों में आवश्यक परिवर्तन किया जाय। पर यह सब इतने [illegible] समय में होना असम्भव सा है। इसीसे बड़े बड़े युद्ध-विद्या विशारदों की राय है कि रुई की कमी ही जर्मनी के [illegible] का सबसे बड़ा कारण हुआ चाहती है। वर्तमान युद्ध तोपों ही का युद्ध है। जिसकी तोपें बन्द हुईं उसका [illegible] निश्चित ही समझिए।

९—"गोरा गोरखा और सिक्ख"।

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग पश्चिमी रणक्षेत्र से लिखते हैं.

[illegible]

डाक्टर महेन्दुलाल का यह कहना बहुत [illegible] है। [illegible]

एक सिक्ख—ऐसे तीन सैनिकों की एक टोली दिखाई गई है। गोरा उँगली उठा कर कुछ दिखा रहा है। गोरखा एक हाथ अपने साथी सिक्ख के कन्धे पर रक्खे हुए खड़ा है। ये दोनों उसी तरफ़ देख रहे हैं जिस तरफ़ टोमी गोरा इशारा कर रहा है।

१०—सिपाहियों के लिए पढ़ने की सामग्री।

डाक्टर महेन्द्रलाल शर्मा अपनी एक और चिट्ठी में पश्चिमी रणस्थल से लिखते हैं—

प्रिय महोदय, नमस्ते। ता० १६ [illegible]

जिस तरह शारीरिक स्थिति के लिए भोजन पान आदि की ज़रूरत है उसी तरह मन प्रसन्न रखने के लिए पत्र पुस्तकों की आवश्यकता है। हमारे देश के सिपाहियों में तो पढ़ने लिखने वालों की संख्या बहुत थोड़ी है भी कम होगी। परन्तु यूरोपियन सिपाही प्रायः सभी साधारण शिक्षा पाये हुए हैं। इनके लिए सारी विलायती अख़बार मुफ़्त आते हैं। डाक खर्च की ज़रूरत नहीं है। हर फ़ौज से अपना पता है और अपने यहाँ की चिट्ठी से आता है। उसी के द्वारा सिपाहियों में बाँटने के लिए पत्र भी भेज दिये जाते हैं।

सिपाही सर्वदा ही बन्दूक लिये दुश्मन की ताक में नहीं खड़ा रहता। बहुधा तीसरे चौथे दिन उसका पहरा पड़ता है। विश्राम के तीन दिन वह बड़े आनन्द से काटता है और भूल जाता है कि वह लड़ाई पर आया हुआ है। तरह तरह के खेल-तमाशे होते रहते हैं। आज कल तो अच्छे पढ़े लिखे आदमी सिपाहियों में भरती होकर आये हुए हैं। अनेक ऐसे हैं जिनके नाम सर्वसाधारण में परम प्रसिद्ध हैं। वे यहाँ लड़ते भी हैं और अपने लेखों को "सेंसर" से "पास" करा कर बहुत सा रुपया भी कमाते हैं। आपने रुडियार्ड किपलिंग का नाम सुना होगा। वे ट्रेंचेज़ (खाइयों) में घूम रहे हैं। एक सज्जन, जो एक नामी अख़बार से सम्बन्ध रखते हैं, ट्रेंचेज़ में अपना एक दैनिक पत्र निकालते हैं। यह सचित्र होता है। उसे सिपाही बड़े चाव से पढ़ते, और हँसी से लोट पोट हो जाते हैं। उसके लेख सम्पादक ख़ुद लिखता है। फिर भी वह अपने ही मुद्रित किये हुए निकालता है।

अब एक नई तजवीज़ यह हुई है कि कोई भी आदमी, जिसके पास किताब या "मेगज़ीन" फ़ालतू हो, उसे डाकख़ाने में दे आवे। डाकख़ाने वाले ऐसी किताबों और मेगज़ीनों को एकत्र करके कैम्प लाइब्रेरी को भेज देंगे। फिर इस लाइब्रेरी से वे सब अस्पतालों और फ़ौजों में बाँट दिये जायँगे। जिस तरह आपके भेजे हुए सब पत्र-पुस्तकें "फ़्री" मिलते रहे उसी तरह इंगलैंड से भी फ़्री आ जाते हैं। कैम्प लाइब्रेरी का पता, ९१ Horsford Road है। मैं समझता हूँ कि यहाँ से देशी फ़ौजों में भी अख़बार आदि भेजे जा सकेंगे।

कृपापात्र

महेन्द्रलाल शर्मा

हिन्दी समाचारपत्रों और मासिक पुस्तकों [illegible] भी यदि गवर्नमेंट की आज्ञा लेकर अपने यहाँ की पु[illegible] सिपाहियों के लिए भेजा करें तो बहुत अच्छा हो[illegible]

११—माहिष्मती नगरी।

बाबू नन्दकिशोर द्विवेदी धार से लिखते हैं—

"गत दिसम्बर मास की सरस्वती में "पौराणिक [illegible] स्थानों का समय निरूपण" नामक एक लेख छपा है। उसे पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकर महाशय ने बड़ी योग्यता से लिखा है। किन्तु मुझे एक पर कुछ शङ्का है। आपने लिखा है कि—

[illegible] ओंकारेश्वर महादेव का स्थान है जो [illegible] माहिष्मती कहलाता था।

परन्तु माहिष्मती नगरी ओंकारेश्वर नहीं। ओंकारेश्वर से पश्चिम, कोई ४० मील के अन्तर पर, नर्मदा के किनारे महेश्वर नामक एक प्राचीन क़सबा है। यह होल्कर राज की एक तहसील है। यही प्राचीन काल में, अर्थात् यादववंश के राज्य-समय में, माहिष्मती कहलाता था। माहिष्मती का ही अपभ्रंश महेश्वर है।

आशा है, दिवेकरजी इस बात का निर्णय करने की कृपा करेंगे कि माहिष्मती ओंकारेश्वर है या महेश्वर"।

१२—कुछ समाचारपत्रों का सौभाग्य।

उस दिन माननीय डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने, प्रान्[illegible] कौंसिल में, गवर्नमेंट से पूछा—

"अपने या अपने अफ़सरों के लिए क्या गवर्नमेंट इस प्रान्त के कोई अख़बार ख़रीदती है? यदि ख़रीदती है तो कौन कौन? हर एक की कितनी कापियाँ ख़रीदती है? और, हर एक को उसकी कापियों की कितनी क़ीमत देती है"?

उत्तर में माननीय मिस्टर बर्न ने कहा—"हाँ, ख़रीदती है"। अख़बारों के नाम, कापियों की संख्या और क़ीमत का हिसाब, जैसा कि बर्न साहब ने बतलाया, नीचे दिया जाता है:—

(१) ज़माना—१५० कापियाँ—क़ीमत ६००) रुपया साल।

(२) फ़ौजी अख़बार—१२२५ कापियाँ—क़ीमत १२२५) रुपया छमाही।

(३) मुख़बिरे आलम—१०० कापियां—क़ीमत ३७५) रुपया साल ।

(४) मशरिक़—१०० कापियां—क़ीमत ४००) रुपया साल ।

मालूम नहीं, फ़ौजी अख़बार उर्दू ही में निकलता है या हिन्दी में भी ।

नं० (१), (३) और (४) तो उर्दू ही में निकलते हैं । इन सब को बधाई !

१३—कालिदास और दिङ्नाग ।

गत अगस्त महीने की सरस्वती में आचार्य दिङ्नाग शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है । उसमें डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने कालिदास की उस उक्ति का उल्लेख किया है जिसमें दिङ्नाग के "स्थूलहस्त" की बात है । इसी उक्ति के आधार पर कालिदास के साथ दिङ्नागाचार्य्य का सम्बन्ध कल्पना किया जाता है । उक्त लेख में उनका समय ४०० ईसवी के लगभग अनुमान किया गया है, पर कुछ विद्वानों द्वारा वह ईसवी सन् के चतुर्थ शतक के दूसरे या तीसरे चरण में माना जाता है । अस्तु ।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर कालिदास के साथ दिङ्नागाचार्य्य के सम्बन्ध की कल्पना में कुछ भी प्रमाण-मूलक आधार नहीं दिखाई देता । कालिदास की पूर्वोक्त उक्ति के आधार पर ही इस कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है । कालिदास की वह उक्ति इस प्रकार है—

> अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
> र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
> स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
> दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥
>
> (मेघदूत, श्लोक १४)

इस श्लोक में 'दिङ्नाग' और 'सरसनिचुल' इत्यादि पदों के मल्लिनाथ ने श्लिष्ट—अर्थात् दो अर्थ वाले—मान कर एक और भी अर्थ लिखा है । उसका आशय यह है—कालिदास मेघ से कहते हैं कि मेरे प्रतिद्वन्द्वी दिङ्नागाचार्य्य के [illegible] गिरिशिखर के सदृश हो, पवन उड़ाये लिये जा रहा है—इस प्रकार सिद्ध महाकवि और [illegible] द्वारा उत्साहपूर्वक देखा गया तू, मेरे सहाध्यायी और निचुल नामक रसिक कवि के स्थान से, [illegible] कारण, ऊंचा सिर करके, बेधड़क आगे बढ़; और, मार्ग में दिङ्नागाचार्य्य के स्थूलहस्तों के लेख का गर्व मिटाता हुआ विजयी होकर, प्रयाण कर ।

बस, इस श्लोक में दिङ्नाग का नाम आ जाने, दिङ्नागाचार्य्य के उत्कट विद्वान् होने, तथा मल्लिनाथ की टीका में उनका उल्लेख होने से विद्वत्-समाज में कालिदास और दिङ्नागाचार्य्य के समकालीन होने की भ्रमात्मक कल्पना की गई है । इस भ्रम की उत्पत्ति का प्रधान कारण मल्लिनाथ की टीका है, जिसमें दिङ्नाग के दो अर्थ किये गये हैं ।

मेघदूत की सबसे प्राचीन टीका वल्लभदेव की है । यह सन् ईसवी के दशम शतक के पूर्वार्द्ध में लिखी गई है । उसमें इस श्लोक का प्रसङ्ग-सिद्ध एक ही अर्थ किया गया है । मल्लिनाथ की अपेक्षा वल्लभदेव बहुत प्राचीन हैं । वल्लभदेव के समय में कालिदास और दिङ्नागाचार्य्य के सम्बन्ध की यदि कोई कल्पना प्रचलित होती तो वल्लभदेव भी मल्लिनाथ ही की तरह उक्त श्लोक का श्लिष्ट अर्थ अवश्य ही लिखते । किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । इससे ज्ञात पड़ता है कि उनके समय में इस कल्पना की उत्पत्ति न हुई थी । मल्लिनाथ ने पूर्वोक्त श्लोक के श्लेषार्थ की कल्पना किस आधार पर की है, उसका कारण भी [illegible] है । वह यह है कि कालिदास नाम के एक कवि ने नानार्थ शब्द रत्न नाम का एक ग्रन्थ लिखा है । उस कवि के मित्र निचुल नामक एक विद्वान् ने उसकी टीका [illegible] नाम की लिखी है । अनुमान से मालूम होता है कि उस ग्रन्थ की किसी प्रति को देख कर ही मल्लिनाथ ने श्लेषार्थ की कल्पना की है । किन्तु महाराज [illegible] के द्वारा प्रकाशित, [illegible] पुस्तकों के एक [illegible] से स्पष्ट है कि मल्लिनाथ की श्लेषार्थ कल्पना [illegible] है । पूर्वोक्त नानार्थ शब्द रत्न के [illegible] और [illegible] का [illegible]—

(१) [illegible]
[illegible]

(२) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

यह निपुण नामक कवि महाराज भोजराज के समय में विद्यमान था। रघुवंशादि महाकाव्य-प्रणेता महाकवि कालिदास से यह भिन्न है। एतावता मल्लिनाथ की टीका के आधार पर दिङ्नागाचार्य्य को कालिदास का समकालीन मानना भ्रम-मूलक है।

मैंने मेघदूत का समश्लोकी भाषान्तर बोलचाल की हिन्दी में किया है। उसमें मैंने इस काव्य की टीका भी लिखी है और एक विस्तृत भूमिका भी जोड़ दी है। उसी भूमिका के आधार पर मैंने यह स्वल्प लेख लिखा है।

कन्हैयालाल पोद्दार।

१४—बनारस का हिन्दू-विश्वविद्यालय।

बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाला क़ानून, गत अक्टूबर की पहली तारीख़ को, "पास" हो गया। किस तारीख़ से यह जारी समझा जायगा, इसकी सूचना गैज़ट आव् इंडिया में कभी आगे प्रकाशित होगी। इस देश में इस तरह का यह पहला ही विश्वविद्यालय है। इसमें प्रायः सभी प्रकार की उपयोगिनी शिक्षा दी जा सकेगी। विज्ञान भी सिखाया जा सकेगा, धर्म्म भी सिखाया जा सकेगा, और कलायें भी सिखाई जा सकेंगी। और भी कई प्रकार की शिक्षा इसमें दी जा सकेगी। क़ानून की दृष्टि से धार्म्मिक शिक्षा अनिवार्य्य नहीं की गई। परन्तु विद्यालय के प्रबन्धकर्त्ताओं को क़ानून ने अधिकार दे दिया है कि यदि वे चाहें तो धर्म्म-शिक्षा भी दें। हिन्दू-धर्म्म ही की शिक्षा नहीं, जैन और सिख-धर्म्म की भी शिक्षा। अतएव धार्म्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में यह विश्वविद्यालय मुसल्मानों और क्रिश्चियन लोगों के स्कूलों और कालेजों से अधिक उदारता का परिचय दे सकेगा। क्योंकि वे लोग अपने ही धर्म्म की शिक्षा देते हैं, पर यह विद्यालय जैनों और सिक्खों के धर्म्म की भी शिक्षा दे सकेगा। यह बहुत अच्छा हुआ जो क़ानून की रू से धर्म्म-शिक्षा अनिवार्य्य नहीं की गई और यह बात प्रबन्धकर्त्ताओं पर छोड़ दी गई। हिन्दू-धर्म्म बहुत व्यापक और विस्तृत है। उसकी अनेक शाखायें और प्रशाखायें हैं। उसके अन्तर्वर्ती मतों और सम्प्रदायों की गिनती नहीं। वह साम्प्रदायिक सङ्कीर्णताओं से भरा हुआ है। जिस 'कोर्ट' को धर्म्म-शिक्षा के प्रबन्ध का अधिकार दिया गया है उसे उसकी प्रणाली निश्चित करने में अनेक कठिनाइयां उपस्थित होंगी। साम्प्रदायिक भावों से रहित सार्वजनिक हिन्दू-धर्म्म की शिक्षा से ही उन कठिनाइयों से बचाव हो सकेगा। ऐसे करने से आर्य्यसमाजी और ब्रह्मसमाजी भी शायद धर्म्म शिक्षा ग्रहण कर सकें। क्योंकि इन बेचारों की धर्म्म-शिक्षा के विषय में क़ानून बिलकुल ही चुप है। इन झंझटों को देखके क़ानून बनाने वालों ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया जो यह नियम कर दिया है कि 'कोर्ट' चाहे तो धार्म्मिक शिक्षा अनिवार्य्य करदे और चाहे न करे। शैव, शाक्त, वैष्णव यदि आपस में झगड़ने लगें कि हम यह न सीखने देंगे, हम वह न सीखने देंगे, तो उस झगड़े को दूर करने के लिए सब से अच्छा उपाय यही है कि उनसे कह दिया जाय कि न सीखिए। आप सीखने के लिए बाध्य नहीं। आपकी इच्छा हो अपने लड़कों को धर्म्म-शिक्षा दिलाइए, न इच्छा हो, न दिलाइए। हम ऐसी धर्म्म-शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते जो सब सम्प्रदायों के अनुकूल हो।

कुछ लोगों की शिकायत है कि इस विश्वविद्यालय में देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा न दी जायगी। हम पूछते हैं, कृ पढ़ गये। हमें कहीं यह लिखा न मिला कि देशी भाषायें इसमें प्रवेश न पा सकेंगी। शिक्षा-विषयक सब अधिकार 'सिनेट' को दे दिया गया है। लिखा है—"The Senate × × × × shall have entire charge of the organization of instruction the courses of study and the examination and discipline of students." इस दशा में एक उचित सीमा के भीतर 'सिनेट' देश की भाषा या भाषाओं द्वारा शिक्षा अवश्य दे सकती है। देने न देने का उसे पूरा अधिकार है।

गवर्नमेंट ने कुछ अधिकार अपने हाथ में अवश्य रक्खे हैं। पर यदि काम अच्छी तरह होगा तो उन अधिकारों के रहते भी विश्वविद्यालय को कुछ भी हानि न पहुँचेगी—उनके प्रयोग की आवश्यकता ही न होगी। उन अधिकारों में काट-छांट के लिए हठ करने से विश्वविद्यालय का जन्म ही न होता जो किसी दृष्टि से अभीष्ट न था। इस दशा में जो कुछ मिला उसे ले लेना ही अच्छा हुआ—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः

फ़रवरी १९१६ के आरम्भ में लार्ड हार्डिंग इस विश्वविद्यालय की नींव बनारस में डालेंगे।

पुस्तक-परिचय ।

१—उद्भ्रान्त प्रेम । इस नाम की पुस्तक के एक करण का परिचय सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो ा है। यह एक और ही संस्करण है। इसका आकार झला, पृष्ठ-संख्या १२४ और मूल्य सात आने है। इसके ुवादक पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा और प्रकाशक पण्डित र्शन मिश्र, काव्यतीर्थ, हैं। मिश्रजी जो सत्साहित्य-ग्रन्थ- ा निकाल रहे हैं उसका यह तीसरा ग्रन्थ है। आरम्भ में भूमिका है। उसमें इस गद्य-काव्य के गुण बहुत अच्छी बताये गये हैं। बँगला में, चन्द्रशेखर-मुखोपाध्यायकृत इस क के आज तक कितने ही संस्करण हो चुके हैं। आशा सके हिन्दी-अनुवाद का भी ज़रूर आदर होगा। प्रबन्ध- र्ता, सत्साहित्य-ग्रन्थमाला, बाँकीपुर को लिखने से यह क मिलती है।

☼

२—बौद्ध पर्व । यह पुस्तक मराठी भाषा में है। का दूसरा नाम है—बौद्ध-धर्म्माचा साद्यन्त इतिहास। क का आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३२२ और मूल्य) है। जिल्द बँधी हुई है। न्यायमूर्ति रानडे की सूचना अनुसार श्रीयुत वासुदेव गोविन्द आपटे, बी० ए०, ने की रचना की है। दस पन्द्रह वर्षों तक अनेक ग्रन्थों का मनन करके आपटे महाशय ने इसे लिखा है। बड़े ही त्व की पुस्तक है। इसे पढ़ कर हमने बहुत ज्ञान-लाभ या। बुद्ध और बौद्ध धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाली सभी य मुख्य बातों का समावेश इसमें है। बौद्ध धर्म्म का तहास थोड़े में जानने की इच्छा रखने और मराठी पढ़ ने वालों को इस पुस्तक का अवश्य अवलोकन करना हिए। पुस्तक हिन्दी में अनुवाद-योग्य है। भट आश्रि मण्डली, पूना, के लिखने से मिलती है।

☼

३—योगवासिष्ठ महारामायण । आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ८०० के ऊपर, जिल्द बँधी हुई, मूल्य साढ़े तीन रुपये; प्रणेता, पण्डित बदरीदास शर्म्मा, सहकारी मन्त्री, सनातनधर्म्म-प्रचारिणी सभा, जोधपुर, से प्राप्य । गत अगस्त की सरस्वती में योगवाशिष्ठ के एक गुजराती संस्करण का परिचय प्रकाशित हो चुका है। उसमें इस पुस्तक के महत्त्व का संक्षिप्त उल्लेख भी है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी-पद्य में है। पद्यों के छन्द अनेक प्रकार के हैं। उनमें दोहा, चौपाई, सोरठा और हरिगीतिका मुख्य हैं। इसमें मूल ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग का भावार्थ-मात्र हिन्दी-पद्य में लिखा गया है। नीचे, पाद-टीका में, क्लिष्ट शब्दों का अर्थ दे दिया गया है। थोड़े ही में इस महोपकारी ग्रन्थ का परिचय प्राप्त करने और वशिष्ठजी के वेदान्त-विषयक विचारों का आभास पाने की इच्छा रखनेवालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। पुस्तकस्थ पद्यों की भाषा पुराने ढंग की है।

☼

४—पञ्चदशीसार । विद्यारण्य-स्वामी का रचा हुआ एक ग्रन्थ पञ्चदशी नाम का है। वह संस्कृत में है। विषय उसका वेदान्त है—उसमें वेदान्त का गहन विवेचन है। जयपुर सेंट्रल जेल के सुपरिंटेंडेंट, रायबहादुर सेठ नारायणजी खेतान की प्रेरणा से मुन्शी हरीरामजी भार्गव ने उसी का सार, प्रश्नोत्तर-रूप में, प्रकाशित किया है। यह सारसङ्कलन हिन्दी में है। साहित्य-वेदान्ताचार्य्य पण्डित [illegible] दाधीच ने इसकी रचना की है। आरम्भ में इसके पन्द्रहों प्रकरणों का वर्ण्य-विषय थोड़े में लिखा गया है। अन्त में नक़्शे में षड्दर्शनों का सार दिया गया है। बीच में [illegible] में पञ्चदशी का सारांश है। वेदान्त के गहन [illegible] को सरलता-पूर्वक समझाने की चेष्टा में [illegible] [illegible] हुए हैं। भाषा पुराने ढंग की है, [illegible] तरह समझ में आ जाता है। [illegible] [illegible] कि लेखक ने जो कुछ लिखा है [illegible] उनके ढंग से सूचित होता है कि [illegible] है। [illegible] पुस्तक [illegible]

उपादेय हो गई है। वेदान्तियों ही को नहीं, औरों को भी इसमे ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है। पुस्तक का मूल्य आठ आने है। मिलने का पता—सुपरिंटेंडेंट जेल, जयपुर सिटी।

※

५—दर्शन-सारसंग्रह। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ७१, मूल्य ८ आने, लेखक, पण्डित सदानन्द अवस्थी, संस्कृत-पाठशाला, अटेर, रियासत ग्वालियर, से प्राप्य। यह सर्वदर्शन-संग्रह के ढँग की पुस्तक है। इसमें जैन, बौद्ध और चार्वाक दर्शनों के सिवा न्याय, योग, सांख्य और मीमांसा दर्शनों का सार हिन्दी में लिखा गया है। यत्र-तत्र मूल ग्रन्थों के संस्कृत-वचन भी उद्धृत कर दिये गये हैं। थोड़े ही में पूर्वोक्त दर्शनों का स्थूल ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है।

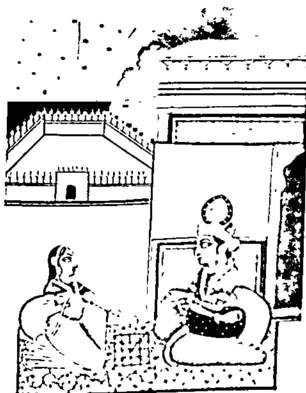
※

६—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें। (१) चन्द्रशेखर—पृष्ठ-संख्या २८०, मूल्य १२ आने, अनुवादक, पण्डित पारसनाथ त्रिपाठी, काव्यतीर्थ। बँगला के नामी उपन्यास-लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र चैटर्जी की पुस्तक का यह अनुवाद है। बङ्किम बाबू के इस उपन्यास को लोगों ने बहुत पसन्द किया है। हिन्दी प्रेमियों को भी इसके रस का आस्वादन करना चाहिए। (२) महात्मा बुद्ध—पृष्ठ-संख्या १२६, मूल्य ८ आने, लेखक, सुख सम्पत्तिराय भण्डारी। मराठी, गुजराती आदि कई अन्य भाषाओं की पुस्तकों और लेखों के आधार पर यह चरित लिखा गया है। पढ़ने लायक़ है। (३) विमला—पृष्ठ-संख्या २६, मूल्य ३ आने, अनुवादक नरोत्तम व्यास। चन्द्रशेखर चैटर्जी के बँगला-उपन्यास का यह अनुवाद है। इसके विषय में अनुवादक ने स्वयं ही लिखा है—"सच्चा पातिव्रत किसे कहते हैं, इस विषय को लेकर यह उपन्यास बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखा गया है"। (४) हीरबाला अर्थात् आदर्श वधू—पृष्ठ-संख्या १०३, मूल्य ४ आने, अनुवादक, पाण्डेय मुरलीधर और पाण्डेय मुकुटधर शर्म्मा। यह उड़िया भाषा के एक उपन्यास का अनुवाद है। इसमें एक सुशीला कुल-वधू के आदर्श चरित का चित्र है। सब पुस्तकें सुन्दर टाइप में अच्छे कागज़ पर छपी हैं। मिलने का पता—हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

७—अगोडाजी से प्राप्त पुस्तकें और कार्ड। (१) हिन्दी-मराठी शिक्षक, भाग पहला। पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ४ आने। लेखक, गणेश बालकृष्ण सर्वटे। हिन्दी जानने वालों के लिए मराठी सीखने का यह अच्छा साधन है। इसकी सहायता से व्याकरण के नित्योपयोगी नियम, वाक्यरचना, पत्रलेखन आदि का ढँग सीख कर सीखनेवाला साधारण मराठी समझने योग्य ज्ञान सम्पादन कर सकता है। (२) महाराष्ट्रनेता रामदास, भाग पहला। पृष्ठ-संख्या ३६, मूल्य २½ आने, लेखक—गणेश। इसमें शिवाजी के गुरु साधुवर रामदास का जीवनचरित, थोड़े में, है। (३) सदाचार-प्रश्नोत्तरी। इस आध आने मूल्य की छोटी सी पुस्तक मे सदाचार-सम्बन्धी २५ प्रश्न और उनके उत्तर हैं। दृढ़ता क्या है? निर्भयता क्या है? न्यायप्रियता क्या है? मातृभाषा-प्रेम क्या है? ऐसे ही ऐसे प्रश्न और उनके उत्तर इसमे हैं। पुस्तक बालोपयोगी है। चिकने कागज़ पर छपी है। (४) सचित्राक्षर कार्ड। ये कार्ड गिनती में ४२ हैं। रङ्गीन हैं। हर कार्ड पर हिन्दी का एक एक वर्ण है। एक चित्र भी किसी पदार्थ या प्राणी का है, जिसका नामारम्भ उसी वर्ण से होता है। उसके नीचे पद्य में उसका नाम या गुण आदि है। यथा—अ—कार्ड पर अनन्नास का चित्र है। उसके नीचे छपा है—"अनन्नास फल मोल लिया है"। उसके आगे आ-कार्ड पर आम का चित्र है। पद्य है—"आम चूस कर दूध पिया है"। इसी तरह कार्डों के पद्यों का तुक मिलता गया है। ये कार्ड छोटे बच्चों के बड़े काम के हैं। चिकने कार्डों का मूल्य ॥) और साधारण का ।)—मिलने का पता—बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी०ए०, पटकापुर, कानपुर।

※

८—स्वामी विवेकानन्द, भाग दूजा। भाषा गुजराती, आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ४२०। जिल्द बँधी हुई; मूल्य १८ आने; प्रकाशक—सस्तु-साहित्यवर्धक कार्यालय, कालबादेवी रोड, बम्बई। उद्बोधन नामक मासिक पत्र में "स्वामी-शिष्य-संवाद" नाम से एक लेखमाला बहुत दिनों तक निकली थी। वही पीछे से बँगला में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। प्रस्तुत पुस्तक उसी का गुजराती अनुवाद है। अनुवादक हैं—भीमजी हरजीवन पारिख। पुस्तक ४२ दर्जों



उपादेय हो गई है । वेदान्तियों ही को नहीं, औरों को भी इससे ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है । पुस्तक का मूल्य आठ आने है । मिलने का पता—सुपरिंटेंडेंट जेल, जयपुर सिटी ।

※

५—दर्शन-सारसंग्रह । आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ७१, मूल्य ८ आने, लेखक, पण्डित सदानन्द अवस्थी, संस्कृत-पाठशाला, अटेर, रियासत ग्वालियर, से प्राप्य । यह सर्वदर्शन-संग्रह के ढँग की पुस्तक है । इसमें जैन, बौद्ध और चार्वाक दर्शनों के सिवा न्याय, योग, सांख्य और मीमांसा दर्शनों का सार हिन्दी में लिखा गया है । यत्र-तत्र मूल ग्रन्थों के संस्कृत-वचन भी उद्धृत कर दिये गये हैं । थोड़े ही में पूर्वोक्त दर्शनों का स्थूल ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है ।

※

६—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें ।
(१) चन्द्रशेखर—पृष्ठ-संख्या २८०, मूल्य १२ आने; अनुवादक, पण्डित पारसनाथ त्रिपाटी, काव्यतीर्थ । बँगला के नामी उपन्यास-लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र चैटर्जी की पुस्तक का यह अनुवाद है । बङ्किम बाबू के इस उपन्यास को लोगों [ने] बहुत पसन्द किया है । हिन्दी प्रेमियों को भी इसके रस [क]ा आस्वादन करना चाहिए । (२) महात्मा बुद्ध—पृष्ठ-[सं]ख्या १२६; मूल्य ८ आने; लेखक, सुखसम्पत्तिराय [भं]डारी । मराठी, गुजराती आदि कई अन्य भाषाओं की [पुस्त]कों और लेखों के आधार पर यह चरित लिखा गया [है ।]पढ़ने लायक़ है । (३) विमला—पृष्ठ-संख्या २६; मूल्य [... आ]ने; अनुवादक नरोत्तम व्यास । चन्द्रशेखर चैटर्जी के [...] उपन्यास का यह अनुवाद है । इसके विषय में अनु-[वादक] ने स्वयं ही लिखा है—"सच्चा पातिव्रत किसे कहते [हैं, इस] विषय को लेकर यह उपन्यास बड़ी ओजस्विनी भाषा [में लिख]ा (गया) है" । (४) शैलबाला अर्थात् आदर्श [...] पृष्ठ संख्या १०३; मूल्य ९ आने; अनुवादक, पाण्डेय [...] और पाण्डेय मुकुटधर शर्म्मा । यह उड़िया भाषा [के उ]पन्यास का अनुवाद है । इसमें एक सुशीला कुल-[वधू के आ]दर्श चरित का चित्र है । सब पुस्तकें सुन्दर टाइप [में चिकने क]ाग़ज़ पर छपी हैं । मिलने का पता—हरिदास [एंड कम्पनी], २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता ।

७—मराठाजी से प्राप्त पुस्तकें और का[र्ड] ।
(१) हिन्दी-मराठी शिक्षक, भाग पहला । पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ४ आने । लेखक, गणेश बालकृष्ण मराठे । हिन्दी जानने वालों के लिए मराठी सीखने का यह अच्छा साधन है । इसकी सहायता से व्याकरण के नित्योपयोगी नियम, वाक्य-रचना, पत्रलेखन आदि का ढँग सीख कर सीखनेवाला साधा-रण मराठी समझने योग्य ज्ञान सम्पादन कर सकता है । (२) महाराष्ट्रनेता रामदास, भाग पहला । पृष्ठ-संख्या ३६, मूल्य २½ आने, लेखक—गणेश । इसमें शिवाजी के गुरु साधुवर रामदास का जीवनचरित, थोड़े में, है । (३) सदाचार-प्रश्नोत्तरी । इस आध आने मूल्य की छोटी सी पुस्तक में सदाचार-सम्बन्धी २५ प्रश्न और उनके उत्तर हैं । दृढ़ता क्या है ? निर्भयता क्या है ? न्यायप्रियता क्या है ? मातृभाषा-प्रेम क्या है ? ऐसे ही ऐसे प्रश्न और उनके उत्तर इसमें हैं । पुस्तक बालोपयोगी है । चिकने काग़ज़ पर छपी है । (४) सचित्राक्षर कार्ड । ये कार्ड गिनती में ४९ हैं । रङ्गीन हैं । हर कार्ड पर हिन्दी का एक एक वर्ण है । एक चित्र भी किसी पदार्थ या प्राणी का है, जिसका नामारम्भ उसी वर्ण से होता है । उसके नीचे पद्य में उसका नाम या गुण आदि है । यथा—अ—कार्ड पर अनन्नास का चित्र है । उसके नीचे छपा है—"अनन्नास फल मोल लिया है" । उसके आगे आ-कार्ड पर आम का चित्र है । पद्य है—"आम चूस कर दूध पिया है" । इसी तरह का[र्डों] के पद्यों का तुक मिलता गया है । ये कार्ड छोटे बच्चों के बड़े काम के हैं । चिकने कार्डों का मूल्य ॥) और साधारण का ।)—मिलने का पता—बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी०ए०, पटकापुर, कानपुर ।

※

८—स्वामी विवेकानन्द, भाग दूजो गुजराती; आकार मँझोला; पृष्ठ संख्या ४२०; [छपाई अच्छी] हुई; मूल्य १८ आने; प्रकाशक—सस्तु-साहित्यव[र्धक कार्या]लय, कालबादेवी रोड, बम्बई । उद्बोधन ना[मक बँगला मासिक] पत्र में "स्वामी-शिष्य-संवाद" नाम से एक ले[ख बहुत] दिनों तक निकली थी । वही पीछे से बँगला [में] प्रकाशित हुई । प्रस्तुत पुस्तक उसी का गुजरा[ती अनुवाद है ।] अनुवादक है—भीमजी [...]

में विभक्त है। प्रत्येक प्रसङ्ग के आदि में स्थान और समय का भी उल्लेख है। स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों में, समय समय पर, अध्यात्म विषयों पर जो कथोपकथन हुआ था वही इस पुस्तक में लिपिबद्ध हुआ है। पुस्तक बड़ी ही रोचक और शिक्षापूर्ण है। गूढ़ से गूढ़ बातें ऐसे अच्छे ढँग से लिखी गई हैं कि बिना प्रयास के ही समझ में आ जाती हैं। जिन रहस्यों का जानना अध्यात्म विद्या के ज्ञाताओं ही के बस की बात थी वे भी, इस प्रकार, अल्पज्ञों के लिए सुलभ हो गये।

☼

९—सागार धर्म्मामृत। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ३१२; अच्छी जिल्द बँधी हुई; मूल्य डेढ़ रुपया; मिलने का पता—दिगम्बर जैन-आफ़िस, सूरत। आशाधर नाम के एक जैन विद्वान् हो गये हैं। उन्हें हुए सात आठ सौ वर्ष हुए। सागार धर्म्मामृत उन्हीं की रचना है। वह संस्कृत में है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका पूर्वार्द्ध है। इसमें ऊपर मूल संस्कृत श्लोक और नीचे पण्डित लालाराम जैन कृत हिन्दी भावार्थ है। यह सदाचार-विषयक ग्रन्थ है। इसे जैनधर्मावलम्बियों का धर्म्म शास्त्र कहना चाहिए। पुस्तकारम्भ में ग्रन्थकार आशाधर का उपलब्ध जीवन-चरित भी है, जो बड़े महत्त्व का है।

☼

१०—नेत्रदीपिका। पृष्ठ-संख्या ८८, मूल्य ८ आने। इसके लेखक पण्डित नृसिंहदत्त वैद्यराज हैं। प्रकाशक—पण्डित प्रभुदत्त वैद्यराज, महल्ला पीपल महादेव, देहली के पिता से मिलती है। टाइप बड़ा; छपाई और काग़ज़ साधारण है। इसमें नेत्र-रोगों के नाम, लक्षण और चिकित्सा-वर्णन है। पुस्तकान्त में जो ओषधियाँ लिखी गई हैं वे सुलभ हैं—सब कहीं मिल सकती हैं। आयुर्वेद-ग्रन्थों ही के आधार पर इसकी रचना हुई है। पुस्तक लाभदायक है।

☼

११—सितार-शिक्षक। लगभग डेढ़ सौ सफ़े की इस पुस्तक का मूल्य १ आना है। इसे [illegible] लिखा है। रामगंज, [illegible], [illegible] से यह मिलता है। जो तो इसके गुरु-[illegible] सितार [illegible] सकते हैं, पर इसका [illegible] से हमको यह मालूम हुई है कि इसका [illegible] है। सितार बजाना सीखने वालों को इससे बहुत मदद मि[ल] सकती है। कई चित्र भी इस पुस्तक में हैं। सितार के पर[दों] के नम्बरों के सिवा स्वरों के नाम भी इसमें हैं। जो ग[त] जिस राग की है उसके पहले उसी राग के स्वर भी लि[ख] दिये गये हैं। फिर प्रत्येक बोल और गत तान [illegible] गई है। इस पुस्तक का यह प्रथम भाग है। लोगों ने इ[से] पसन्द किया तो शायद अगले भाग भी निकलें।

☼

१२—श्रीब्रह्मविलास। यह कोई ७० पृष्ठ की पुस्त[क] है। पद्य में है। मोटे टाइप में छपी है। इसमें श्री ब्रैनानन्[द] फ़क़ीर के वचन—ब्रह्मज्ञान की बातें—हैं। ज्ञानी साधुओं क[ी] बानी जैसी होती है वैसी ही यह भी है। परमार्थ प्रेमियों [के] देखने योग्य है। आध आने का टिकट भेजने पर, राय बहादुर ठाकुर दलजंगसिंहजी खानका, असिस्टंट सर्जन, जयपुर, से मुफ़्त मिलती है।

☼

१३—देश की दशा। यह तीस चालीस सफ़े की छोटी सी पुस्तक है। भीतर तो मूल्य २ पैसा लिखा है, पर बाहरी बेठन पर १ पैसे। विधविद्या प्रचारक महामण्डल, चन्दौसी, से यह मिल सकती है। इसमें भारत की अवनति के कुछ कारणों का वर्णन करके व्यापार, रुजगार, कला-कौशल और विज्ञान आदि की वृद्धि करने का उपदेश दिया गया है, जो बहुत ठीक है।

☼

१४—आदर्श विद्यार्थी। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य ४ आने, लेखक, पण्डित [illegible]। भूमिका-लेखक पण्डित [illegible] के कथनानुसार—"इसमें एक विद्यार्थी के चरित्र द्वारा यह बात [illegible] समझाई गई है कि [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। आवश्यकता है [illegible] [illegible] और [illegible]"। मिलने का पता—[illegible] [illegible], [illegible]।

☼

[illegible] पुस्तकें [illegible] हैं [illegible] गई हैं। [illegible]—

(१) [illegible]—[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]



में विभक्त है। प्रत्येक प्रसङ्ग के आदि में स्थान और समय का भी उल्लेख है। स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों में, समय समय पर, अध्यात्म विषयों पर जो कथोपकथन हुआ था वही इस पुस्तक में लिपिबद्ध हुआ है। पुस्तक बड़ी ही रोचक और शिक्षापूर्ण है। गूढ़ से गूढ़ बातें ऐसे अच्छे ढँग से लिखी गई हैं कि बिना प्रयास के ही समझ में आ जाती हैं। जिन रहस्यों का जानना अध्यात्म विद्या के ज्ञाताओं ही के वश की बात थी वे भी, इस प्रकार, अल्पज्ञों के लिए सुगम हो गये।



९—सागार धर्म्मामृत। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ३११; अच्छी जिल्द बँधी हुई; मूल्य डेढ़ रुपया; मिलने का पता—दिगम्बर जैन-आफ़िस, सूरत। आशाधर नाम के एक जैन विद्वान् हो गये हैं। उन्हें हुए सात आठ सौ वर्ष हुए। सागार धर्म्मामृत उन्हीं की रचना है। वह संस्कृत में है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका पूर्वार्द्ध है। इसमें ऊपर मूल संस्कृत श्लोक और नीचे पण्डित लालाराम जैन कृत हिन्दी-भावार्थ है। यह सदाचार-विषयक ग्रन्थ है। इसे जैनधर्मावलम्बियों का धर्म्म शास्त्र कहना चाहिए। पुस्तकारम्भ में ग्रन्थकार आशाधर का उपलब्ध जीवन-चरित भी है, जो बड़े महत्त्व का है।



१०—नेत्रदीपिका। पृष्ठ-संख्या ८८, मूल्य ८ आने। इसके लेखक पण्डित नृसिंहदत्त वैद्यराज हैं। प्रकाशक—पण्डित भृगुदत्त वैद्यराज, महल्ला पीपल महादेव, देहली। यह उनसे मिलती है। टाइप बड़ा; छपाई और काग़ज़ साधारण है। इसमें नेत्र-रोगों के नाम, लक्षण और चिकित्सा-वर्णन है। पुस्तकान्त में जो ओषधियां लिखी गई हैं वे सुलभ हैं—सब कहीं मिल सकती हैं। आयुर्वेद-ग्रन्थों ही के आधार पर इसकी रचना हुई है। पुस्तक लाभदायक है।



११—सितार-शिक्षक। लगभग डेढ़ सौ सफ़े की [illegible] मूल्य १ आने है। इसे बाबू युगुलकिशोर [illegible] है। रामगंज, काशी, के पते पर बाबू [illegible] यह मिलती है। यों तो इसके गुण-दोष [illegible] बता सकते हैं, पर इसका आरम्भिक [illegible] यह धारणा हुई है कि इसका कम अच्छा है। सितार बजाना सीखने वालों को इससे बहुत मदद [illegible] सकती है। कई चित्र भी इस पुस्तक में हैं। सितार के [illegible] के नम्बरों के सिवा स्वरों के नाम भी इसमें हैं। जो जिस राग की है उसके पहले उसी राग के स्वर भी लिख दिये गये हैं। फिर प्रत्येक बोल और गत तान [illegible] गई हैं। इस पुस्तक का यह प्रथम भाग है। लोगों ने इसे पसन्द किया तो शायद अगले भाग भी निकलें।



१२—श्रीब्रह्मविलास। यह कोई ७० पृष्ठ की पुस्तक है। पद्य में है। मोटे टाइप में छपी है। इसमें श्री धनानन्द फ़कीर के वचन—ब्रह्मज्ञान की बातें—हैं। ज्ञानी साधुओं की बानी जैसी होती है वैसी ही यह भी है। परमार्थ प्रेमियों के देखने योग्य है। आध आने का टिकट भेजने पर, राय बहादुर ठाकुर दलजगसिंहजी खानका, असिस्टंट सर्जन, जयपुर, से मुफ़्त मिलती है।



१३—देश की दशा। यह तीस चालीस सफ़े की छोटी सी पुस्तक है। भीतर तो मूल्य २ पैसा लिखा है, पर बाहरी वेष्टन पर १ पैसे। विश्वविद्या प्रचारक महामण्डल, चन्दौसी, से यह मिल सकती है। इसमें भारत की अवनति के कुछ कारणों का उल्लेख करके व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल और विज्ञान आदि की वृद्धि करने का सदुपदेश दिया गया है, जो बहुत ठीक है।



१४—आदर्श विद्यार्थी। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ४ आने; लेखक, पण्डित [illegible] द्विवेदी। भूमिका-लेखक पण्डित चन्द्रशेखर के कथनानुसार—"इसमें एक विद्यार्थी के चरित्र द्वारा यह बात कथा के रूप में समझाई गई है कि गृहस्थ स्थिति की प्रतिकूलता मनस्वियों को महत्त्वाकांक्षा से रोक नहीं सकती। आवश्यकता है केवल अध्यवसाय और दृढ़ता की"। मिलने का पता—[illegible] और द्विवेदी, दारागंज, प्रयाग।



नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे [illegible] गई हैं। लेकर बाद [illegible] की जायगी—

(१) उर्दू-व्याकरण—[illegible] [illegible]

(२) हिन्दी भक्तामर और प्राणप्रिय काव्य—लेखक, बाबू पन्नालाल, विसाना, हाथरस।

(३) क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है ?—लेखक, बाबू दयाचन्द्र जैन, बी०ए०, गढ़ी अब्दुल्लाखां।

(४) महेन्द्रकुमार नाटक—सम्पादक, बाबू अर्जुनलाल सेठी, बी०ए०।

(५) सार्वजनिक हित, भाग छठा—लेखक, मुनि माणिक।

(६) सामयिक देववन्दन, सूत्र सार्थ हिन्दी—अनुवादक, पन्नालाल जैन, देहली।

(७) मुक्ति-मार्ग—संग्रहकार, पं० नन्दकुमार मिश्र, नैकी, गया।

(८) हिन्दी की कुंजी—लेखक, पण्डित हीरालाल झा, मधीपुरा।

(९) सन्तवचनामृतसार
(१०) गयामाहात्म्यसार (भाषा)
(११) पुनः पुना-गङ्गा-माहात्म्य
(१२) ,, ,, (भाषा)
— प्रकाशक, बाबू पद्मसिंह, जमोर, गया।

(१३) प्रसूनाञ्जलि—लेखक, सीताराम जे० शर्म्मा, अहमदाबाद।

(१४) महात्मा टालस्टाय के लेटर—प्रकाशक, ग्रन्थ-प्रकाशक-समिति, काशी।

(१५) शिमला-यात्रा—लेखक, कुँवर रघुवीरसिंह, सूरजपुर।

(१६) सङ्गीतबिन्दु—लेखक, श्रीबिन्दु, गोरखपुर।

(१७) उपदेशस्तवनसंग्रह—संग्रहकर्ता, धर्मचन्द्र जैन, आगरा।

(१८) Jainism not an Atheism—
By Herbert Warren, London.

(१९) स्वामी मोतीरामजी का जीवन-चरित्र—लेखक, जैन पण्डित ज्ञानचन्द्रजी।

(२०) के केऽशाः संस्कृत-साहित्ये पूर्तिसापेक्षाः—लेखक, पण्डित शालग्राम शास्त्री, हरद्वार।

चित्र-परिचय।

(१)
रावण-भिक्षा।

इस संख्या का पहला रङ्गीन चित्र रावण-भिक्षा है। इसका विषय सर्वश्रुत है। अतः उस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। सीताजी की नम्र-दृष्टि और मुखचर्य्या उनकी शालीनता और कुल-मर्य्यादा की सूचक है और रावण के चेहरे का भाव उसके कपट का द्योतक है।

(२)
कार्तिक

इस संख्या के दूसरे रङ्गीन चित्र कार्तिक की कथा उसीके नीचे प्रकाशित कविवर केशवदास के छप्पय-छन्द से जान लीजिए।

(३)
सिद्धार्थ का गृह-त्याग।

राजकुमार सिद्धार्थ के हृदय में जब तीव्र विराग का उदय हुआ तब उन्होंने सांसारिक सुखों को तुच्छ समझ कर गृह-त्याग करने का निश्चय किया। पूर्णिमा का पूर्ण-चन्द्र आकाश में हँस रहा था। उसकी कौमुदी से राज-प्र[illegible] सुधा-सिञ्चित सा बन रहा था। सिद्धार्थ की पत्नी [illegible] शिशु को हृदय से लगाये सुख-पूर्वक सो रही थी। [illegible] स्त्रियां भी निद्रा में निमग्न थीं। ऐसे ही समय में सिद्धा[र्थ ने] अपने नवजात पुत्र और पत्नी को एक बार देख कर घ[र से] निकल जाना चाहा। वे पत्नी के पलँग के पास खड़े हो[कर] सोचने लगे—हा, देखो तो यह संसार कैसा दुःख-मू[लक] है ! पर अविवेक से अन्धे हुए मनुष्य इसी दुःख-जाल [को] सुख समझ कर उसमें फँसे पड़े रहते हैं ! इसी दृश्य को क[लक]त्ते के चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा ने एक बड़े [ही] भाव-पूर्ण चित्र में दिखाया है। पाठक उसे अन्यत्र इसी संख्[या] में देखेंगे।

(४)
गोवर्धन का मेला।

व्रजमण्डल में गोवर्धन एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ हर साल आषाढ़-पूर्णिमा को एक मेला होता है। लाखों आदमी जमा होते हैं। गोवर्धन-पर्वत (गिरिराज) की प्रदक्षिणा होती है। गत मेले के दृश्य का एक चित्र इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है। यह चित्र मानसी गङ्गा के तट का है। सामने से चित्र की दाहिनी ओर मेले का कुछ अंश साफ़ दिखाई दे रहा है। इस मेले में गज और ग्राह की लड़ाई भी दिखाई जाती है। चित्र-गत मानसी गङ्गा में यह दृश्य भी पाठक देखेंगे। एक तरफ़ से ग्राह आ रहा है। दूसरी तरफ़ सूँड़ उठाये गज उससे भिड़ने को तैयार है। यह चित्र हमें रियासत चँदवारा के कुँवर नरेन्द्रसिंहजी की कृपा से प्राप्त हुआ है।

Printed and published by Apurva Krishna Basu, at the Indian Press, Allahabad.

श्रीयुत महाराजा दरभङ्गा-नरेश, महाराजा अलीपुर, महाराजा मनीपुर आदि

बड़े बड़े राजाओं से प्रशंसा प्राप्त

अलीगढ़ शहर के प्रसिद्ध ख़ानदानी वैद्य, गवर्नमेन्ट संस्कृत-परीक्षा पास

पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री की



बालकों को हर चौथे व छठे दिन घुटी पिलाने की हिन्दुस्तान में बहुत पुरानी और बड़ी गुणकारी रिवाज है, किन्तु वैद्यकशास्त्र की आज्ञानुसार वैद्य के हाथ की बनी विश्वास-योग्य घुटी न मिलने के कारण सज्जनों को बड़ा कष्ट था क्योंकि वे पसारी और अत्तारों की मनगढ़न्त बाज़ारू घुटी पिलाने से तो न पिलाना ही अच्छा समझ बालक को पुष्ट और नीरोग रखने में असमर्थ थे, इसलिए बड़े विचार और परिश्रम से भारतवर्ष में उत्पन्न हुए बालकों की प्रकृति के अनुकूल स्वदेशी औषधियों द्वारा यह "बाल-रक्षा घुटी" तैयार की है। घुटी स्वादिष्ट और मीठी बनी बनाई तैयार है सिर्फ़ शीशी में से निकाल कर पिला देना आपका काम है। हज़ारों बार परीक्षा कर यह निश्चय हो चुका है कि "बालरक्षा घुटी" के पिलाने से बालक नीरोग मोटे ताज़े बने रहते हैं, उनका शरीर मज़बूती के साथ ख़ूब बढ़ता है, यकायक रोग नहीं घेर सकते। "बाल-रक्षा घुटी" के पिलाने से मरोड़, ज्वर, दस्त, पेंठा, औंवलोहू, पेट का दर्द, अफ़रा, दस्त साफ़ न होना, पाख़ाने में कीड़े आना, पेट बढ़कर शरीर घटना, सर्दी, कफ़, खांसी, पसली चलना, डसका, बार बार दूध पटकना, चौंक चौंक कर रोना, आदि बालरोग शर्तिया नाश होते हैं। दांत निकलते समय उत्पन्न होने वाले सब उपद्रव दूर होकर दांत सहज में निकल आते हैं। एक बार अवश्य परीक्षा कीजिये। आप प्यारे बालक को पुष्ट देख कर निस्सन्देह प्रसन्न होंगे।

३२ खुराक की शीशी का मूल्य ॥) मात्र डाकमहसूल और पैकिंग।)
एजेन्टों की आवश्यकता है।

पता—पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री-सुधावर्धक औषधालय,

नं० ४ अलीगढ़ सिटी

हर जगह एजन्टों की ज़रूरत है

मनमोहिनी वटिका

मनमोहनी वटिका का सेवन जो नर करेगा।
नामर्द मर्द बन कर नहीं काम से डरेगा॥
जो दिल निरास होकर बैठे हो हाथ मल कर।
खाने से एक गोली जोबन उमङ्ग भरेगा॥


दमी कैसा ही निर्बीर्य व सुस्त-कम-ज़ोर क्यों न हो एक गोली दूध के साथ खाने से आधे घन्टे बाद वह ताक़त पैदा होती है कि बुड्ढे जवानों को मात कर दें। अगर आपको आगे जवानी की बहार देखना मंज़ूर है तो इसे ज़रूर मंगाइये। मनमोहनी वटिका चन्द रोज़ इस्तेमाल करने से बदन को फ़ौलाद बना देती है। क़ीमत फ़ी बक्स १॥) तीन बक्स एक साथ ख़रीदने से ४)

न यनामृत सुरमा नेत्रों की हर प्रकार की बीमारी के लिए अमृत के तुल्य है—एक शीशी ॥)

ज्यो पारत्नाकर—इसकी प्रसिद्ध २ अख़बारों ने प्रशंसा की है, जिसमें त्रिकालदर्शी अंगूठी, ताम्बूलविहार, कपूर की माला, गन्धक का गिलास, कपूर का कटोरा पारे का गिलास, विलायती खिजाब, चाँदी सोने का मुलम्मा, साबुन, दाद की दवा, रबर की मोहरें, आदि बनाने की सैकड़ों तरकीबें लिखी हैं, सच्चा हुनर हासिल करना है तो सिर्फ़ ॥) का टिकट भेज कर मँगा लीजिए। जल्दी कीजिए, थोड़ी जिल्दें रह गई हैं।

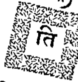
के शकल्प इस खिजाब के लगाने से पांच मिनट में बाल भौंरे काले भौंरे के मानिन्द और मुलायम हो जाते हैं, जो बाल एक दफ़े काले हो जायंगे वह फिर कभी सफ़ेद नहीं होते—बराबर इस्तेमाल करने के लायक उमदा चीज़ है। क़ीमत १॥) रु०

श्री राधाविहार हेयर आइल, यह अपने ग का विचित्र ख़ुशबूदार अनोखा ही तेल है—दिल और दिमाग़ को ताक़त दे रहा नये फ़ैशन के बेहरे की ख़ूबसूरती बढ़ा है—इसे ज़रूर मँगाकर इस्तेमाल कीजिये—सच्चा का परिचय तो आपको लेना ही है। मूल्य एक शीशी का १) रु० तीन शीशी लेने से पारसल ख़र्चा माफ़

अ ग्निसंदीपन चूर्ण, उदर की अने बीमारियों को दूर करके भूक बढ़ाते हुआ आदमी को हट्टा कट्टा पट्ठा बना है—फ़ायदा न करे तो दाम वापस एक शीशी का मूल्य ॥) आना।

द दु दावानल, हर तरह के दाद के दाद को बगैर तकलीफ़ के नगाड़ा भगाने की गारंटी रखता है एक शीशी ।) तीन शीशी लेने से पार्सल ख़र्च माफ़।

अ मृत लहर, इसका परिचय देने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि यह द सैकड़ों बीमारियों में अपना तत्काल गुण दिखाती हुई हर जगह आदर पारही है और हमने भी हर एक को फ़ायदा पहुं के लिए इसकी रियायती क़ीमत सिर्फ़ तीन मा वास्ते ॥) आना कर दी है।


लस्मी मिठाई, एक शीशी १४ सेर का काम देती है, चाह, शरबत, दूध, दही, जी चाहे जिसमें डालकर मिठाई का काम लेकर घरखर्च में बहुत किफायत कीजिए। एक शीशी का दाम ॥) आना बारह का ५) रु०

जे बी सफ़री हुक्के, पानी भर कर जेब में डाल लीजिये, पानी की बूँद भी न गिरेगी, नय और नैचा इसी के सा हैं पीने के समय आवाज़ बड़ी कली के माफिक देते हैं घर और मुसाफिरी में हर जगह काम लीजिए। बड़े उमदा ख़ूबसूरत बने हुए हैं। पीतल का दाम १॥ जरमन सिलवर का दाम २) २॥) ३)

पता—रमेशचन्द्र एन्ड को०
(बी ब्रांच) स्वामीघाट, मथुरा।

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * *

मानस–कोश ।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक शब्द के एक एक दो दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०४५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए।

सचित्र हिन्दी महाभारत

(मूल आख्यान)

[illegible] से अधिक पृष्ठ | बड़ी साँची | १९ चित्र

लेखक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही [illegible] का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म [illegible] है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-[illegible] सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की [illegible] जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष [illegible] सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना [illegible] यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके [illegible] धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि [illegible]चारी भीष्मपितामह के पावन चरित्र द्वारा [illegible] रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि [illegible]न कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को [illegible] और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत" को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा सरल, बड़ी ओजस्विनी और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या को यह महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना और उससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय ।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य्य वर्षों से उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे, जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्य-समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। इसे आर्यों का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्वामीजी कृत ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज में जितने छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें इसका आसन ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य को यह ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है। मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँचे के ६१५ पृष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, ग्रन्थकार का परिचय, विषयानुक्रमणिका, आवश्यक विवरण, शुद्धिपूर्ति, ग्रन्थालय-प्रशस्ति और सहायक-सूची आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी का मूल्य [illegible] ४) चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

[illegible]नी ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। [illegible] मूल्य ॥)।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * * *

(महाकवि कालिदासकृत)

रघुवंश

का गद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद

(श्री० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित)

इस अनुवाद में एक दो नहीं अनेक विशेषतायें हैं। इसमें कालिदास के लिखे केवल शब्दों का ही अनुगमन नहीं किया गया है, किन्तु उन शब्दों के प्रयोग द्वारा महाकवि कालिदास ने जो अनुपम भाव दरसाये हैं उन्हीं भावों को, उन्हीं भीतरी मर्मों को, महाकवि की उन्हीं प्रतिभा प्रदीप्त कल्पनाओं तथा लोकोत्तरानन्ददायिनी उक्तियों के गूढ़ रहस्यों को, सबके समझने योग्य हिन्दी भाषा में, विशद रूप से प्रकाशित किया गया है।

जो आनन्द संस्कृतज्ञ विद्वानों को मूल रघुवंश के पढ़ने में आता है वही आनन्द हिन्दी जानने वालों को इससे प्राप्त होगा। हमारे इस कथन में अत्युक्ति का लेश मात्र भी न समझिए 'हाथ-कंगन को आरसी क्या?' जब आप इस अपूर्व ग्रन्थ को देखेंगे तभी आपको इसके जौहर मालूम होंगे।

सुन्दर चित्रों से सुभूषित। पृष्ठ कुल मिलाकर २००। सुन्दर सुनहरी जिल्द। मूल्य केवल २)

विनयपत्रिका।

(काशीनिवासी पं० रामेश्वरभट्ट-कृत सरल टीकासहित)

गोस्वामी तुलसीदासजी के नाम को कौन नहीं जानता। जिस कवि की कविता को सुन कर हिन्दू ही नहीं, विदेशी और विधर्मी लोग भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं उसकी कविता की प्रशंसा में कुछ लिखना सूर्य को दीपक से दिखाना है। रामायण से उतर कर विनयपत्रिका का ही नंबर है। नहीं नहीं, प्रेम और भक्ति के वर्णन की दृष्टि से विनयपत्रिका का नंबर रामायण से भी पहले गिना जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। विनयपत्रिका का एक एक पद भक्ति और प्रेम रस में सराबोर हो रहा है। एवं ऐसी सरल भाषा में है कि बालक भी समझ सकते हैं। पृष्ठ ३५४। सुन्दर जिल्द। मूल्य २)

विनयपत्रिका के विषय में सर जार्ज, ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० के पत्र की नकल हम नीचे देते हैं कि जो उन्होंने विलायत से पंडित रामेश्वर भट्ट के नाम भेजी है—

True copy of the letter received from Sir George A. Grierson, K.C.I.E., Rathfarnham, England, to the address of the Commentator of Vinaya Pattrikâ.

Dated 6th September, 1911.

Dear Sir,

Forgive a stranger for addressing you. I write to say how highly I appreciate your excellent edition of the तुलसीदास कृत विनयपत्रिका which I obtained from the "Indian Press" a few days ago. It is a worthy successor of your Edition of the रामचरितमानस, and really fills a want which I have long felt. The *Vinaya Pattrikâ* is a difficult work but I think it is one of the best poems written by Tulasî Dâsa and should be studied by every devout [illegible]. I have already found it of great assistance in explaining difficult passages.

May I hope that you will go on with your work and bring out similar editions of the [illegible] and of the कवितावली (including the [illegible]), both of which are very important. The कवितावली is most important, as it throws so much light on the life of the poet.

Yours faithfully,

George A. Grierson

Pandit Râmeçvar Bhatt.

जापान-दर्शन।

([illegible])

जिस हिन्दूधर्मावलम्बी छोटे से जापान ने महाबली रूस को पछाड़ कर सारे संसार में [illegible] का मुख उज्ज्वल किया है, [illegible] जापान के भूगोल, [illegible], शिक्षा, [illegible], व्यापार, राजा, प्रजा, सेना और [illegible] बातों का, इस पुस्तक में, पूरा पूरा वर्णन किया गया है। भारत की [illegible] इस पुस्तक [illegible] चाहिए। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १), [illegible]

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फ़ील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० अर्णीश्वरनाथ भट्ट, बी० ए०, प्राज्ञ)

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, यदि उसको सांसारिक नियमों का ज्ञान नहीं, यदि उसको नैतिक और सामाजिक नियमों का बोध नहीं तो तण्डुलरहित तुषों के समान उसकी विद्वत्ता निष्प्रयोजन है। हमारी हिन्दी का बालकोपयोगी साहित्य अभी ऐसी पुस्तकों से ख़ाली सा है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बनाकर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको "कर्तव्य-शिक्षा" की पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है। पौने तीन सौ पृष्ठ की भारी पोथी का मूल्य केवल एक रुपया।

प्रकृति ।

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढँग की एक ही है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जाननेवालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें जगत् की उत्पत्ति, आकाशतरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि, [illegible] विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को बड़े चाव के साथ मँगाकर पढ़ेंगे और अनेक लाभ उठावेंगे। मूल्य १) एक रुपया।

राजर्षि ।

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप कर अपने प्रेमी पाठकों की प्रतीक्षा कर रहा है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़यालात से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं। उपन्यास पढ़ने पर जो हर्ष होगा, जो शिक्षा मिलेगी और जो हृदय में पवित्र भाव का संचार होगा, उसके आगे इस इतने बड़े ओजस्वी उपन्यास का ॥।=) आना मूल्य कुछ नहीं के बराबर ही समझना चाहिए।

सचित्र

शरीर और शरीर-रक्षा ।

पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए० की लिखी हुई किताबें कैसी अच्छी और लाभदायक होती हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। जिन्होंने इनकी लिखी हुई किताबें पढ़ी हैं, वे ख़ुद जानते होंगे। यह पुस्तक भी उन्हीं पण्डित जी की क़लम की करामात है। इस में शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। [illegible]

❊ ❊ ❊ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❊ ❊ ❊

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

गारफ़ील्ड ।

इस पुस्तक में अमरीका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एबरम गारफ़ील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफ़ील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उत्साह, साहस और संकल्प के कारण, अमरीका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के नव युवकों को इस पुस्तक से बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, हमारी राय में, अभी तक कहीं नहीं छपी। एक हिन्दी ही नहीं इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं पर विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

सर्वशिरोमणि कालिदास के नाम को कौन नहीं जानता! शकुन्तला नाटक, उन्हीं कविचूड़ामणि कालिदास का रचा हुआ है। इस नाटक पर दूसरे वाले नहीं विदेशी विद्वान् भी लट्टू हैं। संस्कृ जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही म यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह हि हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसि अनुवादित किया है। लीजिए, देखिए तो इसके में कैसा अनुपम आनन्द आता है। मूल्य १)

मुकुट ।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्र बा बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। भाई में परस्पर अनबन होने का परिणाम क्या होता इस छोटे से उपन्यास में यही बड़ी विलक्षणत साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग म मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। मूल्य

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू नाम से सभी शिक्षित जन परिचित हैं। उन्हीं परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सर हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार है। यह उपन्यास क स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन कर योग्य है। मूल्य ≈)

स्वर्णलता ।

(रोचक और शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास)

यह उपन्यास प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना चाहिए, इस उपन्यास को गृहस्थाश्रम का नक्शा समझना चाहिए। बँगला में इस उपन्यास की इतनी प्रतिष्ठा हुई है कि १९०८ तक इसके १४ संस्करण निकल चुके हैं। इस उपन्यास की शिक्षा बड़ी महत्त्व की है। हिन्दी में यह उपन्यास अनूठा है। ३०१ पृष्ठ की पोथी का मूल्य १)

※ इंडियन प्रेस, प्रयाग, के रंगीन चित्र ※

भक्ति-पुष्पांजलि

आकार—११½" × १½" दाम ७)

एक सुन्दरी शिवमन्दिर के द्वार पर पहुँच गई है। सामने ही शिवमूर्ति है। सुन्दरी के साथ एक बालक है और हाथ में पूजा की सामग्री है। इस चित्र में सुन्दरी के मुख पर, इष्टदेव के दर्शन और भक्ति से होने वाला आनन्द, श्रद्धा और साधुता के भाव बड़ी ख़ूबी से दिखलाये गये हैं।

चैतन्यदेव

आकार—१०½" × ९" दाम ।=) मात्र

महाप्रभु चैतन्यदेव बंगाल के एक अनन्य भक्त वैष्णव हो गये हैं। वे कृष्ण का अवतार और वैष्णव धर्म के एक आचार्य माने जाते हैं। वे एक दिन घूमते विचरते जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ गरुड़स्तम्भ के नीचे खड़े होकर दर्शन करते करते वे भक्ति के आनन्द में बेसुध होगये। उसी समय के सुन्दर दर्शनीय भाव इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

बुद्ध-वैराग्य

आकार—१८½" × २३" दाम २) रु०

संसार में अहिंसा-धर्म का प्रचार करने वाले महात्मा बुद्ध का नाम जगत् में प्रसिद्ध है। उन्होंने राज्यसम्पत्ति को लात मार कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इस चित्र में महात्मा बुद्ध ने अपने राज-चिह्नों को निर्जन में जाकर त्याग दिया है और अपने अनुचर से उन्हें उठाकर घर ले जाने के लिए कह रहे हैं। उस समय के, बुद्ध के मुख पर, वैराग्य और अनुचर के मुख पर आश्चर्य के चिह्न इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

अहल्या

आकार—११½" × १८½" दाम १) रु०

अहल्या अलौकिक सुन्दरी थी। वह गौतम की स्त्री थी। इस चित्र में यह दिखलाया गया अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक हाथ में लिये वहीं कुछ सोच रही है। सोच र देवराज इन्द्र के सौन्दर्य को—उन पर वह प्रकार से मोहित सी होगई है। इसी अवस्था इस चित्र में चतुर चित्रकार ने बड़ी कारीगरी साथ दिखलाया है। चित्र बहुत ही दर्श बना है।

शाहजहाँ की मृत्युशय्या

आकार—१४" × १०" दाम ।||)

शाहजहाँ बादशाह को, उसके कुपुत्र औरंगज़ेब ने धोखा देकर क़ैद कर लिया था उसकी प्यारी बेटी जहाँनारा भी बाप के पास क़ै की हालत में रहती थी। शाहजहाँ का मृत्युकाल निकट है, जहाँनारा सिर पर हाथ रक्खे हुए चिन्ति हो रही है। उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिख लाया गया है। शाहजहाँ के मुख पर मृत्युकाल की दशा बड़ी ही ख़ूबी के साथ दिखलाई गई है।

भारतमाता

आकार—१०½" × ६" दाम ।=)

इस चित्र का परिचय देने की अधिक आवश्यकता नहीं। जिसने हमको पैदा किया है, जो हमारा पालन कर रही है, जिसके हम कहलाते हैं, और जो हमारा सर्वस्व है उसी जननी जन्मभूमि भारत-माता का तपस्विनी वेष में यह दर्शनीय चित्र बनाया गया है। प्रत्येक भारतवासी को यह चित्र अपने घर में, अपनी आँखों के आगे रखना चाहिए।

चित्रों के मिलने का पता—**मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।**

सरस्वती में विज्ञापन

यह तो आपको विदित ही है कि अब सरस्वती का प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता जाता है। भारतवर्ष का ऐसा कोई प्रतिष्ठित नगर नहीं जहाँ "सरस्वती" के अनेक ग्राहक न हों। यही नहीं, किन्तु लन्दन, अमरीका, अफ्रीका, फ़ीजी द्वीप आदि दूरदेशों में भी सरस्वती के उत्साही ग्राहक बढ़ते जाते हैं। यह हमारा अनुभव ठीक है कि एक एक ग्राहक के पास से सरस्वती ले लेकर पढ़ने वालों की संख्या आठ-आठ, दस-दस, तक पहुँच जाती है। ऐसी दशा में सरस्वती का प्रत्येक विज्ञापन प्रतिमास तीस चालीस हज़ार सभ्य मनुष्यों के दृष्टिगोचर हो जाता है। इसलिए सरस्वती में विज्ञापन छपाने वालों को विशेष लाभ रहता है। सन् १९१३ ईसवी से तो सरस्वती का प्रचार और भी अधिक बढ़ रहा है।

आशा है कि आप भी "सरस्वती" में विज्ञापन छपा कर उससे लाभ उठाने का शीघ्र प्रयत्न करेंगे और बहुत जल्द विज्ञापन भेज कर एक बार अवश्य परीक्षा करके देख लेंगे।

छपाने के नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	१२) प्रतिमास	
½ " या १ " "	७)	"
¼ " या ½ " "	४)	"
⅛ " या ¼ " "	२।)	"

१—विज्ञापन बिना देखे छापने की प्रतिज्ञा नहीं की जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपाने वालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक साथ [illegible] देने से ✱) फ़ी रुपया कम लिया जायगा।

१—सरस्वती का वार्षिक मूल्य [illegible]

२—[illegible] की एक कापी का मूल्य [illegible]

पत्रव्यवहार इस पते से कीजिए,

मैनेजर, सरस्वती,

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती के नियम।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ४) है। एक संख्या का मूल्य ।✱) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो हैं उनका मूल्य ॥) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख भेजना चाहिए। जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ न हो।

४—जिस मास की सरस्वती किसी को न मिले तो उस ही के लिए उसी मास के भीतर हमको लिखना चाहिए। अन्यथा दिन बाद लिखने से वह अङ्क बिना मूल्य न मिल सकेगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए। यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—सरस्वती की [illegible] वाले सब अगह हैं। हमारे [illegible] बहुधा पत्र आया करते हैं कि अमुक मास की पत्रिका नहीं पहुँची। परन्तु, यहाँ दो बार अच्छी तरह जाँच कर भेजी जाती है। इसीसे ग्राहकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें [illegible] बदले के पत्र सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ। ग्राहक नम्बर लिखना न भूलिएगा।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने [illegible]

९—[illegible]

१०—[illegible]

११—[illegible]

१२—[illegible]

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १६, खण्ड २] दिसम्बर, १९१५ [संख्या ६, पूर्ण संख्या १९२



वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [illegible]

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १६, खण्ड २] दिसम्बर, १९१५ [संख्या ६, पूर्ण संख्या १९२



जो साहब अब तो .खुश हो जाइये

मुफ़त लुटाते हैं



मुफ़त लुटाते हैं

.खुशबूदार रमेशसाबुन एक वैज्ञानिक रीति से बनाया जाता है जो सिर्फ़ ३-४ मिनट
जलन या तकलीफ़ के बालों को उड़ाकर जिल्द को मुलायम और ऐसा चमकदार कर देता है मा
यहां कभी थे ही नहीं। रमेशसाबुन दाद, खाज, और ज़हरीले जानवरों के विष को भी बात की ब
देता है इसी सबब रमेशसाबुन के हज़ारों बक्स बिक रहे हैं। रमेश साबुन बड़े बड़े राजे महार
साहूकारों के मकान तक आदर पा चुका है। तीन टिकिया मय .खूबसूरत बक्स ॥) वार
वी० पी० खरचा ।~) लेकिन जो साहब चार बक्स क़ीमती ३) तीन रुपया एक साथ खरीदेंगे उ
मेज पर रखने की निहायत मज़बूत .खूबसूरत पायेदार फैसनेबिल घड़ी मुफ़्त नज़र करेंगे।
ख़रचा ॥~)

पता—एल० आर० गुप्ता
(बी ब्रांच) स्वामीघाट,

THE GENUINE YAKUTI

YAKUTONE

A powerful **APHRODISIAC** and most valuable in **NEURASTHENIA.** No *Parhez* necessary.

Price—Rs. 10 for a tin of 50 pills.

The Manager, "YAKUTONE" Depot.
Kathiawar Camp RAJKOT

सितार-शिक्षक

यदि आप सितार बजाना, स्वर व ताल सहित, सीखना चाहते हैं तो इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य लाभ उठाइये। इस में गतों व गानों को ताल सहित बजाना, विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। इसके द्वारा कुछ रागों का बोध भी हो सकता है जो हारमोनियम जानते हैं वे भी लाभ उठा सकते हैं।

पृष्ठ १३८ मूल्य मात्र ।~)

पताः—युगुलकिशोर मिश्र कालपी यू० पी० (ज़िला जालौन)

FOR GOOD PROSPECTS

LEARN ACCOUNTAI
AND SHORT HAN

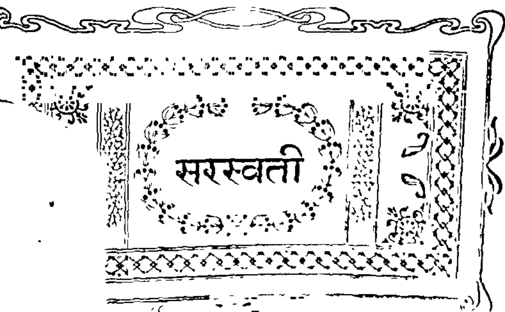
AT HOME

QUALIFICATION NO
REQUIRED

APPLY FOR PROSPECTUS

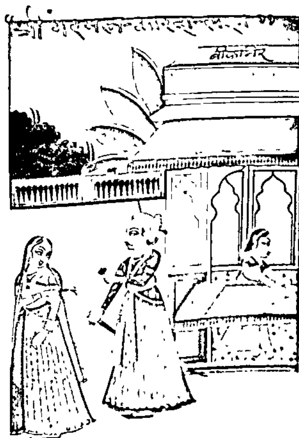
C. C. EDUCATION "S

POONA CITY



दिसम्बर [illegible] ([illegible] पूर्ण संख्या [illegible]

[illegible]



विनोद रचना बहुत ही उचित हुआ है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में दो पुस्तकें हमने और देखी हैं। एक का नाम शिवसिंहसरोज और दूसरी का Modern Vernacular Literature of Hindustan है। इनके नामों से ही पाठक समझ सकते हैं कि पहली हिन्दी में और दूसरी अँगरेज़ी में है। हिन्दी-पुस्तक के लेखक ठाकुर शिवसिंह सेंगर और अँगरेज़ी के डा० ग्रियर्सन हैं। ग्रियर्सन साहब की पुस्तक का मूल आधार भी शिवसिंह-सरोज ही है, पर वह बहुत अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। इसलिए नई पद्धति से पढ़े लिखे लोगों को कवियों के विषय में कुछ जानने के लिए अँगरेज़ी की पुस्तक ही देखने में सुभीता होता है। जो अँगरेज़ी नहीं जानते और किसी कवि के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हैं उन्हें शिवसिंहसरोज की शरण लेनी पड़ती है। परन्तु शिवसिंहसरोज की प्राचीन शैली के कारण उससे लाभ उठाने में समय समय पर लोग असमर्थ हो जाते हैं। ऐसी दशा में नवीन शैली पर लिखी हुई पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। मिश्रबन्धुओं ने उसे पूर्ण करने का जो स्तुत्य प्रयत्न किया है इससे वे हिन्दी-भाषियों के धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें उन्हें ऐसे साधनों से भी सहायता मिली है जो ठाकुर शिवसिंह और डा० ग्रियर्सन को भी उपलब्ध न थे। इस प्रयत्न में वे कहाँ तक सफलमनोरथ हुए हैं यही विचारणीय है।

समालोच्य पुस्तक तीन प्रकरणों में विभक्त है—एक संक्षिप्त इतिहास-प्रकरण, दूसरा आदि प्रकरण और तीसरा प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण। किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखने के पहले उसका भी संक्षिप्त इतिहास लिखना चाहिए, जिससे पाठकों को उसके विषय में कुछ मालूम हो जाय। यह सन्तोष की बात है कि इस पुस्तक में हिन्दी की उत्पत्ति के विषय में कुछ लिखा गया है, पर अत्यन्त संक्षेप में है और प्रारम्भ में नहीं, मध्य में है। हिन्दी की उत्पत्ति बताने में लेखकों ने डा० ग्रियर्सन से सहायता ली है, पर स्वयं उसके अनुसन्धान का कष्ट नहीं उठाया है। इससे जो भूलें ग्रियर्सन साहब ने की हैं वे ही विनोद-लेखक भी कर बैठे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू और ईरानी आर्य्य किसी समय एक ही स्थान में रहते और एक ही भाषा बोलते थे। पर वह परजिक या मीडिक थी, इसका प्रमाण कुछ भी नहीं मिलता। इसके विपरीत ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओं [से] पुराना ग्रन्थ न मिलने के कारण यह अनुमान कर [लेना] अनुचित न होगा कि, ईरानी और हिन्दू आर्य्यों की भा[षा] ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलती जुलती थी। अवस्ता [की] भाषा से ऋग्वेद की भाषा की और वर्तमान फ़ारसी [और] संस्कृत की तुलना करने से यह सिद्ध होता है कि दोन[ों] किसी एक ही भाषा से उत्पन्न हुई हैं। भारत के आदि[म] निवासियों की भाषा से आर्य्यों की भाषा के मिलने और फिर आर्य्यों की भाषा का संस्कार होकर व्याकरण द्वारा नियमित और संस्कृत होने और पाली के जन्म आदि की जो बातें विनोद-लेखकों ने लिखी हैं विलक्षण जान पड़ती हैं। बड़े ही खेद की बात है कि ऐसे गहन विषय पर जैसा विचार होना उचित था नहीं किया गया।

हमारी समझ से आर्य्यों की प्राचीन भाषा दो भागों में विभक्त थी—एक साहित्य की भाषा थी, दूसरी बोलचाल की जो साधारणतः वेदभाषा और लोकभाषा कहाती थी। साहित्य की भाषा का संस्कार हुआ तब वह संस्कृत कहाई। दूसरी प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसे सिद्ध हेमचन्द्र ने अपनी प्राकृताष्टाध्यायी में "आर्ष प्राकृत" कहा है। "ऋषीणां भाषा आर्ष"—हेमचन्द्र के इस अर्थ से हमारे कथन की पुष्टि होती है। आर्ष-प्राकृत का रूपान्तर ही गाथा है जिसमें ललितविस्तर आदि कई बौद्ध ग्रन्थ हैं। यह बिलकुल बेतुकी बात है कि "संस्कृत पुरानी प्राकृत में घुसने लगी और इस प्रकार पुरानी प्राकृत बढ़ते बढ़ते मध्यवर्त्तिनी प्राकृत अर्थात् पाली भाषा हो गई।" वास्तव में पाली भाषा मागधी प्राकृत का रूपान्तर मात्र है। क्योंकि बौद्ध लोग मागधी के विषय में कहा करते हैं—

सा मागधी मूल भासा
नरा या आदिकप्पिका।
ब्राह्मणा चास्सुतालापा
संबुद्धा चापि भासरे।

अर्थात् मागधी ही मूल भाषा है जिसे आदिकल्पिका में ब्राह्मण और बौद्ध बोलते थे। यद्यपि उद्धृत श्लोक से यह जान पड़ता है कि मागधी ही सब भाषाओं की जननी है, पर इसे कोई बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। बौद्धों के समय में पाली सर्वश्रेष्ठ प्राकृत समझी जाती थी, पर वा-

रुचि ने जब प्राकृतप्रकाश नामक व्याकरण बनाया तब महाराष्ट्री प्राकृत का प्राधान्य था। अनन्तर अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्द्धमागधी और नागर प्राकृतों का समय आया और फिर इनसे पञ्जाबी, व्रजभाषा, खड़ी बोली आदि की उत्पत्ति हुई।

बङ्गाल की भाषा बँगला कहाती है, पर लेखकों ने अँगरेज़ों की नक़ल कर उसे "बङ्गाली" कहा है, जो अँगरेज़ी पढ़े लिखों के सिवा कोई नहीं समझ सकता। एक जगह तो मिश्रबन्धुओं ने यह लिख कर कमाल कर दिया है—"यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान से अवधी भाषा समाप्त होती है और मैथिल का प्रारम्भ होता है।" मानो अवधी के बाद ही मैथिली बोली प्रारम्भ होती है। पर यह बात नहीं है, बल्कि मैथिली और अवधी के बीच में भोजपुरी और मगही बोलियाँ हैं। इसी प्रकार दूसरी बड़ी भारी भूल कुमारपालचरित्र को हिन्दी का ग्रन्थ बताने में की गई है। यदि सं० १२०० के लगभग का रचित कुमारपालचरित्र काव्य हिन्दी का ग्रन्थ है, तो फिर प्राकृत के सभी ग्रन्थ हिन्दी के हो जावेंगे। बम्बई में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है और इसी के साथ सिद्ध-हेमचन्द्र-कृत प्राकृताष्टाध्यायी है। जान पड़ता है कि किसी से सुन सुना कर लेखकों ने कुमारपालचरित्र को हिन्दी का ग्रन्थ लिख मारा है।

इस पुस्तक का नाम मिश्रबन्धुविनोद बहुत ही उचित है और इस नामकरण के लिए हम लेखकों को बधाई देते हैं। यदि इसके साथ ही "अथवा हिन्दी-साहित्य का इतिहास तथा कविकीर्त्तन" न लिखा होता तो जो कुछ ऊपर लिखा गया है और आगे लिखा जायगा वह कभी न लिखा जाता। क्योंकि यह पुस्तक मिश्रबन्धुओं ने स्वविनोदार्थ लिखा है, इसलिए यथेच्छाचार की मात्रा कम नहीं है। पहले तो १०४ पृष्ठों की हिन्दी भूमिका में १८ पृष्ठ में भाषा का वर्णन किया है। हमारा विचार है कि तीसरे भाग में जहाँ वर्तमान लेखकों और कवियों का उल्लेख होगा वहाँ मिश्रबन्धुओं का अपना वर्णन कई पृष्ठों में अवश्य लिखा होगा। ऐसी अवस्था में भूमिका में अपने सम्बन्ध के १८ पृष्ठ रखना [illegible] तक उचित है, यह पाठक ही विचारें। परन्तु [illegible] है। इसमें जो चाहे लेखक लिख सकते हैं। [illegible] में "भाषा-सम्बन्धी जो विचार" प्रकट किये गये हैं उनके हम उन्हीं के विषय में कुछ कहना चाहते हैं।

क्योंकि हिन्दी की उत्पत्ति के साथ ही भाषा का होना चाहिए। जब हमने पढ़ा—"हिन्दी ग्रन्थों की कैसी होनी चाहिए यह विषय भी विचारणीय है" तब कि इसमें भाषा पर कुछ सम्मति दी गई होगी, पृष्ठ पढ़ने पर भी हमारी समझ में यह न आया कि बन्धु कैसी भाषा अच्छी समझते हैं। जो कुछ [illegible] है, उसका अभिप्राय यही है कि, "हिन्दी को व्याकरण के फेर में डालने से लाभ प्रति स्वल्प हो सक[illegible] पर हानि ऐसी प्रबल और असह्य होगी कि [illegible] पार नहीं है।" पर यह न मालूम हुआ कि हिन्दी को संस्कृत-व्याकरण के फेर में डाल रहा है। हम नहीं कि वे "संस्कृत के विशेष प्रेमी" कौन हैं, जिनका है कि हिन्दी में कम से कम गद्य लेखन शैली प्रायः तथा संस्कृत व्याकरण से नियमबद्ध होनी चाहिए।" तो बहुत से हिन्दी-हितैषी चाहते हैं और हमारा भी [illegible] मत है कि हिन्दी में जो गड़बड़ मचा हुआ है उसको करने के लिए व्याकरण लिखा जाय, पर हम अपना [illegible] नहीं भूले कि "हिन्दी स्वतन्त्र भाषा है।" "हिन्दी [illegible] जनसमुदाय की सरल भाषा है—" मिश्रबन्धुओं की इस बा[illegible] से यह जाना जाता है कि वे सरल भाषा के पक्षपाती हैं, पर "सरल" भाषा की परिभाषा इन्होंने कुछ नहीं बताई। संस्कृत-व्याकरण का अनुसरण किये बिना ही भाषा क्लिष्ट और दुरूह हो सकती है, यह कदाचित् इनकी समझ में नहीं आया। हमारा तो यह कहना है कि व्याकरण-सम्मत भाषा क्लिष्ट नहीं, सरल होती है। हम जानते हैं कि जो लेखक व्याकरण विरुद्ध भाषा लिखता है उसी के लेखों में क्लिष्टता की मात्रा अधिक रहती है। इसलिए मिश्रबन्धुओं का यह सिद्धान्त कदापि माननीय नहीं है कि, "संस्कृत सम हिन्दी का व्याकरण बनने से हिन्दी क्लिष्ट हो जावेगी।"

[illegible]

शब्द को यदि कोई नाइका या नायिका भी लिख दे तो उसमें कोई दोष नहीं मानते तथा उसका समर्थन करते हैं। अपने इस कथन के समर्थन में आपने सतसई शब्द के छः रूप लिखे हैं, यथा शतसई, शतसैय्या, शतसैया, सतसैया और सतसइया। सतसई शब्द संस्कृत सप्तशती का और सतसैया संस्कृत सप्तशतिका का हिन्दी-रूपान्तर है। इन दोनों शब्दों का भावार्थ है सात सौ श्लोकों वा दोहों वाली पुस्तक। दुर्गा की पोथी में सात सौ श्लोक हैं, इसलिए वह सप्तशती कहाती है। विहारी की पुस्तक में ७०० दोहे हैं, इस लिए वह सतसई कहाती है और उसे सतसइया भी कहते हैं।

संस्कृत के श अक्षर के बदले हिन्दी मे स कर दिया करते हैं। इसी से सप्तशती का रूपान्तर सतसई और सप्तशतिका सतसइया या सतसैया हो गया है। परन्तु आज तक यह सुनने में कभी नहीं आया कि स के बदले श कर देने का भी नियम है। मागधी प्राकृत में स को श उच्चारण करने का नियम है, और उससे उत्पन्न बँगला भाषा में श की तूती बोलती है सही, पर स के बदले श लिखने का नियम वहाँ भी नहीं है। इसके आविष्कार का सब श्रेय मिश्रबन्धुओं को ही है। पर हिन्दी वालों में ऐसी सुबुद्धि कहाँ जो कृतज्ञतापूर्वक आप का नेतृत्व स्वीकार करें! यदि मिश्रबन्धुओं की आज्ञा मान ली जाय तो हिन्दी में एक शब्द के दस दस बीस बीस रूप बनने में भी देर न लगेगी। आपने सूर्य्य शब्द के चार स्वरूप दिखाये हैं, सूर्य्य, सूर्य, सूर्ज और सूरज। पहले दो संस्कृत के रूप हैं और चौथा हिन्दी है। हिन्दी वाले "सूर्य" शब्द का उच्चारण "सूर्ज" करते हैं, पर लिखते "सूर्य" ही हैं। यदि शब्द-गढ़न्त में मिश्रबन्धुओं का अनुकरण किया जाय, तो सुरिज, सूरिज, सुरुज, सूरुज, सुर्ज और सूर्ज रूप बन जायँगे। अर्थात् एक शब्द का जितने प्रकार का उच्चारण होगा उसके उतने ही रूप मानने पड़ेंगे। जैसे लक्ष्मण, लछमन, लपन, लखन, लाखन लिछमन, लिछिमिन आदि। मिश्रबन्धुओं की यह बात हम मानने को तैयार नहीं हैं और न अन्य हिन्दीहितैषी ही इसे स्वीकार करेंगे। नागरी लिपि का गुण यह है कि जो लिखा जायगा वही पढ़ा जायगा। यह नहीं कि एक ही शब्द अनेक प्रकार से लिखा जाय। मिश्रबन्धु संस्कृत शब्दों के प्रचार से बहुत चिढ़ते हैं, यद्यपि स्वयं संस्कृत-शब्दों का आ[वश्य]कता से अधिक प्रयोग करते हैं। आप फ़ारसी अरबी शब्द तो यथासाध्य शुद्ध लिखेंगे। यहाँ तक कि अप[नी] फ़ारसीदानी दिखाने को हिन्दी के "कनौज" शब्द [को] "कन्नौज" लिखेंगे और क अक्षर के नीचे बिन्दी न छूट ज[ाय] इसका विशेष ध्यान रक्खेंगे, पर संस्कृत के शुद्ध शब्द आप [की] आँखों में खटकते हैं। आज कल हिन्दी में संस्कृत के शु[द्ध] शब्द लिखने की चाल चल पड़ी है और सैकड़े पीछे प्रा[यः] ९५ लेखक शुद्ध लिखते भी हैं। इनमें कठिनाई से एक [दो] ऐसे विद्वान् होंगे जिन्होंने "१५ वर्ष तक सिद्धान्तकौमु[दी] की फक्किका वा महाभाष्य रटा" हो। यदि थोड़े अभ्यास [से] हम अँगरेज़ी जैसी कठिन भाषा के शब्द लिखने में भूल न[हीं] कर सकते,तो संस्कृत के शुद्ध शब्द लिखने का ज्ञान प्रा[प्त] करने के लिए हताश होने का कोई कारण नहीं।

मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी के किसी वादग्रस्त विषय क[ी] उपेक्षा नहीं की है। "शब्दों के नये रूप"; "सन्धि" "विभक्ति-प्रत्यय," "लिङ्गभेद" और "हिन्दी की स्वतन्त्रता" पर भी विचार प्रकट किये गये हैं। शब्दों के रूपों के विषय मे[ं] मिश्रबन्धुओं के कथन का सारांश यह है कि शुद्ध अशुद्ध चाहे जैसा शब्द कोई लिख दे, उसपर हिन्दीवाले चूँ तक न करें यदि कोई कुछ बोले तो उसके बोलने का यह अर्थ समझ[ा] जाय कि, "दूसरों की कीर्त्ति बढ़ती देख हृदय में शूल हुआ चाहे और बिना उनकी निन्दा किए कब रहा जाय! बस ऐसे महापुरुषों को पर निन्दा से काम।" यदि दूसरा कोई समा[लो]लोचक होता तो इन शब्दों को पढ़ इस काम से विरत हो जाता, पर हिन्दी-हित की दृष्टि से ऐसा करने में हम असमर्थ हैं। बंकिम बाबू ने सौजन्य वा सुजनता के बदले सौजन्यता लिख दिया तो वह अशुद्ध शब्द भी शुद्ध हो गया,' यह बात के सिवा कोई स्वीकार न करेगा। बङ्गाल के तो किसी बँगला लेखक ने इसे शुद्ध नहीं माना है। आज कल जैसी भाषा लिखी जाती है उससे ३।४ सौ वर्ष के लिखे पद्य या गद्य की तुलना करना अनुचित है। उस समय तद्भव शब्दों का विशेष प्रचलन था और संस्कृत ही नहीं, अरबी और फ़ारसी शब्दों के रूप भी विकृत करके प्रायः लिखे जाते थे। संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी के विद्वान् कवि भी इसका अनुकरण करते थे। इसलिए उन दिनों वैसी ही भाषा लिखी जाती थी।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि तद्भव वा देशज शब्दों का हिन्दी में बहिष्कार कर दिया जाय, पर हम कहते हैं कि इस समय संस्कृत-शब्दों के रूप विकृत न किये जायँ। इससे लाभ नहीं है। जो हो, "सेनापति कविता की कविताई बिलसति है," वाक्य में मिश्रबन्धुओं ने "कविताई" शब्द को पश्चिम वालू के "सौजन्यता" शब्द के ढंग का बताया है। पर यह उनकी भूल है। यहाँ कविताई का अर्थ "कविता" नहीं है, बल्कि कवित्व वा "कविता के गुण अथवा भाव" है। यद्यपि कविता और कवित्व का अर्थ एक ही है—पहले शब्द में "ता" प्रत्यय लगने से वह स्त्रीलिङ्ग बना रहा और दूसरा "त्व" लगने से पुंलिङ्ग बना रहा—तथापि "कवित्व" शब्द कविता के गुणों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ "कविताई" शब्द भी इसी अर्थ में लिखा गया है। आश्चर्य्य है कि मिश्रबन्धुओं की समझ में यह मोटी बात नहीं आई। मिश्रबन्धुओं का यह सिद्धान्त कि "कुछ अस्थिरता हमें हिन्दी के लिये आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि नूतन विचार को व्यक्त करने के लिये भाषा का दिनों दिन विकास होना ही ठीक है" उनके और सिद्धान्तों के अनुसार ही है। हम नहीं समझते कि, "नूतन विचारों को व्यक्त करने के लिए" संस्कृत के विकृत या अशुद्ध शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता है।

सन्धि के विषय में मिश्रबन्धुओं का कहना है कि सन्धि चाहे की जाय चाहे न की जाय। इस सम्बन्ध में भी उनकी बात सर्वांश में मानी नहीं जा सकती। मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि यज्ञोपवीत लिखो चाहे यज्ञ उपवीत, पर हम ने लोगों को बोलते यज्ञोपवीत ही सुनते हैं। मूर्ख से मूर्ख भी "जग्गोपवीत" बोलते हैं। रामाधीन, रामावतार, रामा-श्रय, गणेश, महेश, जगन्नाथ, मनोहर आदि शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं। कोई कोई रामअधीन और रामअवतार भी बोलते हैं, पर गणईश, महाईश, जगत्नाथ और मन हर बोलते हमने किसी को नहीं सुना। तात्पर्य्य यह कि संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं वे सन्धि से बने हैं या नहीं, यह बहुतों को मालूम नहीं है और न वे इसके जानने का यत्न ही करते हैं। वे जैसे शब्द पाते हैं वैसे ही बोलते और लिखते हैं। स्वरसन्धि सहज है, इसलिए हिन्दी में यह खूब प्रचलित है; व्यञ्जन और विसर्गसन्धियों का कठिनाई के कारण बहुतेरे हिन्दी-लेखक उनसे परिचित नहीं हैं।

विभक्ति-प्रत्यय के विषय में मिश्रबन्धुओं की बातें कर कोई विचारशील हँसे बिना नहीं रह सकता। मि[illegible] "ने, को, से" इत्यादि को कारक (Postposition) है। आपटे के संस्कृत-अंगरेज़ी-कोष में कारक का अर्थ प्रकार बताया है—(In Gram.) The relat[illegible] subsisting between a noun and a verb a sentence (or between a noun and otl[illegible] words governing it) मिस्टर जे० टी० टामसन अपने हिन्दी अंगरेज़ी कोष में कारक का अर्थ Case (Gram) लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि का[illegible] Postposition नहीं है। Postposition का [illegible] अंगरेज़ी कोष में लिखा है—A word or partic[illegible] placed after or at the end of a word. अर्था[illegible] एक शब्द या टुकड़ा जो पीछे या शब्द के अन्त में रक्खा जाय। इससे पाठक जान गये होंगे कि विभक्ति-प्रत्यय Postposition नहीं है। पादरी केलाग ने भी अपनी Grammar of the Hindi Language में विभक्ति-चिह्नों को Postposition कहा है। इनके विषय में भाग १२६ में पृष्ठ के फुटनोट में लिखते हैं:—

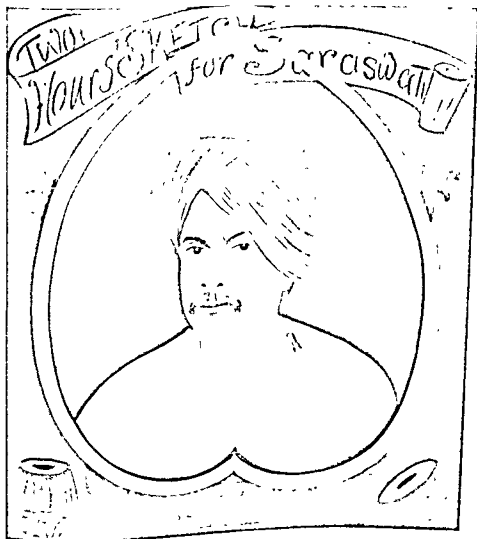
These are similar in character to prepositions in English, but as they follow their noun they are more accurately termed postpositions. मिस्टर थॉमस ने इन्हें Case-endings कहा है और हमारे मत से विभक्ति-चिह्नों का यह अर्थ बहुत ठीक है। मिश्रबन्धुओं ने व्याकरण का ज्ञान [illegible] खूब हा तोड़ा है। कारक और Postposition के अर्थों में जैसी भूल की है वैसी ही विभक्ति-प्रत्यय और अव्यय के अर्थों में [illegible] की है। [illegible] लोगों के मत से हिन्दी में विभक्ति-प्रत्यय हैं ही नहीं! विभक्ति का अर्थ Case-endings या Case-terminations है और प्रत्यय का अर्थ Termination, Suffix or Affix है। [illegible] मिश्रबन्धुओं ने "[illegible]" [illegible] [illegible] [illegible] है। क्रिया [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] बताया है। [illegible] क्रिया [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

प्रत्यय शब्दांश होता है; मूल से यह मिला कर लिखा जाता है। जैसे ता, पा, पन आदि प्रत्यय हैं। सुन्दर, बुड्ढा और लड़का शब्दों के अन्त में लगने से इनसे सुन्दरता, बुढ़ापा और लड़कपन शब्द बनते हैं।

मिश्रबन्धुओं ने कारक, प्रत्यय और Postposition शब्दों के जो विलक्षण अर्थ किये हैं उनसे तो यह आशा नहीं होती कि विभक्तियों को शब्दों से मिला कर या अलग लिखने का विचार करने के समय वे कुसंस्कार त्याग देंगे। हुआ भी ऐसा ही है। वे सदा हिन्दी पर संस्कृत के आक्रमण का स्वप्न देखा करते हैं। विभक्तियों को विकृत शब्द से मिला कर लिखने में भी उन्हें आशङ्का है कि कहीं हिन्दी संस्कृत न हो जाय। पर यह उनकी भूल है। "मुझी को" पद में "मुझ" तो "मैं" शब्द का विकृत रूप है। उसके बाद "ही" अव्यय है और अन्त में द्वितीया विभक्ति का आदेश "को" है। अब विचारना यह है कि जब "मुझ ही को" पद "मुझी को" हो गया है, तब मुझी और को में स्पेस रहना चाहिए या नहीं। जो हिन्दी भाषा की प्रकृति पहचानते हैं वे तुरत कह देंगे "नहीं।" क्योंकि जब अव्यय शब्द के विकृत रूप में मिल गया तब शब्दांश क्यों अलग लिखा जाय? "ही" अव्यय, जिसे मिश्रबन्धु प्रत्यय कहते हैं, केवल सर्वनाम और संज्ञा के विकृत रूपों और विभक्तियों के बीच में ही नहीं आता, बल्कि क्रियापदों में भी आता है, जैसे "करें ही गे" "माने ही गा" आदि। क्या इनके लिखने में "करें ही गे" "माने ही गा" लिखना उचित होगा? यदि नहीं, तो "मुझीको" लिखने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? मिश्रबन्धु इन्हें Exception नहीं मानते, "क्योंकि हिन्दी में अब तक उनका शब्दांश माने जाने का नियम स्थिर ही नहीं हुआ है।" कौन स्थिर करेगा? आपने उसे अस्वीकार किया, इसलिए वह स्थिर ही नहीं हुआ! रही Inverted Commas के अन्दर शब्द लिखने की बात, सो इसका निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है। एक अँगरेज़ी के नियम से, जिसे देख कर इस परिपाटी का अनुसरण किया गया है और एक बँगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं के अनुकरण से। अँगरेज़ी में केवल Possessive case में पद का पुराना रूप देखने में आता है। उसमें आज भी विभक्ति शब्द के साथ पाई जाती है, जैसे Robinson's Barley. यदि यह राबिन्सन शब्द अँगरेज़ी में उद्धृत किया जाता है, तो वहां सविभक्तिक पद ही उद्धृत होता है, जैसे "Englishman's" Special Cablegram, पर यदि यह न स्वीकार हो तो बँगला के "भारतमित्रे"र, मराठी के "केसरी" चा और गुजराती के "प्रजाबन्धु"नी पदों के अनुसार लिख सकते हैं। जिन भाषाओं में विभक्ति-चिह्न शब्दों से मिला कर लिखे जाते हैं उनकी पद्धति का विचार करने पर मिश्रबन्धुओं की समझ में यह बात आ सकती है अन्यथा नहीं।

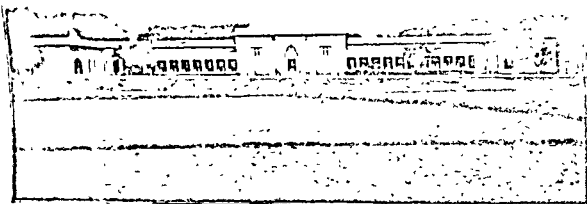
मिश्रबन्धुविनोद पढ़ने से बड़ा मनोविनोद होता है, क्योंकि लेखक पहले तो भूतों की कल्पना करते हैं और फिर उन्हें पछाड़ने का प्रशंसनीय पराक्रम दिखाते हैं। एक नहीं, अनेक स्थलों पर आपने समालोचकों की निन्दा की है। लिङ्गभेद का विचार करते समय आपने लिखा है कि "हमारे यहां के वे समालोचक, जो ईर्षाद्वेष वश आलोच्य लेख एवं लेखक का खण्डन (पीनल कोड रहते हुए!) करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, हिन्दी में प्रसिद्ध लेखकों तक की ऐसी ही भूलें खोज निकालने के लिए उत्सुक रहा करते हैं! (बड़ा अन्याय करते हैं!) वे इतना तक नहीं विचारते कि हमारे नामी लेखक-गण (नामी लेखकों से भूल का क्या सम्बन्ध?) भी इस लिङ्गभेद को नहीं समझ सकते तो इसमें किसका दोष है!!!" दोष छिपाने और समालोचकों को विरत करने के लिए लोग इस तरह की बातें कहा करते हैं, इस लिए हम इनकी उपेक्षा करके प्रकृत विषय की ओर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अस्तु, मिश्रबन्धुओं ने १४ लेखकों की लिङ्गभेद-सम्बन्धी जो भूलें बताई हैं उनमें हिन्दी-व्याकरणानुसार केवल एक भूल है। इस सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं ने जो "प्रचलित ढंग" बताया है, वही हिन्दी-व्याकरण का नियम है। परन्तु उनका यह मत सर्वथा अग्राह्य है कि, "जहां तक नपुंसक लिङ्ग वाला प्रयोग स्पष्ट और निर्विवाद रूप से अशुद्ध न ठहर जावे वहां तक उसमें लिङ्गभेद-विषयक अशुद्धियां स्थापित न करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में निर्जीव पदार्थ न पुँल्लिङ्ग है और न स्त्रीलिङ्ग, उसको किसी एक में धींगाधींगी से मान लिया जाता है।"

पाठकों को आश्चर्य्य होगा कि धींगाधींगी के समर्थक मिश्रबन्धु लिङ्ग-सम्बन्धी धींगाधींगी का विरोध करते हैं,



भजनानन्दी पण्डित शम्भुदेव पाण्डे ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



सारनाथ के प्राचीन पदार्थ-संग्रहालय (Museum) की इमारत ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

(७) आचार्य्य दुर्जयचन्द्र।

(८) आचार्य्य कृष्णसमरवज्र।

(९) तथागतरक्षित। मन्त्र के प्रभाव से ये कई देशों की भाषायें समझ सकते थे।

(१०) बोधभद्र। ये गुह्य-मन्त्र के ज्ञाता थे।

(११) कमलरक्षित। ये प्रज्ञापारमिता, गुह्य-समय और यमारितन्त्र में विशेष पारदर्शी थे। इनके विषय में एक कौतूहलप्रद कहानी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इनके समय में कोई पाँच सौ तुर्क अपने बादशाह के साथ कर्श देश से मगध लूटने के लिए आये। जब वे इस विहार को भी लूटने लगे तब कमलरक्षित को बड़ा क्रोध आया। इसलिए उन्होंने तुर्कराज पर एक पूर्णकुम्भ फेंका। इसका फल यह हुआ कि तुर्क-सेना पहले ख़ून उगलने लगी और फिर धीरे धीरे ग़ायब हो गई।

(१२) आचार्य्य रत्नाकर-शान्ति।

(१३) वागीश्वर-कीर्त्ति। ये काशी के रहनेवाले थे।

(१४) आचार्य्य नरोप।

(१५) प्रज्ञाकर-मति।

(१६) रत्नवज्र। ये काश्मीर के निवासी थे।

(१७) ज्ञान श्रीमित्र। ये गौड़ देश के रहने वाले थे।

(१८) दीपङ्कर श्रीज्ञान। ये बड़े विख्यात पण्डित थे।

(१९) महावज्रासन।

(२०) कमलकुलिश।

(२१) नरेन्द्र श्रीज्ञान।

(२२) दानरक्षित।

(२३) अभयकर गुप्त।

(२४) शुभङ्कर गुप्त।

(२५) सुनायक-श्री।

(२६) धर्माकर-शान्ति।

(२७) शाक्य-श्री। ये काश्मीर से आये थे।

प्राचीन काल के विश्वविद्यालयों में एक और पद भी बड़ा प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। इस पद के अधिकारी को द्वार-रक्षक कहते थे। इस पर वही लोग नियुक्त किये जो सर्वोत्कृष्ट विद्वान् होते थे। किसी समय शिला-विश्वविद्यालय की ऐसी महिमा थी यहाँ आकर अपनी विद्वत्ता प्रमाणित न कर था वह विद्वान् न समझा जाता था। यदि बाहरी पण्डित इस विश्वविद्यालय में प्रविष्ट लिए आता तो उसे पहले द्वार-रक्षक के सामने परिचय देना पड़ता था। द्वाररक्षक के साथ करने में जो हार जाते थे वे भीतर प्रवेश सकते थे। विक्रमशिला-विश्वविद्यालय में छ थे। एक एक पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और दो बीच में थे। ९५० ईसवी से लेकर ईसवी तक महाराज चणक के राजत्वकाल में के निम्नलिखित प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डित विक्रमशि विश्वविद्यालय के द्वाररक्षक का कार्य्य करते थे-

(१) पूर्वद्वार—आचार्य्य रत्नाकर-शान्ति।

(२) पश्चिम द्वार—आचार्य्य वागीश्वर-कीर्ति

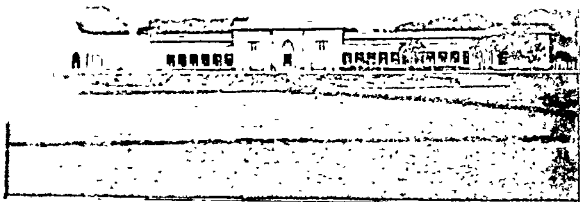
(३) उत्तर द्वार—आचार्य्य नरोप।

(४) दक्षिण द्वार—आचार्य्य प्रज्ञाकर-मति।

(५) प्रथम मध्य-द्वार—आचार्य्य रत्नवज्र।

(६) द्वितीय मध्य-द्वार—आचार्य्य ज्ञानश्री मित्र

विक्रमशिला-विश्वविद्यालय में व्याकरण, दर्श न्याय, तन्त्र आदि कई विषय पढ़ाये जाते थे। इ विश्वविद्यालय के चारों ओर की दीवारों पर कित ही विद्वान् और सच्चरित्र पुरुषों की मूर्त्तियाँ चित्रि थीं। इस विश्वविद्यालय से जो छात्र उत्तीर्ण होकर निकलते थे वे पण्डित की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किये जाते थे। राजशाही के विख्यात बौद्ध नैयायिक आचार्य्य जेतारि ने ९४० ईसवी में इस विश्वविद्यालय से राजा महापाल का स्वाक्षरित प्रशंसापत्र और पण्डित उपाधि प्राप्त की थी। ९८३ ईसवी में काश्मीर के सुप्रसिद्ध पण्डित रत्न-वज्र ने इस विश्वविद्यालय से राजा चणक का स्वाक्षरित प्रशंसापत्र और पण्डित उपाधि प्राप्त की थी।



सारनाथ के प्राचीन पदार्थ-संग्रहालय (Museum) की इमारत ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

तिब्बत के लामाओं ने विक्रमशिला में आकर वहाँ के पण्डितों की सहायता से अनेक संस्कृत-ग्रन्थ तिब्बती भाषा में अनुवादित किये थे।

१२०३ ईसवी में शाक्यश्री आचार्य्य विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। इसी समय बख़्तियार ख़िलजी ने विक्रमशिला पर आक्रमण किया और उसे नष्टभ्रष्ट कर दिया। यह हम लिख चुके हैं कि यह विश्वविद्यालय आठवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित हुआ था। इस हिसाब से यह कोई चार सौ वर्ष तक क़ायम रहा। इसके ध्वंस होने के बाद बङ्गाल और बिहार से बौद्ध धर्म अदृश्य हो गया और हिन्दू धर्म का फिर अभ्युदय हुआ। इसी समय मिथिला और नदिया में हिन्दू-विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुए।

मनोरञ्जन मिश्र।

स्वर्गीय सङ्गीत।

(४)

भुजङ्गी

मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।

१—बना लो जहाँ, हाँ, वहीं स्वर्ग है,
　　स्वयम्भूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है।
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है,
　　भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।
सुनो, स्वर्ग क्या है, सदाचार है,
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

२—नहीं स्वर्ग कोई धरा-वर्ग है,
　　जहाँ स्वर्ग के भाव हैं, स्वर्ग है।
सुखी नारकी जीव भी हो गये—
　　वहाँ धर्मराज स्वयं जो गये।
कदाचार ही रौरवागार है,
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

३—यहीं स्वर्ग चाहे बना लीजिए,
　　यहीं नारकी सृष्टियाँ कीजिए।
नहीं कौन सी साधना है यहाँ?
　　वहीं सिद्धि है साधना है जहाँ।
महा-साधना-क्षेत्र संसार है;
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

४—स्वयं क्यों न संसार निःसार हो,
　　भले ही यहाँ मृत्यु सञ्चार हो।
नहीं किन्तु विश्वेश है क्या यहाँ?
　　जहाँ दृष्ट है क्या नहीं है वहाँ?
शरीरस्थ कर्ता क्रिया ऽऽ धार है,
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

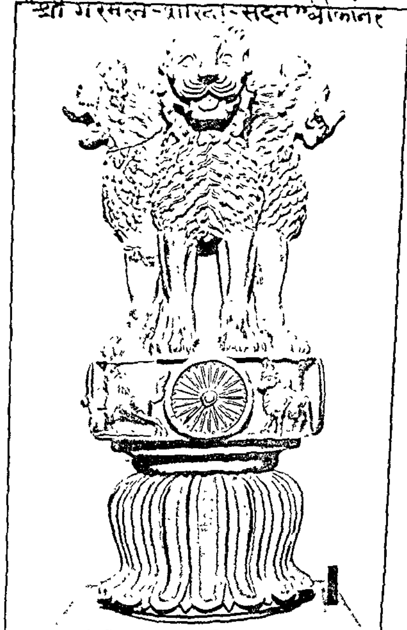
५—जहाँ ज्ञान है, कर्म्म है, भक्ति है,
　　भरी जीव में ईश्वरी शक्ति है।
जहाँ भुक्ति भ मुक्ति का धाम है,
　　जहाँ मृत्यु के बाद भी नाम है।
वहीं भव्य संसार क्या भार है?
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

६—यहीं प्रेम है, द्रोह भी है यहीं;
　　यहीं ज्ञान है, मोह भी है यहीं;
यहीं पुण्य है, पाप भी है यहीं;
　　यहीं शान्ति है, ताप भी है यहीं।
कहो, क्या तुम्हें आज स्वीकार है?
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

७—जहाँ स्वार्थ का सर्वथा त्याग है,
　　सभी के लिए एक सा भाग है।
जहाँ लोक-सेवा महा धर्म है,
　　जहाँ कामना-हीन के कर्म है,
जहाँ प्यार ही [illegible] उदार है,
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

८—यहाँ कल्पना [illegible] है हमीं,
　　कहे मन तो है हमें क्या कमी?
जहाँ शान्ति में ही सुधा [illegible] है,
　　मनुष्यत्व ही दिव्य [illegible] है।
यहाँ स्वर्ग [illegible] का सार है,
　　मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

मैथिलीशरण गुप्त



सारनाथ के अशोक-स्तम्भ का सिंह-शिखर।

(दो हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराना)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

के त्रिरत्न का निदर्शक त्रिशूल है, और कहीं
क है।

न प्राचीन वस्तुओं के विषय में एक बात
में रखने योग्य है। इनमें बुद्ध की मूर्ति कहीं
है। यद्यपि बारहवीं शताब्दी के एक लेख में
क कालीन बुद्ध-मूर्ति का उल्लेख है, तथापि
त्व-विषयक बातों से जान पड़ता है कि
क के समय में बुद्ध की मूर्तियाँ न बनी थीं।
मूर्ति की उत्पत्ति प्राचीन कन्धार देश में
या के सङ्कतराशों ने की। वहाँ से उसका
र मथुरा में हुआ। फिर अन्त में गङ्गा के तट-
नगरों में। सारनाथ में प्राप्त मूर्तियों में से
प्राचीन बुद्ध की एक प्रचण्ड मूर्ति है। यह
क के तीसरे राज्य-वर्ष में बनाई गई थी। यह
नाथ की अन्य मूर्तियों की तरह चुनार के
की नहीं है, मथुरा के लाल पत्थर की है।
मूर्ति का दान करने वाले बल नाम के भिक्षु
ाम मथुरा में भी एक मूर्ति पर खुदा हुआ
आता है। इन प्राचीन मूर्तियों पर पत्थर का
मिलता है। इससे पुरातत्वज्ञों का अनुमान
उस समय मूर्तियों के लिए मन्दिर नहीं
जाते थे। सारनाथ के लेखों में मन्दिर-
ो सबसे प्राचीन उल्लेख गुप्त कालीन लेखों
या जाता है। मूर्तियों के पत्र पार प्रभा-
के में ग्रीक कला की झलक दिखाई देती है।
गुप्त-काल की बनी हुई मूर्तियाँ सर्वोत्तम हैं।
पाश्चात्य कारीगरी की झलक बिलकुल नहीं।
से कुछ मूर्तियों का गम्भीर भाव बड़ा ही
ारी है।

मूर्ति बनाने की प्रथा का आरम्भ होते ही अन्य
त्वों तथा अन्य देवताओं की भी मूर्तियाँ
बनने लगीं। सारनाथ में ही ऐसी अनेक
मूर्तियाँ पाई गई हैं। इनमें अवलोकितेश्वर, मैत्रेय,
, वसुधारा, वज्रवाराही इत्यादि की मूर्तियाँ
उल्लेख योग्य हैं। मूर्तियों के सिवा बुद्ध-विषयक
दृश्यों के चित्र भी खुदे हुए पाये गये हैं।

इन मूर्तियों और अन्यान्य चित्रों के सिवा
कई वस्तुयें भी मिली हैं। इनमें बड़े बड़े मट
पानी के घड़े, प्याले, सिल-लोढ़े और ओखली-मूस
आदि भी हैं। इन सब का वर्णन यहाँ नहीं
सकता।

सारनाथ का सङ्ग्रहालय सचमुच ही प्र
लोकनीय है।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

हिन्दुस्तानी सिपाहियों की वीरता।

(१)



आज कल हमारे हिन्दुस्तानी सिपाही ब्रिटिश राज्य की ओर से केवल फ्रान्स और बेलजियम के रणक्षेत्र में ही नहीं, अन्य कई देशों तथा महाद्वीपों में भी अपनी राजभक्ति और वीरता का परिचय दे रहे हैं। कुछ तो मिस्र देश में स्वेज़ के नहर की रक्षा कर रहे हैं और कुछ पूर्वी आफ्रिका में वहाँ के जर्मन प्रान्त पर हमला कर रहे हैं। चीन में एक जगह कियाउचाउ है। वहाँ जर्मनी ने एक मज़बूत किला बनाया था। इसी जंग में हमारे कुछ सिपाहियों ने जापान को बहुत मदद दी। कुछ हिन्दुस्तानी फ़ौज तुर्की के मेसोपोटेमिया अर्थात् इराक अरब प्रान्त में तुर्कों से कई बार लड़ चुकी है और उन्हें अच्छी तरह हरा भी चुकी है। इस प्रान्त की लड़ाई में [illegible] सिपाहियों ने तथा राजपूताने [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

सारनाथ।

(...gue of Museum of Archaeology at ...arnath—नामक पुस्तक के आधार पर)

भगवान् बुद्ध के चरित से चार स्थानों का विशेष सम्बन्ध है। इसी कारण बौद्धधर्मावलम्बी इन स्थानों को पवित्र मान कर इनका दर्शन करते हैं। इनमें से पहले स्थान में तो भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। ... उन्हें ज्ञान-प्राप्ति हुई थी। तीसरे में उन्होंने ...हल धर्मोपदेश किया था और चौथे में ...त्यु हुई थी। ये चारों स्थान लुम्बिनि-ग्राम, ...ा, सारनाथ और कुशीनगर हैं। सारनाथ ...न् बुद्ध ने अपने धर्म का उपदेश पहले ...ौण्डिन्य नामक शिष्य को दिया। इसी ... धर्मोपदेश को बौद्ध लोग आलङ्कारिक "धर्मचक्र-प्रवर्तन" कहते हैं। इस धर्मचक्र- ...का काल ईसा के पूर्व ५२८ वर्ष माना ...।

...नाथ का प्राचीन नाम "मृगदाव" (...न) था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् शीघ्र ...यात्रा-स्थान हो गया। परन्तु उसके लगभग ...क बाद तक इसके विषय में कोई ऐतिहा- ...ख नहीं पाया जाता। सारनाथ के प्राचीन ... सबसे महत्त्व का तथा सबसे पुराना चिह्न ...म है। उसकी स्थापना २५० वर्ष ईसा के ...म्राट् अशोक ने की थी। शोक का विषय ...ह स्तम्भ विच्छिन्न हो गया है। अपनी मूल- ... स्तम्भ का केवल उतना ही भाग है जितना ...विच्छेद के समय भूमि में गड़ा रह गया था। ...ख में सुख की बात यह है कि इस स्तम्भ ...ड़ तथा इसके ऊपर का सिंह-शिखर इसके ...ी मिल गया है। इस स्तम्भ पर सम्राट् ... का एक लेख वर्तमान है। लेख में धर्मचक्र- ... का कोई उल्लेख नहीं है, केवल संघभेद करने वाले भिक्षुगणों को श्वेत वस्त्र पहना कर विहार से निकाल देने की आज्ञा है।

अशोक-काल का नहीं तो कम से कम मौर्य-काल का एक चिह्न यहाँ पर और है। यह ईंटों का एक स्तूप है। परन्तु सन् १७९३-९४ में काशी-नरेश चेतसिंह के मन्त्री जगत्सिंह ने काशी का जगतगञ्ज बनवाते समय इसका इतना मसाला खोद लिया कि इस समय इसका अत्यल्प ही अंश बाक़ी रह गया है। इसी समय का तीसरा चिह्न पत्थर का एक कठड़ा है। इसके कुछ खम्भे ओरटेल साहब को मिले थे। इनकी कारीगरी और सफ़ाई से अनुमान होता है कि कोई असाधारण वस्तु—कदाचित् धर्मचक्र-प्रवर्तन-स्थान—की रक्षा के लिए यह कठड़ा बनवाया गया होगा। शुङ्ग राजाओं के समय का भी ईसा के पूर्व १८४ से ७२ तक का, एक कठड़ा यहाँ मिला है। इसके खम्भे अशोकस्तम्भ के आस पास पाये गये हैं। इन पर बहुत से लेख हैं। उनमें खम्भे बनवाने वालों के नाम हैं। इससे जान पड़ता है कि यह काम चन्दे से किया गया होगा। इन्हीं में से दो खम्भों पर पुराने लेखों के साथ दो गुप्तकालीन लेख भी हैं। इनसे पता चलता है कि ये दोनों स्तम्भ भगवान् बुद्ध की मूलगन्धकुटी (प्रधान मन्दिर) में दीपस्तम्भ का काम देने के लिए खड़े किये गये थे। बहुत सम्भव है कि यह मूलगन्धकुटी वही प्रधान मन्दिर हो जिसका वर्णन ह्वेनसांग नामक चीनी प्रवासी ने अपनी मृगदाव-यात्रा में किया है। यह प्रवासी लिखता है— "इस मन्दिर में एक पूर्णपुरुषाकृति पीतल की मूर्ति भगवान् बुद्धदेव की है। वह धर्मचक्र-प्रवर्तन कर रही है। मन्दिर की नैऋत्य दिशा में पत्थर का एक स्तूप है और स्तूप के सामने ७० फ़ीट ऊँचा पत्थर का एक स्तम्भ है। यह बहुत चिकना है। उस पर प्रार्थना करने वालों के अनुकूल और प्रतिकूल चिह्न दिखाई देते हैं"।

यह ध्यान में रखने योग्य है कि यह चीनी प्रवासी न तो अशोक के लेख का ही उल्लेख करता...

है और न इस स्तम्भ के सर्वोत्तम शिखर का ही। आज जो स्तम्भ विद्यमान है उसकी ऊँचाई भी ७० फ़ीट नहीं। अतः ह्वेनसांग के वर्णित मन्दिर और स्तम्भ कोई दूसरे ही होंगे। परन्तु वोगेल साहब, ओरटेल साहब के मत का अनुसरण करते हैं। वे कहते हैं कि इस चीनी-प्रवासी की दृष्टि शिल्पकला और पुरातत्त्व की ओर न थी। इस कारण उसके वर्णन में अशोक के लेख और सिंह-शिखर का न पाया जाना अस्वाभाविक नहीं। यह भी सम्भव है कि ईसा की छठी शताब्दी के आरम्भ में सारनाथ की इमारतें हूणों की चढ़ाइयों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गई हों। इतने दिनों में वहाँ की इमारतों का कई बार नाश हुआ होगा। पर हर समय किसी न किसी बुद्ध-भक्त ने फिर से उन्हें दुरुस्त कराया होगा।

इस प्रकार के एक जीर्णोद्धार के विषय में एक लेख पाया भी गया है। यह लेख बुद्ध की एक मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ है। लेख यों है —

ॐ नमो बुद्धाय। वाराणसीसरस्या गुरवश्रीवामराशि पादाब्जम्। आराध्यनमितभूपति-शिरोरुहैः शैवलाधीशम्॥ ईशानचित्रघण्टादिकीर्तिरत्नशतानि यौ। गौडाधिपो महीपाल काश्यां श्रीमानकार(यत्)॥ सफलीकृतपाण्डित्यौ बोधाव-विनिवर्तिनौ। तौ धर्मराजिकां साङ्गं धर्मचक्रं पुनर्नवम्॥ कृतवन्तौ च नवीनामष्टमहास्थानशैलगन्धकुटीम्। एतां श्रीस्थिरपालो वसन्तपालोऽनुजः श्रीमान्॥ संवत् १०८३ पौष दिने ११॥

लेख का सार यह है कि गौड़ाधिपति महीपाल के राज्य में स्थिरपाल और वसन्तपाल नामक दो भाइयों ने धर्मराजिका और धर्मचक्र नाम की दो इमारतों की मरम्मत करवाई और आठ बड़े स्थानों के विषय में एक शैल-मन्दिर बनवाया।

बहुत सम्भव है कि सन् १०१७ अर्थात् संवत् १०७४ में जब महमूद ग़ज़नवी ने काशी जीता तब इन स्थानों का नाश हुआ हो। इसके ९ वर्ष बाद इन्हें दोनों भाइयों ने इन्हें दुरुस्त कराया।

धर्मचक्र मृगदाव के प्रधान मठ का नाम था। इसका उल्लेख एक और प्रशस्ति में भी पाया जाता है। इससे पता चलता है कि क़न्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी ने भगवान् बुद्ध की मूर्ति, जैसी वह उस समय में थी, दुरुस्त की गई और एक नया बनवा कर वह उसमें रक्खी गई। सन् १[illegible] जब मुसलमानों का राज्य उत्तरी भारत में जम गया और काशी-नरेश जयचन्द्र [illegible] गया तब मुसलमानों की मूर्ति-भङ्ग-तृष्णा [illegible] स्थान बच गया।

इसके पश्चात् यह स्थान यद्यपि स्मृति[illegible] रह गया तथापि मुग़ल-सम्राट् हुमायूँ एक [illegible] यहाँ आकर ठहरा। उसकी मृत्यु के [illegible] १५८८ में सम्राट् अकबर ने इस बात के स्मरण [illegible] यहाँ ईंटों का एक अठकोना मीनार बनवा[illegible]।

खुदाई का काम।

मुसलमानों के द्वारा नष्ट किये जाने के [illegible]न्तर इस स्थान में केवल तीन ही भग्न [illegible] रहे [illegible] चौखण्डी स्तूप, जिस पर हुमायूँ की मीनार [illegible] धमेख (धमेशा) स्तूप और मुख्य स्तूप। [illegible] ने जब यहाँ से [illegible] बनवाने के लिए मसाला [illegible] जाना चाहा तब उसने मुख्य स्तूप पर ही हमला किया। कारण यह था कि इस स्तूप पर न [illegible] कोई मीनार था, न धमेख स्तूप जैसा [illegible] शिला-खण्डों से यह मढ़ा ही हुआ था। [illegible] जगत्सिंह ने मुख्य स्तूप पर ही हाथ मारा और वहाँ से मसाला निकालना शुरू किया। जगत्[illegible] जैसा बड़ा बनाने में इसका सारा मसाला [illegible] गया। [illegible] यह स्तूप [illegible] डाला गया। पर, [illegible] यहाँ पर, [illegible] से लगभग २८ हाथ नीचे, दो [illegible]—एक [illegible] का और एक [illegible] का—मिला। इनमें [illegible] रक्खा हुआ था। [illegible] मनुष्य की [illegible] हड्डियाँ [illegible] [illegible] १७९४ [illegible] के हुई। [illegible] [illegible] मूर्ति [illegible] गई। [illegible]

तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर जोनाथन डंकन ने अनुमान किया कि ये हड्डियाँ किसी बुद्ध-भक्त की हैं। उन्होंने इस बात की सूचना बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी को दी। तभी से प्राचीन बौद्ध-स्थान के नाम से सारनाथ की प्रसिद्धि हुई।

इस आविष्कार से बहुत से लोगों का ध्यान सारनाथ की ओर आकृष्ट हुआ और कई लोगों ने यहाँ खुदाई शुरू की। पर इस खुदाई में स्वार्थ की मात्रा अधिक थी। कहते हैं, सन् १८१५ में, कर्नेल मेकञ्ज़ी ने यहाँ कुछ खुदाई कराई, पर उसका कुछ हाल ज्ञात नहीं। पुरातत्त्व-विभाग के नियमानुसार दिसम्बर १८३४ से जनवरी १८३६ तक कनिंघम साहब ने पहले पहल यहाँ खुदाई की। धमेख-स्तूप की वायव्य दिशा में आपको, अपने खुदवाये हुए एक मन्दिर और मठ के पास, एक कोठरी में बुद्ध की कोई ६० मूर्तियाँ इकट्ठी मिलीं। साथ ही और भी कुछ प्राचीन चिह्न मिले। इनमें से कुछ पर गुप्त-लिपि में खुदे हुए दान-लेख हैं। इससे अनुमान होता है कि हूणों के आक्रमण के समय (ईसवी छठी शताब्दी के आरम्भ में) रक्षा के लिए ये मूर्तियाँ यहाँ रक्खी गई होंगी। ये मूर्तियाँ एशियाटिक सोसाइटी को दी गईं और इस समय कलकत्ते के सङ्ग्रहालय में वर्तमान हैं। इनके सिवा जो और कई मूर्तियाँ और वस्तुयें पाई गईं उनमें से बहुत सी वरुणा के पुल बाँधने में लगा दी गईं।

इसके बाद इञ्जिनियर किट्टो, जज टामस, प्रोफ़ेसर हाल, डाकृर बटलर, मिस्टर हार्न और मिस्टर कार्नेक ने यहाँ बहुत कुछ खोज की। परन्तु उनकी पाई हुई वस्तुओं में से बहुत सी लापता हैं। यद्यपि गवर्नमेंट ने सन् १८५६ में सारनाथ की ज़मीन अपने क़ब्ज़े में कर ली थी तथापि सन् १९०० तक इन प्राचीन वस्तुओं की रक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न हो सका। इसके बाद सारनाथ तक एक नई सड़क बनाते समय ओरटेल साहब इञ्जिनियर को बुद्ध की एक सुन्दर और अखण्डित मूर्ति मिली। इससे उत्साहित होकर पुरातत्त्व-विभाग की अनुज्ञा और सहायता से ओरटेल साहब ने डिस्ट्रिक् इञ्जिनियर रायबहादुर बी० बी० चक्रवर्ती के साथ, सन् १९०४–१९०५ में, खुदाई शुरू की। जगत्सिंह के नष्ट किये हुए स्तूप के उत्तर में जो टीला था उस पर ओरटेल साहब ने ध्यान दिया। किट्टो साहब का अनुमान था कि यहाँ भी एक स्तूप होगा। पर खोदने से ज्ञात हुआ कि वहाँ पर सारनाथ का पुराना मुख्य मन्दिर था। उसी के पीछे अशोक-स्तम्भ और उसका सिंह-शिखर पाया गया। इसके सिवा कई मूर्तियाँ और लेख और भी पाये गये। उस साल की खुदाई में यहाँ ४१ लेख और ४७६ अवशिष्ट चिह्न मिले।

ओरटेल साहब की बदली आगरे को हो ज[ाने] से अगले साल यह काम बन्द रहा। पर स[न्] १९०७ में पुरातत्त्व-विभाग के डायरेकृर जनर[ल] मार्शल साहब ने कई और महाशयों की सहायत[ा] से फिर काम शुरू किया। इस खुदाई में कुशा[न] और गुप्त-काल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक [के] अवशेष चिह्न पाये गये और यह बात सिद्ध हो ग[ई] कि गुप्त-काल में धर्मचक्र अच्छी स्थिति में था वह बारहवीं शताब्दी के मध्य तक भी वर्तमा[न] था। जब ऐसी बहुमूल्य वस्तुयें अधिकता से यह पाई गईं तब यहाँ एक सङ्ग्रहालय की इमारत बनवाना निश्चय हुआ। तदनुसार सन् १९१[०] में एक इमारत बन कर तैयार हो गई। यह इमारत बौद्धविहार के नमूने पर बनाई गई है।

प्राप्त पदार्थ।

प्राप्त हुए पदार्थों में सबसे प्रसिद्ध अशोक-स्तम्भ का सिंह-शिखर है। इस संख्या में उसका चित्र प्रकाशित किया जाता है। उसे देख कर उसकी कारीगरी का अन्दाज़ा पाठक स्वयं कर सकेंगे। मौर्य्य और शुङ्ग-काल के अन्य अवशिष्ट पदार्थों का उल्लेख आरम्भ में ही हो चुका है। इसके सिवा कुछ खम्भे भी पाये गये हैं। ये आन्ध्रकाल में बने हुए कटड़ों के हैं। इन पर कहीं धर्म, सङ्घ और

बुद्ध के त्रिरत्न का निदर्शक त्रिशूल है, और कहीं धर्मचक्र है।

इन प्राचीन वस्तुओं के विषय में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। इनमें बुद्ध की मूर्ति कहीं नहीं है। यद्यपि बारहवीं शताब्दी के एक लेख में अशोक-कालीन बुद्ध-मूर्ति का उल्लेख है, तथापि पुरातत्त्व-विषयक बातों से जान पड़ता है कि अशोक के समय में बुद्ध की मूर्तियाँ न बनी थीं। बुद्ध मूर्ति की उत्पत्ति प्राचीन कन्धार देश में ग्रीसिया के सङ्कतराशों ने की। वहाँ से उसका प्रचार मथुरा में हुआ। फिर अन्त में गङ्गा के तटवर्ती नगरों में। सारनाथ में प्राप्त मूर्तियों में से सबसे प्राचीन बुद्ध की एक प्रचण्ड मूर्ति है। यह कनिष्क के तीसरे राज्य-वर्ष में बनाई गई थी। यह सारनाथ की अन्य मूर्तियों की तरह चुनार के पत्थर की नहीं है, मथुरा के लाल पत्थर की है। इस मूर्ति का दान करने वाले बल नाम के भिक्षु का नाम मथुरा में भी एक मूर्ति पर खुदा हुआ पाया जाता है। इन प्राचीन मूर्तियों पर पत्थर का [illegible] मिलता है। इससे पुरातत्त्वज्ञों का अनुमान है कि उस समय मूर्तियों के लिए मन्दिर नहीं बनाये जाते थे। सारनाथ के लेखों में मन्दिर-सम्बन्धी सबसे प्राचीन उल्लेख गुप्त-कालीन लेखों में पाया जाता है। मूर्तियों के वस्त्र और प्रभा-मण्डल में ग्रीक कला की झलक दिखाई देती है। परन्तु गुप्त-काल की बनी हुई मूर्तियाँ सर्वोत्तम हैं। इनमें पाश्चात्य कारीगरी की झलक बिलकुल नहीं। इनमें से कुछ मूर्तियों का गम्भीर भाव बड़ा ही हृदयहारी है।

मूर्ति बनाने की प्रथा का आरम्भ होते [illegible] बोधिसत्वों तथा अन्य [illegible] बनाई जाने लगीं। [illegible] मूर्तियाँ पाई गई हैं। [illegible] मञ्जुल, वसुधारा, [illegible] देखने लायक़ हैं। मू[illegible] [illegible] प्रसङ्गों के चित्र [illegible]

इन मूर्तियों और अन्यान्य चित्रों के सिवा कई वस्तुयें भी मिली हैं। इनमें बड़े बड़े पानी के घड़े, प्याले, सिल-लोढ़े और ओखली आदि भी हैं। इन सब का वर्णन यहाँ नहीं [illegible] सकता।

सारनाथ का सङ्ग्रहालय सचमुच ही अवलोकनीय है।

हरि रामचन्द्र दिवे[illegible]

हिन्दुस्तानी सिपाहियों की वीरता

(३)



आज कल हमारे हिन्दुस्तानी सिपाही [illegible] राज्य की ओर से केवल फ्रान्स और बेलजियम के रणक्षेत्र में ही नहीं अन्य कई देशों तथा महाद्वीपों में अपनी राजभक्ति और वीरता का परिचय दे रहे हैं। कुछ तो मिस्र देश में स्वेज़ के नहर की रक्षा कर रहे हैं और कुछ पूर्वी आफ्रिका में वहाँ के जर्मन प्रान्त पर हमला कर रहे हैं। चीन में एक जगह कियाऊचाऊ है। वहाँ जर्मनी ने एक मज़बूत क़िला बनाया था। उसे लेने में हमारे कुछ सिपाहियों ने जापान को बहुत मदद दी। कुछ हिन्दुस्तानी फ़ौज तुर्की के मसोपोटेमिया अर्थात् इराक़-अरब प्रान्त में तुर्कों से कई बार टक्कर ले चुकी है और उन्हें अच्छी तरह हरा भी चुकी है। इस प्रान्त की लड़ाई में मराठे सिपाहियों ने तथा राजपूताना निवासी राजपूत गूजर और मेरे जाति के योद्धाओं ने अपनी बहादुरी का अच्छा परिचय दिया है। इनके साथ ही पोर्ट [illegible] के पञ्जाबी, [illegible] निवासी क्षत्रिय सिपाही [illegible] रहे हैं।

[illegible] की लम[illegible] [illegible] के [illegible] हिन्दुस्तानी [illegible] आ चुके हैं [illegible] हो रहा है।

तुर्कों की राजधानी कुस्तुनतुनिया (स्तम्बोल) जाने के लिए दरेदानियाल के मुहाने से जहाज़ पर जाना पड़ता है। मुहाना एक मील से लेकर दो तीन मील तक चौड़ा है। उसके दाहनी तरफ़ एशिया महाद्वीप है और बाईं तरफ़ योरप महाद्वीप का एक छोटा सा प्रायद्वीप। इस प्रायद्वीप को गेलीपोली कहते हैं। मुहाने के दोनों तरफ़ तुर्क लोगों का राज्य है। मुहाने से होकर जो सामुद्रिक मार्ग है उसकी रक्षा के लिए दोनों तरफ़ तट पर क़िले बने हुए हैं। जर्मन एन्जीनियरों की सहायता से वे ऐसे मज़बूत बना दिये गये हैं कि उस रास्ते न जल-सेना जा सकती है और न कोई जहाज़। गत फाल्गुन मास में इन क़िलों को तोड़ कर अँगरेज़ी और फ़रासीसी बेड़ों ने भीतर घुसने का प्रयत्न किया था। परन्तु उन्हें नुक़सान उठाना पड़ा। इस कारण यह उद्योग छोड़ दिया गया। सलाह यह ठहरी कि गेलीपोली के प्रायद्वीप में अँगरेज़ी फ़ौज उतारी जावे और वह थलमार्ग से इन क़िलों को लेने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार फ़रासीसी सेना पीछे से जाकर एशिया महाद्वीप की तरफ़ के समुद्र-तटवर्ती क़िलों को जा घेरे। थलसेना को समुद्र मार्ग से ले जा कर शत्रुओं की आंखों के सामने ही सुरक्षित उतार देना बड़ा कठिन, प्रायः असम्भव, कार्य समझा जाता है। पर अँगरेज़ी और फ़रासीसी जलसेना ने अनुपम उद्योग और युद्ध-कौशल दिखाया। साथ ही थलसेना के अफ़सरों ने ऐसी कार्य्य कुशलता और सिपाहियों ने ऐसी अतुल वीरता प्रदर्शित की कि अँगरेज़ी और फ़रासीसी थलसेना अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों पर कुशलपूर्वक उतर गई।

अँगरेज़ी सेना में विशेष करके आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड से आये हुए सैनिक थे। उन्हीं के साथ एक या दो पञ्जाबी पलटनें, एक या दो गोरखा पलटनें और एक या दो पहाड़ी तोपख़ाने भी थे। [illegible] तथा पायनियरों की जो फ़ेहरिस्तें समय समय पर प्रगट होती हैं उनसे यह भी मालूम होता है कि इस बेड़े में संयुक्त प्रान्त के थोड़े से प्राइवेट और अफ़सर भी हैं। गेलीपोली में उतरे हुए गोरे तथा हिन्दुस्तानी सैनिकों को बड़ी ही कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी है जैसा कि फ़्रान्स और बेलजियम में हो रही है। इसका एक उदाहरण सुनिए। इसका सम्बन्ध १४ नंबर की सिक्ख पलटन से है।

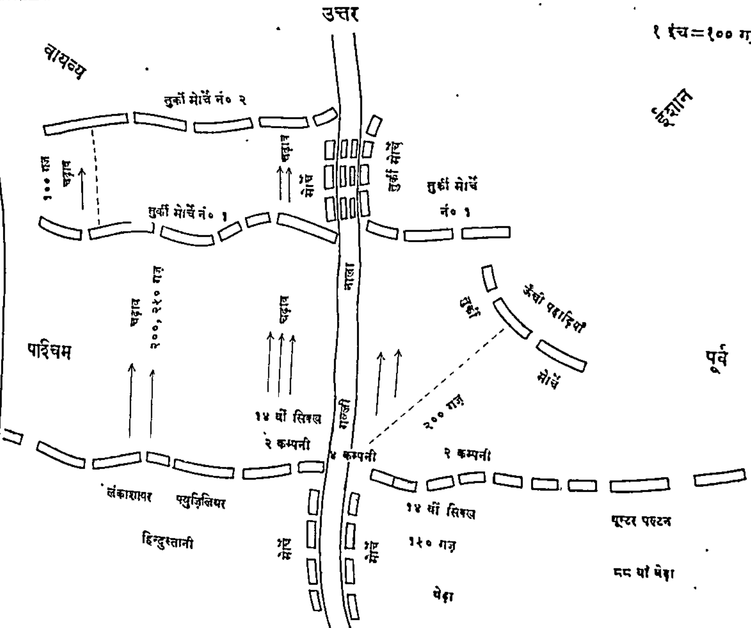
इस पलटन में विशेष करके फ़ीरोज़पुर ज़िले के जाट-सिक्ख भरती होते हैं। इन लोगों ने जो वीरता चौथी और पांचवीं जून १९१५ को 'गली' नाले की लड़ाई में दिखलाई है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस भूमि ने भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, भीम और अर्जुन के सदृश वीर कई हज़ार वर्ष पूर्व उत्पन्न किये थे, उसमें कुछ कुछ वैसे ही वीर पुरुष पैदा करने की शक्ति अब भी विद्यमान है

चौथी जून को पूर्वोक्त पलटन की खाइयां, गली नाले को काट कर, उसके आरपार पूर्व-पश्चिम की ओर निकल गई थी। इस पलटन के दाहिनी ओर ८८ नंबर बेड़े की एक गोरा पलटन थी, जिसका नाम वूस्टर पलटन है; उसके बाईं ओर एक और गोरा पलटन थी, जिसका नाम लंकाशायर फ्यूज़िलियर्स है और जो हिन्दुस्तानी बेड़े में शामिल थी। हिन्दुस्तानी बेड़ा बाईं तरफ़ और गोरों का ८८ नंबर बेड़ा दाहिनी तरफ़ था। हिन्दुस्तानी बेड़े के दाहिने सिरे पर सिक्ख पलटन थी; उसका स्थान नाले के पार था। इसके मोर्चे नाले के पूर्व १२० गज़ तक फैल गये थे और वहीं वूस्टर पलटन के मोर्चे शुरू हो जाते थे। इसी नाले के पश्चिम में, कुछ दूर तक, सिक्खों की खाइयां थीं। तुर्कों की खाइयां स

२०० से

दोनों किनारे चालीस पचास फुट ऊँचे और बहुत ढालू थे, कहीं कहीं तो ये दीवार के समान सीधे थे। इस कारण दोनों ओर के आदमियों को पीछे आने जाने के लिए एक ढका हुआ रास्ता मिल गया था। पीछे से उनका आना जाना भी उसी रास्ते होता था। जितनी सुगमता से वे पीछे जा सकते थे उतनी ही सुगमता से वे उसी रास्ते आगे भी जा सकते थे। इस कारण दुश्मन ने और सिक्ख सेना ने भी अपनी अपनी तरफ़ के नालों के दोनों किनारों के ऊपर गुफ़ायें और गढ़े खोद कर उनके भीतर मशीन-गनें और सिपाहियों को छिपा रक्खा था। इस दशा में यदि दुश्मन के सिपाही नाले के रास्ते घुस आने का प्रयत्न करें तो दोनों ओर से तथा ऊपर के कगारों से भी दोनों ओर इतनी गोलियों की मार पड़े कि उनमें से कोई भी लौट कर जीता न आ सके; आगे बढ़ने की तो बात ही न कहिए।

जहाँ पर हिन्दुस्तानी बेड़ा था उसके सामने का ज़मीन आगे धीरे धीरे ऊँचा होता गई था। इस कारण उसके सामने ही


उत्तर
१ इंच=१०० गज़.
वायव्य
ईशान
तुर्की मोर्चे नं० २
तुर्की मोर्चे नं० १
तुर्की मोर्चे
तुर्की मोर्चे
नं० १
१०० गज़
चढ़ाव
चढ़ाव
मोर्चे
पश्चिम
चढ़ाव
२००, २२० गज़
चढ़ाव
नाला
तुर्की
ऊँची पहाड़ियाँ
मोर्चे
पूर्व
२०० गज़
१४ वीं सिक्ख
२ कम्पनी
नाली
४ कम्पनी
२ कम्पनी
लंकाशायर
फ्युज़िलियर
हिन्दुस्तानी
मोर्चे
मोर्चे
१४ वीं सिक्ख
१२० गज़
बेड़ा
पूरर पलटन
८८ वीं बेड़ा

फ़ौज ने एक के पीछे एक, ऐसी दो क़तारें खाइयों की बनवा दी थीं। एक क़तार तो अन्दाज़न २००—२५० गज़ की दूरी पर और दूसरी ३००—३५० गज़ की दूरी पर थी। इस कारण उस बेड़े के सिपाहियों पर दुहरी मार पड़ती थी। वे बेचारे थे नीची जमीन पर। इस कारण वे खाइयों की दो क़तारें न बना सकते थे।

यह हाल तो था नाले के पश्चिम ओर का। अब नाले के पूर्व ओर का हाल सुनिए। वहाँ सिक्ख पल्टन की दो कम्पनियाँ थीं। उस जगह २०० गज़ की दूरी पर पूर्व से उत्तर की तरफ़ गई हुई एक पहाड़ी थी। उस पहाड़ी पर भी तुर्क लोगों ने खाइयाँ खोद कर मोर्चे तैयार कर लिये थे। सामने तो मोर्चे थे ही। इस दशा में नाले के पूर्व की ओर से २०० गज़ तक बढ़ने वालों पर दुतरफ़ा क्या तितरफ़ा मार पड़ती थी।

इस विषय का नक़्शा देखिए—

चौथी जून के हमले में चौदहवीं पल्टन को दो टुकड़ों में बँट जाने का हुक्म मिला। पहली टुकड़ी को यह काम दिया गया कि नाले के कगारों को दबा कर ८८ नम्बर के बेड़े और हिन्दुस्तानी बेड़े से अपनी लैन मिला लें। फिर सामने के मोर्चों पर हमला करें। दूसरी टुकड़ी को यह हुक्म हुआ कि नाले के भीतर से कुछ दूर पीछे घुस जाओ। फिर, उसके दोनों किनारों पर तुर्कों की जो खाइयाँ हैं उन पर क़ब्ज़ा कर लो। यह करके उन लोगों के दूसरे नम्बर के मोर्चों के पीछे हो जाओ।

गैलीपोली की अँगरेज़ी फ़ौज के प्रधान सेनापति ने जो वर्णन इस युद्ध का भेजा है वह एक प्रकार से कुछ अस्पष्ट है। तथापि अनुमान से मालूम होता है कि सिक्खों की दो कम्पनियाँ नाले की दाहनी तरफ़ से, दो बाईं तरफ़ से और एक नाले के भीतर से, कुछ दूर पीछे बढ़ीं। ८८ नम्बर बेड़े का धावा सफल हुआ। उसका काम औरों की अपेक्षा सुगम भी था। उसकी बाईं तरफ़ और बढ़ी की दाहनी तरफ़ जो दो सिक्ख-कम्पनियाँ बढ़ रही थीं उनका काम अधिक कठिन था। कारण यह कि उन पर तीन तरफ़ से मार पड़ती थी। एक तो सामने से, दूसरे दाहने पहलू की [illegible] से। इसके सिवा [illegible] जो दूसरे मोर्चे [illegible] पड़ते थे। इस [illegible] [illegible]

छूटती थी। इस प्रकार तीनों ओर से गोलियों की मार खाते हुए आगे बढ़ना मानो सीधे सिंह के [मुँह में] जाना था, और सिंह भी अपना जबड़ा खोले हुए खड़ा देख रहा था। परन्तु १४ नम्बर की पल्टन के "सिंह" हुए चले ही गये। उन पर तुर्कों ने गोलियों की छोड़ना आरम्भ कर दिया। पर सिक्ख लोग डरने नहीं। वे शत्रुओं के मोर्चों तक पहुँच ही गये। जो रास्ते में गिर गये उन पर उन्होंने नज़र ही न डाली। हुए वे तुर्कों की सामनेवाली खाइयों में घुस पड़े और स[ंगीनों के] द्वारा शत्रुओं को मार काट ढकेल बाहर किया। खाइयों [पर] उन्होंने अपना क़ब्ज़ा कर लिया। रात भर वे उनकी [रक्षा] करते रहे। तुर्कों ने भी विकट शौर्य दिखलाया। परन्तु गोविन्दसिंह के शिष्यों ने उनके दाँत खट्टे कर [दिये]। उनकी दाहनी ओर से जो गोरा पल्टन बढ़ी थी उसका भाग पहाड़ियों के पश्चिम में था। परन्तु वे लोग कगारों [की] आड़ में थे। इस कारण उन्हें बहुत कम हानि पहुँची।

सिक्खों की ये दो कम्पनियाँ ५ तारीख़ को [वापस] बुलाई गईं। उनकी जीती हुई खाइयों की रक्षा के [लिए] और फ़ौज भेजी गई। हाज़िरी ली गई तो मालूम हुआ केवल एक अँगरेज़ और एक हिन्दुस्तानी (अर्थात् सि[क्ख]) अफ़सर और कुल १० सिपाही बच रहे हैं।

अब इन दो कम्पनियों की वीरता का हाल [illegible] जो नाले के बाईं ओर के कगारों [illegible] [illegible] बढ़ी थीं। इनका काम यह था कि हिन्दुस्तानी बेड़े के सा[थ] साथ आगे बढ़ें और कगारों वाले तुर्की मोर्चों [पर] हमला करके उन्हें वहाँ से निकाल बाहर करें। इस [illegible] का काम भी बहुत कठिन था। इस पर सामने से [illegible] मार पड़ती थी। [illegible] गज़ का मैदान पार करना भी [illegible] कठिन [illegible] था। फिर उस तरफ़ [illegible] पहाड़ था। [illegible] हुआ कि यह [illegible] [illegible] नम्बर की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पल्टन को [illegible] [illegible] पड़ा। परन्तु सिक्ख [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अब ज़रा उन लोगों का हाल सुनिए जो कुछ समय पीछे नाले के भीतर से घुसे थे। उनका आगे बढ़ना था कि दोनों किनारों के गढ़ों और गुफाओं से बन्दूकों तथा मशीन गनों की बाढ़ पर बाढ़ आने लगी । पहली ही बाढ़ से चौथाई आदमी गिर गये। पर बचे हुए सिक्ख ज़रा भी बिना हिचके झपटते हुए आगे बढ़े। परन्तु बाईं तरफ़ के बेड़े का हमला निष्फल हो जाने के कारण तुर्क लोगों को अपनी गुफायें छोड़ने की आवश्यकता न पड़ी। वे लोग सिक्खों पर बराबर वार करते ही रहे। तो भी असीम पराक्रमपूर्वक, इधर उधर कुछ ज़रा सी आड़ के सहारे, सिक्खों ने उस जगह पर क़ब्ज़ा कर ही लिया। उन्होंने अपनी दो मशीन गनें चढ़ा दीं और आस पास के शत्रुओं से लड़ते रहे। इस प्रकार लड़ते भिड़ते उन्होंने रात काटी। सुबह होते ही तुर्कों ने कगारों के ऊपर से उन पर बम्ब छोड़ना शुरू किया। इसके जवाब में सिक्खों के पास कुछ भी न था। उस समय चार कम्पनियों में से कमान्डिङ्ग अफ़सर, एक डाक्टर और केवल ४७ सिपाही रह गये थे। लाचार होकर उन्हें लौटना पड़ा।

हमले के आरम्भ में इस पल्टन में १५ अँगरेज़ अफ़सर, १४ सिक्ख अफ़सर और ५१४ सिपाही थे। दूसरे दिन सबेरे जब हाज़िरी ली गई तब केवल ३ अँगरेज़ और ३ सिक्ख अफ़सर और १३४ सिपाही जीते मिले। बाक़ी या तो मारे गये या घायल हो गये। जनरल ईयान हेमिल्टन साहब गेलीपोली में अँगरेज़ी सेना के प्रधान सेनापति थे। आपका कहना है कि इतनी भयङ्कर हानि उठाने पर भी एक भी सिपाही विचलित नहीं हुआ। जो जगह जिस टुकड़ी के हाथ आई उसे, हज़ार आपत्ति आने पर भी, उसने शत्रु के हाथ में नहीं जाने दिया।

इस पल्टन के दाहने बायें गोरा पल्टनें थीं। उनके सिपाहियों और अफ़सरों ने सिक्खों की वीरता अपनी आँखों से देखी है। वे लोग हिन्दुस्तान के इन योद्धाओं की प्रशंसा हृदय से कर रहे हैं। जिस नाले के दोनों कगारों पर और अगल बगल भी शत्रु मशीनगनें और बन्दूकें लिये छिपे हों उसकी घाटी में घुस जाने की हिम्मत करना ही विलक्षण शूरता है। फिर उसमें घुस कर रात भर एक स्थान पर डटे रहना वीरता की सीमा हो गई। इस प्रकार की वीरता का वर्णन करने के लिए भाषा-कोष में शब्द नहीं। सिक्ख लोग वीर-जाति के हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में उनकी अद्भुत वीरता के कितने ही उदाहरण पाये जाते हैं। परन्तु "गली" नाले की लड़ाई में उन्होंने जो जवांमर्दी दिखलाई है उससे बढ़ कर उदाहरण सिक्ख इतिहास में भी शायद ही कहीं और मिले।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलेंड आदि उपनिवेशों वाले अपने देश में हिन्दुस्तानियों को नहीं आने देना वे लोग इन्हें अपनी अपेक्षा कम दरजे के समझते हैं। यदि ऊँच-नीच होना मनुष्य के गुणों पर अवलम्बित इस युद्ध में हिन्दुस्तानियों ने दिखा दिया है कि निवासियों की अपेक्षा वे लोग यदि बढ़ कर शूर न तो उनसे कम भी नहीं हैं। यह बात १४ नम्बर की के सिपाहियों ने उन उपनिवेशों से आये हुए योद्धा प्रत्यक्ष दिखा दिया है।

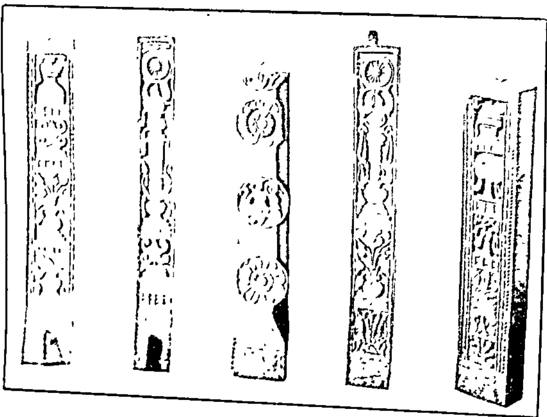
लज्जाशङ्कर झा

अङ्गद और रावण ।

[रामचरित-चिन्तामणि से उद्धृत]

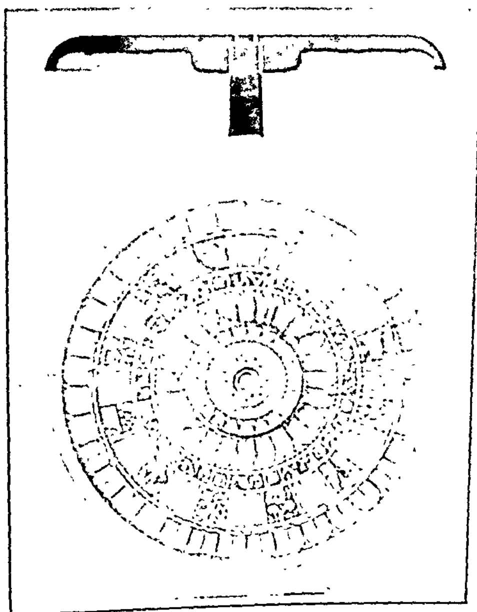
अङ्गद ।

सुन निवेदन है कुछ आप से, सुन उसे उर में धर लीजिए ।
सहज है करता जिस युक्ति से मनुज सारासार सहर्ष हो ॥ १ ॥
जनकजा रघुनायक हाथ में तुरत आदर अर्पण कीजिए ।
पर-वधू-जन से रहते सदा अलग सज्जन सन्त तमीचर ! ॥ २ ॥
कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिए ।
शरण में गिरिए रघुनाथ के; निबल के बल केवल राम हैं ॥ ३ ॥



सारनाथ में प्राप्त कटहरे के ५ स्तम्भ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।



सारनाथ में प्राप्त बोधिसत्त्व की मूर्ति का छाता—पत्थर का। (कनिष्क-काल)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

दुखद है तुमको जनकात्मजा; तुरत दूर उसे कर दीजिए ।
　　सुखद हो सकती न उलूक को नय विशारद ! शारद चन्द्रिका ॥ ४ ॥
बहुत बार हुए विजयी सही; पर नहीं रहते दिन एक से ।
　　सँभल के रहिए, अब आपकी मद-दशा न दशानन ! है भली ॥ ५ ॥
स्वकुल की करिए शुभ-कामना, सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिए ।
　　न अब भी जिसमें करना पड़े, कठिन सङ्गर सङ्ग रमेश के ॥ ६ ॥
स्वमन को वश में रखिए सदा; अनय से परवस्तु न लीजिए ।
　　नृप ! कभी सुख-दायक हैं नहीं —सुत, रसा, धन साधन के बिना ॥ ७ ॥
समय है अनमोल, कुकर्म में तुम विनष्ट करो उसको नहीं ।
　　दनुज ! है जग में सुखदायिनी नियम-हीन मही न महीप को ॥ ८ ॥
परम वीर चढ़े रघुवीर हैं तव पुरी पर वारिधि बांध के ।
　　क्षितिप ! आकर के रिपु-राज्य में तनिक भीरु कभी रुकते नहीं ॥ ९ ॥
कवि, गुणी, बुध, वीर, नयज्ञ भी, समझिए मन में निज को स्वयम् ।
　　पर बिना कुछ कार्य किये कभी न मन मोदक मोद-कलाप है ॥ १० ॥
सब सुरासुर हों वश आपके, करगता यदि हों सब सिद्धियां ।
　　तदपि हे दनुजेश्वर ! जानना—निज विना शक नाशक राम को ॥ ११ ॥
अखिल-लोक-नृपेश्वर राम को समझ के उनसे मिलिए अभी ।
　　यह पुरी रघुनाथ-रणाग्नि में दनुज ! होम न हो, मन में डरो ॥ १२ ॥

रावण ।

सुन कपे ! यम, इन्द्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने ।
　　तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज-सेवक से बकवाद भी ॥ १ ॥
यदि कपे ! मम राक्षसराज का स्तवन है तुझसे न किया गया ।
　　कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा निलज ! मानव मान बढ़ा रहा ॥ २ ॥
तनय होकर भी मम मित्र का शठ ! न आकर क्यों मुझसे मिला ?
　　उदर के वश हो किस भांति तू नर-सहायक हाय कपे ! हुआ ॥ ३ ॥
वसन, भोजन ले मुझसे सदा; विचर तू सुख से मम राज्य में ।
　　उस नृपात्मज के हित दे वृथा सुन्दर जीव न जीवन के लिए ॥ ४ ॥
तुम बिना करतूत बका करो; वचन-वीर ! सुनो हम वीर हैं ।
　　रिपु-विनाशक यत्न किये बिना समर पावक पा सकते नहीं ॥ ५ ॥
बल सुना कर तू शठ ! राम का पच मरे, पर मैं डरता नहीं ।
　　अरुण भयातुर हो करके, बता, कब निरोहित [illegible] से हुआ ? ॥ ६ ॥
कवल-दायक के गुण गान में निरत तू रह बानर ! सर्वदा ।
　　समर है सुख-दायक शूर को, कब हुआ रथ [illegible] को भला ? ॥ ७ ॥
जनकजा हत चित्त हुआ सही, तदपि सारस से कम मैं नहीं ।
　　मधुर मोदक क्या पच आयगा—कपि ! मधु मन [illegible] में ॥ ८ ॥

अड़ नहीं सकता मुझसे कभी तनिक भी गुण-गायक ध्यान में।
कब, कहाँ, वह तो किसने सुना, कपि! क्या रण गायन से भला? ॥ ९ ॥
यह असम्भव है यदि राम भी समर सम्मुख रावण से करें।
कह कपे! उड़ है सकती कभी यह लता पक-शावक-चोंच से ॥ १० ॥
निलज हो वहको, निज नाथ के सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगत में दिखला कर पेट को, वचन-वीर! न वीर बना कभी ॥ ११ ॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ, वह न हो सकता पर का कभी।
कपट रूप बना कर राम का कपि! विभीषण भीषण शत्रु है ॥ १२ ॥
मर मिटें रण में, पर राम को हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे! जग में यम वीर के सुयश का रण कारण मुख्य है ॥ १३ ॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू, रसिक हैं रण के हम जन्म से।
रुक नहीं सकते सुन के कभी, वचन-वत्सल वत्स! लड़े बिना ॥ १४ ॥

रामचरित उपाध्याय।

शाकुन्तल में उपेक्षा।

[प्रियंवदा और अनसूया।]



संस्कृत-साहित्य के सम्राट्, कवि-कुल-चक्रवर्ती, महाकवि कालिदास शताब्दियाँ बीत जाने पर भी सहृदय जनों के हृदयों में आज तक पूर्ण आदर से अधिष्ठित हैं। कालिदास की प्रसाद-गुण-पूर्ण, सरस, सालङ्कार और सुवर्णमयी कविता-वनिता रसिक पाठक के शिरीष-कुसुम-कोमल हृदय को एक बारगी मुग्ध एवं गद्गद किये बिना नहीं रहती। यद्यपि संस्कृत के अन्यान्य कवियों ने भी गद्य और पद्य दोनों प्रकार के सरस काव्यों की रचना में वह कौशल दिखाया है कि बिना बारंबार सिर हिलाये उनको साद्यन्त पढ़ डालना सहज काम नहीं। परन्तु वीणापाणि सरस्वती के वर पुत्र कालिदास की कई बातें सबसे निराली हैं—एक दम बे जोड़ हैं। सरस और सुन्दर शब्द-विन्यास, समुचित कथा-वस्तु-वर्णन, लौकिक व्यवहारों में अलौकिक प्रवीणता आदि अनेक कारणों से कालिदास अद्वितीय महाकवि सिद्ध हो चुके हैं।

इस समय न हमें कालिदास की जीव नामों पर मनन करना है और न उनके व के गुण-दोष की आलोचना ही करनी है। ह दिखाना है कि जहाँ वे कुसुम से भी अधिक सु हृदय रखते थे वहाँ अनाथ तापस कन्याओं अकारण भूल भी जाते थे।

कालिदास की रसाल कृतियों में अभि शाकुन्तल शीर्षस्थानीय है। रसिकजन प्रायः करते हैं—"नाटकेषु शकुन्तला"। उसमें भी म कण्व के प्रशान्त आश्रम का परित्याग कर, न्तला के पति-गृह जाने का हृदय-द्रावक चित्र जाने के कारण, यह भी सुना जाता है—"तः च चतुर्थोऽङ्कः"। परन्तु उसी शाकुन्तल के केन्द्री चतुर्थ अङ्क में एक दुःखद दृश्य भी दिखाई है। इसी अङ्क में दो निरपराध तापसियों पर व ने अपनी निरङ्कुशता का अङ्कुश चलाया है। क परित्यक्त, संस्कृत-साहित्य की दोनों अवमा तपस्विनियाँ—प्रियंवदा और अनसूया—आज पर्य हमारी चित्त-भूमि में तपोवन बना कर विरा रही हैं।

पति-गृह को जाते समय शकुन्तला ने मार्ग उनकी पूछ पाँछ की थी—"* ताद, इदो एव्व कि

*तात, इतएव किं प्रियंवदा मिश्राः सख्यो निवर्तिष्यन्ते

पियंवदा मिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति" ? परन्तु भगवान् काश्यप ने निष्करुण होकर यह उत्तर दे डाला—"वत्से, इमे अपि प्रदेये, न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम् । त्वया सह गौतमी यास्यति" । अगत्या अपनी प्यारी सहेलियों से शकुन्तला को नाता तोड़ना पड़ा। उसने कहा—" †हला, दुवे विमं समं एव्व परिस्सजह" । बस, इन दोनों सखियों का प्रेममय चरित्र-पट यहीं आवृत हो गया। दोनों रोती बिलखती—"‡ ताद, सउन्दला विरहिदं सुण्ण विअ तपोवणं कहं पविसामो" ?—आदि विरह-वाक्य कहती तपोवन को लौट आईं। इसके बाद भूल कर भी कवि ने उन्हें नाटक में नहीं प्रविष्ट किया। चिरकाल तक हमारे हृदय में ही वे सानन्द विश्राम कर रही हैं।

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि काव्य में सब पात्रों का अधिकार समान नहीं होता। दारुण-हृदय कवि, अपने नायक और नायिका के लिए, न जाने कितनी अक्षय प्रतिमायें रच डालता है और निर्दय होकर चाहे जहाँ उनका विसर्जन कर बैठता है। किन्तु वह अपनी प्रमत्त बुद्धि से जहाँ जिसका शेष कर देता है, क्या सचमुच वही उसका उपयुक्त स्थान होता है ? इसका निर्णय करना कठिन है।

ऋषि के दोनों क्रोधान्ध शिष्य और रोती हुई दुखिनी गौतमी ने आश्रम में लौट कर जिस समय राज-सभा का दारुण वृत्तान्त उन दोनों उत्कण्ठिता सखियों को सुनाया होगा उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी—इसका विवरण कवि ने मूल नाटक के लिए सर्वथा ही अनावश्यक समझा है। किन्तु क्या इतने से ही उनकी दुःखवेदना शान्त हो गई होगी ? बिना लिखे और बिना अभिनय किये भी क्या उन अबलाओं के साथ हमारी सहानुभूति नहीं ?

कुलिश-दारुण के समान काव्य अति कठिन वस्तु है। जब हम सोचते हैं कि कण्व-दुहिता पर इसकी सहज-सखी प्रियंवदा और अनसूया का कितना स्नेह था और उनका आपस में कि[illegible] सुदृढ़ सम्बन्ध-बन्धन था तब शकुन्तला के विप[illegible] समय में उन बाल-सखियों की इस प्रकार उ[illegible] होना, काव्य-दृष्टि से चाहे भले ही न्याय्य कहा [illegible] परन्तु लोक-दृष्टि से न्याय्य नहीं माना जा सकत[illegible]

शकुन्तला के सुख, सौन्दर्य और गौरव [illegible] अभिवृद्धि ही के लिए ये लावण्य-प्रतिमायें [illegible] आराम-तकलीफ़ की कुछ भी परवा न करके उ[illegible] साथ साथ उसमें अभिन्न रहीं। अतिथि अभ्या[illegible] की अभ्यर्थना आदि का भार शकुन्तला पर [illegible] कर फल लाने के लिए ऋषि वन में चले गये। [illegible] सहचरी बालिकायें सेचन-कलशों को हाथ [illegible] लेकर अकाल-विकसिता नव-मालती के तले प[illegible] हुईं। इसी समय हठात् दुष्यन्त के दर्शन हु[illegible] परन्तु एक माननीय, पर अपरिचित, सज्जन के सह[illegible] समागम से शकुन्तला, स्त्री-स्वभाव-सुलभ [illegible] और भय के वशीभूत होकर, कर्तव्य-विमूढ़ सी [illegible] गई। व्यवहार-चतुर राजा के अनुरक्त प्रश्नों [illegible] उत्तर मुग्धा तपस्वि-कन्या को मौन के सिवा [illegible] कुछ न सूझा। उस समय शकुन्तला के हृदय[illegible] भावों को सभ्यतापूर्वक किसने प्रकट किया ? [illegible] तापसी सहेलियों ने। अपनी प्रिय सहचरी के सु[illegible] की लालसा से विवश होकर अनसूया ने राजा [illegible] बड़ा कूट प्रश्न किया था—"* अज्ज, बहुवल्ल[illegible] राआणो सुणीअन्दि, जह णो पिअसही बन्धुअ[illegible] सोअणिज्जा ण होइ तह णिव्वाहेहि"। राजा [illegible] अगत्या यह वचन देना पड़ा—

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥

किन्तु कवि ने नायिका के इस हृदय का [illegible] बना प्रकाश किए बिना ही विचार किया।

शकुन्तला स्वयं अपना एक गुप्त [illegible] है, [illegible] प्रियंवदा और अनसूया हैं। [illegible] [illegible] है। इनके बिना शकुन्तला की सुषमा में [illegible]

† हला, दुवे वि मं सममेव परिस्सजह । ‡ तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः" ?

* आर्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते, यथा नः प्रि[illegible] सखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय।

लड़ नहीं सकता मुझसे कभी तनिक भी नृप-शावक स्वप्न में।
कब, कहाँ, कह तो किसने खरा, कपि! सुना रण वारण से भला? ॥ ९ ॥
यह असम्भव है यदि राम भी समर सम्मुख रावण से करे।
कह कपे! उठ है सकती कभी यह रसा बक-शावक-चोंच से ॥ १० ॥
निलज हो वहको, निज नाथ के सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगत में दिखला कर पेट को, वचनवीर! न वीर बना कभी ॥ ११ ॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ, वह न हो सकता पर का कभी।
कपट रूप बना कर राम का कपि! विभीषण भीषण शत्रु है ॥ १२ ॥
मर मिटें रण में, पर राम को हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे! जग में बस वीर के सुयश का रण कारण मुख्य है ॥ १३ ॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू; रसिक हैं रण के हम जन्म से।
रुक नहीं सकते सुन के कभी, वचन-वत्सल वत्स! लड़े बिना ॥ १४ ॥

रामचरित उपाध्याय।

शाकुन्तल में उपेक्षा।

[प्रियंवदा और अनसूया।]



संस्कृत-साहित्य के सम्राट्, कवि-कुल-चक्रवर्ती, महाकवि कालिदास शताब्दियाँ बीत जाने पर भी सहृदय जनों के हृदयों में आज तक पूर्ण आदर से अधिष्ठित हैं। कालिदास की प्रसाद-[गु]ण-पूर्ण, सरस, सालङ्कार और सुवर्णमयी कविता-[व]निता रसिक पाठक के शिरीष-कुसुम-कोमल हृदय [को] एक बारगी मुग्ध एवं गद्गद किये बिना नहीं [रह]ती। यद्यपि संस्कृत के अन्यान्य कवियों ने भी [गद्य] और पद्य दोनों प्रकार के सरस काव्यों की [रच]ना में वह कौशल दिखाया है कि बिना बारबार [सि]र हिलाये उनको साद्यन्त पढ़ डालना सहज काम [न]हीं। परन्तु वीणापाणि सरस्वती के वर पुत्र कालि[दा]स की कई बातें सबसे निराली हैं—एक दम वे [बे]जोड़ हैं। सरस और सुन्दर शब्द-विन्यास, समुचित [...]ा-वस्तु-वर्णन, लौकिक व्यवहारों में अलौकिक [प्रव]ीणता आदि अनेक कारणों से कालिदास अद्वि[तीय] महाकवि सिद्ध हो चुके हैं।

इस समय न हमें कालिदास की जीवन-[घट]नाओं पर मनन करना है और न उनके कवि[त्व] के गुण-दोष की आलोचना ही करनी है। हमें [तो] दिखाना है कि जहाँ वे कुसुम से भी अधिक सुकुम[ार] हृदय रखते थे वहाँ अनाथ तापस कन्याओं [को] अकारण भूल भी जाते थे।

कालिदास की रसाल कृतियों में अभिज्ञान शाकुन्तल शीर्षस्थानीय है। रसिकजन प्रायः कह[ा] करते हैं—"नाटकेषु शकुन्तला"। उसमें भी महर्षि कण्व के प्रशान्त आश्रम का परित्याग कर, शकुन्तला के पति-गृह जाने का हृदय-द्रावक चित्र खींचे जाने के कारण, यह भी सुना जाता है—"तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः"। परन्तु उसी शाकुन्तल के केन्द्रीभूत चतुर्थ अङ्क में एक दुःखद दृश्य भी ... है। इसी अङ्क में दो निरपराध ... ने अपनी निरङ्कुशता का अङ्कुश ... परित्यक्त, संस्कृत-साहित्य की ... तपस्विनियाँ—प्रियंवदा ... हमारी चित्त-भूमि में तपोवन ... रही हैं।

पति गृह को जाते समय ... उनकी पूछ पाँछ की थी—

तात, इतएव किं प्रियंवदा



फ्रेडरिक निट्शे ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

मिल जाती है। उन्होंने भी समय समय पर शकुन्तला के प्रेमालाप की मधुरिमा बढ़ाई है। तीसरे अङ्क में जहाँ निःसहाया शकुन्तला के साथ दुष्यन्त की प्रणय-विह्वलता का वर्णन है वहाँ कवि आर्या गौतमी को लाकर भले ही स्वस्थ हुआ है, पर रस की मात्रा में क्षति अवश्य पहुँची है; क्योंकि जिनसे घिरी रह कर शकुन्तला अपनी पूर्ति मानती थी वे वहाँ उपस्थित न थीं। वृन्त-विच्युत कुसुम पर दिनकर का प्रखर आलोक सहनीय नहीं होता। वृन्त और पल्लव का ज़रा सा अन्तर हो जाने के कारण वह आलोक कुसुम पर उतने कोमल भाव से नहीं पड़ता। नाटक के उन कतिपय पृष्ठों में सखी-विरहिता शकुन्तला आँखों में ऐसी खटकती है कि उसके अनावृत भाव को देख कर एक प्रकार के सङ्कोच का उदय होता है और आर्या गौतमी के सहसा आविर्भाव से पाठक चित्त में अपूर्व शान्ति का अनुभव करने लगते हैं।

हम यह कह सकते हैं कि प्रियंवदा और अनसूया के साथ न होने से ही राज-सभा में दुष्यन्त शकुन्तला को पहचानने में अक्षम हुआ। दुर्वासा का शाप चाहे एक कारण हो, और अँगूठी का खोया जाना दूसरा, परन्तु अज्ञान का प्रधान और युक्ति-युक्त हेतु यही है। एक तो तपोवन से भिन्न देश, दूसरे शकुन्तला निःसहाया, तीसरे लोकापवाद-भीरु राजा। अब पहचान हो तो कैसे हो? हाँ, यदि राज-सभा में वे दोनों बाल-सखियाँ भेजी गई होतीं तो निःसंशय राजा का प्रमाद नष्ट हो जाता और शकुन्तला को वह विडम्बना न सहनी पड़ती। वे अँगूठी न थीं जो खोई जातीं, फिर दुर्वासा के अभिशाप और उसके प्रतीकार का भी उन्हें ज्ञान था। ऐसी दशा में पाँचवें ही अङ्क में कवि को अपनी कल्पना कुण्ठित करके नाटक समाप्त करना पड़ता। क्योंकि शकुन्तला के अभिज्ञान के साथ ही इस रूपक का पर्य्यवसान है। पर कवि की विचार-मन्दाकिनी पर बाँध बाँधना क्या सामान्य बात है?—"निरङ्कुशाः कवयः"!

शकुन्तला से विदा होकर शून्य तपोवन को लौट आने पर क्या शैशव-सहचरी का वियोग ही उन तापसियों के सन्ताप का एक मात्र कारण हुआ होगा? चिर-वियोग के अतिरिक्त उस हतभाग्य तपोवन में क्या कोई अन्य परिवर्तन नहीं हुआ! अहो! उन्होंने बोध-द्रुम का फल चख लिया, जो अज्ञात था सो जान लिया। और यह भी किसी कपोल-कल्पित औपन्यासिक नायिका के चरित्र-पाठ से नहीं, बल्कि अपनी प्रिय सखी के सदय हृदय की खोज से! क्या इसके अनन्तर ललित आलवालों में सलिल-सेचन के कृत्य को वे नहीं भूलीं! अब सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट से चौकन्नी होकर अशोक-पुञ्ज से किसी नव आगन्तुक के आगमन की आशङ्का नहीं करतीं? वे आश्रम के मृगशावक क्या फिर भी वैसे ही प्रीति-पात्र और मनोरञ्जन के हेतु बने रहे?

जो हो, पर यह सखेद कहना पड़ता है कि कविकुल-गुरु की मुखरित लेखनी ने इन अभागिनी तपस्वि-कन्याओं के प्रति उपेक्षा का भरपूर परिचय दिया है। इनका जीवन दुःख के ही विषम आवर्त्त में निमग्न हो गया। मधुकरिका और परभृतिका की सृष्टि करते समय भी कवि ने इन्हें सर्वथा ही भुलाये रक्खा। यदि तभी ये शकुन्तला की सेवा में लगा दी गई होतीं तो अवश्य ही इनकी विषण्ण मूर्ति इतनी मर्मकृन्तक न होती। ये उक्त परिचारिकाओं से अधिक भाग्यशालिनी नहीं कही जा सकतीं। दुर्बल दैव ने कुमार भरत का मञ्जुल वदन इन्हें नहीं देखने दिया। और तो क्या, वियोगिनी शकुन्तला के प्रत्यभिज्ञान का सुखद संवाद भी इनके कानों तक नहीं पहुँचा! इससे अधिक निरादर और उपेक्षा और क्या होगी? व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन, कवि-समय का तिरस्कार, नान्दी-निर्माण में पद-विन्यास आदि की उच्छृङ्खलता किसी भाँति क्षन्तव्य हो सकती है, क्योंकि ये बातें निरङ्कुशता की सीमा के अन्तर्गत मानी जा सकती हैं; किन्तु निरपराध तपस्वि-कन्याओं के प्रति ऐसी उपेक्षा क्षमा के योग्य नहीं।

आइए, उस तपोवन में ही कवि-परित्यक्त प्रियंवदा और अनसूया के दुःख-मय जीवन की एक बार फिर खोज करें। वे प्रतिबिम्ब स्वरूप नहीं हैं कि शकुन्तला के साथ ही साथ एक से दूसरी दिशा में उनका तिरोभाव हो जाय। उनका जीवन अलग है और उनकी मूर्त्ति भी अलग है। रचित काव्य के बहिर्भाग में और अभिनीत रूपक की नेपथ्य-भूमि में उनकी वृद्धि हुई है। उस समय जकड़े हुए वल्कल से भी उनका नारुण्य आबद्ध हो सकता था; परन्तु अब उनकी मधुर मुसकान पर—वर्षाकाल में अमल नभस्तल पर जल-धरमाला की भांति—अश्रु गम्भीरा छाया उत्पन्न हो गई है। अब दिनोंदिन शून्य-हृदयता और अनन्य-मनस्कता बढ़ती जाती है। इसीसे उनके उटज प्राङ्गण तक पहुँच कर भी प्रायः अतिथियों को सहन-सत्कार और अनभ्यर्थित ही लौटना पड़ता है। "वयमपि कष्टं परापतिताः"!

श्रीहरिहरसुरूप शर्मा

सौत।



पण्डित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए। पर, उनके कोई सन्तान न हुई। जब तक उनके मा-बाप जीवित थे तब तक वे उनसे सदा दूसरा विवाह कर लेने के लिए आग्रह किया करते थे। पर, पण्डितजी कभी इस पर राजी न हुए। उन्हें अपनी स्त्री गोदावरी से अटल प्रेम था। सन्तान से होने वाले सुख के निमित्त वे अपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट न करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे। वे कहा करते थे कि सन्तान होने से मा-बाप की ज़िम्मेदारियां बढ़ जाती हैं। जब तक मनुष्य में यह सामर्थ्य न हो कि वह उसका भले प्रकार पालन, पोषण और शिक्षण आदि कर सके तब तक उसका सन्तान से [illegible], जाति और निज का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। [illegible] तो कभी कभी दामादों को हँसते खेलते देख कर [illegible] के हृदय पर चोट सी लगती थी। परन्तु [illegible] देश भाइयों की तरह वे भी शारीरिक व्याधियों से लगे थे। अब क़िस्से कहानियों के बदले धार्मिक [illegible] उनका अधिक मनोरञ्जन होता था। अब सन्तान [illegible] करते ही उन्हें भय सा लगता था।

पर, गोदावरी इतनी जल्द निराश होने वाली [illegible] पहले तो वह देवी-देवता, गंडे-तावीज़ और य[illegible] आदि की शरण लेती रही। परन्तु, जब उसने [illegible] औषधियां कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक [illegible] चिन्ता में लगी। यह महौषधि कारा-कष्ट से कम [illegible] उसने महीनों, बरसों, इसी चिन्तासागर में [illegible] काटे। उसने दिल को बहुत समझाया, परन्तु [illegible] बात समा गई थी वह किसी तरह न निकली। [illegible] भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति-प्रेम [illegible] अनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जाय। [illegible] ऐसा हो सकता है? पन्द्रह वर्ष तक लगातार [illegible] के दुख की उसने सेवा की है क्या यह दशा [illegible] भी न सह सकेगा?

गोदावरी ने अन्त में अपनी प्रबल चेष्टा के [illegible] झुका ही दिया। अब सौत का शुभागमन करने [illegible] वह तैयार हो गई—

(२)

पण्डित देवदत्त गोदावरी का यह प्रस्ताव [illegible] अचम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि [illegible] मेरे प्रेम की परीक्षा कर रही है या मेरा मन [illegible] है। उन्होंने उसकी बात हँस कर टाल दी। पर, जब [illegible] ने [illegible] कहा—"तुम इसे हँसी मत [illegible] मैं अपने हृदय से कहती हूँ कि सन्तान का मुँह [illegible] लिए मैं सौत से छाती पर मूँग दलवाने के लिए [illegible] हूँ"—[illegible] [illegible] हुई [illegible] [illegible] किया। [illegible]—'तुम्हारी यह [illegible] [illegible] नहीं'।

[illegible]

पण्डितजी सरल स्वभाव के मनुष्य थे। हामी तो उन्होंने न भरी। पर, बार बार कहने से कुछ कुछ राज़ी वे अवश्य हो गये। उस तरफ़ से इसी की देर थी। पण्डितजी को कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरी की कार्य्य-कुशलता ने सब काम उनके लिए सुलभ कर दिया। उसने इस काम के लिए अपने पास से केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये। लोक-निन्दा का भय इस मार्ग में सबसे बड़ा कांटा था। देवदत्त तो मन में विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजा कर चलूँगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे। मेरे दफ़्र के मित्र मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुसकराते हुए कटाक्षों से मेरी ओर देखेंगे। उनके ये कटाक्ष छुरी से भी ज़ियादह तेज़ होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा। पर, गोदावरी ने अपने गांव में जाकर इस कार्य्य का आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नई बहू घर में आ गई। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई मानो वह बेटे का ब्याह कर लाई हो। वह ख़ूब गाती बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही उसे इस गाने के बदले रोना पड़ेगा।

(३)

कई मास बीत गये। गोदावरी अपनी सौत पर उसी तरह शासन करती थी मानो वह उसकी सास है। तथापि वह यह बात कभी न भूलती थी कि मैं वास्तव में उसकी सास नहीं। उधर गोमती को भी अपनी स्थिति का पूरा ख़याल रहता था। इसी कारण सास के शासन की तरह कठोर न रहने पर भी गोदावरी का शासन उसे अप्रिय प्रतीत होता था। उसे अपनी छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए भी गोदावरी से कहते सङ्कोच होता था।

कुछ दिनों बाद गोदावरी के स्वभाव में एक विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह पण्डितजी को घर में आते जाते बड़ी तीव्र दृष्टि से देखने लगी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता अब मानो लोप सी हो गई। ज़रा सी बात भी उसके पेट में नहीं पचती। जब पण्डितजी दफ़्र से आते हैं तब गोदावरी उनके पास घंटों बैठी गोमती का वृत्तान्त सुनाया करती है। इस वृत्तान्त-कथन में बहुधा ऐसी छोटी छोटी बातें भी होती थीं कि जब कथा समाप्त होती तब पण्डितजी के हृदय से बोझ सा उतर जाता। गोदावरी क्यों इतनी मृदुभाषिणी हो गई थी, इसका कारण समझना मुश्किल है। शायद अब वह गोमती से डरती थी। उसके सौन्दर्य्य से, उसके यौवन से, उसके लज्जायुक्त नेत्रों से शायद वह अपने को पराभूत समझती है। बाँध को तोड़ कर अब वह पानी की धारा को मिट्टी के ढेलों से रोकना चाहती है!

एक दिन गोदावरी ने गोमती से मीठे चावल पकाने को कहा। शायद वह रक्षाबन्धन का दिन था। गोमती ने कहा, शकर नहीं है। गोदावरी यह सुनते ही विस्मित हो उठी। इतनी शकर इतनी जल्दी कैसे उठ गई! जिसे छाती फाड़ कर कमाना पड़ता है उसे अखरता है खाने वाले क्या जानें?

जब पण्डितजी दफ़्र से आये तब यह ज़रा सी बात बड़ा विस्तृत रूप धारण करके उनके कानों में पहुँची। थोड़ी देर के लिए पण्डितजी के दिल में भी यह शङ्का हुई कि गोमती को शायद भस्मक रोग तो नहीं हो गया।

ऐसी ही घटना एक बार फिर हुई। पण्डितजी को बवासीर की शिकायत थी। लाल मिर्च वे बिलकुल न खाते थे। गोदावरी जब रसोई बनाती थी तब वह लाल मिर्च रसोई में लाती ही न थी। गोमती ने एक दिन दाल में मसाले के साथ लाल मिर्च भी थोड़ी सी डाल दी। पण्डितजी ने दाल कम खाई। पर, गोदावरी गोमती के पीछे पड़ गई। ऐंठ कर वह उससे बोली—"ऐसी जीभ जल क्यों नहीं जाती"!

(४)

पण्डितजी बड़े सीधे आदमी थे ही दफ़्र गये, खाया, पढ़ कर सो रहे। वे एक साप्ताहिक पत्र मँगाते थे। उसे कभी कभी महीनों खोलने की नौबत न आती थी। जिस काम में ज़रा भी कष्ट या परिश्रम होता उससे वे कोसों दूर भागते थे। कभी कभी उनके दफ़्र में थियेटर के "पास" मुफ़् मिला करते थे। पर, पण्डितजी उनसे कभी काम न लेते। और ही लोग उनसे उन्हें मांग ले जाया करते। रामलीला या कोई और मेला तो उन्होंने शायद नौकरी करने के बाद फिर कभी देखा ही नहीं। गोदावरी उनकी प्रकृति का परिचय अच्छी तरह पा चुकी थी। पण्डितजी

भी प्रत्येक विषय में गोदावरी के ही मतानुसार चलने में अपनी कुशल समझते थे।

पर, रुई सी मुलायम वस्तु भी दब कर कठोर हो जाती है। पण्डितजी को यह आठों पहर की चहचह असह्य सी प्रतीत होती। कभी कभी वे मन में झुँझलाने भी लगते। इच्छा-शक्ति, जो इतने दिनों तक बेकार पड़े रहने से निर्बल सी हो गई थी, अब कुछ सजीव सी होने लगी थी।

पण्डितजी यह मानते थे कि गोदावरी ने सौत को घर लाने में बड़ा भारी त्याग किया है। उसका यह त्याग अलौकिक कहा जा सकता है। परन्तु उसके त्याग का भार जो कुछ है मुझ पर है। गोमती पर उसका क्या एहसान! मेरे कारण उस पर क्यों ऐसी क्रूरतायें की जाती हैं। यहां उसे ऐसा कौन सा सुख है जिसके लिए वह फटकार पर फटकार सहे? पति मिला है वह बूढ़ा और सदा रोगी। घर मिला है, वह ऐसा कि अगर आज नौकरी छूट जाय तो कल चूल्हा न जले। इस दशा में गोदावरी का यह स्नेहरहित बर्ताव उन्हें बहुत अनुचित मालूम होता।

गोदावरी की दृष्टि इतनी स्थूल न थी कि उसे पण्डितजी के मन के भाव नज़र न आयें। उनके मन में जो विचार पैदा होते वे सब गोदावरी को उनके मुख पर अङ्कित से दिखाई पड़ते। यह जानकारी उसके हृदय में एक ओर गोमती के प्रति ईर्षा की प्रचण्ड अग्नि दहका देती, दूसरी ओर पण्डित देवदत्त पर निठुरता और स्वार्थप्रियता का दोषारोपण कराती। फल यह हुआ कि मनोमालिन्य दिन दिन बढ़ता ही गया।

(५)

गोदावरी ने धीरे धीरे पण्डितजी से गोमती की बात-चीत करनी छोड़ दी। मानो उसके निकट गोमती घर में थी ही नहीं। न उसके खाने पीने की वह सुधि लेती थी, न कपड़े लत्ते की। एक बार कई दिनों तक उसे जलपान के लिए भी कुछ न मिला। पण्डितजी [illegible] थे। वे इन सब अत्याचारों को देखा करते, पर [illegible] से घोर उपद्रव मच जाने के भय से जिह्वा से कुछ भी न कहते। तथापि, इस निठुर अन्याय ने उनकी सहन-शक्ति को भी मथ डाला। एक दिन उन्होंने गोदावरी से डरते डरते कहा—"क्या आज कल घर में जलपान के लिए मिठाई विठाई नहीं आता"?

गोदावरी ने क्रुद्ध होकर जवाब दिया—"तुम [illegible] नहीं तो आये कहा से! मेरे कोई नौकर बैठा है?"

देवदत्त को गोदावरी के ये कठोर वचन तीर से ल[illegible] तक गोदावरी ने उनसे ऐसी रोषपूर्ण बात कभी न [illegible] वे बोले—"धीरे बोलो; झुँझलाने की तो मैंने क[illegible] ही नहीं की"।

गोदावरी ने आंखें नीची करके कहा—"मुझे [illegible] आता है वैसे बोलती हूँ। दूसरों की बोली कहां से लाऊं"?

देवदत्त ने ज़रा गरम होकर कहा—"आज कल मु[illegible] मिज़ाज का कुछ रङ्ग ही नहीं मालूम हो[illegible] बात पर तुम उलझती हो"।

गोदावरी का चेहरा क्रोधाग्नि से लाल हो गया। [illegible] थी; खड़ी हो गई। होंठ उसके फड़कने ल[illegible] बोली—"मेरी कोई बात अब तुमको क्यों [illegible] लगेगी? अब तो मैं सिर से पैर तक दोनों [illegible] हूँ। अब और लोग तुम्हारे मन का काम [illegible] मुझसे नहीं हो सकता। यह लो, [illegible] कुञ्जी। अपने रुपये पैसे संभाल लो। [illegible] रोज़ की झंझट मेरे मान की नहीं। जब तक [illegible] निभाया। अब नहीं निभ सकता"।

पण्डित देवदत्त मानो मूर्छित से हो गये। जिस [illegible] भङ्ग का उन्हें भय था उसने अकस्मात् [illegible] करके उनके घर में प्रवेश किया। वे कुछ भी न बोल[illegible] इस समय उनके अधिक बोलने से बात बढ़ जाने [illegible] था। वे बाहर चले आये और सोचने लगे कि मैंने गो[illegible] के साथ कौन सा अनुचित व्यवहार किया है। उनके [illegible] में न आया कि गोदावरी के हाथ से निकल कर [illegible] प्रबन्ध कैसे हो सकेगा। इस थोड़ी सी आमदनी में [illegible] किस प्रकार काम चलाती थी। क्या क्या उपाय करती थी। अब न जाने [illegible] उसे बनाना पड़ेगा। [illegible] ही क्या सकता है! [illegible] क्या कर सकता हूं [illegible]

[illegible]

में ज्यों की त्यों, तीन दिन तक, पड़ी रही। किसी को उसके निकट जाने का साहस न हुआ।

चौथे दिन पण्डितजी ने मानो जान पर खेल कर उस कुञ्जी को उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो किसी ने उनके सिर पर पहाड़ उठा कर रख दिया। आलसी लोगों को अपने नियमित मार्ग से तिल भर भी हटना बड़ा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पण्डितजी जानते थे कि मैं अपने दफ़र के कारण इस कार्य्य को सँभालने में असमर्थ हूँ, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुञ्जी ले गोमती को दे दें। पर, यह केवल दिखावा ही भर था। कुञ्जी उन्हीं के पास रहती थी; काम सब गोमती को करना पड़ता था। इस प्रकार गृहस्थी के शासन का अन्तिम साधन भी गोदावरी के हाथ से निकल गया। गृहिणी के नाम के साथ जो मर्य्यादा और जो सम्मान है वह भी गोदावरी के पास से उसी कुञ्जी के साथ चला गया। देखते देखते घर की महरी और पड़ोस की स्त्रियों के बरताव में भी बहुत अन्तर पड़ गया। गोदावरी अब पदच्युत रानी की तरह थी। उसका अधिकार अब केवल दूसरों की सहानुभूति पर ही रह गया था।

(६)

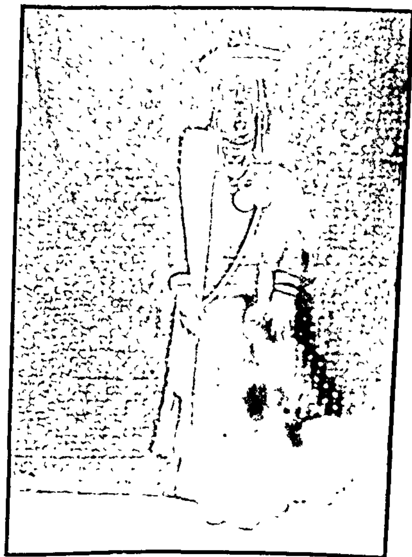
गृहस्थी के काम-काज में परिवर्तन होते ही गोदावरी के स्वभाव में भी शोकजनक परिवर्तन हो गया। ईर्षा मन में रहने वाली वस्तु नहीं। आठों पहर पास-पड़ोस के घरों में यही चर्चा होने लगी—देखो तो दुनिया कैसी मतलब की है। बेचारी ने लड़-झगड़ कर ब्याह कराया; जान-बूझ कर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी। यहाँ तक कि अपने गहने कपड़े तक उतार दिये। पर अब रोते रोते आँचल भीगता है। सौत तो सौत ही है, पति ने भी उसे आँखों से गिरा दिया। बस, अब लौंडी की तरह घर में पड़ी पड़ी पेट जिलाया करे। यह भी कोई जीना है!

गोदावरी ये करुणासूचक बातें सुनती। इससे उसकी ईर्षाग्नि और भी प्रबल होती जाती। उसे इतना न सूझता था कि यह मौखिक समवेदनायें अधिकांश उस मनोविकार से पैदा हुई हैं जिससे मनुष्य को दूसरों की हानि और दुःख पर हँसने में विशेष आनन्द आता है।

गोदावरी को जिस बात का पूर्ण विश्वास और पण्डितजी को जिसका बड़ा भय था वह न हुई। घर के काम-काज में कोई विघ्न-बाधा, कोई रुकावट, न पड़ी। हाँ, अनुभव न होने के कारण पण्डितजी का प्रबन्ध गोदावरी के प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ ख़र्च ज़ियादह पड़ जाता था। पर, काम भले प्रकार चला जाता था। हाँ, गोदावरी को गोमती के सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षा में अग्नि है। परन्तु अग्नि का गुण उसमें नहीं। वह हृदय को फैलाने के बदले उसे और भी सङ्कीर्ण कर देती है। अब घर में कुछ हानि हो जाने से गोदावरी को दुःख के बदले आनन्द होता है। बरसात के दिन थे। कई दिन तक सूर्य्य-नारायण के दर्शन न हुए। सन्दूक़ में रक्खे हुए कपड़ों में फफूँदी लग गई। तेल के अचार बिगड़ गये। गोमती को उन्हें धूप में रखने की सुधि न रही। गोदावरी को यह सब देख कर रत्ती भर भी दुःख न हुआ। हाँ, दो चार जली-कटी सुनाने का अवसर उसे अवश्य मिल गया—"मालकिन बनना ही आता है कि मालकिन का काम करना भी।"

पण्डित देवदत्त की प्रकृति में भी अब एक नया रङ्ग नज़र आने लगा। जब तक गोदावरी अपनी कार्य्य-परायणता से घर का सारा बोझ सँभाले थी तब तक उनको कभी किसी चीज़ की कमी नहीं खली। यहाँ तक कि शाक-भाजी के लिए भी उन्हें बाज़ार नहीं जाना पड़ा। पर, अब गोदावरी उन्हें दिन में कई बार बाज़ार दौड़ते देखती है। गृहस्थी का प्रबन्ध ठीक न रहने से बहुधा ज़रूरी चीज़ों के लिए उन्हें बाज़ार ऐन वक़्त पर जाना पड़ता है। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना सुना कर कहती—"यही महाराज हैं कि एक तिनका उठाने के लिए भी न उठते थे। अब देखती हूँ दिन में दस दफ़े बाज़ार में खड़े रहते हैं। कभी यह कहते अब मैं इन्हें नहीं सुनती कि मेरे लिखने-पढ़ने में हर्ज होगा"।

गोदावरी को इस बात का एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाज़ार-हाट के काम में कुशल नहीं हैं। इसी लिए जब उसे कपड़ों की ज़रूरत होती तब वह अपने पड़ोस के एक बूढ़े लाला साहब से मँगवाया करती थी। पण्डितजी को यह बात भूल सी गई थी कि गोदावरी को साड़ियों की भी ज़रूरत पड़ती है। उनके सिर से तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। ख़ुद भी



[illegible]

इंडियन प्रेस प्रयाग।

में ज्यों की त्यों, तीन दिन तक, पड़ी रही। किसी को उसके निकट जाने का साहस न हुआ।

चौथे दिन पण्डितजी ने मानो जान पर खेल कर उस कुञ्जी को उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो किसी ने उनके सिर पर पहाड़ उठा कर रख दिया। आलसी लोगों को अपने नियमित मार्ग से तिल भर भी हटना बड़ा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पण्डितजी जानते थे कि मैं अपने दफ़्र के कारण इस कार्य्य को सँभालने में असमर्थ हूँ, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुञ्जी ये गोमती को दे दें। पर, यह केवल दिखावा ही भर था। कुञ्जी उन्हीं के पास रहती थी; काम सब गोमती को करना पड़ता था। इस प्रकार गृहस्थी के शासन का अन्तिम साधन भी गोदावरी के हाथ से निकल गया। गृहिणी के नाम के साथ जो मर्य्यादा और जो सम्मान है वह भी गोदावरी के पास से उसी कुञ्जी के साथ चला गया। देखते देखते घर की महरी और पड़ोस की स्त्रियों के बरताव में भी बहुत अन्तर पड़ गया। गोदावरी अब पदच्युत रानी की तरह थी। उसका अधिकार अब केवल दूसरों की सहानुभूति पर ही रह गया था।

(६)

गृहस्थी के काम काज में परिवर्तन होते ही गोदावरी के स्वभाव में भी शोकजनक परिवर्तन हो गया। ईर्षा मन में रहने वाली वस्तु नहीं। आठों पहर पास-पड़ोस के घरों में यही चर्चा होने लगी—देखो तो दुनिया कैसी मतलब की है। बेचारी ने लड़-झगड़ कर ब्याह कराया; जान-बूझ कर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी। यहाँ तक कि अपने गहने कपड़े तक उतार दिये। पर अब रोते रोते आँचल भीगता है। सौत तो सौत ही है, पति ने भी उसे आँखों से गिरा दिया। बस, अब लौंडी की तरह घर में पड़ी पड़ी पेट जिलाया करे। यह भी कोई जीना है!

गोदावरी ये करुणासूचक बातें सुनती। इससे उसकी ईर्षाग्नि और भी प्रबल होती जाती। उसे इतना न सूझता था कि यह मौखिक समवेदनायें अधिकांश उस मनोविकार से पैदा हुई हैं जिससे मनुष्य को दूसरों की हानि और दुःख पर हँसने में विशेष आनन्द आता है।

गोदावरी को जिस बात का पूर्ण विश्वास और पण्डितजी को जिसका बड़ा भय था वह न हुई। घर के काम-काज में कोई विघ्न-बाधा, कोई रुकावट, न पड़ी। हाँ, अनुभव न होने के कारण पण्डितजी का प्रबन्ध गोदावरी के प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ ख़र्च ज़ियादह पड़ जाता था। पर, काम भले प्रकार चला जाता था। हाँ, गोदावरी को गोमती के सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षा में अग्नि है। परन्तु अग्नि का गुण उसमें नहीं। वह हृदय को फैलाने के बदले उसे और भी सङ्कीर्ण कर देती है। अब घर में कुछ हानि हो जाने से गोदावरी को दुःख के बदले आनन्द होता है। बरसात के दिन थे। कई दिन तक सूर्य्य-नारायण के दर्शन न हुए। सन्दूक़ में रक्खे हुए कपड़ों में फफूँदी लग गई। तेल के अचार बिगड़ गये। गोमती को उन्हें धूप में रखने की सुधि न रही। गोदावरी को यह सब देख कर रत्ती भर भी दुःख न हुआ। हाँ, दो चार जली-कटी सुनाने का अवसर उसे अवश्य मिल गया—"मालकिन बनना ही आता है कि मालकिन का काम करना भी।"

पण्डित देवदत्त की प्रकृति में भी अब एक नया रङ्ग नज़र आने लगा। जब तक गोदावरी अपनी कार्य्य-परायणता से घर का सारा बोझ सँभाले थी तब तक उनको कभी किसी चीज़ की कमी नहीं खली। यहाँ तक कि शाक-भाजी के लिए भी उन्हें बाज़ार नहीं जाना पड़ा। पर, अब गोदावरी उन्हें दिन में कई बार बाज़ार दौड़ते देखती है। गृहस्थी का प्रबन्ध ठीक न रहने से बहुधा ज़रूरी चीज़ों के लिए उन्हें बाज़ार ऐन वक्त पर जाना पड़ता है। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना सुना कर कहती—"वही महाराज हैं कि एक तिनका उठाने के लिए भी न उठते थे। अब देखती हूँ दिन में दस दफ़े बाज़ार में खड़े रहते हैं। कभी यह कहते अब मैं इन्हें नहीं सुनती कि मेरे लिखने-पढ़ने में हर्ज होगा"।

गोदावरी को इस बात का एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाज़ार-हाट के काम में कुशल नहीं हैं। इसी लिए जब उसे कपड़ों की ज़रूरत होती
अपने पड़ोस के एक बूढ़े लाला साहब
थी। पण्डितजी को यह बात भूल सी
को साड़ियों की भी ज़रूरत पड़ती है
जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही

हैं वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगा कर उन्हें दे देती थी। पण्डितजी को नये फ़ैशन और नये नमूनों से कोई प्रयोजन न था। पर, अब कपड़ों के लिए भी उन्हीं को बाज़ार जाना पड़ता है। एक बार गोमती के पास साड़ियाँ न थीं। पण्डितजी बाज़ार गये तो एक बहुत अच्छा सा जोड़ा उसके लिए ले आये। बजाज़ ने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लेने में पण्डितजी ज़रा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमती ने वह जोड़ा गोदावरी को दिखाया। गोदावरी ने देखा और मुँह फेर कर रुखाई से बोली—"भला, तुमने उन्हें कपड़े लाना तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये। उनके हाथ का लाया हुआ कपड़ा मुझे स्वप्न में भी पहनना नसीब नहीं हुआ"।

ऐसी घटनायें गोदावरी की ईर्षाग्नि को और भी प्रज्वलित कर देती थीं। जब तक उसे यह विश्वास था कि पण्डितजी स्वभाव ही से रूखे हैं तब तक उसे सन्तोष था। परन्तु, अब उनकी ये नई नई तरङ्गें देख कर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीति को मैं सैकड़ों यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणी ने केवल अपने यौवन से जीत लिया। उसे अब निश्चय हुआ कि मैं जिसे सच्चा प्रेम समझ रही थी वह वास्तव में कपटपूर्ण था। वह निरा स्वार्थ था।

(७)

दैवयोग से इन्हीं दिनों गोमती बीमार पड़ी। उसे उठने-बैठने की भी शक्ति न रही। गोदावरी रसोई बनाने लगी। पर, उसे इसका निश्चय नहीं कि गोमती वास्तव में बीमार है। उसे यही ख़याल था कि मुझ से खाना पकवाने के लिए ही दोनों प्राणियों ने यह स्वाँग रचा है। पड़ोस की स्त्रियों से वह कहती कि लौंडी बनने में इतनी ही कसर थी। वह अब वह पूरी हो गई।

पण्डितजी को आज कल खाना खाते वक्त [illegible] आ जाती है। वे न जाने क्यों गोदावरी से एकान्त में बातचीत करते डरते हैं। न मालूम कैसी कठोर और हृदय-विदारक बातें वह सुनाने लगे। इसी लिए खाना खाते वक्त वे डरते रहते थे कि कहीं उस भयङ्कर समय का आगमन न हो जाय! गोदावरी अपने तीव्र नेत्रों से उनके मन का यह भाव ताड़ जाती थी। पर, मन ही मन ऐंठ कर रह जाती थी।

एक दिन उससे न रहा गया। वह बोली—"[illegible] से बोलने की भी मनाई कर दी गई है? कहीं तो रात रात भर बातों का तार नहीं टूटता। सामने मुँह न खोलने की भी क़सम सी खाई है। रङ्ग-ढङ्ग तो देखते हो न? घर तो सब काम तुम्हारे [illegible]नुसार चल रहा है न"?

पण्डितजी ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया—"जैसे चलता है वैसे चलता है। अब उस फ़िक्र में क्या जान दे दूँ? जब तुम यही चाहती हो कि घर मिट्टी में मिल जाय तब फिर मेरा क्या वश है।"

इस पर गोदावरी ने बड़े कठोर वचन कहे। [illegible] गई। पण्डितजी चौके पर से उठ आये। गोदावरी ने [illegible] दिला कर उन्हें बिठाना चाहा। पर वे वहाँ क्षण भर [illegible] रुके। तब उसने भी रसोई उठा दी। सारे घर को [illegible] करना पड़ा।

गोमती में एक विचित्रता यह थी कि वह कड़ी कड़ी बात सहन कर सकती थी। पर, भूख सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। इसी लिए वह कोई व्रत न रखती थी। हाँ, कहने सुनने से जन्माष्टमी रख लेती थी। पर, आज कल बीमारी के कारण उसे भूख भी लगती थी। जब उसने देखा कि दोपहर होने आई [illegible] भोजन मिलने के कोई लक्षण नहीं तब विवश होकर [illegible] से मिठाई मँगाई। सम्भव है, उसने गोदावरी को जलाने के लिए यह ढोंग रचा हो। क्योंकि कोई भी एक खाना न खाने से मर नहीं जाता। गोदावरी के सिर से [illegible] तक आग लग गई। उसने भी तुरन्त मिठाइयाँ मँगाईं। कई वर्ष के बाद आज उसने पेट भर मिठाइयाँ खाईं। सब ईर्षा के कौतुक हैं!

जो गोदावरी [illegible] के [illegible] मुँह में पानी [illegible]

[illegible]

वे वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगा कर उन्हें दे देती थी। पण्डितजी को नये फ़ैशन और नये नमूनों से कोई प्रयोजन न था। पर, अब कपड़ों के लिए भी उन्हीं को बाज़ार जाना पड़ता है। एक बार गोमती के पास साड़ियाँ न थीं। पण्डितजी बाज़ार गये तो एक बहुत अच्छा सा जोड़ा उसके लिए ले आये। बज़ाज़ ने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लेने में पण्डितजी ज़रा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमती ने वह जोड़ा गोदावरी को दिखाया। गोदावरी ने देखा और मुँह फेर कर रुखाई से बोली—"भला, तुमने उन्हें कपड़े लाना तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये। उनके हाथ का लाया हुआ कपड़ा मुझे स्वप्न में भी पहनना नसीब नहीं हुआ"।

ऐसी घटनायें गोदावरी की ईर्षाग्नि को और भी प्रज्व-लित कर देती थीं। जब तक उसे यह विश्वास था कि

एक दिन उससे न रहा गया। वह बोली—"[illegible] से बोलने की भी मनाई कर दी गई है! [illegible] कहीं तो रात रात भर बातों का तार नहीं टूटता। [illegible] सामने मुँह न खोलने की भी क़सम सी खाई है। [illegible] रङ्ग-ढङ्ग तो देखते हो न? अब तो सब काम उसके [illegible]नुसार चल रहा है न"?

पण्डितजी ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया—"[illegible] जैसे चलता है वैसे चलता है। अब इस फ़िक्र में [illegible] जान दे दूँ? जब तुम यही चाहती हो कि [illegible] जाय तब फिर मेरा क्या वश है।"

इस पर गोदावरी ने बड़े ज़ोर [illegible]। [illegible] गई। पण्डितजी चौके पर से उठ आये। [illegible] दिला कर उन्हें बिठाना चाहा। पर वे वहां [illegible] रुके। तब उसने भी रसोई उठा दी। [illegible]

था। वे बड़े उत्साह से झाँकी बनाने में लग जाते थे। गोदावरी यह व्रत विना जल के रखती थी और पण्डितजी तो कृष्ण के उपासक ही थे। अब के उनके अनुरोध से गोमती ने भी निर्जल व्रत रखने का साहस किया। पर, उसे बड़ा आश्चर्य आया जब महरी ने आकर उससे कहा—"बड़ी बहू निर्जल न रहेंगी, उनके लिए फलाहार मँगा दो।"

सन्ध्या-समय गोदावरी ने मान मन्दिर जाने के लिए इक्के की फ़रमाइश की। गोमती को यह फ़रमाइश बुरी मालूम हुई। आज के दिन इक्कों का किराया बहुत बढ़ जाता था। मान-मन्दिर कुछ दूर भी नहीं था। इससे वह चिढ़ कर बोली—"व्यर्थ रुपया क्यों फेंका जाय? मन्दिर कौन बड़ी दूर है। पाँव पाँव क्यों नहीं चली जातीं? हुक्म चला देना तो सहज है। अखरता तो उसे है जो बैल की तरह कमाता है!"

तीन साल पहले गोमती ने इसी तरह की बातें गोदावरी के मुँह से सुनी थीं। आज गोदावरी को ही गोमती के मुँह से वैसी ही बातें सुननी पड़ीं। समय की गति!

इन दिनों गोदावरी बड़े उदासीन भाव से खाना बनाती थी। पण्डितजी के पथ्यापथ्य के विषय में भी अब उसे पहले की सी चिन्ता न थी। एक दिन उसने महरी से कहा कि अन्दाज़ से मसाले निकाल कर पीस ले। मसाले दाल में पड़े तो दाल ज़रा अधिक तेज़ हो गई। मारे भय के पण्डितजी से वह न खाई गई। अन्य आलसी मनुष्यों के सदृश चटपटी वस्तुयें उन्हें भी बहुत प्रिय थीं। परन्तु वे रोग से हारे हुए थे। गोमती ने जब यह सुना तब भौंह चढ़ा कर बोली—"क्या बुढ़ापे में ज़बान गज़ भर की हो गई है!"

कुछ इसी तरह के कटु वाक्य एक बार गोदावरी ने भी कहे थे। आज उसकी बारी सुनने की थी।

(८)

आज गोदावरी गङ्गा से गले मिलने आई है। तीन साल हुए वह वर और वधू को लेकर गङ्गाजी को पुष्प और दूध चढ़ाने गई थी। आज वह अपने प्राण समर्पण करने आई है। आज वह गङ्गाजी की आनन्दमय लहरों में विश्राम करना चाहती है।

गोदावरी को अब उस घर में एक एक पल रहना दुस्सह हो गया था। जिस घर में रानी बन कर रही उसी में चेरी बन कर रहना उस जैसी सगर्वा स्त्री के लिए असम्भव था।

अब इस घर से गोदावरी का स्नेह उस पुरानी रस्सी की तरह था जो बार बार गाँठ देने पर भी कहीं न कहीं से टूट ही जाती है। उसे गङ्गाजी की शरण लेने के सिवा और कोई उपाय न सूझता था।

कई दिन हुए, उसके मुँह से बार बार जान दे देने की धमकी सुन पण्डितजी खिझला कर बोल उठे थे—"तुम किसी तरह मर भी तो जातीं!" गोदावरी उन विष-भरे शब्दों को अब तक न भूली थी। चुभने वाली बातें उसको कभी न भूलती थीं। आज गोमती ने भी वही बातें कहीं। यद्यपि उसने बहुत कुछ सहन करने के पीछे ये कठोर बातें कही थीं। तथापि गोदावरी को अपनी बातें तो भूल सी गई थीं। केवल गोमती और पण्डितजी के वाक्य ही उसके कानों में गूँज रहे थे। पण्डितजी ने उसे डाँटा तक नहीं। मुझ पर ऐसा घोर अन्याय और वे मुँह तक न खोलें!

आज सब लोगों के सो जाने पर गोदावरी घर से बाहर निकली। आकाश में काली घटायें छाई हुई थीं। वर्षा की झड़ी लग रही थी। उसके नेत्रों से भी आँसू की धारा बह रही थी।

प्रेम का बन्धन कितना कोमल है और कितना दृढ़ भी है! कोमल है अपमान के सामने; दृढ़ है वियोग के सामने। गोदावरी चौखट पर खड़ी खड़ी घंटा रोती रही; कितनी ही पिछली बातें उसे याद आती थीं। हा! कभी यहाँ उसके लिए प्रेम भी था, मान भी था, जीवन का सुख भी था। शीघ्र ही पण्डितजी के वे कठोर शब्द भी उसे याद आ गये। आँखों से फिर पानी की धारा बहने लगी। गोदावरी घर से चल खड़ी हुई।

इस समय यदि पण्डित देवदत्त नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, पानी में भीगते, दौड़ते आते और गोदावरी के कम्पित हाथों को पकड़ कर अपने धड़कते हुए हृदय से उसे लगा कर कहते—"प्रिये!" इससे अधिक और उनके मुँह से कुछ भी न निकलता, तो भी क्या गोदावरी अपने विचारों पर स्थिर रह सकती?

क्वार का महीना था। रात को गङ्गा की लहरों की गरज बड़ी भयानक मालूम होती थी। साथ ही जब बिजली तड़

था तब उसकी अहन्ता नष्ट हो जाती थी और वह विश्व के प्रेम में डूब कर, प्रकृति के साथ एकीभूत हो जाता था। निट्शे वास्तव में प्राचीन यूनानी सभ्यता का बड़ा पक्षपाती था। वह आधुनिक सभ्यता को बड़ी ही तुच्छ दृष्टि से देखता था। उसका मत था कि प्राचीन यूनानियों ने कविता, सङ्गीत, नाटकाभिनय, चित्रण, तक्षण इत्यादि कलाओं की सृष्टि इसी उद्देश से की थी कि जीवन के अन्धतामय पेश पर ऐसा पर्दा गिर जाय जिससे हमें सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखाई दे और हम संसार की भयङ्करता को सदा के लिए नहीं तो कुछ काल के लिए अवश्य ही भूल जायँ।

१८७९ में निट्शे का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। इससे वह अध्यापन का कार्य्य छोड़ कर अपने [illegible]—प्रसिद्ध सङ्गीताचार्य्य—वागनर से मिलने के लिए, १८७६ में, बेरेउथ नामक नगर को गया था। उसी साल उसने वागनर की कला-कुशलता के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित की। इसके पहले उसने शापनहार की शिक्षाओं पर भी एक लेख लिखा था। पर इसी निट्शे ने, १८८८ में, वागनर को साँप (A clever rattlesnake, a ty[illegible] [illegible]dent) कह कर उसका परिचय दिया। शापनहार में भी उसकी श्रद्धा अधिक काल तक नहीं रही। धीरे धीरे उसके विचारों में बड़े परिवर्तन उपस्थित होते गये। "Naturally [illegible] [illegible]pper, he lost, in the [illegible] his thinking, all his early [illegible] [illegible] becoming more and more [illegible] [illegible] strongly-worded [illegible] modern men and th[illegible]"

१८७८ ईसवी में उसने [illegible] को [illegible] दे दिया। १८८६ [illegible] के प्रभातागम नाम की एक पुस्तक [illegible] [illegible] उसके [illegible] [illegible] के आधार पर [illegible] [illegible] सकता है। १८८८ में [illegible]

[illegible]ज्ञान—नाम की पुस्तक लिखी। उसकी प्र[illegible] पुस्तक—ज़रथुष्ट्र की वचनावली—भी इसी [illegible] निकली। शक्ति की कामना—नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखने की उसकी बड़ी इच्छा थी [illegible] उसे वह पूरी न कर सका। उसके लिए उसने 'नोट' इकट्ठे किये थे वे अब ८०० पृष्ठों में, पुस्तकाकार, प्रकाशित हुए हैं। यह पुस्तक [illegible] विचारों की विचित्रताओं की खान है।

निट्शे की समझ में यह कहना कि [illegible] के बीच अपना अपना अस्तित्व बना रखने के प्रयत्न चल रहा है, भूल के सिवा और नहीं। अपनी शक्ति—अपनी प्रभुता—बढ़ा[ना] हम लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश है। [illegible] ने अपने पक्ष के समर्थन में जो प्रमाण पेश कि[ये] वे इस छोटे से लेख में नहीं दिये जा सक[ते]। समाज में सबके स्वत्व बराबर हैं, इस विचार [का] वह बड़ा ही विरोधी था। वह समाज में सब[को] बराबर अधिकार देना पसन्द न करता [था]। उसकी शिक्षा है कि समाज [illegible] [illegible] सकता है, उसकी उन्नति के लिए भिन्न भिन्न श्रेणियों का होना ज़रूरी है। समाज को हमारे मनुष्यों की [illegible] के [illegible] संकुचित करना चाहता था। उसने ऐसी नीची श्रेणियों के भी कई बनाए हैं जो [illegible] हैं—

"नीची श्रेणियों के [illegible] [illegible]

[illegible]

पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ कर उसे बिना समाप्त किये नहीं रह सकते और जो उस महात्मा के मुख से निकलने वाले प्रत्येक शब्द को बड़े ध्यान से सुनने के लिए लालायित रहते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता है, मेरा विश्वास उसके वचनों पर बढ़ता ही जाता है। ऐसे ज्ञानी संसार में शायद ही कहीं खोजने से मिलेंगे"। यह बहुत कुछ शोपनहार की ही शिक्षाओं का फल था कि निट्शे ईसाई धर्म्म का परित्याग करके सदा के लिए कट्टर नास्तिक बन गया। शोपनहार के ही दुःखमय जीवन को लक्ष्य करके उसने लिखा है—"संसार में सुखमय जीवन असम्भव है। मनुष्य-जन्म लेकर—कभी अच्छे या बुरे फल के मिलने की परवा न करके—प्रत्येक कार्य्यक्षेत्र में वीरत्व दिखाना ही सब से अधिक प्रशंसनीय काम है। ऐसे मनुष्य का हृदय अन्त में वज्रवत् कठोर हो जाता है; पर उसकी महत्ता में रत्ती भर भी कमी नहीं होती। उसकी कामनायें नष्ट सी हो जाती हैं। वह कर्त्तव्यपरीक्षाओं में अवश्य ही उत्तीर्ण होता है। संसार की कृतघ्नता का अनुभव करता हुआ वह अन्त में निर्वाण प्राप्त करता है। संसार में उसकी स्मृति रह जाती है। और लोग उसे वीर कह कर उसकी पूजा करते हैं"।

थोड़े ही समय बाद निट्शे बेल-विश्वविद्यालय में ग्रीक-भाषा-शास्त्र का अध्यापक नियत हो गया। लिपज़िक के विश्वविद्यालय ने बिना उसकी परीक्षा लिये ही, उसे 'डिगरी' दे दी। बेल में पूरे दस वर्ष वह अध्यापन का कार्य्य करता रहा। जब १८७० में जर्मनी और फ्रान्स के बीच युद्ध छिड़ा, निट्शे रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए जर्मन सेना के साथ फ्रान्स गया। वहाँ से, कुछ काल बाद, बीमार होकर वह घर लौट आया। १८७२ में उसने "वियोगान्त या दुःखान्त नाटकों की उत्पत्ति" नाम की अपनी सब से पहली पुस्तक प्रकाशित की।

निट्शे ईश्वर या परलोक का अस्तित्व न मानता था। शोपनहार के सदृश उसका भी यही ख़याल था कि संसार में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है और हमारे दुःखों का एक मात्र कारण हमारी इच्छायें, हमारी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियाँ, हैं अतएव जहाँ तक हो सके हमें उनसे रहित होने का प्रयत्न करना चाहिए। पर शोपनहार का मत यह था कि संसार की यातनाओं से छुटकारा पाने का उपाय, संसार में जन्म-ग्रहण करने की इच्छा का नाश करना—निर्वाण पद की प्राप्ति के लिए प्रयास करना—है। और, निट्शे के अनुसार इस उपाय का अवलम्बन करना मनुष्योचित व्यवहार नहीं। वह कहता है—"अगर दुनिया तकलीफ़ों से भरी है तो भरी रहे। तुम्हें इस कारण जीवन से निराश होना उचित नहीं। अनन्त जीवन का जो स्रोत तुम्हारे चारों ओर प्रवाहित हो रहा है उसमें तुम्हारा जीवन एक तरङ्ग के समान है। इस लिए संसार के दुःख को अपना दुःख समझना—अपने हृदय में सहानुभूति का भाव उत्पन्न करना—तुम्हारा धर्म्म है; जीवन के बन्धन से मुक्त होने की कोशिश करना तुम्हारा धर्म्म नहीं। आदर्श पुरुष वही है जो जानता है कि संसार में सच्चा सुख कभी नहीं मिल सकता, जो हमारे और तुम्हारे लक्ष्य-पदार्थ—बाहरी चमक-दमक और शोभा-समृद्धि—को घृणा की दृष्टि से देखता है, जो नाश करने योग्य पदार्थों का नाश करने में कभी सङ्कोच नहीं करता, जो स्वयं दुःख पाकर अथवा दूसरों को दुःख पहुँचा कर मुख से कभी 'आह' नहीं निकालता और जो अपनी जीवन यात्रा में कभी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होता"। हमें अपना स्वभाव कुछ ऐसा बना लेना चाहिए जिसकी बदौलत हमें संसार सदा आनन्द-परिपूर्ण दिखाई दे और जीवन-संग्राम में हमें कभी निराशा से भेंट न हो।

निट्शे ने अपनी नव-प्रकाशित पुस्तकों में यही सिद्ध किया है कि इसी भारी जीवनसमस्या को हल करने के उद्देश से, पुराने समय में, यूनानी विद्वानों ने वियोगान्त अथवा दुःखान्त नाटक लिखे थे, क्योंकि जब कभी कोई पुरुष ऐसा अभिनय देखता



इंटौरा (ज़िला झाँसी) का समाधि-मन्दिर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

in moral philosophy" इत्यादि। और, उसी पत्र की दूसरी संख्या में एक प्रसिद्ध विद्वान् अपनी सम्मति देता है—Nietzsche was a highly spiritual teacher, a prophet in the real sense of the term, being in the direct line of those Great teachers who have come from time to time to encourage men to fight against sin, the world and the Devil.

१८८८ में निट्शे का दिमाग़ बिगड़ गया। बहुत कोशिश करने पर भी वह अच्छा न हो सका। १९०० के जनवरी मास में वह इस संसार से चल बसा। तब से उसके भक्तों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही गई। यूरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा में उसके ग्रन्थों के अनुवाद निकले। उनकी कितनी ही अनुकूल और प्रतिकूल समालोचनायें हुईं। किसी ने सरस्वतीसदन में उसे बहुत ही ऊँचे आसन पर बिठाना चाहा; किसी ने उसकी बातों को पागल की बकवास मात्र समझा। इसी बीच में यूरोप में महाभारत शुरू हो गया। लोगों को निट्शे की और भी अधिक याद आने लगी। तब से बराबर उसके ऊपर सैकड़ों लेख निकल रहे हैं। लोग अपनी अपनी क़लम लड़ा रहे हैं। पर अभी तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सका। शायद इसके लिए और भी अधिक समय लगे। "तस्मात्प्रवर्तय सखे सततं परीक्षाम्"।

पारसनाथसिंह

कौशल्या का विलाप।

तन मन जिस पै मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनों में जायगा हाय दैव।
सरसिज-तन हा! हा! कण्टकों में खिंचेगा;
घृत, मधु, पय-पाला स्वेद ही से सिंचेगा ॥१॥

यह हृदय-विदारी दृश्य मैं देखती हूँ;
नयन-सलिल-धारासार से भीगती हूँ।
खल, पतित, अभागे प्राण जाते नहीं क्यों!
रह कर तन में ये हैं लजाते नहीं क्यों ॥२॥

मणि-महल-निवासी कन्दरा में रहेगा;
तज सुमन-बिछौने भूमि पै ही रहेगा।
मृदु-पद-तल वाला कङ्कड़ों में चलेगा;
तज मख़मल आला कङ्कड़ों में चलेगा ॥३॥

नित षट-रस-भोजी खायगा कन्द मूल;
जल तक न मिलेगा नित्य इच्छानुकूल।
वर वसन ज़री के धारता जो सदा था;
वह अजिन बिछावे भाग्य में यों बदा था ॥४॥

नरपति-सुत होके यों उदासी बनेगा;
यह ख़बर किसे थी दैव ऐसा करेगा।
पल पल भर में मैं देख लेती उसे थी;
मुख मलिन न होवे प्राण देती उसे थी ॥५॥

वह मुझ दुखिनी के नेत्र की ज्योति ही था;
बस अधिक कहूँ क्या जान था और जी था।
वन वन फिरने को जायगा लाल मेरा;
विधि कुटिल करेगा हाय क्या हाल मेरा ॥६॥

विधु-मुख न विलोके चैन कैसे पड़ेगी;
निज सब कुछ खोके चैन कैसे पड़ेगी।
वह घन-छवि-वाला सामने जो न होगा;
वह मम पय-पाला सामने जो न होगा ॥७॥

वह मृग-दृग वाला दृष्टि से जो हटेगा;
यह कठिन कलेजा क्यों न मेरा फटेगा।
वह मृदु मुसकाता जो न माता कहेगा;
फिर सुख मुझको क्या प्राण रक्खे रहेगा ॥८॥

फिर मधुर मलाई में किसे हाय दूँगी;
वर विविध मिठाई मैं किसे हाय दूँगी।
मन मृदु वचनों से कौन मेरा हरेगा;
यह हृदय दुखी हो धैर्य्य कैसे धरेगा ॥९॥

प्रति पल किस पै मैं प्राण वारा करूँगी;
मुख लख किसका मैं धीर धारा करूँगी।
विधि यदि जगती में जन्म मेरा न होता,
कुछ रुक रहता क्या कार्य्य तेरा न होता ॥१०॥

दुख विषम सहाने के लिए था बनाया;
यह दिन दिखलाने के लिए था बनाया।

सुत-यश जिसके है गा रहा आज लोक ;
वह सुत बिछुड़ेगा शोक ! हा हन्त शोक ॥११॥
वह नृप-पद पाने में नहीं चाहती थी ;
दुख भरत उठावे मैं नहीं चाहती थी ।
सुरपति पदवी भी तुच्छ मैं मानती थी ;
वह कर सब से मैं लाल को जानती थी ॥१२॥
नृप मुकुट बिना ही क्या न शोभा सना था ?
वह गुण-गरिमा से क्या न राजा बना था ?
गुण-बल समता को लोक में था न वीर ;
रण सुभट यथा था, था तथा धर्म-धीर ॥१३॥
रतिपति-मद-हारी रूप भी था सलोना ;
वह सुरभि सना था और था मन्जु सोना ।
प्रिय सुत वह मेरा वेश धारे यती का ,
निज नयन निहारूँ, दोष है भाग्य ही का ॥१४॥
तन तपन धरूँगी और क्या मैं करूँगी ;
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी ।
विधि ! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ ;
अब तुम मुझको ही मेदिनी से उठाओ ॥१५॥
मम प्रिय सुत छूटा साथ ही देह छूटे ;
पल भर जननी का स्नेह-नाता न टूटे ।
फल कुकृति किये का हाय ! मैं पा रही हूँ ;
पर, विधि पर सारा दोष मैं ला रही हूँ ॥१६॥
इस विषम विपद् में ज्ञान जाता रहा है ;
सदय विधि क्षमा दें, ज्ञान जाता रहा है ।
पर, विनय न मेरी हे विधाता ! भुलाना ;
मम सुत वन में भी तू न भूखा सुलाना ॥१७॥
दुख इस पर कोई और आने न पावे ;
वह कुँवर कन्हैया कष्ट पाने न पावे ।
युग युग चिर जीवे लोक में नाम होवे ,
फिर घर फिर आवे राम हा राम होवे ॥१८॥
किस विध दुख झेलूँ, आर्ति कैसे घटेगा ?
यह अवधि बड़ी है, हाय ! कैसे कटेगा ।
पल पल युग होगा याम तो कल्प होंगे ;
दिन दिन दुख दूना, कह क्या कल्प होवे ? ॥१९॥
निधि यह क्षति होना धैर्य कैसे धरेगा ,
सुध कर कर प्यारे को दुखी हो मरेगा ।

वह सुघर सलोना, अम्ब का प्राण-प्यारा ;
वह सुरभित सोना, अम्ब का प्राण प्यारा ॥२०॥
वह दृढ़-प्रण-पाली नीतिशाली कहाँ है ?
वह हृदय-लता का मन्जु माली कहाँ है ?
वह प्रबल प्रतापी हंस-वंशी कहाँ है ?
वह खल-गण-तापी विष्णु-अंशी कहाँ है ? ॥२१॥
तन सघन घटा सा श्याम प्यारा कहाँ है ?
वह अवधपुरी का राम प्यारा कहाँ है ?
वह मुझ जननी का चक्षु तारा कहाँ है ?
वह तन मन मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ॥२२॥
वह कलरव-केकी बोलता क्यों नहीं है ?
अब मधु श्रवणों में घोलता क्यों नहीं है ?
वन घर भर में ही क्या गया हाय प्यारा ?
अब मुझ दुखिनी को क्या रहा है सहारा ? ॥२३॥
फिर मम सुत कोई पास मेरे बुला दे ,
शशि-मुख वन जाते देख लूँ या दिखा दे ।
निज हृदय लगा लूँ, ताप सारी मिटा लूँ ;
फिर लख उसको मैं चित्त में चैन पा लूँ ॥२४॥
घर भर पर लाता जो कि था मोद-धाम ;
मम प्रिय सुत हा ! हा ! राम ! हा राम ! राम
यह कह कर रानी हो गई चेत-हीन—
जब तज कर जैसे नित्य हो मीन दीन ॥२५॥

"मनहर"

किन्नर-जाति ।



[illegible] हिमालय पर, [illegible] रामपुर [illegible] के दिमालय के अन्तर्गत, एक [illegible] सुन्दर [illegible] है । [illegible] लोग "कनौर" नाम से पुकारते [illegible] कनौर [illegible] रामपुर-बशहर [illegible] राजधानी, [illegible] है । [illegible]

मालूम होता है, मानों गिरिराज हिमालय हरे वस्त्र धारण किये हुए भगवद्भक्ति में निमग्न है। वनों में नाना प्रकार के कुसुमों से लदी हुई तरुलतायें और झरझर बहनेवाले शीतल और मधुर जल के झरने कनौर की शोभा बढ़ा रहे हैं। पुष्प-सुगन्ध के परमाणुओं से परिपूर्ण समीर अपनी मन्द मन्द गति से प्राणिमात्र में नव जीवन का सञ्चार कर रहा है। बीचों बीच सतलज नदी की निर्मल सलिल-राशि पर्वतों के साथ खेलती हुई, कलकल नाद के साथ, बह रही है। ऐसे ही सुहावने प्रदेश में एक जाति निवास करती है जिसे सर्व-साधारण कनौरा कहते हैं। यह वही जाति मालूम होती है जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में "किन्नर" नाम से हुआ है। रूप-लावण्य और आकृति से ये लोग आर्य्य-वंशीय प्रतीत होते हैं। हलका शरीर, लम्बा ललाट, बड़े बड़े नेत्र और गौर वर्ण—ये सब बातें आर्य्य-जाति के ही चिह्न हैं। किन्नर-स्त्रियाँ बड़ी चतुर और सुन्दरी होती हैं। निर्धनता के कारण मैले कुचैले वस्त्र पहनने पर भी उनका प्राकृतिक सौन्दर्य्य ऐसा चमकता है जैसे गुदड़ी के भीतर मणि। हिमालय के स्वच्छ वायु और निर्मल जल के सेवन से जो कान्ति इनके मुखमण्डल पर दिखाई देती है वह नगरों के विषैले और दुर्गन्धयुक्त वायुमण्डल में रह कर सहस्रों प्रकार के उबटन लगाने से भी नहीं प्राप्त हो सकती।

किन्नर-पुरुष ऊनी कपड़े का कोट, पायजामा और टोपी पहनते हैं। स्त्रियाँ गाऊन की तरह का एक ऊनी वस्त्र पहनती हैं। उसे पहाड़ी भाषा में "दोड़" कहते हैं। दूर से देखने पर गाऊन और दोड़ में बहुत कम भेद प्रतीत होता है। दोड़ को अटका रखने के लिए एक प्रकार की सुई या बकसुआ सा होता है। उसे पीनू बोलते हैं। स्त्रियाँ सिर पर टोपी रखती हैं। टोपी के आगे अँगरेज़ों की टोपी के सदृश कपड़े का एक छज्जा सा बाहर निकला होता है। उससे सूर्य के प्रकाश से नेत्रों की रक्षा होती है। स्त्रियाँ प्रायः गले में मूँगे की माला और रुपयों-चवन्नी आदि के हार; कानों में बालियाँ; हाथों में कङ्गन और नाक में नुकरा, जिसे किन्नर-भाषा में कुण्डी कहते हैं, पहनती हैं। सुन्दर और भड़कीले वस्त्र प्रायः इन्हें बहुत कम प्राप्त होते हैं। इसलिए ऊनी कपड़ों को ही धो धा कर ये प्रायः साफ़ करती रहती हैं।

कनौर में शीत अधिक पड़ता है। इसलिए खेती बहुत कम होती है। हिमाच्छादित स्थानों के समी[illegible] तो वर्ष भर में केवल एक ही बार गेहूँ की फ़स[illegible] होती है। वह भी थोड़ी सी। इसलिए खाद्य वस्तुओं की यहाँ बहुत कमी है। परन्तु इस देश में शफ़ताल[illegible] बहुत होता है। लोग उसे इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। उसके छिलके को वे आटे की तरह पीस क[illegible] उससे एक प्रकार का भोजन बनाते हैं। इस भोज[illegible] को वे अपनी भाषा में "लपफों" कहते हैं। शफ़ताल[illegible] की गुठली तोड़ कर उसका बीज निकाल लेते हैं। वह खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। पेरने पर उससे तेल निकलता है। ये लोग इस तेल को खाते हैं।

गेहूँ के अतिरिक्त यहाँ फाफरा और ओगला नाम के दो और निकृष्ट धान्य भी होते हैं। मांस, मदिरा और चाय का भी यहाँ बहुत प्रचार है। परन्तु स्त्रियाँ मदिरा-पान नहीं करतीं। यहाँ के आदमी बड़े मृदु-प्रकृति और सुशील हैं। परन्तु कई कारणों से ये डरपोक हो गये हैं। पर्यटकों और अन्य लोगों के अत्याचार इन्हें बहुत सहने पड़ते हैं। इनसे बेगार ली जाती है। श्वेत-वस्त्रधारी को देखते ही ये बेचारे काँपने लगते हैं। ग़रीब-अमीर, स्त्री-पुरुष सभी बेगार में पकड़े जाते हैं। फिर भी ये लोग बड़े मौजी और ज़िन्दा-दिल हैं। दरिद्रता में भी प्रसन्न रहना कोई इनसे सीखे। स्त्रियों में पर्दे का नाम नहीं। गाने-बजाने और खाने-पीने का सबको शौक़ है। स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ सब मिल कर गाते और नाचते हैं। उत्सवों और मेलों में समस्त नर-नारी कपड़े साफ़ करते और स्नान करते हैं। फिर मायफ़ूल देव-मन्दिर में जाकर, एक दूसरे

का हाथ पकड़ कर और पंक्ति बाँध कर नाचते तथा गाते हैं। पंक्ति के अगले भाग में प्रायः पुरुष होते हैं और पिछले में स्त्रियाँ। परन्तु इसका कोई विशेष नियम नहीं। कहीं कहीं स्त्री-पुरुष परस्पर मिल कर भी खड़े हो जाते हैं। इनका नाच देख कर और इनके गीत सुन कर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। जिन्होंने स्वयं अपनी आँख से यह नाच देखा है वे इसे कभी निन्द्य नहीं कह सकते। इसमें किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं दिखाई देता। यह नाच पवित्र प्रेम और प्राकृतिक आमोद का सूचक है। यह एक जातीय उत्सव है। संसार की कितनी ही सभ्य जातियों में इस तरह का नाच प्रचलित है।

दिन भर के भारी परिश्रम के पश्चात्, विशेषतः सायङ्काल, बेगार करके लौटते समय, जब सब स्त्री-पुरुष, एक दूसरे का हाथ पकड़े, दो दो की पंक्ति में, ऊँचे स्वर से गाते हुए चलते हैं तब बड़ा मनोहर दृश्य दिखाई देता है। इनका गीत-गान दो दो चार चार घण्टे बराबर होता रहता है। खेत में बैठी हुई एक दो युवतियाँ जब मिल कर गाती हैं तब पर्वतों की टक्कर से प्रतिध्वनित होकर उनकी आवाज़ एक विशेष प्रकार का आनन्द देती है। इन लोगों को पुष्पों से बड़ा प्रेम है। जहाँ कहीं फूल मिले, झट तोड़ कर टोपी में लटका लिये।

आचार की दृष्टि से भी ये लोग अपने पड़ोसी अन्य पहाड़ी लोगों से बहुत अच्छे हैं। शिमले के समीपवर्ती प्रदेश में फ़ी सदी ८० स्त्रियाँ आचारहीना हैं। पर किन्नर नारियों में इनकी सख्या बहुत ही कम है। सुनते हैं, पहले, पति या प्रेमी के विश्वासघात करने और छोड़ कर भाग जाने पर, अथवा किसी के व्यर्थ लाञ्छन लगाने पर, किन्नर-नारियाँ सतलज में कूद कर प्राण परित्याग कर दिया करती थीं। अब भी कहीं कहीं ऐसी घटना हो जाती है।

कनौरी-भाषा एक जुदा ही भाषा है। परन्तु जिन लोगों का बाहर देशवालों से काम पड़ता है वे कामचलाऊ हिन्दी अच्छी तरह समझ स[illegible] बोल भी सकते हैं। इनकी भाषा तिब्बती [illegible] के मिश्रण से बनी प्रतीत होती है। उदा[illegible] "तुम्हारा नाम क्या है" ? किन्नर भाषा[illegible] अनुवाद होगा—"किं नामं छिद" ? इ[illegible] नाम भी, भाषा की दृष्टि से, तीन प्रका[illegible] विशुद्ध संस्कृत, विशुद्ध तिब्बती और ति[illegible] संस्कृत-मिश्रित। नीचे हम तीनों प्रकार[illegible] हरण देते हैं। पाठक देखेंगे कि इनमें से कैसे मनोहर हैं—

(१) विशुद्ध संस्कृत-नाम।

[पुरुषों के नाम]

पद्मवीर, इन्द्रवीर, इन्द्रियजित, नरज्ञा[illegible] नरपाल, धर्मराय, पद्मदास, ज्ञानवीर, [illegible] सुखानन्द।

[स्त्रियों के नाम]

चन्द्रमणि, इन्द्रमणि, हीरामणि, देवकली[illegible] कली, कुन्ती, द्रौपदी, हिरण्य, गङ्गादासी, धा[illegible] इन्द्रदासी, जीरदासी, भद्रा।

(२) विशुद्ध तिब्बती-नाम।

[पुरुषों के नाम]

कश्यप पुपल, टाशी छरिङ्, छरिंग दुप, [illegible] शालछेदने।

(स्त्रियों के नाम)

टाशी बूटी, शालबिन, [illegible], छरिंग दा[illegible]

(३) मिश्रित नाम।

[पुरुषों के नाम]

[illegible] छरिङ्, टाशाराम, [illegible], सुखाराम।

(स्त्रियों के नाम)

[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] छरिङ्[illegible]।

इन लोगों का धर्म बौद्ध-धर्म है, परन्तु [illegible] भी बहुत [illegible] [illegible] इन लोगों में [illegible] की पूजा का प्रचार है। [illegible]



निचार नामक स्थान में उषा देवी का एक विशाल मन्दिर है। शिक्षा का प्रचार न होने के कारण ये लोग प्रायः मूढ़-विश्वासी हैं। परन्तु अब कहीं कहीं प्रारम्भिक स्कूल खुल गये हैं, जिससे इन लोगों के ज्ञान-चक्षु खुलने लगे हैं और अविद्यान्धकार दूर हो रहा है।

इनके विवाह की रीति बड़ी विचित्र है। घर के छोटे बड़े सब भाई मिल कर एक स्त्री रख लेते हैं। इस विवाह को ये लोग पाण्डव-विवाह कहते हैं। बड़े भाई की स्त्री सब भाइयों की स्त्री समझी जाती है। इस रीति का यह परिणाम हुआ है कि बहुत सी स्त्रियाँ अविवाहित हैं। यदि इनसे इस रीति का कारण पूछा जाता है तो ये कहते हैं, हमारा देश ठण्ढा है। यहाँ अन्न बहुत कम उपजता है। सब भाइयों के अलग अलग स्त्री करने से सन्तान-संख्या बहुत बढ़ जाय और उसके पालन-पोषण के लिए इस प्रान्त में अन्न वस्त्र मिलना कठिन हो जाय। कुटुम्बियों में से एक भाई नमक ख़रीदने जाता है, दूसरा भेड़-बकरी चराता है, तीसरा अनाज लाता है, चौथा सरकारी बेगार देता है। तब कहीं जाकर कुटुम्ब का निर्वाह होता है। यदि एक एक मनुष्य अलग अलग विवाह करके गृहस्थी चलावे तो इतने काम कैसे कर सके! अतः उसका जीना असम्भव हो जाय। इस सम्मिलित विवाह से दूसरा लाभ यह है कि घर में बहुत सी स्त्रियों के आने से परस्पर ईर्ष्या-द्वेष और फूट की अग्नि प्रज्वलित नहीं होती और कुल नष्ट होने से बच जाता है।

इन लोगों में एक और प्रकार का भी विवाह होता है। उसे किन्नर-भाषा में "डवडब" कहते हैं। इसकी विधि यह है—यदि लड़की किसी के साथ विवाह करना स्वीकार कर ले, परन्तु उसके माता-पिता राज़ी न हों, तो लड़की को अकेली पाकर वर अपने एक दो मित्रों की सहायता से ज़बर्दस्ती उठा ले जाता है। ले जाने के समय यदि लड़की के पास उसकी सहेलियाँ हों और वे उसे छुड़ाने के लिए दौड़ें तो वर के मित्र उन्हें एक एक दो दो रुपए देकर उनसे पिण्ड छुड़ा लेते हैं। लड़की को घर ले जाकर उसके साथ नियमपूर्वक विवाह किया जाता है। यदि वह लड़के के घर जाकर विवाह करना पसन्द न करे तो वह अपने पिता के घर वापस भेज दी जाती है।

सब जायदाद बड़े भाई को मिलती है। वह अपने सिर पर लम्बी चोटी रखता है। बाक़ी के सब भाई सिर मुँडाते हैं।

इस प्रान्त की स्त्रियाँ हमारी स्त्रियों के सदृश परावलम्बिनी नहीं, वे पुरुषों से बढ़ कर काम करती हैं। पुरुष केवल हल जोतते हैं। शेष काम—बीज डालना, निकाई करना, काटना, माँडना इत्यादि—स्त्रियाँ ही करती हैं। सरकारी आज्ञा से प्रत्येक पुरुष को अपनी बारी पर बेगार भुगतनी पड़ती है। कभी कभी पुरुष की बारी आने पर स्त्रियाँ ही बेगार कर आती हैं। स्त्रियाँ यहाँ की स्वतन्त्र कमाई करती हैं। इसलिए, विवाह हो जाने पर भी, पुरुष स्त्री पर अत्याचार नहीं कर सकता। यदि पति पतित हो जाय, व्यभिचारी हो जाय, अथवा स्त्री पर अत्याचार करे तो पत्नी उसका परित्याग कर देती है। ऐसे अवसर पर एक विशेष संस्कार किया जाता है, जिसे किन्नर भाषा में "शिङ्ग टकाशमें" कहते हैं पहले प्रतिष्ठित लोगों की एक पञ्चायत जोड़ी जाती है। उसमें पति और पत्नी अपनी अपनी शिकायतें पेश करते हैं। तब पञ्च लोग शिकायतों को दूर करके दोनों को पुनः प्रीतिपूर्वक रहने का उपदेश करते हैं। यदि दोनों मान गये तो अच्छा नहीं तो एक लकड़ी का एक सिरा स्त्री के ... और दूसरा पुरुष के हाथ में पकड़ा दिया जाता ... तब वह लकड़ी बीच से तोड़ दी जाती है। ... यह अर्थ होता है कि जाव तुम्हारा विवाह टूट गया; अब तुम दोनों स्वतन्त्र हो। चाहो पुनः विवाह कर सकते हो।

इन लोगों का गृह-जीवन बड़ा आनन्दमय है। चाय पीने और भोजन करने समय गृहिणी नमकीन चाय की देगची सामने रख लेती है। सारा परिवार पंक्ति बाँध कर उसके चारों ओर बैठ जाता है वह प्यालियों में चाय डालती जाती है और वे पीते जाते हैं। एक घूँट पी लेते हैं, फिर प्याली को भूमि पर रख कर बातें करने लग जाते हैं। प्याली में चाय न रह जाने पर किसी को माँगने की आवश्यकता नहीं होती; गृहस्वामिनी स्वयं सब का खयाल रखती है। प्याली खाली नहीं होने पाती कि उसमें वह और चाय डाल देती है। इस समय ये लोग, कङ्गाल होकर भी, चक्रवर्ती से प्रतीत होते हैं।

प्रत्येक कुलीन घर में एक लड़की और एक लड़का प्रायः उम्र भर ब्रह्मचारी रहता है और अपने जीवन को धर्म-सेवा में लगाता है। किन्नर-भाषा में ब्रह्मचारिणी लड़की को "जोमो" और ब्रह्मचारी लड़के को "लामा" कहते हैं। सब प्रकार के विषय-विकारों से बचे रहना इनके लिए आवश्यक है।

भाद्रपद में कनौर में एक भारी जातीय उत्सव होता है, जिसे "फुलायच" कहते हैं। इस मेले में खूब राग-रङ्ग और नृत्य होता है। इस उत्सव के साथ वर्ष भर के सारे शोक और आत्मीय जनों की मृत्यु के कारण पैदा हुए सब दुःख दूर कर दिये जाते हैं। सारी जाति शोक के वस्त्र उतार कर आमोद की पोशाक पहन लेती है। साल में इनके यहाँ भिन्न भिन्न अवसरों पर कोई दस मेले होते हैं, जिनमें ये लोग खूब खाते-पीते और गाते-बजाते हैं। उत्सव के दिन खान-पान की सामग्री लेकर स्त्री-पुरुष सब जङ्गल में चले जाते हैं। सारा दिन वहाँ खेल-कूद में व्यतीत करके सायङ्काल घर लौट आते हैं।

सन्तराम, बी० ए०

भारतीय आदेश।

(अपने पुत्रों के प्रति)

सुराज्य प्रभा है अहा छागई;
तुम्हारे सुखों की घड़ी आगई।
नहीं दीखता है अँधेरा कहीं;
न है राक्षसों का बसेरा कहीं।
सवेरा हुआ नींद को तोड़ दो;
सुनो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो।

तुम्हें चाहिए व्यर्थ सोना नहीं;
सदा ख्वाब में काल खोना नहीं।
हुआ सो हुआ, व्यग्र होना नहीं;
तुम्हें योग्य है आज रोना नहीं।
वृथा वाद से चित्त को मोड़ दो;
सुनो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥

नहीं विघ्न-बाधा कहीं आज है;
पुराना ज़माना नहीं आज है।
सुखों के सजे ये सभी साज हैं;
प्रतापी हमारे महाराज हैं।
फुर्टजी अभी फूट को छोड़ दो;
सुनो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ४

वृथा बैठने का नहीं काज है;
महा हानिकारी विग्रह जाल है।
ज़रा देख तो लो कि क्या हाल है;
भवसिंधु में देश बढ़ाज है।
सभी को, उठो, ऐक्य से जोड़ दो;
सुनो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ५

सदा ही सदाचार को ध्यान दो;
शुभादर्श को शान से मान दो।
दयाधाम सर्वेश का ध्यान हो;
उन्हीं के गुणग्राम का ज्ञान हो।
अविद्यादि के सिर को तोड़ दो;
सुनो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ६

बैकुण्ठनाथ शर्मा (काव्यतीर्थ

इटौरा का समाधि-मन्दिर।



कुछ समय हुआ, मुझे एक बारात में जाना पड़ा। बारात गई थी ज़िला जालौन। बारात में मैंने सुना कि वहाँ से इटौरा नाम का मौज़ा दो कोस है। वहाँ एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उसे देखने की बड़ी इच्छा हुई। मैं वहाँ गया। मन्दिर को देख कर चित्त प्रसन्न हुआ। इटौरे में वहाँ के ज़मींदार पण्डित बालाजी माधव लघाटे, बी० ए०, के दर्शन हुए। आपसे मन्दिर-सम्बन्धिनी अनेक बातें ज्ञात हुईं। मन्दिर का चित्र भी आपसे प्राप्त हुआ। मन्दिर के महन्त तथा लघाटे महाशय से मन्दिर का जो हाल मालूम हुआ है वह संक्षेप में नीचे लिखा जाता है।

क़सबा कालपी से इटौरा ३ मील दक्षिण है। सन् ईसवी के सोलहवें शतक में रोपण गुरु नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे। सुनते हैं वे डौंडियाखेरा, ज़िला उनाव, के रहनेवाले थे। यह वही डौंडिया-खेरा नाम की राजधानी है जो सरस्वती-सम्पादक के जन्मग्राम के पास है और जहाँ कनकप्रकाश के कर्त्ता रामकृष्ण राजवैद्य हो गये हैं। इस कनक-प्रकाश की समालोचना पाठकों ने सरस्वती में पढ़ी ही होगी। रोपण गुरु डौंडियाखेरा छोड़ कर कालपी के पास एक निर्जन स्थान में रहने लगे। जहाँ इस समय इटौरा गाँव है वहाँ, ३०० वर्ष पूर्व, गाँव के आस पास, घना जङ्गल था। इसी जङ्गल में वे तपःसाधन में निरत हो गये। एक दिन वे यमुना-स्नान करने कालपी गये। यहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य (गौराङ्ग देव) से उनकी भेंट हुई। चैतन्य प्रभु गुरु रोपण की सात्त्विक वृत्ति देख कर उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य बना लिया। चैतन्य महाप्रभु ने शिष्य रोपण को प्रसादस्वरूप एक कमण्डलु दिया। वह कमण्डलु अब तक गुरु रोपण के वंशजों के पास है। उसे वे बड़ी क़दर करते हैं। भविष्य पुराण में यह बात इस प्रकार वर्णन की गई है—

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवो देवमाहात्म्यमुत्तमम्।
स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रह्मयोनौ बभूव ह॥ १॥
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः।
रोपणो नाम विख्यातो ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः॥ २॥
सूत्रग्रन्थिमतीं मालां तिलकं जलनिर्म्मितम्।
वासुदेवेति तन्मन्त्रं कलौ कृत्वा जने जने॥ ३॥
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञया।
गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णध्यानपरोऽभवत्॥ ४॥
(इति श्रीभविष्यपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युग-खण्डापरपर्य्याये कलियुगेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यारि-वर्णने एकोनविंशोऽध्यायः)

भविष्यपुराण कब बना अथवा ये चारों श्लोक उसमें कब मिलाये गये, इस विषय पर हम यहाँ बहस नहीं करना चाहते। हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि कृष्णचैतन्य के समय में गुरु रोपण हो अवश्य गये हैं। किंवदन्ती तो यह कहती है कि गुरु रोपण डौंडियाखेरे के रहने वाले थे, पर भविष्यपुराण के अनुसार उनकी निवास-भूमि इष्टिका नगरी थी। सम्भव है डौंडियाखेरे की रियासत में इस नाम का कोई नगर या ग्राम उस समय रहा हो। वह प्रसिद्ध न रहा हो, अतएव रियासत की राजधानी को ही गुरु रोपण अथवा उनके वंशजों ने अपना पूर्व-स्थान बताया हो। यह भी सम्भव है कि उस समय इटौरा के ही आस पास इस नाम का कोई गाँव रहा हो, या इष्टिका ही का अपभ्रंश इटौरा हो गया हो। अधिक सम्भावना तो इसी पिछली बात की है। भविष्य-पुराण के पूर्वोल्लिखित श्लोकों से यह भी सूचित है कि रोपण गुरु के पिता का नाम दत्त या गुरुदत्त था।

अपने समय में गुरु रोपण बड़े नामी महात्मा थे। उनकी कीर्ति धीरे धीरे दूर दूर तक फैल गई। उनके हज़ारों शिष्य हो गये। गुरुजी ने अपने मत का नाम निर्गुन सम्प्रदाय या निर्गुन मत रक्खा। दुःख की बात है, इस सम्प्रदाय अथवा गुरुरोपण का बहुत ही कम ऐतिहासिक वृत्तान्त प्राप्य है। इस विषय में जो कुछ ज्ञात है उसका अधिकांश कपोलकल्पित ही जान पड़ता है।

राजा बीरबल कालपी के रहनेवाले थे। इटोरा कालपी के पास ही है। लोग कहते हैं कि बीरबल ने अकबर बादशाह से गुरु रोपण की तपस्या और सिद्धियों का वर्णन किया। अकबर में धर्म्म-द्वेष बिलकुल ही न था। यह सब धर्म्मों के महात्माओं और विद्वानों का आदर करता था। उसने अपना एक नया ही धर्म्म चलाया था। उसका नाम था दीने इलाही। बीरबल से गुरु रोपण की प्रशंसा सुन कर अकबर ने उन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। पर इस समय गुरु रोपण ब्रह्मलीन हो चुके थे। इस कारण बादशाह की आज्ञा का पालन गुरु रोपण के पुत्र ज्ञानराय ने किया। वे मण्डनराय के नाम से भी प्रसिद्ध थे। अकबर ने महात्मा राय की परीक्षा लेने का निश्चय किया। उसने एक दिन एक बर्तन के भीतर एक काला साँप बन्द कराया। फिर उस बर्तन को दरबार में रख कर रायजी से पूछा—इसमें क्या है? रायजी ने उत्तर दिया—गुरु का प्रसाद है। बादशाह ने कहा—तो इसे बाँट दो। निरञ्जनी महात्मा ने बर्तन का ढक्कन खोल कर दो दो पेड़े सबको बाँट दिये। फिर उसे उन्होंने पूर्ववत् ढक दिया। अकबर ने उसे फिर ढक देने का कारण पूछा तो उत्तर मिला कि प्रसाद बँट गया; अब जो था यह रह गया है। इसीसे इसे फिर ढक देने की ज़रूरत हुई है। यह देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, जिस महात्मा के प्रभाव से इसके शिष्यों को ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं उसकी यादगार बननी चाहिए। उसने आज्ञा दी कि मेरे ख़र्च से गुरु रोपण का स्मारक एक सुन्दर समाधि-मन्दिर इटोरे में बनवाया जाय और उसी के पास एक अच्छा तालाब भी खुदाया जाय, तथा अकबर-पुर नाम का एक गाँव भी बसाया जाय। गाँव, मन्दिर और तालाब तीनों अब तक विद्यमान हैं।

मन्दिर अकबर की मृत्यु के बाद, जहाँगीर के राज्यकाल में, बना। मन्दिर में जो शिलालेख हैं उनके अनुसार यह फाल्गुन शुक्ल १३, सोमवार, संवत् १६७२ (सन् १६१५ ईसवी) में बन कर तैयार हुआ। इस मन्दिर में तीन शिलालेख संस्कृत में हैं, एक उस समय की बु[illegible] हिन्दी में। इनमें से पहले की नक़ल [illegible] जाती है—

(१)

निरञ्जनसपक्षेण दक्षेण मुनिवृत्तिना।
भूपालवृन्दवन्द्येन रामेणात्र समाहितम्॥ १॥
नयनमुनिनृपेन्दे क्रोधने मासि माघे (?)।
सदलमकृत रामः पुष्यभेन्दौ च वारे।
यवन-भवनदक्षे श्रीजहांगीरसंज्ञे।
जगति विशदकीर्त्तौ कुर्व्वतीशे सुराज्यम्॥ २॥
गङ्गाकूलसुमूलपूर्व्ववसतिग्रामेत्विटाराभिधे।
राजन्योऽजनि रोपणिः पुनरतः श्रीज्ञानरायिप्रभुः
तस्यापीह सुतो नुतोऽखिलजनैः श्रीपरशरामो गुरुः
चैयं चारु चकार चोपलमयं वैश्यो वदान्यो भुवि
रामश्चारुचकोरकोविदमनोमानं ददद्देहिनाम्।
सन्तारं विनुदन्विनोदमनघत्सत्कर्करणाख्यां कुलम्॥
पात्रापात्रविवेकदाननिरतः पीयूषपूर्णः सदा।
श्रीमद्रोपणिवंशरत्नजलधेर्जातोद्भुतश्चन्द्रमाः॥
समीपे धोकरीपुर्यां ग्रामः सिंहावलीति च।
ततः शिलाः समानीताः श्रीमता रतिभानुना॥

इस शिलालेख की भाषा कई जगह दोषपू[illegible] सम्भव है, इन भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियों में [illegible] नक़ल करने में हो गई हों—भ्रम से कुछ का [illegible] लिख गया हो। पर कुछ त्रुटियाँ शिलाले[illegible] पद्यप्रणेता ही की हैं। जान पड़ता है, सं[illegible] व्याकरण और छन्दः-शास्त्र में लेखक की यथेष्ट[illegible] न थी। तथापि लेख का मतलब अच्छी तरह [illegible] में आ जाता है। यह इस प्रकार है—जहाँगी[illegible] राज्यकाल में, संवत् १६७२ के फाल्गुन में मन्दिर बना। उस दिन पुष्य नक्षत्र और सोम[illegible] था। भूपाल-वृन्द-वन्दित निरञ्जनमतानुयायी [illegible] वृत्तिधारी राम या रोपण इसमें समाहित हैं। ग[illegible] तटवर्त्ती इटोरा ग्राम में रोपणि नामक रा[illegible] (क्षत्रिय) हुआ। उसके ज्ञानराय नामक [illegible] हुआ। ज्ञानराय के परशुराम पुत्र हुआ। [illegible]

इटौरा का समाधि-मन्दिर।



कुछ समय हुआ, मुझे एक बारात में जाना पड़ा। बारात गई थी ज़िला जालौन। बारात में मैंने सुना कि वहाँ से इटौरा नाम का मौज़ा दो कोस है। वहाँ एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उसे देखने की बड़ी इच्छा हुई। मैं वहाँ गया। मन्दिर को देख कर चित्त प्रसन्न हुआ। इटौरे में वहाँ के ज़मींदार पण्डित बालाजी माधव लघाटे, बी० ए०, के दर्शन हुए। आपसे मन्दिर-सम्बन्धिनी अनेक बातें ज्ञात हुईं। मन्दिर का चित्र भी आपसे प्राप्त हुआ। मन्दिर के महन्त तथा लघाटे महाशय से मन्दिर का जो हाल मालूम हुआ है वह संक्षेप में नीचे लिखा जाता है।

क़सबा कालपी से इटौरा ३ मील दक्षिण है। सन् ईसवी के सोलहवें शतक में रोपण गुरु नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे। सुनते हैं वे डौंडियाखेरा, ज़िला उनाव, के रहनेवाले थे। यह वही डौंडियाखेरा नाम की राजधानी है जो सरस्वती-सम्पादक के जन्मग्राम के पास है और जहाँ कनकप्रकाश के कर्त्ता रामकृष्ण राजवैद्य हो गये हैं। इस कनकप्रकाश की समालोचना पाठकों ने सरस्वती में पढ़ी ही होगी। रोपण गुरु डौंडियाखेरा छोड़ कर कालपी के पास एक निर्जन स्थान में रहने लगे। जहाँ इस समय इटौरा गाँव है वहाँ, ३०० वर्ष पूर्व, गाँव के आस पास, घना जङ्गल था। इसी जङ्गल में वे तपःसाधन में निरत हो गये। एक दिन वे यमुना-स्नान करने कालपी गये। वहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य (गौराङ्ग देव) से उनकी भेंट हुई। चैतन्य प्रभु गुरु रोपण की सात्विक वृत्ति देख कर उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य बना लिया। चैतन्य महाप्रभु ने शिष्य रोपण को प्रसादस्वरूप एक कम्बल दिया। यह कम्बल अब तक गुरु रोपण के वंशजों के पास है। उसे वे गद्दी कहते हैं। भविष्यपुराण में यह बात इस प्रकार वर्णन की गई है—

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवो देवमाहात्म्यमुत्तमम्।
स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रह्मयोनौ बभूव ह ॥ १ ॥
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः।
रोपणो नाम विख्यातो ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः ॥ २ ॥
सूत्रग्रन्थिमतीं मालां तिलकं जलनिर्म्मितम्।
वासुदेवेति तन्मन्त्रं कलौ कृत्वा जने जने ॥ ३ ॥
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञया।
गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥ ४ ॥
(इति श्रीभविष्यपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्य्याये कलियुगेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यादिवर्णने एकोनविंशोऽध्यायः)

भविष्यपुराण कब बना अथवा ये चारों श्लोक उसमें कब मिलाये गये, इस विषय पर हम यहाँ बहस नहीं करना चाहते। हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि कृष्णचैतन्य के समय में गुरु रोपण हो अवश्य गये हैं। किंवदन्ती तो यह कहती है कि गुरु रोपण डौंडियाखेरे के रहने वाले थे, पर भविष्यपुराण के अनुसार उनकी निवास-भूमि इष्टिका नगरी थी। सम्भव है डौंडियाखेरे की रियासत में इस नाम का कोई नगर या ग्राम उस समय रहा हो। वह प्रसिद्ध न रहा हो, अतएव रियासत की राजधानी को ही गुरु रोपण अथवा उनके वंशजों ने अपना पूर्व-स्थान बताया हो। यह भी सम्भव है कि उस समय इटौरा के ही आस पास इस नाम का कोई गाँव रहा हो, या इष्टिका ही का अपभ्रंश इटौरा हो गया हो। अधिक सम्भावना तो इसी पिछली बात की है। भविष्य-पुराण के पूर्वोल्लिखित श्लोकों से यह भी सूचित है कि रोपण गुरु के पिता का नाम दत्त या गुरुदत्त था।

अपने समय में गुरु रोपण बड़े नामी महात्मा थे। उनकी कीर्त्ति धीरे धीरे दूर दूर तक फैल गई। उनके हज़ारों शिष्य हो गये। गुरुजी ने अपने मत का नाम निरगुन-सम्प्रदाय या निरगुन-मत रक्खा। दुःख की बात है, इस सम्प्रदाय अथवा गुरु रोपण का बहुत ही कम ऐतिहासिक वृत्तान्त प्राप्य है। इनके विषय में जो कुछ ज्ञात है उसका अधिकांश कर्णोपकर्णिक ही जान पड़ता है।

वदान्य (बड़े दाता) वैश्य ने इस चैत्य का निर्माण किया। सीकर-नगरी के पास सिंहावली नाम का एक गाँव है। वहाँ से श्रीमान रतिभानु के द्वारा लाये गये पत्थर से यह निर्मित हुआ।

गुरु रोपण के वंशज अपने को "बैस (वैश्य) ठाकुर" कहते हैं। इसीसे शायद "राजन्य" के साथ ही "वैश्य" पद का भी प्रयोग इस लेख में किया गया है। चैत्य उसे कहते हैं जिसमें किसी की चिता का कुछ अंश स्थापित किया जाय। इस मन्दिर में गुरु रोपण के "फूल" अर्थात् उनकी अस्थियों का कुछ अंश अवश्य रक्खा गया होगा। क्योंकि ऐसा होने ही से इसका नाम चैत्य या समाधि सार्थक हो सकता है। इस लेख में अकबर या जहाँगीर से प्राप्त साहाय्य का कुछ भी उल्लेख नहीं। यह आश्चर्य्य की बात है। एक बात और भी है। वर्तमान इटौरा के पास गङ्गा नहीं। पर शिलालेख में इटौरा गङ्गा-तटवर्ती बताया गया है। हाँ, डौंडियाखेरा में गङ्गा अवश्य हैं। सम्भव है, वहाँ इस नाम का कोई गाँव रहा हो। रोपण या उनके वंशजों ने उसी के नामानुसार कालपी के पास वाले इटौरा गाँव को बसाया हो। आशा है, लघाटे महाशय इस विषय का विवेचन करेंगे।

इटौरा में गुरु रोपण की गद्दी के वर्तमान महन्त का नाम बलदेवप्रसाद है। आपसे मालूम हुआ कि आपके पूर्व इतने महन्त इस गद्दी के हो गये हैं—(१) गुरु रोपण (२) जानराय (३) परशुराम (४) रतिभान (५) जनार्द्दन (६) भीमसेन (७) जसकरन (८) इन्द्रजीत (९) चतुरदास (१०) कृष्णदास (११) भावनाथ (१२) जयलाल (१३) शिवप्रसाद। इस हिसाब से चैत्य-निर्माता परशुराम गुरु रोपण के पौत्र और सीकरी से पत्थर लानेवाले रतिभानु प्रपौत्र थे। अकबर की मृत्यु १६०५ ईसवी में हुई और मन्दिर बना १६१५ ईसवी में। मालूम नहीं किस सन् में जानराय देहली गये थे। यदि वे अकबर की मृत्यु के ५ वर्ष भी पहले गये हों तो मन्दिर बनने तक, अर्थात् पन्द्रह ही वर्ष में, मण्डनराय भी परलोकगामी हो गये और परशुराम को महन्त की गद्दी मिल गई। साथ ही परशुराम के पुत्र रतिभानु भी इतने वयस्क हो गये कि पत्थर लाने का काम उन्हों ने किया। तीन सौ वर्ष में जो १४ महन्त हुए, अर्थात् हर महन्त के लिए बीस इक्कीस वर्ष का औसत पड़ा, पर आरम्भ के पन्द्रह ही वर्ष में दो हो गये। सम्भव है, इसमें कुछ ग़लती हो। अथवा जानराय अल्पायु हो गये हों।

इस शिलालेख की वंश-क्रम-सूचना में 'सुत' शब्द का प्रयोग हुआ है। शायद ये मुनिवृत्तिधारी निरञ्जनी साधु विवाह करके प्रजोत्पादन भी करते हैं।

दूसरे शिलालेख का मज़मून नीचे दिया जाता है:—

(२)

अस्ति हि आज्ञा गुरोर्देयं दानं दीनेषु नित्यशः।
ज्ञानं सर्वगतं ब्रह्म नामकं तु निरञ्जनम्॥ १॥
दयां सत्यं तपः शौचं अनापं पुण्य-लोपनम्।
कलिमागत विज्ञाय रोपणिः कोपनोऽभवत्॥ २॥
दीयतां दीयतां दानं प्रातरारभ्य नित्यशः।
आनिशीथमिहातिष्ठन् परशुरामेऽवदद् वचः॥ ३॥

इसका तात्पर्य्य यह है—नामों में निरञ्जन का नाम और ज्ञानों में सर्वव्यापक ब्रह्म का ज्ञान ही श्रेष्ठ है। दया, सत्य, तप, शौच और पुण्य आदि का लोप करनेवाले कलि को आ गया देख गुरु रोपणि को क्रोध आया। उन्होंने (शायद स्वप्न में) परशुराम से कहा कि यहाँ रह कर प्रातःकाल से सायङ्काल तक अनवरत दान देते रहो। इसीसे गुरु की यह आज्ञा इस मन्दिर में अङ्कित की जाती है। इस लेख की भी संस्कृत-भाषा में गड़बड़ है। पर मतलब समझ में आ जाता है।

तीसरा शिलालेख पुरानी बुँदेलखण्डी हिन्दी में है। वह ९ पंक्तियों में है। पहली ६ पंक्तियों की अक्षरशः नक़ल इस प्रकार है—

(३)

श्रीरोपनि गुर जग उधरन
संवत् १६७२ साक १५३७
फागुन सुदि १३ सोमर पख
नक्षत्र चौपड पायन को

वदान्य (बड़े दाता) वैश्य ने इस चैत्य का निर्म्माण किया। सीकर-नगरी के पास सिंहावली नाम का एक गाँव है। वहाँ से श्रीमान रतिभानु के द्वारा लाये गये पत्थर से यह निर्मित हुआ।

गुरु रोपण के वंशज अपने को "वैस (वैश्य) ठाकुर" कहते हैं। इसीसे शायद "राजन्य" के साथ ही "वैश्य" पद का भी प्रयोग इस लेख में किया गया है। चैत्य उसे कहते हैं जिसमें किसी की चिता का कुछ अंश स्थापित किया जाय। इस मन्दिर में गुरु रोपण के "फूल" अर्थात् उनकी अस्थियों का कुछ अंश अवश्य रक्खा गया होगा। क्योंकि ऐसा होने ही से इसका नाम चैत्य या समाधि सार्थक हो सकता है। इस लेख में अकबर या जहाँगीर से प्राप्त साहाय्य का कुछ भी उल्लेख नहीं। यह आश्चर्य्य की बात है। एक बात और भी है। वर्तमान इटौरा के पास गङ्गा नहीं। पर शिलालेख में इटौरा गङ्गा-तटवर्त्ती बताया गया है। हाँ, डौंडियाखेरा में गङ्गा अवश्य हैं। सम्भव है, वहाँ इस नाम का कोई गाँव रहा हो। रोपण या उनके वंशजों ने उसी के नामानुसार कालपी के पास वाले इटौरा गाँव को बसाया हो। आशा है, लघाटे महाशय इस विषय का विवेचन करेंगे।

इटौरा में गुरु रोपण की गद्दी के वर्तमान महन्त का नाम बलदेवप्रसाद है। आपसे मालूम हुआ कि आपके पूर्व इतने महन्त इस गद्दी के हो गये हैं— (१) गुरु रोपण (२) जानराय (३) परशुराम (४) रतिभान (५) जनार्द्दन (६) भीमसेन (७) जसकरन (८) इन्द्रजीत (९) चतुरदास (१०) कृष्णदास (११) भावनाथ (१२) जयलाल (१३) शिवप्रसाद। इस हिसाब से चैत्य-निर्माता परशुराम गुरु रोपण के पौत्र और सीकरी से पत्थर लानेवाले रतिभानु प्रपौत्र थे। अकबर की मृत्यु १६०५ ईसवी में हुई और मन्दिर बना १६१५ ईसवी में। मालूम नहीं किस सन् में जानराय देहली गये थे। यदि वे अकबर की मृत्यु के ५ वर्ष भी पहले गये हों तो मन्दिर बनने तक, अर्थात् पन्द्रह ही वर्ष में, मण्डनराय भी परलोकगामी हो गये और परशुराम को महन्त की गद्दी मिल गई। साथ ही परशुराम के पुत्र रतिभानु भी इतने वयस्क हो गये कि पत्थर लाने का काम उन्हीं ने किया। तीन सौ वर्ष में तो १४ महन्त हुए, अर्थात् हर महन्त के लिए बीस इक्कीस वर्ष का औसत पड़ा, पर आरम्भ के पन्द्रह ही वर्ष में दो हो गये! सम्भव है, इसमें कुछ ग़लती हो। अथवा जानराय अल्पायु हो गये हे[illegible]

इस शिलालेख की वंश-क्रम-सूचना में "[illegible] शब्द का प्रयोग हुआ है। शायद ये मुनिवृत्ति[illegible] निरञ्जनी साधु विवाह करके प्रजोत्पादन भी करते[illegible] दूसरे शिलालेख का मज़मून नीचे दिया जाता है[illegible]

(२)

अस्ति हि आज्ञा गुरोर्देयं दानं दीनेषु नित्यशः।
ज्ञानं सर्वत्रगं ब्रह्म नामैकं तु निरञ्जनम् ॥ १ ॥
दयां सत्यं तपः शौचं प्रतापं पुण्य-लोपनम्।
कलिमागतं विज्ञाय रोपणिः कोपनोऽभवत् ॥ २ ॥
दीयतां दीयतां दानं प्रातारभ्य नित्यशः।
आनिशीथमिहातिष्ठन् परशुरामेऽवदद् वचः ॥ ३ ॥

इसका तात्पर्य्य यह है—नामों में निरञ्जन नाम और ज्ञानों में सर्वव्यापक ब्रह्म का ज्ञान ही [illegible] है। दया, सत्य, तप, शौच और पुण्य आदि का ले[illegible] करनेवाले कलि को आ गया देख गुरु रोपण[illegible] क्रोध आया। उन्होंने (शायद स्वप्न में) परशुरा[illegible] से कहा कि यहाँ रह कर प्रातःकाल से मायङ्का[illegible] तक अनवरत दान देते रहो। इसीसे गुरु की [illegible] आज्ञा इस मन्दिर में अङ्कित की जाती है। इस ले[illegible] की भी संस्कृत-भाषा में गड़बड़ है। पर मतल[illegible] समझ में आ जाता है।

तीसरा शिलालेख पुरानी बुँदेलखण्डी हिन्[illegible] में है। वह ९ पंक्तियों में है। पहली ६ पंक्तियों क[illegible] अक्षरशः नक़ल इस प्रकार है—

(३)

श्रीरोपनि गुर अग उधरन
संवत् १६७२ साक १५३७
फागुन सुदि १३ सोमद पष
नयगु श्रीपद पावन को

बनवायो　पथर　कौ　औप—
रसरम　गुसाइ　इटर

इसके आगे ढाई पंक्तियों में शायद लेख खोदनेवाले या मन्दिर के मुख्य मिस्त्री का नाम है। पर वह ठीक ठीक नहीं पढ़ा जाता। अन्त में है—"सुभमस्तु"। इसमें भी मन्दिर बनने का संवत् इत्यादि और बनवानेवाले परशुराम गुसाईं का नाम है।

यह मन्दिर सीकरी से लाये गये लाल पत्थर का है। मन्दिर बड़ा विशाल है। बनवाने में बहुत रुपया खर्च हुआ होगा। इसमें पत्थर पर अच्छा काम है। मन्दिर के भीतर पत्थर पर खुदी हुई बेलें बहुत ही सुन्दर हैं। गुरु रोपण के चलाये हुए निरञ्जनी लोगों का एक मन्दिर ज़िला जालौन के पिया निरञ्जनपुर मौज़े में भी है। पर वह इतना पुराना और अच्छा नहीं। असली और नामी मन्दिर इटौरे ही का है। यहाँ हर साल कार्त्तिकी पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला होता है। हज़ारों आदमी गुरु की समाधि का दर्शन करने आते हैं। बच्चों का चूड़ाकर्म भी मन्दिर में होता है।

समाधि के पट सदा बन्द रहते हैं। दर्शनार्थी लोग १) देकर एक बार २॥) देकर दोनों द्वार खुलवा सकते हैं। समाधि में मूर्ति नहीं। पाँच-सात सीढ़ियाँ उतरने पर नीचे एक छोटी सी कोठरी है। यहाँ फूल आदि चढ़ाये जाते हैं। शायद यहाँ पर गुरु का देहावशेष भूमिस्थ है।

इस मन्दिर के खर्च के लिए पहले इटौरा और [illegible]पुर गाँव लगे हुए थे। वे गुरु के वंशजों के अधिकार में थे। परन्तु उन लोगों ने १८५७ ईसवी के ग़दर के समय गवर्नमेंट की मुख़ालफ़त करके बहुत उत्पात मचाया। इससे यह ज़मींदारी छीन ली गई और झाँसी के [illegible] रायबहादुर पण्डित गोपालराव [illegible] को, उनकी ख़ैरख़्वाही के उपलक्ष्य में, दे दी गई। अब ये दोनों गाँव [illegible] महाशय के ही वंशजों के अधिकार में हैं।

इटौरे के इस मन्दिर को निरञ्जनी [illegible] के अनुयायियों से पूजा-अर्चा और भेंट में [illegible] मिल जाता है उसीसे इसका खर्च चल[illegible] आमदनी का और कोई द्वार नहीं। बुँदेल[illegible] इस मत का विशेष प्रचार है। विशेष कर [illegible] बनिया इसी मत के अनुयायी हैं।

नन्दकिशोर द्विवेदी
(कैनिंग कालेज, ल

भारत की उन्नति का उपाय

[स्वामी विवेकानन्द और उनके एक शिष्य में परस्पर बा

शिष्य—स्वामीजी, आप इस देश में [illegible] क्यों नहीं देते? [illegible] मे तो आपने [illegible], धर्मिक [illegible] देशों को मुग्ध कर दिया है। पर [illegible] में [illegible] के पश्चात् इस ओर [illegible] उत्तम और अनुराग [illegible] हो गया है। इसका कारण क्या? मेरी समझ[illegible] पाश्चात्य देशों की अपेक्षा भारत में इस प्र[illegible] शिक्षा [illegible] की आवश्यकता है।

स्वामीजी—इस देश में [illegible]

शिष्य—[illegible]

कथा समझते और कार्य्यतः धर्म्मानुष्ठान करते हैं उतना अन्य देश वाले नहीं। तब आप की ज्वलन्त याग्मिता के प्रभाव से यह देश क्यों न जागृत होगा और फल भी क्यों न प्राप्त होगा?

स्वामीजी—क्या तुमने यह नहीं सुना—"भूखे भगति न होय गोपाला"। पहले पेट की पूजा करनी होगी। उसे ठंडा किये बिना तुम्हारी धर्म्म कर्म्म की बातों पर कोई ध्यान न देगा। क्या तुम नहीं जानते कि इस समय भारत पेट की चिन्ता से विह्वल हो रहा है? अनेक कारणों से वह अस्थिचर्म्मावशिष्ट हो रहा है। धर्म्म-कथा सुनाने के पहले मनुष्यों के मन से पेट की चिन्ता दूर करनी होगी। अन्यथा केवल लेक्चरों से कोई फल न होगा।

शिष्य—तो हमें अब क्या करना चाहिए?

स्वामीजी—पहले तो कुछ ऐसे त्यागी मनुष्यों की आवश्यकता है जो स्वार्थ का त्याग करके दूसरों के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हों। इसी लिए मठस्थापना करके मैं कुछ बाल-संन्यासी तैयार कर रहा हूँ। शिक्षा समाप्त होने पर वे द्वार द्वार भ्रमण करके सब को देश की वर्तमान शोचनीय दशा का ज्ञान करावेंगे। वर्तमान हीनावस्था से किस तरह उद्धार हो, इसका वे उपदेश करेंगे। साथ ही धर्म्म की महत्ता को भी लोगों के हृदय पर अङ्कित करेंगे। तुम्हारे देश की जनता कुम्भकर्णी निद्रा में निमग्न है। एक तो यहाँ यों ही शिक्षा की कमी है। जिन्हें वह प्राप्त भी होती है वे भी देश-हित के लिए कुछ नहीं कर सकते। करें भी तो किस तरह। कालेज से निकलते न निकलते हमारे युवक कई बच्चों के बाप हो जाते हैं। मुश्किलों में कहीं इन्हें कोई छोटी मोटी नौकरी मिलती है। उनकी शिक्षा का यही फल होता है। गृहस्थी के भार के कारण उच्च कर्म्म तथा उच्च विचार करने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। वे अपने ही स्वार्थ की सिद्धि नहीं कर सकते, दूसरों के लिए वे भला क्या करेंगे?

शिष्य—तो अब क्या कोई उपाय नहीं?

स्वामीजी—है अवश्य। यह देश सनातन-धर्म्म की जन्मभूमि है। गिर अवश्य गया है। पर इसका उत्थान हो सकता है। यह उठेगा और ज़रूर उठेगा। समुद्र अथवा नदी का पानी जितना ही कम हो जाता है, लहरें उतनी ही प्रबलता से उठती हैं। भगवान् भुवन-भास्कर के धार्मिक उदय में विलम्ब नहीं। काम में लग जाओ। आलस्य से अब काम न चलेगा। धर्म्म और शिक्षा सम्बन्धिनी अधोगति का सँदेशा सुना कर कहो, भाई! उठो और कब तक सोओगे। शास्त्रों की महत्ता सरलता-पूर्वक उनको समझा दो। अभी तक इस देश के ब्राह्मणों ने धर्म्म को एकाङ्गी बना रक्खा था। काल के प्रभाव से अब वे बातें नहीं रहीं। अतएव ऐसी व्यवस्था करो जिसमें सर्व-साधारण उस महान् धर्म्म के रहस्यों को समझ सकें। सब को समझा दो कि ब्राह्मणों की भाँति तुम्हारा भी धर्म्म पर समान अधिकार है। चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी को इस महामन्त्र से दीक्षित करो। मीठी मीठी बातों से उन लोगों का ध्यान व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवनोपयोगी विषयों की ओर खींचो। नहीं तो तुम्हारी शिक्षा और तुम्हारा वेद-वेदान्त-ज्ञानही व्यर्थ है।

शिष्य—गुरुदेव! हम लोगों में ऐसी शक्ति कहाँ? आप के शतांश का एकांश भी हममें होता तो हम अपने को धन्य मानते और दूसरों का भी उपकार करने में समर्थ होते।

स्वामीजी—अरे मूर्ख! क्या शक्ति किसी के देने से मिलती है? वह तेरे ही भीतर है। समय आते ही वह स्वयं ही विकसित हो जायगी। तू कार्य्य में लग तो जा। देखना, ऐसी शक्ति प्राप्त होगी कि सँभालना मुश्किल हो जायगा। थोड़ा भी परोपकार करते ही आन्तरिक शक्ति जागृत हो उठती है। दूसरे की भलाई के लिए थोड़ी भी चिन्ता करते ही हृदय में सिंह-बल का सञ्चार हो जाता

है । यद्यपि मैं तुम लोगों को इतना प्यार करता हूँ तथापि इच्छा यही होती है कि तुम लोग दूसरों के लिए अपना शरीर अर्पण कर दो और मैं देखकर सुखी होऊँ ।

शिष्य—पर स्वामीजी, जो लोग हमारे ही ऊपर अवलम्बित हैं उनकी क्या दशा होगी ?

स्वामीजी—यदि तू परार्थ-सम्पादन में लग जायगा तो परमात्मा तेरे आश्रितों का अवश्य ही कुछ न कुछ कर देगा । क्या तूने गीता में नहीं पढ़ा—नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ।

शिष्य—हाँ, पढ़ा अवश्य है ।

स्वामीजी—वास्तव में त्याग ही सब कुछ है । बिना त्यागी बने कोई भी बड़ा कार्य्य नहीं हो सकता । त्यागी ही सब को सम दृष्टि से देखता है और सब की सेवा करने में समर्थ होता है । वेदान्त में तूने पढ़ा ही है कि सब को समदृष्टि से देखना चाहिए । फिर तू अपनी स्त्री और पुत्रों ही को दूसरों की अपेक्षा क्यों विशेषता देता है ? तेरे द्वार पर स्वयं नारायण कङ्गाल-वेश में अनाहारी होकर मृतप्राय पड़े हुए हैं । इन्हें कुछ न देकर केवल अपनी स्त्री और पुत्रों के उदर की पूर्ति करना पशुओं का काम है ।

शिष्य—स्वामीजी, परोपकार करने के लिए विशेष धन की भी तो आवश्यकता होती है । वह कहाँ से लाऊँ ?

स्वामीजी—अच्छा, जितनी शक्ति है, पहले उतना ही क्यों नहीं करते । यदि धनाभाव से कुछ नहीं दे सकते तो क्या दो एक मीठी मीठी बातें अथवा थोड़ा सा सदुपदेश भी नहीं दे सकते ? क्या इसमें भी धन की आवश्यकता है ?

शिष्य—हाँ, यह तो कर सकता हूँ ।

स्वामीजी—कर सकते हो, यह केवल मुँह से कह देने से काम न चलेगा । [illegible] कर [illegible] इतना कर दिखाओ । तब हम समझेंगे कि तुम्हारा हमारे पास आना सार्थक हुआ । [illegible] में [illegible] लग जाओ । यह [illegible] दिन के लिए है । संसार में आये हो [illegible] कोई [illegible] जाओ । वरना तो [illegible]

होते और मरते हैं । "मनुष्य" क्या [illegible] जीने की इच्छा कर सकता है ? [illegible] हमें यह दिखा दो कि तुम्हारा [illegible] सार्थक हुआ । सब के कानों में यह [illegible] कि तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति [illegible] उसे उद्दीप्त करो । केवल अपनी मुक्ति से क्या होगा ! मुक्ति की कामना तो महनी स्वार्थपरता है । तिलाञ्जलि दे दो । परित्याग कर दो मुक्ति की कामना [illegible] जाओ उस कार्य्य में जिसमें मैं लगा [illegible]

शिष्य अवाक् सुनने लगा । स्वामीजी फिर [illegible]

स्वामीजी—तुम लोग जाकर [illegible] तैयार करो । हमारे हज़ारों विवेकानन्द इस देश में [illegible] लिए शरीर धारण करेंगे । इसकी कोई [illegible] करो । देखो, हम लोगों के [illegible] ही पहले यह सोचते थे कि हम में शक्ति नहीं, [illegible] ही [illegible], [illegible] सोच रखे हैं । क्या तुम नहीं देखते कि [illegible] होकर भी तुम्हारी [illegible] है ? तो क्या तुम लोग देशवासियों की सेवा करना न सीख सके [illegible] पर महामारी, दुर्भिक्ष आदि [illegible] हो रहे हैं [illegible] । [illegible]

[illegible]

कथा समझते और कार्य्यतः धर्म्मानुष्ठान करते हैं उतना अन्य देश वाले नहीं। तब आप की ज्वलन्त वाग्मिता के प्रभाव से यह देश क्यों न जागृत होगा और फल भी क्यों न प्राप्त होगा?

स्वामीजी—क्या तुमने यह नहीं सुना—"भूखे भगति न होय गोपाला"। पहले पेट की पूजा करनी होगी। उसे ठंडा किये बिना तुम्हारी धर्म्म कर्म्म की बातों पर कोई ध्यान न देगा। क्या तुम नहीं जानते कि इस समय भारत पेट की चिन्ता से विह्वल हो रहा है? अनेक कारणों से वह अस्थिचर्म्मावशिष्ट हो रहा है। धर्म्म-कथा सुनाने के पहले मनुष्यों के मन से पेट की चिन्ता दूर करनी होगी। अन्यथा केवल लेक्चरों से कोई फल न होगा।

शिष्य—तो हमें अब क्या करना चाहिए?

स्वामीजी—पहले तो कुछ ऐसे त्यागी मनुष्यों की आवश्यकता है जो स्वार्थ का त्याग करके दूसरों के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हों। इसी लिए मठस्थापना करके मैं कुछ बाल-संन्यासी तैयार कर रहा हूँ। शिक्षा समाप्त होने पर वे द्वार द्वार भ्रमण करके सब को देश की वर्तमान शोचनीय दशा का ज्ञान करावेंगे। वर्तमान हीनावस्था से किस तरह उद्धार हो, इसका वे उपदेश करेंगे। साथ ही धर्म्म की महत्ता को भी लोगों के हृदय पर अङ्कित करेंगे। तुम्हारे देश की जनता कुम्भकर्णी निद्रा में निमग्न है। एक तो यहां यों ही शिक्षा की कमी है। जिन्हें वह प्राप्त भी होती है वे भी देश-हित के लिए कुछ नहीं कर सकते। करें भी तो किस तरह। कालेज से निकलने न निकलते हमारे युवक कई बच्चों के बाप हो जाते हैं। मुश्किलों में कहीं उन्हें कोई छोटी मोटी नौकरी मिलती है। उनकी शिक्षा का यही फल होता है। गृहस्थी के भार के कारण उच्च कर्म्म तथा उच्च विचार करने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। वे अपने ही स्वार्थ की सिद्धि नहीं कर सकते, दूसरों के लिए वे भला क्या करेंगे?

शिष्य—तो अब क्या कोई उपाय नहीं?

स्वामीजी—है अवश्य। यह देश सनातन-धर्म्म की जन्मभूमि है। गिर अवश्य गया है। पर इसका उत्थान हो सकता है। यह उठेगा और खूब उठेगा। समुद्र अथवा नदी का पानी जितना ही कम हो जाता है, लहरें उतनी ही प्रबलता से उठती हैं। भगवान् भुवन-भास्कर के धार्मिक उदय में विलम्ब नहीं। काम में लग जाओ; आलस्य से अब काम न चलेगा। धर्म्म और शिक्षासम्बन्धिनी अधोगति का सँदेशा सुना कर कहो, भाई! उठो और कब तक सोओगे। शास्त्रों की महत्ता सरलता-पूर्वक उनको समझा दो। अभी तक इस देश के ब्राह्मणों ने धर्म्म को एकाङ्गी बना रक्खा था। काल के प्रभाव से अब वे बातें नहीं रहीं। अतएव ऐसी व्यवस्था करो जिसमें सर्वसाधारण उस महान् धर्म्म के रहस्यों को समझ सकें। सब को समझा दो कि ब्राह्मणों की भांति तुम्हारा भी धर्म्म पर समान अधिकार है। चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी को इस महामन्त्र से दीक्षित करो। मीठी मीठी बातों से उन लोगों का ध्यान व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवनोपयोगी विषयों की ओर खींचो। नहीं तो तुम्हारी शिक्षा और तुम्हारा वेद-वेदान्त-ज्ञानही व्यर्थ है।

शिष्य—गुरुदेव! हम लोगों में ऐसी शक्ति कहां? आप के शतांश का एकांश भी हममें होता तो हम अपने को धन्य मानते और दूसरों का भी उपकार करने में समर्थ होते।

स्वामीजी—अरे मूर्ख! क्या शक्ति किसी के देने से मिलती है? वह तेरे ही भीतर है। समय आते ही वह स्वयं ही विकसित हो जायगी। तू कार्य्य में लग तो जा। देखना, ऐसी शक्ति प्राप्त होगी कि सँभालना मुश्किल हो जायगा। थोड़ा भी परोपकार करने से आन्तरिक शक्ति जागृत हो उठती है। दूसरे की भलाई के लिए थोड़ी भी चिन्ता करने से हृदय में सिंह-बल का सञ्चार हो जाता

है। यद्यपि मैं तुम लोगों को इतना प्यार करता हूँ तथापि इच्छा यही होती है कि तुम लोग दूसरों के लिए अपना शरीर अर्पण कर दो और मैं देखकर सुखी होऊँ।

शिष्य—पर स्वामीजी, जो लोग हमारे ही ऊपर अवलम्बित हैं उनकी क्या दशा होगी?

स्वामीजी—यदि तू परार्थ-सम्पादन में लग जायगा तो परमात्मा तेरे आश्रितों का अवश्य ही कुछ न कुछ कर देगा। क्या तूने गीता में नहीं पढ़ा—

नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

शिष्य—हाँ, पढ़ा अवश्य है।

स्वामीजी—वास्तव में त्याग ही सब कुछ है। बिना त्यागी बने कोई भी बड़ा कार्य्य नहीं हो सकता। त्यागी ही सब को सम दृष्टि से देखता है और सब की सेवा करने में समर्थ होता है। वेदान्त में तूने पढ़ा ही है कि सब को समदृष्टि से देखना चाहिए। फिर तू अपनी स्त्री और पुत्रों ही को दूसरों की अपेक्षा क्यों विशेषता देता है? तेरे द्वार पर स्वयं नारायण कङ्गाल-वेश में अनाहारी होकर मृतप्राय पड़े हुए हैं। उन्हें कुछ न देकर केवल अपनी स्त्री और पुत्रों के उदर की पूर्ति करना पशुओं का काम है।

शिष्य—स्वामीजी, परोपकार करने के लिए विशेष धन की भी तो आवश्यकता होती है। वह कहाँ से लाऊँ?

स्वामीजी—अच्छा, जितनी शक्ति है, पहले उतना ही क्यों नहीं करते। यदि धनाभाव से कुछ नहीं दे सकते तो क्या दो एक मीठी बातें अथवा थोड़ा सा सदुपदेश भी नहीं दे सकते? क्या इसमें भी धन की आवश्यकता है?

शिष्य—हाँ, यह तो कर सकता हूँ।

स्वामीजी—कर सकते हो, यह केवल मुँह से कह देने ही से काम न चलेगा। जितना कर सकते हो उतना कर दिखाओ। तब हम समझेंगे कि तुम्हारा हमारे पास आना सार्थक हुआ। [illegible] से झटपट लग जाओ। यह [illegible] कितने दिन के लिए है। संसार में आये हो तो कुछ चिह्न छोड़ जाओ। नहीं तो [illegible]

होते और मरते हैं। "मनुष्य" क्या [illegible] जीने की इच्छा कर सकता है? [illegible] हमें यह दिखा दो कि तुम्हारा देश [illegible] सार्थक हुआ। सब के कानों में यह [illegible] कि तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति वर्त्त[illegible] उसे उद्दीप्त करो। केवल अपनी मुक्ति प्र[illegible] से क्या होगा? मुक्ति की कामना [illegible] तो महती स्वार्थपरता है। तिलाञ्जलि दे [illegible] को। परित्याग कर दो मुक्ति की कामना [illegible] जाओ उस कार्य्य में जिसमें मैं लगा हु[illegible]

शिष्य अवाक् सुनने लगा। स्वामीजी फिर कहने [illegible]

स्वामीजी—तुम लोग जाकर खेत तैयार करो। हमारे हजारों विवेकानन्द इस देश में जन्म [illegible] लिए शरीर धारण करेंगे। इसकी कोई चि[न्ता न] करो। देखो, इस लोगों के साथियों ही [illegible] पहले यह सोचते थे कि हम में शक्ति नहीं, [illegible] ही अनाथाश्रम, दुर्भिक्ष [illegible] खोल रक्खे हैं। क्या तुम नहीं देखते कि [illegible] होकर भी गुरुहा[illegible] करना सीख गई है? तो क्या तुम लोग [illegible] की सेवा करना न सीख सके[ंगे?] जहाँ पर महामारी, दुर्भिक्ष आदि [illegible] [illegible] हो रहे हैं वहाँ जाओ। बहुत [illegible] [illegible]। हमारे तुम्हारे जैसे कितने ही [illegible] [illegible] जीते हैं। [illegible] का क्या [illegible] [illegible] है? एक दिन मरना ही है [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] ही में मरना [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारा और तुम्हारे देश का, [illegible]

[illegible]

[illegible]

सोने के गुण।

सोना सब धातुओं में बढ़िया गिना जाता है। शुद्ध सोना रङ्ग में साफ़ और वायु तथा जल में रहने से भी मैला नहीं होता। यह धातु व्यापार में बहुत काम आती है। इसके सिक्के और अनेक प्रकार के आभूषण आदि बनाये जाते हैं। सोने के परमाणु बहुत सघन होते हैं। इस कारण उसमें गुरुत्व भी विशेष होता है। और धातुओं की अपेक्षा सोना अधिक तेज़ अग्नि में गलता है और बढ़ाने से अधिक बढ़ाया भी जा सकता है। जो यह तार की सूरत में खींचा जाय तो इसका तार बहुत पतला खिँच सकता है। यह नरम तो होता है, पर चीमड़ा भी होता है—अर्थात् तोड़ने से यह नहीं टूटता और खींचने से नहीं कटता। अधिक नरम होने के कारण शुद्ध अवस्था में सोने का विशेष उपयोग नहीं होता।

धातुओं की गुरुता, अर्थात् भारीपन, की जाँच से जाना गया है कि मामूली धातुओं में सोना सबसे भारी है। कौन धातु कितनी भारी है, यह जानने की स्थूल रीति इस प्रकार है। धातुओं के गुरुत्व की जाँच के लिए पानी का परिमाण मुख्य माना जाता है। पानी सुगमता से स्वच्छ किया जा सकता है और बिना कष्ट सब कहीं मिल भी सकता है। वर्षा का जल धरती पर गिरने के पूर्व ही, यदि स्वच्छ पात्र में इकट्ठा कर लिया जाय तो वह शुद्ध और स्वच्छ होता है। जल को भपके में भर कर उसकी बाष्प यदि एकत्र कर ली जाय तो उससे भी निर्मल जल प्राप्त हो सकता है। इस तरह प्राप्त किया गया जल धातुओं की गुरुता की माप का परिमाण माना जा[illegible] है। ऐसे शुद्ध जल की तोल जाँच की इकाई [illegible] गई है। कल्पना कीजिए कि एक प्याले में स्वच्छ जल भरा है। [illegible] प्याले की तोल घट[illegible]

जल की तोल समझिए। अब ख़ूब पोंछ कर [illegible] प्याले में सोना आदि धातु ख़ूब ठाँस कर [illegible] दीजिए, जिस में वायु के सञ्चार के लिए भी [illegible] न रहे। तब उसे फिर तोलिए। जो तोल आवे [illegible] से प्याले की तोल का घटा दीजिए। जो बाक़ी बचे [illegible] वही सोने आदि धातु की असल तोल होगी। [illegible] तोल या वज़न में शुद्ध जल की तोल से भ[illegible] दीजिए तो प्राप्त हुई लब्धि ही धातु का गुरुत्व होग[illegible] अर्थात् उससे यह सिद्ध होगा कि जल की अपे[illegible] धातु में इतना अधिक भारीपन है। इस त[illegible] परीक्षा करने से ज्ञान हुआ है कि सुनारों [illegible] सराफ़ों के उपयोगी धातुओं का गुरुत्व जल [illegible] अपेक्षा इस भाँति है—

धातु	गुरुत्व
जल	१
जस्ता	७.२
ताँबा	८.९६
चाँदी	१०.५
सोना	१९.२

पीटने से धातु के परमाणु और भी सघन हो जाते हैं और उसका गुरुत्व भी बढ़ जाता है। इस कारण गढ़े जाने पर सोने का गुरुत्व १९.५ हो जाता है। सब धातुयें अग्नि संयोग से पिघल जाती हैं। जुदी जुदी धातु के पिघलने के लिए जुदी जुदी उष्णता दरकार होती है—

धातु	कितने दर्जे की गरमी से गलती है
शुद्ध सोना	२०१६ दर्जे
" ताँबा	१९९४ "
" चाँदी	१८७३ "
शुद्ध जस्ता	७७३ दर्जे
" सीसा	६१२ "
[illegible]गा	४४२ "

[illegible] है कि सोना बहुत तेज़ आग [illegible] [illegible] गुरुत्व और सघन[illegible] [illegible] इन दो विशेष गुण[illegible]

के सिवा, सोने में यह भी विशेष गुण है कि पीटने से वह सब धातुओं की अपेक्षा अधिक फैल सकता है। एक विज्ञानवेत्ता महाशय का कथन है कि एक तोले सोना पीट कर उसका पत्तर चार एकड भूमि के बराबर बढ़ाया जा सकता है; और यदि उसका अत्यन्त महीन तार खींचा जाय तो एक इंच के दो लाखवें भाग की बराबर पतला खींचा जा सकता है। बाज़ार में सोने के वरक बिकते हैं। वे औषधि के काम आते हैं। ये सोने की अत्यधिक वर्द्धनशीलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। एक तोले सोने का तार ९२,३२० फुट लम्बा खींचा जा सकता है।

बढ़ाव और खिंचाव में तो सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ है, पर चीमड़पन में नहीं। सोने का जितना मोटा तार ७५ सेर बोझ सँभाल सकता है, चाँदी और लोहे का उतना ही मोटा तार क्रम से ९४ और ३५ सेर बोझ सँभाल सकेगा। इससे स्पष्ट है कि बोझ सँभालने में सोना और धातुओं की बराबरी नहीं कर सकता।

और धातुओं के मुक़ाबिले में सोना अधिक नरम है। इस कारण यदि वह शुद्ध रूप में व्यवहृत होता तो शीघ्र घिस जाता है।

गङ्गाशङ्कर पचौली

सर फ़ीरोज़शाह मेहता।



लगभग एक ही वर्ष में भारतवर्ष को बड़ी हानि उठानी पड़ी। राष्ट्रनेताओं की इस हानि का यथेष्ट परिमाण बताना शक्ति के बाहर है। भारत के अनेक नेता उसे छोड़ गये। इसी वर्ष के फ़रवरी महीने में माननीय गोखले देवलोक हो गया। उस शोक से उत्पन्न आँसू न सूखने पाये थे कि भारत के हितैच्छु सर [illegible] का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु को एक पाख भी न व्यतीत होने पाया था कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता का परलोकवास [illegible] भारतवासियों के शोक का भला कहाँ ठि[illegible]।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता की मृत्यु का [illegible] सुन कर हम लोगों के हृदय पर अचानक [illegible] लगी है। सर फ़ीरोज़शाह मेहता भारत[illegible] नेता थे। बम्बई-प्रान्त में उनका बहुत [illegible] उनके गुणों की प्रशंसा गोखले, रानडे आदि [illegible] पुरुषों ने की है। वृद्धावस्था में उनके [illegible] होने के समाचार से ही सब चिन्तित हो [illegible] सब लोग हृदय से उनके आरोग्य होने की [illegible] करते थे। ५ नवंबर को उनके देहान्त का [illegible] पाकर सबको शोक-ग्रस्त हो जाना पड़ा।

फ़ीरोज़शाह मेहता का जन्म ४ [illegible] १८४५ को हुआ था। उनके पिता कामा एंड [illegible] के एक हिस्सेदार थे। उनकी आर्थिक दशा स्वतः अच्छी थी। इस कारण [illegible] विद्याध्ययन का अच्छा अवसर मिला। सन् [illegible] ईसवी में एम० ए० की परीक्षा पास करके बैरि[illegible] की शिक्षा प्राप्त करने ये विलायत गये। वह[illegible] उस समय दादाभाई नौरोजी अकेले ही भार[illegible] सियों के लिए इस प्रयत्न में लगे थे कि उन्हें राजकीय स्वत्व मिल जायँ। फ़ीरोज़शाह मेहता [illegible] उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। ये [illegible] इंडियन सोसाइटी और ईस्ट इंडिया एसोसि[illegible] में भी सम्मिलित हुए। यहीं पर डब्ल्यू० बैनर्जी से उनकी मित्रता हो गई। ईस्ट इंडिया ए[illegible] सियेशन में फ़ीरोज़शाह मेहता ने उदार [illegible] विषय पर एक महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ा। इस[illegible] ये शिक्षा सम्बन्धी विषयों की ओर विशेष ध्यान लगे।

सन् १८६८ ईसवी में बैरिस्टर होकर ये [illegible] देश लौटे। बम्बई में ये म्युनिसिपालिटी के मेम्बर गये। म्युनिसिपालिटी के ही काम में [illegible] का [illegible] हुआ। कोई ४५ वर्ष बम्बई की म्युनिसिपालिटी के मेम्बर रह कर [illegible] उसमें कई बड़े महत्त्व के सुधार किए। बम्बई

सोने के गुण।

सोना सब धातुओं में बढ़िया गिना जाता है। शुद्ध सोना रङ्ग में साफ़ और वायु तथा जल में रहने से भी मैला नहीं होता। यह धातु व्यापार में बहुत काम आती है। इसके सिक्के और अनेक प्रकार के आभूषण आदि बनाये जाते हैं। सोने के परमाणु बहुत सघन होते हैं। इस कारण उसमें गुरुत्व भी विशेष होता है। और धातुओं की अपेक्षा सोना अधिक तेज़ अग्नि में गलता है और बढ़ाने से अधिक बढ़ाया भी जा सकता है। जो यह तार की सूरत में खींचा जाय तो इसका तार बहुत पतला खिँच सकता है। यह नरम तो होता है, पर चीमड़ा भी होता है—अर्थात् तोड़ने से यह नहीं टूटता और खींचने से नहीं कटता। अधिक नरम होने के कारण शुद्ध अवस्था में सोने का विशेष उपयोग नहीं होता।

धातुओं की गुरुता, अर्थात् भारीपन, की जाँच से जाना गया है कि मामूली धातुओं में सोना सबसे भारी है। कौन धातु कितनी भारी है, यह जानने की स्थूल रीति इस प्रकार है। धातुओं के गुरुत्व की जाँच के लिए पानी का परिमाण मुख्य माना जाता है। पानी सुगमता से च्छ किया जा सकता है और बिना कष्ट सब कहीं मिल भी सकता है। वर्षा का जल धरती पर गिरने के पूर्व ही, यदि स्वच्छ पात्र में इकट्ठा कर लिया जाय तो वह शुद्ध और स्वच्छ होता है। जल को भपके में भर कर उसकी बाष्प यदि एकत्र कर ली जाय तो उससे भी निर्मल जल प्राप्त हो सकता है। इस तरह प्राप्त किया गया जल धातुओं की गुरुता की माप का परिमाण माना जाता है। ऐसे शुद्ध जल को तौल जाँच की इकाई मानी गई है। कल्पना कीजिए कि एक प्याले में शुद्ध और स्वच्छ जल भरा है। उसे तौलिए। उसकी तौल से प्याले की तौल घटा दीजिए। जो बचे वही शुद्ध जल की तौल समझिए। अब ख़ूब पोंछ कर उसी प्याले में सोना आदि धातु ख़ूब ठाँस कर भर दीजिए, जिस में वायु के सञ्चार के लिए भी स्थान न रहे। तब उसे फिर तौलिए। जो तौल आवे उस से प्याले की तौल को घटा दीजिए। जो बाक़ी बचेगा वही सोने आदि धातु की असल तौल होगी। इस तौल या वज़न में शुद्ध जल की तौल से भाग दीजिए तो प्राप्त हुई लब्धि ही धातु का गुरुत्व होगा। अर्थात् उससे यह सिद्ध होगा कि जल की अपेक्षा धातु में इतना अधिक भारीपन है। इस तरह परीक्षा करने से ज्ञान हुआ है कि सुनारों और सर्राफ़ों के उपयोगी धातुओं का गुरुत्व जल की अपेक्षा इस भाँति है—

धातु	गुरुत्व
जल	१
जस्ता	७.२
ताँबा	८.९६
चाँदी	१०.५
सोना	१९.२

पीटने से धातु के परमाणु और भी सघन हो जाते हैं और उसका गुरुत्व भी बढ़ जाता है। इस कारण गढ़े जाने पर सोने का गुरुत्व १९.५ हो जाता है। सब धातुयें अग्नि संयोग से पिघल जाती हैं। जुदी जुदी धातु के पिघलने के लिए जुदी जुदी उष्णता दरकार होती है—

धातु	कितने दर्जे की गरमी से गलती है
शुद्ध सोना	२०१६ दर्जे
" ताँबा	१९९४ "
" चाँदी	१८७३ "
शुद्ध जस्ता	७७३ दर्जे
" सीसा	६१२ "
" राँगा	४४२ "

इससे स्पष्ट है कि सोना बहुत तेज़ आग में पिघलता है। सबसे अधिक गुरुत्व और सबसे अधिक तेज़ आग से पिघलना, इन दो विशेष गुणों

के सिवा, सोने में यह भी विशेष गुण है कि पीटने से यह सब धातुओं की अपेक्षा अधिक फैल सकता है। एक विज्ञानवेत्ता महाशय का कथन है कि एक तोले सोना पीट कर उसका पत्तर चार एकड़ भूमि के बराबर बढ़ाया जा सकता है; और यदि उसका अत्यन्त महीन तार खींचा जाय तो एक इंच के दो लाखवें भाग की बराबर पतला खींचा जा सकता है। बाज़ार में सोने के वरक़ बिकते हैं। वे औषधि के काम आते हैं। वे सोने की अत्यधिक वर्द्धनशीलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। एक तोले सोने का तार ९२,३२० फ़ुट लम्बा खींचा जा सकता है।

बढ़ाव और खिंचाव में तो सोना सब धातुओं में श्रेष्ठ है, पर चीमड़पन में नहीं। सोने का जितना मोटा तार ७५ सेर बोझ सँभाल सकता है, चाँदी और लोहे का उतना ही मोटा तार क्रम से ९४ और ५७५ सेर बोझ सँभाल सकेगा। इससे स्पष्ट है कि बोझ सँभालने में सोना और धातुओं की बराबरी नहीं कर सकता।

और धातुओं के मुक़ाबिले में सोना अधिक नरम है। इस कारण यदि वह शुद्ध रूप में व्यवहृत होता तो शीघ्र घिस जाता है।

गङ्गाशङ्कर पञ्चोली

सर फ़ीरोज़शाह मेहता ।



गभग एक ही वर्ष में भारतवर्ष को बड़ी हानि उठानी पड़ी। राष्ट्रनेताओं की इस हानि का यथेष्ट परिमाण बताना शक्ति के बाहर है। भारत के अनेक नेता उसे छोड़ गये। इसी वर्ष के फ़रवरी महीने में माननीय गोखले का देवलोक हो गया। उस शोक से उत्पन्न आँसू भी न सूखने पाये थे कि भारत के हितेच्छु सर हेनरी काटन का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु को एक पाख भी न व्यतीत होने पाया था कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता का परलोकवास हो गया। भारतवासियों के शोक का भला कहीं ठिक

सर फ़ीरोज़शाह मेहता की मृत्यु का सुन कर हम लोगों के हृदय पर अचानक क लगी है। सर फ़ीरोज़शाह मेहता भारत नेता थे। बम्बई-प्रान्त में उनका बहुत मा उनके गुणों की प्रशंसा गोखले, रानडे आदि पुरुषों ने की है। वृद्धावस्था में उनके होने के समाचार से ही सब चिन्तित हो सब लोग हृदय से उनके आरोग्य होने की करते थे। ५ नवंबर को उनके देहान्त का स पाकर सबको शोक-ग्रस्त हो जाना पड़ा।

फ़ीरोज़शाह मेहता का जन्म ४ अगस्त १८४५ को हुआ था। उनके पिता कामा एंड के एक हिस्सेदार थे। उनकी आर्थिक दशा स्वतः अच्छी थी। इस कारण फ़ीरोज़शा विद्याध्ययन का अच्छा अवसर मिला। सन् ईसवी में एम० ए० की परीक्षा पास करके बैरि की शिक्षा प्राप्त करने वे विलायत गये। यह उस समय दादाभाई नौरोजी अकेले ही भार सियों के लिए इस प्रयत्न में लगे थे कि उन्हें राजकीय स्वत्व मिल जायँ। फ़ीरोज़शाह मेहता उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे इंडियन सोसाइटी और ईस्ट इंडिया असोसिये में भी सम्मिलित हुए। वहाँ पर डब्ल्यू० बैनर्जी से उनकी मित्रता हो गई। ईस्ट इंडिया ए सियेशन में फ़ीरोज़शाह मेहता ने उदार शिक्षा विषय पर एक महत्त्वपूर्ण लेख पढ़ा। इसके पश्च वे शिक्षा सम्बन्धी विषयों की ओर विशेष ध्यान लगे।

सन् १८६८ ईसवी में बैरिस्टर होकर वे बम्ब लौट आये। बम्बई में वे म्युनिसिपालिटी के मेम्बर गये। म्युनिसिपालिटी के ही काम में उनके जीव का अधिकांश व्यतीत हुआ। कोई ४५ वर्ष त बम्बई की म्युनिसिपालिटी के मेम्बर रह कर उन्हो उन्होंने कई बड़े महत्त्व के सुधार किये। बम्बई

म्युनिसिपलिटी की आधुनिक उन्नति अधिकतर उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। यह स्वराज्य-सभा का एक छोटा सा नमूना है। बहत्तर मेम्बरों में से केवल सोलह को गवर्नमेंट चुनती है। शेष बम्बई के निवासियों ही द्वारा चुने जाते हैं।

इसके बाद सर फ़ीरोज़शाह भारतवर्ष के प्रत्येक राजनैतिक कार्य्य की ओर ध्यान देने और उसकी चर्चा में सम्मिलित होने लगे। लार्ड लिटन के शासनकाल में वर्नाक्युलर-प्रेस-एक्ट का सबसे अधिक विरोध सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने ही किया था। इस एक्ट के विरोध में जो बातें उन्होंने उस समय कहीं वे विशेष महत्त्व की हैं।

सन् १८८५ ईसवी में बम्बई के प्रान्तीय सम्मेलन (Bombay Presidency Association) की पहली बैठक हुई। इस समिति से उनका बराबर सम्बन्ध बना रहा। कुछ काल तक वे उसके सभापति भी रहे। उनके राजनैतिक विचारों का बहुत कुछ प्रसार इस सम्मेलन में दिये हुए व्याख्यानों द्वारा ही हुआ। वे सदा नरम दल के पक्षपाती रहे। भारत गवर्नमेंट और प्रजा में मित्रता बढ़ा कर प्रजा के लिए राजकीय अधिकार प्राप्त करना ही उनका उद्देश था। उन्होंने सरकारी कार्यों की सदा निर्भीकता से आलोचना की। उस समय से उनकी राजनीतिज्ञता की प्रशंसा बम्बई प्रान्त क्या, सारे भारतवर्ष में होने लगी।

सन् १८८६ में वे बम्बई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर चुने गये। इस कौन्सिल में गवर्नर तथा अन्य मेम्बरों ने भी उनके काम की बड़ी प्रशंसा की। ऐसा कोई भी क़ानूनी मसविदा "पास" नहीं हुआ जिसकी उन्होंने ख़ूब विचार-पूर्वक उचित समालोचना न की हो। जब उन्होंने किसी क़ानूनी मसविदे को प्रजा के लिए हानिकारक समझा तब उसका विरोध करने में कभी सङ्कोच न किया। सभा में वाद-विवाद करने की उनमें विशेष योग्यता थी। उनके उत्तर बहुत ही उचित होते थे। वे कूट और कटाक्ष-पूर्ण होते थे। भूमि-कर के सम्बन्ध में जो मसविदा पेश किया गया था उसका उन्होंने बहुत विरोध किया, परन्तु विपक्षी दल की प्रबलता के कारण वे सफल न हुए। बम्बई की कौन्सिल में वे लगातार २२ वर्ष तक मेम्बर रहे।

वाइसराय की कौन्सिल के लिए भी वे दो बार मेम्बर चुने गये। वहाँ पर भी उनके का[म] बम्बई की कौन्सिल के समान ही, महत्त्व-पूर्ण हु[ए]। कहते हैं कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने कौन्सिल [में] प्रवेश करके वहाँ, उचित मामलों में, शासक द[ल] का विरोध करने की नई प्रथा चलाई। उनके आ[ने] से शासक दल को यह बात विदित हो गई कि प्र[जा] के नियत किये हुए मेम्बरों द्वारा भी अब गवर्नमें[ट] के क़ानूनी मसविदों की कड़ी समालोचना [का] आरम्भ हो गया है। पहले वर्ष सर फ़ीरोज़शा[ह] मेहता ने सर एन्टोनी मेकडानल्ड के पुलिस-विभाग सम्बन्धी मसविदे का विरोध किया। बजट (आयव्य[य] के लेखे) के ऊपर उन्होंने जो पहली वक्तृता दी व[ह] समुचित समालोचना और गवेषणा-पूर्ण विचारों से भरी हुई थी। सन् १९०१ में उन्होंने माननीय गोखले को वाइसराय के कौंसिल में पहुँचाने के लिए अपनी मेम्बरी से इस्तेफ़ा दे दिया।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता नेशनल कांग्रेस के मुख्य मेम्बरों में से थे। १८९० ईसवी में कलकत्ते में जो कांग्रेस हुई थी उसके वे सभापति थे। दो वर्ष वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान हुए थे। सन् १९०९ में वे फिर कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, परन्तु उस साल उन्होंने वह आसन सुशोभित न किया। इस वर्ष भी वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान चुने गये थे। परन्तु दुर्भाग्यवश मृत्यु उन्हें पहले ही उठा ले गई।

मेहता महाशय का राजनैतिक मत यह था कि भारतवर्ष अँगरेज़ों के अधीन रह कर ही अपनी उन्नति कर सकता है। राज-भक्त रह कर प्रजा के अधिकारों की रक्षा करना और उचित अधिकार प्राप्त करना उनका उद्देश था। उनके राजनैतिक विचारों

से माननीय गोखले पूर्णतया सहमत थे। माननीय गोखले ने तो एक बार यहाँ तक कह डाला था कि उन्हें सर फ़ीरोज़शाह के साथ रह कर किसी काम में भूल करना स्वीकार है, किन्तु बिना फ़ीरोज़शाह के बिना भूल का काम करना भी स्वीकार नहीं। पारलियामेंट के एक अँगरेज़-मेम्बर की यह राय है कि फ़ीरोज़शाह मेहता अपने गुणों के कारण किसी भी देश के राजनीतिज्ञों में सबसे ऊँचा स्थान पाने योग्य थे। श्रद्धास्पद दादाभाई नौरोजी ने सर फ़ीरोज़शाह की राजनीतिज्ञता की बड़ी प्रशंसा की है। रानडे सदा उनकी सलाह लिया करते थे। मिस्टर तैलङ्ग ने एक समय यहाँ तक कहा था कि वे सर फ़ीरोज़शाह मेहता को अपना नेता मानते हैं। गवर्नमेंट ने भी मेहता महाशय के गुणों के उपलक्ष्य में उन्हें, सन् १८९४ ईसवी में, सी० आई० ई० की और, सन् १९०४ में, के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया।

सर फ़ीरोज़शाह शिक्षा-सम्बन्धी विषयों की ओर भी विशेष ध्यान देते थे। तीस वर्ष तक वे बम्बई के विश्वविद्यालय के सदस्य (फ़ेलो) रहे। मृत्यु के समय वे उस विद्यालय के वाइस चान्सलर थे।

परन्तु काल की गति पर किसी का वश नहीं। भारतवर्ष की वर्तमान राजनैतिक दशा में सर फ़ीरोज़शाह के सदृश राष्ट्रनेताओं की मृत्यु बहुत ही दुःखजनक है। इस समय यद्यपि वे संसार में नहीं हैं, पर जो कुछ वे अपने देशवासियों के लिए कर गये हैं वह अवश्य स्थायी रहेगा। जो राजनैतिक पाठ उन्होंने अपने आचरण तथा शिक्षा द्वारा हमको पढ़ाये हैं उन्हें हम अपने हृदय से कभी दूर न कर सकेंगे।

रामचरण राव।

मौर्य्य-साम्राज्य का लोप

ईसा के कोई तीन सौ [illegible] चन्द्रगुप्त ने मगध [illegible] साम्राज्य की प्रतिष्ठा की वंश के राजाओं की पाटलिपुत्र (वर्तमान पट[illegible] इस वंश में अशोक नामक एक बड़ा ही प्र[illegible] हो गया है। उसने बहुत दूर तक अपने [illegible] विस्तार किया था। अनेकानेक लोकोपका[illegible] भी उसने किये थे। परन्तु अशोक की मृत्यु थोड़े ही दिनों में मौर्य्य-साम्राज्य नष्ट हो गय[illegible] बड़े साम्राज्य के इस तरह नष्ट हो जाने [illegible] कारण आज तक विद्वान् इतिहास-लेखक [illegible] नहीं कर सके हैं। कुछ समय हुआ, महामहो[illegible] पण्डित हरप्रसाद शास्त्री का लिखा हुआ, [illegible] टिक-सोसाइटी की पत्रिका में, इस विषय [illegible] लेख निकला था। उसमें उन्होंने मौर्य्य-सा[illegible] लोप होने का बहुत ही युक्तिसङ्गत कारण ब[illegible] है। उसी लेख का सारांश पाठकों के मनो[illegible] यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

विन्सेंट स्मिथ साहब इसका कोई कारण नहीं कह सके कि अशोक का इतना बड़ा सा[illegible] क्यों नष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का प्राचीन इतिहा[illegible] नामक अपने ग्रन्थ में इन्होंने लिखा है कि [illegible]

[illegible]

म्युनिसिपलिटी की आधुनिक उन्नति अधिकतर उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। वह स्वराज्य-सभा का एक छोटा सा नमूना है। बहत्तर मेम्बरों में से केवल सोलह को गवर्नमेंट चुनती है। शेष बम्बई के निवासियों ही द्वारा चुने जाते हैं।

इसके बाद सर फ़ीरोज़शाह भारतवर्ष के प्रत्येक राजनैतिक कार्य्य की ओर ध्यान देने और उसकी चर्चा में सम्मिलित होने लगे। लार्ड लिटन के शासनकाल में वर्नाक्युलर-प्रेस-एक्ट का सबसे अधिक विरोध सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने ही किया था। इस एक्ट के विरोध में जो बातें उन्होंने उस समय कहीं वे विशेष महत्त्व की हैं।

सन् १८८५ ईसवी में बम्बई के प्रान्तीय सम्मेलन (Bombay Presidency Association) की पहली बैठक हुई। इस समिति से उनका बराबर सम्बन्ध बना रहा। कुछ काल तक वे उसके सभापति भी रहे। उनके राजनैतिक विचारों का बहुत कुछ प्रसार इस सम्मेलन में दिये हुए व्याख्यानों द्वारा ही हुआ। वे सदा नरम दल के पक्षपाती रहे। भारत गवर्नमेंट और प्रजा में मित्रता बढ़ा कर प्रजा के लिए राजकीय अधिकार प्राप्त करना ही उनका उद्देश था। उन्होंने सरकारी कार्यों की सदा निर्भीकता से आलोचना की। उस समय से उनकी राजनीतिज्ञता की प्रशंसा बम्बई प्रान्त क्या, सारे भारतवर्ष में होने लगी।

सन् १८८६ में वे बम्बई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर चुने गये। इस कौन्सिल में गवर्नर तथा अन्य मेम्बरों ने भी उनके काम की बड़ी प्रशंसा की। ऐसा कोई भी क़ानूनी मसविदा "पास" नहीं हुआ जिसकी उन्होंने ख़ूब विचार-पूर्वक उचित समालोचना न की हो। जब उन्होंने किसी क़ानूनी मसविदे को प्रजा के लिए हानिकारक समझा तब उसका विरोध करने में कभी सङ्कोच न किया। सभा में वाद-विवाद करने की उनमें विशेष योग्यता थी। उनके उत्तर बहुत ही उचित होते थे। वे कूट और कटाक्ष-पूर्ण होते थे। भूमि-कर के सम्बन्ध में जो मसविदा पेश किया गया था उसका उन्होंने बहुत विरोध किया, परन्तु विपक्षी दल की प्रबलता के कारण वे सफल न हुए। बम्बई की कौन्सिल में वे लगातार २२ वर्ष तक मेम्बर रहे।

वाइसराय की कौन्सिल के लिए भी वे तीन बार मेम्बर चुने गये। वहाँ पर भी उनके कार्य्य, बम्बई की कौन्सिल के समान ही, महत्त्व-पूर्ण हुए। कहते हैं कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने कौन्सिल में प्रवेश करके वहाँ, उचित मामलों में, शासक दल का विरोध करने की नई प्रथा चलाई। उनके जाने से शासक दल को यह बात विदित हो गई कि प्रजा के नियत किये हुए मेम्बरों द्वारा भी अब गवर्नमेंट के क़ानूनी मसविदों की कड़ी समालोचना का आरम्भ हो गया है। पहले वर्ष सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने सर एन्टोनी मेकडानल के पुलिस-विभाग-सम्बन्धी मसविदे का विरोध किया। बजट (आयव्यय के लेखे) के ऊपर उन्होंने जो पहली वक्तृता दी वह समुचित समालोचना और गवेषणा-पूर्ण विचारों से भरी हुई थी। सन् १९०१ में उन्होंने माननीय गोखले को वाइसराय के कौंसिल में पहुँचाने के लिए अपनी मेम्बरी से इस्तेफ़ा दे दिया।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता नेशनल कांग्रेस के मुख्य मेम्बरों में से थे। १८९० ईसवी में कलकत्ते में जो कांग्रेस हुई थी उसके वे सभापति थे। दो वर्ष वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान हुए थे। सन् १९०९ में वे फिर कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, परन्तु उस साल उन्होंने वह आसन सुशोभित न किया। इस वर्ष भी वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान चुने गये थे। परन्तु दुर्भाग्यवश मृत्यु उन्हें पहले ही उठा ले गई।

मेहता महाशय का राजनैतिक मत यह था कि भारतवर्ष अँगरेज़ों के अधीन रह कर ही अपनी उन्नति कर सकता है। राज-भक्त रह कर प्रजा के अधिकारों की रक्षा करना और उचित अधिकार प्राप्त करना उनका उद्देश था। उनके राजनैतिक विचारों

से माननीय गोखले पूर्णतया सहमत थे। माननीय गोखले ने तो एक बार यहाँ तक कह डाला था कि उन्हें सर फ़ीरोज़शाह के साथ रह कर किसी काम में भूल करना स्वीकार है, किन्तु विना फ़ीरोज़शाह के बिना भूल का काम करना भी स्वीकार नहीं। पारलियामेंट के एक अँगरेज़ मेम्बर की यह राय है कि फ़ीरोज़शाह मेहता अपने गुणों के कारण किसी भी देश के राजनीतिज्ञों में सबसे ऊँचा स्थान पाने योग्य थे। श्रद्धास्पद दादाभाई नौरोजी ने सर फ़ीरोज़शाह की राजनीतिज्ञता की बड़ी प्रशंसा की है। रानडे सदा उनकी सलाह लिया करते थे। मिस्टर तैलङ्ग ने एक समय यहाँ तक कहा था कि वे सर फ़ीरोज़शाह मेहता को अपना नेता मानते हैं। गवर्नमेंट ने भी मेहता महाशय के गुणों के उपलक्ष्य में उन्हें, सन् १८९४ ईसवी में, सी० आई० ई० की और, सन् १९०४ में, के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया।

सर फ़ीरोज़शाह शिक्षा-सम्बन्धी विषयों की ओर भी विशेष ध्यान देते थे। तीस वर्ष तक वे बम्बई के विश्वविद्यालय के सदस्य (फ़ेलो) रहे। मृत्यु के समय वे उस विद्यालय के वाइस चान्सलर थे।

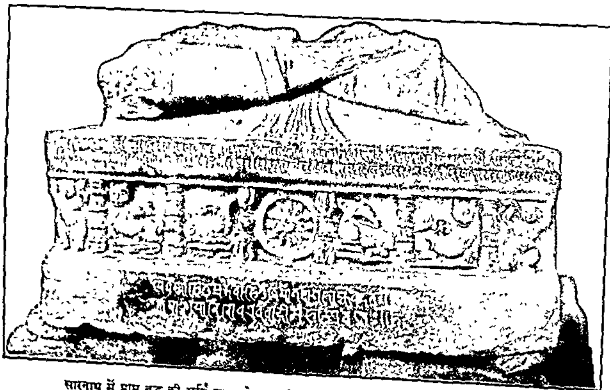
परन्तु काल की गति पर किसी का वश नहीं। भारतवर्ष की वर्तमान राजनैतिक दशा में सर फ़ीरोज़शाह के सदृश राष्ट्रनेताओं की
ही दुःखजनक है।
हैं, पर जो कुछ
गये हैं वह
उन्होंने
पढ़ाये
कर

मौर्य्य-साम्राज्य का लोप

[ई]सा के कोई तीन सौ
चन्द्रगुप्त ने मगध
साम्राज्य की प्रतिष्ठा की
वंश के राजाओं की
पाटलिपुत्र (वर्त्तमान पट
इस वंश में अशोक नामक एक बड़ा ही प्रत
हो गया है। उसने बहुत दूर तक अपने
विस्तार किया था। अनेकानेक लोकोपका
भी उसने किये थे। परन्तु अशोक की मृत्
थोड़े ही दिनों में मौर्य्य-साम्राज्य नष्ट हो गय
बड़े साम्राज्य के इस तरह नष्ट हो जाने
कारण आज तक विद्वान् इतिहास-लेखक
नहीं कर सके हैं। कुछ समय हुआ, महामहो
पण्डित हरप्रसाद शास्त्री का लिखा हुआ,
टिक-सोसाइटी की पत्रिका में, इस विषय
लेख निकला था। उसमें उन्होंने मौर्य्य-सा
लोप होने का बहुत ही युक्तिसङ्गत कारण ब
है। उसी लेख का सारांश पाठकों के अवलो
यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

विन्सेंट स्मिथ साहब इसका कोई कारण
नहीं कर सके कि अशोक का इतना बड़ा सा
क्यों नष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का प्राचीन इ
नामक अपने ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि
पहले कलिङ्ग देश इस साम्राज्य से निकल
बाद विदर्भ, आन्ध्र आदि प्रदेशों ने भी
किया। ग्रीक लोगों ने पञ्जाब पर अधि-
इससे यह भी [illegible] से
न आते [illegible] यद्यपि यह
है [illegible] के सह
साम्राज्य [illegible]
बाद [illegible] बाधा

नहीं देता था—उसके राज्य में सभी धर्मों के अनुयायी निर्विघ्नता-पूर्वक अपना अपना धर्मानुष्ठान करते थे—तथापि उसके कितने ही अनुशासनों से उसके हृदय का विपरीत भाव कुछ कुछ प्रकट होता है। स्मिथ साहब लिखते हैं कि अशोक ने केवल पाटलिपुत्र में पशुबलि बन्द कर दी थी। किन्तु उसके राज्य के दूसरे कई स्थानों में भी पशुबलि-निषेध-सूचक अनुशासन पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उसके साम्राज्य में प्रायः सब कहीं पशुहत्या बन्द हो गई थी। उस समय के ब्राह्मण बलिप्रदान करना बहुत पसन्द करते थे। यह अनुशासन उन लोगों के ही विरुद्ध प्रचारित हुआ था। एक शूद्र राजा की आज्ञा से उन लोगों की चिरप्रचलित प्रथा बन्द हो गई। इससे ब्राह्मण लोग अवश्य ही असन्तुष्ट थे। बहुत प्राचीन समय से भारतवर्ष में धर्म-सम्बन्धी बातों में ब्राह्मणों का ही अनुशासन माना जाता था। यदि कोई समाज या धर्म-सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करता तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता और ब्रह्म-भोज कराने पर उसका अपराध क्षमा किया जाता। अशोक ने एक धर्म-व्यवस्थापक सभा बना कर ब्राह्मणों के इस चिरकाल-प्राप्त अधिकार पर हस्ताक्षेप किया था। ब्राह्मण अपनी इस अधिकार-हानि को चुपचाप सहने वाले न थे। अशोक ने अपने राज्य में दण्ड-समता और व्यवहार-समता का नियम चलाया था—अर्थात् उसके राज्य में दण्ड और विचार के सम्बन्ध में उच्च और नीच वर्ण का कुछ भी ख़याल नहीं किया जाता था। यह बात भी ब्राह्मणों को बहुत नागवार थी। अब तक जिन लोगों ने अशोक की ताम्रलिपियों की आलोचना की है उनमें किसी ने भी दण्डसमता और व्यवहारसमता, इन दोनों शब्दों का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझा। ब्राह्मण चाहे कैसा ही भारी अपराध क्यों न करे उसे शारीरिक दण्ड या फाँसी की सज़ा अशोक के पहले कभी नहीं दी जाती थी। ब्राह्मणों को देश से निकाल देना बहुत कठिन दण्ड समझा जाता था और उनकी शिखा कटवा देना तो घोरतम अप[मान] सूचक दण्ड माना जाता था। मुक़द्दमों में ब्राह्मणों के लिए बहुत सुभीता था। उनको क[भी] गवाही न देनी पड़ती थी। यदि कोई ब्राह्मण अप[ने] मन से गवाही देने आता तो न्यायाधीश केव[ल] उसका बयान लिख लेता। उससे जिरह करने [का] न्यायाधीश को कोई अधिकार न था। ऐसी अवस्[था] में अनार्य्य लोगों के साथ जेल जाने और वहाँ रह[ने] का ख़याल ही ब्राह्मणों को बहुत दुःखदायक था। जब तक अशोक का दृढ़ शासन रहा तब तक ब्राह्मण इन सब अवमाननाओं को चुपचाप सहते रहे। किन्तु मन ही मन वे अत्यन्त असन्तुष्ट थे। उसकी मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने दलबद्ध होकर अशोक के वंशधरों के साथ विरोध आरम्भ किया। परन्तु वे ख़ुद लड़ न सकते थे, और जिन क्षत्रिय-राजाओं से उन्हें सहायता मिलने की आशा थी वे भी सब पहले ही नन्दवंश के द्वारा परास्त हो चुके थे। परन्तु, अन्त में, उन्हें इस काम के योग्य एक आदमी मिल गया! यह मौर्य्य-वंश का सेनापति पुष्यमित्र था। पुष्यमित्र किस जाति का था, इसका कुछ पता नहीं। सम्भव है, जिन लड़ाकू लोगों को मीसवालों ने फ़ारिस से निकाल दिया था उन्हीं में से यह भी कोई हो। उसके नाम से भी मालूम होता है कि यह फ़ारिस ही का रहनेवाला होगा। यह ब्राह्मण-धर्म्म का पक्षपाती था और बौद्ध-धर्म्म से बहुत घृणा करता था। ग्रीक लोग मौर्य्य-साम्राज्य में घुसते चले आते थे। पुष्यमित्र ने पहले इन आक्रमणकारियों का सामना किया। युद्ध में उन्हें परास्त करके यह विजयी सेना के साथ पाटलिपुत्र आया। अशोक के वंशधरों ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। विजय के उपलक्ष में नगर के बाहर सेनानिवेश में उत्सव मनाया जाने लगा। जिस समय यह उत्सव हो रहा था उसी समय कहीं से एक तीर छूटा और अशोक के पद-धर राजा के कलेजे में घुस गया। उसी समय उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार मौर्य साम्राज्य



सारनाथ में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति का अधोभाग, दो संस्कृत-लेखों से युक्त—समय १०२६ ईसवी।
(क) ऊपर के लेख में जीर्णोद्धार का उल्लेख है। लेख की नक़ल सारनाथ-विषयक लेख में देखिए।
(ख) नीचे के लेख में बौद्ध-धर्म के तत्त्वार्थसूचक वचन हैं।

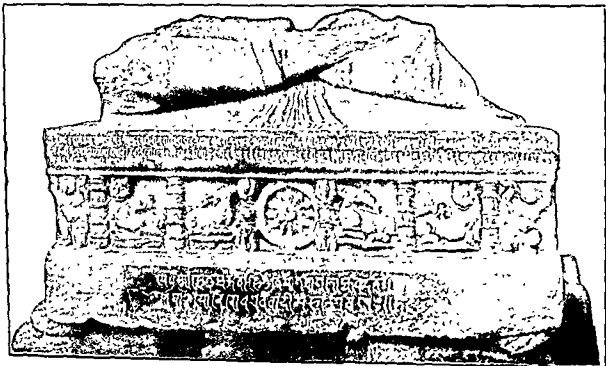
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

का अन्त हो गया और पुष्यमित्र ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया । मालविकाग्निमित्र नाटक से पता लगता है कि पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ पाटलिपुत्र ही में रहा और अपने पुत्र को उसने विदिशा (भिलसा) के सिंहासन पर बिठाया। इस विप्लव में ब्राह्मणों की साज़िश साफ़ साफ़ दिखाई देती है । इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि अशोक ने अपने साम्राज्य में पशुबलि को बन्द कर दिया था। पुष्यमित्र ने सम्राट् होकर अशोक ही की राजधानी पाटलिपुत्र में अश्वमेध-यज्ञ किया। क्या इससे कथित कारण की पुष्टि नहीं होती ? किसी किसी बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धों का विरोधी था। यह बात मिथ्या नहीं मालूम होती । पुष्यमित्र के राजा होने पर थोड़े ही दिनों में ब्राह्मणों का माहात्म्य बढ़ गया। मौर्य्य-साम्राज्य के सिवा और भी दूर दूर तक उनका प्रभाव फैला। ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म्म का प्रचार रोक दिया । देश की सारी विद्याओं को उन्होंने लिपिबद्ध किया और ब्राह्मण-धर्म्म को ऐसे साँचे में ढाला कि आज तक वह बना हुआ है। पुष्यमित्र के यज्ञ में पतञ्जलि ऋषि ने पुरोहित का काम किया था। पुष्यमित्र के आश्रय में रह कर ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की थी। कण्ववंशीय राजाओं ने मनुसंहिता का संकलन कराया और उन्हीं ने रामायण और महाभारत को आधुनिक रूप में परिणत किया । ब्राह्मण-राजवंश जिस समय राजसिंहासन पर न था उस समय भी ब्राह्मण लोग शुङ्गवंशीय राजाओं के गुरु थे । राज्यसञ्चालन में उनका भी हाथ रहता था। राज्यशासन-सम्बन्धी प्रभुता का लोप होने पर भी बहुत दिनों तक वे समाज के मुखिया थे और सारी विधि-व्यवस्था उन्हीं के द्वारा होती थी। मनुसंहिता से मालूम होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों के जो अधिकार छीन लिये थे उनको ब्राह्मणों ने फिर से प्राप्त करके समाज में अपनी श्रेष्ठता पुनर्वार स्थापित कर दी । अशोक ने ब्राह्मणों की भूदेव-उपाधि को मिथ्या बतलाया था। परन्तु ब्राह्मणों ने अशोक के बाद भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया।

अशोक ने जाति-पाँति का विचार [illegible] विचार-समता का नियम चलाया था। उ[illegible] परिणाम हुआ वह मृच्छकटिक नामक [illegible] मालूम होता है। जान पड़ता है कि इस न[illegible] राजा पालक अशोक का अनुगामी था [illegible] राज्य में ब्राह्मणों की बड़ी दुर्दशा थी। [illegible] नामक ब्राह्मण और उसके अनुचर बहुत [illegible] हो गये थे । शार्वलिक नामक एक ब्राह[illegible] जीविका के लिए चोरी करनी पड़ी थी। न्या[illegible] ने जिस समय चारुदत्त को स्त्री-हत्या का [illegible] ठहराया उस समय वह चारुदत्त को ब्राह्मण [illegible] कर उसे प्राणदण्ड देने के विषय में पशोपे[illegible] लगा। परन्तु राजा ने उसकी एक न सुनी [illegible] चारुदत्त को फाँसी पर चढ़ा देने ही की आ[illegible] उसकी आज्ञा का पालन भी नहीं किया गया [illegible] दङ्गा उठ खड़ा हुआ । राजा सिंहासन से [illegible] दिया गया। चारुदत्त ने प्रधान मन्त्री का प[illegible] किया और शार्व्वलिक भी एक उच्च पद[illegible] बनाया गया । इस साहित्य से यह प्रमाणित [illegible] है कि अशोक ने ब्राह्मणों को जो अन्य धर्मा[illegible] बराबर करने की चेष्टा की थी उसीसे [illegible] साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका।

फ़ा-हियान की भारत-यात्रा।

प्राचीन भारत के इतिहास का [illegible] बहुत पता जो हमें लगता [illegible] ग्रीक और चीनी यात्रियों [illegible] यात्रा-वृत्तान्त से लगता है। [illegible] वाले इस देश में सैनिक, दा[illegible] अथवा राजदूत बन कर आते थे। इन्हीं से [illegible] लेखों में अधिकतर भारतीय राजनीति, शा[illegible] पद्धति और भौगोलिक बातों ही का उल्लेख [illegible] उन्होंने भारतीय धर्म और शास्त्रों की छान [illegible]



सारनाथ में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति का अधोभाग, दो संस्कृत-लेखों से युक्त—समय १०२६ ईसवी।

(क) ऊपर के लेख में जीर्णोद्धार का उल्लेख है। लेख की नक़ल सारनाथ-विषयक लेख में देखिए।

(ख) नीचे के लेख में बौद्ध-धर्म्म के तत्त्वार्थसूचक वचन हैं।

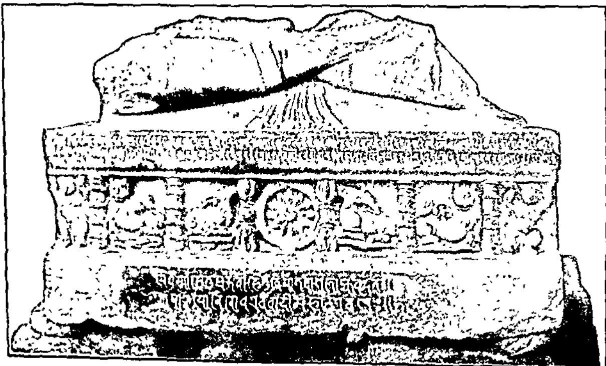
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

का अन्त हो गया और पुष्यमित्र ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया । मालविकाग्निमित्र नाटक से पता लगता है कि पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ पाटलिपुत्र ही में रहा और अपने पुत्र को उसने विदिशा (भिलसा) के सिंहासन पर बिठाया । इस विद्रव में ब्राह्मणों की साज़िश साफ़ साफ़ दिखाई देती है । इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि अशोक ने अपने साम्राज्य में पशुबलि को बन्द कर दिया था । पुष्यमित्र ने सम्राट् होकर अशोक ही की राजधानी पाटलिपुत्र में अश्वमेध-यज्ञ किया । क्या इससे कथित कारण की पुष्टि नहीं होती ? किसी किसी बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धों का विरोधी था । यह बात मिथ्या नहीं मालूम होती । पुष्यमित्र के राजा होने पर थोड़े ही दिनों में ब्राह्मणों का माहात्म्य बढ़ गया । मौर्य-साम्राज्य के सिवा और भी दूर दूर तक उनका प्रभाव फैला । ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म्म का प्रचार रोक दिया । देश की सारी विद्याओं को उन्होंने लिपिबद्ध किया और ब्राह्मण-धर्म्म को ऐसे साँचे में ढाला कि आज तक वह बना हुआ है । पुष्यमित्र के यज्ञ में पतञ्जलि ऋषि ने पुरोहित का काम किया था । पुष्यमित्र के आश्रय में रह कर ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की थी । कण्ववंशीय राजाओं ने मनुसंहिता का संकलन कराया और उन्हीं ने रामायण और महाभारत को आधुनिक रूप में परिणत किया । ब्राह्मण-राजवंश जिस समय राजसिंहासन पर न था उस समय भी ब्राह्मण लोग क्षत्रियवंशीय राजाओं के गुरु थे । राज्यसञ्चालन में उनका भी हाथ रहता था । राज्यशासन-सम्बन्धी विद्या का लोप होने पर भी बहुत दिनों तक वे समाज के मुखिया थे और सारी विधि व्यवस्था उन्हीं के द्वारा होती थी । मनुसंहिता से मालूम होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों के जो अधिकार छीन लिये थे उनको ब्राह्मणों ने फिर से प्राप्त करके समाज में अपनी श्रेष्ठता पुनर्वार स्थापित कर दी । अशोक ने ब्राह्मणों की भूदेव-उपाधि को मिथ्या बतलाया था । परन्तु ब्राह्मणों ने अशोक के बाद भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया ।

अशोक ने जाति-पाँति का विचार [illegible] विचार-समता का नियम चलाया था । उ[illegible] परिणाम हुआ यह मृच्छकटिक नामक [illegible] मालूम होता है । जान पड़ता है कि इस न[illegible] राजा पालक अशोक का अनुगामी [illegible] राज्य में ब्राह्मणों की बड़ी दुर्दशा थी । [illegible] नामक ब्राह्मण और उसके अनुचर बहुत [illegible] हो गये थे । शार्वलिक नामक एक [illegible] जीविका के लिए चोरी करनी पड़ी थी । [illegible] ने जिस समय चारुदत्त को स्त्री-हत्या का [illegible] ठहराया उस समय वह चारुदत्त को [illegible] कर उसे प्राणदण्ड देने के विषय में [illegible] लगा । परन्तु राजा ने उसकी एक न सुनी [illegible] चारुदत्त को फाँसी पर चढ़ा देने ही की [illegible] उसकी आज्ञा का पालन भी नहीं किया गया [illegible] दङ्गा उठ खड़ा हुआ । राजा सिंहासन [illegible] दिया गया । चारुदत्त ने प्रधान मन्त्री का [illegible] किया और शार्व्वलिक भी एक उच्च [illegible] बनाया गया । इस साहित्य से यह [illegible] है कि अशोक ने ब्राह्मणों को जो अन्य [illegible] बराबर करने की चेष्टा की थी उसीसे [illegible] साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका ।

फ़ा-हियान की भारत-यात्रा ।

प्राचीन भारत के इतिहास का बहुत पता जो हमें लगता है [illegible] प्रायः चीनी यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्त से लगता है । [illegible] पहले इस देश में तीर्थ, [illegible] अथवा राजदूत बन कर आते थे । इन [illegible] लेखों में अधिकतर भारतीय राजनीति, [illegible] पद्धति और भौगोलिक बातों ही का उल्लेख [illegible] उन्होंने भारतीय धर्म और शास्त्रों की [illegible]



सारनाथ में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति का अधोभाग, दो संस्कृत-लेखों से युक्त—समय १०२६ ईसवी ।

(क) ऊपर के लेख में जीर्णोद्धार का उल्लेख है । लेख की नक़ल सारनाथ-विषयक लेख में देखिए ।

(ख) नीचे के लेख में बौद्ध-धर्म्म के तत्त्वार्थसूचक वचन हैं ।

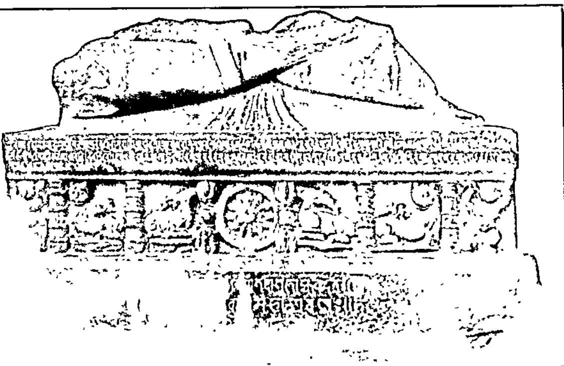
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

का अन्त हो गया और पुष्यमित्र ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। मालविकाग्निमित्र नाटक से पता लगता है कि पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ पाटलिपुत्र ही में रहा और अपने पुत्र को उसने विदिशा (भिलसा) के सिंहासन पर बिठाया। इस विप्लव में ब्राह्मणों की साज़िश साफ़ साफ़ दिखाई देती है। इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि अशोक ने अपने साम्राज्य में पशुबलि को बन्द कर दिया था। पुष्यमित्र ने सम्राट् होकर अशोक ही की राजधानी पाटलिपुत्र में अश्वमेध-यज्ञ किया। क्या इससे कथित कारण की पुष्टि नहीं होती? किसी किसी बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धों का विरोधी था। यह बात मिथ्या नहीं मालूम होती। पुष्यमित्र के राजा होने पर थोड़े ही दिनों में ब्राह्मणों का माहात्म्य बढ़ गया। मौर्य-साम्राज्य के सिवा और भी दूर दूर तक उनका प्रभाव फैला। ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार रोक दिया। देश की सारी विद्याओं को उन्होंने लिपिबद्ध किया और ब्राह्मण-धर्म को ऐसे साँचे में ढाला कि आज तक वह बना हुआ है। पुष्यमित्र के यज्ञ में पतञ्जलि ऋषि ने पुरोहित का काम किया था। पुष्यमित्र के आश्रय में रह कर ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की थी। कण्ववंशीय राजाओं ने मनुसंहिता का संकलन कराया और उन्हीं ने रामायण और महाभारत को आधुनिक रूप में परिणत किया। ब्राह्मण-राजवंश जिस समय राजसिंहासन पर न था उस समय भी ब्राह्मण लोग क्षत्रियवंशीय राजाओं के गुरु थे। राज्यसञ्चालन में उनका भी हाथ रहता था। राज्यशासन-सम्बन्धी क्षमता का लोप होने पर भी बहुत दिनों तक ये समाज के मुखिया थे और सारी विधि-व्यवस्था उन्हीं के द्वारा होती थी। मनुसंहिता से मालूम होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों के जो अधिकार छीन लिये थे उनको ब्राह्मणों ने फिर से प्राप्त करके समाज में अपनी श्रेष्ठता पुनर्वार स्थापित कर दी। अशोक ने ब्राह्मणों की भूदेव-उपाधि को मिथ्या बतलाया था। परन्तु ब्राह्मणों ने अशोक के बाद भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया।

अशोक ने जाति-पाँति का विचार [illegible] विचार-समता का नियम चलाया था। उ[illegible] परिणाम हुआ वह मृच्छकटिक नामक [illegible] मालूम होता है। जान पड़ता है कि इस ना[illegible] राजा पालक अशोक का अनुगामी था [illegible] राज्य में ब्राह्मणों की बड़ी दुर्दशा थी। [illegible] नामक ब्राह्मण और उसके अनुचर बहुत [illegible] हो गये थे। शार्वलिक नामक एक ब्राह्[illegible] जीविका के लिए चोरी करनी पड़ी थी। न्या[illegible] ने जिस समय चारुदत्त को स्त्री-हत्या का [illegible] ठहराया उस समय वह चारुदत्त [illegible] कर उसे प्राणदण्ड देने के विषय में [illegible] लगा। परन्तु राजा ने उसकी एक न सुनी [illegible] चारुदत्त को फाँसी पर चढ़ा देने ही की [illegible] उसकी आज्ञा का पालन भी नहीं किया गया [illegible] दङ्गा उठ खड़ा हुआ। राजा सिंहासन [illegible] दिया गया। चारुदत्त ने प्रधान मन्त्री का [illegible] किया और शार्व्वलिक भी एक उच्च [illegible] बनाया गया। इस साहित्य से यह [illegible] है कि अशोक ने ब्राह्मणों को जो अन्य [illegible] बराबर करने की चेष्टा की थी उसीसे [illegible] साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका।

फ़ा-हियान की भारत-यात्रा।

प्राचीन भारत के इतिहास का बहुत पता जो हमें लगता है [illegible] और चीनी [illegible] यात्रा-वृत्तान्त से लगता है। [illegible] पहले इस देश में [illegible] अथवा राजदूत बन कर आते थे। [illegible] लेखों में अधिकतर भारतीय राजनीति, [illegible] पद्धति और भौगोलिक बातों ही का [illegible] उन्होंने भारतीय धर्म और शास्त्रों का [illegible]



में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति का अधोभाग, दो संस्कृत-लेखों से युक्त—समय १०२६ ईसवी।
लेख में जीर्णोद्धार का उल्लेख है। लेख की नकल सारनाथ-विषयक लेख में देखिए।
लेख में बौद्ध-धर्म्म के तत्त्वार्थसूचक वचन हैं।

लोग भूमि जोतते और बोते हैं उन्हें अपनी पैदावार का एक निश्चित भाग राजा के देना पड़ता है। लोग अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ आ जा सकते हैं। अपराधी के उसके अपराध के गैारव-लाघव के अनुसार भारी अथवा हलका दण्ड दिया जाता है। शारीरिक दण्ड बहुत कम दिया जाता है। बार बार विद्रोह करने पर कहीं दाहिना हाथ काटे जाने का दण्ड दिया जाता है। राजा के शरीर-रक्षकों के नियत वेतन मिलता है। देश भर में जीव हत्या नहीं होती। चाण्डालों के अतिरिक्त कोई मद्यपान नहीं करता और न कोई लहसुन और प्याज़ ही खाता है। इस देश में कोई न तो मुर्ग़ी ही पालता है और न बतख़ ही। पालतू पशु भी कोई नहीं बेचता। बाज़ारों में पशु-वध-शालायें अथवा मांस बेंचने की दुकानें नहीं। सैादा-सुलुफ़ में कैाड़ियों का व्यवहार होता है। केवल चाण्डाल ही पशु-वध करते और मांस बेंचते हैं। बुद्ध भगवान् के समय से यहाँ की यह प्रथा है कि राजा, महाराजा, अमीर, उमराव और बड़े आदमी विहार-निर्माण करते हैं और उनके ख़र्च के लिए भूमि इत्यादि का दान-पत्र लिख देते हैं। पीढ़ियाँ गुज़र जाती हैं वे विहार ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं। उनका ख़र्च दान दी हुई भूमि की आमदनी से चलता रहता है। उस भूमि के कोई नहीं छीनता। विहारों में रहने वाले साधुओं के वस्त्र, भोजन और बिछौना मुफ़्त मिलता है।

मथुरा से फ़ा-हियान .कन्नौज आया। यह नगर, उस समय, गुप्त-राजाओं की राजधानी था। उसने .कन्नौज के विषय में इसके सिवा और कुछ नहीं लिखा कि यहाँ दो संघाराम थे। कोशल राज्य की प्राचीन राजधानी श्रावस्ती उजाड़ पड़ी थी। उसमें केवल दो सौ कुटुम्ब निवास करते थे। जेतवन, जहाँ भगवान् बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया था, अच्छी दशा में था। यहाँ एक सुन्दर विहार था। विहार के पास एक तालाब था, जिसका जल बड़ा निर्मल था। कई बाग़ भी थे, जिनसे विहार की शोभा बहुत बढ़ गई थी। विहार में रहने वाले

साधुओं ने .फा-हियान का हर्ष-पूर्वक स्[illegible] और उस की इस कारण बड़ी बड़ाई की [illegible] ने यात्रा धर्मप्रेम के वशीभूत हो कर की थ[illegible]

भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान कपिलव[illegible] दशा, .फा-हियान के समय में, बुरी थी। यह [illegible] राजा था, न प्रजा। नगर प्रायः उजाड़ था [illegible] थोड़े से साधु और दस-बीस अन्य जन [illegible] कुशी-नगर भी, जहाँ भगवान् बुद्ध की मृत्यु [illegible] बुरी दशा में था। उस वैसाली नगरी को, ज[illegible] धर्म की पुस्तकों का संग्रह करने के लिए बै[illegible] दूसरा सम्मेलन हुआ था, .फा-हियान ने [illegible] दशा में पाया। प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नगर के [illegible] में .फा-हियान ने लिखा है कि उस का पुरान[illegible] महल बड़ा विचित्र है। उस के बनाने में ब[illegible] पत्थरों से काम लिया गया है। मनुष्यों के [illegible] से यह न बना होगा। बिना आसुरी शक्ति [illegible] इतने बड़े बड़े पत्थर ऊपर चढ़ा सका[illegible] अवश्य ही अशोक ने उसे असुरों द्वारा ब[illegible] होगा। .फा-हियान का कथन है कि अशोक के [illegible] के समीप ही एक सुन्दर संघाराम बना हुआ है, [illegible] में लगभग छः सात सौ साधु रहते हैं। प्र[illegible] दूसरे महीने के आठवें दिन यहाँ एक उत्सव [illegible] है। उस अवसर पर चार पहियों का एक [illegible] बनाया जाता है। इस रथ के ऊपर पाँच [illegible] का एक मन्दिर रक्खा जाता है। मन्दिर [illegible] का बनता है। उस के बीच में [illegible] एक [illegible] रहता है। [illegible] मन्दिर [illegible] जाता है [illegible]

करने की विशेष परवा नहीं की। चीनी यात्रियों का कुछ और ही उद्देश था। वे विद्वान् थे। उन्होंने हज़ारों मील की यात्रा इस लिए की थी कि वे बौद्धों के पवित्र स्थानों का दर्शन करें, बौद्ध धर्म्म की पुस्तकें एकत्र करें और उस भाषा को पढ़ें जिसमें वे पुस्तकें लिखी गई थीं। इन यात्राओं में उनको नाना प्रकार के शारीरिक क्लेश सहने पड़े; कभी वे लूटे गये, कभी वे रास्ता भूल कर भयङ्कर स्थानों में भटकते फिरे और कभी उन्हें जंगली जानवरों का सामना करना पड़ा। परन्तु इतना सब होने पर भी वे केवल विद्या और धर्म-प्रेम के कारण भारत-वर्ष में घूमते रहे। चीनी यात्रियों में तीन के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं—पहला फा-हियान, दूसरा संग-यान और तीसरा ह्वेनसांग। इन तीनों ने अपनी अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है। उसका अनुवाद अँगरेज़ी, फ्रेंच आदि यूरप की भाषाओं में हो गया है। उनसे भारतीय सभ्यता का बहुत कुछ पता चलता है। प्रसिद्ध चीनी यात्रियों में फा-हियान सब से पहले भारत में आया। उसी की यात्रा का संक्षिप्त हाल नीचे लिखा जाता है—

फ़ा-हियान मध्य-चीन का निवासी था। ४०० ईसवी में वह अपने देश से भारत-यात्रा के लिए निकला। इस यात्रा से उसका मतलब बौद्ध तीर्थों के दर्शन और बौद्ध धर्म की पुस्तकों का सङ्ग्रह करना था। उन दिनों चीन से भारत-वर्ष आने के दो रास्ते थे। एक रास्ता ख़ुतन नगर के पश्चिम से होता हुआ भारतीय सीमा पर पहुँचता था। यह रास्ता कुछ चक्कर का था। इसी से भारत और चीन के मध्य व्यापार होता था। दूसरा रास्ता जलद्वारा जावा और लङ्का के टापुओं से होकर था। यह रास्ता पहले से सीधा तो था; परन्तु पीत-समुद्र के तूफ़ानों ने इस सुगम जल-मार्ग को बड़ा भयानक बना रक्खा था। फ़ा-हियान निडर मनुष्य था। वह भारत आया तो ख़ुतन के रास्ते ही से, परन्तु स्वदेश को लौटा लङ्का और जावा के रास्ते।

फ़ा-हियान के साथ और भी कितने ही मुसाफ़िर थे। ख़ुतन पहुँचने के लिए लाप नामक जङ्गल से हो कर जाना पड़ता था। इस जङ्गल में यात्रियों को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। कोसों पानी न मिला। सूर्य्य की गरमी ने और भी ग़ज़ब ढाया। प्यास के मारे यात्रियों का बुरा हाल हुआ। समय समय पर रास्ता भूल जाने के कारण भी उन पर बड़ी विप[त्ति] पड़ी। जब वे सब किसी तरह लाप नामक झील [के] किनारे पहुँचे तब उनकी बड़ी बुरी दशा थी। कितने ही यात्रियों के छक्के छूट गये और उन्हों[ने] आगे बढ़ने का विचार छोड़ दिया। पर फ़ा-हिया[न] ने हिम्मत न हारी। वह दो चार मित्रों सहित आ[गे] बढ़ा और नाना प्रकार के कष्टों को सहता हुआ, [...] मास में, ख़ुतन पहुँचा। लोगों ने ख़ुतन में उनक[ा] अच्छा आदर-सत्कार किया। उस समय ख़ुतन ए[क] हरा भरा बौद्ध राज्य था। इस समय ख़ुतन उजड़ा पड़ा है। परन्तु, हाल ही में, डाक्टर स्टीन ने उसक[ी] पूर्व समृद्धि के बहुत से चिह्न पाये हैं। प्राचीन महलों, स्तूपों, विहारों और बाग़ों के न मालूम कितने चिह्[न] उन्हें मिले हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है, जो बड़े महत्त्व की है।

ख़ुतन से फा-हियान काबुल आया। उस समय काबुल उत्तरीय भारत के अन्तर्गत था। काबुल से वह स्वात, गान्धार और तक्षशिला होता हुआ पेशावर पहुँचा। पेशावर में उसने एक बड़ा ऊँचा, सुन्दर और मज़बूत बौद्ध स्तूप देखा। सिन्धु नदी पार करके वह मथुरा आया। मथुरा का हाल वह इस प्रकार वर्णन करता है—

मथुरा में यमुना के दोनों किनारों पर बीस संघाराम हैं, जिनमें लगभग ३००० साधु रहते हैं। बौद्ध धर्म्म का ख़ूब प्रचार है। राजपूताना के राजा बौद्ध हैं। दक्षिण की ओर जो देश है वह मध्य-देश कहलाता है। इस देश का जल-वायु न बहुत उष्ण है, न बहुत शीतल। बर्फ़ अथवा कुहरे की अधिकता नहीं है। प्रजा सुखी है। उन्हें अधिक कर नहीं देना पड़ता। शासक लोग कठोरता नहीं करते। जो

लोग भूमि जोतते और बोते हैं उन्हें अपनी पैदावार का एक निश्चित भाग राजा को देना पड़ता है। लोग अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ आ जा सकते हैं। अपराधी को उसके अपराध के गौरव-लाघव के अनुसार भारी अथवा हलका दण्ड दिया जाता है। शारीरिक दण्ड बहुत कम दिया जाता है। बार बार विद्रोह करने पर कहीं दाहिना हाथ काटे जाने का दण्ड दिया जाता है। राजा के शरीर-रक्षकों को नियत वेतन मिलता है। देश भर में जीव-हत्या नहीं होती। चाण्डालों के अतिरिक्त कोई मद्यपान नहीं करता और न कोई लहसुन और प्याज़ ही खाता है। इस देश में कोई न तो मुर्ग़ी ही पालता है और न बतख़ ही। पालतू पशु भी कोई नहीं बेचता। बाज़ारों में पशु-वध-शालायें अथवा मांस बेंचने की दुकानें नहीं। सौदा-सुलफ़ में कौड़ियों का व्यवहार होता है। केवल चाण्डाल ही पशु-वध करते और मांस बेचते हैं। बुद्ध भगवान् के समय से यहाँ की यह प्रथा है कि राजा, महाराजा, अमीर, उमराव और बड़े आदमी विहार-निर्माण करते हैं और उनके ख़र्च के लिए भूमि इत्यादि का दान-पत्र लिख देते हैं। पीढ़ियाँ गुज़र जाती हैं वे विहार ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं। उनका ख़र्च दान दी हुई भूमि की आमदनी से चलता रहता है। उस भूमि को कोई नहीं छीनता। विहारों में रहने वाले साधुओं को वस्त्र, भोजन और बिछौना मुफ़्त मिलता है।

मथुरा से फ़ा-हियान .कन्नौज आया। यह नगर, उस समय, गुप्त-राजाओं की राजधानी था। उसने .कन्नौज के विषय में इसके सिवा और कुछ नहीं लिखा कि यहाँ दो संघाराम थे। कोशल-राज्य की प्राचीन राजधानी श्रावस्ती उजाड़ पड़ी थी। उसमें केवल दो सौ कुटुम्ब निवास करते थे। जैतवन, जहाँ भगवान् बुद्ध ने धर्मोपदेश किया था, अच्छी दशा में था। यहाँ एक सुन्दर विहार था। विहार के पास एक तालाब था, जिसका जल बड़ा निर्मल था। कई बाग़ भी थे, जिनसे विहार की शोभा बहुत बढ़ गई थी। विहार में रहने वाले साधुओं ने .फ़ा-हियान का हर्ष-पूर्वक स्
और उस की इस कारण बड़ी बड़ाई की
ने यात्रा धर्मप्रेम के वशीभूत हो कर की थी

भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान कपिल
दशा. .फ़ा-हियान के समय में, बुरी थी। वह
राजा था, न प्रजा। नगर प्रायः उजाड़ था
थोड़े से साधु और दस-बीस अन्य जन
कुशी-नगर भी, जहाँ भगवान् बुद्ध की मृत्यु
बुरी दशा में था। उस वैसाली नगरी को, ज
धर्म की पुस्तकों का संग्रह करने के लिए बौ
दूसरा सम्मेलन हुआ था, .फ़ा-हियान ने
दशा में पाया। प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नगर के
में .फ़ा-हियान ने लिखा है कि उस का पुरान
महल बड़ा विचित्र है। उस के बनाने में ब
पत्थरों से काम लिया गया है। मनुष्यों के
से वह न बना होगा। बिना आसुरी शक्ति
इतने बड़े बड़े पत्थर ऊपर चढ़ा सका।
अवश्य ही अशोक ने उसे असुरों द्वारा ब
होगा। .फ़ा-हियान का कथन है कि अशोक के
के समीप ही एक सुन्दर सङ्घाराम बना हुआ है,
में लगभग छः सात सौ साधु रहते हैं। प्रति
दूसरे महीने के आठवें दिन यहाँ एक उत्सव
है। उस अवसर पर चार पहियों का एक
बनाया जाता है। उस रथ के ऊपर पाँच
का एक मन्दिर रक्खा जाता है। मन्दिर
का बनता है। उस के बीच में सात आठ गज़
एक बाँस रहता है। यही उसे साधे रहता
मन्दिर श्वेत वस्त्र से मँढ़ दिया जाता है।
उसका पिछला भाग भड़कीले रङ्गों से रँगा
है। सुन्दर रेशम के शामियानों के नीचे देव मू
वस्त्राभूषणों से सजा कर रक्खी जाती हैं। रथ
चारों कोनों में चार ताक़ रहते हैं। उन ताक़
बुद्ध भगवान् की बैठी हुई मूर्ति आसन की
है। इस प्रकार के कोई बीस रथ तैयार किये
हैं। उत्सव के दिन बड़ी भीड़ होती है।
तमाशे होते हैं और मूर्तियों पर फूल आदि

करने की विशेष परवा नहीं की। चीनी यात्रियों का कुछ और ही उद्देश था। वे विद्वान् थे। उन्होंने हज़ारों मील की यात्रा इस लिए की थी कि वे बौद्धों के पवित्र स्थानों का दर्शन करें, बौद्ध धर्म्म की पुस्तकें एकत्र करें और उस भाषा को पढ़ें जिसमें वे पुस्तकें लिखी गई थीं। इन यात्राओं में उनको नाना प्रकार के शारीरिक क्लेश सहने पड़े; कभी वे लूटे गये, कभी वे रास्ता भूल कर भयङ्कर स्थानों में भटकते फिरे और कभी उन्हें जंगली जानवरों का सामना करना पड़ा। परन्तु इतना सब होने पर भी वे केवल विद्या और धर्म-प्रेम के कारण भारतवर्ष में घूमते रहे। चीनी यात्रियों में तीन के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं—पहला फ़ा-हियान, दूसरा संगयान और तीसरा ह्वेनसांग। इन तीनों ने अपनी अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है। उसका अनुवाद अँगरेज़ी, फ़्रेंच आदि यूरप की भाषाओं में हो गया है। उनसे भारतीय सभ्यता का बहुत कुछ पता चलता है। प्रसिद्ध चीनी यात्रियों में फ़ा-हियान सब से पहले भारत में आया। उसी की यात्रा का संक्षिप्त हाल नीचे लिखा जाता है—

फ़ा-हियान मध्य-चीन का निवासी था। ४०० ईसवी में वह अपने देश से भारत-यात्रा के लिए निकला। इस यात्रा से उसका मतलब बौद्ध तीर्थों के दर्शन और बौद्ध धर्म की पुस्तकों का सङ्ग्रह करना था। उन दिनों चीन से भारत-वर्ष आने के दो रास्ते थे। एक रास्ता ख़ुतन नगर के पश्चिम से होता हुआ भारतीय सीमा पर पहुँचता था। यह रास्ता कुछ चक्कर का था। इसी से भारत और चीन के मध्य व्यापार होता था। दूसरा रास्ता जलद्वारा जावा और लङ्का के टापुओं से होकर था। यह रास्ता पहले से सीधा तो था; परन्तु पीत-समुद्र के तूफ़ानों ने इस सुगम जल-मार्ग को बड़ा भयानक बना रक्खा था। फ़ा-हियान निडर मनुष्य था। वह भारत आया तो ख़ुतन के रास्ते ही से, परन्तु स्वदेश को लौटा लङ्का और जावा के रास्ते।

फ़ा-हियान के साथ और भी कितने ही मुसाफ़िर थे। ख़ुतन पहुँचने के लिए लाप नामक जङ्गल से हो कर जाना पड़ता था। इस जङ्गल में यात्रियों को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। कोसों पानी न मिला। सूर्य्य की गरमी ने और भी गज़ब ढाया। प्यास के मारे यात्रियों का बुरा हाल हुआ। समय समय पर रास्ता भूल जाने के कारण भी उन पर बड़ी विपत्ति पड़ी। जब वे सब किसी तरह लाप नामक झील के किनारे पहुँचे तब उनकी बड़ी बुरी दशा थी। कितने ही यात्रियों के छक्के छूट गये और उन्होंने आगे बढ़ने का विचार छोड़ दिया। पर फ़ा-हियान ने हिम्मत न हारी। वह दो चार मित्रों सहित आगे बढ़ा और नाना प्रकार के कष्टों को सहता हुआ, दो मास में, ख़ुतन पहुँचा। लोगों ने ख़ुतन में उनका अच्छा आदर-सत्कार किया। उस समय ख़ुतन एक हरा भरा बौद्ध राज्य था। इस समय ख़ुतन उजड़ा पड़ा है। परन्तु, हाल ही में, डाक्टर स्टीन ने उसकी पूर्व समृद्धि के बहुत से चिह्न पाये हैं। प्राचीन महलों, स्तूपों, विहारों और बाग़ों के न मालूम कितने चिह्न उन्हें मिले हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है, जो बड़े महत्त्व की है।

ख़ुतन से फ़ा-हियान काबुल आया। उस समय काबुल उत्तरीय भारत के अन्तर्गत था। काबुल से वह स्वात, गान्धार और तक्षशिला होता हुआ पेशावर पहुँचा। पेशावर में उसने एक बड़ा ऊँचा, सुन्दर और मज़बूत बौद्ध स्तूप देखा। सिन्धु नदी पार करके वह मथुरा आया। मथुरा का हाल वह इस प्रकार वर्णन करता है—

मथुरा में यमुना के दोनों किनारों पर बीस संघाराम हैं, जिनमें लगभग ३००० साधु रहते हैं। बौद्ध धर्म्म का ख़ूब प्रचार है। राजपूताना के राजा बौद्ध हैं। दक्षिण की ओर जो देश है वह मध्य-देश कहलाता है। इस देश का जल-वायु न बहुत उष्ण है, न बहुत शीतल। बर्फ़ अथवा कुहरे की नहीं है। प्रजा सुखी है। उन्हें अधिक कर नहीं पड़ता। शासक लोग कठोरता नहीं करते

जाते हैं। उस दिन बौद्ध लोग नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे ठहरते हैं और सारी रात हर्ष मनाते हैं। इस अवसर पर दूर दूर से लोग आते हैं और उत्सव में सम्मिलित होते हैं। धनवान् लोगों ने नगर में कितने ही ऐसे औषधालय खोल रक्खे हैं जहाँ दीन-दुखिया, लँगड़े-लूले और अन्य असमर्थ जनों का इलाज होता है। उनको हर प्रकार की सहायता दी जाती है। वैद्य उनके रोगों की परीक्षा कर के ओषधि-सेवन कराते हैं। वे वहाँ रहते हैं और पथ्य भी उन्हें वहाँ मिलता है। नीरोग हो जाने पर वे अपने घर चले जाते हैं।

राजगृह में पहला बौद्ध-सम्मेलन हुआ था। इसलिए उसे देखता हुआ फ़ा-हियान गया पहुँचा। गया में उसने बुद्ध-वृक्ष और अन्य पवित्र स्थानों के दर्शन किये। वह काशी और कौशाम्बी भी गया। काशी में उस स्थान पर, जहाँ भगवान् बुद्ध ने पहली बार सत्य का उपदेश दिया था, दो सङ्घाराम थे। काशी से वह फिर पाटलिपुत्र लौट गया। फ़ा-हियान चीन से धार्मिक पुस्तकों की खोज में चला था। पाटलिपुत्र में विनयपीठक की एक प्रति उसके हाथ लग गई। पुस्तक लेकर वह अङ्ग-देश की राजधानी चम्पा होता हुआ ताम्रलिप्ति (तमलुक) पहुँचा। वहाँ उसने बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार देखा। उस नगर में २४ संघाराम थे। फ़ा-हियान वहाँ दो वर्ष तक रहा। यह समय उसने धर्म-पुस्तकों की नक़ल करने में ख़र्च किया। तत्पश्चात् जहाज़ पर सवार होकर लगातार १४ दिन और रात यात्रा करके वह सिंहल-द्वीप पहुँचा। वहाँ वह अनिरुद्धपुर गया। बौद्ध-स्तूप और बुद्ध-वृक्ष के भी उसने दर्शन किये। लङ्का में उसने कुछ और भी धर्म-पुस्तकों का सङ्ग्रह किया। लङ्का का वर्णन वह इस तरह करता है—

"लङ्का में पहले बहुत कम मनुष्य रहते थे। धीरे धीरे व्यापारी लोग यहाँ आने लगे। अन्त में वही यहाँ बस गये। इस प्रकार यहाँ की आबादी बढ़ी और राज्य की नींव पड़ी। यहाँ भगवान् बुद्ध आये*। उन्होंने यहाँ के निवासियों को [illegible] बनाया। लङ्का का जल-वायु अच्छा है। सब्ज़ी[illegible] होती है। राजधानी के उत्तर में बड़ा ऊँचा [illegible] है। समीप ही एक सङ्घाराम भी है, जिसमें [illegible] साधु रहते हैं"।

फ़ा-हियान लङ्का में दो वर्ष रहा। उसे स[illegible] छोड़े बहुत वर्ष हो गये थे। इससे उसने चीन [illegible] जाना विचारा। इसी समय एक व्यापारी ने [illegible] चीन का बना हुआ एक पङ्खा भेंट किया। [illegible] देश की बनी हुई वस्तु देख कर फ़ा-हियान [illegible] भर आया। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बह निक[illegible] अन्त में उसे स्वदेश लौट जाने का एक साध[illegible] प्राप्त हो गया। एक जहाज़ दो सौ यात्रियों [illegible] उस ओर जाना था। वह भी उसी पर बैठ ग[illegible] रास्ते में तूफ़ान उठा और जहाज़ में छेद हो ग[illegible] जहाज़ को हलका करने के लिए ख़लासी ज[illegible] पर लदी हुई चीज़ों को समुद्र में फेंकने लगे।

बहुत सा माल-असबाब फेंक दिया ग[illegible] फ़ा-हियान ने अपने सारे बर्तन तक समुद्र में [illegible] डर के मारे फेंक दिये कि कहीं इनके मोह में [illegible] के कारण लोग उसकी अमूल्य पुस्तकें और मू[illegible] समुद्र के हवाले न कर दें। तेरह दिन की क[illegible] तपस्या के बाद एक छोटा सा टापू मिला। [illegible] जहाज़ की मरम्मत हुई। सैकड़ों कष्ट सहने [illegible] ९० दिन बाद जहाज़ जावा-द्वीप में पहुँचा। ज[illegible] में उस समय बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म, दोनों, [illegible] प्रचार था।

फ़ा-हियान जावा में पाँच महीने रहा। तत्पश्[illegible] वह एक और जहाज़ पर सवार हुआ। चलने के [illegible] महीना बाद इस जहाज़ का भी कील-काँटा बिगड़[illegible] यह देख कर मल्लाहों ने सलाह की कि जहाज़ [illegible] श्रमण फ़ाहियान के होने ही के कारण हम पर [illegible] विपत्ति आई है। अतएव कोई टापू मिले तो इसे [illegible] उतार दें, जिसमें जहाज़ की यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो[illegible] यह वहाँ चाहे मरे चाहे बचे। इस जहाज़ [illegible]

* भगवान् बुद्ध लङ्का कभी नहीं गये।

ाते हैं। उस दिन बौद्ध लोग नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे ठहरते हैं और सारी रात हर्ष मनाते हैं। इस अवसर पर दूर दूर से लोग आते हैं और उत्सव में सम्मिलित होते हैं। धनवान् लोगों ने नगर में कितने ही ऐसे औषधालय खोल रक्खे हैं जहाँ दीन-दुखिया, लँगड़े-लूले और अन्य असमर्थ जनों का इलाज होता है। उनको हर प्रकार की सहायता दी जाती है। वैद्य उनके रोगों की परीक्षा कर के औषधि-सेवन कराते हैं। वे वहाँ रहते हैं और पथ्य भी उन्हें वहीं मिलता है। नीरोग हो जाने पर वे अपने घर चले जाते हैं।

राजगृह में पहला बौद्ध-सम्मेलन हुआ था। इसलिए उसे देखता हुआ फ़ा-हियान गया पहुँचा। गया में उसने बुद्ध-वृक्ष और अन्य पवित्र स्थानों के दर्शन किये। वह काशी और कौशाम्बी भी गया। काशी में उस स्थान पर, जहाँ भगवान् बुद्ध ने पहली बार सत्य का उपदेश दिया था, दो सङ्घाराम थे। काशी से वह फिर पाटलिपुत्र लौट गया। फ़ा-हियान चीन से धार्मिक पुस्तकों की खोज में चला था। पाटलिपुत्र में विनयपीठक की एक प्रति उसके हाथ लग गई। पुस्तक लेकर वह अङ्ग-देश की राजधानी चम्पा होता हुआ ताम्रलिप्ति (तमलुक) पहुँचा। यहाँ उसने बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार देखा। उस नगर में २४ संघाराम थे। फ़ा-हियान यहाँ दो वर्ष तक रहा। यह समय उसने धर्म-पुस्तकों की नक़ल करने में ख़र्च किया। तत्पश्चात् जहाज़ पर सवार होकर लगातार १४ दिन और रात यात्रा करके वह सिंहल-द्वीप पहुँचा। यहाँ वह अनिरुद्धपुर गया। बौद्ध-स्तूप और बुद्ध-वृक्ष के भी उसने दर्शन किये। लङ्का में उसने कुछ और भी धर्म-पुस्तकों का सङ्ग्रह किया। लङ्का का वर्णन वह इस तरह करता है—

"लङ्का में पहले बहुत कम मनुष्य रहते थे। धीरे धीरे व्यापारी लोग यहाँ आने लगे। अन्त में वही यहाँ बस गये। इस प्रकार यहाँ की आबादी बढ़ी और राज्य की नींव पड़ी। यहाँ भगवान् बुद्ध आये*। उन्होंने यहाँ के निवासियों को बौद्ध बनाया। लङ्का का जल-वायु अच्छा है। सब्ज़ी बहुत होती है। राजधानी के उत्तर में बड़ा ऊँचा स्तूप है। समीप ही एक सङ्घाराम भी है, जिसमें ५००० साधु रहते हैं"।

फ़ा-हियान लङ्का में दो वर्ष रहा। उसे स्वदेश छोड़े बहुत वर्ष हो गये थे। इससे उसने चीन लौट जाना विचारा। इसी समय एक व्यापारी ने उसे चीन का बना हुआ एक पङ्खा भेंट किया। अपने देश की बनी हुई वस्तु देख कर फ़ा-हियान का जी भर आया। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बह निकली। अन्त में उसे स्वदेश लौट जाने का एक साधन भी प्राप्त हो गया। एक जहाज़ दो सौ यात्रियों सहित उस ओर जाता था। वह भी उसी पर बैठ गया। रास्ते में तूफ़ान उठा और जहाज़ में छेद हो गया। जहाज़ को हलका करने के लिए ख़लासी जहाज़ पर लदी हुई चीज़ों को समुद्र में फेंकने लगे। बहुत सा माल-असबाब फेंक दिया गया। फ़ा-हियान ने अपने सारे बर्तन तक समुद्र में इस डर के मारे फेंक दिये कि कहीं इनके मोह में पड़ने के कारण लोग उसकी अमूल्य पुस्तकें और मूर्तियाँ समुद्र के हवाले न कर दें। तेरह दिन की कठिन तपस्या के बाद एक छोटा सा टापू मिला। वहाँ जहाज़ की मरम्मत हुई। सैकड़ों कष्ट सहने [illegible] ९० दिन बाद जहाज़ जावा-द्वीप में पहुँचा। जा[illegible] में उस समय बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म, दोनों, [illegible] प्रचार था।

फ़ा-हियान जावा में पाँच महीने रहा। तत्प[illegible] वह एक और जहाज़ पर सवार हुआ। चलने के [illegible] महीना बाद इस जहाज़ का भी कील-काँटा [illegible] यह देख कर मल्लाहों ने सलाह की कि [illegible] श्रमण फ़ाहियान के होने ही के कारण [illegible] विपत्ति आई है। अतएव कोई टापू मिले [illegible] उतार दें, जिसमें जहाज़ की यात्रा [illegible] यह यहाँ चाहे मरे चाहे बचे

* भगवान् बुद्ध लङ्का [illegible]

यात्रियों में एक व्यापारी बड़ा सज्जन था। वह फ़ा-हियान से प्रेम करने लगा था। मल्लाहों की इस सलाह का उसने घोर प्रतिवाद किया। उसी के कारण बेचारा फ़ा-हियान किसी निर्जन टापू में छोड़ दिये जाने से बच गया। ८२ दिन की यात्रा के बाद दक्षिणी चीन के समुद्रतट पर वह सकुशल उतर गया और अपनी जन्मभूमि के पुनर्वार दर्शनों से उसने अपने को कृतकृत्य माना।

विविध विषय ।

१—पुरातत्व-विभाग ।



[इ]स महकमे के डाइरेक्टर जनरल ने गवर्नमेंट आव् इंडिया को एक रिपोर्ट भेजी है। उसमें उन्होंने गत ५ वर्षों के काम का संक्षिप्त उल्लेख किया है। २३ अक्टोबर के गैज़ट आव् इंडिया में गवर्नमेंट ने उसे, अपने वक्तव्य के साथ, प्रकाशित कर दिया है। गवर्नमेंट ने इस महकमे के चार उद्देश बताये हैं:—

(१) हिन्दुस्तानियों को अधिक भर्ती करना

(२) अजायब-घरों की उन्नति करना

(३) पुरातत्व सम्बन्धिनी खोज का काम बढ़ाना और खोज करने वालों को उत्साहित करना।

(४) पुरातत्व-विषयक पुस्तकों का प्रचार बढ़ाना और महकमे के बाहर के विद्वानों को पुरातत्व-सम्बन्धी काम करने के लिए उत्साह-प्रदान करना।

गवर्नमेंट की राय है कि इस महकमे में और भी अधिक भारतवासियों का लिया जाना बहुत ज़रूरी है। जो लोग अब तक लिये गये हैं वे बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। पर शायद यहां भी, रुपये की कमी के कारण, बहुत अधिक संख्या में भारतवासी नहीं लिये जा सके। संस्कृत जानने वाले दो एक एम० ए० 'पास' पण्डितों ने प्रवेश पाने की इस साल प्रार्थना की थी। परन्तु वे मनोरथ नहीं हुए।

१८६० ईसवी में इस महकमे की नींव पड़ी थी। ४० वर्ष तक तो इसने कुछ सटपट ही काम किया। ईसवी में लार्ड कर्ज़न की कृपा से इसका जीर्णोद्धार अफ़सरों की संख्या बढ़ाई गई। ख़र्च के लिए रु अधिक मंजूर हुआ। काम का दर्जा भी निर्दिष्ट प्राचीन इमारतों की रक्षा का काम भी इसी को सौंपा तब से इस महकमे में जान सी आ गई है। अ धड़ल्ले के साथ काम कर रहा है। १९११—१२ में सात लाख से भी अधिक रुपया ख़र्च किया। पुरातत्व की खोज, पुरानी वस्तुओं की ख़रीद और इमारतों की रक्षा में किया गया। खोज और ही इसके प्रधान काम हैं। अजायबघरों की रक्षा और उन्नति का काम भी यही करता है। पुरातत्व-विषयक अजायबघरों की संख्या १६ तक [पहुँच] चुकी है।

इस रिपोर्ट के लेखक, डाइरेक्टर जनरल आव् आर्कियालोजी, ने गत पांच वर्ष के मुख्य मुख्य कामों का संक्षिप्त वर्णन किया है उसमें पाटलिपुत्र की खुदाई का भी उल्लेख है। डाक्टर स्पूनर की राय है कि मौर्य्य नरेशों के प्रासाद अनेक अंशों में फ़ारिस के प्राचीन महलों की नक़ल पर ही बने थे।

इस महकमे में एक दोष है। यदि कहीं कोई शिलालेख मिलता है या कोई नया आविष्कार होता उसके प्रकाशन में बरसों लग जाते हैं। पहले तो वह इसी महकमे की पुस्तकों और रिपोर्टों में छपे। यदि [illegible] चाहता है कि साधारण भारतवासी भी इस काम में [illegible] तो उनके लिए सब तरह का सुभीता भी कर देना चा[हिए।] [illegible] पर शिलालेखों की नकलें मिलनी चाहिए और [illegible] में [illegible] बतलाना भी चाहिए। महकमे की रिपोर्टें और [illegible] पुस्तकें [illegible] [illegible] को [illegible] जाना चाहिए। बिना ऐसा [illegible] महकमे के काम की कदर नहीं हो सकती [illegible]



बौद्ध काल की एक स्त्री।



बौद्ध काल का एक मनुष्य।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

यात्रियों में एक व्यापारी बड़ा सज्जन था। वह फ़ा-हियान से प्रेम करने लगा था। मल्लाहों की इस सलाह का उसने घोर प्रतिवाद किया। उसी के कारण बेचारा फ़ा-हियान किसी निर्जन टापू में छोड़ दिये जाने से बच गया। ८२ दिन की यात्रा के बाद दक्षिणी चीन के समुद्रतट पर वह सकुशल उतर गया और अपनी जन्मभूमि के पुनर्वार दर्शनों से उसने अपने को कृतकृत्य माना।

विविध विषय ।

१—पुरातत्त्व-विभाग ।

इस महकमे के डाइरेक्टर जनरल ने गवर्नमेंट आव् इंडिया को एक रिपोर्ट भेजी है। उसमें उन्होंने गत २ वर्षों के काम का संक्षिप्त उल्लेख किया है। २३ अक्टोबर के गैज़ट आव् इंडिया में गवर्नमेंट ने उसे, अपने वक्तव्य के साथ, प्रकाशित कर दिया है। गवर्नमेंट ने इस महकमे के चार [illegible] बताये हैं.—

(१) हिन्दुस्तानियों को अधिक भर्ती करना
(२) अजायब-घरों की उन्नति करना
(३) पुरातत्त्व सम्बन्धिनी खोज का काम बढ़ाना और खोज करने वालों को उत्साहित करना।
(४) पुरातत्त्व-विषयक पुस्तकों का प्रचार बढ़ाना और महकमे के बाहर के विद्वानों को पुरातत्त्व-सम्बन्धी [illegible] के लिए उत्साह प्रदान करना।

गवर्नमेंट की राय है कि इस महकमे में [illegible] अधिक भारतवासियों का लिया जाना बहुत ज़रूरी है। [illegible]

[illegible]

जानने वाले दो एक एम० ए० 'पास' पण्डितों ने प्रवेश पाने की इस साल प्रार्थना की थी। परन्तु [illegible] मनोरथ नहीं हुए।

१८६० ईसवी में इस महकमे की नींव पड़ी। ४० वर्ष तक तो इसने कुछ सटपट ही काम किया। [illegible] ईसवी में लार्ड कर्ज़न की कृपा से इसका [illegible] अफ़सरों की संख्या बढ़ाई गई। ख़र्च के लिए अधिक मंज़ूर हुआ। काम का दर्जा भी निर्दिष्ट [illegible] प्राचीन इमारतों की रक्षा का काम भी इसी को [illegible] तब से इस महकमे में जान सी आ गई है। [illegible] धड़ल्ले के साथ काम कर रहा है। १९१४—१५ [illegible] सात लाख से भी अधिक रुपया ख़र्च किया। पुरातत्त्व की खोज, पुरानी वस्तुओं की ख़रीद [illegible] इमारतों की रक्षा में किया गया। खोज और [illegible] ही इसके प्रधान काम हैं। अजायबघरों की रक्षा और उन्नति का काम भी यही करता है। [illegible] पुरातत्त्व-विषयक अजायबघरों की संख्या १४ तक पहुँची है।

इस रिपोर्ट के लेखक, डाइरेक्टर जनरल [illegible] [illegible] वर्ष के मुख्य मुख्य कामों [illegible] वर्णन किया है [illegible]

[illegible]

पढ़े लिखे कुछ ही विद्वानों को छोड़ कर औरों को इससे लाभ उठाने का मौक़ा भी न मिलेगा।

२—कूच नामक एक प्राचीन राज्य।

एस० लीवाइ नाम के एक विद्वान् नामी पुरातत्त्ववेत्ता हैं। आपने रायल एशियाटिक सोसायटी के जरनल में एक लेख प्रकाशित कराया है। लेख बड़ा मनोरञ्जक है। उसमें आपने लिखा है कि किसी समय चीनी तुर्किस्तान (Chinese Turkestan) में भारतवासियों ही का आधिपत्य था। उनके तत्कालीन प्रभुत्व, विद्वत्त्व और कलाकौशल के चिह्न अब तक पाये जाते हैं। इस राज्य का नाम कूच (कुत्स?) था। यह उस भूमि-भाग में था जो काशगर की राह चीन जाने वालों को बीच में पड़ता है। इस प्रान्त के वर्तमान निवासियों का धर्म्म, रहन सहन और भाषा यद्यपि अब और की ओर हो गई है तथापि इनमें अब भी ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जो इनके आर्य्यवंशीय होने की सूचना दे रही हैं। कूचियों की प्राचीन भाषा में पिता के लिए पातर, माता के लिए मातर, है के लिए स्ते, आठ के लिए आक्ट आदि शब्द थे। सन् ईसवी के सौ दो सौ वर्ष बीत जाने पर कूचियों ने बौद्ध धर्म्म स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे वही उनका प्रधान धर्म्म हो गया। कूच-राज्य का सम्बन्ध खोटान या ख़ुतन से बहुत समय तक रहा। खोटान किसी समय प्रसिद्ध राज्य था और बड़ी उन्नत दशा में था। उसके साथ व्यापार-व्यवसाय करके कूच राज्य ने भी बड़ी उन्नति की। उस समय के बड़े बड़े बाज़ारों, पाठशालाओं, मन्दिरों, महलों और मठों के ध्वंसावशेष इस राज्य की पुरानी उन्नति की अब तक घोषणा दे रहे हैं। उन्हें देख कर यही कहना पड़ता है कि यह राज्य किसी समय धनसम्पन्नता और विद्या, इन दोनों बातों में बहुत बढ़ा चढ़ा था। वहां संस्कृत भाषा का ख़ूब अध्ययन-अध्यापन होता था। मठों में सैकड़ों-हज़ारों बौद्ध संस्कृत पढ़ते और संस्कृत ही में शास्त्रों की चर्चा करते थे। वहां के प्राचीन निवासियों ने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद अपनी, अर्थात् कूची, भाषा में किया। पीछे से इन लोगों ने कितने ही नये नये ग्रन्थ भी अपनी भाषा में लिखे। बौद्धों के विनयपिटक और अवदानों के आधार पर तथा उनके अनुकरण में इस प्राचीन राज्य के पण्डितों ने बहुत ग्रन्थरचना की। वहां वाले हीन सम्प्रदाय के बौद्ध थे। इन लोगों ने बौद्धों के महाक सदृश तान्त्रिक ग्रन्थ भी लिख डाले। अनेक ग्रन्थों की र तो इन्होंने संस्कृत ही में की। वैद्यविद्या की पुस्तकें इन्होंने लिखीं। कूचियों की भाषा में लिखी गई—वि नामक पुस्तक लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् कुमारजीव कूच नगर में बहुत स तक रहे थे। यह वही कुमारजीव हैं जिनके लिखे अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में प जाते हैं।

३—शाहरे-बहलोल में प्राप्त प्राचीन मूर्त्तियां।

पेशावर के ज़िले में होती-मरदान नाम की एक छो सी रियासत है। उसके पश्चिम, कोई आठ मील दूर, शह बहलोल नाम का एक गांव है। उसके पास कितने ही बहु पुराने पुराने धुस्स और डीह हैं। कोई दो हज़ार वर्ष पहले वह पर एक नगर था और क़िला भी था। बौद्धों की वहां विशेष बस्ती थी। अनेक विहार, स्तूप और चैत्य थे। यह कुशानवंश के राजाओं के राज्य-काल की बात है। ईसा की पांचवीं छठी सदी में यह जगह उजड़ गई जान पड़ती है। क्योंकि ह्वेनसांग आदि चीनी परिव्राजकों ने इस स्थान का उल्लेख अपनी यात्रा-पुस्तक में नहीं किया। यहां ज़मीन के भीतर से सैकड़ों सुन्दर सुन्दर मूर्त्तियां, बहुत समय से, निकलती रही हैं। कुछ तो ऊपर ही पड़ी हुई मिली हैं। वहां वाले इन मूर्त्तियों को अद्भुत वस्तु समझ कर अँगरेज़ों के हाथ बेचते रहे हैं। इस स्थान की प्राचीनता को देख कर पुरातत्त्व-विभाग के स्टीन साहब ने फ़रवरी-एप्रिल १९१२ में ६ डीहों की खुदाई की। इस काम में गवर्नमेंट का चार हज़ार से ऊपर रुपया ख़र्च हुआ। १९११—१२ की आरकियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में इस खुदाई का फल प्रकाशित हुआ है। उसमें प्राप्त हुई वस्तुओं के अनेक चित्र भी दिये गये हैं।

स्टीन साहब को इस खुदाई में आशातीत सफलता हुई। १२०० मूर्त्तियां, बर्तन और खुदे हुए पत्थर के टुकड़े इत्यादि यहां पर उन्हें मिले। कितनी ही बौद्धमूर्त्तियां तो अखण्डित दशा में प्राप्त हुईं। जो चीज़ें यहां पर भू-गर्भ से खोद निकाली गईं उनमें से दो मूर्त्तियां बड़े महत्त्व की हैं। एक मूर्त्ति तो किसी मनुष्य की है और दूसरी

…सी स्त्री की। जिनकी ये मूर्त्तियां हैं उन्होंने शायद …स बौद्ध-तीर्थ में कोई धार्म्मिक काम किया होगा, …थवा कुछ पुण्यदान दिया होगा, अथवा कोई इमारत …नवा दी होगी। पुरुष की मूर्त्ति की कारीगरी बहुत अच्छी …। पर, मूर्त्ति का बायां हाथ टूटा हुआ है। उसके दाहने …थ में कोई चीज़ है। वह शायद कोई फल है। पर क्या …, ठीक नहीं कहा जा सकता। स्त्री की मूर्त्ति में भी दोनों …थों में कोई चीज़ है। दो हज़ार वर्ष पहले गान्धार देश में …ी पुरुष कैसे कपड़े पहनते थे, यह बात इन मूर्त्तियों से …च्छी तरह प्रकट होती है। इस दृष्टि से ये मूर्त्तियां बड़े …व की हैं। इनका चित्र पाठक इसी संख्या में देखेंगे।

४—विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या।

इस देश में पहले की अपेक्षा शिक्षा का अधिक प्रचार …वश्य है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षालयों की …ख्या भी बढ़ गई है और उनमें शिक्षा पाने वाले छात्रों …ी भी। इस विषय पर कई नोट सरस्वती में निकल चुके …। एक अभी गत संख्या में ही निकला है। सब प्रकार … शिक्षा के प्रचार में वृद्धि होने पर भी और देशों की …पेक्षा यह देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। एस० एम० …षित नाम के एक महाशय ने लन्दन से एक पत्र लिखा …। वह यहां के कई समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है। …समें उन्होंने यह दिखाया है कि अन्यान्य देशों में कितने …त्र विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं, और भारतवर्ष में …ितने। यह हिसाब उन्होंने एक विश्वसनीय पुस्तक के …धार पर दिया है। उसका कुछ अंश नीचे नक़ल किया …ता है। पाठक देखेंगे कि आबादी के लिहाज़ से फ़ी एक …ाख मनुष्यों में कितने छात्र भिन्न भिन्न देशों के विश्व-…द्यालयों में शिक्षा पाते हैं—

(१) अमेरिका के संयुक्त राज्य — २८०
(२) स्विट्ज़रलेंड — २०१
(३) फ्रांस — १०६
(४) स्पेन — ८६
(५) आस्ट्रिया — ८३
(६) जर्मनी — ••
(७) इँगलेंड
(८) नारवे
(९) इटली — ६
(१०) जापान — ६
(११) रूस — २
(१२) हिन्दुस्तान — १

अमेरिका में एक लाख आदमियों में से २८० विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं और छोटे से स्विट्ज़र… २०१। इँगलेंड में केवल ७४ छात्र इस प्रकार के …लयों में अध्ययन करते हैं। पर भारत में केवल १… विश्वविद्यालयों तक पहुँच पाते हैं। अतएव कहना है कि यहां अन्न-धन का ही दुर्भिक्ष नहीं, उच्च शि… भी दुर्भिक्ष है।

५—लड़कियों के लिए सामयिक पत्र।

स्त्री-शिक्षा का प्रचार वृद्धि पर है। देहात तक … लोग लड़कियों को मदरसे भेजने लगे हैं। जो नहीं … और पढ़े लिखे हैं वे घर पर ही बहुधा अपनी लड़कियों … कुटुम्ब की स्त्रियों को पढ़ाते हैं। कुछ समय हुए एक … गांव की एक दस वर्ष की लड़की के मुँह से हमने गो… विषयक एक उत्तम कविता सुनी थी। यह लड़की … गोखले और सुरेन्द्रनाथ आदि के नामों से भी परिचित … स्त्रियों और लड़कियों के लिए जो पत्र और पत्रिकायें … में निकलती हैं उनकी भी अब अच्छी माँग है। हमारे … जो इस तरह की दो एक सामयिक पुस्तकें आती हैं … राह पास-पड़ोस की लड़कियाँ सदा देखा करती हैं और … बड़े चाव से पढ़ती हैं। इनमें से प्रयाग के [illegible] … वे बहुत चाहती हैं। इस पत्र को निकलते दो वर्ष हु… इसका एक विशेष अङ्क अभी निकला है। वह सचित्र … अङ्क है। उसमें कोई १०० पृष्ठ हैं। कई चित्र भी हैं। … अधिक हैं, गद्य कम। चित्र और कविता [illegible] … [illegible] है। [illegible] … [illegible] लड़कियां बहुत [illegible] … [illegible], [illegible] और [illegible] … प्रयाग से निकलता है। [illegible] … [illegible] है।

पढ़े लिखे कुछ ही विद्वानों को छोड़ कर औरों को इससे लाभ उठाने का मौक़ा भी न मिलेगा।

२—कूच नामक एक प्राचीन राज्य।

एस० लीवाइ नाम के एक विद्वान् नामी पुरातत्त्ववेत्ता हैं। आपने रायल एशियाटिक सोसायटी के जरनल में एक लेख प्रकाशित कराया है। लेख बड़ा मनोरञ्जक है। उसमें आपने लिखा है कि किसी समय चीनी तुर्किस्तान (Chinese Turkestan) में भारतवासियों ही का आधिपत्य था। उनके तत्कालीन प्रभुत्व, विद्वत्त्व और कलाकौशल के चिह्न अब तक पाये जाते हैं। इस राज्य का नाम कूच (कुत्स?) था। यह उस भूमि-भाग में था जो काशगर की राह चीन जाने वालों के बीच में पड़ता है। इस प्रान्त के वर्तमान निवासियों का धर्म्म, रहन सहन और भाषा यद्यपि अब और की और हो गई है तथापि इनमें अब भी ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जो इनके आर्य्यवंशीय होने की सूचना दे रही हैं। कूचियों की प्राचीन भाषा में पिता के लिए पातर, माता के लिए मातर, है के लिए स्ते, आठ के लिए आक्ट आदि शब्द थे। सन् ईसवी के सौ दो सौ वर्ष बीत जाने पर कूचियों ने बौद्ध धर्म्म स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे वही उनका प्रधान धर्म्म हो गया। कूच-राज्य का सम्बन्ध खोतान या ख़ुतन से बहुत समय तक रहा। खोतान किसी समय प्रसिद्ध राज्य था और बड़ी उन्नत दशा में था। उसके साथ व्यापार-व्यवसाय करके कूच राज्य ने भी बड़ी उन्नति की। इस समय के बड़े बड़े बाज़ारों, पाठशालाओं, मन्दिरों, महलों और मठों के ध्वंसावशेष इस राज्य की पुरानी उन्नति की अब तक घोषणा दे रहे हैं। उन्हें देख कर यही कहना पड़ता है कि यह राज्य किसी समय धनसम्पत्ति और विद्या, इन दोनों बातों में बहुत बढ़ा चढ़ा था। यहां संस्कृत भाषा का ख़ूब पठन-पाठन होता था। मठों में सैकड़ों-हज़ारों बौद्ध संस्कृत पढ़ते और संस्कृत ही में शास्त्रों का चर्चा करते थे। यहां के प्राचीन निवासियों ने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद अपनी, कूचीय, भाषा में किया। [illegible] के पश्चात् [illegible] ५४६ [illegible] के पण्डितों ने बहुत ग्रन्थरचना की। वहां वाले हीनयान सम्प्रदाय के बौद्ध थे। इन लोगों ने बौद्धों के महाकल्प सदृश तान्त्रिक ग्रन्थ भी लिख डाले। अनेक ग्रन्थों की रचना तो इन्होंने संस्कृत ही में की। वैद्यविद्या की पुस्तकें भी इन्होंने लिखीं। कूचियों की भाषा में लिखी गई—विरोध नामक पुस्तक लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित है। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् कुमारजीव कूच नगर में बहुत समय तक रहे थे। यह वही कुमारजीव हैं जिनके लिखे हुए अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में पाये जाते हैं।

३—शहरे-बहलोल में प्राप्त प्राचीन मूर्त्तियाँ।

पेशावर के ज़िले में होती-मरदान नाम की एक छोटी सी रियासत है। उसके पश्चिम, कोई आठ मील दूर, शहरे-बहलोल नाम का एक गांव है। उसके पास कितने ही बहुत पुराने पुराने धुस्स और डीह हैं। कोई दो हज़ार वर्ष पहले यहां पर एक नगर था और क़िला भी था। बौद्धों की यहां विशेष बस्ती थी। अनेक विहार, स्तूप और चैत्य थे। यह कुशानवंश के राजाओं के राज्य-काल की बात है। ईसा की पांचवीं छठी सदी में यह जगह उजड़ गई जान पड़ती है। क्योंकि हुएनसांग आदि चीनी परिव्राजकों ने इस स्थान का उल्लेख अपनी यात्रा-पुस्तक में नहीं किया। यहां ज़मीन के भीतर से सैकड़ों सुन्दर सुन्दर मूर्त्तियां, बहुत समय से, निकलती रही हैं। कुछ तो ऊपर ही पड़ी हुई मिली हैं। यहां वाले इन मूर्त्तियों को बहुत पस्तु समझ कर अंगरेज़ों के हाथ बेचते रहे हैं। इस स्थान की प्राचीनता को देख कर पुरातत्त्व-विभाग के स्टीन साहब ने फ़रवरी-एप्रिल १९१२ में ६ हफ़्ते की खुदाई की। इस काम में गवर्नमेंट का चार हज़ार से ऊपर रुपया ख़र्च हुआ। १९११—१२ की आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट में इस खुदाई का फल प्रकाशित हुआ है। उसमें प्राप्त हुई वस्तुओं के अनेक चित्र भी दिये गये हैं।

स्टीन साहब को इस खुदाई में आशातीत सफलता हुई। १२०० मूर्त्तियां, कांसे और पुराने [illegible] इत्यादि यहां पर उन्हें मिले। जितनी ही बौद्धमूर्त्तियां थीं [illegible] खण्डित दशा में प्राप्त हुईं। जो भाग यहां से [illegible] निकाला गया उसमें से दो मूर्त्तियां बड़े महत्त्व की हैं। एक मूर्त्ति तो किसी मनुष्य की है और दूसरी

किसी स्त्री की। जिनकी ये मूर्त्तियां हैं उन्होंने शायद इस बौद्ध-तीर्थ में कोई धार्म्मिक काम किया होगा, अथवा कुछ पुण्यदान दिया होगा, अथवा कोई इमारत बनवा दी होगी। पुरुष की मूर्त्ति की कारीगरी बहुत अच्छी है। पर, मूर्त्ति का बायां हाथ टूटा हुआ है। उसके दाहने हाथ में कोई चीज़ है। वह शायद कोई फल है। पर क्या है, ठीक नहीं कहा जा सकता। स्त्री की मूर्त्ति में भी दोनों हाथों में कोई चीज़ है। दो हज़ार वर्ष पहले गान्धार देश में स्त्री पुरुष कैसे कपड़े पहनते थे, यह बात इन मूर्त्तियों से अच्छी तरह प्रकट होती है। इस दृष्टि से ये मूर्त्तियां बड़े मोल की हैं। इनका चित्र पाठक इसी संख्या में देखेंगे।

४—विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या।

इस देश में पहले की अपेक्षा शिक्षा का अधिक प्रचार अवश्य है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षालयों की संख्या भी बढ़ गई है और उनमें शिक्षा पाने वाले छात्रों की भी। इस विषय पर कई नोट सरस्वती में निकल चुके हैं। एक अभी गत संख्या में ही निकला है। सब प्रकार की शिक्षा के प्रचार में वृद्धि होने पर भी और देशों की अपेक्षा यह देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। एस० एम० दीक्षित नाम के एक महाशय ने लन्दन से एक पत्र लिखा है। वह यहाँ के कई समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने यह दिखाया है कि अन्यान्य देशों में कितने छात्र विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं, और भारतवर्ष में कितने। यह हिसाब उन्होंने एक विश्वसनीय पुस्तक के आधार पर दिया है। उसका कुछ अंश नीचे नक़ल किया जाता है। पाठक देखेंगे कि आबादी के लिहाज़ से प्रति एक लाख मनुष्यों में कितने छात्र भिन्न भिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में शिक्षा

=०

(७) इँगलेंड
(८) नारवे
(९) इटली
(१०) जापान
(११) रूस
(१२) हिन्दुस्तान

अमेरिका में एक लाख आदमियों में से [illegible] विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं और छोटे से [illegible] २०१। इँगलेंड में केवल ७४ छात्र इस प्रकार लयों में अध्ययन करते हैं। पर भारत में केवल १ विश्वविद्यालयों तक पहुँच पाते हैं। अतएव कहना है कि यहां अन्न-धन का ही दुर्भिक्ष नहीं, उच्च [illegible] भी दुर्भिक्ष है।

५—लड़कियों के लिए सामयिक पत्र।

स्त्री-शिक्षा का प्रचार वृद्धि पर है। देहात तक लोग लड़कियों को मदरसे भेजने लगे हैं। जो नहीं और पढ़े लिखे हैं वे घर पर ही बहुधा अपनी लड़कियों कुटुम्ब की स्त्रियों को पढ़ाते हैं। कुछ समय हुआ एक [illegible] गांव की एक दस वर्ष की लड़की के मुँह से हमने गो[illegible] विषयक एक उत्तम कविता सुनी थी। यह लड़की [illegible] गोखले और सुरेन्द्रनाथ आदि के नामों से भी परिचित स्त्रियों और लड़कियों के लिए जो पत्र और पत्रिकायें [illegible] में निकलती हैं उनकी भी अब अच्छी मांग है। हमारे [illegible] जो इस तरह की दो एक सामयिक पुस्तकें आती हैं [illegible] यहां पास-पड़ोस की लड़कियां सदा देखा करती हैं और बड़े चाव से पढ़ती हैं। इनमें से प्रयाग के कन्या[illegible] वे बहुत चाहती हैं। इस पत्र को निकलते दो वर्ष हु[illegible] इसका एक विशेष अङ्क अभी निकला है। यह सचित्र अङ्क है। इसमें कोई १०० पृष्ठ हैं। कई चित्र भी हैं। [illegible] अधिक हैं, गद्यात्मक कम। शिक्षा और स्वदेश [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

की हैं।

६—पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी विद्या-रसिकों की सभा ।

अमेरिका में जो हिन्दुस्तानी हैं उन्हों ने एक सभा बना ली है । उसका नाम है—Hindustan Association of America. यह सभा एक मासिक पत्र भी निकालती है । उसके सितम्बर १९१५ के अङ्क से मालूम हुआ कि जिस सम्मेलन का उल्लेख गत अगस्त की सरस्वती में हुआ था वह हो गया । सम्मेलन १४, १५ और १६ अगस्त को तीन दिन तक बराबर होता रहा । कई बैठकें हुईं । अनेक लेख पढ़े गये, अनेक व्याख्यान भी हुए । अन्तिम दिन की छठी बैठक में सब काररवाई हिन्दी में हुई । हिन्दी का सैाभाग्य ! मदरासी, बङ्गाली, पञ्जाबी, महाराष्ट्र, गुजराती और संयुक्त-प्रान्तीय लोग हिन्दी के सिवा और किस प्रान्तीय भाषा का आश्रय लेते ? १५ अगस्त को इस सम्मेलन की पाँचवीं बैठक पनामा-प्रदर्शनी की सीमा के भीतर कैलीफ़ोर्निया-बिलडिंग नाम की इमारत मे हुई । प्रदर्शिनी के अध्यक्ष मूर साहब के प्रतिनिधि भी इस बैठक में पधारे थे । आपने एक छोटी सी वक्तृता की और हिन्दुस्तान असोसियेशन के मन्त्री आइयर महाशय को एक पदक दिया । प्रदर्शिनी के सम्मेलनों के सहायक अध्यक्ष, काय्लल साहब, और कैली-फ़ोर्निया-विश्वविद्यालय के अध्यापक पोप साहब भी कुछ देर तक बोले । ग्रीस के राजदूत ने सब का स्वागत किया । विविध व्याख्यान हुए । ख़ूब चहल-पहल रही । अन्त को जलपान हुआ । हलुवा, पकौड़ी और कचौड़ी आदि का प्रबन्ध था । परोसनेवाली श्रीमतियों ने हिन्दुस्तानी साड़ियाँ धारण की थीं । उपस्थिति कोई ६०० के लगभग थी । इस सम्मेलन के अधिवेशन के वर्णन से प्रकट होता है कि इसका अधिकांश श्रेय श्रीयुत केशवदेव शास्त्री को है । इस सम्बन्ध में एक बात मार्के की हुई । बिना सरकारी सहायता के ही पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी चीज़ों की भी एक प्रदर्शिनी हुई । उसके लिए एक अलग स्थान तैयार किया गया था । मानिक जे० भूमगारा नाम के महाशय के प्रबन्ध से यह काम हुआ ।

किसी तरह इन प्रवासी भारतवासियों ने अपने देश की थोड़ी बहुत चर्चा कर दी और उसकी कुछ चीज़ों के दर्शन भी करा दिये । एतदर्थ वे हमारे धन्यवाद-पात्र हैं ।

७—कुमारी हेलन केलर (Miss Helen Keller)

योरप और अमेरिका में प्रति दिन विस्मयजनक आविष्कार हुआ करते हैं । अभी बहुत समय नहीं हुआ जब हम लोगों का ख़याल था कि अन्धों, बहरों तथा गूँगों को शिक्षा देना असम्भव है । किन्तु शिक्षा का गौरव समझने वाले पूर्वोक्त देशों ने इन लोगों को पढ़ाने के लिए भी स्कूल खोल कर यह दिखा दिया कि वैसा समझना हमारा भ्रम था । यही नहीं, हाल में एक अमेरिकन अबला ने, अन्धी, बहरी तथा गूँगी होकर भी, कई प्रसिद्ध भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करके संसार को विस्मित कर दिया है । आपका नाम कुमारी हेलन केलर है ।

कुमारी हेलन केलर का जन्म उत्तरी अलबामा (Alabama) के टस्कम्बिया (Tuscumbia) नामी गाँव में, २७ जून सन् १८८० ईसवी, को हुआ था । अपने माता-पिता की पहली सन्तान होने के कारण वह उनको बहुत प्यारी थी । परन्तु दुर्भाग्यवश डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही इस होनहार लड़की को एक भयङ्कर रोग ने आ दबाया । उसी व्याधि ने उसे आँखों और कानों के उपयोग से वञ्चित कर दिया । वह गूँगी भी हो गई । जिस प्रकार गूँगे सङ्केतों द्वारा अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं उसी प्रकार यह लड़की भी अपना काम चलाती थी । परन्तु अभी तक वह यह न समझती थी कि संसार में प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न भिन्न चिह्न या नाम हैं ।

हेलन केलर के माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा थी कि हम अपनी लड़की को पढ़ावें । परन्तु बहुत दिन तक कोई ऐसा शिक्षक न मिला जो इस अन्धी, बहरी तथा गूँगी कन्या को पढ़ाने का साहस करता । बहुत खोज करने पर कुमारी सलीवान (Sullivan) नाम की एक विदुषी ने यह कार्य्य स्वीकार किया । यह उसी के निरन्तर परिश्रम का फल है कि हेलन केलर कई भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुई । केलर की उम्र ७ वर्ष की थी जब कुमारी सलीवान ने उसे पढ़ाना आरम्भ किया । बाल्यावस्था में ही प्रत्येक वस्तु को छूकर उसके सम्बन्ध की सब बातें जानने के लिए केलर बड़ी उत्सुक रहा करती थी । अपने खिलौनों में एक गुड़िया को वह बहुत पसन्द करती



सर हेनरी काटन, सी० आई० ई०।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

६—पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी विद्या-रसिकों की सभा।

अमेरिका में जो हिन्दुस्तानी हैं उन्हों ने एक सभा बना ली है। उसका नाम है—Hindustan Association of America. यह सभा एक मासिक पत्र भी निकालती है। उसके सितम्बर १९१५ के अङ्क से मालूम हुआ कि जिस सम्मेलन का उल्लेख गत अगस्त की सरस्वती में हुआ था वह हो गया। सम्मेलन १४, १५ और १६ अगस्त को तीन दिन तक बराबर होता रहा। कई बैठकें हुईं। अनेक लेख पढ़े गये, अनेक व्याख्यान भी हुए। अन्तिम दिन की छठी बैठक में सब कारवाई हिन्दी में हुई। हिन्दी का सौभाग्य! मदरासी, बङ्गाली, पञ्जाबी, महाराष्ट्र, गुजराती और संयुक्त-प्रान्तीय लोग हिन्दी के सिवा और किस प्रान्तीय भाषा का आश्रय लेते? १५ अगस्त को इस सम्मेलन की पाँचवीं बैठक पनामा-प्रदर्शनी की सीमा के भीतर कैलीफ़ोर्निया-बिलडिंग नाम की इमारत में हुई। प्रदर्शिनी के अध्यक्ष मूर साहब के प्रतिनिधि भी इस बैठक में पधारे थे। आपने एक छोटी सी वक्तृता की और हिन्दुस्तान असोसियेशन के मन्त्री आइयर महाशय को एक पदक दिया। प्रदर्शिनी के सम्मेलनों के सहायक अध्यक्ष, काण्वल साहब, और कैली-फ़ोर्निया-विश्वविद्यालय के अध्यापक पोप साहब भी कुछ देर तक बोले। ग्रीस के राजदूत ने सब का स्वागत किया। विविध व्याख्यान हुए। ख़ूब चहल-पहल रही। अन्त को जलपान हुआ। हलुवा, पकौड़ी और कचौड़ी आदि का प्रबन्ध था। परोसनेवाली श्रीमतियों ने हिन्दुस्तानी साड़ियाँ धारण की थीं। उपस्थिति कोई ६०० के लगभग थी। इस सम्मेलन के अधिवेशन के वर्णन से प्रकट होता है कि इसका अधिकांश श्रेय श्रीयुत केशवदेव शास्त्री को है। इस सम्बन्ध में एक बात मार्के की हुई। बिना सरकारी सहायता के ही पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी चीज़ों की भी एक प्रदर्शिनी हुई। उसके लिए एक अलग स्थान तैयार किया गया था। मानिक जे० भूमगारा नाम के महाशय के प्रबन्ध से यह काम हुआ।

किसी तरह इन प्रवासी भारतवासियों ने अपने देश की थोड़ी बहुत चर्चा कर दी और उसकी कुछ चीज़ों के दर्शन भी करा दिये। एतदर्थ वे हमारे धन्यवाद-पात्र हैं।

७—कुमारी हेलन केलर (Miss Helen Keller)

योरप और अमेरिका में प्रति दिन विस्मयजनक आविष्कार हुआ करते हैं। अभी बहुत समय नहीं हुआ जब हम लोगों का ख़याल था कि अन्धों, बहरों तथा गूँगों को शिक्षा देना असम्भव है। किन्तु शिक्षा का गौरव समझने वाले पूर्वोक्त देशों ने इन लोगों को पढ़ाने के लिए भी स्कूल खोल कर यह दिखा दिया कि वैसा समझना हमारा भ्रम था। यही नहीं, हाल में एक अमेरिकन अबला ने, अन्धी, बहरी तथा गूँगी होकर भी, कई प्रसिद्ध भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करके संसार को विस्मित कर दिया है। आपका नाम कुमारी हेलन केलर है।

कुमारी हेलन केलर का जन्म उत्तरी अलबामा (Alabama) के टस्कम्बिया (Tuscumbia) नामी गाँव में, २७ जून सन् १८८० ईसवी, को हुआ था। अपने माता-पिता की पहली सन्तान होने के कारण वह उनको बहुत प्यारी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही इस होनहार लड़की को एक भयङ्कर रोग ने आ दबाया। उसी व्याधि ने उसे आँखों और कानों के उपयोग से वञ्चित कर दिया। वह गूँगी भी हो गई। जिस प्रकार गूँगे सङ्केतों द्वारा अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं उसी प्रकार यह लड़की भी अपना काम चलाती थी। परन्तु अभी तक वह यह न समझती थी कि संसार में प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न भिन्न चिह्न या नाम हैं।

हेलन केलर के माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा थी कि हम अपनी लड़की को पढ़ावें। परन्तु बहुत दिन तक कोई ऐसा शिक्षक न मिला जो इस अन्धी, बहरी तथा गूँगी कन्या को पढ़ाने का [illegible]
पर कुमारी सलीवान ([illegible]
यह कार्य्य स्वीकार [illegible]
का फल है कि [illegible]
प्राप्त करने में स[illegible]
कुमारी सलीवान [illegible]
में ही प्रत्येक [illegible]
जानने के [illegible]
खिलौनों [illegible]

[illegible] कुमारी सलीवान ने एक दिन वह गुड़िया उससे [छीन ल]ी । जब वह रोने लगी तब उसके हाथ पर उँगली [से] कुमारी सलीवान ने Doll अर्थात् "गुड़िया" लिख [दिया]। इसी प्रकार दो चार बार करने पर लड़की को यह [मालू]म हो गया कि वह चिह्न गुड़िया ही का है । अतः जब [कभ]ी वह गुड़िया खेलना चाहती तब अपनी माँ या कुमारी [सल]ीवान के हाथ पर Doll लिख कर सुगमता से गुड़िया [पा] जाती । इसी प्रकार कुमारी सलीवान ने घर की सब [वस्त]ुओं के नामाक्षर उसे सिखा दिये । प्रति दिन इस प्रकार [के] नामाक्षरों की संख्या बढ़ने लगी ।

इस प्रकार संज्ञा-शब्दों के अक्षर सीख जाने पर कुमारी [सल]ीवान ने उसका ध्यान क्रियाओं की ओर खींचा । Doll [(गु]ड़िया) Table (मेज़) इत्यादि के चिह्न या सङ्केत वह [जान]ती ही थी । इस कारण गुड़िया मांगने पर कुमारी [सल]ीवान ने उसके हाथ पर—Doll is on the table [अ]र्थात्—गुड़िया मेज़ पर है—इत्यादि इत्यादि वाक्य लिखना [आर]म्भ किया । धीरे धीरे इस तरह के अनेक वाक्य भी हेलन [अ]भिप्राय समझने लगी । अतः अब पढ़ाने का कार्य्य आरम्भ हुआ ।

[अ]न्धों को पढ़ाने के लिए उभड़े हुए अक्षरों की किताबें [छ]पी जाती हैं । उनको उँगलियों से टटोल कर ये लोग पढ़ [ले]ते हैं । ऐसी ही एक किताब हेलन को भी दी गई । [उस]ने जिन शब्दों के अक्षर वह सीख चुकी थी उनको किताब [में] पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई । [illegible] एक [illegible] [औ]र वह दिन भर में जो जो वस्तु पाती उसके अक्षर ढूँढ़ ढूँढ़ [क]र कुमारी सलीवान या अपनी माँ को दिखाती । [illegible] [उ]भड़े हुए अक्षरों और वाक्यों के भाव समझने में [illegible] [ह]ुई । साथ ही साथ अक्षरों का लिखना भी [illegible] किया ।

१० वर्ष की अवस्था में वह हाथ पर लिख लिख कर [ब]ातें करने लगी । परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हिलते हुए होठों को छूकर वह यह [illegible] कि मैं [illegible] [इ]सी प्रकार [illegible] इस लिए वह बोलने के लिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के हाथ [illegible] मुँह पर [illegible] (राजा) का [illegible] किया । [illegible] [illegible] के एक [illegible] थी ।

[illegible] चाल अपनी उँगलियों से ध्यानपूर्वक देखी [illegible] होकर उसका अनुकरण करने लगी । अभ्यास [illegible] सकता ? थोड़े ही दिनों में थोड़ा छू छू कर उसने उच्चारण सीख लिया । यहाँ तक कि अब वह [illegible] है । इसका उच्चारण हम लोगों के उच्चारण से [illegible]

इस प्रकार लिखना पढ़ना एवं बोलना [illegible] अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन तथा लैटिन जैसी [illegible] उच्च परीक्षायें पास कीं । इनके अतिरिक्त [illegible] भाषायें जानती है । देखने और सुनने की [illegible] उँगलियों में आ गई है । अपने मित्रों को, समय के पश्चात् वे क्यों न मिलें, वह [illegible] कर पहचान लेती है । जब कोई नवीन मनुष्य [illegible] आता है तब वह उसके मुँह पर हाथ फेर कर [illegible] उसे पहचान लेती है । पढ़ने लिखने के [illegible] शतरंज भी अच्छी तरह खेल सकती है ।

विद्यार्थी

८—एक नामी कोशकार की मृत्यु ।

अँगरेज़ी भाषा का साहित्य बहुत [illegible] इसमें कितने ही कोश—और बहुत बड़े बड़े विद्यमान हैं । [illegible], [illegible], [illegible] आदि हुए कोश-ग्रन्थों को देख कर उनकी महत्ता पर [illegible] होता है । [illegible] परिश्रम करने और [illegible] [illegible] काम में निरन्तर लगे रहने पर कहीं [illegible] कोश लिखे जाते । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मन हुआ! १८७८ ईसवी में यह काम डाक्टर मरे को सिपुर्द किया गया। उन्होंने ग्रेट-ब्रिटन और अमेरिका के शिक्षित जन-समुदाय से सहायता मांगी। हज़ारों आदमियों ने उनकी प्रार्थना पर कोई दस ग्यारह लाख काग़ज़ के टुकड़ों पर शब्दों की उत्पत्ति, इतिहास और अर्थ लिख लिख कर भेजा। १५०० ईसवी के पहले की प्रत्येक पुस्तक और उसके बाद की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पुस्तक पढ़ कर शब्दों का संग्रह किया गया। यह सब सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर कोश-रचना का काम शुरू हुआ। प्रधान सम्पादक सर जान मरे की सहायता के लिए कोई २० उपसम्पादक नियत हुए। तब कहीं, ३६ वर्ष में, यह काम पूरा हो सका; सो भी अभी कुछ बाक़ी है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा ... है कि विश्वसनीय और पूरा शब्द-कोश बनाना कितने ... कितने धैर्य, कितने व्यय और कितनी विद्वत्ता का काम है।

९—युद्ध का पहला वर्ष—धन और जन-नाश।

गत अगस्त के आरम्भ में एक वर्ष हो गया, युद्ध बरा... जारी है। इन १२ महीनों में कितने आदमी काम आये, कित... घायल हुए और कितने क़ैद हो गये, इसका अन्दाज़ा बहु... लोगों ने लगाया है। संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के न्यूयार्क नग... से इंडिपेंडेंट नाम का एक पत्र निकलता है। उसने भी इस जन... नाश की एक तालिका प्रकाशित की है। यह तालिका इस देश... के भी पत्रों में छपी है। इसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

देश	मारे गये	घायल हुए	क़ैद हुए या ला-पता	टोटल
रूस	८,००,०००	२०,००,०००	८,००,०००	३६,००,(
फ़्रांस	४,२०,०००	८,००,०००	३,१०,०००	१५,६०,०
ग्रेट-ब्रिटन	१,२५,०००	२,२०,०००	६०,०००	४,६५,०
बेलजियम	५०,०००	१,६५,०००	४५,०००	२,६०,०
सरविया	६५,०००	१,१३,०००	५०,०००	२,२८,००
मांटिनिगरो	८,०००	१५,०००	५,०००	२८,००
इटली	५,०००	१२,०००	२,०००	१६,००
मित्र-राज्यों का टोटल	१५,०३,०००	३३,५५,०००	१३,०२,०००	६१,६०,०००
जर्मनी	५,००,०००	९,००,०००	२,५०,०००	१६,५०,०००
आस्ट्रिया-हंगरी	३,५५,०००	८,००,०००	२,००,०००	१३,५५,०००
टर्की	५०,०००	१,००,०००	५०,०००	२,००,०००
शत्रु-राज्यों का टोटल	९,०५,०००	१८,००,०००	५,००,०००	३२,०५,०००
कुल टोटल	२४,०८,०००	५१,५५,०००	१८,०२,०००	९३,६५,०००

पर इस हिसाब में भूल मालूम होती है। ख़बर भेजने वाली जितनी कम्पनियाँ हैं उनमें रूटर कम्पनी की बड़ी प्रतिष्ठा है। उसकी भेजी हुई ख़बरें बहुत विश्वसनीय समझी जाती हैं। उसका कहना है कि शत्रु-राज्यों की हानि मित्र-राज्यों की हानि से बहुत अधिक है। एक नामी पत्र के आधार पर उसने ख़बर दी है कि जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और टर्की को ८५ लाख आदमियों की हानि उठानी पड़ी है, जिसमें से ६० लाख मरे या सदा के लिए बेकार हो गये हैं।

कुछ भी हो, ऊपर के लेखे में जो हानि ग्रेट-ब्रिटेन को उठानी पड़ी है उसमें अवश्य ही भूल है। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मन्त्री एसक्किथ साहब ने २१ अक्टोबर को पारलियामेंट में जो हिसाब पेश किया वह नीचे दिया जाता है—

मारे गये	१,०३,६५२
घायल हुए	३,१७,४६५
ला-पता	७४,१७७
	४,९५,२९४

इसमें से पश्चिमी रणक्षेत्र में हुई जन-हानि की संख्या ३,६३,०४३ है। अवशिष्ट १,३२,२५१ की हानि अन्यान्य रणक्षेत्रों में हुई। अमेरिका के पूर्वोक्त पत्र ने ग्रेट-ब्रिटेन की हानि का जो हिसाब दिया है वह, सम्भव है, बहुत पहले का हो। एसक्किथ साहब की बताई हुई हानि का हिसाब ९ अक्टोबर १९१५ तक का है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रलयङ्कर युद्ध की अग्नि में दोनों पक्षों के लाखों मनुष्य स्वाहा हो गये। अब तो इसने और भी विकराल रूप धारण किया है। भगवान् करे शीघ्र ही इसकी समाप्ति हो!

इस महायुद्ध में कितना रुपया ख़र्च हो रहा है। यह सुन कर तो आश्चर्य की सीमा ही नहीं रहती। १५ सितम्बर १९१५ को ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान अमात्य, एसक्किथ साहब, ने हाउस आव कामन्स (पार्लियामेंट) में कहा कि युद्ध के पहले १२ महीनों में कुल कम ११ अरब रुपया ख़र्च हुआ है! जुलाई १५ के आरम्भ में युद्ध के ख़र्च का औसत ४½ करोड़ रुपया रोज़ था। पर सितम्बर में बढ़ कर वह ४६ करोड़ रोज़ हो गया था! इस ख़र्च के दिन पर दिन बढ़ने ही के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। [illegible] ख़र्च का भी यही हाल है। कुछ समय [illegible] दैनिक युद्ध-ख़र्च भी कुछ कम ४½ करोड़ [illegible] जर्मनी और आस्ट्रिया के युद्ध-ख़र्च का [illegible] मालूम नहीं। परन्तु इन देशों का भी [illegible] होगा। ग्रेट-ब्रिटेन को जो इतना अधिक [illegible] पड़ा है उसका कारण है। उसने अपने मित्र [illegible] उपनिवेशों को बहुत सा रुपया क़र्ज़ भी दि[illegible] इसी युद्ध-ख़र्च में शामिल है।

१०—सर हेनरी काटन।

हिन्दुस्तान के बहुत बड़े हितैषी सर [illegible] परलोकवास हो गया। २३ अक्टोबर को उनकी यात्रा समाप्त हो गई। जब तक इस देश में रहे भारतवासियों की हर तरह मङ्गलकामना ही नहीं [illegible] हक़ों की यथाशक्ति रक्षा भी की। जब पेन्शन लेकर [illegible] चले गये तब भी आप इस देश को नहीं भूले। [illegible] के लिए लेखों द्वारा, वक्तृताओं द्वारा, पुस्तकों [illegible] लियामेंट द्वारा आप लगातार चेष्टा करते ही रहे। [illegible] की उन्नति के मार्ग में जो बाधायें हैं उन्हें दूर करने [illegible] सदा ही तत्पर रहे। उनकी पुस्तकों से सूचित [illegible] भारत को उसी दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से कि [illegible] स्वदेशभक्त भारतवासी देख सकता है। उनकी [illegible] भारतवासियों के साथ प्रेम, उदारता और समानता [illegible] होना चाहिए; उन्हें बड़े से बड़े पद मिलने [illegible] विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। [illegible] की तो बात ही नहीं, कुलियों तक के वे [illegible] पक्षपाती थे। वे न चाहते थे कि छोटे से भी छोटे भा[illegible] के नागरिक अधिकार में बाधा उपस्थित की जाय। [illegible] समय वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर थे उस समय [illegible] चाय के बाग़ीचों में काम करने वाले भारतीय कु[illegible] साथ अच्छा व्यवहार न किया जाता था। जब इन [illegible] के लिए क़ानून बनने लगा तब आपने कुलियों का पक्ष [illegible] इस पक्ष उदारता के कारण कुछ [illegible] और [illegible] महात्माओं के मुख से आपको अनेक [illegible] बातें [illegible] पड़ीं। आपने हानियाँ सहीं, पर [illegible]

विलायत में भी भारत का पक्ष लेने के कारण आपको न मालूम कितना त्रास सहना पड़ा। परन्तु मरते दम तक आप अपने निश्चित मार्ग से नहीं डिगे।

सर हेनरी काटन के प्रपितामह पहले पहल भारत आये। यह बात कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले की है। इसके बाद उनके पितामह और पिता भी इस देश में बड़े बड़े ओहदों पर रहे। उनके एक पुत्र भी इस समय यहाँ सिविलियन हैं। इस तरह पाँच पुश्तों से आपके कुटुम्बीय भारत की सेवा करते आ रहे हैं। १८४५ ईसवी मे मदरास प्रान्त के कुम्भकोणम् नगर में सर हेनरी काटन का जन्म हुआ। बचपनही में वे विद्याध्ययन के लिए विलायत भेजे गये। १८६७ ईसवी में वे वहाँ से सिविलियन हो कर लौटे। पहले पहल उन्हें मिदनापुर में जगह मिली। अनेक पदों पर उन्होंने काम किया। अन्त को वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर नियत हुए। सुनते हैं, आप बङ्गाल की लफ़्टिनेंट गवर्नरी के हक़दार थे। पर वह उन्हें नहीं मिली। इस कारण खिन्न होकर उन्होंने पेन्शन ले ली।

१९०४ ईसवी में सर हेनरी काटन फिर भारत आये और बम्बई में, उस साल, नेशनल कांग्रेस के सभापति हुए। लन्दन में जो कांग्रेस कमिटी है उसमें शामिल होकर आपने बहुत कुछ काम किया। "इंडिया" नाम का पत्र जो विलायत से निकलता है वह इसी कमिटी के प्रबन्ध से निकलता है। सर हेनरी के पुत्र ही उसका सम्पादन करते हैं। चार पाँच वर्ष तक सर हेनरी काटन पारलियामेंट के मेम्बर थे। इस मेम्बरी के समय में आपने भारत-सम्बन्धिनी अनेक चर्चायें पारलियामेंट में कीं। आपकी इन सब सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत आपका बहुत ऋणी है। आपकी मृत्युवार्ता सुन कर सभी को खेद हुआ है।

सर हेनरी काटन की पुस्तकों में न्यू इंडिया नाम की पुस्तक बहुत अच्छी है। उसका हिन्दी-अनुवाद भी हो चुका है।

पुस्तक-परिचय।

१—वेणीसंहार की आलोचना। आकार ... पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ४ आने; प्राप्ति-स्थान—रा... प्रेस, आगरा। भट्टनारायण का लिखा हुआ वेणीसंह... का एक नाटक संस्कृत में है। उसकी बड़ी प्रसि... नाटक वीररसात्मक है। इस देश की कितनी ही भ... में उसके अनुवाद हो चुके हैं। पण्डित बदरीनाथ ... बी० ए०, ने उसी के आधार पर अपने "कुरुवनद... नाटक की रचना की है। प्रस्तुत "आलोचना" भी अ... की लिखी हुई है। आलोचना का ढँग बहुत अच्छा ... कवित्व-दृष्टि से भी आलोचना की गई है, नाट्य-दृ... भी। किस पात्र की कौन बात प्रासङ्गिक और कौन अप्र... ङ्गिक है, इस पर यथेष्ट विचार किया गया है। पात्रों ... स्वभावादि के गुण-दोष भी बताये गये हैं। जो बातें सम... चित, अनुकूल भावों की द्योतक और पात्रों की दशा औ... स्वभाव के अनुरूप हैं, उनका रहस्य भी प्रकट किया गया है... कवि की रचना का जो अंश सदोष समझा गया है उसक... स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है—ज़रा भी मुलाहिज़ा नहीं किया गया। उदाहरण—

(१) कवि ने यहाँ भीमसेन का जो आतुरीपन दिखाया है वह और जगहों से बढ़ गया है और बुरा मालूम होता है।

(२) यह—'प्रद्युम्नमित्र' पद लाकर कवि ने श्लोक के महत्त्व को तो कम किया ही, युधिष्ठिर के चरित पर भी मानों और परम पानी फेर दिया।

आलोचना की भाषा कहीं कहीं बड़ी सरस और हँसाने वाली है। नाटक के कर्त्ता भी भट्ट और आलोचक भी भट्ट। दो भट्टों का यह कृतिकौशल देखने योग्य है।



२—श्रीमद्भगवती-भागवत। बम्बई के सस्तु साहित्य-वर्द्धक कार्यालय ने कुछ बड़े बड़े ग्रन्थों के प्रकाशन का भी बीड़ा उठाया है। ऐसे दो तीन ग्रन्थों का परिचय सरस्वती की पिछली संख्याओं में दिया जा चुका है। आज एक और ग्रन्थ का परिचय देना है। यह भगवती-भागवत का गुजराती-अनुवाद है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम देवी-भागवत है। इसमें भी श्रीमद्भागवत की तरह १२ स्कन्ध

है। इस मूल-ग्रन्थ के टीकाकार नीलकण्ठ ने इसे श्रीमद्भागवत की भी अपेक्षा अधिक महत्त्व का माना है। इसका गुजराती-अनुवाद प्रकाशित हुए बहुत वर्ष हुए। बम्बई की वेद-धर्म सभा ने इसे पहले पहल प्रकाशित किया था। मूल्य रक्खा था ८॥) फ़ी कापी। यह अनुवाद कालिदास गोविन्द शास्त्री से कराया गया था। इसकी पहली आवृत्ति की कापियाँ अब नहीं मिलतीं। इसी से सस्तु साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय ने पूर्वोक्त वेद-धर्म-सभा की अनुमति से इसका दूसरा संस्करण निकाला है और मूल्य केवल २॥।) रक्खा है। इस संस्करण की पृष्ठ-संख्या एक हज़ार से कुछ ही कम है। अच्छे काग़ज़ पर मोटे और स्पष्ट टाइप में यह ग्रन्थ छपा है। प्रत्येक अध्याय के आद्यन्त के मूल संस्कृत-श्लोक भी देवनागरी टाइप में दे दिये गये हे। इस संस्करण में एक और भी विशेषता है। मूल श्लोकों के संख्या-सूचक अङ्क भी लगा दिये गये हैं। इससे अनुवाद का मिलान मूल से करने के लिए श्लोक ढूँढ़ने में व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। इस दिव्य ग्रन्थ को इतना सुलभ कर देने वाले पुण्य-पुरुषों को अनेक साधुवाद।

※

३—गर्भिणी तथा गर्भ-चिकित्सा। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १८८; जिल्ददार, छपाई और काग़ज़ साधारण; मूल्य १ रुपया, लेखक, श्रीविजयकृष्ण सेन, बी० ए०, भागलपुर, से प्राप्य। इसके दो भाग हैं। पहले में गर्भस्वरूप, सूतिकागृह और शिशुपालन आदि का वर्णन है। दूसरे में चिकित्सा-वर्णन है। चिकित्सा तीन अवस्थाओं की है—गर्भावस्था की, प्रसवावस्था की और प्रसूतावस्था की। और भी कितनी ही ज्ञातव्य बातें इसमें हैं। औषधियाँ जो बताई गई हैं, सब होमियोपैथी चिकित्सा से सम्बन्ध रखती हैं। वे सर्वत्र नहीं मिलतीं। होमियोपैथ डाक्टर प्रायः बड़े बड़े शहरों ही में रहते हैं। इस पुस्तक में बताई गई चिकित्सा यदि न भी की जा सके तो भी इसके पढ़ने से बहुत सी लाभदायक बातें मालूम हो सकती हैं। पुस्तक की भाषा कहीं कहीं दोषपूर्ण है। मूल्य बहुत है।

※

४—रघुनाथ-शिकार। पण्डित [illegible] के बाद में एक अच्छा कवि हो गये हैं। पण्डित [illegible] रामजी मिश्र, बी० ए०, का लिखा हुआ उन [illegible] जून १९१३ की सरस्वती में निकल चुका [illegible] ने उनके काव्यों के प्रकाशन का काम भी [illegible] है। रघुनाथ शिकार से ही आपने श्रीगणेश [illegible] पुस्तक में पहले तो वाजपेयीजी का [illegible] चन्द्र का शिकार-वर्णन। इस वर्णन में कवि की बाल्यावस्था पर बड़ी अच्छी कविता की [illegible] अधिकांश भाषा तो पुरानी ही है, पर [illegible] कहीं कहीं बड़ी अनोखी है। छन्द कई हुए हैं। इस पुस्तक में एक विशेषता है कि [illegible] भी कुछ कविता की है। नमूना देखिए—

> [illegible]

पुस्तक का मूल्य ~)। है। छपाई और [illegible] रए हैं। मिलने का पता, चौबे [illegible], [illegible], प्रतापगढ़ (अवध)

※

५—फीजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष।— मूल्य ६ आने। पण्डित तोताराम सनाढ्य की इस [illegible] पहले संस्करण की समालोचना हो चुकी है। [illegible] संस्करण है। [illegible] सनाढ्य महाशय ने जिन [illegible] का वर्णन इसमें किया है उन्होंने भारत के [illegible] के हृदय कँपा दिये हैं। कुली प्रथा का विरोध पहले किया जाता था अब उससे कई गुना अधिक [illegible] रहा है। एन्ड्रूज़ और पियर्सन साहब इस पुस्तक का [illegible] [illegible] पुस्तक मिलने का पता—भारती भवन, फ़िरोज़ाबाद, [illegible]

※

६—[illegible] पुस्तक में [illegible] मूल्य [illegible] आना है। [illegible]

धम, गढ़वाल को लिखने से मिलती है। बदरीनाथ की यात्रा करने वालों के सुभीते के लिए इसमें रास्ते के सभी स्थानों और चट्टियों आदि का वर्णन है। बदरीनाथ का माहात्म्य तथा और भी कितनी ही बातें हैं। यात्रियों के लिए यह पुस्तिका अवश्य ही लाभदायक है।



७—महात्मा गोखले। आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ४ आने; लेखक—पण्डित नन्दकुमार देव शर्म्मा; प्रकाशक—ओंकार-प्रेस, इलाहाबाद, से प्राप्य। इसमें गोखले का चरित विशेष विस्तार के साथ, अच्छी भाषा में, लिखा गया है और पढ़ने लायक़ है। आरम्भ में गोखले का चित्र भी है।



८—गुणस्थान-दर्पण। आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या ३१; "अमूल्य"; लेखक—रतलाम-निवासी रावत शेरसिंह गौडवंशी, जैन-पाठशाला, बीकानेर को लिखने से प्राप्य। इसमें जैन-धर्म्म के अनुसार १४ गुण-स्थानों का विवेचन और उनके अवान्तर भेदों आदि का वर्णन है। इसकी भाषा लेखक महाशय की अपनी निज की हिन्दी है। उदाहरण—

"यह निर्जरा बिना सही पञ्चेन्द्रि के कोई नहीं कर सकता है। इस निर्जरा को बारह प्रकार के तप करके आदर की जाती है"।

जैन धर्म्म में दीक्षित लोग ही इस पुस्तक से कुछ लाभ उठा सकते हैं।



९—गाने की चन्द चीज़ें। यह पुस्तक चार भागों में है। कुल पृष्ठ-संख्या ८० के लगभग है। मूल्य सब का, एकही जिल्द में, ४३ आने है। बाबू मांगीलाल बज़ाज़, छावनी नीमच, को लिखने से ये चारों भाग मिल सकते हैं। आप ही इनके रचयिता हैं। गीतों के विषय प्रायः सामयिक हैं। लावनी, ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा आदि में लेखक महाशय ने अच्छे विचारों के प्रचार की चेष्टा की है।



१०—प्रैक्टिकल फ़ोटोग्राफ़ी। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १६४; मूल्य लिखा नहीं। इसे बाबू हरिगुलाम ठाकुर ने लिखा है। फ़ाइन आर्ट फ़ोटोग्राफ़िक स्टूडियो, गोरखपुर, के पते पर आपही को लिखने से यह मिलती है। हिन्दी में इस विषय की कई पुस्तकें आज तक निकल चुकी हैं। हमारे देखने में जो पुस्तकें आई हैं उन सब से यह अच्छी है। फ़ोटोग्राफ़ी से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी मुख्य मुख्य बातें इसमें हैं। यह कला सीखने की इच्छा रखने वाले इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। जो सीखना नहीं चाहते, किन्तु इस कला की प्रारम्भिक बातें जा चाहते हैं, वे भी इससे अपनी कुतूहल-निवृत्ति कर सकते पुस्तक की भाषा सरल—सब के समझने योग्य—है।



११—हिन्दी-साङ्गीत-संग्रह। इस ६४ पृष्ठों पुस्तक में कई आधुनिक कवियों के रचे हुए पदों का सं है। पदों का सम्बन्ध हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि है। कुछ पद अच्छे हैं; शेष साधारण। मूल्य २ आने मिलने का पता—दामोदर प्रेस, लखनऊ।



१२—आदर्श शिक्षक। पृष्ठ-संख्या ७१, मूल्य आने, लेखक—पण्डित जगदीश झा, हेड पण्डित, स्कूल, चम्पानगर। भाषा, साहित्य, व्याकरण, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि किस तरह पढ़ाना चाहिए, इसकी शिक्षा इस छोटी सी पुस्तक में है। यह अध्यापकों के काम की मालूम होती है। "हड़बड़ाहट" के कारण इसमें इतनी अशुद्धियाँ रह गई हैं कि पूरे ८ सफ़े का अशुद्धि-संशोधन-पत्र लगाना पड़ा है।



१३—नीति-पुष्पावली। आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या २२३; मूल्य ६ आने; लेखक, लाला शङ्करदास साहब वर्म्मा। इसमें नैतिक, सामाजिक और शारीरिक विषयों पर निबन्ध और शिक्षायें हैं। विषय और उनके विवेचन सब उपयोगी पर भाषा, काग़ज़ और छपाई अच्छी नहीं। रामनगर (पञ्जा के पते पर लेखक को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।



१४—श्राविका-सुबोध। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १२०, मूल्य ६ आने; अनुवादक, आशालाल अमुलखराय

